प्रकाशक:—
चतुरसेन गुप्त,
प्रबन्धक :—
महाभारत कार्यालय
दिल्ली।

॥ राजधर्म ॥

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्

अर्थ—प्रजा के सुख में सुख और प्रजा के हित में ही राजा को अपना हित समझना चाहिए। बात तो यह है, कि राजा का अपना प्रिय और हितकारी कोई कार्य पृथक् नहीं है। प्रजा प्रिय और हितकारी कार्य ही राजा का प्रिय और हितकर कार्य है।

(कौटलीय अर्थशास्त्र १८-१६-३६)

मुद्रक:—
डा० प्यारेलाल गुप्त
L. M. P.।
वैदिक प्रेस, शामली, यू० पी

REFERENCE BOOK

भूमिका

राजपूताने के प्रसिद्ध विद्या प्रेमी रईस

श्रीमान् रावबहादुर ठा० नरेन्द्रसिंह जी
जोबनेर नरेश एवं शिक्षा सचिव जयपुर राज्य

नीति का सूर्य्य, भारतीय संस्कृति का ध्रुव तारा, परम प्रतापी, नन्दवंश वन कृशान और गुप्त साम्राज्य नौका का पतवार परम पुरुष विष्णुगुप्त चाणक्य जो भारतीय रङ्गमञ्च पर इस और कई नामों और कौटल्यादि कई उपटंक से सम्बोधित किये जाते हैं। उस महा पुरुष का यह अर्थशास्त्र ग्रन्थ एक जीता जागता नमूना है, और आज भी पूर्वीय और पाश्चात्य संसार में इसकी टक्कर का जाज्वल्यमान रत्न कोई नहीं है, उस ग्रन्थ को सर्व साधारण के हाथों उपलब्ध होने को महाभारत कार्यालय मुद्रण करा रहा है यह महर्घ प्रयास बड़ा आदरणीय हैं।



नरेन्द्रसिंह (रावबहादुर)
शिक्षा सचिव, जयपुर राज्य

प्राक्कथन

ईसवी सन् से ३२७ वर्ष पूर्व, ग्रीक विजेता, महान् सिकन्दर, एशिया माइन मिश्र, फारस, अफ़गानिस्तान और अस्सकनियों की राजधानी मस्सग को जीतता हु एक लाख बीस हज़ार सेना लिए हुए हिन्दूकुश के मार्ग से भारतवर्ष में आ घुस तक्षशिला का राजा आम्भीपोरस (पुरु) से ईर्ष्या रखता था, इससे यह सिकन्दर से मि गया। दोनोंने पोरस पर आक्रमण किया। यद्यपि पोरस इस युद्ध में पराजित हो गया, पर उसकी वीरता की छाप यूनानियों के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लग गई।

इस समय भारत का सब से बड़ा शक्तिशाली राजा महापद्मनन्द था, जिस राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) थी। सिकन्दर की इस पर आक्रमण करने की हिम्मत हुई और यह मैसिडोनिया का शक्तिशाली शासक, अपनी महत्वाकांक्षाओं को अपने म लेकर पञ्जाब के छोटे २ राज्यों से युद्ध करता हुआ सिन्ध नदी से पार होकर भारतवर्ष वाहर निकल गया। इन छोटे २ राज्यों के साथ युद्ध करते समय सिकन्दर एक स्थान में बुरी तरह फँस गया। उसके बहुत से घाव आए। ये घाव अभी अच्छे भी नहीं हो पाये थे, कि यह यूरोपीय विजेता तेतीस वर्ष की अवस्था में ही बेबिलोनिया में मर गया।

जिस समय सिकन्दर का यह आक्रमण हुआ, ठीक उसी समय तक्षशिला के विश्व विद्यालय में आचार्य विष्णुगुप्त (चाणक्य) अध्यापन का कार्य करते थे और भावी मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त, इनके छात्रों में एक सुयोग्य छात्र थे। यद्यपि सिकन्दर भारतवर्ष से लौट गया, तो भी आचार्य चाणक्य ने अपनी तीव्र दृष्टि से यह देख लिया, कि यह यूनानी विजेता, फिर भारतवर्ष पर वेग के साथ चढ़ाई किये बिना न रहेगा, भारत में फूट का साम्राज्य है। छोटे २ गण राज्य यूनानियों के आक्रमण रोकने में असमर्थ हैं यह विचार कर इसने अपने योग्य शिष्य वीर केशरी चन्द्रगुप्त पर हाथ रखा और इस समय इसे तक्षशिला के सहित सारे पञ्जाब का शासक बना दिया।

नन्दवंश के उद्दण्ड शासकों से भारतीय प्रजा तंग आ रही थी। चाणक्य ने देख कि राजा और प्रजा के इस असहयोग में यूनानियों का मुक़ाबिला कौन कर सकता है इसने नन्दवंश को समाप्त किया, और मगध के विशाल साम्राज्य पर अपने शिष्य महा चन्द्रगुप्त को स्थापित कर दिया।

सिकन्दर के देहान्त के बाद उसका सेनापति सैल्यूकस, मैसिडोनियन का सम्राट बना। इसने ईसवी सन् से ३०६ वर्ष पूर्व, मगध सम्राज्य पर अ क्रिया। यूनानी सम्राट, सैल्यूकस पराजित हुआ। इसने सिन्धु नदी के पार का सारा प्रदे चन्द्रगुप्त को भेंट कर दिया और अपनी पुत्री कार्नोवालिया (हेलेन का विवाह मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के साथ कर दिया।

इस समय सारे संसार पर यूनानी जाति की धाक थी। यह विजेता जाति, अ को सबसे अधिक सभ्य मानती थी, परन्तु इनके भी विजय कर लेने से भारत का म हिमालय की तरह आज तक बड़े गर्व के साथ ऊंचा उठा हुआ है, जिसका सारा श्रेय, अर्थशास्त्र के रचयिता महाविद्वान् मन्त्री चाणक्य को है, इसमें किसी को मत नहीं है।

पाश्चात्य देशों को अपनी प्रचलित शासन प्रणाली पर बड़ा गर्व है। वे सम कि राजा, मन्त्री, दूत, भूमि कर (माल) चुंगीकर, पुलिस, गुप्तचर विभाग (खुफ़िया पुलिस) व्यापार, जहाज़ जंगलात, खान, शराब, वेश्या, कम्पनी, चौर डकैतों के प के उपाय, दायभाग, जुआ, जालीसिक्के, सेना, व्यूह निर्माण, शत्रु के घात प्रयोगों रक्षा के उपाय आदि के नियम जैसे-इनको ज्ञात है, वैसे आज तक किसी को नहीं मा हुए, परन्तु ज्यों ही उन्होंने इस अर्थशास्त्र को देखा, वे मुंह में अंगुली दबा कर भौच देखते रह गए। महाभारत का यह दावा, कि "यदिहास्तितदन्यत्रयन्नेहास्तिनतत्क अर्थात् जो महाभारत में है, वही सब जगह मिलता है और जो इसमें नहीं वह कहीं नहीं मिल सकता है। ठीक यही दावा-राज्य व्यवस्था के विषय में इस कौटलीय अर्थ का होना चाहिए। आश्चर्य तो यह है, कि आज कल की सी दुनियां आज से ढाई ह वर्ष पूर्व भी ऐसी की ऐसी विद्यमान् थी। यह जब की बात है, जब भारत से अति अन्य देश बिल्कुल अन्धकार के गड्ढे में पड़े थे।

हमारा साम्राज्य क्या था। भारत किस प्रकार अपनी स्वतन्त्रता के सुख का उपभ कर रहा था। यद्यपि आज यह सब कुछ स्वप्न सा हो गया-तो भी इस अर्थशास्त्र ने अ इस गुलामी में भी हमारे मस्तक को संसार में ऊंचा उठा दिया है। बात तो सच यह कि साम्राज्य से कोई जाति की प्रतिष्ठा या रक्षा नहीं हो सकती। जाति की प्रतिष्ठा रक्षा का साधन तो केवल साहित्य ही है। इसी सचाई के आधार पर एक बार लार्ड ने कहा था, कि "यदि ब्रिटिश साम्राज्य और शेक्सपियर में से मुझे एक लेना मैं निःसङ्कोच साम्राज्य को तिलाञ्जलि देने को प्रस्तुत हूंगा"। हमारे पास भी हमारा साम्राज्य नहीं है, परन्तु हमारी जाति की प्रतिष्ठा और मान के बचाने को

ुपम साहित्य रत्न बचे हुए हैं; जिनमें यह अर्थशास्त्र एक चमकता हुआ

ों ·

जिस जाति को नष्ट करना होता है, उसका साहित्य नष्ट किया जाता है। हिन्दू
ा को नष्ट करने वालों ने भी इनके साहित्य भण्डार से वर्षों हम्माम गर्म करवाये।
हज़ार वर्ष पूर्व के प्राचीन हिन्दू साम्राज्य के चित्र उपस्थित करने वाला यह बहुमूल्य,
भी नष्ट हो चुका था। यह हमारे कोई सौभाग्य की बात थी, कि बहुत खोज करने
दक्षिण में सन् १६०६ में एक कापी इस अर्थशास्त्र की मिलगई, जो आज आपके हाथमें
ा रही है।

साहित्य पर जाति के जीवनकी आधारशिला किस प्रकार रखी हुई है-इस बात
आज हमारी परतन्त्र जाति भूल गई। साहित्य का मूल्य लार्ड कर्जन के उपर्युक्त
गर्भ भरा है। बात तो सच यह है, कि पाश्चात्य देशवासियों ने उन्नति ही एक इस
से की है, कि वे अपने साहित्य का मूल्य जानते हैं। मिल्टन के पुस्तक लिखने की
ड़ी को आज भी सब लोग आदर की दृष्टि से देखते हैं, परन्तु कौन भारतीय बता
ता है, कि चाणक्य ने किस झोंपड़ी में बैठकर इस अर्थशास्त्र को लिखा था।

यूरोप में आज घमसान युद्ध जारी है। इसमें अनुपम अस्त्र शस्त्रों के अतिरिक्त
ी धुंआ (गैस) का प्रयोग होता है, जिससे किसी को अन्धा बना दिया जाता है
को सुला दिया जाता है, किसी को मार दिया जाता है और कहीं पर आग लगादी
है। चाणक्य कहते हैं।

कृतकण्डलकृकलास गृहगोलिकान्धाहिक धूमो नेत्रवधमुन्मादं च करोति
र्थशास्त्र १४ १-२६)।

अर्थात्—कृत कण्डल, गिरगट, छिपकली, और दुमई सांप के अर्क का धुंआ, अंधा
पागल बना देता है!

शतकर्दमोचिदिङ्गकरवीर कटुतुम्बीमत्स्य धूमो .... यावच्चरतितावन्मारयति
र्थ० १४-१-१०)

अर्थात्—शतावरी आदि के योग से बनाये हुए नुसख़े का धुंआ जितनी दूर
-उतनी दूर तक मारता चला जावेगा।

विद्युत प्रदग्धोऽङ्गारो .... निष्प्रतीकारोदहति (अर्थ० १४-१-३६)

अर्थात्—बिजली के जले हुए वृक्ष के कोयले से जो आग लगाई जाती है, वह
नहीं जा सकती है।

एकाम्लकं वराहाक्षि खद्योतः कालशारिवा एतेनाभ्यक्तनयनो रात्रौरूपाणि पश्यति (अर्थ० १४-३-३)

अर्थात्—एक वड़हल सूअर की आंख, जुगनूं, काला शारिवा को मिलाकर आंख में आंजे-तो मनुष्य रात में भी देख सकता है।

एकां गुलिकामभिमन्त्रयित्वा यत्रैतेन मन्त्रेणक्षिपति—तत्सर्वं प्रस्वापयति (अर्थ० १४-३-३१)

अर्थात्—इस गोली को जहां डाले वहां सव सो जाते हैं। इस प्रकार के अनेक प्रयोग हैं। आज हम परतन्त्र होने से उनके परीक्षण करने में भी असमर्थ हैं, परन्तु एक समय था, जव हम इन सवको अच्छी तरह जानते थे। इनमें कहीं २ मन्त्रों का प्रयोग आचार्य चाणक्य की आस्तिकता को सूचित कर रहा है।

महाभारत में शकट व्यूह, वज्रव्यूह, चक्रव्यूह, सूची मुख व्यूह आदि अनेक व्यूहों का वर्णन है, परन्तु उनके निर्माण का क्रम आप इसी अर्थशास्त्र में देख सकोगे।

भारतवर्ष का सवसे पहला यही अर्थशास्त्र नहीं है। इससे पूर्व भी पिशुनाचार्य, उद्धव, बृहस्पति, उशनस, भारद्वाज आदि के अनेक अर्थशास्त्र थे, जिनका उल्लेख इसी अर्थशास्त्र में स्थान २ पर आता है आज वे लुप्त हो चुके। केवल यही अर्थशास्त्र जैसे तैसे मिला है। इस अर्थशास्त्र को पढ़कर श्री पं० जवाहरलाल जी नेहरू नैनी जेलमें मुग्ध उठे थे। उन्होंने सन् १६३१ में जेल से ही अपनी पुत्री इन्दिरा के नाम दो पत्र इस अर्थ-शास्त्र के गौरव के प्रकट करने को लिखे हैं, जो विश्व इतिहास की झलक नामक ग्रन्थ में प्रकाशित हैं।

पाश्चात्य देश में मैकियावेली कूटनीति का आचार्य माना जाता है। इसका मत है, कि जहां तक हो सके-ऊपर से साधु वेश वनाये रहो और समय पर धर्म-अधर्म कुछ न देखकर फौरन दूसरे को दबोच दो। सदा मखमली दस्ताने में फौलाद का पञ्जा रखो-इत्यादि ढंग का इसका मत है। वहुत से लोगों ने चाणक्य को भी भारत का मैकियावेली वताया है। हमारी सम्मति में यह चाणक्य के साथ अन्याय है। आचार्य चाणक्य धर्मात्मा व्यक्ति हैं, वे वलवान् दुष्ट शत्रु के साथ ही कूटनीति का प्रयोग करके अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा करना चाहते हैं। वे साधु पुरुष के साथ कूटनीति के प्रयोग को पाप मानते हैं। ये सम्राट-निर्माता होकर भी त्यागी ब्राह्मण की भांति कुटिया में रहते और चावल तथा सत्तू से भूख मिटाकर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। वे कहते है—

तस्मात्स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत् स्वधर्मं। सन्दधानोहि प्रेत्य चेह च नन्दति (अर्थ० १-३-१६)

अर्थात्—राजा प्रजा को अपने धर्म से च्युत न होने दे। राजा भी अपने धर्म का आचरण करे। जो राजा, अपने धर्म का इस भांति आचरण करेगा—वह इस लोक और परलोक में सुखी रहेगा।

विद्याविनीतो राजाहि प्रजानां विनयेरतः अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते सर्वभूतहितेरतः (अर्थ० १-५-१८)

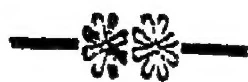
अर्थात्—सुशिक्षित राजा प्रजा को सुशिक्षित बनाता हुआ और प्रत्येक के हित में तत्पर हुआ राज्य का उपभोग करे। इस प्रकार कार्य करने वाला राजा शत्रु रहित होकर विशाल पृथ्वी के उपभोग करने में समर्थ होता है। एक स्थान पर तो आचार्य लिखते हैं—

एवं दूष्येष्वधार्मिकेषु वर्तेतनेतरेषु (अर्थ० ५-२-८०-८१)

अर्थात्—यह सब कुछ कूटनीति, अधार्मिक लोगों के साथ बरतनी चाहिए, सज्जनों के ऊपर इसका कभी प्रयोग न करे, परन्तु मैकियावेली-सज्जन दुर्जन, धार्मिक अधार्मिक किसी को नहीं जानता, वह सबके साथ कूटनीति का प्रयोग करके ऐश्वर्यशाली बनना जानता है। उसे चाणक्य की सी छुटी पसन्द नहीं आ सकती। इन सब बातों के देखने से हमारी सम्मति में तो चाणक्य और मैकियावेली के सिद्धान्तों में आकाश पाताल का अन्तर है।

हमने इस कठिन ग्रन्थ की गुत्थियां खोलने का यथाशक्ति प्रयास किया, परन्तु साधन न होने से हम उसमें पूर्ण सफल नहीं हो सके तो भी बहुत सी त्रुटियां हमने नहीं होने दी हैं। यह ग्रन्थ हमारे परोक्ष में दूसरे नगर में छपा है—इस से प्रूफ आदि की कुछ अशुद्धि हों तो पाठक क्षमा करके हमें अनुगृहीत करेंगे।

श्रावण पूर्णिमा
१९८७ विक्रमी



गङ्गाप्रसाद शास्त्री
दिल्ली।

कौटलीय अर्थशास्त्र की विषयानुक्रमणिका

विनयाधिकारिक

अध्याय	विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
१	राजवृत्ति	१	२	विद्या समुद्देश	६
३	त्रयी स्थापना	१०	४	कृषि पशुपालन और व्यापार	१२
५	वृद्ध संयोग	१४	६	काम आदि ६ शत्रुओंका त्याग	१६
७	राजर्षि का व्यवहार	१८	८	अमात्यों की नियुक्ति	१६
६	मन्त्री और पुरोहितों की नियुक्ति	२२	१०	अमात्योंके हृदयगत सरल और कुटिल भावोंको गुप्तरीतिसे जानने के प्रकार	२४
११	गुप्तचरों (C. I. D) की स्थापना	२८			
१२	गुप्तचरों की कार्यों पर नियुक्ति	३१	१३-१४	शत्रुके बहकावेमें न आने के उपाय	३५
१५	मन्त्राधिकार	४२	१६	राजदूतों की नियुक्ति	४८
१७	राजपुत्रों से राजा की रक्षा	५३	१८	राजकुमार के कर्तव्य	५८
१६	राज प्रणिधि	६१	२०	राजभवन-निर्माण	६५
२१	आत्म रक्षा	६६			

अध्यक्ष प्रचार

अध्याय	विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
१	जन-पद-निवेश	७५	२	बंजर भूमिका उपयोग	८०
३-४	दुर्ग (किले) बनाने का विधान	८३	५	राजकीय वस्तु·······	६३
६	समाहर्ता (कलक्टर) के कार्य	६६	७-८	आय-व्यय का स्थान	१००
६	छोटे २ कर्मचारियों पर अध्यक्ष	१११	१०	शासनाधिकार	११५
११	कोशमें प्रवेशकरने योग्य रत्नोंकी परीक्षा	१२१	१२	खानों का वर्णन	१३१
१३	सुवर्णाध्यक्ष का कार्य	१३७	१४	सराफे के बाजार का प्रबंध	१४३
१५	कोष्ठागाराध्यक्ष (धान्य आदि)	१४६	१६	पण्याध्यक्ष (वेचने और खरीदने)	१५६
१७	कुप्याध्यक्ष [चंदनकी लकड़ी आदि]	१५६	१८	आयुधागाराध्यक्ष [शस्त्र भंडार]	१६१
१६	तोल माप का संशोधन पौतवाध्यक्ष	१६४	२०	देश और काल का परिमाण	१६१
२१-२२	शुल्काध्यक्ष [चुंगीका अफसर]	१७६	२३	सूत्राध्यक्ष [रेशम, ऊन और सूत का महकमा	१७
२४	सीताध्यक्ष [हल से उत्पन्न वस्तु]	१८१	२५	सुराध्यक्ष	१८

विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
सूनाध्यक्ष	१६१	२७	गणिकाध्यक्ष	१६२
नावाध्यक्ष	१६७	२६	गोऽध्यक्ष	२०१
अश्वाध्यक्ष	२०७	३१	हस्त्यध्यक्ष	२१३
रथ, पैदल सेनाध्यक्ष	२१६	३४	मुद्राध्यक्ष [मुहर लगाने]	२२१
समाहर्ता [कलक्टर]	२२२	३६	नागरिक [नगर का प्रबन्धक]	२२५

धर्मस्थीय

विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
दीवानी और फ़ौजदारी		२-३-४	विवाह कानून	२३८
मुकदमे संबंधी विचार	२:२	५-८	दायभाग (बटवारा)	२५१
वस्तु विक्रय	२६३	१०	पशुवों के चारागाह आदि	२६७
कर्ज लेना और देना	२७१	१२	धरोहर	२७७
मजदूरों का विषय	२८२	१५-१६	वेचने और नहीं वेचने सम्वन्धी वाद विवाद	२६१
डकैती	२६७			
गाली गलौज	२६६	१६	मारपीट	३०१
जुआ तथा अन्य अपराधों का वर्णन	३०५			

कंटक शोधन

विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
कारुक रक्षणम् अर्थात् धोबी रंगरेज, सुनार, वैद्य तथा नट आदि सम्बन्धी नियम	३०६	२	व्यापारियों से प्रजा की रक्षा	३१५
		३	दैवी आपत्तियों से प्रजा की रक्षा करने के उपाय	३१८
प्रजा पीडिकों से रक्षा करने के नियम, गुप्तचरों का साधु ज्योतिषी आदि के भेष बनाना	३२२	६	चोरों की पहिचान आदि	३२७
		७	आशुमृतक परीक्षा (कतल)	३३२
		८	अपराधी और गवाहों का वर्णन	३३६
		६	राजकर्मचारियों के स्थानोंकी पड़ताल	३३६
अपराधी को अङ्ग छेदन की सजा	३४४	११	लड़ाई झगड़ों का वर्णन	३४८
		१२	कन्या संबन्धी अपराधों का वर्णन	३५०
अभक्ष्य भक्षण के संबंध में राज नियम	३५४			

अध्याय	विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
	योग वृत				
१	राज कर्मचारियों का कंटक पन	३६०	२	राज्यकोश बढ़ाने का उपाय	३६६
४-५	मन्त्री आदि का राजा के प्रति व्यवहार	३७८	३	भृत्यों के भरण पोषण की विधि	३७३
			६	राजा पर आने वाली विपत्ति और उनका प्रतिकार	३८४
	मण्डल योनिः				
१	राजा के मन्त्री आदि के गुणों का वर्णन	३६०	२-३	शांति और उद्योग की विधि	३६२
	षाड गुण्य				
१-२	वृद्धि और क्षय का वर्णन	३६८	३-६	शत्रु के साथ युद्ध और सन्धि	४०५
१०-११	भूमि सन्धि का वर्णन	४३४	१२	कर्म सन्धि	४६३
१३	आक्रमणकारी राजा का कर्तव्य	४५७	१४	अपनी हीन शक्ति को पूरा करने का उपाय	४५७
१५	दुर्वल राजा और वलवान राजा	४६८	१६	पराजित राजा के साथ व्यवहार	४७३
			१७-१८	सन्धि विषयक वर्णन	४७७
	व्यसनाधिकारिक				
१	राजा पर आने वाली विपत्तियों का वर्णन	४६०	२	राज्य पर आने वाले संकट	४६६
४	राष्ट्र की पीड़ा-राज्य कोश का वर्णन	५०५	३	पुरुषों पर विपत्तियां	४६६
			५	अपनी सेना और मित्रों पर आने वाला संकट	५१२
	अभियास्यत्कर्म				
१	वल और निर्वलता का वर्णन	५२०	२	सेना की तय्यारी	५२५
४	सेना का नाश, धन धान्य की हानि	५३६	३	विजय यात्रा के लिए चढ़ाई	५३०
७	संशय	५५१	५	वाहरी और भीतरी आपत्तियाँ	५४०
			६	दुष्ट प्रजाजन और शत्रुओं का प्रतिकार	५४.
	सांग्रामिकं				
१	सेना की छावनी	५६१	२	सेना का प्रस्थान	५६.

विषय	पृष्ठ	अध्याय	विपय	पृष्ठ
सेना को प्रोत्साहन	५६७	४-५	युद्ध के योग्य भूमि, हाथी, अश्व रथ आदि के कार्यों का वर्णन	५७१
दण्ड व्यूहों एवं प्रति व्यूहों का वर्णन	५८४			

संघ वृत

भेद के प्रयोग और गुप-चुप मारण के उपायों का वर्णन ५८७

आवलीयसं

राजदूत के कर्मों का वर्णन	५९४	२	बुद्धिमता से युद्ध करने के उपाय	
शत्रु के सेनापतियों के वध का ढङ्ग	६०१	५	शत्रु सेना को अनेक उपायों से वश में करना	६०९

दुर्गलम्भोपाय

शत्रु के दुर्गों को प्राप्त करने का उपाय	६१५	२	शत्रु को कपट द्वारा दुर्ग से बाहर निकालना	६१९
गुप्तचरों (C. I. D.) को शत्रुके देश में रखने का वर्णन	६२४	४	शत्रु के दुर्ग पर अधिकार करना	६३०
		५	जीते हुए प्रान्तों में शांति स्थापना करना	६३८

औपनिपदिक

शत्रु के मारण लिए औषधियों के प्रयोगों का वर्णन	६४१	२	औषधियों से भूख प्यास नष्ट करने आकृति बदलने या आकृति परिवर्तन द्वारा, शत्रु को भूल भुलैयां में डालने का वर्णन	६४८
अद्भुत औषधियों और मन्त्रों का वर्णन	६५४			
शत्रु द्वारा किये गए आघातों का प्रतीकार	६६४			

तन्त्र युक्ति

अर्थ शास्त्र के शब्दों की परिभाषा ६६७

चाणक्य प्रणीत सूत्रम्

६७४ से ६९९ तक

* इति *



कौटलीय अर्थशास्त्र

विनयाधिकारिक-प्रथम अधिकरण

पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्तावितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम् ॥ १ ॥ तस्यायं प्रकरणाधिकरण-समुद्देशः ॥ २ ॥

प्राचीन आचार्यों ने पृथिवी के जीतने और पालन के उपायों से परिपूर्ण जितने अर्थशास्त्र (नीति शास्त्र) लिखे हैं, प्रायः उन सबका सार लेकर इस एक अर्थशास्त्र का निर्माण किया जाता है। अब हम सब से प्रथम इस अर्थशास्त्र के प्रकरणों को गिनाते हैं ॥१-२॥

विद्यासमुद्देशः ॥३ ॥ वृद्धसंयोगः ॥ ४ ॥ इन्द्रियजयः ॥ ५ ॥ अमात्योत्पत्तिः ॥ ६ ॥ मन्त्रिपुरोहितोत्पत्तिः ॥ ७ ॥ उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम् ॥ ८ ॥ गूढपुरुषोत्पत्तिः ॥ ९ ॥ गूढपुरुषप्रणिधिः ॥ १० ॥ स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणम् ॥ ११ ॥ परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः ॥ १२ ॥ मन्त्राधिकारः ॥ १३ ॥ दूतप्रणिधिः ॥ १४ ॥ राजपुत्ररक्षणम् ॥ १५ ॥ अवरुद्धवृत्तम् ॥ १६ ॥ अवरुद्धे च वृत्तिः ॥ १७ ॥ राजप्रणिधिः ॥ १८ ॥ निशान्तप्रणिधिः ॥ १९ ॥ आत्मरक्षितकम् ॥ २० ॥ इति विनयाधिकारिकं प्रथममधिकरणम् ॥ २१ ॥

इस शास्त्र के प्रथम अधिकरण का नाम विनयाधिकारिक है। विशेष (खास २) नीति का आश्रय लेकर जिस प्रकरण में शिक्षा के महत्व का आरम्भ किया गया हो, उसे विनयाधिकारिक कहते हैं। इसमें बीस प्रकरण है। प्रथम प्रकरण का नाम विद्या समुद्देश

है। इसमें जितनी विद्या हैं, उन सब का संक्षेप में विचार किया गया है। दूसरा वृद्ध संयोग नाम का प्रकरण है। इसमें विद्वान् पुरुषों की संगति के लाभ का विवेचन है। तीसरे में इन्द्रियों के विजय, चतुर्थ में अमात्यों (राज्य प्रबन्धकों) का वर्णन, पांचवें में मन्त्री और पुरोहितों का विवेचन, छठे में अमात्यों के हृदय के भावों का छुपकर पता लगाना, सातवें में गुप्तचरों की स्थापना का प्रकार, आठवें में गुप्तचरों के काय का विवेचन, नवें में अपने देश के शत्रु के वश में आने और नहीं आने वाले पुरुषों की दशा, दशवें में शत्रु पक्ष के ऐसे ही पुरुषों का तोड़ना फोड़ना, ग्यारहवें में मन्त्रणा, बारहवें में दूत विवेचन, तेरहवें में राजपुत्रों से राजा की रक्षा, चौदहवें में अवरुद्ध (कैद में, डाले हुए) कुमारों के वृत्तान्त, पन्द्रहवें में उनके साथ व्यवहार, सोलहवें में राजा के कर्त्तव्य, सत्रहवें में राज भवन के सम्बन्ध में राजा के कर्तव्य, अट्ठारहवें में अन्य पुरुषों से राजा की रक्षा के प्रकारों का वर्णन किया है। इस प्रकार प्रथम विनयाधिकारिक नामक अधिकरण का विचार है ॥१-२१॥

जनपदविनिवेशः ॥ २२ ॥ भूमिच्छिद्रविधानम् ॥ २३ ॥ दुर्गविधानम् ॥ २४ ॥ दुर्गविनिवेशः २५ ॥ संनिधातृनिचयकर्म ॥ २६ ॥ समाहर्तृसमुदयप्रस्थापनम् ॥ २७ ॥ अक्षपटले गाणनिक्याधिकारः ॥ २८ ॥ समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनम् ॥ २९ ॥ उपयुक्तपरीक्षा ॥ ३० ॥ शासनाधिकारः ॥ ३१ ॥ कोशप्रवेश्यरत्नपरीक्षा ॥ ३२ ॥ आकरकर्मान्तप्रवर्तनम् ॥ ३३ ॥ अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षः ॥ ३४ ॥ विशिखायां सौवर्णिकप्रचारः ॥ ३५ ॥ कोष्ठागाराध्यक्षः ॥ ३६ ॥ पण्याध्यक्षः ॥ ३७ ॥ कुप्याध्यक्षः ॥ ३८ ॥ आयुधागाराध्यक्षः ॥ ३९ ॥ तुलामानपौतवम् ॥ ४० ॥ देशकालमानम् ॥ ४१ ॥ शुल्काध्यक्षः ॥ ४२ ॥ सूत्राध्यक्षः ॥ ४३ ॥ सीताध्यक्षः ॥ ४४ ॥ सुराध्यक्षः ॥ ४५ ॥ सूनाध्यक्षः ॥ ४६ ॥ गणिकाध्यक्षः ॥ ४७ ॥ नावध्यक्षः ॥ ४८ ॥ गोऽध्यक्षः ॥ ४९ ॥ अश्वाध्यक्षः ॥ ५० ॥ हस्त्यध्यक्षः ॥ ५१ ॥ रथाध्यक्षः ॥ ५२ ॥ पत्त्यध्यक्षः ॥ ५३ ॥ सेनापतिप्रचारः ॥ ५४ ॥ मुद्राध्यक्षः ॥ ५५ ॥ विवीताध्यक्षः ॥ ५६ ॥ समाहर्तृप्रचारः ॥ ५७ ॥ गृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनाः प्रणिधयः ॥ ५८ ॥ नागरिकप्रणिधिः ॥ ५९ ॥ इत्यध्यक्षप्रचारो द्वितीयमधिकरणम् ॥ ६० ॥

दूसरा अध्यक्षप्रचार नामका अधिकरण है। जिसमें अध्यक्षों(अफसरों) के कर्तव्योंका विवेचन है। इसमें अड़तीस प्रकरण हैं। पहला-देशों के बसाने, दूसरा-ऊसर भूमि के उपजाऊ बनाने, तीसरा-दुर्ग (क़िले) बनाने, चौथा-दुर्ग में भवन रचना का प्रकरण है पाचवें में कोशाध्यक्ष

(खजानची) के कर्म, छठे में कर वसूल करने वाले अध्यक्ष (कलक्टर) का वर्णन है। सातवें में हिसाबके दफ्तरका विवेचन है। आठवें में कोश (खजाने) की पड़ताल, नवें-में छोटे मोटे अधिकारियों की परीक्षा, दशवें में-शासन के अधिकार, ग्यारहवें-में कोश में प्रविष्ट करने योग्य रत्नों का परीक्षण, वारहवें में आकर (खानों) के कार्यों का सञ्चालन, तेरहवें में धातुओं के गलाने शोधने के कार्यालय का विचार, चौदहवें में सराफे के बाजार का निरूपण, पन्द्रहवें में अन्न आदि खाद्य पदार्थों के संग्रह का विचार, और सोलहवे प्रकरण में वेचने खरीदने की वस्तुओं के अध्यक्ष का विवेचन है। सत्रहवें प्रकरण में लकड़ी के अट्ठारहवें में शस्त्रों के अध्यक्ष का वर्णन है। उन्नीसवें में नाप-तोल के कार्यालयाध्यक्ष का वर्णन, वीसवें मे देशकाल के मान का विवेचन, इक्कीसवें में चुंगी आदि टैक्सों का वर्णन, बाइसवें मे सूत, तेईसवें में कृषि, चौवीसवें में सुरा, (शराव) पच्चीसवें में फांसी, छब्बीसवें में वेश्या, सत्ताईसवें में नौका के अध्यक्ष का निरूपण है। अट्ठाईसवें में गौ, उनतीसवें में अश्व, तीसवें में हाथी, इकत्तीसवें में रथ, वत्तीसवें में पैदल सैनिक, तैंतीसवें में सेनापति, चौंतीसवे में टकसाल, पैंतीसवें में पशुओं के चरने को छोड़ने की भमि के अध्यक्ष का वर्णन है। छत्तीसवें में सारी आयव्यय के अध्यक्ष, सैंतीसवें में गृहपति साधु आदि के वेश में रहने वाले गुप्तचर, और अड़तीसवें प्रकरण में नगर की रक्षा में नियुक्त अध्यक्ष (मजिस्ट्रेट) का वर्णन है। इस प्रकार यह अध्यक्ष प्रचार नाम का दूसरा अधिकरण है ॥२२-६०॥

व्यवहारस्थापना विवादपदनिवन्धः ॥ ६१ ॥ विवाहसंयुक्तम् ॥ ६२ ॥ दायविभागः ॥ ६३ ॥ वास्तुकम् ॥ ६४ ॥ समयस्यानपाकर्म ॥ ६५ ॥ ऋणादानम् ॥ ६६ ॥ औपनिधिकम् ॥ ६७ ॥ दासकर्मकरकल्पः ॥ ६८ ॥ संभूयसमुत्थानम् ॥ ६९ ॥ विक्रीतक्रीतानुशयः ॥ ७० ॥ दत्तस्यानपाकर्म ॥ ७१ ॥ अस्वामिविक्रयः ॥ ७२ ॥ स्वस्वामिसंवन्धः ॥ ७३ ॥ साहसम् ॥ ७४ ॥ वाक्पारुष्यम् ॥ ७५ ॥ दण्डपारुष्यम् ॥ ७६ ॥ द्यूतसमाह्वयम् ॥ ७७ ॥ प्रकीर्णकानि ॥ ७८ ॥ इति धर्मस्थीयं तृतीयमधिकरणम् ॥ ७९ ॥

तीसरा धर्मस्थीय अधिकरण है। धर्मस्थनाम न्यायाधीशों (जजों) का है। इनके अधिकारों की इसमें व्यवस्था है। प्रथम प्रकरण में व्यवहारों (मुकदमों) की स्थापना और विवाद (झगड़ों) का निर्णय है। दूसरे प्रकरण में विवाह के धर्म और स्त्री धन के विषय का विवेचन है। तीसरे में दाय भाग (वटवारा) है। चौथे में जमीन बाग आदि के व्यवहारों का वर्णन है। पांचवे में अपनी २ प्रतिज्ञा के विषय में निर्णय है।

छठे में ऋण (कर्जा) लेना, सातवें में धरोहर, आठवें में दासप्रथा का निषेध, नवें में ठेकेदारी, दशवें में क्रयविक्रय के नियम, ग्यारहवें में प्रतिज्ञा किये हुए धन का न देना बारहवे में स्वामी न होने पर भी वस्तु के बेच देने का वर्णन है। तेरहवें में स्वस्वामि सम्बन्ध अर्थात् कब्जे का निरूपण है। चौदहवें में साहस (डाका) का पन्द्रहवें में गालीगलौच के अभियोग, सोलहवें में मारपीट, सत्रहवें में द्यूत (जुआ) अट्ठारहवें में फुटकर विषय हैं। इस प्रकार यह अधिकरण समाप्त होता है ॥६१-७६॥

कारुकरक्षणम् ॥ ८० ॥ वैदेहकरक्षणम् ॥ ८१ ॥ उपनिपातप्रतिकारः ॥ ८२ ॥ गूढाजीविनां रक्षा ॥ ८३ ॥ सिद्धव्यञ्जनैर्माणवप्रकाशनम् ॥ ८४ ॥ शङ्कारूपकर्माभिग्रहः ॥ ८५ ॥ आशुमृतकपरीक्षा ॥ ८६ ॥ वाक्यकर्मानुयोगः ॥ ८७ ॥ सर्वाधिकरणरक्षणम् ॥ ८८ ॥ एकाङ्गवधनिष्क्रयः ॥ ८९ ॥ शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्पः ॥ ९० कन्याप्रकर्म ॥ ९१ ॥ अतिचारदण्डः ॥ ९२ ॥ इति कण्टकशोधनं चतुर्थमधिकरणम् ॥ ९३ ॥

चौथे अधिकरण का नाम कण्टक शोधन अधिकरण है। प्रजा को पीड़ा पहुंचाने वाले दुष्टों का नाम कण्टक है। उनका निवारण कण्टक शोधन कहाता है। इसके पहले प्रकरण में शिल्पियों से प्रजा की रक्षा का विधान है। दूसरे में व्यापारियों से प्रजा की रक्षा का वर्णन है। तीसरे में दैवी आपत्तियों का उपाय, चौथे में छुपे हुए प्रजा पीड़कों का प्रतीकार पांचवें में सिद्ध पुरुषों के वेष में रह कर दुष्टों का प्रकाशन, छठे में चोरों के ऊपर सन्देह आदि का निरूपण है। सातवें में आशुमृतक (मृतक शरीर की परीक्षा) का, आठवें में अपराधी के बयान आदि लेने का विचार है। नवें में सारे अधिकारियों की देख भाल, दशवे में चोर जारों के एक अङ्ग काटने की व्यवस्था, ग्यारहवें में लड़ाई झगड़े में मार डालने वाले के वध (फांसी) आदि का निर्णय, बारहवें में कन्या के दूषित करने के दण्ड की व्यवस्था, तेरहवे में अभक्ष्यादि वस्तु खिलाने के दण्ड का विचार है। इस प्रकार इस चौथे अधिकरण की समाप्ति की गई है ॥८०-९३॥

दाण्डकर्मिकम् ॥ ९४ ॥ कोशाभिसंहरणम् ॥ ९५ ॥ भृत्याभरणीयम् ॥ ९६ ॥ अनुजीविवृत्तम ॥ ९७ ॥ सामयाचारिकम् ॥ ९८ ॥ राज्यप्रतिसंधानमेकैश्वर्यम् ॥ ९९ ॥ इति योगवृत्तं पञ्चममधिकरणम् ॥ १०० ॥

पांचवें अधिकरण का नाम योगवृत्त है। राजा के आराधन के प्रकार या उपाय का योग कहते हैं, इसमें राजा के अपराधियों के दण्ड का विधान है। इसके पहले प्रकरण

में राजा और उसके राज्य के कण्टकों के दण्ड का प्रयोग है। दूसरे में कोश संग्रह, तीसरे में भृत्यों (नौकरों) के भरण पोषण की व्यवस्था, चौथे में मन्त्री आदि राज्य कर्मचारियों का आचार, पांचवें में राज्य शासन का पालन, छठे में राज्य के ऐश्वर्य की वृद्धि और आपत्ति के प्रतीकार का वर्णन है। इस तरह इस अधिकरण को समाप्त किया है ॥९४-१००॥

प्रकृतिसंपदः ॥ १०१ ॥ शमव्यायामिकम् ॥ १०२ ॥ इति मण्डलयोनिः षष्ठमधिकरणम् ॥ १०३ ॥

इसके अनन्तर मण्डलयोनि नामक अधिकरण है। राज्य के सभासदों को मण्डल कहते हैं। इनके गुणों का इस अधिकरण में वर्णन है। इसके प्रथम प्रकरण में अमात्य आदि प्रकृतियों के गुण तथा दूसरे में शान्ति और उद्योग का वर्णन है। इस तरह यह मण्डल योनि नाम का अधिकरण समाप्त होता है ॥१०१-१०३॥

षाड्गुण्यसमुद्देशः क्षयस्थान वृद्धिनिश्चयः ॥१०४॥ संश्रयवृत्तिः॥ १०५॥ समहीनज्यायसां गुणाभिनिवेशः हीनसंधयः॥ १०६ ॥ विगृह्यासनम् संधायासनम् विगृह्य यानम् संधाय यानम् संभूय प्रयाणम्॥ १०७॥ यातव्यामित्रयोरभिग्रहचिन्ता क्षयलोभविरागहेतवः प्रकृतीनां सामवायिकविपरिमर्शः॥ १०८॥ संहितप्रयाणिकम् परिपणितापरिपणितापसृताश्च संधयः ॥ १०९ ॥ द्वैधीभाविकाः संधिविक्रमाः ॥ ११० ॥ यातव्यवृत्तिः अनुग्राह्यमित्रविशेषाः ॥ १११ ॥ मित्रहिरण्यभूमिकर्म-संधयः ॥ ११२ ॥ पार्ष्णिग्राहचिन्ता ॥ ११३ ॥ हीनशक्तिपूरणम् ॥ ११४ ॥ बलवता विगृह्योपरोधहेतवः दण्डोपनतवृत्तम् ॥ ११५ ॥ दण्डोपनायिवृत्तम् ॥ ११६ ॥ संधिकर्म संधिमोक्षः ॥ ११७ ॥ मध्यमचरितम् उदासीन चरितम् मण्डलचरितम् ॥ ११८ ॥ इति षाड्गुण्यं सप्तममधिकरणम् ॥ ११९ ॥

सातवां अधिकरण षाड्गुण्य नामक है। सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधी भाव का इसमें वर्णन है, इससे इस अधिकरण का षाड्गुण्य नाम रखा है। इसके पहले प्रकरण में छः गुणों का उद्देश क्षय, स्थान और वृद्धि का निश्चय है। दूसरे में अन्य राजा का आश्रय, तीसरे में समहीन और अधिक बलशाली शत्रु के साथ व्यवहार, चौथे में आसन और यान का वर्णन, पांचवें में यान विषयक विचार, प्रकृति (अमात्य आदि) के क्षय, लोभ, और विराग के हेतु तथा विजेता अनुचरों का विवेचन है। छठे में एक साथ चढ़ाई और देश आदि के विचार की शर्त के साथ की जाने वाली सन्धियों का विवेचन है। सातवें में द्वैधीभाव-शत्रु की तोड़ फोड़ और सन्धि-विक्रम का वर्णन किया गया है।

आठवें में जिस पर चढ़ाई की जाने वाली है, उसके साथ व्यवहार तथा अनुग्रह के योग्य मित्रों के व्यवहार का उल्लेख है। नवें में मित्र, सुवर्ण, भूमि और दुर्ग आदि के विषय की सन्धि का वर्णन है। दशवें में अपने पृष्ठ स्थित शत्रु का वर्णन है। ग्यारहवें में हीन हुई शक्ति का पूर्ण करना, बारहवें में प्रबल शत्रु के साथ विरोध होने पर कर्तव्य, तेरहवें में विजित शत्रु के साथ व्यवहार, चौदहवें में सन्धि रखने तोड़ने का वर्णन है। पन्द्रहवें में मध्यम, उदासीन और अन्य राज मण्डल के साथ किये जाने वाले व्यवहार की विवेचना है। इस प्रकार यह सातवां अधिकरण समाप्त होता है ॥१०४-११६॥

प्रकृतिव्यसनवर्गः ॥ १२० ॥ राजराज्ययोर्व्यसनचिन्ता ॥ १२१ ॥ पुरुषव्यसनवर्गः पीडनवर्गः स्तम्भनवर्गः कोशसंगवर्गः ॥ १२२ ॥ बलव्यसनवर्गः मित्रव्यसनवर्गः ॥ १२३ ॥ इति व्यसनाधिकारिकमष्टममधिकरणम् ॥१२४ ॥

आठवें अधिकरण का नाम व्यसनाधिकारिक है। इसमें सब प्रकार के व्यसनों (संकटों) का वर्णन है। इसके प्रथम प्रकरण में प्रकृति (अमात्यादि) के व्यसन, दूसरे में राजा और राज्य विषयक चिन्ता, तीसरे में पुरुषों के व्यसन, पीडन वर्ग, (दैवी आदि आपत्ति) कर द्रव्य का राजा तक और कोश तक न पहुंचने देने का वर्णन है। चौथे में सेना के संकट, मित्रों के संकटों का विचार है। इस प्रकार इस अधिकरण की समाप्ति हो जाती है ॥१२०-१२४॥

शक्तिदेशकालबलाबलज्ञानम् यात्राकालाः ॥ १२५ ॥ बलोपादानकालाः संनाहगुणाः प्रतिबलकर्म ॥ १२६ ॥ पश्चात्कोपचिन्ता बाह्याभ्यन्तरप्रकृतिकोपप्रतीकारः ॥ १२७ ॥ क्षयव्ययलाभविपरिमर्शः ॥ १२८ ॥ बाह्याभ्यन्तराश्चापदः ॥ १२९ ॥ दूष्यशत्रुसंयुक्ता ॥ १३० ॥ अर्थानर्थसंशययुक्ताः तासामुपाय विकल्पजाः सिद्धयः ॥ १३२ ॥ इत्यभियास्यत्कर्म नवममधिकरणम् ॥ १३२ ॥

इसके अनन्तर अभियास्यत्कर्म नाम का नौवां अधिकरण है। दूसरे देश पर आक्रमण करने को अभियास्यत्कर्म कहते हैं। इसके पहिले प्रकरण में उत्साह आदि शक्ति देश काल आदि के बलाबल का विचार है। दूसरे में सेना की तय्यारी, उद्योग और शत्रु सेना के अनुकूल शक्ति प्राप्त करने के उपायों का वर्णन है। तीसरे में आक्रमण के अनन्तर पीछे रह जाने वाले शत्रुओं के कोप, तथा बाह्य और अन्तर प्रकृति (अमात्य) आदि के प्रतीकार का विवेचन है। चौथे में हानि, व्यय और लाभ का विचार है। पांचवें में बाहर भीतर की आपत्ति, छठे में अपने ही दूषित मनुष्य और शत्रु द्वारा उत्पन्न होने वाली आपत्तियों का विचार है। सातवें में हिरण्य भूमि शरीर के नाश की आपत्तियां

के प्रतीकार में साम आदि उपायों द्वारा होने वाली सिद्धियों का वर्णन है। इस तरह यह सातवां अधिकरण पूरा हुआ ॥१२५-१३२॥

स्कन्धावारनिवेशः ॥ १३३ ॥ स्कन्धावारप्रयाणम् ॥ १३४ ॥ बलव्यसनावस्कन्दकालरक्षणम् ॥ १३५ ॥ कूटयुद्धविकल्पाः ॥ १३६ ॥ स्वसैन्योत्साहनम् ॥ १३७ ॥ स्वबलान्यबलव्यायोगः ॥ १३८ ॥ युद्धभूमयः पत्त्यश्वरथहस्तिकर्माणि ॥ १३९ ॥ पक्षकक्षोरस्यानां बलाग्रतो व्यूहविभागः सारफाल्गुबलविभागः पत्त्यश्वरथहस्तियुद्धानि ॥ १४० ॥ दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहनम् तस्य प्रतिव्यूहस्थानम् ॥ १४१ ॥ इति सांग्रामिकं दशममधिकरणम् ॥ १४२ ॥

दशवें अधिकरण का नाम सांग्रामिक है। इसमें संग्राम का विषय है, इसके पहले प्रकरण में सिविर (छावनी) डालने के ढंग, दूसरे में सेना के सञ्चालन, और तीसरे में सेना को कष्टों से बचाने के उपायों तथा घेरा डालने के समय का वर्णन है। चौथे में कूट (छल) युद्ध का वर्णन, पांचवें में अपनी सेना को उत्साहित करने के ढंग, छठे में अपनी और शत्रु की सेना की व्यूह रचना का विवेचन है। सातवें में युद्ध भूमि और पैदल सैनिक, अश्व, रथ और हाथियों के कार्यों का विवेचन है। आठवें प्रकरण में पक्ष कक्ष आदि व्यूह (दुर्ग रचना) शक्तिशाली और शक्ति हीन सेना का विभाग, पैदल, हाथी रथ और अश्वों के युद्ध की प्रक्रिया का वर्णन है। नवें में दण्डादि व्यूह तथा इनके प्रतिपक्ष के व्यूहों का वर्णन है। इस तरह यह सांग्रामिक दशवां अधिकरण समाप्त होता है ॥१३३-१४२॥

भेदोपादानानि उपांशुदण्डः ॥ १४३ ॥ इति संघवृत्तमेकादशमधिकरणम् ॥ १४४ ॥

ग्यारहवें अधिकरण का नाम सङ्घवृत्त है। सेना की टुकड़ी बनाकर संगठित रहने को संघ कहा जाता है। इसी से इसका नाम संघवृत्त है। इसके पहले प्रकरण में संघ के टुकड़े करने तथा छुपकर मारने के उपायों का निरूपण किया है। इस तरह यह ग्यारहवां अधिकरण यहीं समाप्त हो जाता है ॥१४३-१४४॥

दूतकर्म ॥ १४५ ॥ मन्त्रयुद्धम् ॥ १४६ ॥ सेनामुख्यवधः मण्डलप्रोत्साहनम् ॥ १४७ ॥ शस्त्राग्निरसप्रणिधयः वीवधासार प्रसारवधः ॥ १४८ ॥ योगातिसंधानम्: दण्डातिसंधानम् एकविजयः ॥ १४९ ॥ इत्याबलीयसं द्वादशमधिकरणम् ॥ १५० ॥

इसके अनन्तर आवलीयस नामक बारहवां अधिकरण है। बलवान् शत्रु के आक्रमण करने को आवलीयस कहते हैं इसी आधार पर इस अधिकरण का यह नाम है। इसके पहले प्रकरण में दूत के कर्म, दूसरे में बुद्धि पूर्वक युद्ध, तीसरे में सेनापतियों के वध और अपने मित्र राजाओं के मण्डल प्रोत्साहन का वर्णन है। चौथे में शस्त्र, अग्नि, विष आदि के प्रयोग, धान्य आदि की प्राप्ति, मित्र सेना की सहायता तथा लकड़ी घास आदि के पहुंचाने के प्रकार का वर्णन है। पांचवें में शत्रु के कपट से जीतने के उपाय, दूसरे में सेनाओं के वश में करने तथा अकेले विजेता को किस ढंग से चलाना चाहिए इत्यादि बातों का वर्णन है। इस तरह यह बारहवां अधिकरण समाप्त होता है ॥१४५-१५०॥

उपजापः ॥ १५१ ॥ योगवामनम् ॥ १५२ ॥ अपसर्पप्रणिधिः ॥ १५३ ॥ पर्युपासनकर्म अवमर्दः ॥ १५४ ॥ लब्धप्रशमनम् ॥ १५५ ॥ इति दुर्गलम्भोपायस्त्रयोदशमधिकरणम् ॥ १५६ ॥

तेरहवें अधिकरण का नाम दुर्गलम्भोपाय है। शत्रु के दुर्गों (किलों) को कैसे हथियाया जावे-यही इस अधिकरण में वर्णित है। इसके प्रथम प्रकरण में फूट डालने के उपायों का उल्लेख है। दूसरे में कपट से शत्रु को दुर्ग से बाहर कर देना, तीसरे में, गुप्तचरों का शत्रु के देश में रखना, चौथे में घेरा डालने के अनन्तर के कर्तव्य, तथा शत्रु के दुर्ग पर अधिकार करने के समय का निरूपण है। पाचवें प्रकरण में जीते हुए देश में कैसे शान्ति स्थापन करे-इस विषय का विवेचन किया गया है। इस प्रकार यह तेरहवां दुर्ग लम्भोपाय नामक अधिकरण समाप्त होता है ॥१५१-१५६॥

परघातप्रयोगः ॥ १५७ ॥ प्रलम्भनम् ॥ १५८ ॥ स्वबलोपघातप्रतीकारः ॥ १५९ ॥ इत्यौपनिषदिकं चतुर्दशमधिकरणम् ॥ १६० ॥

चौदहवें अधिकरण का नाम औपनिषदिक अधिकरण है। इस अधिकरण में औषध और मन्त्रों के रहस्यों का वर्णन है। इसके प्रथम प्रकरण में औषध द्वारा शत्रु के प्रवञ्चन तथा तीसरे में शत्रु द्वारा किये गए मारण प्रयोगों के प्रतीकार का वर्णन है। इस प्रकार यह अधिकरण भी समाप्त हो जाता है ॥१५७-१६०॥

तन्त्रयुक्तयः ॥ १६१ ॥ इति तन्त्रयुक्तिः पञ्चदशमधिकरणम् ॥१६२॥

इसके अनन्तर पन्द्रहवां अधिकरण तन्त्र युक्ति नाम का है। तन्त्र नाम शास्त्र का है। इसमें अर्थशास्त्र के निर्णय की उपयोगी युक्तियों का विवेचन है। इसमें एक ही तन्त्र युक्ति नाम का प्रकरण है। इस तरह यह अधिकरण समाप्त होता है ॥१६१-१६२॥

शास्त्रसमुद्देशः पञ्चदशाधिकरणानि सपञ्चाशदध्यायशतं साशीति प्रकरणशतं षट् श्लोकसहस्राणीति ॥ १६३ ॥

इस प्रकार अर्थशास्त्र की संख्या का निर्णय किया जावे, तो इसमें पन्द्रह अधिकरण एकसौ पचास अध्याय, एकसौ अस्सी प्रकरण और छः सहस्र श्लोक हैं। अक्षरों की गणना से श्लोक संख्या का निर्णय किया है ॥१६३॥

सुखग्रहणविज्ञेयं तत्त्वार्थपदनिश्चितम्
कौटल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्तग्रन्थविस्तरम् ॥ १६४ ॥

यह अर्थशास्त्र बड़ा ही सरल और सुख से समझा जा सकता है। इसमें तत्व वस्तु के वर्णनों को नहीं छोड़ा गया है और न व्यर्थ का विस्तार ही किया गया है। इस अर्थ शास्त्र को कौटिल्य (चाणक्य) ने बना कर विद्वानों के अध्ययन के लिए प्रस्तुत किया है॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में राजवृत्तिनाम का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।



दूसरा अध्याय

पहला प्रकरण

विद्या-समुद्देश

आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः ॥ १ ॥ त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति मानवाः ॥ २ ॥ त्रयीविशेषो ह्यान्वीक्षकीति ॥ ३ ॥

(आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति ये चार विद्या हैं।) इनकी परिभाषा अभी आगे चलकर की गई है। (मनुजी के मत के मानने वाले, त्रयी, वार्ता और दण्ड नीति ये तीन ही विद्या मानते हैं। इन्होंने आन्वीक्षकी विद्या को त्रयी विद्या के अन्तर्गत माना है ॥१-३॥)

वार्ता दण्डनीतिश्चेति बार्हस्पत्याः ॥ ४ ॥ संवरणमात्रं हि त्रयीलोकयात्रा विद इति ॥ ५ ॥ दण्डनीतिरेका विद्येत्यौशनसाः ॥ ६ ॥ तस्यां हि सर्वविद्यारम्भाः प्रतिबद्धा इति ॥ ७ ॥

(बृहस्पति आचार्य के मत में वार्ता और दण्ड नीति दो ही विद्या है। ये आचार्य चार्वाक मतानुयायी हैं) लोक मात्र की यात्रा के मानने वाले लौकायतिक त्रयी (वेद) विद्या को केवल आडम्बर मानते हैं। (शुक्राचार्य के अनुगामी केवल दण्ड नीति को ही विद्या मानते हैं) इन्होंने उपर्युक्त चारों विद्याओं का केवल दण्डनीति में ही अन्तर्भाव कर लिया है। राज्य व्यवस्था के शान्ति से चलने पर ही सारी विद्याओं के व्यवहार की सिद्धि है, इसी से केवल दण्ड नीति विद्या है ऐसा माना है ॥४-७॥

चतस्र एव विद्या इति कौटल्यः ॥ ८ ॥ ताभिर्धर्मार्थौ यद्विद्यात्तद्विद्यानां विद्यात्वम् ॥ ९ ॥ सांख्यं योगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षकी ॥ १० ॥

आचार्य चाणक्य तो पूर्वोक्त आन्वीक्षकी आदि चारों विद्याओं को मानते हैं। जिससे धर्म और अधर्म का ज्ञान हो उसे विद्या कहते हैं। इन चारों विद्याओं के बिना लोक और परलोक की उन्नति के साधनों का ज्ञान नहीं हो सकता है, इसी से चार ही विद्या मानना उचित है। सांख्य अर्थात् सारे दर्शन शास्त्र, योग अर्थात् उपासना शास्त्र और लोकायत अर्थात् नास्तिक दर्शन ये सब आन्वीक्षकी विद्या के अन्तर्गत हैं॥८-१०॥

धर्माधर्मौ त्रय्यामर्थानर्थौ वार्तायां नयापनयौ दण्डनीत्याम् ॥ ११ ॥

त्रयीविद्या-वेदविद्या को कहते हैं, इसमें धर्म अधर्म की व्यवस्था है। वार्ता में कृषि आदि का कथन है। इसमें धन और धनाभाव के साधनों की चर्चा है। दण्ड नीति में राजनीति और दुर्नीति का वर्णन है॥११॥

बलाबले चैतासां हेतुभिरन्वीक्षमाणा लोकस्योपकरोतिव्यसनेऽभ्युदये च बुद्धिमवस्थापयति प्रज्ञावाक्यक्रियावैशारद्यं च करोति ॥ १२ ॥

इन विद्याओं की सार्थक निरर्थकता की हेतु वादों से सिद्धि करके संसार का उपकार करना, विपत्ति और सम्पत्ति में बुद्धि को ठीक २ रखना, बुद्धिमत्ता, वाक्चातुरी क्रिया कुशलता आदि सम्पादन करना आन्वीक्षकी विद्या का कार्य है।

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम् ।
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षकी मता ॥ १२ ॥

यह आन्वीक्षकी (विज्ञान शास्त्र) विद्या, सब विद्याओं की दीपक, सब कार्यों की साधन और सब धर्मों की सर्वदा आश्रय भूत मानी जाती है॥१२॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथमनधिकरण में दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।

तीसरा अध्याय

त्रयी स्थापना

सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी ॥ १ ॥ अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः॥ २ ॥ शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोविचितिर्ज्योतिषमिति चाङ्गानि ॥ ३ ॥

साम, ऋक् और यजुर्वेद इन तीन वेदों को त्रयी विद्या कहते हैं। अथर्ववेद और इतिहासवेद की वेदसंज्ञा है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त छन्दशास्त्र और ज्योतिष ये वेद के अङ्ग हैं। वेद के उच्चारण की प्रक्रिया को शिक्षा कहते हैं। इसके रचने वाले पाणिनी आदि मुनि हैं। वैदिक यज्ञ याग की विधि के बताने वाले ग्रन्थ कल्प कहाते हैं, जिनके रचयिता कात्यायन आदि हैं, वैदिक कोष की निरुक्ति करने वाले निरुक्त ग्रन्थ के कर्ता यास्कमुनि थे। छन्दशास्त्र के पिङ्गल और ज्योतिष के भास्कराचार्य आदि हैं ॥१-३॥

एष त्रयीधर्मश्चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां च स्वधर्मस्थापनादौपकारिकः ॥ ४ ॥ स्वधर्मो ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति ॥५॥ क्षत्रियस्याध्ययनं यजनं दानं शस्त्राजीवो भूतरक्षणं च ॥ ६ ॥ वैश्यस्याध्ययनं यजनं दानं कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च ॥ ७ ॥ शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा वार्ता कारुकुशीलवकर्म च ॥ ८ ॥

यह वेदत्रयी का धर्म चारों वर्ण और आश्रमों को अपने २ धर्म की व्यवस्था बतलाने के उपयोगी है। ब्राह्मण का अपना धर्म अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान देना और लेना है। क्षत्रिय का धर्म अध्ययन, यजन, दान, शस्त्र से जीविका करना और प्रजा की रक्षा करना है। वैश्य का धर्म अध्ययन, यजन, दान, कृषि, पशु पालन और वाणिज्य है। शूद्र का द्विजाति सेवा, कृषि पशु पालन आदि, तथा शिल्प और नट भाट का कार्य है ॥४-८॥

गृहस्थस्य स्वकर्माजीवस्तुल्यैरसमानर्षिभिर्वैवाह्यमृतुगामित्वं देवपित्रतिथिभृत्येषु त्यागः शेषभोजनं च ॥ ९ ॥ ब्रह्मचारिणः स्वाध्यायोऽग्निकार्याभिषेकौ भैक्षव्रतत्वमाचार्ये प्राणान्तिकी वृत्तिस्तदभावे गुरुपुत्रे सब्रह्मचारिणि वा ॥१०॥ वानप्रस्थस्य ब्रह्मचर्यं भूमौ शय्या जटाजिनधारणमग्निहोत्राभिषेकौ देवतापित्रतिथिपूजा वन्यश्चाहारः ॥ ११ ॥ परिव्राजकस्य संयतेन्द्रियत्वमनारम्भो निष्किंचनत्वं सङ्गत्यागोभैक्ष मनेकत्रारण्ये वासो बाह्यमाभ्यन्तरं च शौचम् ॥ १२ ॥ सर्वेषामहिंसा सत्यं शौचमनसूयानृशंस्यं क्षमा च ॥ १३ ॥

गृहस्थ का कार्य अपने २ धर्मके अनुसार जीविका करना, तुल्य तथा भिन्नगोत्र वाले ऋषि सन्तानों के साथ विवाह सम्बन्ध की स्थापना, तथा ऋतुकाल में स्त्री के साथ संगम करना, देव, पितृ, अतिथि और भृत्यों को देकर पीछे भोजन करना कर्तव्य है। स्वाध्याय हवन, स्नान, भिक्षावृत्ति, नैष्ठिक ब्रह्मचारी का आचार्य के पास आजीवन निवास, गुरु के न रहने पर गुरुपुत्र या साथी ब्रह्मचारी के पास रहना ब्रह्मचारी का कर्तव्य है। वानप्रस्थ का कर्तव्य ब्रह्मचर्य, भूमि में शयन, जटा और मृगचर्म धारण, अग्निहोत्र, स्नान, देवपितर और

अतिथि पूजा तथा वन के अन्न का आहार है। इन्द्रियों को जीतना, किसी कर्म के फल में वासना न रखना, संग्रह न करना, स्त्री संग का त्याग, भिक्षा, अनेक स्थानों या वन में निवास और शरीर तथा मन की शुद्धि ये सन्यासी के कर्तव्य हैं। सन्यासी को किसी की हिंसा नहीं करनी चाहिए। सत्य शौच, ईर्ष्या, द्वेष और नीच विचार का त्याग तथा क्षमा करना चाहिए ॥६-१३॥

स्वधर्मः स्वर्गायानन्त्याय च ॥ १४ ॥ तस्यातिक्रमे लोकः संकरादुच्छिद्येत ॥ १५ ॥

अपने २ धर्म का पालन स्वर्ग और मोक्ष के लिए होता है। यदि कर्मों का लोप किया गया-तो वर्णसंकरता होकर संसार में उथल, पुथल मच जावेगी ॥१४-१५॥

तस्मात्स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत् ।
स्वधर्मं संदधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति ॥ १६ ॥

प्रत्येक मनुष्य को अपना कर्तव्य निभाना चाहिए, इससे राजा को प्रत्येक मनुष्य के धर्म निभाने की स्वतन्त्रता देनी चाहिए । राजा कभी वर्ण संकरता न होने दे। जो अपने कर्तव्य कर्म का निर्वाह करता है वह इस लोक और परलोक में सुखी होता है ॥१६॥

व्यवस्थितार्यमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितिः ।
त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति ॥ १७ ॥

राजा द्वारा जब मर्यादा की स्थापना करदी गई और वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था करदी-तो इस प्रकार वैदिक धर्म द्वारा सुरक्षित होकर जगत् प्रसन्न रहता है, कभी पीड़ित नहीं होता ॥१७॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में त्रयी स्थापन का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

चौथा अध्याय

वार्ता और दण्डनीति की स्थापना

कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्त्ता ॥ १ ॥ धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टिप्रदानादौपकारिकी ॥२॥ तया स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम् ॥३॥

कृषि, पशु पालन और व्यापार ये वार्ता कहाते हैं। धान्य, पशु, सुवर्ण, ताम्रादि अन्य धातु तथा सेवकों की प्राप्ति कराने के कारण वार्ता संसार का बड़ा उपकार करने वाली है। राजा भी इस वार्ता विद्या से उपार्जन किये हुए धन से कर आदि के द्वारा कोश

भरता है या दण्ड (जुर्माना) देने में समर्थ होता है। इस तरह राजा अपने और शत्रु पक्ष के लोगों के वश में रखने में समर्थ हो सकता है ॥१-३॥

आन्वीक्षकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः ॥ ४ ॥ तस्य नीतिर्दण्ड नीतिः ॥ ५ ॥ अलब्धलाभार्था लब्धपरिरक्षणी रक्षितविवर्धनी वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च ॥ ६ ॥

आन्वीक्षकी, (न्याय विद्या) त्रयी (वेद विद्या) और वार्ता (व्यापार) इनके सुचारु रूप में सञ्चालन करने में दण्ड ही समर्थ है। दण्ड देने की विधि को दण्डनीति कहा गया है। यह दण्डनीति ही-नहीं प्राप्त हुए धन को प्राप्त कराने वाली, प्राप्त हुए धन की रक्षा कराने में तत्पर और रक्षित के बढ़ाने वाली तथा बढ़ी हुई को वृद्ध पूज्यों की सेवा में व्यय कराने में समर्थ है ॥४-६॥

तस्यामायत्ता लोकयात्रा ॥ ७ तस्माल्लोकयात्रार्थी नित्यमुद्यतदण्डः स्यात् ॥८॥ न ह्येवंविधं वशोपनयनमस्ति भूतानां यथा दण्ड इत्याचार्यः ॥ ६ ॥

इस दण्डनीति के अधीन ही सारी संसार यात्रा है। अतः जो राजा अपनी उत्तम लोकयात्रा चलाना चाहे-उसे कभी अपनी दण्डनीति शिथिल नहीं करनी चाहिए। लोक में कोई ऐसी उत्तम वस्तु वश में करने वाली नहीं है जैसी यह दण्डनीति है। ऐसा विद्वानों का मत है ॥७-९॥

नेति कौटल्यः ॥ १० ॥ तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः ॥ ११ ॥ मृदुदण्डः परिभूयते ॥ १२ ॥ यथार्हदण्डः पूज्यः ॥ १३ ॥ सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति ॥ १४ ॥

चाणक्य का मत इसके विरुद्ध है। वह कहते हैं, कि तीक्ष्ण दण्ड देने से प्रजा उखड़ जाती है। जो राजा थोड़ा या नर्म दण्ड देता है लोग उसका तिरस्कार करने लग जाते हैं। इससे राजा को उचित है, कि वह ठीक २ दण्ड का प्रयोग करे। यदि समझ बूझ कर दण्ड का प्रयोग किया जावेगा तो वह प्रजा को धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि प्रदान करता है ॥१०-१४॥

दुष्प्रणीतः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वानप्रस्थपरिव्राजकानपि कोपयति किमङ्ग पुनर्गृहस्थान् ॥ १५ ॥ अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति ॥ १६ ॥

काम क्रोध (राग द्वेष) और अज्ञान से दण्ड का व्यवहार करना, वानप्रस्थ और परिव्राजकों को भी कुपित कर देता है। यदि दण्ड का उत्तम प्रयोग नहीं होगा-तो छोटी मछली को जैसे बड़ी मछली खा जाती है उसी तरह बलवान् मनुष्य निर्बल को खा डालेगा ॥१५-१६॥

बलीयानवलं हि ग्रसते . दण्डधराभावे ॥ १७ ॥ तेन गुप्तः प्रभवतीति ॥ १८ ॥

जब संसार में उचित दण्ड देने वाला राजा नहीं होगा, तो बलवान् दुर्बल को खा जाता है। दण्ड के द्वारा सुरक्षित हुए दुर्बल पुरुष भी शक्तिशाली होते हैं ॥१७-१८॥

चतुर्वर्णाश्रमो लोको राज्ञा दण्डेन पालितः ।
स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेषु वर्त्मसु ॥ १९ ॥

दण्ड द्वारा राजा से सुरक्षित हुए चारों वर्ण और आश्रम, अपने २ धर्म और कर्म में लगे रहते हैं तथा अपने २ मार्ग पर चलते हैं ॥१९॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवा अध्याय

प्रकरण २

वृद्ध संयोग

तस्माद्दण्डमूलास्तिस्रो विद्याः ॥ १ ॥ विनयमूलो दण्डः प्राणभृतां योगक्षेमावहः ॥ २ ॥ कृतकः स्वाभाविकश्च विनयः ॥ ३ ॥

आन्वीक्षकी त्रयी (वेदविद्या) और वार्ता ये तीनों विद्या-दण्ड के अधीन ही मानी गई हैं। विनय (ढंग) के अनुसार दण्ड प्रयोग मनुष्यों के कल्याण के लिए होता है। विनय वनावटी और स्वाभाविक भेद से दो प्रकार का होता है ॥ १-३ ॥

क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम् ॥४॥ शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिविष्टबुद्धिं विद्या विनयति नेतरम् ॥ ५ ॥

कोई भी क्रिया की जावे, वह तदनुकूल व्यक्ति को उसके योग्य बना सकती है, पर जिसमें योग्यता ही नहीं उस पर कितना ही परिश्रम किया जावे वह अद्रव्य (अयोग्य या अपात्र) कभी भी उस शिक्षा के ग्रहण करने में समर्थ नहीं हो सकता है। शुश्रूषा (शास्त्र सुनने की इच्छा) फिर शान्ति से सुन लेना, उसका ग्रहण करना, ग्रहण के अनन्तर उसका धारण, उस पर ऊहापोह (तर्कवितर्क) करना तथा तत्व का पूर्ण रीति से ज्ञान इन गुणों से सम्पन्न शिष्य को ही विद्या कुछ ढंग में ला सकती है। अन्य उद्दण्ड विद्यार्थी को विद्या कोई लाभ नहीं पहुंचा सकती। ॥ ४-५ ॥

विद्यानां तु यथास्वमाचार्यप्रामाण्याद्विनयो नियमश्च ॥ ६ ॥ वृत्तचौलकर्मा लिपिं संख्यानं चोपयुञ्जीत ॥ ७ ॥ वृत्तोपनयनस्त्रयीमान्वीक्षकीं च शिष्टेभ्यो वार्तामध्यक्षेभ्यो दण्डनीतिं वक्तृप्रयोक्तृभ्यः ॥ ८ ॥

भिन्न २ विद्याओं का उनके आचार्यों की आज्ञानुसार ही शिक्षण और उसके नियमों का निश्चय होता है। अर्थात् आचार्य जिस विद्या को जैसे पढ़ावे और पढ़ने के जो नियम बनावे-उसी पर छात्र को चलना उचित है। जब बालक का मुण्डन संस्कार हो चुके-तब उसे अक्षराभ्यास और गिनती सिखानी चाहिए। इसके अनन्तर यज्ञोपवीत संस्कार करावे और फिर वेद विद्या, आन्वीक्षिकी विद्याको उच्चकोटि के विद्वान्, वार्ता (कृषि आदि) को उनके अध्यक्ष (राजकर्मचारी) तथा दण्डनीति को प्रयोक्ता राजनियम (कानून) के चलाने वाले जज या मजिस्ट्रेट तथा वक्ता (वकील) आदि से सीखे॥ ६-८॥

ब्रह्मचर्यं चाषोडशाद्वर्षात् ॥ ९ ॥ अतो गोदानं दारकर्मचास्य ॥ १० ॥ नित्यश्च विद्या वृद्धसंयोगो विनयवद्धयर्थं तन्मूलत्वाद्विनयस्य ॥ ११ ॥

कम से कम सोलह वर्ष तक विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का पालन करे। फिर समावर्तन और केशान्तसंस्कार कराके विवाह कराले। इसके अनन्तर मनुष्य, नित्य विद्या में वृद्ध पुरुषों की संगति करे, क्योंकि किसी विद्या की प्राप्ति मेंउसके अनुभवी विद्वानों का सहवास बहुत ही उपयोगी है॥ ९-११॥

पूर्वमहर्भागं हस्त्यश्वरथप्रहरणविद्यासु विनयं गच्छेत् ॥ १२ ॥ पश्चिममितिहास श्रवणे ॥ १३ ॥ पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः ॥ १४ ॥

विद्यार्थी दिन के पूर्व भाग में हाथी, अश्व, रथ और शस्त्र चलाने की विद्या का अभ्यास करे। दिन के पिछले भाग को इतिहास आदि के श्रवण में बितावे। पुराने समाचार, आख्यायिका (कहानी) उदाहरण धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि शास्त्रों को इतिहास के ही अन्तर्गत समझना चाहिये। १२-१४॥

शेषमहोरात्रभागमपूर्वग्रहणं गृहीतपरिचयं च कुर्यात् ॥१५॥ अगृहीतानामाभीक्ष्ण्यश्रवणं च ॥१६॥ श्रुताद्धि प्रज्ञोपजायते प्रज्ञया योगो योगोदात्मवत्तेति विद्यासामर्थ्यम् ॥१७॥

यदि फिर भी दिन का कोई भाग सायंकाल में बचा रहे और सोने से पूर्व रात का भाग शेष है ही-इस अहोरात्र में नवीन विषय की शिक्षा और सीखे हुए को दुहरा लेवे। जिस पदार्थ को विद्यार्थी समझ न सका हो-उसे बार २ समझने की चेष्टा करे। जब मनुष्य सुनेगा-तो उसे तद्विषयक ज्ञान होगा। ज्ञान से उस कर्म के करने में कुशलता, कर्म की कुशलता से ही कार्य के करने की अपने में शक्ति का विश्वास होता है। यही विद्या की शक्ति मानी गई है। १५-१७॥

विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः ।
अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते सर्वभूतहिते रतः ॥१८॥

विद्या से समन्वित राजा ही प्रजा को सुशिक्षित बना सकता है। जो राजा अपनी प्रजा के हित में तत्पर है, वही शत्रु रहित इस पृथिवी का आनन्द से भोग करता है। १८॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत विनाधिकारिक नामक प्रथम अधिकरण में वृद्ध संयोग नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

छठा अध्याय

तीसरा प्रकरण

इन्द्रियजय । (काम आदि छः शत्रुओं का त्याग)

विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः कामक्रोधलोभमानमदहर्षत्यागात्कार्यः ॥१॥ कर्णत्वगक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजयः ॥ २ ॥

इन्द्रियों का जीतना ही विद्या और विनय का हेतु होता है। काम, क्रोध, लोभ, मान मद और हर्ष आदि वृत्तियों के त्याग करने से ही इसकी सिद्धि होती है॥ १-२॥

शास्त्रार्थानुष्ठानं वा ॥ ३ ॥ कृत्स्नं हि शास्त्रमिदमिन्द्रियजयः ॥ ४ ॥ तद्विरुद्धवृत्तिरवश्येन्द्रियश्चातुरन्तोऽपि राजा सद्यो विनश्यति ॥ ५ ॥

शास्त्रानुसार कर्मों के अनुष्ठान से भी इन्द्रियों का विजय होता है। सारे शास्त्र इन्द्रियविजयका ही उपदेश देते हैं। यदि राजा शास्त्र के विरुद्ध चल पड़ा और काम क्रोधादि के वश में हो गयातो वह चारों समुद्र पर्यन्त फैली हुई पृथिवी का शासक होने पर भी एक दिन अवश्य नष्ट हो जावेगा॥॥ ३-५॥

यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद्ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबन्धुराष्ट्रो विननाश ॥ ६ ॥ करालश्च वैदेहः ॥ ७ ॥ कोपाज्जनमेजयो ब्राह्मणेषु विक्रान्तस्तालजङ्घश्च भृगुषु ॥ ८ ॥

भोजवंशोद्भव राजा दाण्डक्य काम के वश में होकर ब्राह्मण कन्या के वश में पड़ गया और वह शीघ्र ही बन्धु बान्धवों के सहित मारा गया। विदेह देश के अधिपति कराल नामक राजा की भी यही दशा हुई। राजा जनमेजय ने ब्राह्मणों पर और तालजङ्घ ने भृगुवंश ब्राह्मणों पर क्रोध किया, जिसके कारण उनका शीघ्र नाशहो गया।६-८।

लोभादैलश्चातुर्वर्ण्यमत्याहारयमाणः सौवीरश्चाजबिन्दुः॥ ९ ॥मानाद्रावणः परदारानप्रयच्छन् ॥ १० ॥ दुर्योधनो राज्यादंशं च ॥ ११ ॥

इलाके पुत्र पुरूरवा ने चारों वर्णों से लोभ पूर्वक धन खींचना आरम्भ किया और सौवीर (गुजरात के स्वामी) राजा अजविन्दु ने भी ऐसा ही किया ये दोनों शीघ्र ही नष्ट हो गए। अभिमान में चूर हुए रावण ने राम की भार्या सीता को नहीं लौटाया और राजा दुर्योधन ने पाण्डवों को उनके राज्य का अंश प्रदान नहीं किया, जिससे शीघ्र ही दोनों का विनाश हुआ ॥ ६-११ ॥

मदाड्डम्भोद्भवो भूतावमानी हैहयश्चार्जुनः ॥ १२ ॥ हर्षाद्वातापिरगस्त्यमत्यासादयन्वृष्णिसङ्घश्च द्वैपायनमिति ॥ १३ ॥

मद से राजा डम्भोद्भव मारा गया। इसने मद में चूर होकर प्रजा का तिरस्कार किया और यह नर नारायण से युद्ध करके वदरिकाश्रम में मारा गया-यह कथा महाभारत की है। हैहय वंशोद्भव सहस्रबाहु या कार्तवीर्यार्जुन ने भी मदोन्मत्त होकर जमदग्नि का का अपमान किया, जिसके कारण उसकी परशुराम के हाथ से मृत्यु हुई। वातापि असुर ने हर्षोद्रेक से अगस्त्य ऋषि के साथ और यादवों ने वेदव्यास के साथ छल या उपहास किया, जिससे शीघ्र ही उनका नाश हुआ। यह कथा भी महाभारत की है ॥ १२-१३ ॥

एते चान्ये च बहवः शत्रुषड्वर्गमाश्रिताः ।
सबन्धुराष्ट्रा राजानो विनेशुरजितेन्द्रियाः ॥ १४ ॥

उपर्युक्त राजा तथा अन्य बहुत से राजा अजितेन्द्रिय काम क्रोध आदि षड्वर्ग संज्ञक शत्रुओं के पंजे में फंस कर बन्धु बान्धवों के सहित नष्ट हो चुके हैं ॥ १४ ॥

शत्रुषड्वर्गमुत्सृज्य जामदग्न्यो जितेन्द्रियः ।
अम्बरीषश्च नाभागो बुभुजाते चिरं महीम् ॥ १५ ॥

इति विनयाधिकारके प्रथमेऽधिकरणे इन्द्रियजये अरिषड्वर्ग त्यागः षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इन कामादि षड्वर्ग से बचकर जितेन्द्रिय जमदग्नि पुत्र परशुराम, नाभाग और अम्बरीष ने चिरकाल तक पृथिवी का उपभोग किया॥ १५ ॥

इतिश्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में कामादि शत्रुओं के विजय का सातवां अध्याय समाप्त हुआ।

सातवां अध्याय

(राजर्षिका व्यवहार)

तस्मादरिषड्वर्गत्यागेनेन्द्रियजयं कुर्वीत । १ ॥ वृद्धसंयोगेन प्रज्ञां चारेण चक्षुरुत्थानेन योगक्षेमसाधनं कार्यानुशासनेन स्वधर्मस्थापनं विनयं विद्योपदेशेन लोकप्रियत्वमर्थसंयोगेन हितेन वृत्तिम् ॥ २ ॥

इन सब बातों को विचार कर राजा को कामादि षड्वर्ग का विजय करके इन्द्रियजय करना चाहिए। राजा को विद्या वृद्धों के सहवास से बुद्धि, गुप्तचरों के चक्षु उद्योग से योगक्षेम (कल्याण) के साधनों की प्राप्ति, अपने २ कार्य में प्रजा को लगाकर उनके धर्मों में उनकी स्थिति, विद्या के प्रचार से शिक्षा तथा उचित दान-उपहार आदि देकर प्रजा की प्रियता एवं हितकारी कार्यों द्वारा अपने व्यवहार को चलाते रहना चाहिए ॥ १-२ ॥

एवं वश्येन्द्रियः परस्त्रीद्रव्यहिंसाश्च वर्जयेत् ॥ ३ ॥ स्वप्नंलौल्यमनृतमुद्धतवेषत्वमनर्थसंयोगं च ॥ ४ ॥ अधर्मसंयुक्तं चानर्थसंयुक्तं च व्यवहारम् ॥ ५ ॥

इसप्रकार जितेन्द्रिय होकर राजा परायी स्त्री, पर धन और व्यर्थ हिंसा से बचा रहे। अधिक शयन, लालच, मिथ्याव्यवहार, उद्धतवेष तथा अनर्थ के अन्य कार्यों का राजा को परित्यागकर देना चाहिए। राजा को अधर्म पूर्ण और अनर्थ उत्पादन करने वाले व्यवहार के पास भी नहीं जाना उचित है ॥ ३-५ ॥

धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत ॥ ६ ॥ न निःसुखः स्यात् ॥ ७ ॥ समं वा त्रिवर्गमन्योन्य नुबन्धम् ॥ ८ ॥ एको ह्यत्यासेवितो धर्मार्थकामानामात्मानमितरौ च पीडयति ॥ ९ ॥

धर्म और नीति के अनुसार ही काम का सेवन करे। सुखको छोड़ कर गँवारपने से भी राजा को नहीं रहना चाहिए। एक दूसरे से बँधे हुए अर्थ, धर्म और काम का समय२ पर अवश्य सेवन करे। यदि अज्ञान से इन तीनों में से एक का भी अनुचित सेवन कर लिया तो वह राजा अपना तथा धर्म आदि में से किसी अन्य एक का नाश कर लेता है ॥ ६-९ ॥

अर्थ एवप्रधान इति कौटल्यः ॥ १० ॥ अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति ॥ ११ ॥

कौटल्याचार्य का तो मत ही यह है, कि संसार में धन ही मुख्य वस्तु है। धन के अधीन ही धर्म और काम है ॥ १०-११ ॥

मर्यादां स्थापयेदाचार्यानमात्यान्वा ॥ १२ ॥ य एनमपायस्थानेभ्यो वारयेयुः ॥ १३ ॥ छायानालिकाप्रतोदेन वा रहसि प्रमाद्यन्तमभितुदेयुः ॥ १४ ॥

राजा सब ही मर्यादा तथा आचार्य और अमात्य की उचित रीति से स्थापना करे। ये आचार्य अमात्य आदि ही राजा को विपत्ति से बचाते हैं। ये ही लोग समय विभाग की चाबुक से एकान्त रनिवास आदि में प्रमाद पूर्वक समय बिताते हुए राजा को सचेत करते हैं। ॥ १२-१४ ॥

सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते ।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ॥ १५ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे इन्द्रियजये राजर्षिवृत्तं सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
इन्द्रियजयः समाप्तः ।

राज्य का रथ अकेले राजा के एक पहिए से नहीं चला करता। इसको अमात्यादि रूपी दूसरे चक्र की आवश्यकता है। यह सब बात सोच कर राजा को सचिव अवश्य रखने चाहिए और उनकी सम्मति का ध्यान रखना योग्य है ॥ १५ ॥

इति श्री कौटलीयार्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में राजाओं के व्यवहार का सातवां अध्याय समाप्त हुआ।



आठवां अध्याय

चौथा प्रकरण

अमात्यों की नियुक्ति

सहाध्यायिनोऽमात्यान्कुर्वीत दृष्टशौचसामर्थ्यत्वादिति भारद्वाजः ॥ १ ॥ ते ह्यस्य विश्वास्या भवन्तीति ॥ २ ॥

भरद्वाज मुनि का मत है कि राजा अपने साथ पढ़ने वालों में से अमात्य बनावें, क्योंकि वह उसको अपने अध्ययन काल में अच्छी तरह देख लेता है। अध्ययन काल के मित्र पर विश्वास करना उचित ही है। ॥१-२॥

नेति विशालाक्षः ॥ ३ ॥ सहक्रीडितत्वात्परिभवन्त्येनम् ॥ ४ ॥ ये ह्यस्य गुह्यसधर्माणस्तानमात्यान्कुर्वीत समानशीलव्यसनत्वात् ॥ ५ ॥ ते ह्यस्य मर्मज्ञत्व-भयान्नापराध्यन्तीति ॥ ६ ॥ साधारण एष दोष इति पराशरः ॥ ७ ॥ तेषामपि मर्मज्ञत्वभयात्कृताकृतान्यनुवर्तेत ॥ ८ ॥

विशालाक्ष विद्वान् इस मत को ठीक नहीं बताता है। उसकी युक्ति यही है, कि साथी मित्र-राजा की आज्ञा की अवहेलना कर जाता है। जो राजा की इच्छा के अनुकूल हों उनको ही अमात्य बनावें, चाहे-वे साथ पढ़े या न पढ़े हों। समान गुणधारी व्यक्ति ही राजा का विपत्ति में साथ दे सकते हैं। वे ही राजा के मर्म (आन्तरिक इच्छा) के जानने और राजा से भय मानने वाले होते हैं। इससे वे राजा के विरुद्ध होकर राजा का कुछ अपराध नहीं करते । पराशर मुनि का मत है, कि विशालाक्ष की यह युक्ति ठीक नहीं है, क्योंकि राजा भी अपने इन अमात्यों के मर्मज्ञ होने से भयभीत रहेगा, इससे अमात्य लोग, जो कुछ करेंगे-राजा को उनका अनुसरण करना पड़ेगा ॥३-८॥

यावद्भ्यो गुह्यमाचष्टे जनेभ्यः पुरुषाधिपः ।
अवशः कर्मणा तेन वश्यो भवति तावताम् ॥ ९ ॥

शास्त्रों में कहा है कि—

राजा जितना गुप्त रहस्य अपने अमात्य आदि पुरुषों से कह देता है-उन रहस्यों के कारण बलात् वह अपने अमात्यादि के अधीन हो जाता है ॥९॥

य एनमापत्सु प्राणाबाधयुक्तास्त्वनुगृह्णीयुस्तानमात्यान्कुर्वीत ॥ १० ॥ दृष्टानुरागत्वादिति ॥ ११ ॥

इस कारण पराशर का मत है, कि जिसने राजा की प्राण संकट के समय विपत्ति में सहायता की है उनको ही राजा को अपना अमात्य बनाना चाहिए, क्योंकि वे अपनी भक्ति का परिचय दे चुके ॥१०-११॥

नेति पिशुनः ॥ १२ ॥ भक्तिरेषा न बुद्धिगुणः ॥ १३ ॥ संख्यातार्थेषु कर्मसु नियुक्ता ये यथादिष्टमर्थं सविशेषं वा कुर्युस्तान मात्यान्कुर्वीत ॥ १४ ॥ दृष्टगुणत्वादिति ॥ १५ ॥

पिशुन (नारदमुनि) इस मत को भी नहीं मानते-उनका अभिप्राय है, कि प्राणों पर खेलकर राजा की रक्षा करना स्वामि भक्ति है। जिसमें भक्ति की उद्रेकता होगी साधारण बुद्धि वाला भी इस समय राजा के प्राणों की रक्षा कर देगा, परन्तु यह कार्य बुद्धि की विलक्षणता पर अवलम्बित नहीं है। और अमात्य आदि राज्याधिकारी बुद्धिमान् होने चाहिए जो बनाये हुए अपने कर्तव्य को ज्यों का त्यों या कुछ बढ़ा कर पूरा करदे, क्योंकि अमात्य तो वही उत्तम है जिसको अपने कर्तव्य का पूर्ण अनुभव हो ॥१२-१५॥

नेति कौणपदन्तः ॥ १६ ॥ अन्यैरमात्यगुणैरयुक्ता ह्येते ॥ १७ ॥ पितृ-पैतामहानमात्यान्कुर्वीत ॥ १८ दृष्टापदानत्वात् ॥ १९ ॥

आचार्य कौणपदन्त नारद जी के इस पक्ष को भी नहीं मानते। उनका मत है, कि जिस कार्य पर लगाने पर उसे उत्तम रीति से कर देने पर भी अन्य विषयों का ज्ञान होना आवश्यक है। सम्भव है। कि एक विषय में कुशल पुरुष, दूसरे विषयों में अनुभवी न हो। इससे पिता-पितामह आदि अनुक्रम से आने वाले पुरुषों को ही अमात्य बनावे। वे ही अपने पिता आदि से सारे अनुभवों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं ॥१६-१६॥

ते ह्येनमपचरन्तमपि न त्यजन्ति सगन्धत्वात् ॥ ॥ २० ॥ अमानुपेष्वपि चैतद्दृश्यते ॥ २१ ॥ गावो ह्यसगन्धं गोगणमतिक्रम्य सगन्धेष्वेवावतिष्ठन्त इति ॥ २२ ॥

कुल क्रमागत आने वाले अमात्य-अपने राजा को दूषित कर्म (अपराध) करने पर भी नहीं छोड़ते हैं, क्योंकि उनका भी राजा के स्वार्थ में ही स्वार्थ रहता है। मनुष्यों के अतिरिक्त पशुओं में भी अपने सहचर परिचितों के साथ उपर्युक्त व्यवहार देखा जाता है। गायें-अपने साथ में नहीं रहने वाले-गो समूह को छोड़कर अपने साथी गो समूह में ही स्थित होती हैं ॥२०-२२॥

नेति वातव्याधिः ॥ २३ ॥ ते ह्यस्य सर्वमपगृह्य स्वामिवत्प्रचरन्तीति ॥ २४ ॥ तस्मान्नीतिविदो नवानमात्यान्कुर्वीत ॥ २५ ॥ नवास्तु यमस्थाने दण्डधरं मन्यमाना नापराध्यन्तीति ॥ २६ ॥

आचार्य वातव्याधि इस बात को भी नहीं मानते। ये अमात्य, राजा के सब कुछ पर अधिकार करके अपना समक्ष बैठते हैं। इन सब बातों को सोचकर राजा को नवीन २ नीति के जानने वाले अमात्य बनाने चाहिए। नवीन अमात्य-दण्डधारी राजा से यमराज की तरह डरते हैं और जहां तक उनसे बनता है, वे अपराध नहीं करते हैं ॥२३-२६॥

नेति बाहुदन्तीपुत्रः ॥ २७ ॥ शास्त्रविददृष्टकर्मा कर्मसु विषादं गच्छेत् । ॥ २८ ॥ अभिजनप्रज्ञाशौचशौर्यानुरागयुक्तानमात्यान्कुर्वीत ॥ २९ ॥ गुणप्राधान्यादिति ॥ ३० ॥

बाहुदन्ती-पुत्र नामक आचार्य इस मत का भी खण्डन करते हैं। नीति के जानने वाले पुरुष भी जब तक अमात्यपद के अनुभव से हीन होते हैं-तब तक वे उस कार्य को आनन्द के साथ नहीं चला सकते। उनको बड़ा ही क्लेश उठाना पड़ता है। इन सब बातों को सोच कर कुलीन, बुद्धिमान, पवित्र हृदय, शूरवीरता, अनुराग से युक्त अमात्य बनावे क्योंकि अमात्य तो-गुणों में जो प्रधान हो उसे ही बनाना चाहिए ॥२७-३०॥

सर्वमुपपन्नमिति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ कार्यसामर्थ्याद्धि पुरुषसामर्थ्यं कल्प्यते सामर्थ्यतश्च ॥ ३२ ॥

कौटल्य (चाणक्य) आचार्य के मत में ये सारी बातें ही ठीक हैं। कार्य के उपस्थित होने पर देश कालानुसार जैसा उचित हो-पुरुष को अधिकार देने चाहिए क्योंकि अमात्य के बनाने में समयानुसार योग्यता की ही मुख्यता है ॥३१-३२॥

विभज्यामात्यविभवं देशकालौ च कर्म च।
अमात्याः सर्व एवैते कार्याः स्युर्न तु मन्त्रिणः ॥ ३३ ॥

राजा इस प्रकार अमात्योचित गुण, देश काल और कार्योचित व्यवस्था देख कर उपर्युक्त योग्यता सम्पन्न किसी भी पुरुषों को अमात्य (राज्य प्रबन्धकारी) बना सकता है, परन्तु सहसा मन्त्री पद पर किसी को नियुक्त न करे ॥३३॥

इति श्रीकौटलीयार्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिकप्रथमअधिकरण में अमात्य बनाने का आठवां अध्याय समाप्त हुआ।

नौवां अध्याय

पांचवां प्रकरण

मन्त्री और पुरोहितों की नियुक्ति

जानपदोऽभिजातः स्ववग्रहः कृतशिल्पश्चक्षुष्मान्प्राज्ञो धारयिष्णुर्दक्षो वाग्मी प्रगल्भः प्रतिपत्तिमानुत्साहप्रभावयुक्तः क्लेशसहः शुचिर्मैत्रो दृढभक्तिः शीलबलारोग्यसत्त्वसंयुक्तः स्तम्भचापल्यवर्जितः संप्रियो वैराणामकर्तेत्यमात्य संपत् ॥ १ ॥

राजा को किन २ गुणों से युक्त मन्त्री और पुरोहित बनाने चाहिए इस बात के विवेचन के लिए इस प्रकरण का आरम्भ किया जाता है। अपने देश और उत्तम कुल में उत्पन्न, समय पर अच्छी तरह अपने अनुकूल चलाये जाने या उत्तम २ बन्धुबान्धवों से योग्य, शिल्प विद्या में कुशल, गम्भीरता से देखने वाला, विद्वान, स्मृति आदि गुणों से सम्पन्न, कार्य कुशल, बोलने वाला, तीव्र भाषण देने वाला, झटपट प्रबन्ध की योग्यता से समन्वित, उत्साह और प्रभाव शाली, क्लेश सहने में समर्थ, पवित्र आचरण-धारी, स्नेह करने वाला, दृढ़ भक्ति से युक्त, शील, बल, आरोग्य तथा मानसिक शक्ति से सम्पन्न, जड़ता, और चपलता से शून्य, सबका प्रिय और व्यर्थ किसी से वैर मोल नहीं लेने वाला मन्त्री बनाना चाहिए। ऐसा उत्तम मन्त्री-योग्य राजा के महत्व का सूचक है ॥१॥

अतः पादार्धगुणहीनौ मध्यमावरौ ॥ २ ॥ तेषां जनपदमवग्रहं चाप्ततः परीक्षेत ॥ ३ ॥ समानविद्येभ्यः शिल्पं शास्त्रचक्षुष्मत्तां च ॥ ४ ॥

जिस मन्त्री में तीन भाग के ये गुण हो और एक भाग की न्यूनता हो-तो वह मध्यम और जिसमें आधे गुण हों-वह क्षुद्र मन्त्री होता है। इस प्रकार के मन्त्री की आप्त (विश्वासी) पुरुषों द्वारा परीक्षा करावे कि यह अपने ही देश का है और इसके बान्धव उत्साह सम्पन्न हैं। इसके साथ पढ़ने वाले पुरुषों से इसके शिल्प (कारीगरी या हाथी आदि की सवारी) तथा शास्त्रज्ञान की परीक्षा करे ॥२-४॥

कर्मारम्भेषु प्रज्ञां धारयिष्णुतां दाक्ष्यं च ॥ ५ ॥ कथायोगेषु वाग्मित्वं प्रागल्भ्यं प्रतिभानवत्त्वं च ॥ ६ ॥ आपद्युत्साहप्रभावौ क्लेशसहत्वं च ॥ ७ ॥ संव्यवहाराच्छौचं मैत्रतां दृढभक्तित्वं च ॥ ८ ॥ संवासिभ्यः शीलबलारोग्यसत्त्वयोगमस्तम्भमचापल्यं च ॥ ९ ॥ प्रत्यक्षतः संप्रियत्वमवैरित्वं च ॥ १० ॥

राजा कामों का आरम्भ करा कर उसकी बुद्धि, स्मरण शक्ति और चतुराई की परीक्षा ले। शास्त्र चर्चा चलवाकर उसके बोलने, व्याख्यान करने और शीघ्र उत्तर देने की शक्ति की पड़ताल करे। आपत्ति के समय उत्साह, प्रभाव और सहन शक्ति का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। उसके साथ व्यवहार करके हृदय की पवित्रता, मित्रता और दृढ़ भक्ति की परीक्षा लेवे। साथ रहने वाले पुरुषों से मन्त्री बनाने योग्य व्यक्ति के शील, बल, आरोग्य, धैर्य, ज्ञान और गम्भीरता की राजा जांच करे, सुन्दर आकृति, सब से प्रेम और किसी से वैर नहीं करने की अपने सन्मुख बुला कर राजा को देख भाल कर लेनी चाहिए ॥५-१०॥

प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः ॥ ११ ॥ स्वयंदृष्टं प्रत्यक्षं परोपदिष्टं परोक्षम् ॥ १२ ॥

राजा की पड़ताल प्रत्यक्ष (सन्मुख) परोक्ष (पीछे) और अनुमान द्वारा होती है। जो बात स्वयं देखी जावे-वह प्रत्यक्ष और जो दूसरे के द्वारा देखी जावे-वह परोक्ष कहाती है ॥११-१२॥

कर्मसु कृतेनाकृतावेक्षणमनुमेयम् ॥ १३ ॥ अयौगपद्यात्तु कर्मणामनेकत्वादनेकस्थत्वाच्च देशकालात्ययो मा भूदिति परोक्षममात्यैः कारयेदित्यमात्यकर्म ॥ १४ ॥

किसी काम के किये हुए भाग से नहीं किये हुए काम का भी समझ लेना अनुमेय कहलाता है। कार्य बहुत से होते हैं, वे एक साथ पूरे नहीं किये जा सकते। उनकी स्थिति

भी भिन्न २ स्थानों में होती है। उचित देश और काल की किसी प्रकार त्रुटि न होने पावे, इससे राजा अपने पीछे से मन्त्रियों द्वारा कार्य सम्पादन करावे। इसीलिए अमात्य (मन्त्री) आदि की नियुक्ति की जाती है॥१३-१४॥

पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं षडङ्गे वेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्यां चाभिविनीतमापदां दैवमानुषीणामथर्वभिरुपायैश्च प्रतिकर्तारं कुर्वीत ॥ १५ ॥ तमाचार्यं शिष्यः पितरं पुत्रो भृत्यः स्वामिनमिव चानुवर्तेत ॥ १६ ॥

उन्नत से उन्नत कुल में उत्पन्न, शील और आचार में सम्पन्न, वेद और व्याकरणादि छःओं वेदों के अङ्गों के ज्ञाता, दैवी विपत्ति और शकुन शास्त्र का ज्ञाता, दण्डनीति कुशल, दैवी और मानुषी विपत्तियों को अथर्व वेद के मन्त्रों द्वारा दूर करने के उपाय जानने वाला, पुरोहित बनाना योग्य है। आचार्य को शिष्य, पिता को पुत्र, और स्वामी को सेवक जिस तरह मानता है, राजा भी इस पुरोहित को इसी प्रकार पूज्य माने॥१५-१६॥

ब्राह्मणेनैधितं क्षत्रं मन्त्रिमन्त्राभिमन्त्रितम् ।
जयत्यजितमत्यन्तं शास्त्रानुगतशस्त्रितम् ॥ १७ ॥

इस प्रकार पुरोहित द्वारा बढ़ाया हुआ और मन्त्रियों की मन्त्रणा से युक्त, राजवंश सर्वदा विजयी रहता है। इसका शास्त्रानुसार कर्म ही शस्त्र होना चाहिए। इस राजवंश को कोई भी पराजित नहीं कर सकता है॥१७॥

इति श्रीकौटलीयार्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिकप्रथमअधिकरण में मन्त्री और पुरोहित के बनाने का नौवां अध्याय समाप्त हुआ।

दसवां अध्याय

छठा प्रकरण

अमात्यों के हृदयगत सरल और कुटिल भावों के गुप्त रीति से जानने के प्रकार।

मन्त्रिपुरोहितसखः सामान्येष्वधिकरणेषु स्थापयित्वामात्यानुपधाभिः शोधयेत् ॥ १ ॥ पुरोहितमयाज्ययाजनाध्यापने नियुक्तममृष्यमाणं राजावक्षिपेत् ॥ २ ॥

प्रथम अमात्यों (अधिकारी वर्ग) को साधारण पदों पर नियुक्त करके गुप्त रीति से मन्त्री और पुरोहितों के साथ राजा उनकी परीक्षा करे। परीक्षा प्रकार इस ढंग का होना चाहिए, राजा गुपचुप में पुरोहित को यज्ञ और वेदाध्ययन के अयोग्य चण्डाल आदि

व्यक्ति को यज्ञ कराने या वेदाध्ययन के लिए नियुक्त करे और फिर स्वयं ही राजा उस पुरोहित को फटकार कर क्रोधित पुरोहित को पद से च्युत करदे ॥१-२॥

सत्त्रिभिः शपथपूर्वमेकैकमात्यमुपजापयेत् ॥ ३ ॥ अधार्मिकोऽयं राजा साधुधार्मिकमन्यमस्य तत्कुलीनमवरुद्धं कुल्यमेकप्रग्रहं सामन्तमाटविकमौपपादिकं वा प्रतिपादयामः ॥ ४ ॥ सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा तवेति ॥ ५ ॥ प्रत्याख्याने शुचिरिति धर्मोपधा ॥६॥

अब पुरोहित, गुप्तचरों की सहायता से अमात्यों (अधिकारियों) के समीप पहुंचे और शपथ खा २ कर उनको राजा से विरुद्ध करने (फोड़ने) की चेष्टा करे, पुरोहित इन कर्मचारियों को इस प्रकार वहकावे कि यह राजा वड़ा अधार्मिक है। इसी वंश में जो धार्मिक साधु प्रकृति, सर्व गुण सम्पन्न अन्य व्यक्ति हो उसको राजपद पर बैठा देना चाहिए या किसी समीपवर्ती अन्य सामन्त, वन के स्वामी तथा जो कोई निश्चित हो जावे उसको राजपद पर नियुक्त करना योग्य है, यह राजा तो राज्य सिंहासन पर रहने योग्य नहीं है। मैंने जिन २ व्यक्तियों से इसकी चर्चा की, वे सब स्वीकार कर चुके हैं, कहिए आपकी क्या सम्मति है। इस प्रकार पुरोहित के कहने पर यदि राज्याधिकारी (अफसर) पुरोहित को फटकार दे-तो यह धर्म मार्ग की परीक्षा का उपाय माना गया है ॥ ३-६॥

सेनापतिरसत्प्रतिग्रहणावक्षिप्तः सत्त्रिभिरेकैकममात्यमुपजापयेल्लोभनीयेनार्थेन राजविनाशाय ॥ ७ ॥ सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा तवेति ॥ ८ ॥ प्रत्याख्याने शुचिरित्यर्थोपधा ॥ ९ ॥

इसी प्रकार राजा सेनापति से गुप्त रीति से षड़यन्त्र करे। किसी अयोग्य व्यक्ति के सेनापति के पद पर रख लेने से सेनापति को राजा फटकारे-वह भी अपने गुप्तचरों द्वारा प्रत्येक अमात्य (अधिकारी) की परीक्षा करे। या धनका लोभ देकर उनको राजा के नाश करने के निमित्त छल से इस प्रकार वात करे, कि सबने हमारी इस वात को मान लिया है, अबतो तुम्हारी सम्मति की ही कसर है। यदि वह सेनापति की वात का निषेध कर दे-तो उसे पवित्र समझना चाहिए, यह धन के लोभ द्वारा परीक्षोपाय कहाता है ॥७-९॥

परिव्राजिका लब्धविश्वासान्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रमेकैकमुपजपेत् ॥ १० ॥ राजमहिषी त्वां कामयते कृतसमागमोपाया महानर्थश्च ते भविष्यतीति ॥ ११ ॥ प्रत्याख्याने शुचिरिति कामोपधा ॥ १२ ॥

राजा, किसी कषायवस्त्रधारिणी परिव्राजिका (साधनी) को सत्कार पूर्वक रनिवास में रखे। सबको ज्ञात रहे, कि यह रानियों की वड़ी विश्वास पात्र है। यह प्रत्येक अधिकारी

को राजा के विरुद्ध प्रोत्साहित करे, कि राजमहिषी (रानी) तुम से सम्भोग कराना चाहती है। यदि तुमने उनकी समागम की प्रार्थना को ठुकरा दिया-तो तुम्हारा बड़ा अनर्थ होगा। यदि अधिकारी इस की बात को सुनकर इसे फटकार दे-तो उसे पवित्र समझना चाहिए। इस ढंग की प्रक्रियाएं कामोपधा कहाती हैं ॥१०-१२॥

प्रवहणनिमित्तमेकोऽमात्यः सर्वानमात्यानावाहयेत् ॥ १३ ॥ तेनोद्वेगेन राजा तानवरुन्ध्यात् ॥ १४ ॥ कापटिकश्छात्रः पूर्वावरुद्धस्तेषामर्थमानावक्षिप्तमेकैकममात्यमुपजपेत् ॥ १५ ॥ असत्प्रवृत्तोऽयं राजा ॥ १६ ॥ सहसैनं हत्वान्यं प्रतिपादयामः ॥ १७ ॥ सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा तवेति ॥ १८ ॥ प्रत्याख्याने शुचिरिति भयोपधा ॥ १९ ॥

राजा गुप-चुप किसी एक अमात्य द्वारा अन्य सारे अमात्य (अफसरों) को नौका द्वारा सैर करने को बुलावे। फिर आप इस काम पर रुष्ट होकर उन सारे अमात्यों को धन दण्ड द्वारा अपमानित करदे। अब पूर्व में अपमान पाया हुआ कोई धूर्त छात्र, धन दण्ड (जुरमाना) से क्रोधित इन अमात्यों को राजा के विरुद्ध उकसावे, कि यह राजा बड़ा ही अयोग्य है-जो अयोग्य पुरुषों को पसन्द करता है। अब तो एक दम इसको मारकर अन्य को राजा बना देना चाहिए। अन्य सारे अधिकारी इसके विरुद्ध हो चुके हैं तुम्हारी क्या सम्मति है। यदि अमात्य इसके इतना कहने पर भी इस के साथ सहमत न हो-तो इस अमात्य को पवित्र हृदय समझना चाहिए। यह भयोपधा कहाती है ॥१३-१९॥

तत्र धर्मोपधाशुद्धान्धर्मस्थीयकण्टकशोधनेषु स्थापयेत् ॥ २० ॥ अर्थोपधाशुद्धान्समाहर्तृसंनिधातृनिचयकर्मसु ॥ २१ ॥ कामोपधाशुद्धान्बाह्याभ्यन्तरविहाररक्षासु ॥ २२ ॥ भयोपधाशुद्धानासन्नकार्येषु राज्ञः ॥ २३ ॥ सर्वोपधाशुद्धान्मन्त्रिणः कुर्यात् ॥ २४ ॥ सर्वत्राशुचीन्खनिद्रव्यहस्तिवनकर्मान्तेषूपयोजयेत् ॥ २५ ॥

त्रिवर्गभयसंशुद्धानमात्यान्स्वेषु कर्मसु ।
अधिकुर्याद्यथाशौचमित्याचार्या व्यवस्थिताः ॥ २६ ॥

इस प्रकार धर्मोपधा (पुरोहित आदि) द्वारा अन्य सारे अमात्य (अफसरों) को नौका शत्रु शोधन पर नियुक्त करे। जो अमात्य अर्थोपधा (धन के लोभ में फंसाने के ढंगों) द्वारा परीक्षित हुआ है, उसको कर वसूल करना, कोष रक्षण और वृद्धि करने के स्थानों पर अधिकारी बनाये रखे। इसी प्रकार कामोपधा द्वारा जिनकी परीक्षा की गई है, उनको रनिवास के बाहर भीतर जाने को अधिकार देदें, तथा क्रीड़ा के स्थलों का अध्यक्ष बनाया

जावे। भयोपधा द्वारा परीक्षित अमात्यों को विश्वास के योग्य समझकर राजा अपने समीप में रखे। जिन अधिकारियों की उपर्युक्त सारे ढंगों से परीक्षा करली है, उनको मन्त्री बनावे। इन परीक्षाओं में जो पूरा न उतरा हो-उन्हें खान, हाथी और वन के कार्यालयों (कान, फील खाना और जंगलात के महकमों) पर लगा दे। धर्म, अर्थ, काम और भय के अनेक ढंगों द्वारा जिन व्यक्तियों की अच्छी तरह परीक्षा करली हैं, उनको उनके योग्य पदों पर राजा नियुक्त करे-यह पूर्व राजनीति के पण्डितों की व्यवस्था है ॥२०-२६॥

न त्वेव कुर्यादात्मानं देवीं वा लक्ष्मीश्वरः।
शौचहेतोरमात्यानामेतत्कौटल्यदर्शनम् ॥ २७ ॥

चाणक्य कहते हैं, कि मेरी सम्मति में तो राजा अपने आपको और महारानी को अमात्यों की परीक्षा के ढंगों में न डाले-यही सुन्दर बात है ॥२७॥

न दूषणमदुष्टस्य विषेणेवाम्भसश्चरेत्।
कदाचिद्धि प्रदुष्टस्य नाधिगम्येत भेषजम् ॥ २८ ॥

दोष रहित अमात्य की इस प्रकार परीक्षा करने में पानी मिले हुए विष की तरह बड़ा बुरा फल निकल पड़ता है। जो अमात्य दूषित नहीं है, वह भी इन ढंगों से वृथा लालच में आकर दूषित हो सकता है-जैसे पानी के धोखे में विष पी लिया जाता है। ऐसी दशा में बिगड़े हुए किसी २ अमात्य का कभी २ प्रतीकार नहीं हो पाता है, और वह सचमुच राजा को उलट पलट कर देता है। ॥२८॥

कृता च कलुषा बुद्धिरुपधाभिश्चतुर्विधा।
नागत्वान्तर्निवर्तेत स्थिता सत्ववतां धृतौ ॥ २६ ॥

इस प्रकार नाहक इन चारों छलों से बिगाड़े हुए अमात्य की बुद्धि, राजा को सिंहासनसे उतार कर ही शान्त होती है, क्योंकि उनको व्यर्थ ही राजा के विरुद्ध करके अपने स्थान से च्युत किया गया है ॥२६॥

तस्माद्बाह्यमधिष्ठानं कृत्वा कार्ये चतुर्विधे।
शौचाशौचममात्यानां राजा मार्गेत सत्त्रिभिः ॥ ३० ॥

इस प्रकार की चारों उपधाओं से तो राजा, किसी बहिरङ्ग व्यक्ति की ही परीक्षा करे। अमात्यों की इस ढंग से परीक्षा करना उचित नहीं है। अपने आन्तरिक अमात्यों का तो राजा अपने गुप्तचरों से विना उनको लालच दिए ही उनकी परीक्षा करता रहे ॥३०॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिकप्रथमअधिकरण में धर्मोपधा आदि ढंगों से अमात्यों के शुचि-अशुची होने की परीक्षा का दशवां अध्याय समाप्त हुआ।

ग्यारहवां अध्याय

सातवां प्रकरण

गुप्तचरों की स्थापना

उपधाभिः शुद्धामात्यवर्गो गूढपुरुषानुत्पादयेत् ॥ १ ॥ कापटिकोदास्थित-गृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनान्सत्रितीक्ष्णरसदभिक्षुकीश्च ॥ २ ॥

राजा धर्मोपधा आदि किसी भी ढंग से अपने अमात्यों की परीक्षा करके गुप्तचरों की स्थापना करे। कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक, तापस, सत्री, तीक्ष्ण, रसद और भिक्षुकी आदि गुप्तचरों के अनेक भेद हैं। ॥१-२॥

परमर्मज्ञः प्रगल्भः छात्रः कापटिकः ॥ ३ ॥ तमर्थमानाभ्यामुत्साह्य मन्त्री ब्रूयात् ॥ ४ ॥ राजानं मां च प्रमाणं कृत्वा यस्य यदकुशलं पश्यसि तत्तदानी-मेव प्रत्यादिशेति ॥ ५ ॥

शत्रु आदि अन्य व्यक्ति के मर्म का पता लगाने वाला वाचाल, कपट वेषधारी छात्र, (नवीन पण्डित) कापटिक चर कहाता है। इस छात्र को धन और मान से उत्साहित करके मन्त्री इस से कहे, कि तुम राजा और मुझे प्रधान मानकर हम दोनों में जिसकी कुछ भी हानि देखो अर्थात् जिसको हमारे विरुद्ध षड्यन्त्र करता पाओ-तो उसी समय फौरन हमको सूचित करो ॥३-५॥

प्रव्रज्याप्रत्यवसितः प्रज्ञाशौचयुक्त उदास्थितः ॥ ६ ॥ सवार्ताकर्मप्रदि-ष्टायां भूमौ प्रभूतहिरण्यान्तेवासी कर्म कारयेत् ॥ ७ ॥

बुद्धिमान, शुद्धहृदय, सन्यास वेषधारी व्यक्ति उदास्थित गुप्तचर होता है। कृषि, वाणिज्य, पशुपालन आदि कर्मों के लिए निश्चित क्षेत्र में पहुंच कर बहुत सा धन और विद्यार्थी लेकर यह उदास्थित गुप्तचर वहां अपना काम करे। ॥६-७॥

कर्मफलाच्च सर्वप्रव्रजितानां ग्रासाच्छादनावसथान्प्रतिविदध्यात् ॥ ८ ॥ वृत्तिकामांश्चोपजपेत् ॥ ९ ॥ एतेनैव वेषेण राजार्थश्चरितव्यो भक्तवेतनकाले चोपस्थातव्यमिति ॥ १० ॥ सर्वप्रव्रजिताश्च स्वं स्वं वर्गमुपजपेयुः ॥ ११ ॥

उस जगह अपने काम से जो इसको धन प्राप्ति हो-उससे अनेक साधुओं के भोजन वस्त्र और ठहरने का प्रबन्ध करे। जो संन्यासी धन की इच्छा करे उनको अपनी ओर मिलाकर राजा का गुप्तचर बना देवे। उनको समझा दे, कि तुम लोग इसी वेष में राजा का कार्य करो और जब भोजन के लिए वेतन की आवश्यकता हो तो यहां पर चले आना, इसी तरह प्रत्येक भिन्न २ सम्प्रदाय का संन्यासी अपनी २ सम्प्रदाय के संन्यासी को राजा कीओर कर दे ॥८-११॥

कर्षको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो गृहपतिकव्यञ्जनः ॥ १२ ॥ स कृषि-कर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण ॥ १३ ॥

बुद्धिमान्, वृत्ति से हीन, शुद्ध हृदय वाला कृषक-गृहपतिक गुप्तचर होता है। वह भी कृषक के ही वेष में कृषि के स्थानों में रहे और पूर्वोक्त संन्यासियों के ढंग से कृषकों को राजा के अनुकूल बना देवे ॥१२-१३॥

वाणिजको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो वैदेहकव्यञ्जनः ॥ १४ ॥ स वणि-कर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण ॥ १५ ॥

वृत्तिहीन, वाणिज्य करने वाला, बुद्धिमान् शुद्धाचार युक्त, पुरुष वैदेहक गुप्तचर कहाता है। वह वैश्यों के व्यापार स्थल में अपना काम करे और पूर्वोक्तरीति से व्यापारियों को राजा के अनुकूल बना देवें ॥१४-१५॥

मुण्डो जटिलो वा वृत्तिकामस्तापसव्यञ्जनः ॥ १६ ॥ स नगराभ्याशे प्रभूतमुण्डजटिलान्तेवासी शाकं यवसमुष्टिं वा मासद्विमासान्तरं प्रकाशमश्नीयात् ॥ १७ ॥ गूढमिष्टमाहारम् ॥ १८ ॥

मूंड मुडाए या जटाधारी वेष में रहने वाला, राजवृत्ति का इच्छुक पुरुष-तापस संज्ञक गुप्तचर होता है। वह नगर के पास बहुत से मुंडे हुए या जटाधारी विद्यार्थी लेकर शाकाहार या हरित अन्न भोजन करके एक दो महीने तक जनता को अपना आडम्बर दिखाकर विश्वासी बना लेवे। छुपे २ वह अपनी रुचि के अनुसार भोजन कर सकता है ॥१६-१८॥

वैदेहकान्तेवासिनश्चैनं समिद्धयोगैरर्चयेयुः ॥ १९ ॥ शिष्याश्चास्यावेदयेयु-रसौ सिद्धः सामेधिक इति ॥ २० ॥ समेधाशास्तिभिश्चाभिगतानामङ्गविद्यया शिष्यसंज्ञाभिश्च कर्माण्यभिजनेऽवसितान्यादिशेत् ॥ २१ ॥

वैदेहक (व्यापारी) गुप्तचर के अनुचर अच्छी २ तरह वस्तुओं से इन तापसों की पूजा करें। वैदेहक गुप्तचर के ये विद्यार्थी, इन तपस्वियों की सब जगह यह प्रसिद्धि कर दें कि ये बड़े सिद्ध योगी हैं। और भविष्य होनहार के बताने वाले हैं। भविष्य भाग्य के पूछने वाले मनुष्यों के आने पर अपने विद्यार्थियों से उनके घर पर हुए कार्यों का पता लगा ले, और अङ्ग के चिन्हों से उन्हें बताने ॥१६-२१॥

अल्पलाभमग्निदाहं चोरभयं दूष्यवधं तुष्टदानं विदेशप्रवृत्तिज्ञानमिदमद्य श्वो वा भविष्यतीदं राजा करिष्यतीति ॥ २२ ॥ तदस्य गूढाः सत्त्रिणश्च संपादयेयुः ॥ २३ ॥

इसके अतिरिक्त थोड़ा लाभ, अग्नि दाह, चोरभय, दूषित पुरुषों के वध, राजा के प्रसन्न होने पर उपहार, विदेश यात्रा का योग, बतावे। इस प्रकार कल या आज होने वाले कार्य का निदर्शन करे। राजा एक दो दिन में यह करने वाला है-इत्यादि फलादेश बतावे। इन सब बातोंको इसके छुपे सत्री-संज्ञक गुप्तचर पूरी करने का उद्योग करें। ॥२२-२३॥

सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिसंपन्नानां राजभाग्यमनुव्याहरेन्मन्त्रिसंयोगं च ॥ २४ ॥ मन्त्री चैषां वृत्तिकर्मभ्यां वियतेत ॥ २५ ॥

इन पूछने वाले व्यक्तियों में जो बुद्धिमान् बोलने वालों में उत्तम और मनस्वी हो-उससे कहे, कि तुम्हें राजा या राजमन्त्री से लाभ होने वाला है। मन्त्री भी ऐसे पुरुषों के लाभ या उनके काम लगाने का प्रयत्न करे ॥२४-२५॥

ये च कारणादभिक्रुद्धास्तानर्थमानाभ्यां शमयेत् ॥ २६ ॥ अकारण-क्रुद्धांस्तूष्णींदण्डेन राजद्विष्टकारिणश्च ॥ २७ ॥

जो कोई शक्तिशाली बोलने वाला व्यक्ति किसी प्रकार कुपित हो गया हो-तो उसका धन और मान से सन्तुष्ट करे। जो बिना कारण ही रुष्ट हुए हों-उन को गुप-चुप दण्डित करें, तथा राज द्वेषियों को गुप-चुप मरवा डाले ॥२६-२७॥

पूजिताश्चार्थमानाभ्यां राज्ञा राजोपजीविनाम् ।
जानीयुः शौचमित्येताः पञ्च संस्थाः प्रकीर्तिताः ॥ २८ ॥

इस प्रकार राजा अपने धन और मान से सन्तुष्ट हुए गुप्त राजकर्मचारी अमात्यों की स्थिति का पता लगाते रहें। इस अध्याय में कापटिक आदि पांच गुप्तचरों का वर्णन किया गया है ॥२८॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे गूढपुरुषोत्पत्तौ संस्थोत्पत्तिः एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में गुप्तचरों के बनाने का ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ।

बारहवां अध्याय

आठवां प्रकरण

गुप्तचरों की कामों पर नियुक्ति।

ये चाप्यसंबन्धिनोऽवश्यभर्तव्यास्ते लक्षणमङ्गविद्यां जम्भकविद्यां मायागतमाश्रमधर्मं निमित्तमन्तरचक्रमित्यधीयानाः सत्रिणः ॥ १ ॥ संसर्गविद्या वा ॥२॥

ये यद्यपि राजा के सम्बन्धी नहीं है, तो भी इनका राजा को अवश्य भरण पोषण करना चाहिए। इनमें जो हस्त-रेखा देखना जानने वाले, व्याकरणादि अङ्गों के ज्ञाता, वशीकरण, अन्तर्हित (छुपजाना) आदि मन्त्र-यन्त्र के ज्ञाता, इन्द्रजाल (बाजीगरी) विद्या, आश्रम धर्मों के प्रतिपादक मन्वादि धर्मशास्त्र, शकुन और पक्षियों की बोली द्वारा शुभ और अशुभ के जानने वाले, मनुष्य सत्री कहाते हैं। या कामशास्त्र और गीतनृत्य आदि कला कुशल पुरुष सत्री कहाते हैं ॥१-२॥

ये जनपदे शूरास्त्यक्तात्मानो हस्तिनं व्यालं वा द्रव्यहेतोः प्रतियोधयेयुस्ते तीक्ष्णाः ॥ ३ ॥ ये बन्धुषु निःस्नेहाः क्रूराश्चालसाश्च ते रसदाः ॥ ४ ॥

परिव्राजिका वृत्तिकामा दरिद्रा विधवाप्रगल्भा ब्राह्मण्यन्तः पुरे कृतसत्कारा महामात्रकुलान्यधिगच्छेत् ॥ ५ ॥ एतया मुण्डा वृषल्यो व्याख्याताः ॥ ६ ॥ इति संचाराः ॥ ७ ॥

जो शक्तिशाली राष्ट्र भर में शूरवीर, देह या प्राणों की भी परवा नहीं करते हैं, और धनोपार्जन के निमित्त हाथी, सिंह या सर्प तक से युद्ध करने लगते हैं, वे तीक्ष्ण पुरुष कहाते हैं। जो अपने भाई बन्धुओं पर भी स्नेह नहीं रखते, बड़े क्रूर और आलसी होते हैं, वे रसद कहाते हैं। ये इतने क्रूर होते हैं, कि प्रतिपक्षी पुरुष को विष देकर भी मार देते हैं। जीविका की आकाङ्क्षा वाली परिव्राजिका (काषायधारिणी) साधुनी, दरिद्र से क्लेशित विधवा, बोलने में कुशल रनिवास में सत्कार पाई हुई ब्राह्मणी, बड़े २ अधिकारियों के घरों में घुसकर उनका पता रखें। इसी तरह बौद्ध भिक्षुणी, या घर में सेवा काम करने वाली धोबिन, भंगन जैसी स्त्रियां भी प्रत्येक घर का पता लगाने में बड़ी उपयोगी होती हैं। इनका गुप्तचर न कहकर संचर कहते हैं ॥३-७॥

तान्राजा स्वविषये मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजदौवारिकान्तर्वंशिकप्रशास्तृसमाहर्तृसंनिधातृप्रदेष्टृनायकपौरव्यावहारिककार्मान्तिकमन्त्रिपरिषद्ध्यक्षदण्डदुर्गान्तपालाटविकेषु श्रद्धेयदेशवेषशिल्पभाषाभिजनापदेशान्भक्तितः सामर्थ्ययोगाच्चापसर्पयेत् ॥ ८ ॥

राजा अपने ही देश में मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, द्वारपाल, अन्तःपुर (रनिवास के) रक्षक शासन करने वाले (मजिस्ट्रेट) अध्यक्ष, कर ग्रहीता, (मालगुज़ारी वसूलकर्ता कलक्टर) रुपये का रक्षक कोषाध्यक्ष, प्रदेष्टा, (प्रबन्धक-कमिश्नर) नायक (सूबेदार) पुर के व्यवहारों का निरीक्षक, खानों का अध्यक्ष या ज्योतिषकार्यालय का अधिकारी, मन्त्रिपरिषद् के सभापति, सेनापति, दुर्गरक्षक, सीमारक्षक, वन के अध्यक्ष (जंगलात के अफसर) के घरों में जैसा जिसको पसन्द हो-उसी तरह के देश की चर्चा, वैसी ही वेष भूषा, शिल्प, (कारीगरी) भाषा का प्रयोग और अपनी कुलीनता आदि का ढोंग रखवा कर इन सञ्चार लोगों को अपनी २ भक्ति और शक्ति के अनुसार भेजे ॥८॥

तेषां बाह्यं चारं छत्रभृङ्गारव्यजनपादुकासनयानवाहनोपग्राहिणः तीक्ष्णा विद्युः ॥ ९ ॥ तं सत्रिणः संस्थास्वर्पयेयुः ॥ १० ॥

इन सञ्चारों में जो तीक्ष्ण नामक सञ्चार बताए हैं, वे जब छत्र, चामर, पंखा, पादुका, आसन, यान (सवारी) वाहन (अश्वादि) के ऊपर अपनी नौकरी लगा कर मन्त्री आदि का पता लेते रहते हैं, तब उनका नाम बाह्यचर हो जाता है। सत्री, संचार (गुप्तचर) इस प्रकार करने वाले तीक्ष्ण नामक सञ्चार को संस्था (कापटिक आदि गुप्तचरों के मण्डल) को सूचित कर दें ॥९-१०॥

सूदारालिकस्नापकसंवाहकास्तरककल्पकप्रसाधकोदकपरिचारका रसदाः कुब्जवामनकिरातमूकबधिरजडान्धच्छद्मानो नटनर्तकगायनवादकवाग्जीवनकुशीलवाः स्त्रियश्चाभ्यन्तरं चारं विद्युः ॥ ११ ॥

मन्त्री आदि अधिकारीगणों के घर में राजा रसद नामक गुप्तचरों के रसोई बनाने वाला, मांस पाचक, स्नान कराने वाला, हाथ पैर दबाने वाला, बिस्तर बिछाने वाला, नाई, वस्त्र पहनाने वाला, जल भरने वाला छुपे २ बना दे। राजा-कुबड़े, बौने, मूर्ख, गूंगे, बहरे, पागल, अन्धे आदि के बहाने तथा नट, नर्तक, गायक, वादक, किस्से कहानी कहने वाले, या खेल तमाशे करने वाले पुरुष तथा स्त्रियों को अधिकारियों के पता लगाने में लगावे। ये आभ्यन्तर चर कहाते हैं ॥११॥

तं भिक्षुकयः संस्थास्वर्पयेयुः ॥ १२ ॥ संस्थानामन्तेवासिनःसंज्ञालिपि-भिश्चारसंचारं कुर्युः ॥ १३ ॥ न चान्योन्यं संस्थास्ते वा विद्युः ॥ १४ ॥

गुप्तचर के रूप में रहने वाली भिक्षुकी इन सारी बातों को गुप्तचरों की संस्था (महकमें) में पहुंचा दे। संस्था (गुप्तचर विभाग) के अन्तेवासी कर्मचारी अपनी सांकेतिक लिपि में लिखकर गुप्तचर या सञ्चारसंज्ञक चरों के पास पहुंचा दे। इन बातों को परस्पर संस्था (महकमे) के कर्मचारी या गुप्तचर न जान सकें-इस बात का बड़ा ही प्रयत्न रखना चाहिए ॥१२-१४॥

भिक्षुकीप्रतिषेधे द्वाःस्थपरम्परा मातापितृव्यञ्जनाः शिल्पकारिकाः कुशीलवा दास्यो वा गीतपाठ्यवाद्यभाण्डगूढलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारं निर्हारयेयुः ॥ १५ ॥

यदि किसी मन्त्री आदि अध्यक्ष के भवन में भिक्षुकी के प्रवेश की मनाही होवे-तो द्वारपालों की परम्परा एक दूसरे को सारा वृत्तान्त बताती रहे। अन्तःपुर के सेवकों के बनावटी माता पिता बन कर अन्तःपुर में गुप्तचर प्रवेश करें। बढ़ई लुहार आदि शिल्पी के रूप में स्त्री भीतर जावे। नांचने वाली या कला खेलने वाली तथा दासी बनकर कोई भीतर तक पहुंच जावे गीत, पाठ, बाजे, बर्तन, गूढ़लेख और संकेतों द्वारा इन अध्यक्षों की बातों को गुप्तचरों तक पहुंचा दे ॥१५॥

दीर्घरोगोन्मादाग्निरसविसर्गेण वा गूढनिर्गमनम् ॥ १६ ॥ त्रयाणामेक-वाक्ये संप्रत्ययः ॥ १७ ॥

दीर्घ रोग उन्माद आदि तथा अग्नि और विष आदि की झंझट खड़ी करके गुप्तचर, गुप्तभाव से उनके भवनों से निकल आवे। जब तीन गुप्तचरों की एकसी बात निकल आवे-तब राजा विश्वास करे ॥१६-१७॥

तेषामभीक्ष्णविनिपाते तूष्णींदण्डः प्रतिषेधो वा ॥ १८ ॥ कण्टकशोधनो-क्ताश्चापसर्पा परेषु कृतवेतना वसेयुः संपातनिश्चारार्थम् ॥ १९ ॥ त उभय-वेतनः ॥ २० ॥

यदि ये गुप्तचर, बार २ ठीक समाचार न लावें तो उनको गुप-चुप दण्ड देवे या नौकरी से पृथक् कर दे। कण्टक शोधन अधिकरण में कहे हुए गुप्तचर, वेतनग्राही होकर प्रति पक्षी राजा के अमात्यों के यहां नौकरी करे। ये गुप्तचर, दोनों ओर से वेतन ग्रहण करने वाले होते हैं ॥१८-२०॥

गृहीतपुत्रदारांश्च कुर्यादुभयवेतनान् ।
तांश्चारिप्रहितान्विद्यात्तेषां शौचं च तद्विधैः ॥ २१ ॥

इन उभय वेतन ग्राही गुप्तचरों के बाल बच्चे और परिवार के लोगों की राजा देख रेख रखे। इन भेजे हुए चरों को भी चरों से जानता रहे, कि काम ठीक भी कर रहे हैं? और कहीं शत्रु से मिल तो नहीं गए हैं। ॥२१॥

एवं शत्रौ च मित्रे च मध्यमे चावपेच्चरान्।
उदासीने च तेषां च तीर्थेष्वष्टादशस्वपि ॥ २२ ॥

इस प्रकार शत्रु, मित्र, मध्यम और उदासीन राजाओं के पास विजयाभिलाषी राजा अपने चर छोड़ दे, तथा उनके मन्त्री पुरोहित आदि अट्ठारह तीर्थों के समीप भी अपने दूत छोड़ दे ॥२२॥

अन्तर्गृहचरास्तेषां कुब्जवामनवञ्चकाः।
शिल्पवत्यः स्त्रियो मूकाश्चित्राश्च म्लेच्छजातयः ॥ २३ ॥

इन शत्रु आदि राजा और मन्त्री आदि तीर्थों के घरों में कुब्ज, वामन और नपुंसक तथा शिल्पकार्य करने वाली स्त्रियां एवं गूंगे और विचित्र आकार वाले नीच लोगों को राजा नियुक्त करे ॥२३॥

दुर्गेषु वणिजः संस्था दुर्गान्ते सिद्धतापसाः।
कर्षकोदास्थिता राष्ट्रे राष्ट्रान्ते व्रजवासिनः ॥ २४ ॥

दुर्गों (किलों) में वणिजों की संस्था (मण्डल) दुर्गों की सीमा पर सिद्ध और तापस, राष्ट्र में किसान और उदास्थित तथा राष्ट्र की सीमा पर ग्वालों को गुप्तचर बनाये ॥२४॥

वने वनचराः कार्याः श्रमणाटविकादयः।
परप्रवृत्तिज्ञानार्थं शीघ्राश्चारपरंपराः ॥ २५ ॥

वन में वनवासी, तथा संन्यासी और वानप्रस्थी आदि झटपट काम कर देने वाले गुप्तचरों की परम्परा प्रतिपक्ष के वृत्तान्त जानने के लिए राजा नियुक्त करे ॥२५॥

परस्य चैतेबोद्धव्यास्तादृशैरेव तादृशाः।
चारसंचारिणः संस्था गूढाश्च गूढसंज्ञिताः ॥ २६ ॥

शत्रु के गुप्तचरों के जानने के लिए जैसे शत्रु के गुप्तचर आये हों उनमें वैसे ही गुप्तचर छोड़कर उनका पता रखे। चार संचारियों को चार सञ्चारी, संस्था को संस्था वाले गुप्तचर और गूढ़ों की गूढ़ रूप से गुप्तचर पता लगा लें ॥२६॥

अकृत्यान्कृत्यपक्षीयैर्दर्शितान्कार्यहेतुभिः।
परापसर्पज्ञानार्थं मुख्यानन्तेषु वासयेत् ॥ २७ ॥

दूसरे के वश में नहीं आने वाले, जिन पुरुषों को हेतुवाद पूर्वक अपने कार्यों को समझा दिया है, उन मुख्य पुरुषों को शत्रु के गुप्तचरों के पता लगाने के लिए अपने राज्य की सीमा पर नियुक्त करे ॥२७॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे गूढ़पुरुषोत्पत्तौ संचारोत्पत्तिः गूढ़पुरुष-प्रणिधिः द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथममधिकरण में गूढ़ पुरुषों की नियुक्ति आदि का बारहवां अध्याय समाप्त हुआ।

तेरहवां अध्याय

नवां प्रकरण

अपने देश के कृत्य (शत्रु के वश में आने वाले) और अकृत्य शत्रु के बहकाने में नहीं आने वालों की रक्षा।

कृतमहामात्रापसर्पः पौरजानपदानपसर्पयेत् ॥ १ ॥ सत्रिणोद्वंद्विनस्तीर्थ-सभाशालापूगजनसमवायेषु विवादं कुर्युः ॥ २ ॥ सर्वगुणसंपन्नश्चायं राजा श्रूयते ॥ ३ ॥ न चास्य कश्चिद्गुणो दृश्यते यः पौरजानपदान्दण्डकराभ्यां पीडयतीति ॥ ४ ॥ तत्र येऽनुप्रशंसेयुस्तानितरस्तं प्रतिषेधयेत् ॥ ५ ॥

राज्य के कर्मचारी प्रधान मन्त्री आदि अध्यक्षों के समीप गुप्तचर रख कर नगर और राष्ट्र के मनुष्यों के अनुराग या द्वेष के जानने के लिए उनके पास भी गुप्तचर छोड़े। सत्री संज्ञक गुप्तचर, तीर्थ, सभा, विद्यालय मनुष्यों के झुण्ड, मेले आदि जनसमूह में परस्पर विवाद (बहस) करने लग जावें। इनमें एक अपना यह पक्ष बनावे, कि यह राजा सर्व गुण सम्पन्न है। दूसरा कहे, कि नहीं इस राजा में कोई गुण नहीं है। यह पुरवासी और देशवासी जनता को अपने दण्ड देने वाले अफ़सरों से पीड़ित कराता है। इस समय जो २ राजा की प्रशंसा करें, उनकी दूसरा काट के लिए उपस्थित रहे ॥१-५॥

मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे ॥ ६ ॥ धान्य-षड्भागं पण्यदशभागं हिरण्यं चास्य भागधेयं प्रकल्पयामासुः ॥ ७ ॥

अन्त में इस पक्ष की स्थापना करें, कि पूर्वकाल में बलवान् मनुष्य दुर्बल मनुष्य को खा जाता था। बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है-यही सारी प्रजा की दशा थी।

प्रजा ने मिलकर विवस्वान् के पुत्र राजर्षि मनु को अपना राजा बनाया। इन्होंने उत्पन्न हुए अन्न का छठा भाग, व्यापार से प्राप्त हुए द्रव्य का दशवां भाग और कुछ सुवर्ण राजा के करके रूप में नियत किया ॥६-७॥

तेन भृता राजानः प्रजानां योगक्षेमवहास्तेषां किल्विषमदण्डकरा हरन्ति अयोगक्षेमवहाश्च प्रजानाम् ॥ ८ ॥ तस्मादुञ्छषड्भागमारण्यका अपि निर्वपन्ति तस्यैतद्भागधेयं योऽस्मान्गोपायतीति ॥ ९ ॥

इस षड् भाग द्रव्य से राजागण प्रजा की रक्षा करते हुए और उनके कल्याण के ढंग बताते आए हैं। जो राजा प्रजा पर कठिन दण्ड नहीं देता-वही उनके दुखों के नाश करने में समर्थ होते हैं। और जो दण्ड देने वाले होते हैं, वे प्रजा के पीड़क और उनके योग क्षेम के नाशक होते हैं। मुनि लोग भी अपने उञ्छ वृत्ति से प्राप्त अन्न बीन कर लाये हुए अन्न का छठा भाग देते हैं, परन्तु इस भाग का तो वही अधिकारी है, जो राजा प्रजा की रक्षा में तत्पर हो।८-९॥

इन्द्रयमस्थानमेतद्राजानः प्रत्यक्षहेडप्रसादाः ॥ १० ॥ तानवमन्यमानान्दैवोऽपि दण्डः स्पृशति ॥ ११ ॥ तस्माद्राजानोनावमन्तव्या इति क्षुद्रकान् प्रतिषेधयेत् ॥ १२ ॥

यह सारा ढांचा इन्द्र और यम के तुल्य है। इस प्रकार ही राजा का कोप और कृपा तो इन्द्र और यम से भी अधिक है, जो राजा का निग्रह और अनुग्रह यमादि की भांति अप्रत्यक्ष नहीं-किन्तु प्रत्यक्ष है। राजा के अपमान करने वाले पर दैवी विपत्ति भी आती है। इन सब बातों को अन्त में कह कर क्षुद्र प्रकृति के लोगों को राजा की निन्दा करने से पराङ्मुख कर दे ॥१०-१२॥

किंवदन्तीं च विद्युः ॥१३॥ ये चास्य धान्यपशुहिरण्यान्याजीवन्ति तैरुपकुर्वन्ति व्यसनेऽभ्युदये वा कुपितं बन्धुं राष्ट्रं वा व्यावर्तयन्त्यमित्रमाटविकं वा प्रतिषेधयन्ति तेषां मुण्डजटिलव्यञ्जनास्तुष्टातुष्टत्वं विद्युः ॥ १४ ॥

गुप्तचर लोग, नगर या राष्ट्र में फैली हुई चर्चा का भी पता लगाते रहें। जो कोई पुरुष, राजा को धान्य, पशु और सुवर्ण आदि भेंट करना चाहते हैं या धन आदि से राजा की संकट के समय सहायता को तत्पर है, जो सम्पत्ति, या विपत्ति में कुपित हुए बन्धु-बान्धवों या राष्ट्र को शान्त कर देते हैं, जो शत्रु या वन में रहने वाले (डाकू लुटेरे) आदि के पकड़ने में सहायता देना चाहते हैं, उनको भी संन्यासी (मूंड मुड़ाए हुए) या जटाधारी साधु के वेश में गुप्तचर, उनका पता रखे। जिन्होंने इस प्रकार की सहायता की है या करना चाहते हैं, वे राजा पर सन्तुष्ट हैं या असन्तुष्ट इसका भी गुप्तचर पता रखें ॥

तुष्टानर्थमानाभ्यां पूजयेत् ॥ १५ ॥ अतुष्टांस्तुष्टिहेतोस्त्यागेन साम्ना च प्रसादयेत् ॥ १६ ॥ परस्पराद्वा भेदयेदेनान्सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धेभ्यश्च ॥ १७ ॥

जो राजा से सन्तुष्ट हैं, उनका भी धन और मान से राजा सत्कार करता रहे तथा जो असन्तुष्ट हों उनका भी धन दान या शान्ति के उपायों से राजा सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करे। जो राजा के विरोधी हों-उनमें परस्पर फूट डलवाते रहें। इसके लिए सामन्त वनवासी, उनके बन्धु-बान्धव और मिलने वाले पुरुषों को हथियार बनावे ॥१५-१७॥

तथाप्यतुष्यतो दण्डकरसाधनाधिकारेण वा जनपदविद्वेषंग्राहयेत् ॥१८॥ विद्विष्टानुपांशुदण्डेन जनपदकोपेन वा साधयेत् ॥ १९ ॥

इतना करने पर भी यदि वे सन्तुष्ट न हो सकें-तो दण्ड और कर ग्रहण करने वाले अफसरों द्वारा राष्ट्र में फूट डलवावे। जो राजा के विद्वेषी हैं, उनको गुप-चुप दण्ड दिलवा दे या राष्ट्र (प्रजा) को उनपर कुपित (विरुद्ध) करके अपने वश में करे ॥१८-१९॥

गुप्तपुत्रदारानाकरकर्मान्तेषु वा वासयेत् ॥ २० ॥ परेषामास्पदभयात् ॥ २१ ॥ क्रुद्धलुब्धभीतावमानिनस्तु परेषां कृत्याः ॥ २२ ॥

ऐसे लोगों के पुत्र और स्त्रियों की रक्षा कर के राजा उनको आकर (खान) के काम पर जंगल में लगा दे, क्योंकि इनका शत्रु से मिल जाने की सम्भावना है। जो पुरुष क्रोध, लालच, भय या अपमान पाये हुए हैं, वे ही शत्रु की तोड़ फोड़ में आते हैं ॥२०-२२॥

तेषां कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः परस्पराभिसंबन्धममित्राटविकप्रतिसंबन्धं वा विद्युः ॥ २३ ॥

इन लोगों का पता ज्योतिषी शकुनशास्त्रज्ञाता, या मुहूर्तों के जानने वाले विद्वानों के वेष में पता रखे, क्योंकि ये अपने कार्य की सिद्धि के लिए उनसे अवश्य प्रश्न करेंगे। ये ज्योतिषी आदि के रूप में फिरने वाले गुप्तचर इन लोगों के परस्पर सम्बन्ध का पता रखे, कि कहीं इनका शत्रु या जंगली जाति से तो सम्पर्क नहीं बढ़ रहा है ॥२३॥

तुष्टानर्थमानाभ्यां पूजयेत् ॥ २४ ॥ अतुष्टान्सामदानभेददण्डैः साधयेत् ॥ २५ ॥

सबसे अच्छा तो यही है, कि राजा प्रसन्न पुरुषों को धन और प्रतिष्ठादान से सन्तुष्ट करे और असन्तुष्टों को साम, दाम, दण्ड और भेद के द्वारा वश में कर लेवे ॥२४-२५॥

एवं स्वविषये कृत्यानकृत्यांश्च विचक्षणः।
परोपजापात्संरक्षेत्प्रधानान्क्षुद्रकानपि ॥ २६ ॥

इस प्रकार बुद्धिमान राजा, अपने राष्ट्र में प्रधान या छोटे मोटे कृत्य (शत्रु के वश में आने वाले) और अकृत्य (उन के वश में नहीं आने वाले) पुरुषों की शत्रु द्वारा की जाने वाली तोड़ फोड़ से रक्षा रखे। ॥ २६ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणं त्रयोदशोऽध्यायः ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में अपने देश के कृत्य और अकृत्य पुरुषों के पक्ष की रक्षा का तेरहवां अध्याय समाप्त हुआ।

चौदहवां अध्याय

दशवां प्रकरण

शत्रु के देशमें कृत्य तथा अकृत्य पक्ष के पुरुषों का संग्रह।

कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः स्वविषये व्याख्यातः ॥ १ ॥ परविषयेवाच्यः ॥२॥

राजा को अपने देश में किस प्रकार कृत्य (शत्रु के वश में होने योग्य) और अकृत्य (नहीं वश में आने योग्य) पुरुषों का संग्रह करना चाहिए-इस बात का वर्णन हो हो, चुका अब शत्रु के देश में ऐसे पुरुषों को कैसे जानना चाहिए-यह बताया जाता है ॥१-२॥

संश्रुत्यार्थान्विप्रलब्धस्तुल्याधिकारिणो शिल्पे वोपकारे वा विमानितो वल्लभावरुद्धः समाहूय पराजितः प्रवासोपतप्तः कृत्वा व्ययमलब्धकार्यः स्वधर्माद्दायाद्याद्वोपरुद्धो मानाधिकाराभ्यां भ्रष्टः कुल्यैरन्तर्हितः प्रसभाभिमृष्टस्त्रीकः कारादिन्यस्तः परोक्तदण्डितो मिथ्याचारवारितः सर्वस्वमाहारितो बन्धनपरिक्लिष्टः प्रवासितबन्धुरिति क्रुद्धवर्गः ॥ ३ ॥

राजा ने जिन पुरुषों को धन या किसी पद आदि के देने का वचन दिया हो और फिर उनको धन नहीं दिया गया है-ऐसे पुरुष राजा पर कुपित होकर कृत्य अर्थात् शत्रु की तोड़ फोड़ में आजाने के योग्य हो जाते हैं। इसी तरह शिल्प या अन्य किसी उपकार के करने वाले दो समान व्यक्तियों में राजा ने किसी एक का अधिक सत्कार कर दिया हो। राजा के प्रिय पात्रों ने जिसको राज दरबार में प्रवेश करने से रोक दिया हो। जिसको प्रथम बुलाकर फिर अपमानित किया हो। जो राजा की आज्ञा से बहुत काल से देश निकाला भोग रहा हो। किसी कार्य के निमित्त प्रत्येक व्यय करने पर भी जिसका कार्य पूरा नहीं किया हो। जिसको अपनी धार्मिक क्रिया के करने से रोक दिया गया हो, या जिसको उसके पितृकुल के दाय भाग (हिस्से के धन से वञ्चित कर दिया हो। जो प्रतिष्ठा के योग्य पद या राज्य के किसी अधिकार पर जिसको च्युत कर दिया हो। राजकुल किन्हीं

पुरुषों द्वारा जिसका अपमान किया हो। जिसकी स्त्री को बलपूर्वक छीन लिया-या उससे व्यभिचार किया हो। जिसको बिना अपराध कारागार में डाला हो-या दूसरे के कहने पर बिना सोचे विचारे जिसको दण्ड दे दिया गया हो, किसी कार्य से जिसको छल कपट द्वारा रोक दिया-या उच्छृङ्खल व्यवहार करने वाले को रोक दिया हो। जिसका किसी अपराध में सर्वस्व अपहरण कर लिया हो। जो बन्धन में पड़ा २ सड़ रहा हो। जिसके किसी बन्धु को देश निकाला दे दिया हो-ऐसे पुरुष कृत्य (शत्रु की ओर मिल जाने) वाले हो जाते हैं। यह कृत्यों का क्रुद्ध वर्ग कहलाता है। क्योंकि इसमें राजा पर ये क्रुद्ध हुए रहते हैं ॥३॥

स्वयमुपहतो विप्रकृतः पापकर्माभिख्यातस्तुल्यदोपदण्डेनोद्विग्नः पर्यात्त-भूमिदण्डेनोपनतः सर्वाधिकरणस्थः सा (स) हसोपचितार्थस्तत्कुलीनोपाशंसुः प्रद्विष्टो राज्ञा राजद्वेषी चेति भीतवर्गः ॥ ४ ॥

जिसने किसी की हत्या (क़त्ल) की हो और इस पर उसको अपमानित किया हो। जो पाप कर्म में (अपराध) प्रसिद्ध हो चुके हों। अपने समान अपराध (जर्म) करने वाले पुरुषों की दण्ड व्यवस्था को सुनकर जो घबराया हो जिसको भूमि अपहरण का दण्ड दिया गया हो। जो सर्व प्रकार के साधनों से युक्त हो-या बहुत बड़े राज्याधिकार से च्युत होने का जिसको भय खड़ा हो रहा हो। अनुचित साहस द्वारा जिसने द्रव्य इकट्ठा किया हो राजा महाराजा के किसी बन्धु वर्ग (भाई बेटे) के जो आश्रित हो, इसी कारण से राजा का द्वेष का पात्र बन गया हो-या अन्य किसी प्रकार से राजा से द्वेष करता हो, इस ढंग के पुरुष भी शत्रु के वश में आने के योग्य माने गए हैं। ये पुरुष भय के कारण शत्रु से मिलने का उद्योग करते हैं-इससे भीतवर्ग में इनकी गणना की गई ॥४॥

परिक्षीणोऽत्यात्तस्वः कदर्यो व्यसन्यत्याहितव्यहारश्चेति लुब्धवर्गः ॥ ५ ॥

व्यापार आदि में घाटा लग जाने से जो दरिद्री हो गया हो। जिसका किसी कारण से धन छीन लिया गया हो। जो कायर (छोटे हृदय वाला) हो। जिसको मद्य आदि किसी प्रकार का व्यसन लगा हो। जिसका सारा कारोबार रुकने-वाला हो-ऐसे पुरुष भी कृत्य अर्थात् शत्रु के वश में चले जाते हैं। ये लोभ के वश में जाते हैं-इससे इनको लुब्ध-वर्ग में सम्मिलित किया गया है ॥५॥

आत्मसंभावितो मानकामः शत्रुपूजामर्पितो नीचैरुपहितस्तीक्ष्णः साह-सिको भोगेनासंतुष्ट इति मानिवर्गः ॥ ६ ॥

जो अपने को बहुत बड़ा मानता हो। जिस को राज दरबार से मान की अभिलाषा हो। जिसके शत्रु की पूजा करदी गई हो। नीच पुरुषों ने जिसको शिर पर चढ़ा रखा

हो। जो तीक्ष्ण प्रकृति का मनुष्य हो। अनुचित साहस करने में भी जिसको हिचकिचाहट न हो। अपने प्राप्त भोगों से जिसको सन्तोष न हो। ऐसा पुरुष भी शत्रु की ओर जा मिलता है। इसको मानि-वर्ग में गिना जाता है, क्योंकि यह अपना मान का अभिलाषी होता है ॥६॥

तेषां मुण्डजटिलव्यञ्जनैर्यो यद्भक्तिः कृत्यपक्षीयस्तं तेनोपजापयेत् ॥ ७ ॥

इन पुरुषों में जिसको जिस मुण्डी (संन्यासी) या जटाधारी महात्मा की भक्ति हो-उसके द्वारा ही उसका ऐश्वर्य चाहने वाला राजा अपने वश में करले ॥७॥

यथा मदान्धो हस्ती मत्तेनाधिष्ठितो यद्यदासादयति तत्सर्वं प्रमृद्नात्येवमयमशास्त्रचक्षुरन्धो राजा पौरजानपदवधायाभ्युत्थितः ॥ ८ ॥

मुण्डी या जटिल गुप्तचर इन क्रुद्ध वर्ग के पुरुषों से कहे, कि अमुक (क्रुद्धवर्ग का प्रिय) राजा मदोन्मत्त महावत से चलाए हुए मदान्ध हाथी की भांति जिस किसी भले बुरे को पाता है, मार देता है। इस प्रकार शास्त्र की आँखों से रहित अमुक राजा व्यर्थ ही पुर और राष्ट्र के व्यक्तियों के मारने को उद्यत रहता है ॥८॥

शक्यमस्य प्रतिहस्तिप्रोत्साहनेनापकर्तुममर्षः क्रियतामिति क्रुद्धवर्गमुपजापयेत् ॥ ९ ॥

उस राजा के तो शत्रुओं से मिलकर इसको उखाड़ देना चाहिए! तुम भी इस पर क्रोध करो-इस प्रकार की बातें बनाकर क्रुद्ध-वर्ग को राजा अपने वश में करें ॥९॥

यथा भीतः सर्पो यस्माद्भयं पश्यति तत्र विषमुत्सृजत्येवमयं राजा जातदोषाशङ्कस्त्वयि पुरा क्रोधविषमुत्सृजत्यन्यत्र गम्यतामिति भीतवर्गमुपजापयेत् ॥१०॥

डरा हुआ सर्प, जिस व्यक्ति से अपने को भय समझता है, उसी को काट कर उसमें विष छोड़ देता है-इसी तरह इस राजा को तुम पर व्यर्थ ही शत्रु से मिल जाने की शङ्का हो रही है। कहीं यह तुझ पर क्रोधरूपी विष न उगल बैठे-तुम कहीं दूसरी जगह चलो। इस ढंग से बात बनाकर भीत वर्ग को अपने ओर तोड़ लेवे ॥१०॥

यथा श्वगणिनां धेनुः श्वभ्यो दुग्धे न ब्राह्मणेभ्य एवमयं राजा सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिहीनेभ्यो दुग्धे नात्मगुणसंपन्नेभ्यः ॥ ११ ॥ असौ राजा पुरुषविशेषज्ञस्तत्र गम्यतामिति लुब्धवर्गमुपजापयेत् ॥ १२ ॥

श्वपचों की गाय जैसे केवल श्वपचों के लिए ही दूध देती है-ब्राह्मणों के लिए नहीं-इसी प्रकार यह राजा भी आत्म, बल, बुद्धि और बोलने की शक्ति से हीन नीच

पुरुषों को ही धन देता है-आत्म गुणों से सम्पन्न मनस्वी पुरुषों की तो यह बात भी नहीं पूछता। अमुक राजा पुरुषों के गुणों को पहचानने वाला है-तुम वहां चलो। इस प्रकार इस लुब्धवर्ग को राजा अपनी ओर मिला लेवे ॥११-१२॥

यथा चाण्डालोदपानश्चण्डालानामेवोपभोग्यो नान्येषामेवमयं राजा नीचो नीचानामेवोपभोग्यो न त्वद्विधानामार्याणाम् ॥ १३ ॥ असौ राजा पुरुषविशेषज्ञस्तत्र गम्यतामिति मानिवर्गमुपजापयेत् ॥ १४ ॥

जिस प्रकार चाण्डालों का कुआ चाण्डलों के ही उपयोग में आता है-अन्य किसी के भी काम में नहीं आता-इसी प्रकार यह नीच राजा भी नीच व्यक्तियों के उपयोग में ही आता है-आर्य गुण सम्पन्न तुम जैसे भले मानसों का तो यह कुछ भी आदर नहीं करता अमुक राजा पुरुषों के सारे गुणों को पहचान लेने में बड़ा भावुक है। तुम भी वहीं चलो इस प्रकार अभिमानी पुरुषों को राजा अपनी ओर मिलावे। यह मानिवर्ग के तोड़ने फोड़ने का ढंग है ॥१३-१४॥

तथेति प्रतिपन्नांस्तान्संहितान्पणकर्मणा।
योजयेत यथाशक्ति सापसर्पान्स्वकर्मसु ॥ १५ ॥

इस प्रकार शपथ या प्रतिज्ञा द्वारा लाये हुए इन पुरुषों को अभिलाषा को पूर्ण करके उनको यथाशक्ति उनके पदों पर नियुक्त कर दे। तथा जिन गुप्तचरों ने ऐसा कराया-उनको भी प्रसन्न करे ॥१५॥

लभेत सामदानाभ्यां कृत्यांश्च परभूमिषु।
अकृत्यान्भेददण्डाभ्यां परदोषांश्च दर्शयेत् ॥ १६ ॥

जो कृत्य (अपने से अप्रसन्न होकर) शत्रु के देश में जा पहुंचे-उनको साम (समझाकर) या दान (धन देकर) अपने वश में करले। जो अभी तक शत्रु के वश में नहीं गए और बिगड़े हुए हैं, उनको डरा धमका कर या दण्ड देकर तथा अन्य राजा के दोषों को गुप्तचरों द्वारा दिखलाकर विजयाभिलाषी राजा अपने वश में करे ॥१६॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमऽधिकरणे परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः चतुर्दशोऽध्यायः ॥

इति श्रीकौटलीयार्थशास्त्रान्तर्गत प्रथमविनयाधिकारिक अधिकरण में शत्रु देश में पहुंचे हुए पुरुष या अपने ही देश में अप्रसन्न पुरुषों के वश में करने का चौदहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

पन्द्रहवां अध्याय

ग्यारहवां प्रकरण

मंत्राधिकार

कृतस्वपक्षपरपक्षोपग्रहः कार्यारम्भांश्चिन्तयेत् ॥ १ ॥ मन्त्रपूर्वाः सर्वारम्भाः ॥ २ ॥

नीतिकुशल राजा अपने पक्ष और शत्रु पक्ष के तोड़ने फोड़ने के योग्य या अयोग्य व्यक्तियों को जानकर अपने देश में दुर्ग रचना और शत्रु देश में चढ़ाई करने आदि का विचार करे। राजा या प्रत्येक बुद्धिमान पुरुष को मन्त्रणा करने के अनन्तर ही कुछ कार्य करना चाहिए ॥१-२॥

तदुद्देशः संवृतः कथानामनिस्रावी पक्षिभिरप्यनालोक्यः स्यात् ॥ ३ ॥ श्रूयते हि शुकशारिकाभिर्मन्त्रो भिन्नः श्वभिरन्यैश्च तिर्यग्योनिभिः ॥ ४ ॥

मंत्रणा का स्थान इतना सुरक्षित होना चाहिए, कि उसमें से बात चीत कोई सुन न सके। पक्षी भी उस स्थान में अपना पंख न मार सके। यह सुना जाता है, कि तोते और मैना ने किसी राजा की मन्त्रणा सुनली-वे इतने कुशल थे, कि वे वैसे ही बोलने लगे, जिस से राजा का मन्त्र फूट निकला। कहीं पर कुत्तों की चेष्टाओं से मन्त्र का भेद होगया और कहीं पर अन्य तिर्यञ्चों (पशु पक्षी) ने इसी तरह राजा की मन्त्रणा खोल दी ॥ ३-४ ॥

तस्मान्मन्त्रोद्देशमनायुक्तो नोपगच्छेत् ॥ ५ ॥ उच्छिद्येत मंत्र भेदी ॥६॥ मन्त्रभेदो हि दूतामात्यस्वामिनामिङ्गिताकाराभ्याम् ॥ ७ ॥

राजा को चाहिये, कि वह यह आज्ञा प्रचलित कर दे, कि मन्त्र स्थान पर कोई मनुष्य विना पूछे न आ सके। जो राजा का मन्त्र भेद करे, उस को राजा देश निकाला दे दे, या शूली पर चढ़ा कर छेद दे। कभी २ दूत, अमात्य (अफ़सर) और स्वयं राजा की आकार और चेष्टाओं से भी मन्त्र खुल जाता है ॥ ५-७ ॥

इङ्गितमन्यथावृत्तिः ॥ ८ ॥ आकृतिग्रहणमाकारः ॥ ६ ॥ तस्य संवरणमायुक्तपुरुषरक्षणमाकार्यकालादिति ॥ १० ॥

मनुष्य की स्वाभाविक चेष्टा के विपरीत चेष्टा, इङ्गित कहाती है। मुख आदि की-विकृति आदि उलटाव पलटाव आकार कहाता है। राजा को उचित है, कि वह, अपने इङ्गित या आकार को छुपाये रखे तथा जब तक कार्य करने का समय न आजावे, तब तक इङ्गित आकार ही नहीं, प्रत्युत इस मन्त्र कार्य में सम्मिलित पुरुषों की भी सावधानी से पड़ताल रखे ॥ ८-१० ॥

तेषां हि प्रमादमदसुप्तप्रलापकामादिरुत्सेकः ॥ ११ ॥ प्रच्छन्नोऽवमतो वा मन्त्रं भिनत्ति ॥ १२ ॥ तस्माद्रक्षेन्मन्त्रम् ॥ १३ ॥

मन्त्र कार्य में नियुक्त पुरुषों की असावधानी, मद, सोते २ बड़ बड़ाना, काम-तृप्ति, (वेश्यादि की प्राप्ति) अभिमान, छुप कर सुनना, तिरस्कार कर देना आदि बातें, राजा के मन्त्र को खोल देती हैं। इन बातों को विचार कर मन्त्र-रक्षा का प्रयत्न करे ॥ ११-१३ ॥

मन्त्रभेदो ह्ययोगक्षेमकरो राज्ञस्तदायुक्तपुरुषाणां च ॥ १४ ॥ तस्माद्गुह्यमेको मन्त्रयेतेति भारद्वाजः ॥ १५ ॥ मन्त्रिणामपि हि मन्त्रिणो भवन्ति ॥१६॥ तेषामप्यन्ये ॥ १७ ॥ सैषा मन्त्रिपरंपरा मन्त्रं भिनत्ति ॥ १८ ॥

मन्त्र-का फूट जाना, राजा और मन्त्राधिकारी पुरुषों के कल्याण का नाशक है। इन सब कारणों से (राजा अत्यन्त गुप्त बातों को अकेला ही विचारे) ऐसा भारद्वाज मुनि का मत है, (क्योंकि मन्त्रियों के भी मन्त्री होते हैं। उन के अन्य मन्त्री हैं। यह मन्त्रियों की परम्परा ही मन्त्र को तोड़ फोड़ देती है। ॥ १४-१८ ॥)

तस्मान्नास्य परे विद्युः कर्म किंचिच्चिकीर्षितम् ।
आरब्धारस्तु जानीयुरारब्धं कृतमेव वा ॥ १९ ॥

सारांश यह है, कि विजयाभिलाषा करने वाले राजा के भविष्य में करने योग्य कार्य को कोई भी न जान सके। जो मनुष्य उस काम में सहयोग ले रहे हैं, वे उसको आरम्भ कर देने पर उसको जान सके, साधारण जनता को तो परिणाम निकल आने पर ही कार्य का पता लगना-चाहिये ॥ १९ ॥

नैकस्य मन्त्रसिद्धिरस्तीति विशालाक्षः ॥ २० ॥ प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः ॥ २१ ॥

विशालाक्ष आचार्य का मत है कि अकेले ही राजा के विचार करने से मन्त्र सिद्धि नहीं हो सकती है। दूसरे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राजा की चित्त वृत्ति का भी अनुमान हो जाता है। अथवा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राजा के कार्य को मन्त्री और अन्य पुरुष ही सम्पादित कर सकते हैं ॥ २०—२१ ॥

अनुपलब्धस्य ज्ञानमुपलब्धस्य निश्चयो निश्चितस्य बलाधानमर्थद्वैधस्य संशयच्छेदनमेकदेशदृष्टस्य शेषोपलब्धिरिति मन्त्रिसाध्यमेतत् ॥ २२ ॥ तस्माद्बुद्धिवृद्धैः सार्धमासीत मन्त्रम् ॥ २३ ॥

नहीं जानी हुई वात का जानना, जानी हुई का निश्चय करना, निश्चित वात को दृढ़ वनाना, मत भेद की वात में संशय नहीं रहने देना, एक देश का ज्ञान होने पर उस के शेष अंग को पूरा करना मन्त्रियों का ही कार्य है। मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा किये विना राजाओं का काम नहीं चल सकता, अतएव अधिक वुद्धिमानों के साथ राजा अवश्य सम्मति करे ॥ २२-२३ ॥

न कंचिदवमन्येत सर्वस्य शृणुयान्मतम् ॥
वालस्याप्यर्थवद्वाक्यमुपयुञ्जीत पण्डितः ॥ २४ ॥

अधिक वुद्धिमान् ही क्या ? राजा तो सव के मत को सुने—किसी की अवहेलना न करे। वुद्धिमान् राजा (पुरुष) तो वालक के भी सार्थक वाक्य को स्वीकार ले ॥ २४ ॥

एतन्मन्त्रज्ञानं नैतन्मन्त्ररक्षणमिति पाराशराः ॥ २५ ॥ यदस्य कार्यमभिप्रेतं तत्प्रतिरूपकं मन्त्रिणः पृच्छेत् ॥ २६ ॥

पराशर मुनि के मतानुयायी कहते हैं, कि विशालाक्ष का कथन, मन्त्र ज्ञान है। मन्त्र रक्षण नहीं हो सकता है। इन सव वातों को विचार कर राजा जिस कार्य को करना चाहे, वैसा ही अन्य कोई कार्य मन्त्रियों के सन्मुख रखकर उनका मत जानले ॥ २५-२६ ॥

कार्यमिदमेवमासीदेवं वा यदि भवेत्तत्कथं कर्तव्यमिति ॥ २७ ॥ ते यथा ब्रूयुस्तत्कुर्यात् ॥ २८ ॥ एवं मन्त्रोपलब्धिः संवृतिश्च भवतीति ॥ २९ ॥

यह कार्य ऐसे होगा या ऐसे हो सकता है। यह होगा-या नहीं। होगा तो किस तरह हो सकता है। वे जैसी सम्मति देवें वैसा करे। इस प्रकार मन्त्र-ज्ञान और उसका रक्षण हो सकता है ॥ २७-२९॥

नेति पिशुनः ॥ ३० ॥ मन्त्रिणो हि व्यवहितमर्थं वृत्तमवृत्तं वा पृष्टमनादरेण ब्रुवन्ति प्रकाशयन्ति वा ॥ ३१ ॥ स दोषः ॥ ३२ ॥ तस्मात्कर्मसु येषु येऽभिप्रेतास्तैः सह मन्त्रयेत् ॥ ३३ ॥ तैर्मन्त्रयमाणो हि मन्त्रवृद्धिगुप्तिं च लभत इति ॥ ३४ ॥

पिशुनाचार्य-इस वात को भी नहीं मानता। इस की युक्ति है, कि यदि मन्त्रियों से छुपा कर पूछा, उसका ढंग वदल कर घटना का रूप ही वदल दिया-तो वे अनादर के साथ उस विषय पर अपना मत प्रकट करेंगे या उस पर अरुचि के साथ प्रकाश डालेंगे। यह वड़ी वुरी वात है। जिन पुरुषों को जिन कामों पर लगावे या लगा रखे हैं, उनके साथ राजा को मन्त्रणा करनी ही चाहिए। ऐसे आवश्यक पुरुषों के साथ मन्त्रणा करने से मन्त्र की वृद्धि और रक्षा होती है ॥ ३०-३४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३५ ॥ अनवस्था ह्येषा ॥ ३६ ॥ मन्त्रिभिस्त्रिभिश्चतुर्भिर्वा सह मन्त्रयेत् ॥ ३७ ॥

कौटिल्य (चाणक्य) आचार्य पिशुन (नारद) के इस मत को भी नहीं मानते। यदि इस तरह प्रत्येक कार्य के अध्यक्ष या अभिमत पुरुष के साथ मन्त्रणा करना है, तो कहां तक मन्त्रणा को लम्बी की जावे। इस तरह तो अनवस्था हो जावेगी। अभिमत पुरुषों का तो अन्त ही नहीं है। कौटिल्य की सम्मति में तीन या चार मन्त्रियों के साथ अवश्य मन्त्रणा करनी चाहिए।॥ ३५-३७ ॥

मन्त्रयमाणो ह्येकेनार्थकृच्छ्रेषु निश्चयं नाधिगच्छेत् ॥ ३८ ॥ एकश्च मन्त्री यथेष्टमनवग्रहश्चरति ॥ ३९ ॥ द्वाभ्यां मन्त्रयमाणो द्वाभ्यां संहताभ्यामवगृह्यते ॥ ४० ॥

जो राजा एक ही मन्त्री के साथ मन्त्रणा करता है-वह मतभेद के स्थानों में ठीक २ मन्त्र का निश्चय नहीं कर सकता है। यदि एक ही मन्त्री राजा ने विचार के लिए रखा है, तो वह अपनी इच्छा के अनुसार विना किसी सोच विचार के उच्छृङ्खल रूप से भी चल सकता है। जो राजा अपने राजनीति के विषयों को दो मन्त्रियों के साथ विचार करते हैं-वह भी ठीक नहीं है। यदि दोनों मन्त्री मिल जायें-तो राजा का मन्त्र उचित रूप से सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि दो का मिल जाना बहुत सम्भव है।॥ ३८-४० ॥

विगृहीताभ्यां विनाश्यते ॥ ४१ ॥ त्रिषु चतुर्षु वा नैकान्तं कृच्छ्रेणोपपद्यते महादोषम् ॥ ४२ ॥ उपपन्नंतु भवति ॥ ४३ ॥

यदि दोनों मन्त्रियों में मतभेद या झगड़ा हो जावे-तो किसी बात का निश्चय ही नहीं हो सके और कार्य का विलकुल ही नाश हो सकता है। यदि तीन या चार मन्त्री हों-तो इस ढंग के अनर्थ के आने की बहुत ही कम सम्भावना होती है। काम ठीक २ चलता रहता है-ऐसा ही देखा गया है ॥ ४१-४३॥

ततः परेषु कृच्छ्रेणार्थनिश्चयो गम्यते ॥ ४४ ॥ मन्त्रो वा रक्ष्यते॥ ४५ ॥ देशकालकार्यवशेन त्वेकेन सह द्वाभ्यामेको वा यथा सामर्थ्यं मन्त्रयेत ॥४६॥

यदि चार से अधिक मन्त्रणा के लिए मन्त्री नियुक्त किये गए हों-तो फिर किसी भी कार्य का निश्चय करना बहुत ही कठिन हो जाता है। और न मन्त्र की रक्षा ही हो सकती है। देश-काल और कार्य की आवश्यकता देख कर एक या दो मन्त्रियों के साथ भी विचार किया जा सकता है-जैसा समय देखे-वैसा कर ले ॥ ४४-४६ ॥

कर्मणामारम्भोपायः पुरुषद्रव्यसंपद् देशकालविभागो विनिपातप्रतीकारः कार्यसिद्धिरिति पञ्चाङ्गो मन्त्रः ॥४७॥ तानेकैकशः पृच्छेत् समस्तांश्च ॥४८॥

(१) कार्य के आरम्भ करने का उपाय, कैसे दुर्ग आदि की रचना या शत्रु के घर में कलह आदि कराया जा सकता है। (२) अपने पास योग्य पुरुष सेनापति, दूत आदि का रखना और द्रव्य का संग्रह करना (३) देश और काल का विचार (४) आये हुए अनर्थों से बच निकलने का उपाय (५) तथा अपने अभीष्ट की सिद्धि का विचार, ये पांच प्रकार मन्त्रणा के हैं, ये ही मन्त्र के पांच अङ्ग कहाते हैं। इन सारे विषयों पर मन्त्रियों से पृथक् २ या सम्मिलित सभा में सब के साथ एक दम विचार किया जा सकता है। ४७-४८ ॥

हेतुभिश्चैषां मतिप्रविवेकान् विद्यात् ॥ ४९ ॥ अवाप्तार्थः कालं नातिक्रामयेत् ॥ ५० ॥ न दीर्घकालं मंत्रयेत ॥ ५१ ॥ न च तेषांपक्ष्यैर्येषामपकुर्यात् ॥ ५२ ॥

राजा इन मन्त्रियों की बुद्धि पूर्वक विवेचन की युक्तिवाद के सहारे से जांच करे। जब बात का निश्चय हो जावे-तो उनके करने में देर न करे, बहुत लम्बे काल तक विचार भी नहीं करना चाहिए। और न ऐसे पुरुषों के साथ विचार करे-जिनका राजा अपकार कर चुका हो और वे पुरुष उन अपकृत पुरुषों से संसर्ग रखते हों ॥ ४९-५२ ॥

मंत्रिपरिषदं द्वादशामात्यान्कुर्वीतेति मानवाः ॥ ५३ ॥ षोडशेति बार्हस्पत्याः ॥ ५४ ॥ विंशतिमित्यौशनसाः ॥ ५५ ॥ यथासामर्थ्यमिति कौटल्यः ॥५६ ॥ ते ह्यस्य स्वपक्षं परपक्षं च चिन्तयेयुः ॥ ५७ ॥ अकृतारम्भमारब्धानुष्ठानमनुष्ठितविशेषं नियोगसंपदं च कर्मणां कुर्युः ॥ ५८ ॥आसन्नैः सह कार्याणि पश्येत्, अनासन्नैः सह पत्रसंप्रेषणेन मन्त्रयेत ॥५९॥

मनु के मत के मानने वाले एक राज-सभा में बारह मन्त्री मानते हैं। बृहस्पति के मतानुयायी सोलह और शुक्राचार्य के मत के मानने वाले बीस सभासद होना स्वीकार करते हैं। परन्तु कौटिल्य का मत है, कि जैसा समय देखे-उतने ही सभासद बना ले। वे ही मन्त्री राजा के पक्ष के और शत्रु पक्ष के सम्बन्ध में भी विचार करें। ये मन्त्री ही राजा के प्रारम्भ नहीं किये हुए कार्य का प्रारम्भ करावें। आरम्भ किये हुए का सम्यक् रीति से पूरा कराने का प्रयत्न करें। जिन कार्यों की समाप्ति हो चुकी हों-उनमें ये विशेष लावें। इस प्रकार कर्तव्य कार्यों को अपनी आज्ञा से पूरा करावे। जो मन्त्री राजा के समीप हों-उनसे राजा प्रत्यक्ष बातचीत करले और जो दूर स्थित हैं, उनके साथ पत्रादि से उचित परामर्श ग्रहण करे ॥ ५३-५९ ॥

इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिषदृषीणां सहस्रम् ॥६०॥ स तच्चक्षुः॥६१॥ तस्मादिमं द्व्यक्षं सहस्राक्षमाहुः ॥ ६२ ॥

इन्द्र की मन्त्रिपरिषद् में एक सहस्र सभासद् बताए जाते हैं। ये ही इन्द्र की आंखें मानी गई हैं। यही कारण है, कि इन्द्र के दो ही आंख है, तो भी वह सहस्राक्ष कहाता है॥ ६०-६२॥

आत्ययिके कार्ये मन्त्रिणो मन्त्रिपरिषदं चाहूय ब्रूयात् ॥ ६३ ॥ तत्र यद्भूयिष्ठाः कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूयुस्तत्कुर्यात् ॥ ६४ ॥

राजा कठिन समस्या आ पड़ने पर मन्त्री और मन्त्रि परिषद को बुलावे। उस समय जिस बात की अधिकांश व्यक्ति पुष्टि करें, उसी कार्य के सिद्धि करने वाले उपाय को-राजा वर्ताव में लावे॥ ६३-६४ ॥

कुर्वतश्चः—

नास्य गुह्यं परे विद्युः छिद्रं विद्यात्परस्य च ।
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि यत्स्याद्विवृतमात्मनः ॥ ६५ ॥

जब राजा अपने विचार को कार्य में परिणत करे, तो-ऐसा ढंग होना चाहिए कि इनके इस गुप्त मन्त्र को कोई विरोधी न जान सके-प्रत्युत यही शत्रु के छिद्र (न्यूनता) को जानले। राजा तो अपने आकार को इस तरह छुपा ले जैसे-कछुवा अपने अङ्गों को छुपा लेता है॥ ६५ ॥

यथा ह्यश्रोत्रियः श्राद्धं न सतां भोक्तुमर्हति ।
एवमश्रुतशास्त्रार्थो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥ ६६ ॥

जिस तरह धार्मिक पुरुषों के घरों में श्राद्ध में अश्रोत्रिय (वेद हीन) ब्राह्मण जीमने का अधिकार नहीं रखता है, ऐसे ही राजनीति आदि शास्त्रों को नहीं पढ़ा हुआ व्यक्ति मन्त्र कार्य का अधिकार नहीं रखता ॥ ६६ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे मन्त्राधिकारः पञ्चदशो ऽध्यायः ॥ १५ ॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथममधिकरण में गूढ़ पुरुषों की नियुक्ति आदि का पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

सोलहवां अध्याय

बारहवां प्रकरण

दूत प्रणिधि

उद्धृतमन्त्रो दूतप्रणिधिः ॥ १ ॥ अमात्यसंपदोपेतो निसृष्टार्थः ॥ २ ॥ पादगुणहीनः परिमितार्थः ॥ ३ ॥ अर्धगुणहीनः शासनहरः ॥ ४ ॥

इस प्रकार मन्त्र के निश्चित हो जाने पर दूत नियत करना चाहिए। दूत तीन तरह के होते हैं (१) निसृष्टार्थ (२) परिमितार्थ (३) शासनहर। जिस दूत में पूर्वोक्त अमात्य के से गुण हों-वह निसृष्टार्थ कहाता है अर्थात् जो अपनी बुद्धि से कार्य सिद्धि के अनुकूल योग्य बातचीत अपनी स्वतन्त्रता से भी चलाने की योग्यता रखता है-या चलाता है-वह निसृष्टार्थ, इससे जो चतुर्थांश में न्यून होता है-अर्थात् थोड़ा बोलकर कार्य को सन्मुख रखता है-वह परिमितार्थ कहाता है। जो निसृष्टार्थ से आधा गुण रखता है अर्थात् जो संदेश दिया-उसे ही पहुंचा कर पृथक् होता है-अपनी योग्यता से उत्तर प्रत्युत्तर नहीं करता वही दूत, शासनहर कहाता है ॥१-४॥

सुप्रतिविहितयानवाहनपुरुषपरिवापः प्रतिष्ठेत ॥ ५ ॥ शासनमेवं वाच्यः परः, स वक्ष्यत्येवं, तस्येदं प्रतिवाक्यमेवमतिसंधातव्यमित्यधीयानो गच्छेत् ॥६॥

दूत भी यान, (सवारी गाड़ी) वाहन (अश्व) नौकर चाकर और उत्तम २ सामान (गलीचे आदि) लेकर शत्रु के देश में प्रभाव के साथ प्रवेश करे। दूत को यह मनन करते रहना चाहिए, कि मैं इस प्रकार अपने राजा के संदेश को विरोधी राजा के सन्मुख रखूंगा। वह यह कहेगा, तो मैं उसका यह उत्तर दूंगा, इस तरह उसके संदेह की निवृत्ति कर दूँगा। इस ढंग से सोचता-विचारता हुआ दूत गमन करे ॥५-६॥

अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं गच्छेत् ॥ ७ ॥ अनीकस्थानयुद्धप्रतिग्रहापसारभूमीरात्मनः परस्य चावेक्षेत ॥ ८ ॥ दुर्गराष्ट्रप्रमाणं सारवृत्तिगुप्तिच्छिद्राणि चोपलभेत ॥ ९ ॥

शत्रु के देश में प्रवेश करके दूत, विरोधी राजा के वन के रक्षक (जंगलात के अफसर) राज्य की सीमा के रक्षक (कलक्टर, आदि) तथा पुर और राष्ट्र के मुख्य २ व्यक्तियों से जहां तक हो सके-अपना मेल जोल बढ़ाले। वहां पर अपनी सेना के ठहरने के योग्य स्थान, युद्धस्थल, समय पड़ने पर भागने के मार्ग तथा शत्रु की सेना की स्थित

का भी दूत पता लगावे यही नहीं-किन्तु शत्रु के पास कितने दुर्ग (क़िले) राज्य का विस्तार, किस तरह कितनी धान्य सुवर्ण और रुपये की आमदनी है। प्रजा की जीविका की क्या दशा है। राज्य की रक्षा किस तरह हो रही है। राज्य में क्या २ दोष उत्पन्न हो रहे हैं-इन सब बातों का दूत को ज्ञान कर लेना चाहिए ॥७-६॥

पराधिष्ठानमनुज्ञातः प्रविशेत् ॥ १० ॥ शासनं च यथोक्तं ब्रूयात् ॥ ११ ॥ प्राणाबाधे ऽपि दृष्टे ॥ १२ ॥

दूत शत्रु के प्रदेश में उसकी आज्ञा (इजाज़त) आने पर ही प्रवेश करे। अपने राजा के संदेश को ठीक ढंग से प्रस्तुत करे। यदि प्राण बाधा भी उपस्थित हो जावे-तो भी अपने स्वामी के हितकारी संदेश के समुचित रीति से कहने में दूत कभी आगा पीछा न करे ॥१०-१२॥

परस्य वाचि वक्त्रे दृष्ट्यां च प्रसादं वाक्यपूजनमिष्टपरिप्रश्नं गुणकथासङ्गमासन्नमासनं सत्कारमिष्टेषु स्मरणं विश्वासगमनं च लक्षयेत्तुष्टस्य ॥ १३ ॥ विपरीतमतुष्टस्य ॥ १४ ॥ तं ब्रूयात् ॥ १५ ॥ दूतमुखा वै राजानस्त्वं चान्ये च ॥१६॥ तस्मादुद्य तेष्वपि शस्त्रेषु यथोक्तंवक्तारस्तेषामन्तावसायिनो ऽप्यवध्याः ॥ १७ ॥ किमङ्ग पुनर्ब्राह्मणाः ॥ १८ ॥ परस्यैतद्वाक्यमेष दूतधर्म इति ॥ १६ ॥

जिस राजा के पास संदेश ले जाया गया है-यदि दूत से मिलने पर उसकी वाणी, मुख और दृष्टि पर प्रसन्नता की झलक आवे-दूत के वचन का आदर करे, प्रिय प्रश्न करे संदेश भेजने वाले राजा के गुणों के सुनने में मन लगावे, दूत को अपने समीप ही आसन दे, सत्कार करे, इष्ट मित्रों की कुशल पूछे तथा दूत पर विश्वास प्रकट करे-तो समझ लेना चाहिए-कि यह राजा प्रसन्न है। यदि इन बातों के विपरीत विरोधी राजा कुछ चेष्टा करे-तो समझ लेना चाहिए कि इसका ढंग अच्छा नहीं है। इस दशा में उससे कह दे-कि अप्रसन्नता की बात है-राजा तो दूतों के द्वारा ही बातचीत करते हैं। उसमें कटु या मधुर सब दूत को कहने का अधिकार है। तुम हो या अन्य कोई राजा हो-सबको दूत तो ऐसे ही भेजने पड़ते हैं और सबके दूत इसी तरह निर्भीकता से अपने संदेश को रखते हैं। दूतों में तो कोई चण्डाल भी नियुक्त हो-जावे-तो वह भी अवध्य ही है। दूत तो शस्त्र के उठा लेने पर यथोक्त बात ही कहता है या उसको कहनी चाहिए। इनमें यदि चण्डाल भी नियुक्त हो जावे-तो भी वह अवध्य ही है-फिर ब्राह्मण के अवध्य होने में तो कहना ही क्या है। दूत जो कुछ कहता है-वह तो राजा की बात कहता है। दूत का तो धर्म ही सत्य २ बात कह देना है ॥१३-१६॥

वसेदविसृष्टः अपूजया नोत्सिक्तः ॥ २० ॥ परेषु बलित्वं न मन्येत ॥ २१ ॥ वाक्यमनिष्टं सहेत ॥ २२ ॥ स्त्रियः पानं च वर्जयेत् ॥ २३ ॥ एकः शयीत ॥ २४ ॥ सुप्तमत्तयोर्हि भावज्ञानं दृष्टम् ॥ २५ ॥

जब तक राजा विदा न करे-दूत वहीं निवास करे। राजा के सत्कार से दूत को घमण्ड नहीं करना चाहिए। शत्रुओं के मध्य में पहुंचकर अपने बल का अभिमान न दिखावे। अनिष्टवाक्य भी कोई बोले, तो-उसे भी सह लेवे। दूत को पर स्त्री गमन और सुरापान बिल्कुल नहीं करना चाहिए तथा उसे सोना भी अकेला ही चाहिए। यदि दूत सुरापान करके मद में पागल होगा। या सोता हुआ कभी बड़-बड़ा बैठेगा-तो दूत के मन की गुप्त बात का बाहर आ जाना बहुत कुछ सम्भव है-इससे दूत को कभी सुरापान और अन्य के साथ शयन नहीं करना चाहिए ॥२०-२५॥

कृत्यपक्षोपजापमकृत्यपक्षे गूढप्रणिधानं रागापरागौ भर्तरिरन्ध्रं च प्रकृतीनां तापसवैदेहकव्यञ्जनाभ्यामुपलभेत ॥ २६ ॥ तयोरन्तेवासिभिश्चिकित्सक-पाषण्डव्यञ्जनोभयवेतनैर्वा ॥ २७ ॥ तेषामसंभाषायां याचकमत्तोन्मत्तसुप्तप्रलापैः ॥२८॥ पुण्यस्थानदेवगृहचित्रलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारमुपलभेत ॥ २९ ॥ उपलब्ध-स्योपजापमुपेयात् ॥ ३० ॥

दूत, शत्रु देश में तोड़ने फोड़ने योग्य व्यक्तियों को तोड़ फोड़कर अपनी ओर मिलाले। जो तोड़ने फोड़ने में नहीं आवें-उनका सूक्ष्म दृष्टि से ज्ञान प्राप्त करे। विरोधी राजा के रन्ध्र (त्रुटियां) तथा प्रजा का अनुराग और द्वेष तापस तथा वैदेहक (व्यापारी) रूपधारी अपने गुप्तचरों से पता लगाता रहे, इन तापस और वैदेहक गुप्तचरों के शिष्य, वैद्य, तथा अन्य बनावटी वेषधारी, एवं दोनों ओर से वेतन लेने वाले गुप्तचरों से भी पूर्वोक्त बातों का पता लगाया जा सकता है। यदि इन लोगों के साथ बातचीत का अवसर न मिल सके-तो याचक (भिखारी) मत्त (नशेबाज) उन्मत्त (मूर्ख) तथा सुप्त व्यक्तियों के प्रलापों से इन बातों की जानकारी प्राप्त करे। उसके अतिरिक्त तीर्थ स्नान, देवालय, चित्रशाला, तथा अन्य लेखन कला आदि के संकेतों के द्वारा विरोधी राष्ट्र के समाचारों का पता लगाले। जब पता लग जावे-जो जिसकी तोड़ फोड़ करनी है, उसे तोड़ फोड़ देवे ॥२६-३०॥

परेण चाक्तः स्वासां प्रकृतीनां परिमाणं नाचक्षीत ॥ ३१ ॥ सर्वं वेद भवानिति ब्रूयात् ॥ ३२ ॥ कार्यसिद्धिकरं वा ॥ ३३ ॥

यदि शत्रु राजा कुछ ढंग से अपने राजा का पता लगावे-तो अपने राज्य के अमात्य या प्रजा का कुछ भी पता न देवे। आप सब कुछ जानते हैं-मैं क्या करूं। इस समय भी जो बोले वह अपने कार्य की सिद्धि करने वाला वचन ही बोले ॥३१-३३॥

कार्यस्यसिद्धावुपरुध्यमानस्तर्कयेत् ॥ ३४ ॥ किं भर्तुर्मे व्यसनमासन्नं पश्यन् ॥ ३५ ॥ स्वं वा व्यसनं प्रतिकर्तुकामः ॥ ३६ ॥ पार्ष्णिग्राहासारावन्तः कोपमाटविकं वा समुत्थापयितुकामः॥ ३७ ॥ मित्रमाक्रन्दं वा व्यापादयितुकामः ॥ ३८ ॥ स्वं वा परतो विग्रहमन्तः कोपमाटविकं वा प्रतिकर्तुकामः ॥ ३९ ॥ संसिद्धं मे भर्तुर्यात्राकालमभियन्तुकामः सस्यकुप्यपण्यसंग्रहं दुर्गकर्म बलसमुत्थानं वा कर्तुकामः ॥ ४० ॥ स्वसैन्यानांवा व्यायामदेशकालावाकांक्षमाणाः॥ ४१ ॥ परिभवप्रमदाभ्यां वा ॥ ४२ ॥ संसर्गानुबन्धार्थी वा ॥४३॥ मामुपरुणद्धीति ॥ ४४ ॥

इसके अतिरिक्त कार्य सिद्धि का वचन देकर विरोधी राजा इनको रोके रखे-तो रोका हुआ दूत, यह विचार करे, कि क्या इसने कोई मेरे स्वामी के सम्बन्ध में समीप ही विपत्ति का अनुमान किया है या यह मुझे रोककर इस काल में अपनी त्रुटि को पूरा कर रहा है। यह कहीं हमारे राजा के किसी अन्य शत्रु या शत्रु के मित्र तथा किसी वन के राजा को हमारे राजा के विरुद्ध करने का तो प्रयत्न नहीं कर रहा है। यह राजा कहीं हमारे राजा के आगे पीछे के सहायक मित्रों के मारने की घात में तो नहीं है। कहीं इसका स्वयं दूसरे राजा के साथ युद्ध या किसी वन के साथ आन्तरिक द्वेष तो नहीं ठन रहा है जिसका इस मध्य में प्रतीकार करना चाह रहा हो। मेरे स्वामी के चढ़ाई के इस उचित समय को यह टलाना तो नहीं चाह रहा है। इसकी इच्छा धान्य, चारा, लोहा-तांबा आदि धातु, दुर्गों (किलो) की क्रिया (मरम्मत) या सेना की तय्यारी की तो नहीं है। यह अपनी सेना के व्यायाम (क़वायद) कराने तथा उसके हारने की सम्भावना या आलस्य में पड़ी रहने के कारण देशकाल की प्रतीक्षा में तो तत्पर नहीं हो रहा है। किस सहयोग या सम्बन्ध को विचार कर मुझे रोका है-दूत इन सब बातों पर विचार करे ॥३४-४४॥

ज्ञात्वा वसेदपसरेद्वा ॥ ४५ ॥ प्रयोजनमिष्टमवेक्षेत वा ॥ ४६ ॥ शासनमनिष्टमुक्त्वा बन्धवधभयादविसृष्टो व्यपगच्छेत् ॥ ४७ ॥ अन्यथा नियम्येत ॥ ४८ ॥

इन सब बातों में से विचार कर दूत शत्रु राजा के राष्ट्र में ठहरने या नहीं ठहरने का विचार निश्चित करे-या वहीं ठहरा हुआ अपने स्वामी के प्रिय प्रयोजन की सिद्धि का उपाय करे। अपने स्वामी का संदेश सुनाते हुए विरोधी राजा को वह बुरा प्रतीत हो और जो वह दूत को बन्धन या वध में डालना चाहे-तो विना राजा से पूछे ही वहां से निकल भागे। यदि दूत सावधानी न रखे तो वह पकड़ा जा सकता है॥ ४५-४८ ॥

प्रेषणं संधिपालत्वं प्रतापो मित्रसंग्रहः।
उपजापः सुहृद्भेदो गूढदण्डातिसारणम् ॥ ४९ ॥
बन्धुरत्नापहरणं चारज्ञानं पराक्रमः।
समाधिमोक्षो दूतस्य कर्म योगस्य चाश्रयः ॥ ५० ॥

शत्रु के देश में अपना संदेश भेजना, पूर्व में की हुई सन्धि के नियमों का पालन कराना, अपने प्रताप का प्रकट करवाना, मित्रों का इकट्ठे रखना, तोड़ने फोड़ने योग्य व्यक्तियों को तोड़ लेना, शत्रु के मित्रों में फूट डलवाना, तथा गुपचुप दण्ड देने की व्यवस्था करना, शत्रु के बन्धु-बान्धव रूपी अच्छे २ व्यक्तियों का संग्रह कराना, गुप्तचरों का ज्ञान प्राप्त करना, पराक्रम का प्रयोग, सन्धि के रूप में छोड़े हुए राजकुमारों आदि का छुड़वाना तथा अपने कार्य की सिद्धि के निमित्त मारण आदि प्रयोगों का आश्रय लेना-ये दूतों के कर्म माने गए हैं॥ ४९-५० ॥

स्वदूतैः कारयेदेतत्परदूतांश्च रक्षयेत्।
प्रतिदूतापसर्पाभ्यां दृश्यादृश्यैश्च रक्षिभिः ॥ ५१ ॥

राजा अपने दूतों से यह सब कुछ करावे और शत्रु के दूतों पर दृष्टि रखे। शत्रु के दूत का पता दूसरे दूत, गुप्तचर, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, रक्षकों (सिपाहियों) द्वारा लगाता रहे॥ ५१ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे दूतप्रणिधिः षोडशो ऽध्यायः ॥ १६ ॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिकअधिकरण में दूतों के कर्मों के वर्णनका सोलहवां अध्याय समाप्त हुआ।



सत्रहवां अध्याय

तेरहवां प्रकरण

राज पुत्रों से राजा की रक्षा।

रक्षितो राजा राज्यं रक्षत्यासन्नेभ्यः परेभ्यश्च ॥ १ ॥ पूर्वं दारेभ्यः पुत्रेभ्यश्च ॥२॥ दाररक्षणं निशान्तप्रणिधौ वक्ष्यामः ॥३॥ पुत्ररक्षणम् ॥ ४ ॥

अपने समीप के बन्धु-बान्धव, और शत्रुके दुरुपायों से सुरक्षित ही राजा अपने राज्य को चला सकता है! सबसे प्रथम राजा की रक्षा अपनी भार्या और पुत्रों से ही करनी है। स्त्रियों से रक्षा करने के उपायों का वर्णन निशान्त-प्रणिधि नामक प्रकरण में करेंगे। अबतो पुत्रों से सुरक्षित रहने के उपायों का वर्णन किया जाता है॥ १-४ ॥

जन्मप्रभृति राजपुत्रान्रक्षेत् ॥५॥ कर्कटकसधर्माणो हिजनकभक्षा राजपुत्राः ॥ ६ ॥ तेषामजातस्नेहे पितर्युपांशुदण्डः श्रेयानिति भारद्वाजः ॥ ७ ॥

राजा को उचित है, कि राजकुमारों के जन्म से लेकर उन पर निगरानी रखे। राज पुत्रों का स्वभाव होता है, कि वे कैंकड़े जलजन्तु की भांति अपने-पिता के ही भक्षक होते हैं। भरद्वाज-मुनि का मत है, कि राजा अपने पुत्रों पर स्नेह न करके उनको गुपचुप मरवा-देवे-यही अच्छी बात है॥५-७॥

नृशंसमदुष्टवधः क्षत्रबीजविनाशश्चेति विशालाक्षः ॥ ८ ॥ तस्मादेकस्थानावरोधः श्रेयानिति ॥ ९ ॥

इस पर विशालाक्ष आचार्य का मत है, कि इस प्रकार बालक का वध तो बड़ा ही नीच कर्म है और यह हो भी कैसे सकता है-यदि सारे ही राजकुमार मरवा दिए जावें-तो तत्काल ही नाश हो जावेगा। इससे यही अच्छा है। कि किसी स्थान पर उनको रख देवे॥८-९॥

अहिभयमेतदिति पाराशराः ॥ १० ॥ कुमारो हि विक्रमभयान्मां पिता रुणद्धीति ज्ञात्वा तमेवाङ्के कुर्यात् ॥ ११ ॥ तस्मादन्तपालदुर्गे वासः श्रेयानिति ॥ १२ ॥

पराशर के मत के मानने वाले इस प्रकार बन्धन में डालने को ही अहिभय कहते हैं सांप अपने मारने के भय से ही मनुष्य को काटता है। राजकुमार बन्धन के कारण उलटा शत्रु बन जाता है। राजकुमार जब यह जान लेगा कि मेरा पिता

मेरे कुछ आक्रमण कर देने आदि के भय से मुझे कारागार में डालना चाहता है-तो वह उससे भी प्रथम राजा के पकड़ने का उपाय करेगा, इसलिए उसको क़ैद न करके अपनी सीमा के अन्त के दुर्गपाल (किलेदार) के पास उसे स्वतन्त्रता से रख देवे। ॥ १०-१२ ॥

औरभ्रकं भयमतदिति पिशुनः ॥ १३ ॥ प्रत्यापत्तेर्हि तदेव कारणं ज्ञात्वान्तपालसखः स्यात् ॥ १४ ॥ तस्मात्स्वविषयादपकृष्टे सामन्तदुर्गे वासः श्रेयानिति ॥ १५ ॥

पिशुन (नारद) आचार्य का मत है, कि इसमें तो मेंढे का सा भय खड़ा हो जावेगा। मेढ़ा टक्कर मारने के निमित्त पीछे हटता है-इस तरह उस की टक्कर प्रबल पड़ती है। इसी तरह दूरी पर स्थित राजकुमार भी दृढ़ षड्यन्त्र कर सकता है। जब उसको अपनी इस आपत्ति का ज्ञान होगा-और इसका कारण जान लेगा-तो वह सीमान्तपाल से मित्रता करके आक्रमण करेगा। सब कारणों को सोच कर अपने राष्ट्र से दूर किसी सामन्त के दुर्ग में अपने राजकुमार के रखने की राजा व्यवस्था करे ॥ १३-१५ ॥

वत्सस्थानमेतदिति कौणपदन्तः ॥ १६ ॥ वत्सेनेव हि धेनुं पितरमस्य सामन्तो दुह्यात् ॥ १७ ॥ तस्मन्मातृबन्धुषु वासः श्रेयानिति ॥ १८ ॥

कौणपदन्त (भीष्म) आचार्य का मत है, कि यह भी ढंग अच्छा नहीं है। जैसे गाय का बछड़ा दूसरे को सौंप दिया जावे-इस उपाय की भी वही दशा है। वह सामन्त इस पुत्र का बहाना बना राजा से मनमाना द्रव्य दुहता रहेगा-जैसे बछड़े से कोई गाय का दूध दुह लेता है। इससे तो माता के बन्धुओं में राजकुमार को रख देवे ॥ १६-१८॥

ध्वजस्थानमेतदिति वातव्याधिः ॥ १९ ॥ तेन हि ध्वजेनादितिकौशिकवदस्य मातृबान्धवा भिक्षेरन् ॥ २० ॥ तस्माद्ग्राम्यधर्मेष्वेनमवसृजेयुः ॥ २१ ॥ सुखोपरुद्धा हि पुत्राः पितरं नाभिद्रुह्यन्तीति ॥ २२ ॥

वात व्याधि आचार्य इस मत के भी-विरुध हैं। वे कहते हैं, इस तरह तो राज कुमार की स्थिति ध्वजा के समान हो जावेगी। जैसे अदिति (देवों की मूर्त्ति दिखा कर भिक्षा मांगने वाली) और कौशिक (सर्प को दिखा कर मांगने वाले सपेरे) के तुल्य इसके मातृ-कुल के बान्धव करेंगे। वे इस राजकुमार को दिखा कर प्रत्येक सामन्त, प्रजा के मुख्य पुरुष आदि से रुपया बटोरेंगे। इससे तो इस राजकुमार को स्त्रियों के भोग विलास में फंसा देवे। सुख में लिपटाये हुए पुत्र, अपने पिता से द्रोह नहीं करते हैं ॥ १९-२२ ॥

जीवन्मरणमेतदिति कौटल्यः ॥ २३ ॥ काष्ठमिव हि घुणजग्धं राजकुलमविनीतपुत्रमभियुक्तमात्रं भज्येत ॥ २४ ॥ तस्मादृतुमत्यां महिष्यामृत्विजश्चरुमैन्द्रबार्हस्पत्यं निर्वपेयुः ॥ २५ ॥ आपन्नसत्वायां कौमारभृत्यो गर्भभर्मणि प्रजनने च वियतेत ॥ २६ ॥ प्रजातायाःपुत्रसंस्कारं पुरोहितः कुर्यात् ॥ २७ ॥ समर्थं तद्विदो विनयेयुः ॥ २८ ॥

आचार्य कौटल्य इसे बहुत बुरा मानता है। इस तरह तो पुत्र को जीते ही मार देना है। घुण कीड़े से खोखले किये हुए काष्ठ की भांति अशिक्षित पुत्र से बिना किसी युद्ध आदि के ही राजवंश का नाश हो जाता है। इससे जब राजमहिषी ऋतुमती हो-तो ऋत्विक् लोग इन्द्र और बृहस्पति देवता के उद्देश्य से हवन करें। जिससे राजपुत्र ऐश्वर्य शाली और विद्यावान् हो सके। जब रानी के गर्भ स्थिति हो जावे-तब चिकित्सा शास्त्रानुसार गर्भ के पुष्ट करने वाली औषध और सुख पूर्वक बालक के उत्पन्न हो जाने की औषधियों का सेवन कराना चाहिए। जब पुत्र उत्पन्न हो जावे-तब उसका संस्कार पुरोहित के द्वारा बड़े प्रेम से राजा करे। जब राजकुमार समर्थ होजावे-तब उसे अच्छी तरह प्रत्येक विषयों के पृथक् २ विद्वानों से पढ़वावे ॥ २३-२८ ॥

सत्त्रिणामेकश्चैनं मृगयाद्यूतमद्यस्त्रीभिः प्रलोभयेत् ॥ २९ ॥ पितरि विक्रम्य राज्यं गृहाणेति ॥ ३० ॥ तदन्यः सत्त्री प्रतिषेधयेदित्याम्भीयाः ॥३१॥

आम्भ आचार्य के अनुयायी ऐसा कहते हैं, कि राजकुमार के सहचर इसको मृगया (शिकार) द्यूत (जुआ) मद्य (सुरा) और सुन्दर स्त्रियों के जाल में फंसाने की चेष्टा करें। यहां तक उससे कहें-कि तुम अपना षड्यन्त्र करके पिता का राज्य छीन लो। दूसरा गुप्तचर सहचर इस कथन का खण्डन करे ॥ २९-३१ ॥

महादोषमबुद्धबोधनमिति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ नवं हि द्रव्यं येन येनार्थजातेनोपदिह्यते तत्तदाचूषति ॥ ३३ ॥ एवमयं नवबुद्धिर्यद्यदुच्यते तत्तच्छास्त्रोपदेशमिवाभिजानाति ॥ ३४ ॥ तस्माद्धर्ममर्थं चास्योपदिशेन्नाधर्ममनर्थं च ॥ ३५ ॥

कौटल्याचार्य (चाणक्य) इसे बहुत बुरी बात कहते हैं। ऐसे तो भोले भाले राजकुमार को अकारण ही विरोधी बनाना है। नये मिट्टी के बर्तन में घृत तेल आदि जो पदार्थ डाला जावेगा। वह उसी को चूस लेगा, इसी तरह नवीन आयु के नई बुद्धिवाले राजकुमार को जो सिखाया जावेगा, वह उसे ही शास्त्रोपदेश की भांति पकड़ बैठेगा। इससे इसे धर्म और नीति की ही शिक्षा देवे-इस तरह उलट पलट सिखाकर उसकी परीक्षा लेना उचित नहीं है। अधर्म और अनीति की शिक्षा बुरे संस्कार उत्पन्न करती है ॥ ३२-३५ ॥

सत्त्रिणस्त्वेनं तव स्म इति वदन्तः पालयेयुः ॥ ३६ ॥ यौवनोत्सेकात्परस्त्रीषु मनः कुर्वाणमार्याव्यञ्जनाभिः स्त्रीभिरमेध्याभिः शून्यागारेषु रात्रावुद्वेजयेयुः ॥ ३७ ॥

राजकुमार के साथी उससे अपना प्रेम दिखाते हुए उसकी पालना करें। यदि यौवन के मद से राजकुमार का मन स्त्रियों में फंस भी जावे-तो दुराचारिणी स्त्रियां आर्यवेष भूषा बनाकर रात में शून्य वासगृह में उसको इन कुकर्मों से अरुचि करा दें। इसका पुरस्कार स्त्रियों को दिया जावे। ॥ ३६-३७ ॥

मद्यकामं योगपानेनोद्वेजयेयुः ॥ ३८ ॥ द्यूतकामं कापटिकैः पुरुषैरुद्वेजयेयुः ॥ ३९ ॥ मृगयाकामं प्रतिरोधकव्यञ्जनैस्त्रासयेयुः ॥ ४० ॥ पितरि विक्रमबुद्धं तथेत्यनुप्रविश्य भेदयेयुः ॥ ४१ ॥

जो राजकुमार मद्यपान की ओर बढ़े-तो उसे किसी औषधि के योग को पिला कर मद्य से भी ग्लानि करा दे। यदि जुआ की ओर राजकुमार की प्रवृत्ति हो गई-तो उसे कपट करने वाले जुआरी पुरुषों से दुःखी करवावे। इसी तरह मृगया (शिकार) के व्यसन की ओर झुके हुए राजकुमार को वन में नकली लुटेरे पुरुषों से तंग करवावे तथा जो यहां तक राजकुमार बढ़ जावे, कि पिता का राज्य छीनने की चेष्टा करे-तो गुप्तचरों से इस बात का पता लगने पर उसके साथ मिलकर गुप्तचर उसे खूब छकावें ॥ ३८-४१ ॥

अप्रार्थनीयो राजा विपन्ने घातः संपन्ने नरकपातः संक्रोशः प्रजाभिरेकलोष्टवधश्चेति ॥ ४२ ॥

जब राजकुमार अकृत कार्य (नाकामयाब) हो जावे-तो उसको उसके साथी समझावे-देखो राजा के विरोध में यदि तुम हार गए-तो नरक में पड़ोगे। प्रजा के लोग निन्दा करेंगे और प्रजा अधिक असन्तुष्ट हो गई-तो पत्थर से मार २ कर तुम्हारा ढेर कर देगी ॥ ४२ ॥

विरागं प्रियमेकपुत्रं वा बध्नीयात् ॥ ४३ ॥ बहुपुत्रः प्रत्यन्त मन्यविषयं वा प्रेषयेद्यत्र गर्भः पण्यं डिम्बो वा न भवेत् ॥ ४४ ॥ आत्मसंपन्नं सैनापत्ये यौवराज्ये वा स्थापयेत् ॥ ४५ ॥

यदि पुत्र सचमुच विरक्त हो गया हो तो-चाहे वह एक ही प्रिय पुत्र हो-उसे बन्धन में डाल दे। यदि राजा के बहुत से पुत्र हों तो सीमा के समीप या अन्य देश में राज विरोधी पुत्र को भेज देवे। जिससे न तो गर्भ रहे, न बालक पेट में पड़े और न बालक उत्पन्न हो-अर्थात् किसी बात का बीज ही न पड़े। यदि राजकुमार योग्य गुणों से सम्पन्न हो तो उसको सेनापति या युवराज बना देवे ॥ ४३-४५ ॥

बुद्धिमानाहार्यबुद्धिर्दुर्बुद्धिरिति पुत्रविशेषाः ॥ ४६ ॥ शिष्यमाणो धर्मार्थावुपलभते चानुतिष्ठति च बुद्धिमान् ॥ ४७ ॥ उपलभमानो नानुतिष्ठत्याहार्यबुद्धिः ॥ ४८ ॥ अपायनित्यो धर्मार्थद्वेषी चेति दुर्बुद्धिः ॥ ४९ ॥

राज-पुत्र तीन प्रकार के होते हैं। (१) बुद्धिमान् (२) आहार्य बुद्धि, (३) दुर्बुद्धि। जो पुत्र सिखाने पर धर्म और नीति की शिक्षा को ठीक २ ग्रहण कर लेता है। और ठीक

उसको आचरण करता है-तो वह बुद्धिमान् पुत्र है। जो धर्म और नीति को समझ लेता है-परन्तु तदनुकूल आचरण नहीं करता-वह आहार्य बुद्धि पुत्र कहाता है। जो सदा अपने पिता के ऊपर विपत्ति लाने के उपाय सोचता रहता है और धर्म तथा नीति के विरुद्ध चलता है-वह दुर्बुद्धि है। ॥४६-४९॥

स यद्येकपुत्रः पुत्रोत्पत्तावस्य प्रयतेत ॥ ५० ॥ पुत्रिकापुत्रानुत्पादयेद्वा ॥ ५१ ॥

यदि दुर्बुद्धि पुत्र अकेला हो-तो राजा उससे पुत्र उत्पन्न कराने का प्रयत्न करे। यदि पुत्र के पुत्र उत्पन्न न हो-तो अपनी पुत्री के पुत्र को योग्य बनाकर राज्य का अधिकार देदे ॥५०-५१॥

वृद्धस्तु व्याधितो वा राजा मातृबन्धुकुल्यगुणवत्सामन्तानामन्यमेन क्षेत्रे बीजमुत्पादयेत् ॥ ५२ ॥ न चैकपुत्रमविनीतं राज्ये स्थापयेत् ॥५३ ॥

यदि राजा, वृद्ध हो गया-या बीमार रहता हो-तो अपने मातृकुल, तथा किसी अन्य गुणवान् सामन्त से अपनी भार्या में नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न कराले, परन्तु अशिक्षित दुष्ट पुत्र को राज्य का अधिकार न सौंपे ॥५२-५३॥

बहूनामेकसंरोधः पिता पुत्रहितो भवेत् ।
अन्यत्रापद ऐश्वर्यं ज्येष्ठभागि तु पूज्यते ॥ ५४ ॥

यदि बहुत पुत्र हों और उनमें एक दुराचारी हो-तो उस दुराचारी को रोक रखे। इस तरह की परिस्थिति न होने पर तो राजा अपने पुत्रों की हितचिन्ता में तत्पर रहे। यदि किस आपत्ति की सम्भावना न हो-तो राज्य अधिकार ज्येष्ठ पुत्र को ही देना चाहिए ॥५४॥

कुलस्य वा भवेद्राज्यं कुलसङ्घो हि दुर्जयः ।
अराजव्यसनाबाधः शश्वदावसति क्षितिम् ॥ ५५ ॥

इन सबसे तो यही उत्तम है; कि राज्यसिंहासन पर सारे ही राजवंश की पञ्चायत का अधिकार हो। कुल-समूह का शत्रु द्वारा जीता जाना बड़ा कठिन है। इस प्रकार राज्य पर कोई विपत्ति क्लेश या बाधा नहीं आती और राज्य शासन सदा ठीक चलता रहता है ॥५५॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमऽधिकरणे राजपुत्ररक्षणं सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

इति श्रीकौटलीयार्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथमअधिकरण में राज-पुत्र रक्षण का सत्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।



अठारहवां अध्याय

१४-१५ वां प्रकरण

अवरुद्ध (निगरानी में रखे हुए) राजकुमार के कर्तव्य और उसके साथ राजा का व्यवहार

राजपुत्रः कृच्छ्रवृत्तिरसदृशे कर्मणि नियुक्तः पितरमनुवर्तेत ॥ १ ॥ अन्यत्र प्राणाबाधकप्रकृतिकोपकपातकेभ्य ॥ २ ॥

यदि पिता ने किसी संदेह में आकर किसी राज-पुत्र को अवरुद्ध किया है, और उस समय उसका बड़ी कठिनाई से व्यवहार चल रहा है-या उसे अयोग्य कार्य में लगा दिया है, तो भी राज-पुत्र को पिता के ही अनुकूल चलना चाहिए. यदि राज पुत्र को प्राणों का भय उत्पन्न हो जावे या राज्य के शासक और प्रजा से बिगड़ने लगे-तथा अन्य कोई ऐसी ही बड़ी बुराई उत्पन्न होने लगे-तो राज पुत्र अपने पिता के विरुद्ध भी हो सकता है ॥१-२॥

पुण्यकर्मणि नियुक्तः पुरुषमधिष्ठातारं याचेत ॥ ३ ॥ पुरुषाधिष्ठितश्च सविशेषमादेशमनुतिष्ठेत् ॥ ४ ॥ अभिरूपं च कर्मफलमौपायनिकं च लाभं पितुरुपनाययेत् ॥ ५ ॥

यदि राजा ने अपने राज पुत्र को रोक तो दिया, परन्तु अनुचित कार्य में न लगाकर उचित कार्य में लगा दिया है, तो एक अधिष्ठाता (अधिकारी) को राजाज्ञा से प्राप्त करले। इस अधिकारी (प्राइवेट सैक्रेटरी) के साथ रह कर राज पुत्र विशेषनीति से राजा की आज्ञा का पालन करता है। जो अपने सौंपे हुए कार्य से धन की बचत हो या जो किसी से भेंट पूजा में धन मिला हो-उसको अपने पिता के पास भेज दे ॥३-५॥

तथाप्यतुष्यन्तमन्यस्मिन्पुत्रे दारेषु वा स्निह्यन्तमरण्यायापृच्छेत् ॥ ६ ॥ बन्धवधभयाद्वा यः सामन्तो न्यायवृत्तिर्धार्मिकः सत्यवागविसंवादकः प्रतिग्रहीता मानयिता चाभिपन्नानां तमाश्रयेत ॥ ७ ॥

इतना करने पर भी राजा प्रसन्न न हो और अन्य पुत्र और अपनी माता से पृथक् अन्य स्त्रियों से प्रेम करता हो-तो अपने प्राण बचाने के निमित्त उससे वन में चले जाने की आज्ञा लेले। राजा से बांध लेने या मरवा देने का भय खड़ा हो जावे-तो राज पुत्र, किसी न्याय वृत्ति वाले, धार्मिक, सत्यवादी, व्यर्थ की बातें न बनाने वाले अपने पास रखने को प्रसन्न, शरण में आये हुए का मान करने वाले, सामन्त का आश्रय लेले ॥६-७॥

तत्रस्थः कोशदण्डसंपन्नः प्रवीरपुरुषकन्यासंबन्धमटवीसंबन्धं कृत्यपक्षोपग्रहं वा कुर्यात् ॥८॥ एकचरः सुवर्णपाकमणिरागरूप्य हेम पण्या करकर्मान्तानाजीवेत् ॥ ९ ॥

उस सामन्त के आश्रय में रहकर राज-पुत्र, कोश और सेना का सञ्चय करे। बड़े २ वीरों को साथ लेले। किसी शक्तिशाली सामन्त की पुत्री से विवाह सम्बन्ध, समीप में स्थित किसी वन के राजा से मित्रता स्थापित करे। इसी तरह जो २ अपने पिता के पक्ष से फूटकर अपनी ओर आने को तय्यार हों-उन्हें अपनी ओर मिलाले। यदि राजकुमार को किसी की सहायता न मिले-तो वह सुवर्ण बनाना या सुवर्ण भस्म करना मणि, सुवर्ण, चांदी का क्रय-विक्रय तथा अन्य खनिज पदार्थों, के द्वारा अपनी जीविका करके धन सञ्चय करे ॥८-९॥

पाषण्डसङ्घद्रव्यमश्रोत्रियभोग्यं देवद्रव्यमाढ्यविधवाद्रव्यं वा गूढमनुप्रविश्य सार्थयानपात्राणि च मदनरसयोगेनातिसंधायापहरेत् ॥ १० ॥

किसी वेदपाठी के व्यवहार में नहीं आने वाले, देवता, पाषण्डी या अधर्मी पुरुषों तथा व्यभिचार आदि से धन कमा लेने वाली विधवा के द्रव्य को छुपकर छीन ले या किसी विदेशी व्यापारी को नशीली चीजें खिलाकर उसके धन पर धोखे से अधिकार करले ॥१०॥

पारग्रामिकं वा योगमातिष्ठेत् ॥ ११ ॥ मातुः परिजनोपग्रहेण वा चेष्टेत ॥ १२ ॥

इसके अतिरिक्त जिस ग्राम पर अधिकार करने की योजना हो-उसमें कोई कार्य छेड़ दे। इसी तरह अपनी माता के पक्ष के बान्धव या सेवकों को अपनी ओर मिलाकर अपने कार्य की सिद्धि का प्रयत्न करे ॥११-१२॥

कारुशिल्पिकुशीलवचिकित्सकवाग्जीवनपाषण्डछद्मभिर्वा नष्टरूपस्तद्व्यञ्जनसखश्छिद्रे प्रविश्य राज्ञः शस्त्ररसाभ्यां प्रहृत्य ब्रूयात् ॥ १३ ॥

इसके अतिरिक्त बढ़ई, लुहार, गृहनिर्माणकर्ता, चित्रकार, गाने बजाने वाले, चिकित्सक, कथा कहानी व्याख्यान आदि से जीविका करने वाले, तथा पाषण्डी पुरुषों के वेष में होकर अपने रूप को छुपा कर अपने पिता के प्रमाद के स्थान पर पहुंचकर शस्त्र या विषरस से उसको मार डाले ॥१३॥

अहमसौ कुमारः सहभोग्यमिदं राज्यमेको नार्हति भोक्तुं तत्र ये कामयन्ते भर्तुं तानहं द्विगुणेन भक्तवेतनेनोपस्थास्य इति ॥ १४ ॥ इत्यवरुद्धवृत्तम् ॥१५॥

इसके अनन्तर वह राजकुमार अपने पिता के अधिकारी और मुख्यपुरुषों से कहे, कि मैं वही अमुक राजकुमार हूं। राज्य का उपभोग सब को मिल कर करना

चाहिये। हमारे पिता की तरह राज्य का अकेला ही उपभोक्ता न बने। जो मेरी भक्ति प्रदर्शन करेगा मैं उसको दुगना वेतन और भत्ता दूंगा। यहां तक बिना अपराध रोके हुए राजपुत्र के कर्तव्य का वर्णन किया गया। ॥ १४-१५ ॥

अवरुद्धं तु मुख्यपुत्रमपसर्पाः प्रतिपाद्यानयेयुः ॥१६॥ माता वा प्रतिगृहीता ॥ १७ ॥

यदि राजा ने किसी मुख्य राजकुमार पर अप्रसन्न होकर उसे बन्धन में डालकर कहीं एकान्त में रख दिया, तो अमात्य आदि मुख्य पुरुष अपना गुप्त रूप से भेष बदल कर उसे समझा बुझाकर ले आवें अथवा राजा का संकेत पाकर माता उसे सान्त्वना देकर ले आवे। ॥ १६-१७ ॥

त्यक्तं गूढपुरुषाः शस्त्ररसाभ्यां हन्युः ॥ १८ ॥ अत्यक्तं तुल्यशीलाभिः स्त्रीभिः पानेन मृगयया वा प्रसज्य रात्रावुपगृह्यानयेयुः ॥१९॥

यदि राजकुमार का बड़ा अपराध है और उसे निकालना ही आवश्यक है-तो गुप्त पुरुषों द्वारा शस्त्र या विष से उसको मरवा डाले। यदि राजा ने नहीं निकाला हो और राजकुमार स्वयं अप्रसन्न होकर निकल गया हो तथा षड्यन्त्र करना चाहता हो-तो-उसकी समान आयु वाली सुन्दर स्त्री-सुरापान, या शिकार के चक्कर में डाल कर उसे रात में पकड़ कर ले आवें। ॥ १८-१९ ॥

उपस्थितं च राज्येन ममोर्ध्वमिति सान्त्वयेत् ।
एकस्थमथ संरुन्ध्यात्पुत्रवान्वा प्रवासयेत् ॥ २० ॥
इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे ऽवरुद्धवृत्तमवरुद्धे च वृत्तिः
अष्टादशो ऽध्यायः ॥ १८ ॥

जब राजकुमार आवे-तो राजा उसको समझावे, मेरे अनन्तर यह तुम्हारा ही तो राज्य है। यदि पुत्र अकेला हो और समझाने पर भी नहीं मानता हो तो उसे बन्धन में डाल ले और जब अन्य पुत्र हो जावें-तब उसे निकाल दे। ॥ २० ॥

इति श्री कौटलीयार्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक अधिकरण में राजकुमार के रोकने या समझाने का अट्ठारवां अध्याय पूरा हुआ।

उन्नीसवां अध्याय

१६ वां प्रकरण

राजप्रणिधि

राजानमुत्तिष्ठमानमनूत्तिष्ठन्ते भृत्याः ॥ १ ॥ प्रमाद्यन्तमनुप्रमाद्यन्ति ॥२॥ कर्माणि चास्य भक्षयन्ति ॥ ३ ॥ द्विषद्भिश्चातिसंधीयते ॥४ ॥ तस्मदुत्थानमात्मनः कुर्वीत ॥५॥नाडिकाभिरहरष्टधा रात्रिं च विभजेत ॥६॥ छायाप्रमाणेन वा ॥७॥

जब राजा उद्दार आचरण से सम्पन्न होगा-तो उसके सेवक (अधिकारी) भी उन्नत विचार के ही होंगे। जो राजा प्रमाद (ग़फलत) करेगा तो उसके अनुचर भी प्रमादी होंगे। राजा उद्योग भी करेगा-तो ये उसको अपने प्रमाद के कारण नष्ट कर देंगे। यहां तब कि राजा को प्रमाद (गफ़लत सुरापानादि) में फंसा देख कर ये शत्रु तक से जा सन्धि करेंगे, इसलिये राजा को अपनी उन्नति का प्रयत्न अवश्य सावधानी से करते रहना उचित है। राजा अपने कार्य का विभाग (टाइम टेबिल) बना ले। वह रात और दिन को आठ २ घड़ियों में बांटे या छाया के घटने बढ़ने के (छाया घड़ी के) आधार पर समय का विभाग कर के राज्य कार्यों का सम्पादन करे ॥१-७॥

त्रिपौरुषी पौरुषी चतुरङ्गुला चछाया मध्याह्न इति पूर्वे दिवसस्याष्टभागाः ॥ ८ ॥ तैः पश्चिमा व्याख्याताः ॥ ९ ॥

छाया के प्रमाण से इस प्रकार समय विभाग किया जाया है। प्रातः जब तक तीन पुरुषों के बराबर छाया का प्रमाण हो-यह एक भाग, जब छाया का प्रमाण पुरुष के बराबर लम्बा रहे है-यह दूसरा भाग, जब चार अंगुल की छाया रह जावे-यह तीसरा भाग है। इस के अनन्तर का समय का चतुर्थ भाग समझे। इसी तरह उलटे क्रम से दिन के उत्तरार्ध के भी भाग बनालो। इस प्रकार दिन के आठ भाग हुए। ॥८-९॥

तत्र पूर्वे दिवसस्याष्टभागे रक्षविधानमायव्ययौ च शृणुयात् ॥ १० ॥

द्वितीये पौरजानपदानां कार्याणि पश्येत् ॥ ११ ॥ तृतीये स्नानभोजनं सेवेत ॥ १२ ॥ स्वाध्यायं च कुर्वीत् ॥ १३ ॥ चतुर्थे हिरण्यप्रतिग्रहमध्यक्षांश्च कुर्वीत ॥ १४ ॥

दिन के प्रथम अष्टम भाग में राजा, प्रजा की रक्षा के विधानों (पुलिस विभाग) को और राज्य की आय व्यय का श्रवण करे। दूसरे विभाग में नगर और राष्ट्र के कार्यों को देखें अर्थात् उनके अभियोग और व्यवहार (मुकदमे) सुने। दिन के तीसरे विभाग में स्नान भोजन का सेवन और स्वाध्याय करे और चतुर्थ विभाग में सुवर्ण का ग्रहण अर्थात् कर विभाग (माल के महकमे) का निरीक्षण और शासकों की नियुक्ति परिवर्तन आदि पर विचार करे ॥१०-१४॥

पञ्चमे मन्त्रिपरिषदा पत्रसंप्रेषणेन मंत्रयेत ॥ १५ ॥ चारगुह्यबोधनीयानि च बुद्ध्येत ॥ १६ ॥ षष्ठे स्वैरविहारं मंत्रं वा सेवेत ॥ १७ ॥ सप्तमे हस्त्यश्वरथायुधीयान्पश्येत् ॥ १८ ॥ अष्टमे सेनापतिसखो विक्रमं चिन्तयेत् ॥ १९ ॥ प्रतिष्ठितेऽहनि संध्यामुपासीत ॥ २० ॥

अब पांचवें दिन के भाग में पत्र (मिसल) पर मन्त्रि परिषद् की सम्मति लेनी हो-ले-ले। इसी समय गुप्तचरों की गुप्त वातों की-राजा जानकारी प्राप्त-करे। छठे विभाग में राजा की इच्छा है-जो उस की इच्छा में आवे-वह करे-मन्त्रणा कर ले। सातवें विभाग में हाथी, अश्व, रथ और शस्त्रों की देख रेख (पड़ताल) करे। आठवें भाग में सेनापति को बुलाकर उस के साथ युद्ध विषय पर बातचीत करे। इस प्रकार जब सायंकाल हो जावे-तो राजा उठ कर सन्ध्योपासन करे ॥ १५-२० ॥

प्रथमे रात्रिभागे गूढपुरुषान्पश्येत् ॥ २१ ॥ द्वितीये स्नानभोजनं कुर्वीत स्वाध्यायं च ॥ २२ ॥ तृतीये तूर्यघोषेण संविष्टश्चतुर्थपञ्चमौ शयीत ॥ २३ ॥ षष्ठे तूर्यघोषेण प्रतिबुद्धः शास्त्रमितिकर्तव्यतां च चिन्तयेत् ॥ २४ ॥ सप्तमे मंत्रमध्यासीत गूढपुरुषांश्च प्रेषयेत् ॥ २५ ॥ अष्टमे ऋत्विगाचार्यपुरोहितसखः स्वस्त्ययनानि प्रतिगृह्णीयात् ॥ २६ ॥ चिकित्सकमाहानसिकमौहूर्तिकांश्च पश्येत् ॥ २७ ॥

इसके अनन्तर रात्रि के प्रथम भाग में गुप्त-पुरुषों से वातचीत करे। दूसरे-रात्रि के भाग में स्नान भोजन और स्वाध्याय करे। तीसरे भाग (अर्ध प्रहर) में तूर्य ध्वनि के साथ रनिवास में प्रवेश करे और चौथे तथा पांचवे भाग में अर्थात् एक प्रहर तक शयन करे। छठे-भाग के अन्त में वही तुरीनाद (बाजों की ध्वनि) और गानों के साथ राजा निद्रा का परित्याग कर के उठे और उस समय नीति शास्त्र और दिन के आवश्यक कर्त्तव्य का विचार कर ले। सातवें भाग में गुप्तमन्त्रणा गुप्तचरों से करनी हो वह कर के उनको अपने कामों पर भेज दे-फिर रात्रि के आठवें भाग में ऋत्विक्, आचार्य और पुरोहित के साथ स्वस्तिवाचन पुण्याहवाचन करे।

इसके अनन्तर इसी-रात के विभाग में वैद्य, रसोई के कार्यकर्ता और ज्योतिषी से बातचीत करके अपने शरीर आदि के सम्बन्ध में विचार कर ले ॥ २१-२७॥

सवत्सां धेनुं वृषभं च प्रदक्षिणीकृत्योपस्थानं गच्छेत् ॥ २८ ॥ आत्मबलानुकूल्येन वा निशाहर्भागान्प्रविभज्य कार्याणि सेवेत ॥ २९ ॥

प्रातःकाल होने पर बछड़े सहित धेनु की परिक्रमा करके राजा (दरबार) में पहुंचे। यह राजा की दिन और रात्रि की चर्या बताई। इसके सिवा वह अपनी शक्ति की अनुकूलता के अनुसार रातदिन का विभाग कर सकता है और उनमें पृथक् २ कार्यों को देख सकता है। कार्य विभाग कैसे भी बनावे परन्तु राज्य कार्यों को राजा स्वयं देखे, उनमें कभी प्रमाद न करे ॥ २८-२९ ॥

उपस्थानगतः कार्यार्थिनामद्वारासङ्गं कारयेत् ॥ ३० ॥ दुर्दर्शो हि राजा कार्याकार्यविपर्यासमासन्नैः कार्यते ॥ ३० ॥ तेन प्रकृतिकोपमरिवशं वा गच्छेत् ॥ ३२ ॥

जब राजा दरबार में उपस्थित हो-तो जिनके जो काम हों-उनको बे-रोक टोक आने दे। यदि न्याय करने के समय राजा के पास सर्व साधारण पुरुषों की रोक-टोक होगी तो-आसन्न पुरुष (सरिश्तेदार आदि) राजा से उलट-पलट का काम करवा लेंगे। इससे प्रजा असन्तुष्ट होगी जिससे शत्रु के वश में चले जाना बहुत कुछ सम्भव है ॥ ३०-३२ ॥

तस्माद् देवताश्रमपाषण्डश्रोत्रियपशुपुण्यस्थानानां बालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथानां स्त्रीणां च क्रमेण कार्याणि पश्येत् ॥ ३३ ॥ कार्यगौरवात्ययिकवशेन वा ॥ ३४ ॥

प्रजा की रक्षा और शत्रु के आक्रमण से बचाव रखने के लिए राजा देवालय, मुनियों के आश्रम, पाखण्डियों के मठ, वेदशाला, पशुओं की शाला तथा धर्मशाला आदि का स्वयं निरीक्षण रखे। इसी तरह बालक, वृद्ध, रोगी व्यसनी (नशेबाज) अनाथ और स्त्रियों तक के कामों पर निगरानी रखे। कार्य की आवश्यकता और किसी काम के करने में देर की सम्भावना या अधिक समय लगाने की आवश्यकता हो-तो राजा अपने कार्यक्रम को तोड़ सकता है। ॥ ३३-३४ ॥

सर्वमात्ययिकं कार्यं शृणुयान्नातिपातयेत् ।
कृच्छ्रसाध्यमतिक्रान्तमसाध्यं वाभिजायते ॥ ३५ ॥

राजा को उचित है, कि जिन कार्यों के करने का समय निकला जा रहा हो-प्रथम उनको करें। उन आवश्यक कार्यों का समय न निकलने दे यदि समय पर करने योग्य कार्य का समय निकल गया-तो फिर वह कार्य कष्ट से पूरा होगा-या हो ही नहीं सकेगा ॥ ३५ ॥

अग्न्यगारगतः कार्यं पश्येद्वैद्यतपस्विनाम् ।
पुरोहिताचार्यसखः प्रत्युत्थायाभिवाद्य च ॥ ३६ ॥

राजा वैद्य और तपस्वियों के कार्यों को अग्निशाला में देखे या सुने। इस समय पुरोहित और आचार्य आदि की भी वही स्थिति होनी चाहिए और जिसका जैसा अभ्युत्थान और प्रणाम आदि करना है-राजा वैसा करे ॥ ३६ ॥

तपस्विनां तु कार्याणि त्रैविद्यैः सह कारयेत् ।
मायायोगविदां चैव न स्वयं कोपकारणात् ॥ ३७ ॥

राजा तपस्वियों के कार्यों को वेद के विद्वानों के साथ विचारे। जो प्रकृति के योग विज्ञान के कार्यों के करने वाले हों-उनके कामों का भी अकेला राजा विचार न करे। कहीं कोई त्रुटि रह जावेगी-तो ये लोग फिर राजा पर ही कुपित होंगे। यदि मन्त्री आदि के साथ विचार करेगा-तो ये लोग केवल राजा पर कुपित न होंगे ॥ ३७ ॥

राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञः कार्यानुशासनम् ।
दक्षिणावृत्तिसाम्यं च दीक्षितस्याभिषेचनम् ॥ ३८ ॥

अपनी उन्नति, यज्ञ, प्रजा से कराने योग्य कार्यों के अनुशासन (फरमान) जारी करना या व्यवहारों (मुकद्दमों) के निर्णय (फैसला) करना, दान देना, सारी प्रजा पर समान दृष्टि रख कर उसका पालन करना या शत्रु मित्र और उदासीन की देख रेख करके तदनुकूल वर्ताव करना तथा धर्मशास्त्रानुसार कर्तव्य कर्म में संलग्न होकर उसको पूरा ही करके छोड़ना ये सब राजा के व्रत माने गए हैं ॥ ३८ ॥

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥ ३९ ॥

प्रजा के सुख में सुख और प्रजा के हित में ही राजा को अपना हित समझना चाहिए। बात तो यह है, कि राजा का अपना प्रिय और हितकारी कोई कार्य पृथक् नहीं है। प्रजा प्रिय और हितकारी कार्य ही राजा का प्रिय और हितकर कार्य है ॥ ३९ ॥

तस्मान्नित्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम् ।
अर्थस्य मूलमुत्थानमनर्थस्य विपर्ययः ॥ ४० ॥

इस बात को ध्यान में रख कर राजा नित्य उद्योग में तत्पर हो-और नीति के अनुसार आज्ञा देता रहे। जो राजा नीति के अनुसार चलेगा, उसकी उन्नति होगी, और संकट उससे कोसों दूर भाग जावेगा ॥ ४० ॥

अनुत्थाने ध्रुवो नाशः प्राप्तस्यानागतस्य च ।
प्राप्यते फलमुत्थानाल्लभेत चार्थसंपदम् ॥ ४१ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे राजप्रणिधिः एकोनविंशो ऽध्यायः ॥१९॥

यदि राजा अपनी उन्नति के उपायों में तत्पर नहीं होगा तो पायी हुई और आगे प्राप्त होने वाली सारी सम्पत्तियों को खो बैठता है। जब नीति के अनुसार राजा बढ़ने की चेष्टा करता है, तभी उसे फल और धन तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ॥४१॥

इति श्री कौटलीयार्थशास्त्र में विनयाधिकरण प्रकरणान्तर्गत राज प्रणिधि का उन्नीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



बीसवां अध्याय

सतरहवां प्रकरण

निशान्त प्रणिधि

(राज भवन के निर्माण आदि के वर्णन को निशान्त प्रणिधि कहते हैं)

वास्तुकप्रशस्ते देशे सप्राकारपरिखाद्वारमनेककक्ष्यापरिगतमन्तः पुरं कारयेत्॥१॥कोशगृहविधानेन वा मध्ये वासगृहं गूढभित्तिसंचारं मोहन गृहं तन्मध्ये वा वासगृहं भूमिगृहं वासन्नकाष्ठचैत्यदेवतापिधानद्वारमनेकसुरुङ्गासंचारं प्रासादं वा गूढभित्तिसोपानं सुषिरस्तम्भप्रवेशापसारं वा वासगृहं यन्त्रबद्धतलावपातं कारयेत् ॥ २ ॥

गृहनिर्माण विद्या के जानने वाले विद्वान् जिस प्रदेश की प्रशंसा करें, उस स्थान पर राजा अनेक कक्ष्यओं (मंजिल) से युक्त अन्तःपुर (रहने का महल) बनावे। इस प्रकार के पर कोटा और खाई भी बनानी चाहिए। कोश गृह के निर्माण की विधि के अनुसार (अधि० २-५) कोश गृह बनवा कर उसके मध्य में वासगृह बनवावे। गुप्त भींत बनवा कर भूल भुलैया के मध्य में भी वासगृह बनवाया जाता है-इसे मोहनगृह कहते हैं। इसी तरह भूमिगृह (भूमि के नीचे तहखाना) बनवावे, काष्ठ के संग्रह बाग, या देव-मन्दिर से राजगृह का द्वार छुपा हुआ होना चाहिए। जो प्रासाद (महल) बने, उसमें अनेक निकलने की सुरङ्ग होवें। राजगृह की सीढ़ी इतनी छुपी बनवावे, जिस में सहसा मनुष्य न पहुंच सके। जहां तक हो पोले खम्भों के द्वारा आने जाने का मार्ग बनवावे। इसके अतिरिक्त

किसी यन्त्र पर राजा के महल की मंजिलों का खड़ा होना या गिर जाना सम्भव हो-ऐसा राजगृह वनवा लेना चाहिए ॥१-२॥

आपत्प्रतीकारार्थमापदि वा कारयेत् ॥ ३ ॥ अतो ऽन्यथा वा विकल्पयेत् ॥ ४ ॥ सहाध्ययिभयात् ॥ ५ ॥

आपत्ति से बचने के लिए राजा को ऐसे घर वनवाने का विधान किया गया है। आपत्ति आने की आशङ्का होते ही ऐसे राजगृह राजा वनवाले। यदि विरोधी राजा के भी इस प्रकार के घर वनवा लेने की विधि के ज्ञान होने की सम्भावना हो और वह इन घरों का पता लगा सकेगा-यह सम्भावना हो-तो इसमें उलट फेर करके चतुराई से अन्य प्रकार के राजा गुप्त राजगृह वनवावे ॥३-४॥

मानुषेणाग्निना त्रिरपसव्यं परिगतमन्तः पुरमग्निरन्यो न दहति ॥ ६ ॥ न चात्रान्यो ऽग्निर्ज्वलति ॥ ७ ॥ वैद्युतेन भस्मना मृत्संयुक्तेन करकवारिणा-वलिप्तं च ॥ ८ ॥

मनुष्य की चिता की आग से तीन वार दायीं ओर से अन्तःपुर को धूनी देदे-तो अन्य आग अन्तःपुर को नहीं जला सकती है। अथर्व वेद के इस प्रकार के मन्त्रों के द्वारा तीन परिक्रमा करनी चाहिए-इस दशा में अन्य अग्नि प्रज्वलित नहीं होती है। इसी प्रकार विजली से जले हुए वृक्ष आदि की भस्म को मिट्टी में मिलाकर धतूरे के पानी के साथ राज भवन में लीप दे-तो इससे भी अन्य अग्नि राजगृह को नहीं जला सकती है ॥ ६-८ ॥

जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकाभिरक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य प्रतानेन वा गुप्तं सर्पा विषाणि वा न प्रसहन्ते ॥ ९ ॥

जीवन्ती, श्वेता, (शंख पुष्पी) मुष्कक, (लोंध) के पुष्प वन्दाक (अमरवेल) अथवा सहँजने के वृक्षपर उत्पन्न पीपल के प्रतान (दाढ़ी) से अभिरक्षित राजगृह में सर्प या अन्य किसी प्रकार के विष का प्रयोग सफल नहीं हो सकता है ॥९॥

मार्जारमयूरनकुलपृषतोत्सर्गः सर्पान्भक्षयति ॥ १० ॥ शुक-शारिका भृङ्ग-राजो वा सर्पविषशङ्कायां क्रोशति ॥ ११ ॥ क्रौञ्चो विषाभ्याशे माद्यति ॥ १२ ॥

विलाव, मोर, नौला, और मृग आदि सर्प भक्षक जन्तुओं का राज घर में छोड़ देना सर्पों को खा जाता है। शुक (तोता) सारिका (मैना) या भ्रमर-अन्न-आदि में सर्प के विप की आशङ्का होते ही या घर में सर्प के आते ही चिल्लाने लगते हैं। क्रौंच पक्षी (राजहंस) विप के घर में आते ही मूर्च्छित हो-जाता है ॥१०-१२॥

ग्लायति जीवंजीवकः ॥ १३ ॥ म्रियते मत्तकोकिलः॥ १४ ॥ चकोरस्याक्षिणी विरज्येते ॥ १५ ॥ इत्येवं अग्निविषसर्पेभ्यः प्रतिकुर्वीत ॥ १६ ॥

जीव जीवक (चकोर) पक्षी विष के देखते ही ग्लानि करने लगता है। एक विशेष प्रकार का मत्त कोकिल (कोयल) पक्षी विष को देखते ही मर जाता है। चकोर के विष के देखने से आंख भी लाल हो जाते हैं। इस प्रकार राजा अग्नि विष और सर्प से अपना बचाव रखे ॥१३-१६॥

पृष्ठतः कक्ष्याविभागे स्त्रीनिवेशो गर्भव्याधिवैद्यप्रत्याख्यात-संस्था वृक्षोदकस्थानं च ॥ १७॥ बहिः कन्याकुमारपुरम् ॥ १८ ॥

राजगृह के पिछले कक्ष्या विभाग (कमरों) में स्त्रियों के रहने के स्थान बनवावे। इनके पास ही सूतिकागार (जच्चाघर) रुग्णालय और असाध्य (राजयक्ष्मादि के) रोगियों के गृह बनवावे। इसी तरह उपवन और तालाब आदि भी राजभवन में पीछे की ओर बनवा लेवे। इस राजगृह के बाहर की ओर कन्या और कुमारों के रहने के कमरे बनवा लेवे ॥१७-१८॥

पुरस्तादलंकारभूमिर्मन्त्रभूमिरुपस्थानं कुमाराध्यक्षस्थानं च ॥ १९॥ कक्ष्यान्तरेष्वन्तर्वंशिकसैन्यं तिष्ठेत् ॥ २० ॥

राजा के रहने के कमरों के सन्मुख सुन्दर दूर्वा आदि से अलंकृत भूमि होनी चाहिए। फिर मन्त्रणा योग्य स्थान, राजसभा (दरबार) और उसके समीप ही राजकुमार और अध्यक्षों के भवन (आफिस) होने चाहिए। कुछ ऐसे कमरे हों जिनमें रनिवास की रक्षा करने वाली सेना रह सके ॥१९-२०॥

अन्तर्गृहगतः स्थविरस्त्री परिशुद्धां देवीं पश्येत् ॥ २१ ॥ न कांचिदभिगच्छेत् ॥ २२ ॥

इस राजभवन के भीतर वृद्ध स्त्रियों से समन्वित राजमहिषी को बुलावे राजा किसी भी स्त्री के पास कभी गमन न करे ॥२१-२२॥

देवीगृहे लीनो हि भ्राता भद्रसेनं जघान ॥ २३ ॥ मातुः शय्यान्तर्गतश्च पुत्रः कारूशम् ॥ २४ ॥ लाजान्मधुनेति विषेणपर्यस्य देवी काशिराजम् ॥ २५॥ विषदिग्धेन नूपुरेण वैरन्त्यं मेखलामणिना सौवीरं जालूथमादर्शेन वेण्यां गूढं शस्त्रं कृत्वा देवी विदूरथं जघान॥ २६॥ तस्मादेतान्यास्पदानि परिहरेत् ॥२७॥

राजदेवी के घर में छुप कर ही किसी विरोधी भ्राता ने राजा भद्रसेन को मार डाला था। माता की शय्या के नीचे छुप कर पुत्र ने कारूशराज अपने पिता का वध कर डाला। धान की खीलों को मधु में मिलाने के बहाने से विष मिला कर रानी ने ही काशिराज को मार डाला था। विष में बुझे हुए नूपुर के द्वारा वैरन्त्य, मेखला (तगड़ी) की मणि के द्वारा सौवीरक आदर्श (दर्पण) के द्वारा जारूथ, और अपने बालों में शस्त्र छुपा कर देवी ने विदूरथ को मार दिया था। इन सब बातों को सोच कर राजा किसी भी रानी के इन स्थानों पर न जावे। ॥ २३-२७ ॥

मुण्डजटिलकुहकप्रतिसंसर्गं बाह्याभिश्च दासीभिः प्रतिषेधयेत् ॥ २८ ॥ न चैनाः कुल्याः पश्येयुरन्यत्र गर्भव्याधिसंस्थाभ्याम् ॥२९॥

मुंडी, जटी तथा अन्य वञ्चक पुरुषों के साथ, रानी का सम्पर्क न होने दे और न बाहर की दासियों से मिलने दे। सूतिकागार और बीमार होने के सिवा कोई कुल के बन्धु बान्धव भी रानी से न मिल सकें ॥ २८-२९ ॥

रूपाजीवाः स्नानप्रघर्षशुद्धशरीराः परिवर्तितवस्त्रालंकाराः पश्येयुः ॥३०॥

रूपवती सुन्दर रानी, स्नान, उबटन आदि से शुद्ध शरीर होकर और वस्त्र तथा अलंकार पहन कर राजा से मिलने जावें ॥ ३० ॥

आशीतिकाः पुरुषाः पञ्चाशत्काः स्त्रियो वा मातापितृव्यञ्जनाः स्थविरवर्षवराभ्यागारिकाश्चावरोधानां शौचाशौचं विद्युः स्थापयेयुश्च स्वामिहिते ॥३१॥

अस्सी वर्ष के वृद्ध, और पचास वर्ष की स्त्रियां माता-पिता की तरह राज-रानियां की पवित्रता की रक्षा रखें, तथा वृद्ध नपुंसक और अन्य कुब्ज आदि भी रनिवास की रक्षा में तत्पर रहें और रानियों को स्वामी के हित में लगावें ॥ ३१ ॥

स्वभूमौ च वसेत्सर्वः परभूमौ न संचरेत् ।
न च बाह्येन संसर्गं कश्चिदाभ्यन्तरो व्रजेत् ॥ ३२ ॥

ये उपर्युक्त जन समुदाय अपने २ स्थान पर ही रहें-एक दूसरे के स्थान पर न जावें। भीतर का मनुष्य बाहर के आदमी से कभी संसर्ग न करे ॥ ३२ ॥

सर्वं चावेक्षितं द्रव्यं निबद्धागमनिर्गमम् ।
निर्गच्छेदभिगच्छेद्वा मुद्रासंक्रान्तभूमिकम् ॥ ३३ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे विंशो ऽध्यायः ॥ २० ॥

भीतर से बाहर और बाहर से भीतर जाने आने वाली वस्तुएं अच्छी

तरह देख लेनी चाहियें या जो वस्तु बाहर जावे या भीतर आवे- उन पर मुद्रा लगा देने का नियम रखना उचित है ॥ ३३ ॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्र में विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में बीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



इक्कीसवां अध्याय

१८ वां प्रकरण

आत्मरक्षा

शयनादुत्थितः स्त्रीगणैर्धन्विभिः परिगृह्येत ॥ १ ॥ द्वितीयस्यां कक्ष्यायां कञ्चुकोष्णीषिभिर्वर्षवराभ्यागारिकैः ॥ २ ॥ तृतीयस्यां कुब्जवामनकिरातैः ॥३॥ चतुर्थ्यां मन्त्रिभिः संबन्धिभिर्दौवारिकैश्च प्रासपाणिभिः॥ ४॥

जब राजा प्रातः काल अपने शयन से उठे-तो धनुषधारिणी स्त्रियां उनके साथ रहें। जब राजा शयन गृह से निकल कर दूसरे कमरे में पहुंचे-तो वहां कञ्चुक (अंगरखा) और पगड़ी पहने हुए नपुंसक और राजभवन के प्रबन्धक धनुष आदि शस्त्र लिये राजा की रक्षा में तत्पर रहें। तीसरी कक्ष्या (कमरे) में कुबड़े वामन (बौने) और किरात (वनवासी) लोग रक्षा करें। चौथी कक्ष्या (राजसभा) में मन्त्री, सम्बन्धी, और द्वारपाल प्रास (भाले) नामक शस्त्र धारण किये हुए राजा की देख रेख में सावधान रहें ॥१-४॥

पितृपैतामहं महासंबन्धानुबन्धं शिक्षितमनुरक्तं कृतकर्माणं जनमासन्नं कुर्वीत ॥५॥ नान्यतोदेशीयमकृतार्थमानं स्वदेशीयं वाप्यपकृत्योपगृहीतम् ॥६॥ अन्तर्वंशिकसैन्यं राजानमन्तः पुरं च रक्षेत् ॥ ७ ॥

जो पिता पितामह, तथा बहुत समीप के सम्बन्ध में अनुबद्ध, शिक्षित, प्रेमी और संसार के अनुभव से युक्त योग्य पुरुष को राजा अपने समीप रखे, धन आदि से जिसका मान न किया गया हो-ऐसे विदेशी पुरुष तथा अपकार करके फिर किसी तरह रखे हुए स्वदेशी पुरुष को भी राजा अपना शरीर रक्षक न बनावे। भीतर महलों में नियुक्त सेना राजा और रनिवास की रक्षा में सावधान रहे ॥५-७॥

गुप्ते देशे माहानसिकः सर्वमास्वादबाहुल्येन कर्म कारयेत् ॥ ८॥ तद्राजा तथैव प्रतिभुञ्जीत पूर्वमग्नये वयोभ्यश्च बलिं कृत्वा ॥ ९ ॥

पाकशाला (रसोई घर) पर नियुक्त पुरुष (अफसर) गुप्त प्रदेश में राजा की स्वादिष्ट रसोई तय्यार करावे। राजा प्रथम अग्नि पक्षी आदि को बलि देकर पीछे स्वयं उस स्वादिष्ट भोजन का भक्षण करे ॥८-९॥

अग्नेर्ज्वालाधूमनीलता शब्दस्फोटनं च विषयुक्तस्य वयसां विपत्तिश्च ॥ १० ॥ अन्नस्योष्मा मयूरग्रीवाभः शैत्यमाशुक्लिष्टस्येव वैवर्ण्यं सोदकत्वमक्लिन्नत्वं च ॥ ११ ॥

(यदि भोजन में विष मिला हो-तो अग्नि में उसकी लपट नीली और धुंआ भी नीला ही निकलेगा तथा अग्नि में चटचट शब्द होगा) यदि पक्षियों ने खाया होगा-तो वह उसी समय तड़फड़ाने लगेगा। अन्न में जो भाप उठती है वह भी मयूर के ग्रीवा के सदृश नीली ही होती है। (विषमिश्रित अन्न ठंडा भी शीघ्र हो जाता है) और तोड़ने फोड़ने पर उसका रंग अन्य प्रकार का ही हो जाता है। किसी २ विष के संयोग से भोजन में पानी छुट जाता है और किसी से बहुत ही रूखा भोजन बन जाता है ॥१०-११॥

व्यञ्जनानामाशुशुष्कत्वं च क्वाथश्याम फेनपटलविच्छिन्नभावो गन्धस्पर्शरसवधश्च ॥ १२ ॥

दाल-शाक में विष हो-तो वे शीघ्र शुष्क हो जावेंगे। उनका आकार क्वाथ का सा दिखाई देगा। किसी साग की रंगत काली, किसी में झाग या किसी का विकृत आकार दिखाई देने लगता है। इस तरह उसके गन्ध, स्पर्श और रस में भी फर्क पड़ जाता है ॥ १२ ॥

द्रव्येषु हीनातिरिक्तच्छायादर्शनम् ॥ १३ ॥ फेनपटलसीमान्तोर्ध्वराजीदर्शनं च ॥ १४ ॥

पतले शाकों में पुरुष की छाया का आकार ही दूसरे ढंग का दिखाई देने लगता है उसमें झाग समूह, उठता है, पानी अलग और शाक अलग या उसके ऊपर रेखा सी दृष्टि में आती है ॥ १३-१४ ॥

रसस्य मध्ये नीला राजी पयसस्ताम्रा मद्यतोययोः काली दध्नः श्यामा च मधुनः श्वेता ॥ १५ ॥ द्रव्याणामार्द्राणामाशु म्लानत्वमुत्पक्वभावः क्वाथनीलश्यामता च ॥१६॥

शाकादि के रस में विष हो-तो नीली पंक्ति, दूध में लाल, मद्य और जल में काली, दही में श्याम (कुछ न्यून काली) और मधु (शहद) में श्वेत धारी दिखाई देती है। जो

गीले पदार्थ हैं, उनमें विष होने पर वे शीघ्र ही बासी से दिखाई देने लगेंगे। या सड़ से जावेंगे। यदि उनको पकाया जावे-तो वे अच्छी तरह नहीं पकेंगे और उनका क्वाथ (रसा) नीला और काला सा दिखाई देगा ॥१५-१६॥

शुष्काणामाशुशातनं वैवर्ण्यं च ॥ १७ ॥ कठिनानां मृदुत्वं मृदूनां कठिनत्वं च ॥ १८ ॥ तदभ्याशे क्षुद्रसत्त्ववधश्च ॥ १९ ॥

शुष्क (फलादि) पदार्थों में विष मिला हो-तो शीघ्र कट जावेंगे और उनका रंग बदल जावेगा। जो पदार्थ कठिन हों-वे गिलगिले और कोमल पदार्थ कठिन हो जावेंगे। विष मिश्रित अन्न के समीप चींटी मकड़ी आदि क्षुद्र जन्तुओं की मृत्यु भी हो जाती है ॥

आस्तरणप्रावरणानां श्याममण्डलता तन्तुरोमपक्ष्मशातनं च ॥ २० ॥ लोहमणिमयानां पङ्कमलोपदेहता ॥ २१ ॥ स्नेहरागगौरवप्रभाववर्णस्पर्शवधश्चेति विषयुक्तलिङ्गानि ॥ २२ ॥

बिछाने ओढ़ने के वस्त्रों में यदि विष का प्रयोग किया है-तो उसमें काले धब्बे पड़ जाते हैं। या उनके तन्तु और रोम कट जाते हैं। धातु और मणियों के पात्रों में विष का सम्पर्क होते ही वे कीचड़ में लिपटे से दिखाई देते हैं। इसी तरह विष मिली हुई वस्तुओं की चिकनाई, रंगत, उनका प्रभाव वर्ण और स्पर्श सब नष्ट हो जाते हैं। यहां तक विष-युक्त वस्तुओं के पहचानने के चिन्ह बताये गए हैं ॥ २०-२२ ॥

विषप्रदस्य तु शुष्कश्यावक्तता वाक्सङ्गः स्वेदो विजृम्भणं चातिमात्रं वेपथुः प्रस्खलनं वाक्यविप्रेक्षणमावेगः स्वकर्मणि स्वभूमौ चानवस्थानमिति ॥२३॥

विष देने वाले पुरुष के मुख की कान्ति, सूखी और मलिन काली सी दिखाई देगी। उसकी वाणी रुक २ कर निकलती है। उसको पसीना, जंभाई और बहुत अधिक कँप कँपी सी आती रहती है। उसकी बार २ गति भङ्ग होती है। वह बाहर की ओर टकटकी बांधे रहता है। उसे बहुत ही घबराहट रहती है तथा वह अपने काम और स्थान पर निश्चल होकर नहीं टिकता है ॥ २३ ॥

तस्मादस्य जाङ्गलीविदो भिषजश्चासन्नाः स्युः ॥ २४ ॥ भिषग्भैषज्यागारादास्वादविशुद्धमौषधं गृहीत्वा पाचकपेषकाभ्यामात्मना च प्रतिस्वाद्य राज्ञे प्रयच्छेत् ॥ २५ ॥ पानं पानीयं चौषधेन व्याख्यातम् ॥ २६ ॥

राजा को विष प्रयोग के जानने वाले वैद्यों को सर्वदा अपने साथ रखना उचित है। वैद्य भी औषधालय से चाख २ कर बनाई हुई औषधि मंगाकर उसके पकाने पीसने

वाले पुरुष और स्वयं भी राजा के सन्मुख चख कर फिर राजा को देवे। इसी तरह पीने योग्य वस्तु का पान करके राजा को अर्पण करे॥ २४-२६॥

कल्पकप्रसाधकाः स्नानशुद्धवस्त्रहस्ताः समुद्रमुपकरणमन्तर्वंशिकहस्तादादाय परिचरेयुः ॥ २६ ॥ स्नापकसंवाहकास्तरकरजकमालाकारकर्म दास्यः कुर्युः ॥ २८ ॥

क्षौर बनाने वाले या स्नान, श्रृङ्गार कराने वाले पुरुष प्रथम स्वयं स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण किये हुए, मुद्रा से अङ्कित, उस्तरे आदि प्रसाधन के साधनों को महलों के भीतर रहने वाले सेवकों के हाथ से लेकर राजा की सेवा में तत्पर हों। स्नान कराने पैर दवाने, बिस्तर बिछाने, कपड़े, धोने तथा माला बनाने का काम महल में रहने वाली दासी ही करें॥ २७-२८॥

ताभिरधिष्ठिता वा शिल्पिनः॥ २९ ॥ आत्मचक्षुषि निवेश्य वस्त्रमाल्यं दद्युः॥ ३० ॥ स्नानानुलेपनप्रघर्षचूर्णवासस्नानीयानि स्ववक्षोबाहुषु च॥ ३१ ॥ एतेन परस्मादागतकं च व्याख्यातम्॥ ३२ ॥

यदि दासी नहीं कर सकती हों तो दासियों की देख रेख में शिल्पी (कारीगर) ही इन कार्यों को कर देवे। दासियां अपनी आंखों से देखकर वस्त्र और मालाएँ राजा को अर्पण करे। स्नान के उपयोगी उबटन, चन्दन, सुगन्धित द्रव्य आदि वस्तुओं को दासियाँ प्रथम अपनी छाती और भुजाओं पर लगालें। इसी ढंग से बाहर से आई हुई वस्तुओं की परीक्षा कर लेना॥ २९-३२॥

कुशीलवाः शस्त्राग्निरसवर्जं नर्मयेयुः॥ ३३ ॥ आतोद्यानि चैषामन्तस्तिष्ठेयुरश्वरथद्विपालंकाराश्च ॥३४॥ मौलपुरुषाधिष्ठितं यानवाहनमारोहेत् ॥३५॥ नावं चाप्तनाविकाधिष्ठिताम्॥ ३६ ॥ अन्यनौप्रतिबद्धां वातवेगवशां च नोपेयात् ॥ ३७ ॥ उदकान्ते सैन्यमासीत॥ ३८ ॥

राजा को नाटक दिखाने वाले नट आदि पुरुष, शस्त्र अग्नि और विष व्यवहार के खेल छोड़ कर अन्य खेल दिखावें। इन नटों के बाजे भी राजा के अन्तःपुर में ही रखे रहने चाहिए। रथ, अश्व, हाथी और अलङ्कार भी राजा के भवन में ही बँधे रहा करें। विश्वासी पुरुष के चढ़ने पर ही राजा पालकी आदि यान और अश्व आदि वाहन पर चढ़े। नाव पर भी नाविक के साथ ही राजा सवारी करे। किसी दूसरी नाव से बंधी हुई नाव या वायु के वेग से डगमगाने वाली नाव पर राजा सवारी न करे। नौका की सवारी के समय सेनातट पर स्थित (तैनात) रहनी चाहिए॥ ३३-३८॥

मत्स्यग्राहविशुद्धमवगाहेत ॥ ३९ ॥ व्यालग्राहपरिशुद्धमुद्यानं गच्छेत् ॥ ४० ॥ लुब्धकैः श्वगणिभिरपास्तस्तेनव्यालपराबाधभयं चललक्ष्यपरिचयार्थं मृगारण्यं गच्छेत् ॥ ४१ ॥

राजा, मगर-ग्राह आदि जलजन्तुओं से रहित जलाशय में स्नान करे। सर्प आदि से रहित परीक्षित उद्यान में राजा टहल सकता है। कुत्ते रखने वाले शिकारी गण के साथ राजा, चोर, सिंह (शेर) शत्रु आदि के भय से रहित वनैले जन्तुओं से भरे हुये वन में चञ्चल लक्ष्य के बेंधने के निमित्त राजा मृगया को जावे ॥ ३९-४१ ॥

आप्तशस्त्रग्राहाधिष्ठितः सिद्धतापसं पश्येत् ॥ ४२ ॥ मन्त्रिपरिषदा सामन्तदूतं संनद्धोऽश्वं हस्तिनं रथं वारूढः संनद्धमनीकं गच्छेत् ॥ ४३ ॥

शस्त्रधारी आप्त पुरुषों के साथ ही राजा किसी तपस्वी से मिल सकता है, मन्त्रि सभा के साथ सामन्त राजा के दूत से मिले। आप कवच आदि पहन कर सावधानी के साथ अश्व, हाथी और रथ पर सवारी करे या शस्त्रादि से सुसज्जित सेना में जावे ॥४२-४३॥

निर्याणे ऽभियाने च राजमार्गमुभयतः कृतारक्षं दण्डिभिरपास्तशस्त्रहस्तप्रव्रजितव्यङ्गं गच्छेत् ॥ ४४ ॥ न पुरुषसंबाधमवगाहेत ॥ ४५ ॥

कहीं अन्य स्थान में जाने या आने के समय राजमार्ग दोनों ओर दण्डधारी पुरुषों से घिरा होवे। इन सिपाहियों से सुरक्षित तथा शस्त्रधारी संन्यासी या लंगड़े लूले पुरुषों से रहित मार्ग में राजा गमन करे। पुरुषों की भीड़ में राजा कभी न घुसे ॥ ४४-४५ ॥

यात्रासमाजोत्सवप्रवहणानि दशवर्गिकाधिष्ठितानि गच्छेत् ॥ ४६ ॥

राजा जब कभी किसी देवस्थान सभा उत्सव या प्रवहण (पार्टी) में जावे-तो दश रक्षकों से अवश्य युक्त होवे। इनके विना कभी गमन न करे ॥ ४६ ॥

यथा च योगपुरुषैरन्यान्राजाधितिष्ठति ।
तथायमन्यबाधेभ्यो रक्षेदात्मानमात्मवान् ॥ ४७ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे आत्मरक्षितकम् एकविंशो ऽध्यायः ॥२१॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य विनयाधिकारिकं प्रथमाधिकरणं समाप्तम् ॥

जिस प्रकार गूढ़ प्रयोगों का राजा, शत्रु पर प्रयोग करता है-वैसे ही शत्रुप्रयुक्त गूढ़ प्रयोगों से राजा अपनी रक्षा करता रहे ॥ ४७ ॥

इति श्री कौटलीयार्थशास्त्रान्तर्गत विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में आत्म रक्षित इक्कीसवां अध्याय समाप्त हुआ, यहीं पर विनयाधिकरण भी समाप्त होगया



विनयाधिकरण प्रथम अधिकरण समाप्त।



अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण



पहिला अध्याय

१६ वां प्रकरण

जनपदनिवेश

किसी पुराने या नये प्रदेश के वसाने को जनपद निवेश कहते हैं ।

भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा जनपदं परदेशापवाहनेन स्वदेशाभिष्यन्दवमनेन वा निवेशयेत् ॥ १ ॥ शूद्रकर्षकप्रायं कुलशतावरं पञ्चशतकुलपरं ग्रामं क्रोशद्विक्रोशसीमानमन्योन्यारक्षं निवेशयेत् ॥ २ ॥

पुराने या नये देश के बसाने के लिए राजा, अन्य देश के मनुष्यों को बुला कर या अपने देश के प्रान्त को उलट पलट करके बसा लेवे । राजा को प्रत्येक ग्राम में शूद्र (शिल्पी) और कृषक (किसान) ही अधिक बसाने-चाहिए । (एक ग्राम में सौ से न्यून और पांच सौ से अधिक घर नहीं बसाने चाहिए ।) ये ग्राम-एक दो २ कोस की दूरी पर बसाने योग्य हैं । समय पड़ने पर एक ग्राम दूसरे ग्राम की रक्षा कर सके-ऐसा भी उचित प्रबन्ध हो ॥ १-२ ॥

नदीशैलवनगृष्टिदरीसेतुबन्धशाल्मलीशमीक्षीरवृक्षानन्तेषु सीम्नां स्थापयेत् ॥ ३ ॥ अष्टशतग्राम्या मध्ये स्थनीयं चतुःशतग्राम्या द्रोणमुखं द्विशतग्राम्या खार्वटिकं दशग्रामीसंग्रहेण संग्रहणं स्थापयेत् ॥४॥ अन्तेष्वन्तपालदुर्गाणि ॥५॥

राजा ग्राम की सीमा को नदी पर्वत, वन, बेर के वृक्ष, खाई, सेतु (पुल) बन्ध, संमल और शमी (छोंकरा) वड़, गूलर आदि के वृक्षों से सुशोभित बनावे । आठ सौ ग्रामों के मध्य में एक स्थानीय (बड़ा नगर) बसावे । चार सौ गावों के मध्य में एक द्रोण मुख (नगर) की स्थापना करे । दोसौ गांवों के मध्य में खार्वटिक (कसबे) की रचना करनी उचित है और दश गावों का संग्रह करके उनके मध्य में कर आदि के संग्रह करने को संग्रहण नामक स्थान की स्थापना करे ॥ ३-४ ॥

अन्तेष्वन्तपालदुर्गाणि ॥ ५ ॥ जनपदद्वाराण्यन्तपालाधिष्ठितानि स्थापयेत् ॥६॥ तेषामन्तराणि वागुरिकशबरपुलिन्दचण्डालारण्यचरा रक्षेयुः ॥७॥

इस प्रकार अपने इस नवीन प्रदेश की सीमा पर राजा अन्तपाल नामक अध्यक्ष को नियुक्त करके दुर्ग रचना करे। इस नवीन प्रदेश के द्वारों पर भी अन्तपाल नामक अध्यक्षों (अफसरों) को ही राजा को नियुक्त करना उचित है। इन स्थानों के मध्य भागों की रक्षा का भार, व्याध, शवर, पुलिन्द, (भील) चण्डाल, तथा अन्य वनवासी पुरुषों के अधीन करनी चाहिए ॥ ५-७ ॥

ऋत्विगाचार्यपुरोहितश्रोत्रियेभ्यो ब्रह्मदेयान्यदण्डकराण्यभिरूपदायकानि प्रयच्छेत् ॥ ८ ॥

राजा, अपने ऋत्विक, आचार्य, पुरोहित और-वेदपाठी ब्राह्मणों के निमित्त, भूमि प्रदान करे। ब्राह्मणों से किसी प्रकार दण्ड या कर ग्रहण करने की अभिलाषा न करे। यह भूमि का प्रदान इन आचार्य आदि की वंश परम्परा तक सदा चलना चाहिए। ८॥

अध्यक्षसंख्यायकादिभ्यो गोपस्थानिकानीकस्थचिकित्साश्वदमकजङ्घाकरिकेभ्यश्च विक्रयाधानवर्जम् ॥ ६ ॥

राजा पृथक् २ कार्यालयों के अध्यक्ष (अफसर), संख्यायक (गणना) करने वाले दफ्तर के नौकर आदि राज्यकर्मचारियों को भी भूमी प्रदान करे। दश गांवों के अधिकारी गोप, स्थानिक, (नगर रक्षक) सेनापति, चिकित्सक (वैद्य) अश्व-शिक्षक, और दूतकर्म करने वाले सैनिकों को भी प्रदान करे, परन्तु उनको इस भूमि के बेचने या गिरवी रखने का अधिकार नहीं होना चाहिए ॥ ६ ॥

करदेभ्यः कृतक्षेत्राण्यैकपुरुषिकाणि प्रयच्छेत् ॥ १० ॥

जो कर देने वाले लोग हैं, यदि उनकी सेवा से प्रसन्न होकर राजा उन्हें भूमि प्रदान करे-तो यह भूमि एक पुरुष तक रह सकती है अर्थात् वही पुरुष उस भूमि का उपयोग कर सकता है ॥ १० ॥

अकृतानि कर्तृभ्यो नादेयात् ११ ॥

उसके अनन्तर राजा उस कृतक्षेत्र (हीन हयात) भूमि को उसके जोतने बोने-वाले उसके पुत्रों को प्रदान न करे ॥ ११ ॥

अकृषतामाच्छिद्यान्येभ्यः प्रयच्छेत् ॥ १२ ॥ ग्रामभृतकवैदेहका वा कृषेयुः ॥ १३ ॥

जो पुरुष स्वयं कृषि (खेती) न करके भूमि को पड़ा रखता है या अन्य से खेती कराता है, तो उससे छीन कर राजा उस भूमि को अन्य के लिए प्रदान कर देवे। राजा की इच्छा हो, तो उस भूमि को गांव के चौधरी पटेल जोत वो-सकते हैं ॥ १२-१३ ॥

अकृषन्तोऽपहीनं दद्युः ॥ १४ ॥ धान्यपशुहिरण्यैश्चैनाननुगृह्णीयात्तान्यनुसुखेन दद्युः ॥ १५ ॥

यदि कोई मनुष्य खेती करने की प्रतिज्ञा करके उस भूमि में कृषि (खेती) न करे-तो राजा, उस भूमि का उससे अपहीन (हर्जाना) ग्रहण (वसूल) करे राजा कृषकों को धान्य- पशु और रुपये की भी समय समय पर सहायता करता रहे। ये लोग भी अन्नोत्पत्ति (पैदावार), के अनन्तर राजा की इस रकम को धीरे२ सुख पूर्वक चुका देवें ॥ १४-१५ ॥

अनुग्रहपरिहारौ चैभ्यः कोशवृद्धिकरौ दद्यात् ॥ १६ ॥ कोशोपघातिकौ वर्जयेत् ॥ १७ ॥ अल्पकोशो हि राजा पौरजानपदानेव ग्रसते ॥ १८ ॥ निवेशसमकालं यथागतकं वा परिहारं दद्यात् ॥ १९ ॥

राजा जो धन ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य की वृद्धि के लिए सफाई आदि में व्यय करता है-यह अनुग्रह, और जो स्वास्थ्य की वृद्धि में औषधालय (अस्पताल) आदि पर व्यय किया जाता है-यह परिहार कहाता है। इस प्रकार अनुग्रह और परिहार अर्थात् स्वास्थ्य रक्षा और नीरोगता के लिए जो राजा का धन व्यय होता है-वह राजा के कोष की वृद्धि का कारण होता है। यदि इन दोनों कार्यों में इतना अधिक व्यय हो जावे कि कोश (खजाना) खाली हो जावे-तो इन में भी राजा व्यय करना बन्द कर दे। जब राजा के कोश में धन नहीं रहता है, तो वह समय पड़ने पर पुर और देश को ही कष्ट पहुंचाता है। जब राजा के कोष में धन आवे उसी समय राजा जनता के नीरोगता के लिए प्रतिज्ञात धन को फौरन यथा स्थान पहुंचादे ॥ १६-१९ ॥

निवृत्तपरिहारान्पितेवानुगृह्णीयात् ॥ २० ॥ आकरकर्मान्तद्रव्यहस्तिवनव्रजवणिक्पथप्रचारान्वारिस्थलपथपण्यपत्तनानि च निवेशयेत् ॥ २१ ॥

जब प्रजा के लोग अपने इस परिहार (स्वास्थ्य के लिए व्यय किये हुए) द्रव्य को चुकादेवें, तो राजा उन पर पिता की भांति अनुग्रह प्रदर्शित करे। आकर (खान) से उत्पन्न सुवर्ण चांदी आदि के वेचने के स्थान, चन्दन आदि उत्तम २ काष्ठ के बाजार, हाथियों के वन, बैल-गाय की वृद्धि के साधन व्यापार के स्थान जलमार्ग, स्थल मार्ग, तथा बड़े २ बाजारों का राजा निर्माण करे ॥ २०-२१ ॥

सहोदकमाहार्योदकं वा सेतुं बन्धयेत् ॥ २२ ॥ अन्येषां वा बन्धतां भूमिमार्गवृक्षोपकरणानुग्रहं कुर्यात् ॥ २३ ॥ पुण्यस्थानारामाणां च ॥ २४ ॥

झरनों के जल से भरे हुए सरोवर नदियों का, राजा सेतु (पुल) बनवाता रहे। यदि कोई धनवान् उन को पुण्यार्थ बंधवाना चाहे, तो राजा, उनको भूमि, मार्ग और वृक्ष आदि सामग्री प्रदान करने की सहायता करे। इसी प्रकार जो दानी पुण्य स्थान (धर्म शाला) और बगीचे बनवावे, उसकी भी राजा को सहायता करनी चाहिए ॥ २२-२४ ॥

संभूय सेतुबन्धादपक्रामतः कर्मकरबलीवर्दाः कर्म कुर्युः ॥ २५ ॥ व्ययकर्मणि च भागी स्यात् ॥ २६ ॥ न चांशं लभेत ॥ २७ ॥

जब सारी प्रजा के मनुष्य किसी सेतु (पुल) बंध आदि कार्य को मिलकर कर रहे हों और उस कार्य में जो मनुष्य किसी आवश्यक कार्य से सम्मिलित न हो सके-तो उसके स्थान में नौकर या उसके बैलों को समझ लिया जावे। जो उस सम्मिलित कार्य में व्यय हो उस में उसके हिस्से में आये हुए धन का अंश उससे अवश्य ग्रहण (वसूल) कर लेना चाहिए। इस पुण्य कार्य में जो कुछ द्रव्य लाभ हो- वह आलसी मनुष्य उस लाभ का अधिकारी नहीं है ॥ २६-२७ ॥

मत्स्यप्लवरहितपण्यानां सेतुषु राजा स्वाम्यं गच्छेत् ॥ २८ ॥ दासाहितकबन्धूनशृण्वतो राजा विनयं ग्राहयेत् ॥ २९ ॥

जिस जलाशय में मछली और कारण्डव आदि पक्षी न रहते हों-उसके सेतु पर राजा का अधिकार रहे। दास (नौकर) या द्रव्य के बदले में (गिरवी रूप से) रहने वाले पुरुष यदि राजा की आज्ञा न मानें-तो राजा उनको दण्ड-आदि से सीधा करदे ॥ २८-२९ ॥

बालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथांश्च राजा बिभृयात् ॥ ३० ॥ स्त्रियमप्रजातां प्रजातायाश्च पुत्रान् ॥ ३१ ॥ बालद्रव्यं ग्रामवृद्धा वर्धयेयुराव्यवहारप्रापणात् ॥ ३२ ॥ देवद्रव्यं च ॥ ३३ ॥

धार्मिक राजा, बालक, वृद्ध, व्याधिग्रस्त, विपत्ति में फंसे हुए तथा अनाथ मनुष्यों की रक्षा करता रहे। सन्तान हीन अरक्षित स्त्री, या सन्तान उत्पन्न करने वाली अनाथ स्त्री के बालकों की भी राजा रक्षा करे। किसी बालक (नाबालिग) की सम्पत्ति का अधिकार गांव के वृद्ध पुरुषों के पास रहे-तबतक बढ़ाते रहें-जबतक वह बालक युवा होकर व्यापार के योग्य न हो-जावे। देव सम्पत्ति का भी इसी प्रकार वृद्धों को अधिकार होना चाहिए जो उसे बढ़ावें ॥ ३०-३३ ॥

अपत्यदारान् मातापितरौ भ्रातॄनप्राप्तव्यवहारान्भगिनीः कन्या विधवाश्चाबिभ्रतः शक्तिमतो द्वादशपणो दण्डोऽन्यत्र पतितेभ्यः ॥ ३४ ॥ अन्यत्र मातुः ॥ ३५ ॥

अपनी सन्तान, भार्या, माता, पिता, पृथक् २ होकर अपना २ अंश नहीं पाये हुए भ्राता, भगिनी कन्या और विधवा का जो सामर्थ्यवान् पुरुष पालन-पोषण नहीं करता, उस पर राजा बारह पण (उस समय का सुवर्ण का सिक्का) का दण्ड देवे। जो पतित होकर घर से निकल गए-उनके पालन करने का भार नहीं है-परन्तु माता के तो पतित हो जाने पर भी उस के पालन का भार पुत्र पर बनाही रहेगा ॥३४-३५॥

पुत्रदारमप्रतिविधाय प्रव्रजतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३६ ॥ स्त्रियं च प्रव्राजयतः ॥ ३७ ॥ लुप्तव्यवायःप्रव्रजेदापृच्छ्य धर्मस्थान् ॥ ३८ ॥ अन्यथा नियम्येत ॥ ३६ ॥

जो पुरुष पुत्र और भार्या के निर्वाह का प्रबन्ध न करके संन्यास ग्रहण करे-तो राजा उसे यथोचित दण्ड प्रदान करे। इसी तरह जो स्त्री को संन्यासिनी हो जाने की प्रेरणा करे-उसे भी साहस दण्ड देना चाहिए। जब मनुष्य का काम विकार शान्त हो जावे उस समय धर्माचार्यों की आज्ञा लेकर मनुष्य संन्यासी हो सकता है। जो पुरुष राज्य के इस नियम का उल्लंघन करे-राजा उसे अवश्य दण्ड दे ॥३६-३६॥

वानप्रस्थादन्यः प्रव्रजितभावः सुजातादन्यः संघः समुत्थायिकादन्यः समयानुबन्धो वा नास्य जनपदमुपनिविशेत ॥ ४० ॥

वानप्रस्थी साधुओं के सिवा कोई भी संन्यासियों की टोली, राज्य सेवा के निमित्त बने हुए संघ के अतिरिक्त दुष्ट जनों के संघ आचार सहित पुरुषों की सभा के सिवा उपद्रवियों की सभाओं को राजा देश में न बढ़ने देवे ॥४०॥

न च तत्रारामविहारार्थाः शाला स्युः ॥ ४१ ॥ नटनर्तनगायनवादकवाग्-जीवनकुशीलवा वा न कर्मविघ्नं कुर्युः ॥ ४२ ॥ निराश्रयत्वाद्ग्रामाणां च त्रा-भिरतत्वाच्च पुरुषाणां कोशविष्टिद्रव्य धान्यरसवृद्धिर्भवतीति ॥ ४३ ॥

बड़े २ बगीचों में विहारोपयोगी शाला भी नहीं बननी चाहिए। नट, नर्तक, गायक, वादक तथा अन्य, वाणी से जीविका करने वाले कथा वाचक, राजकार्यों में विघ्नकारी कर्म न करने पावे। इनमें उपद्रव करादेने की शक्ति होती है। गांवों में नाटयशाला आदि भोग सामग्री के न होने से प्रत्येक जन अपने कृषि आदि कार्यों में लगा रहेगा। इसीसे कोष (खजाना) द्रव्य, धान्य, रस की वृद्धि और कठिन श्रमसाध्य कर्म होते रहते हैं ॥४१-४३॥

परचक्राटवीग्रस्तं व्याधिदुर्भिक्षपीडितम् ।
देशं परिहरेद्राजा व्ययक्रीडाश्च वारयेत् ॥ ४४ ॥

शत्रु के गुप्तचरों से व्याप्त, व्याधि और दुर्भिक्ष से पीड़ित, अपने देश को राजा न रहने दे-यदि प्रबन्ध करने में असमर्थ हो-तो उसे छोड़ दे तथा राजा ऐसे खेलों का बहिष्कार करे-जो विलास प्रियता के बढ़ाने वाले हों ॥४४॥

दण्डविष्टिकराबाधैः रक्षेदुपहतां कृषिम् ।
स्तेनव्यालविषग्राहैः व्याधिभिश्च पशुव्रजान् ॥ ४५ ॥

दण्ड, विष्टि (बेगार) कर (टैक्स) आदि की बाधा से नष्ट होने वाली कृषि की राजा सर्वदा रक्षा करे अर्थात् राजा किसानों पर अधिक बोझा न डाले। इसी प्रकार चोर, हिंसक प्राणी, विष प्रयोग तथा अन्य प्रकार की व्याधियों से किसानों के पशुओं की रक्षा करना भी राजा का कर्तव्य है ॥४५॥

वल्लभैः कार्मिकैः स्तेनैरन्तपालैश्च पीडितम् ।
शोधयेत्पशुसंघैश्च क्षीयमाणवणिक्पथम् ॥ ४६ ॥

राजा के समीपवर्ती प्रिय पुरुष, कर (लगान या टैक्स) ग्रहण करने वाले अफसर या कर्मचारी, चोर, सीमा रक्षक तथा हिंसक जन्तुओं से रुके हुए राजमार्ग को राजा समुचित प्रबन्ध द्वारा ठीक २ रखे ॥४६॥

एवं द्रव्यद्विपवनं सेतुबन्धमथाकरान् ।
रक्षेत्पूर्वकृतान्राजा नवांश्चाभिप्रवर्तयेत् ॥ ४७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे जनपदनिवेशः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥
आदितो द्वाविंशः ॥ २२ ॥

इस प्रकार राजा हाथी और काष्ठ आदि वस्तुओं के वन, पूर्व सेतु रचित बन्ध, और आकरों (खानों) की रक्षा करे-तथा अन्य भी नये २ बनवाता रहे ॥४७॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्ग, अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीयअधिकरण में जनपद निवेश (राष्ट्र बसाने) का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।



दूसरा अध्याय

बीसवां प्रकरण

भूमिच्छिद्र विधान

बंजर भूमियों को उपयोग में लाने को भूमिच्छिद्र विधान कहते हैं। इस प्रकरण में इसीके उपयोगी कार्यों का वर्णन किया जाता है।

अकृष्यायां भूमौ पशुभ्यो विवीतानि प्रयच्छेत् ॥ १ ॥ प्रदिष्टाभयस्थावरजङ्गमानि च ब्राह्मणेभ्यो ब्रह्मसोमारण्यानि तपोवनानि च तपस्विभ्यो गोरुतपराणि प्रयच्छेत् ॥ २ ॥

(जो भूमि अकृष्या (बंजर) होती है, उसमें राजा पशुओं को चरने की आज्ञा देदे।) इस भूमि में ऐसा वन छोड़ दिया जावे जहां वृक्ष और वनैले जन्तु वृद्धि पा सकें। इसी तरह जहां तक गायों के शब्द पहुंच सकें इतनी २ भूमि पृथक् ब्राह्मणों को ब्रह्म सोमयाग निमित्त और तपस्वियों को तपोवन के लिये प्रदान करे ॥१-२॥

तावन्मात्रमेकद्वारं खातगुप्तं स्वादुफलगुल्मगुच्छमकण्टकिद्रुममुत्तानतोयाशयं दान्तमृगचतुष्पदं भग्ननखदंष्ट्रव्यालं मार्गयुकहस्तिहस्तिनीकलभं मृगवनं विहारार्थं राज्ञः कारयेत् ॥ ३ ॥

इसी तरह इसमें एक लम्बा चौड़ा एक द्वार का खात गुप्त (भवन) बनवावे। इस भूमि में स्वादिष्ट फलों के वृक्ष, लता-झाड़ी, कण्टक हीन वृक्ष, थोड़े २ जलपूर्ण जलाशय, अच्छे २ मृग आदि प्राणी, नखदांतों से हीन करके छोड़े हुए व्याघ्र चीते आदि जन्तु, हाथी हथिनी और हाथी के बच्चों से युक्त राजा के विहार (शिकार) के लिए एक मृगया वन (शिकारगाह) भी तय्यार किया जावे ॥३॥

सर्वातिथिमृगं प्रत्यन्ते चान्यन्मृगवनं भूमिवशेन वा निवेशयेत् ॥४॥ कुप्यप्रदिष्टानां च द्रव्याणामेकैकशो वा वनं निवेशयेत् ॥ ५ ॥ द्रव्यवनकर्मान्तानटवीश्च द्रव्यवनापाश्रयाः ॥ ६ ॥

इसी वन के समीप बाहर के प्रदेशों से ला २ कर रखे हुए मृग तथा अन्य प्रकार के जीवों का एक चतुष्पादभवन राजा निर्माण करवावे, वह जैसा जिस भूमि में बन सकता हो-बनवावे। कुप्य नामक प्रकरण में बताये हुए पृथक् २ लकड़ी आदि के वनों की भी इसी भूमि में रचना करनी चाहिए। द्रव्य वन की वस्तुओं पर काम करने वाले, उसी प्रदेश में रहने वाले ग्रामीण मनुष्यों से इस द्रव्यवन का काम करवावे अर्थात् इस कार्य पर वनवासी मनुष्यों को नियुक्त करे ॥४-६॥

प्रत्यन्ते हस्तिवनमटव्यारक्ष्यं निवेशयेत् ॥ ७ ॥ नागवनाध्यक्षः पार्वतं नादेयं सारसमानूपं च नागवनं विदितपर्यन्तप्रवेशनिष्कसनं नागवनपालैः पालयेत् ॥ ८ ॥

इस भूमि में कहीं पर वन निवासी मनुष्यों से सुरक्षित एक हस्तीवन, बनवावे। इस हस्तीवन का अध्यक्ष, पर्वत, नदी तट, सरोवर आदि जल-प्रदेश के समीप बनवाये हुए हस्तीवन का हाथियों के कार्य में कुशल व्यक्तियों से पालन करवावे। इस अध्यक्ष को उस वन के सारे घुसने निकलने के द्वारों का पता होना चाहिए।७-८॥

हस्तिघातिनं हन्युः ॥ ९ ॥ दन्तयुगं स्वयं मृतस्याहरतः सपादचतुष्पणो लाभः ॥ १० ॥

जो कोई वहां आकर हाथियों का शिकार करना चाहे-राजा उसे दण्ड देवे। जो पुरुष वन में स्वयं मरे हुए हाथियों के दोनों दांतों को लादे-उसे सवा चार रुपये का लाभ होना चाहिए ॥९-१०॥

नागवनपाला हस्तिपकपादपाशिकसैमिकवनचरकपारिकर्मिकसखा हस्तिमूत्रपुरीपच्छन्नगन्धा भल्लातकीशाखाप्रतिच्छन्नाः पञ्चभिः सप्तभिर्वा हस्तिवन्धकीभिः सह चरन्तः शय्यास्थानपद्यालण्डकूलपातोद्देशेन हस्तिकुलपर्यग्रं विद्युः ॥ ११ ॥

हाथीवान्, जाल फैलाने वाले, सीमा रक्षक, वन में घूमने वाले हाथियों की सेवा में निपुण पुरुषों को साथ लेकर हस्तिवन का अध्यक्ष, हाथियों के मूत्र, पुरीष (मल) की गन्ध से बनैले हाथियों का पता लगावे। ये पुरुष भिलावे की शाखा से अपने को छुपाये रहें। इनके साथ पांच या सात हथनी होनी चाहिए। इस प्रकार हाथियों के शयन स्थान, पाद चिन्ह, मल मूत्र त्याग तथा नदी कूलों के गिराने के चिन्ह से हाथियों के यूथ का पता लगाले ॥११॥

यूथचरमेकचरं निर्यूथं यूथपतिं हस्तिनं व्यालं मत्तं पोतं बंधमुक्तं च निबन्धेन विद्युः ॥१२॥

यूथ में घूमने वाले, अकेले फिरने वाले, झुंड से पृथक् हुए, यूथपति, क्रूर प्रकृति, मदोन्मत्त, हाथी हाथियों के बच्चे, बन्धन में आये हुए खुले फिरने वाले हाथियों की राजा, अपने कर्मचारियों से गणना करवा कर उनको पुस्तक (रजिस्टर) में लिखवा दे॥

अनीकस्थप्रमाणैः प्रशस्तव्यञ्जनाचारान्हस्तिनो गृह्णीयुः ॥१३ ॥ हस्तिप्रधानो हि विजयो राज्ञाम् ॥ १४ ॥ परानीकव्यूहदुर्गस्कन्धावारप्रमर्दना ह्यतिप्रमाणशरीराः प्राणहरकर्माणो हस्तिन इति ॥ १५ ॥

सेना में रहने वाले योग्य वीरों की आज्ञानुसार अच्छे २ लक्षणों से युक्त हाथियों को राजा पकड़वाले। राजा की विजय हाथियों की सेना से ही मानी गई है। ये हाथी ही

शत्रु सेना, व्यूह, दुर्ग, स्कन्धावार (छावनी) के मर्दन करने में कुशल होते हैं, क्योंकि इनके शरीर बड़े विशाल हैं। जितना शीघ्र ये हाथी मनुष्यों के प्राण हर लेते हैं, उतना शीघ्र कोई भी जन्तु सेना में प्राण हरने में समर्थ नहीं है ॥१३-१५॥

कलिङ्गाङ्गगजाः श्रेष्ठाः प्राच्याश्चेति करूशजाः।
दशार्णाश्चापरान्ताश्च द्विपानां मध्यमा मताः ॥ १६ ॥

कलिङ्ग, अङ्ग और पूर्व के करूप देशोत्पन्न हाथी सर्वश्रेष्ठ माने गए हैं। दशार्ण और पश्चिम के हाथी मध्यम, माने गए हैं ॥१६॥

सौराष्ट्रिकाः पाञ्चजनाः तेषां प्रत्यवराः स्मृताः।
सर्वेषां कर्मणा वीर्यं जवस्तेजश्च वर्धते ॥ १७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे भूमिच्छिद्रविधानं द्वितीयो ऽध्यायः ॥२॥
आदितस्त्रयोविंशः ॥ २३ ॥

सौराष्ट्र (गुजरात) पञ्चजन आदि देशों में उत्पन्न हाथी साधारण होते हैं। इन समस्त हाथियों का बल, और तेज शिक्षा द्वारा बढ़ाया जा सकता है ॥१७॥

इति श्रीकौटीलयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में भूमिच्छिद्र विधान का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।



तीसरा अध्याय

२१वां प्रकरण

दुर्गविधान

अब दुर्ग (क़िले) बनाने की विधि का वर्णन किया जाता है—

चतुर्दिशं जनपदान्ते सांपरायिकं दैवकृतं दुर्गं कारयेत् ॥ १ ॥ अन्तर्द्वीपं स्थलं वा निम्नावरुद्धमौदकं प्रस्तरं गुहां वा पार्वतं निरुदकस्तम्बमिरिणं वा धान्वनं खञ्जनोदकं स्तम्बगहनं वा वनदुर्गम् ॥२॥

राजा को अपने देश के चारों ओर युद्ध के उपयोगी दैव कृत पर्वत आदि विकट स्थानों को ही दुर्ग के रूप में काम में लाना चाहिए। किसी स्वाभाविक जल से घिरे हुए द्वीप या खाई आदि गहरे खोदकर जल भरे हुए स्थानों से घिरे हुए स्थल दो प्रकार के औदक दुर्ग माने गए हैं। बड़े २ पत्थरों से बना हुआ या कन्दराओं से व्याप्त दुर्ग पर्वत दुर्ग होता है। जल और घास आदि से रहित या ऊपर प्रदेश में बना हुआ दुर्ग धान्वन

दुर्ग होता है और चारों ओर दलदल से घिरा हुआ या कांटेदार झाड़ियों से व्याप्त दुर्ग वन दुर्ग कहाता है ॥१-२॥

तेषां नदीपर्वतदुर्गं जनपदरक्षस्थानं धान्वनवनदुर्गमटवीस्थानम् आपद्यपसारो वा ॥ ३ ॥ जनपदमध्ये समुदयस्थानं स्थानीयं निवेशयेत् ॥ ४ ॥

इन दुर्गों में नदी दुर्ग और पर्वत दुर्ग देश की रक्षा के कारण होते हैं। धान्वन दुर्ग और वन दुर्ग वन में बनाये जाते हैं, इनमें राजा आपत्ति के समय भाग कर अपनी रक्षा कर सकता है। देश के मध्य में धनवृद्धि के केन्द्र बड़े २ नगरों को राजा बसावे ॥

वास्तुकप्रशस्ते देशे नदीसङ्गमे ह्रदस्य वाविशोषस्याङ्के सरसस्तटाकस्य वा वृत्तं दीर्घं चतुरश्रं वा वास्तुकवशेन प्रदक्षिणोदकं पण्यपुटभेदनमंसवारिपथाभ्यामुपेतम् ॥५॥

भवन निर्माण कला जानने वाले विद्वान् जिस स्थान को श्रेष्ठ बतावे-उसपर नगर बसाने चाहिए। नदी के तट, नहीं सूखने वाले ह्रद के समीप, सरोवर या तालाब के किनारे पर वृत्त (गोल) दीर्घ या चोकोर नगर बसाने उचित हैं। वस्तु विद्या के ढंग पर उन नगरों में दायीं ओर से नहरें निकलवा देनी चाहिए। इधर उधर उत्पन्न होने वाली वस्तुओं के विक्रय के उपयोगी और जल तथा स्थल मार्ग से सुसम्पन्न नगर बनवाने योग्य होते हैं॥

तस्य परिखास्तिस्रो दण्डान्तराः कारयेत्॥ ६ ॥ चतुर्दशं द्वादशं दशेति दण्डान्विस्तीर्णाः विस्तारादवगाधाः पादोनमर्धं वा त्रिभागमूला मूले चतुरश्राः पाषाणोपहिताः पाषाणेष्टकाबद्धपार्श्वा वा तोयान्तिकीरागन्तुतोयपूर्णा वा सपरिवाहाः पद्मग्राहवतीश्च॥ ७ ॥

इन नगरों के चारों ओर चार २ हाथ की दूरी पर तीन खाई खुदवा देवे जो क्रमशः छप्पन, अड़तालीस, और चालीस हाथ चौड़ी होनी चाहिए। इसी विस्तार से आधी या तीन भाग या एक भाग न्यून ये खाइयां गहरी बनवाई जावें। इनकी तलहटी पत्थर से साफ बनी हुई होवे, जिसमें पत्थर जड़े हुए होने चाहियें। पत्थर या ईंटों से उसकी दीवार बनी रहे, जिनमें वर्षा का या नहर का पानी भरा रहे। इनमें से जल के निकलने की नहरें भी बनवानी चाहियें। इन खाइयों में सुन्दर २ कमल और भीषण मकर रहें-तो भी बड़ी अच्छी बात है ॥६-७॥

चतुर्दण्डावकृष्टं परिखायाः षड्दण्डोच्छ्रितमवरुद्धं तद्द्विगुणविष्कम्भं खातादप्रं कारयेत् ॥ ८ ॥ ऊर्ध्वचयं मञ्चपृष्ठं कुम्भकुक्षिकं वा हस्तिभिर्गोभिश्च क्षुण्णं कण्टकिगुल्मविषवल्लीप्रतानवन्तं पांसुशेषेण वास्तुच्छिद्रं वा पूरयेत् ॥ ९ ॥

खाई से चार दण्ड (सोलह हाथ) की दूरी पर छः दण्ड (चौबीस हाथ) ऊंची सब ओर से दृढ़, ऊपर की चौड़ाई से दुगना नीव में आकार वाला बड़ा प्राकार (सफील) बनवाया जावे। ऊर्ध्वचय, मञ्चपृष्ठ और कुम्भकुक्षिक-इस प्रकार से तीन तरह का बड़ा प्राकार होता है। जो अत्यन्त ऊंचा प्राकार होता है वह ऊर्ध्वचय, जो मध्यम ऊंचा होता है, वह मञ्चपृष्ठ, और जो अत्यन्त पुष्ट बनाया जाता है, वह कुम्भकुक्षिक कहाता है। इन बड़े प्राकारों को बनाते समय हाथी, बैल आदि से अच्छी तरह खुदवावे। इसके चारों ओर कांटेदार विषैली झाड़ी लगी होनी चाहिए। बची हुई मिट्टी से जो प्राकार में छिद्र हों-उन्हें भरवा देवे ॥८-९॥

वप्रस्योपरि प्राकारं विष्कम्भद्विगुणोत्सेधमैष्टकं द्वादशहस्तादूर्ध्वमोजं युग्मं वा आचतुर्विंशतिहस्तादिति कारयेत् ॥ १० ॥

इस विशाल प्राकार पर एक छोटा ईंटों का प्राकार (भित्ति) बनवावे। जो अपनी चौड़ाई से दुगुना ऊंचा होना चाहिए। यह बाहर हाथ से लेकर चौबीस हाथ सम-विषम किसी भी संख्या में बनवालेवे अर्थात् तेरह चौदह हाथ आदि की संख्या में चौबीस हाथ तक बनवाया जा सकता है ॥१०॥

रथचर्यासंचारं तालमूलमुरजकैः कपिशीर्षकैश्चाचिताग्रं पृथुशिलासहितं वा शैलं कारयेत् ॥ ११ ॥

इस प्राकार का ऊपर इतना आकार हो कि उसपर एक रथ सीधी तरह चल सके। इसकी नींव तालवृक्ष की ऊंचाई के सदृश गहरी होवे मृदङ्ग (तबले) और कपि के शिर के तुल्य छोटे बड़े पत्थरों से इसका अग्रभाग बनवाना उचित है तथा मोटी २ शिलाओं से उसका ऊर्ध्व भाग पर्वताकार में बनादे ॥११॥

न त्वेव काष्ठमयम् ॥ १२ ॥ अग्निरवहितो हि तस्मिन्वसति ॥ १३ ॥ विष्कम्भचतुरश्रमट्टालकमुत्सेधसमावक्षेपसोपानं कारयेत् त्रिंशद्दण्डान्तरं च ॥१४॥

इस प्राकार में लकड़ी का कहीं भी उपयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि काष्ठ में सर्वदा अग्नि सन्निहित होता है। इस प्राकार की चौड़ाई के समान ही उसपर चौकोर एक अट्टालिका बनवाई जावे, जिसमें ऊपर तक पहुंचने वाली सीढ़ी होवें। इन अट्टालिकाओं का तीस दण्ड (एक सौ बीस हाथ) का अन्तर (फासला) होना चाहिए ॥१२-१४॥

द्वयोरट्टालकयोर्मध्ये सहर्म्यद्वितलां द्व्यर्धायामां प्रतोलीं कारयेत् ॥१५॥ अट्टालकप्रतोलीमध्ये त्रिधानुष्काधिष्ठानं सपिधानच्छिद्रफलकसंहतमितीन्द्रकोशं कारयेत् ॥ १६ ॥

दो अट्टालिकाओं के मध्य में अच्छे २ कमरों से युक्त, दो तल (मंजिल) की ढाई याम चौड़ी प्रतोली (स्थान विशेष) बनवावे। अट्टालिका और प्रतोली के मध्य में तीन धनुष चौड़ा एक इन्द्रकोश बनवावे, जिसमें एक ढका हुआ तख़्ता लगा रहे और इसमें भी अनेक छिद्र होने चाहिए ॥१५-१६॥

अन्तरेषु द्विहस्तविष्कम्भं पार्श्वे चतुर्गुणायाममनुप्राकारमष्टहस्तायतं देवपथं कारयेत् ॥१७॥ दण्डान्तरा द्विदण्डान्तरा वा चार्याः कारयेत् ॥ १८ ॥ अग्राह्ये देशे प्रधावितिकां निष्कुहद्वारं च ॥ १६ ॥

इनके बीच में दो हाथ चौड़ा और प्राकार के समीप आठ हाथ चौड़ा और आठ हाथ ही लम्बा एक गुप्त मार्ग बनवाया जावे। एक दण्ड (चार हाथ) या दो दण्ड (आठ हाथ) के अन्तर पर उतरने चढ़ने की सीढ़ी सी बनी होवे। जिस स्थान पर शत्रु के बाण (गोली) न पहुंच सके वहां प्रधावितिका (छुपने का स्थान) बनवावे और शत्रु के देखने को निष्कुह-द्वार (छिद्र) भी रखे ॥१७-१६॥

बहिर्जानुभञ्जनीं त्रिशूलप्रकरकूटावपातकण्टकप्रतिसराहिपृष्ठतालपत्रशृङ्गाटक-श्वदंष्ट्रार्गलोपस्कन्दनपादुकाम्बरीषोदपानकैः छन्नपथं कारयेत् ॥ २० ॥

खाई से बाहर शत्रु के घोटुओं को तोड़ देने वाले खूंटे, त्रिशूलों का समूह, ऊंचे नीचे विषम प्रदेश, लोह कण्टकों का ढेर, सर्प की अस्थियां, तालपत्र के समान लोह जाल, तीन २ नोक वाले लोहे के कांटे, कुत्ते के दांत, बड़े २ लट्टे, दल दल से भरे पैर फंसा देने वाले गड्ढे, आग और दूषित जल से भरे हुए पृथक् २ स्थानों से इस दुर्ग के मार्ग को गुप्त रूप से ढक देवे ॥२०॥

प्राकारमुभयतो मण्डपकमध्यर्धदण्डं कृत्वा प्रतोलीषट्तलान्तरं द्वारं निवेशयेत् ॥ २१ ॥ पञ्चदण्डादेकोत्तरवृद्ध्याष्टदण्डादिति चतुरश्रं द्विदण्डं वा षड्भागमाय मादधिकमष्टभागं वा ॥ २२ ॥

दुर्ग के प्राकार के दोनों ओर के डेढ़ दण्ड (छः हाथ) का एक मण्डप सा बनवाया जावे। उसमें प्रतोली स्थान के सदृश छः खम्भों का एक द्वार बनवावे। द्वार का विस्तार पांच दण्ड (बीस हाथ) से लेकर छः, सात और आठ दण्ड (चौबीस, अट्ठाईस और बत्तीस हाथ) तक का चौकोर द्वार बनवावे। दो दण्ड अर्थात् आठ हाथ का भी कोई २ विद्वान् द्वार बनवाने का मत प्रकट करते अथवा चौड़ाई से छः गुना या अठगुना ऊंचा द्वार बनाया जा सकता है ॥ २२ ॥

पञ्चदशहस्तादेकोत्तरमष्टादशहस्तादिति तलोत्सेधः ॥ २३ ॥ स्तम्भस्य परिक्षेपः षडायामा द्विगुणो निखातः चूलिकायाश्चतुर्भागः ॥ २४ ॥ आदितलस्य पञ्च भागाः शाला वापी सीमागृहं च ॥ २५ ॥ दशभागिकौ समत्तवारणौ द्वौ प्रतिमञ्चौ अन्तरमाणि ॥२६॥ हर्म्यं च समुच्छ्रयादर्धतलं स्थूणावबन्धश्च॥२७॥

पन्द्रह हाथ से लेकर सोलह, सत्रह या अट्ठारह हाथ तक द्वार खम्भे या द्वार की ऊंचाई कर देनी चाहिए। ४ खम्मों की मोटाई छः आयाम अर्थात् ऊंचाई से छठाभाग होजानी चाहिए। मोटाई से दुगुना भाग खम्भों का भूमि नीचे गाड़ दिया जावे। खम्भे की चूलिका (ऊपरी भाग) भी मोटाई से चौथाई होना चाहिए। नीचे की तल (मंजिल) के पांच भागों में वावड़ी, शाला, और सीमाग्रह (छोटे २ ग्रह) वनवावे इसी के दशवें भाग में दो पत्थर के मत्तहाथी और सामने ही दो मञ्च (वुर्जी) रचे। ऊपर के कमरों की ऊंचाई नीचे से आधी होनी चाहिए। और उसमें स्थान २ पर खम्भे भी लगा देवे ॥ २३-२७ ॥

आर्धवास्तुकमुत्तमागारं त्रिभागान्तरं वा ॥ २८ ॥ इष्टकावबन्धपार्श्वम् ॥ २९ ॥ वामतः प्रदक्षिणसोपानं गूढभित्तिसोपानमितरतः ॥ ३० ॥

ऊपर के भाग (मंजिल या तल) की ऊंचाई अर्ध वास्तुक अर्थात् डेढ़ दण्ड (छः हाथ) तक होनी चाहिए या द्वार के परिमाण के अनुसार तृतीयांश ऊंचाई ऊपर के तल की कर देवे। वायीं ओर से दायीं ओर जाने वाली एक सीढ़ी चढ़ाई गई हों और दूसरी ओर गुप्त सोपान (जीना) वनवाना उचित है ॥२८-३०॥

द्विहस्तं तोरणशिरः ॥ ३१ ॥ त्रिपञ्चभागिकौ द्वौ कवाटयोगौ ॥ ३२ ॥ द्वौ द्वौ परिघौ ॥ ३३ ॥

द्वार का शिर (वुर्जी) दो हाथ की वनवावे। तीन या पांच भाग में दोनों किवाड़ आजाने चाहिए। किवाड़ों के पीछे दो २ अर्गला लगवा देवे ॥३१-३३॥

अरत्निरिन्द्रकीलः ॥ ३४ ॥ पञ्चहस्तमणिद्वारम् ॥ ३५ ॥ चत्वारो हस्तिपरिघा ॥ ३६ ॥

एक हाथ की भीतर इन्द्रकील (चटखनी) किवाड़ों को वन्द करने की होनी चाहिए। पांच हाथ का मणिद्वार (किवाड़ों की खिड़की) वनावे। एक २ हाथ की मुटाई के चारों द्वारों के परिघ (अर्गला) वनवाये जावे ॥३४-३६॥

निवेशार्धं हस्तिनखः मुखसमः संक्रमोऽसंहार्यो वा भूमिमयो वा निरुदके ॥ ३७ ॥ प्राकारसमं मुखमवस्थाप्य त्रिभागगोधामुखं गोपुरं कारयेत् ॥३८॥

द्वार की ऊंचाई से आधे परिमाण का द्वार के समीप ऊंचा नीचा मिट्टी का टीला (ढ़ेर) होना चाहिए। दुर्ग में संचरण के स्थान का आकार द्वार के समान ही दृढ़ होना चाहिए। जिसे कोई तोड़ न सके। जल रहित प्रदेश में यह स्थान केवल मिट्टी का ही बनवाया जावे। प्राकार के तुल्य ही मुख बनवाकर तीन भाग में गोधा जन्तु के मुख के आकार का द्वार बनवावे ॥३७-३८॥

प्राकारमध्ये कृत्वा वापीं पुष्करिणींद्वारं चतुःशालमध्यर्धान्तराणीकं कुमारीपुरं मुण्डहर्म्यं द्वितलं मुण्डकद्वारं भूमिद्रव्यवशेन वा ॥३९॥ त्रिभागाधिकायामा भाण्डवाहिनीः कुल्याः कारयेत् ॥ ४० ॥

प्राकार के मध्य में ही बावड़ी बनवा कर उसका द्वार बनवावे। इसी का नाम पुष्करिणी द्वार है। चार शालाओं के समीप इस द्वार से ड्योढ़ा एक द्वार बनवाया जावे, जिसका नाम कुमारी पुर है। मुण्डहर्म्य दो तल का बने और मुण्डक द्वार भूमि के प्रमाण के अनुसार देख कर बनवाले। जिस भवन के ऊपर कंगूरे आदि न लगे हों-वह मुण्डहर्म्य कहाता है। तीन भाग में लम्बी चौड़ी वस्तु ले जाने की एक कुल्या (नहर या सुरङ्ग) बनवानी चाहिए ॥३९-४०॥

तासु पाषाणकुद्दालकुठारीकाण्डकल्पनाः।
मुशुण्डीमुद्गरा दण्डचक्रयन्त्रशतघ्नयः ॥ ४१ ॥
कार्याः कार्मारिकाः शूला वेधनाग्राश्च वेणवः।
उष्ट्रग्रीव्यो ऽग्निसंयोगाः कुप्यकल्पे च यो विधिः ॥४२॥

इस मार्ग से दुर्ग के भीतर पत्थर, कुदाल, कुल्हाड़ी, बाण, कल्पना, (हाथी आदि के सामान) बन्दूक या कीलों की गदा मुद्गर, लाठी, चक्र, यन्त्र, शतघ्नी (तोप) लुहारों के कार्य में आने वाला सामान, शूल, तीक्ष्ण नोक के भाले, बांस, ऊंट की ग्रीवा के आकार के लम्बे २ शस्त्र, अग्नि से चलने वाले शस्त्र तथा अन्य जो युद्धोपयोगी सामान है-वह इकट्ठा करे ॥४१-४२॥

इति श्री कौटलीयार्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार नामक अधिकरण में दुर्ग विधान का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे दुर्गविधानं तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥

आदितश्चतुर्विंशः ॥ २४ ॥



चौथा अध्याय

२२वां प्रकरण

दुर्गनिवेश।

दुर्ग के भीतर राजमार्ग, राज भवन और अमात्यों के भवन किस प्रकार बनाये जावें-इसे दुर्ग निवेश कहते हैं—

त्रयः प्राचीना राजमार्गास्त्रय उदीचीना इति वास्तुविभागः ॥ १ ॥ स द्वादशद्वारो युक्तोदकभूमिच्छन्नपथः ॥ २ ॥ चतुर्दण्डान्तरा रथ्याः ॥ ३ ॥

अब इसी विषय का निरूपण किया जावेगा। इस दुर्ग में तीन पूर्व से पश्चिम और तीन उत्तर से दक्षिण के राज मार्ग होने चाहिए-यह वास्तु विद्या (भवन निर्माणकला) के अनुसार विभाग है। उसमें जो बारह द्वार बताये गए हैं अर्थात् चारों ओर तीन २ द्वार कहे हैं। ठीक जल प्रबन्ध से युक्त, भूमिच्छन्न (सुरङ्ग) मार्ग भी अवश्य होने चाहिए। वह मार्ग कम से कम आठ हाथ चौड़े हों ॥१-३॥

राजमार्गद्रोणमुखस्थानीयराष्ट्रविवीतपथाः संयानीयव्यूहश्मशानग्रामपथाश्चाष्टदण्डाः ॥ ४ ॥ चतुर्दण्डः सेतुवनपथः ॥५॥ द्विदण्डो हस्तिक्षेत्रपथः॥६॥ पञ्चारत्नयो रथपथश्चत्वारः पशुपथः ॥ ७ ॥ द्वौ क्षुद्रपशुमनुष्यपथः ॥ ८ ॥

राजमार्ग (सड़कें) द्रोण मुख (चार सौ गावों के मध्य का स्थान) स्थानीय (आठ सौ गावों के मध्य का स्थान) को जाने वाली और राष्ट्र में घूमने वाली सड़कें, पशुओं के स्थान और व्यापारी मण्डियों के गमन के मार्ग ये सारे आठ दण्ड अर्थात् बत्तीस हाथ तक चौड़े होने चाहिए। सेतुवन का मार्ग, चार दण्ड (सोलह हाथ) हस्ति क्षेत्र का मार्ग आठ हाथ, रथ का मार्ग, पांच अरत्नि (हाथ) और पशुओं के चरने जाने का मार्ग चार हाथ का बनाया जावे। दो हाथ चौड़ा बकरी आदि पशु और मनुष्यों के गमन की पगडण्डी बनायी जावें ॥४-८॥

प्रवीरे वास्तुनि राजनिवेशश्चातुर्वर्ण्यसमाजीवे ॥ ९ ॥ वास्तुहृदयादुत्तरे नवभागे यथोक्तविधानमन्तःपुरं प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा कारयेत् ॥ १० ॥

जिस स्थान में चारों वर्णों के रहने के सुभीते का वीरता के योग्य भूमिभाग हो उसीमें राज भवन बनवाने को दुर्ग बनवाया जावे। इस सुन्दर भूभाग के मध्य से उत्तर

की ओर नवें भाग में विधि पूर्वक अन्तःपुरकी रचना करवाई जावे । अन्तःपुर (रनिवास) का द्वार पूर्व या उत्तर को होना चाहिए ॥ ९-१० ॥

तस्य पूर्वोत्तरं भागमाचार्यपुरोहितेज्यातोयस्थानं मन्त्रिणश्चावसेयुः ॥ ११ ॥ पूर्वदक्षिणं भागं महानसं हस्तिशाला कोष्ठागारं च ॥ १२ ॥

इस राज-भवन के पूर्व और उत्तर के भाग में आचार्य, पुरोहित के भवन, यज्ञशाला जलस्थान और मन्त्रियों के भवन बनवाये जावें । इसी प्रकार पूर्व और दक्षिण के भाग में रसोई घर, हस्तिशाला, और कोष्ठागार (भण्डार) बनवावे ॥ ११-१२ ॥

ततः परं गन्धमाल्यधान्यरसपण्याः प्रधानकारवः क्षत्रियाश्च पूर्वां दिशमधिवसेयुः ॥ १३ ॥ दक्षिणपूर्वं भागं भाण्डागारमक्षपटलं कर्मनिषद्याश्च ॥१४॥ दक्षिणपश्चिमं भागं कुप्यगृहमायुधागारं च ॥ १५ ॥

इसके आगे गन्ध, माला, अन्न, घृत, दुग्ध आदि की दुकानें बनवावे । प्रधान शिल्पी और वीर क्षत्रियों के पूर्व की ओर निवास स्थान बनवा देने चाहिए । दक्षिण और पूर्व के भाग में वस्तुओं का भण्डार, आयव्यय की गणना का कार्यालय, तथा सुवर्ण चांदी आदि की वस्तुओं का भण्डार बनवाया जावे । दक्षिण पश्चिम के भाग में लोह आदि धातु और शस्त्रागार बनवाया जावे ॥ १३-१५ ॥

ततः परं नगरधान्यव्यावहारिककार्मान्तिकबलाध्यक्षाः पक्वान्नसुरामांसपण्याः रूपाजीवास्तालापचारा वैश्याश्च दक्षिणां दिशमधिवसेयुः ॥ १६ ॥

इसके पीछे नगर के धान्य आदि के व्यापारी, आकार (खान) की क्रिया के जानने वाले, सेनापति आदि यथा योग्य अधिकारीगण, बसाने उचित हैं। फिर हलवाई की दुकानें, सुरा (शराब) और मांस की दुकानें हों । वेश्या, गाने वाले और वैश्य लोग इस नगर के दुर्ग के दक्षिण में बसाये जावें ॥ १६ ॥

पश्चिमदक्षिणं भागं खरोष्ट्रगुप्तिस्थानं कर्मगृहं च ॥ १७ ॥ पश्चिमोत्तरं भागं यानरथशालाः ॥ १८ ॥

पश्चिम दक्षिण के भाग में गधे ऊंट आदि के रक्षागृह तबेले आदि और उनके सिखाने के गृह बनवाये जावें । पश्चिमोत्तर भाग में पालकी और रथ आदि के स्थान बनवाये जावें ॥ १७-१८ ॥

ततः परमूर्णासूत्रवेणुचर्मवर्मशस्त्रावरणकारवः शूद्राश्च पश्चिमां दिशमधिवसेयुः ॥ १९ ॥ उत्तरपश्चिमं भागं पण्यभैषज्यगृहम् ॥ २० ॥ उत्तरपूर्वं भागं कोशो गवाश्वं च ॥ २१ ॥

इसके बाद ऊन,सूत, बांस, चमड़ा, कवच, शस्त्र, और हाथी आदि की झूले बनाने वाले कारीगरों के घर हों। इसी पश्चिम की ओर अन्य शूद्र भी अपना २ निवास स्थान निश्चित करे। उत्तर पश्चिम के भाग में राजकोय वेचने खरीदने का बाजार और औषधालय होने चाहिए। इसी तरह उत्तर पूर्व के भाग में कोश, और गौअश्वों की शाला का निर्माण कराया जावे ॥ १६-२१ ॥

ततः परं नगरराजदेवतालोहमणिकारवो ब्राह्मणाश्चोत्तरां दिशमधिवसेयुः ॥ २२ ॥ वास्तुच्छिद्रानुलासेषु श्रेणीप्रवहणिकनिकाया आवसेयुः ॥ २३ ॥

इसके पीछे नगर और राजकुल के देवमन्दिर, लुहार मनिहार आदि शिल्पी और ब्राह्मण उत्तर दिशा में बसे। इस नगर की खाली भूमि में धोबी, जुलाहे,डोली ले जाने वाले आदि का समूह वास करे ॥ २२-२३ ॥

अपराजिताप्रतिहतजयन्तवैजयन्तकोष्ठाकान् शिववैश्रवणाश्विश्रीमदिरागृहं च पुरमध्ये कारयेत् ॥ २४ ॥ कोष्ठकालयेषु यथोद्देशं वास्तुदेवताः स्थापयेत् ॥२५॥

दुर्गा, विष्णु, जयन्त, वैजयन्त (इन्द्र) शिव,कुवेर सावरूण, अश्विनीकुमार, लक्ष्मी और मदिरा देवी के स्थान नगर के मध्य में बनवाये इस दुर्गसहित नगर में भिन्न २ कोष्ठों में यथोचित वास्तु देवता की स्थापना करे ॥ २४-२५ ॥

ब्राह्मैन्द्रयाम्यसैनापत्यानि द्वाराणि ॥ २६ ॥ बहिः परिखायाः धनुःशतापकृष्टाश्चैत्यपुण्यस्थानवनसेतुबन्धाः कार्याः, यथादिशं च दिग्देवताः ॥२७॥

प्रत्येक द्वार पर उसके देवता की स्थापना करे। उत्तर का ब्रह्मा, पूर्व का इन्द्र, दक्षिण का यम और पश्चिम का सेनापति (कुमार) देवता है। परिखा से बाहर सौ धनुष (दो सौ गजके लग भग) की दूरी पर चैत्य (बगीचा) पुन्य स्थान, उपवन, सेतु बन्ध आदि स्थानों की रचना और यथा स्थान दिग्देवताओं की स्थापना की जावे ॥२६-२७॥

उत्तरः पूर्वो वा श्मशानवाटः ॥ २८ ॥ दक्षिणेन वर्णोत्तराणाम् ॥२६॥ तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३० ॥

नगर के उत्तरऔर पूर्व की ओर शमशान का स्थान हो । दक्षिण दिशा में छोटे वर्णों का शमशान बनाया जावे। जो शमशानों को उलट पलट कर अपने मृतकों को जलावे उसे राजा प्रथम साहस दण्ड (नियत जुरमाने का दण्ड) देवे ॥२८-३०॥

पाषण्डचण्डालानां श्मशानान्ते वासः ॥ ३१ ॥ कर्मान्तक्षेत्रवशेन वा कुटुम्बिनां सीमानं स्थापयेत् ॥ ३२ ॥ तेषु पुष्पफलवाटषण्डकेदारान्धान्यपण्यनिचयांश्चानुज्ञाताः कुर्युः, दशकुलीवाटं कूपस्थानम् ॥ ३३ ॥

पापंडी (कापालिक आदि) या चंडालों का निवास स्थान श्मशान के समीप नियत करे। प्रत्येक शिल्पी के कारखाने आदि की भूमि की सीमा का उसके कार्य को देख कर-कर देना चाहिये। यदि किसी के पास भूमि अधिक हो तो वह आज्ञा लेकर उस में पुष्प फल, कमल, शाक आदि की क्यारी, धान्य या अन्य बेचने की वस्तुओं की बगीची बना सकता है। बीस हल से जोती जाने योग्य भूमि पर एक २ कुँआ बनवा देना चाहिए ॥३१-३३॥

सर्पिस्नेहधान्यक्षारलवणभैषज्यशुष्कशाकयवसवल्लूरतृणकाष्ठ लोहचर्माङ्गारस्नायुविषविषाणवेणुवल्कलसारदारुप्रहरणावरणाश्मनिचयाननेकवर्षोपभोगसहान्कारयेत् ॥ ३४ ॥नवेनानवं शोधयेत् ॥ ३५ ॥

घी, तेल, अन्न, क्षार, नमक, औषध, सूखे शाक, चारा, सूखा मांस, तृण, काष्ठ, लोह, चमड़ा, कोयला, स्नायु, (तांत) विष, सींग, बांस, वृक्ष छाल, उत्तम लकड़ी, शस्त्र, पत्थरों का ढ़ेर इतना इकट्ठा कर लिया जावे, कि कई वर्ष तक समय पर काम दे सके। जब वस्तु बिगड़ जावे-तो उसके स्थान पर नई लेली जावे ॥३४-३५॥

हस्त्यश्वरथपादातमनेकमुख्यमवस्थापयेत् ॥ ३६ ॥ अनेकमुख्यं हि परस्परभयात्परोपजापं नोपैतीति ॥ ३७ ॥ एतेनान्तपालदुर्गसंस्कारा व्याख्याताः ॥ ३८ ॥

हाथी, अश्व और पैदल सेना को अनेक अधिकारियों के अधीन मुख्य स्थानों पर रखे। अनेक अध्यक्षों के अधीन होने से परस्पर भय के कारण वे एक दूसरे से तोड़े फोड़े नहीं जा सकते हैं। इसी तरह सीमा पालक और दुर्गपाल भी अनेक होने चाहिए-जिससे शत्रु द्वारा वश में नहीं लाये जा सके ॥३६-३८॥

न च बाहिरिकान्कुर्यात्पुरराष्ट्रोपघातकान् ।
क्षिपेज्जनपदस्यान्ते सर्वान्वा दापयेत्करान् ॥ ३९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे दुर्गनिवेशश्चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥
आदितः पञ्चविंशः ॥ २५ ॥

जो बाहर के नट नर्तक आदि धूर्त मनुष्य राष्ट्र के घातक है, उनको राजा अपने नगर में न वसने देवे। यदि वसाने ही पड़े-तो उनको अपने देश की सीमा पर रखे और उन पर कोई कर इस प्रकार का लगादे, जिससे वे शत्रु के कार्य को न कर सके ॥३९॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार नामक अधिकरण में दुर्ग निवेश का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।



पांचवां अध्याय

२३वां प्रकरण

सन्निधाताका निचयकर्म।

राजकीय वस्तुओं के इकट्ठे करने वाले अध्यक्ष का क्या कर्तव्य है-अब इसका वर्णन चलता है—

संनिधाता कोशगृहं पण्यगृहं कोष्ठागारं कुप्यगृहमायुधागारं बन्धनागारं च कारयेत् ॥१॥ चतुरश्रां वापीमनुदकोपस्नेहां खानयित्वा पृथुशिलाभिरुभयतः पार्श्वं मूलं च प्रचित्य सारदारुपञ्जरं भूमिसमं त्रितलमनेकविधानं कुट्टिमदेशस्थानतलमेकद्वारं यन्त्रयुक्तसोपानं देवतापिधानं भूमिगृहं कारयेत् ॥ २ ॥

सन्निधाता नामक अध्यक्ष (कोशाध्यक्ष या भांडाराधिपति) कोशगृह पण्यगृह (राजकीय विक्रेय वस्तुगृह) कोष्ठागार (अन्नघृतादि का भाण्डार) कुप्यगृह (धातुशाला), शस्त्रशाला, और बन्धनागार (जेलखाना) का निर्माण करवावे। इसी तरह जल और पानी की सील से ऊपर २ एक चौकोर बावड़ी सी खुदवावे, उसको मोटी २ शिलाओं से चारों ओर से चुनवाकर उसके पार्श्व (बग़ल) और मूल (तल भाग) को भी दृढ़ पत्थरों से ठीक करके और उसे भी दृढ़ (मज़बूत) लकड़ियों से पटवाकर तीन तले की अनेक ढंग से समान भूमि करवाकर सुन्दर बनवा लेवे। इसमें एक द्वार हो और यन्त्र की सीढ़ी लगी हों। इसकी रचना देव मन्दिर सी हो जिससे यह गुप्त रह सके। इस प्रकार का एक भूमिगृह (तहख़ाना) बनना चाहिए ॥१-२॥

तस्योपर्युभयतोनिषेधं सप्रग्रीवमैष्टकं भाण्डवाहिनीपरिक्षिप्तं कोशगृहं कारयेत् ॥ ३ ॥ प्रासादं वा जनपदान्ते ध्रुवनिधिमापदर्थमभित्यक्तैः पुरुषैः कारयेत् ॥ ४ ॥

इस ऊपर के भाग में दोनों ओर से रुका हुआ, ईंट के प्रग्रीव (बरामदे) से युक्त, अनेक भाण्डागारों से सुसम्पन्न, कोशगृह बनवाया जावे। इस गृह और एक ऐसे ही महल की रचना अपने राष्ट्र के मध्य में और करवावे, जिसमें उत्तम २ रत्नादि का संग्रह हो। यह भवन आपत्ति से रक्षा के निमित्त बनवाया जाता है। इस गुप्त भवन को उन अपराधियों से बनवावे, जिनको थोड़े दिन में ही फांसी देनी हो ॥३-४॥

पक्वेष्टकास्तम्भं चतुःशालमेकद्वारमनेकस्थानतलं विवृतस्तम्भापसारमुभयतः पण्यगृहं कोष्ठागारं च दीर्घं बहुलशालं कक्ष्यावृत कुड्यमन्तः

कुप्यगृहं तदेव भूमिगृहयुक्तमायुधागारं पृथग्धर्मस्थीयं महामात्रीयं विभक्त-स्त्रीपुरुषस्थानमपसारतः सुगुप्तकक्ष्यं बन्धनागारं कारयेत् ॥ ५ ॥

पक्की २ ईंटों के खम्भों से युक्त, चारों ओर शालाओं से सुसम्पन्न, एक द्वार वाला, अनेक तलों (मंजिलों) से सुशोभित, घेरे के समय निकलने की सुरङ्ग से सुसज्जित पण्यगृह और कोष्ठागार बनाया जावे ! और बड़ी २ दीर्घशाला भीतों वाली अनेक कोठरियों से घिरा हुआ कुप्यगृह (धातुगृह) हो। इसी तरह भूमिगृह (तहखाने) में आयुधागार [शस्त्रशाला] बना हुआ होना चाहिए। बन्धनागार में धर्मस्थ (न्यायाध्यक्ष) या महामात्र (बड़े अफ़सर) से सजा पाये पुरुषों का पृथक् २ स्थान हो। उसमें स्त्री और हुए पुरुषों का स्थान भी भिन्न२ होना चाहिए। इसमें से भी निकलने को गुप्त मार्ग हो-ऐसा बन्धनागार (क़ैदखाना) बनवाना उचित है ॥ ५ ॥

सर्वेषां शालाखातोदपानवर्च्च स्नानगृहाग्निविषत्राणमार्जार नकुलारक्षाः स्वदैवपूजनयुक्ताः कारयेत् ॥ ६ ॥

इन सब स्थानों को शाला, खात (गड्ढे) और कुओं की भांति स्नानगृह से युक्त, अग्नि, विष से बचने के साधनों से सम्पन्न, मार्जार (बिल्ली) नौले जैसे जन्तुओं सहित, अपने २ इष्टदेवों के पूजनों से सुशोभित, बनवाना चाहिए ॥ ६ ॥

कोष्ठागारे वर्षमानमरत्निमुखं कुण्डं स्थापयेत् ॥ ७ ॥ तज्जातकरणाधिष्ठितः पुराणं नवं च रत्नं सारं फल्गुकुप्यं वा प्रतिगृह्णीयात् ॥ ८ ॥

कोष्ठागार में वर्षा के नापने का एक हाथ के मुखवाला एक कुण्ड बनवाया जावे। इस कोष्ठागार का अधिपति इस विषय के छोटे२ अध्यक्षों के साथ, पुरानी, नयी, वस्तु और रत्नों की अच्छी तरह पड़ताल करवाकर तथा उत्तम २ काष्ठ वस्त्र, चमड़ा आदि वस्तुओं का वहाँ संग्रह करे ॥ ७-८ ॥

तत्र रत्नोपधावुत्तमो दण्डः कर्तुः कारयितुश्च ॥ ९ ॥ सारोपधौ मध्यमः ॥ १० ॥ फल्गुकुप्योपधौ तच्च तावच्च दण्डः ॥ ११ ॥

जो पुरुष, इस कोशगृह में नकली रत्नों को छल से रख देवे या सहायता करे-तो उस रखने रखवाने वाले को राजा अच्छी तरह दण्ड देवे। यदि चंदन आदि लकड़ियों के निमित्त छल किया गया हो-तो उसे मध्यम दण्ड देना उचित है। जो पुरुष, वस्त्र और चमड़े आदि में छल करे-तो उसे भी उतना ही दण्ड देवे ॥ ९-११ ॥

रूपदर्शकविशुद्धं हिरण्यं प्रतिगृह्णीयात् ॥ १२ ॥ अशुद्धं छेदयेत् ॥ १३ ॥ आहर्तुः पूर्वः साहसदण्डः ॥ १४ ॥ शुद्धं पूर्णमभिनवं च धान्यं प्रतिगृह्णीयात् ॥ १५ ॥ विपर्यये मूल्यद्विगुणो दण्डः ॥ १६ ॥

सुवर्ण आदि परीक्षक अध्यक्षों के सहित सुवर्ण के सिक्कों का संग्रह किया जावे। जो सिक्का अशुद्ध (बनावटी) हो-उसे काट दे। इस प्रकार बनावटी सिक्के बनाने वाले पुरुष को उत्तम दण्ड का विधान है। इसी तरह शुद्ध और नये धान्य का संग्रह किया जावे जो इसमें गड़ बड़ी करदे-उस पर उसके मूल्य से द्विगुण दण्ड (जुरमाना) करे ॥१२-१६॥

तेन पण्यं कुप्यमायुधं च व्याख्यातम् ॥ १७ ॥ सर्वाधिकरणेषु युक्तोपयुक्ततत्पुरुषाणां पणादिचतुष्पणाः परमपहारेषु पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः॥ १८ ॥

उपर्युक्त प्रकार से ही बेचने खरीदने की वस्तु, लकड़ी चमड़ा आदि सामान और शस्त्र आदि की व्यवस्था समझ लेनी चाहिए। इन सारे अधिकारों पर नियुक्त, पुरुष तथा उनके साथी छोटे अफसर और कर्मचारी इस ढंग की चोरी एक बार करे-तो उनको यथा योग्य धन दण्ड देना चाहिए-तथा इस पर भी वे न माने-तो उन पर उत्तम मध्यम और प्रथम दण्ड या मृत्यु दण्ड देना चाहिए॥ १७-१८॥

कोशाधिष्ठितस्य कोशावच्छेदे घातः ॥ १९ ॥ तद्वैयावृत्यकाराणामर्धदण्डः ॥ २० ॥ परिभाषणमविज्ञाने ॥ २१ ॥

यदि कोशाध्यक्ष किसी ढंग से कोशका अपहरण करे-तो उसे प्राण दण्ड देना चाहिए इसके साथी पुरुषों को आधा दण्ड देना उचित है। यदि अज्ञान में कोशका अपहरण हुआ हो-तो उसको फटकार कर सावधान कर दिया जावे॥ १९-२१॥

चोराणामभिप्रधर्षणे चित्रो घातः ॥ २२॥ तस्मादाप्तपुरुषाधिष्ठितः संनिधाता निचयाननुतिष्ठेत् ॥ २३ ॥

यदि चोर दीवार तोड़कर कोश धन का अपहरण करें-तो उन्हें कष्ट के साथ प्राण दण्ड देना चाहिए। इन सब बातों पर ध्यान देकर आप्त (श्रेष्ठ विश्वासी) पुरुषों के साथ संनिधाता (कोशाध्यक्ष) इस अपने भाण्डार को भरता रहे॥२२-२३॥

बाह्यमाभ्यतरं चायं विद्याद्वर्षशतादपि।
यथा पृष्टो न सज्येत व्ययशेषं च दर्शयेत् ॥ २४ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे संनिधातृनिचयकर्म पञ्चमो ऽध्यायः ॥५॥
आदितः षड्विंशः ॥ २६ ॥

कोशाध्यक्ष, अपने कोश के बाहर और भीतरी [अपने देश और बाहर के देश] सौ वर्ष तक के आय व्यय को अच्छी तरह जानता रहे और जब कभी राजा पूछे-और वह उसे झटपट यदि जिह्वा [जुबानी] न बता सके-तो आय व्यय की बही दिखाकर जो बचत हो-वह फौरन बता देनी चाहिए॥२४॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में कोशाध्यक्ष के वस्तुओं के संग्रह का पांचवां अध्याय समाप्त हुआ।



छठा अध्याय

२४वां प्रकरण

समाहर्तृ—समुदय-प्रस्थापनम्।

राज्य की माल गुजारी वसूल करने वाले को संस्कृत में समाहर्ता कहते हैं अब उसके कार्यों का वर्णन किया जाता है—

समाहर्ता दुर्गं राष्ट्रं खनिं सेतुं वनं व्रजं वणिक्पथं चावेक्षेत ॥ १ ॥ शुल्कं दण्डः पौतवं नागरिको लक्षणाध्यक्षो मुद्राध्यक्षः सुरा सूना सूत्रं तैलं घृतं क्षारं सौवर्णिकः पण्यसंस्था वेश्या द्यूतं वास्तुकं कारुशिल्पिगणो देवताध्यक्षो द्वारवाहिरिकादेयं च दुर्गम् ॥ २ ॥

समाहर्ता [कलक्टर] दुर्ग [क़िला] राष्ट्र, आकर [खान] सेतु [पुल] वन, गोष्ट और व्यापार के मार्गों का सर्वदा निरीक्षण करता रहे। शुल्क [चुंगी] दण्ड [जुरमाना] पौतव [तराजूबाट आदि] नगराध्यक्ष, [तहसीलदार] लक्षणाध्यक्ष [कानूगो आदि] मुद्राध्यक्ष [खजानची] सुराध्यक्ष [आबकारी का अफसर] प्राणिवधाध्यक्ष, [फांसी देने वाला] सूत्राध्यक्ष, तेल, घृत, क्षार, [नमक] और सुवर्ण के वेचने के स्थान, तथा अन्य विक्रेय वस्तु, वेश्या द्यूत [जुआ] वास्तुक [गृहनिर्माण] के महकमें तथा अन्य शिल्पी कारीगर, और देवताओं का बचा हुआ एवं द्वारपाल और नट नर्तक आदि से इकट्ठा किया हुआ धन दुर्ग में डालने के निमित्त माना गया है ॥१-२॥

सीता भागो बलिः करो वणिक् नदीपालस्तरो नावः पट्टनं विवीतं वर्तनी रज्जूश्चोररज्जूश्च राष्ट्रम् ॥ ३ ॥

कृषि, भाग [छठा भाग] बलि, [उपहार आदि] कर, [फल वृक्ष आदि का कर] वणिक् नदी पार का टैक्स, नाव के कर, नगर से प्राप्त धन, पशुशाला से मिले हुए धन सड़कों के धन, रज्जू [भूमि के अन्य कर] चोर रज्जू [चोरों से मिला धन] का धन राष्ट्र के हितों पर व्यय कर देना चाहिए ॥३॥

सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ताप्रवालशङ्खलोहलवणभूमिप्रस्तररसधातवः खनिः ॥ ४ ॥ पुष्पफलवाटषण्डकेदारमूलवापाः सेतुः ॥ ५ ॥ पशुमृगद्रव्यहस्तिवन-परिग्रहो वनम् ॥ ६ ॥

सुवर्ण, चांदी, हीरा, मरकत मणि, मोती मूंगा, शंख, लोह, लवण, भूमि, पत्थर तथा रसधातु, ये सारे पदार्थ खनिज कहलाते हैं, क्योंकि ये खानों से प्राप्त होते हैं। पुष्प, फल, केला सुपारी आदि के बाग, अन्नों के खेत तथा अदरक, हल्दी आदि पदार्थ सेतु कहाते हैं, क्योंकि जल से उत्पन्न होते हैं। पशु, मृग, भिन्न २ काष्ठ हाथी आदि वस्तु वन से प्राप्त होने के कारण ये वन कहाती है ॥४-६॥

गोमहिषमजाविकं खरोष्ट्रमश्वाश्वतराश्च व्रजः ॥ ७ ॥ स्थलपथो वारिपथश्च वणिक्पथः ॥ ८ ॥ इत्यायशरीरम् ॥ ९ ॥

गाय, भैंस, बकरी भेड़, गधा, ऊंट, अश्व खच्चर आदि जन्तु व्रज नाम से माने गए है-क्योंकि ये अपने २ गोष्ठ में रहते हैं। स्थल मार्ग, जलमार्ग और वणिक् मार्ग-ये सब राजा की आमदनी के मार्ग है। ये सब आय शरीर कहाते हैं ॥७-९॥

मूलं भागो व्याजी परिघः क्लृप्तं रूपिकमत्ययश्चायमुखम् ॥ १० ॥

मूल [फल आदि से प्राप्त] भाग [अन्न का छठा भाग] व्याजी [व्यापारियों से दण्ड द्वारा मिला हुआ धन] परिघ [लावारिसी धन] क्लृप्त, [नियत किया हुआ टैक्स] रूपिक [नमक टैक्स] अत्यय, [जुरमाने का द्रव्य] ये भी राजा की आमदनी के मार्ग कहे जाते हैं ॥१०॥

देवपितृपूजादानार्थं स्वस्तिवाचनमन्तः पुरं महानसं दूतप्रवर्तनं कोष्ठा-गारमायुधागारं पण्यगृहं कुप्यगृहं कर्मान्तो विष्टिः पत्त्यश्वरथद्विपपरिग्रहो गोम-ण्डलं पशुमृगपक्षिव्यालवाटाः काष्ठतृणवाटाश्चेति व्ययशरीरम् ॥ ११ ॥

देव पूजा, पितृ पूजा, दान, स्वस्तिवाचन, अन्तःपुर, रसोई, दूत, कोष्ठागार, [चीजे इकट्ठी करना] शस्त्रागार [शस्त्र बनवाना] पण्यगृह [बेचने खरीदने के स्थान] कुप्यगृह धातु खरीदना] कृषि आदि का कार्य, विष्टि [बेगार आदि] पैदल, अश्व, रथ, हाथी का खरीदना, गो मण्डल, पशु, मृग पक्षि तथा व्याघ्र आदि जन्तुओं का संग्रह, काष्ठ तृण बगीचे आदि की रक्षा में राज धन का व्यय होता है। इन्हें व्यय शरीर कहते हैं ॥११॥

राजवर्षं मासः पक्षो दिवसश्च व्युष्टं वर्षाहेमन्तग्रीष्माणां तृतीयसप्तमा दिवसोनाः पक्षाः शेषाः पूर्णाः पृथगधिमासक इति कालः ॥ १२ ॥

राजा के वर्ष, मास पक्ष और दिन को व्युष्ट कहते हैं, वर्षा हेमन्त और ग्रीष्म के तीसरे और चौथे पक्ष में एक दिन कम मानना चाहिए। शेषपक्ष पूरे पन्द्रह दिन के मानने चाहिए। एक अधिक मास भी गणना में लेना है। इस प्रकार काल का विभाग है ॥१२॥

करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवी च ॥ १३ ॥ संस्थानं प्रचारः शरीरावस्थापनमादानं सर्वसमुदयपिण्डः संजातमेतत्करणीयम् ॥ १४ ॥

करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय और नीवी का समाहर्ता ठीक २ व्यवस्था करता रहे। संस्थान [ग्राम से ग्रहण करने योग्य नियत धन] प्रचार [भिन्न २ देशों के ज्ञान] शरीरावस्थापन [आय व्यय का ज्ञान] आदान [सुवर्ण धान्य आदि का ग्रहण] सर्व समुदय पिण्ड [धान्य का एक स्थान पर एकत्र करना] सञ्जात प्राप्त [धन का ज्ञान] ये छः करणीय कहाते हैं। ॥१४॥

कोशार्पितं राजहारः पुरव्ययश्च प्रविष्टं परमसंवत्सरानुवृत्तं शासनमुक्तं मुखाज्ञप्तं चापातनीयमेतत्सिद्धम् ॥ १५ ॥

कोशार्पित [कोश में पहुंचाया हुआ] राजहार [राजा के व्यय में लगा हुआ] पुर व्यय [पुर के व्यय में लगा हुआ] में व्यय किया हुआ धन प्रविष्ट कहाता है। परम संवत्सरानुवृत्त [पिछले वर्ष का बचा हुआ] शासन मुक्त [जिसके व्यय की अभी तक कोई आज्ञा नहीं हुई] मुखाज्ञप्त [मुख से खर्च करने की आज्ञा दिया हुआ धन] आपातनीय कहाता है। प्रविष्ट और आपातनीय ये दोनों मिलकर सिद्ध कहाते हैं ॥१५॥

सिद्धिप्रकर्मयोगः दण्डशेषमाहरणीयं वलात्कृतप्रतिस्तब्धमवसृष्टं च प्रशोध्यमेतच्छेषमसारमल्पसारं च ॥ १६ ॥

सिद्ध प्रकर्मयोग [प्राप्त धन का काम में लेना] और दण्ड शेष [जुरमाने का द्रव्य] ये दोनों आहरणीय कहाते हैं। प्रतिस्तब्ध [राजा के प्रिय पुरुषों पर रुका हुआ धन] अवसृष्ट (नगर के मुखिया चौधरी पटेलों द्वारा नहीं दिया गया) धन प्रशोध्य कहाता है। इसी प्रकार व्यर्थ व्यय या थोड़े लाभ में अधिक व्यय किया हुआ धन शेष शब्द से व्यवहृत होता है, क्योंकि यह राजा को समाहर्ता द्वारा अभी प्राप्त करना है। इस प्रकार आहरणीय, प्रशोध्य असार या अल्पसार शेष धन कहाते हैं ॥१६॥

वर्तमानः पर्युषितोऽन्यजातश्चायः ॥ १७ ॥ दिवसानुवृत्तो वर्तमानः ॥ १८ ॥ परमसांवत्सरिकः परप्रचारसंक्रान्तो वा पर्युषितः ॥ १९ ॥ नष्टप्रस्मृतमायुक्तदण्डः पार्श्वं पारिहीणिकमौपायनिकं डमरगतकस्वमपुत्रकं निधिश्चान्यजातः ॥ २० ॥

वर्तमान, पर्युषित और अन्य जात-इस तरह तीन प्रकार का आय माना गया है। दैनिक आय वर्तमान, पिछले वर्ष का शेष या शत्रु के यहां से किसी प्रकार प्राप्त धन पर्युषित कहाता है। भूले धन का स्मरण, अपराधियों से दण्ड में लिया हुआ धन, किन्ही वक्र उपायों से प्राप्त धन भेंट में आया हुआ, युद्ध या कलह में छीना हुआ धन, पुत्र-हीन का लावारिस धन 'अन्य जात' आय में परिगणित हैं ॥१७-२०॥

विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेषश्च व्ययप्रत्यायः ॥ २१ ॥ विक्रये पण्यानामर्घवृद्धिरुपजा मानोन्मानविशेषो व्याजी क्रयसंघर्षे वा वृद्धिरित्यायः ॥ २२ ॥

कार्य पर लगायी हुई सेना आदि के व्यय से बचा हुआ धन, औषधालयों का शेष धन, तथा अपने आन्तरिक कार्य दुर्ग आदि में व्यय किये हुए धन का शेष भाग यह व्यय प्रत्याय कहाता है। वस्तुओं के विक्रय, या बेचने योग्य वस्तुओं के मूल्य वृद्धि से होने वाले लाभ, खर्च में काट छाँट कर बचाये हुए धन, व्यापारियों के मान दण्ड के कमती बढ़ती होने का जुरमाना तथा खरीदारों की बहस में बढ़ा हुआ धन आय कहाता है। यह भी आय के ही भीतर गिना गया है ॥२२॥

नित्यो नित्योत्पादिको लाभो लाभोत्पादिक इति व्ययः ॥ २३ ॥ दिवसानुवृत्तो नित्यः ॥ २४ ॥ पक्षमाससंवत्सरलाभो लाभः ॥ २५ ॥ तयोरुत्पन्नो नित्योत्पादिको लाभोत्पादिक इति ॥ २६ ॥

नित्य, नित्योत्पादिक, लाभ और लाभोत्पादिक-ये चार व्यय हैं। जो नित्य व्यय होता है-इसे नित्य व्यय कहते हैं। जो पक्षमास या संवत्सर में होने वाले लाभ के लिए व्यय किया जाता है-वह व्यय लाभ कहाता है। इन दोनों कार्यों में नियमित व्यय से अधिक व्यय होवे-तो नित्योत्पादिक और लाभोत्पादिक व्यय कहाते हैं ॥२३-२६॥

व्ययसंजातादायव्ययविशुद्धा नीवी प्राप्ता चानुवृत्ता चेति ॥ २७ ॥

व्यय से बिल्कुल बचा हुआ धन नीवी कहाता है जिसके आय व्यय की अच्छी तरह पड़ताल करली गई है। यह दो प्रकार का होता है एक प्राप्त और दूसरा अनुवृत्त। जो कोश में पहुंच गया वह प्राप्त और जो पहुंचना है वह अनुवृत्त कहाता है ॥२७॥

एवं कुर्यात्समुदयं वृद्धिं चायस्य दर्शयेत् ।
ह्रासं व्ययस्य च प्राज्ञः साधयेच्च विपर्ययम् ॥ २८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे समाहर्तृसमुदयप्रस्थापनं षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥ आदितः सप्तविंशः ॥ २७ ॥

इस प्रकार बुद्धिमान् समाहर्ता [कलक्टर] राज धन का संग्रह करे और धन की आय तथा वृद्धि और खर्च का हिसाब रखे। इस प्रकार समाहर्ता [कलक्टर] व्यय की कमी और लाभ की वृद्धि का सर्वदा उपाय करे॥२८॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचारअधिकरण में समाहर्ता के वस्तु संग्रह आदि का छठा अध्याय समाप्त हुआ।



सातवां अध्याय

२५वां प्रकरण

अक्षपटल में गाणनिक्याधिकार।

राजकीय आय व्यय के स्थान [दफ्तर] को अक्षपटल कहते हैं। गणना करने वाले पुरुषों को गाणनिक कहते हैं। अब इनके अधिकार का निरूपण किया जाता है।

अक्षपटलमध्यक्षः प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा विभक्तोपस्थानं निबन्धपुस्तकस्थानं कारयेत् ॥ १ ॥

आय व्यय का प्रधान अधिकारी पुरुष, अक्षपटल [दफ्तर हिसाब] के भवन का निर्माण करवावे। उसका द्वार पूर्व और उत्तर को होना चाहिए छोटे बड़े कर्मचारी [क्लर्क] गणों के पृथक् २ स्थान होने चाहिए। इसी प्रकार उसमें निबन्ध पुस्तक [रजिस्टरों] के रखने का स्थान [आलमारी] भी अच्छी तरह से बनवाना चाहिए॥ १॥

तत्राधिकरणानां संस्थानप्रचारसंजाताग्रं कर्मान्तानां द्रव्यप्रयोगे वृद्धिक्षयव्ययप्रयामव्याजी योगस्थानवेतनविष्टिप्रमाणं रत्नसारफल्गुकुप्यानामर्घप्रतिवर्णकप्रतिमानमानोन्मानावमानभाण्डं देशग्रामजातिकुलसङ्घातनां धर्मव्यवहारचरित्रसंस्थानं राजोपजीविनां प्रग्रहप्रदेशभोगपरिहारभक्तवेतनलाभं राज्ञश्च पत्नीपुत्राणां रत्नभूमिलाभं निर्देशोत्पातिकप्रतीकारलाभं मित्रामित्राणां च संधिविक्रमप्रदानादानि निबन्धपुस्तकस्थं कारयेत् ॥ २ ॥

इस अक्षपटल [दफ्तर हिसाब] में भिन्न २ अधिकरणों [महकमों] से प्राप्तधन का पूरा २ हिसाब रहना चाहिए। प्रत्येक खान आदि कार्यों में प्रयुक्त द्रव्य की वृद्धि क्षय व्यय [खर्च] तथा प्रयाग [तैयार अन्न आदि] व्याजी [कम तोलने आदि से दन्ड में प्राप्तधन] योग [सब का जोड़ लगाना या मिलान करना] स्थान [धन प्राप्ति स्थान] वेतन, विष्टि

[बेगार] आदि से बचे धन का निबन्ध पुस्तक [रजिस्टर] में पूरा ब्यौरा दर्ज रखा जावे। रत्न, सार [बढ़िया लकड़ी] फल्गु [वस्त्र आदि] कुप्य [चमड़ा बांस आदि] प्रत्येक वस्तु का मूल्य गुण, तोल, लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई, गहराई का लेख रहना चाहिए। देश, ग्राम, जाति कुल और सभाओं के धर्म, व्यवहार, चरित्र और विशेष स्थितियों का भी रजिस्टर बनाया जावे। राज्य के सेवक कर्मचारी आदि का प्रग्रह (सत्कार) प्रदेश (स्थान) भोग (भेंट) परिहार (मुआफी) भक्त (पेटिया आदि) और वेतन लाभ का भी रजिस्टर में उल्लेख (इन्द्राज) हो। राजपत्नी (महारानी) राज पुत्रों द्वारा प्राप्त रत्न भूमि आदि का लाभ, आज्ञा भङ्ग करने पर दण्ड से प्राप्त धन एवं मित्र और अमित्र राजाओं से सन्धि, युद्ध तथा उनको दिए या लिए हुए धन का भी पूरा ब्योरा रजिस्टर में रहना चाहिए ॥ २ ॥

ततः सर्वाधिकरणानां करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवीमुपस्थानं प्रचारचरित्रसंस्थानं च निबन्धेन प्रयच्छेत् ॥ ३ ॥ उत्तममध्यमावरेषु च कर्मसु यज्जातिकमध्यक्षं कुर्यात् ॥४॥ सामुदायिकेष्ववक्लृप्तिकं यमुपहत्य न राजानुतप्येत ॥५॥

इस प्रकार सारे अधिकरण (महकमों) के करणीय (ग्रामों से प्राप्त करने योग्य धन) सिद्ध (कोश में डाला हुआ) शेष (वसूल करने योग्य) आय (आमदनी) व्यय (ख़र्च) और नीवी (बचत) तथा कर्मचारियों का उप स्थान (हाज़िरी ग़ैरहाजिरी) काम, व्यवहार और विशेष कार्यों का भी उल्लेख करके राजा के सन्मुख रजिस्टर द्वारा प्रस्तुत करे। जैसा जिस का कार्य हो-उसी के अनुसार उनके पद की वृद्धि करके उनमें से क्रम से अध्यक्ष बनाना उचित है। यदि बहुतों ने एक ही कार्य को बड़ी उत्तमता से किया है, तो उनमें से अत्यन्त योग्य को छांट कर अध्यक्ष [अफसर] नियुक्त किया जावे, क्योंकि उस अनुभवी को काम सौंपने से राजा को परिणाम में पछताना नहीं पड़ेगा ॥ ३-५ ॥

सहग्राहिणः प्रतिभुवः कर्मोपजीविनः पुत्रा भ्रातरो भार्या दुहितरो भृत्याश्चास्य कर्मच्छेदं वहेयुः ॥ ६ ॥

यदि किसी अध्यक्ष ने राज्य कार्य का नाश करके धन का अपहरण किया-तो राजा उस धन को उस अध्यक्ष के साथी, प्रति भू [जामिन] साथी कर्मचारी या इनके पुत्र, भ्राता भार्या, पुत्री और भृत्य तक से ग्रहण [वसूल] करले ॥ ६ ॥

त्रिशतं चतुःपञ्चाशच्चाहोरात्राणां कर्मसंवत्सरः ॥७॥ तमाषाढीपर्यवसानमूनं पूर्णं वा दद्यात् ॥ ८ ॥ करणाधिष्ठितमधिमासकं कुर्यात् ॥ ९ ॥

तीन सौ चौवन दिन का एक वर्ष समझा जावे जिसमें सारा राज्य कार्य समाप्त कर देना है। उसकी समाप्ति आषाढ़ मास में होनी चाहिए। जिसने वर्ष भर कार्य किया उसको

वर्ष की और जिस ने कम काम किया-उसको उतने ही दिन की वृत्ति दे देनी चाहिए और प्रत्येक मास में किसने कितना कार्य किया, इसका व्योरा भी उपस्थिति लेखक से लेना चाहिए ॥ ७-९ ॥

अपसर्पाधिष्ठितं च प्रचारं प्रचारचरित्रसंस्थानान्यनुपलभमानो हि प्रकृतः समुदयमज्ञानेन परिहापयति ॥ १० ॥

प्रत्येक कर्मचारी (नौकर) अपना ठीक २ कार्य कर रहा है या नहीं, इसका पता राजा गुप्तचरों द्वारा प्राप्त करे। प्रचार (कार्य की पड़ताल) चरित्र [व्यवहार] से संस्थान [विशेष परिस्थिति] के विना जाने अध्यक्ष अपने अज्ञान के कारण राज्य उन्नति में बाधक सिद्ध होता है ॥ १० ॥

उत्थानक्लेशासहत्वादालस्येन शब्दादिष्विन्द्रियार्थेषु प्रमादेन संक्रोशाधर्मानर्थभीरुर्भयेन कार्यार्थिष्वनुग्रहबुद्धिः कामेन हिंसाबुद्धिः कोपेन विद्याद्रव्यवल्लभापाश्रयाद्दर्पेण तुलामानतर्कगणिकान्तरोपधानाल्लोभेन ॥ ११ ॥ तेषामानुपूर्व्या यावानर्थोपघातस्तावानेकोत्तरो दण्ड इति मानवाः ॥१२॥ सर्वत्राष्टगुण इति पाराशराः ॥ १३ ॥ दशगुण इति बार्हस्पत्याः ॥१४॥ विंशतिगुण इत्यौशनसाः ॥ १५ ॥ यथापराधमिति कौटल्यः ॥ १६ ॥

जो अध्यक्ष उन्नति में करने योग्य कर्म के क्लेश के सहने में असमर्थ है वह आलस्य से राज्य कार्य का नाश करता है। जो शब्दादि इंद्रियों के विषयों में फंसा है, वह प्रमाद द्वारा घातक सिद्ध होता है। जो अपनी निन्दा, अधर्म और अनर्थ होने के भय से राज्य कार्य की उपेक्षा करता है वह भय से राज्य कार्य का नाशक है। अपने कार्य के लिए आये हुये किसी भी अपने मिलने वाले के काम को पूरा कर देने वाला अपनी कामना द्वारा राजा को हानि पहुंचाता है। यदि किसी पर कोप कर के उसे मार देता है, वह इस कोप द्वारा राज्य कार्य का नाशक है। विद्या, द्रव्य, और राजा के प्रिय पुरुषों का आश्रयी होकर जो कार्य बिगाड़ता है, यह दर्प से कार्य का नाश कहाता है, नाप तोल में कमी करके तथा बहस या हिसाब में गड़ बड़ डाल कर जो राज्य कार्य में हानि पहुंचाता है वह लोभ द्वारा हानि कहाती है। इन बातों से जो राज्य कार्य में जितना धन नाश का कारण बनता है, उतना ही उनको राजा दण्ड दे। अज्ञान, आलस्य आदि द्वारा जिसने जैसी हानि पहुंचाई उसी क्रम से उन्हें दण्ड दे। अज्ञान से आलस्य, आलस्य से प्रमाद आदि से हानि पहुंचाने वाले को मनुजी ने अधिक दण्ड का भागी बताया है। पराशर मुनि के मत के मानने वाले कहते हैं, कि इन सब को हानि से अठ गुणा दण्ड देना चाहिए। बृहस्पति के अनुयायी

दस गुणा दण्ड मानते हैं। शुक्राचार्य के मतानुयायी बीस गुणा दण्ड का विधान करते हैं। परन्तु कौटल्य का मत है, कि जैसा जिसका अपराध हो, वैसा ही दन्ड देना चाहिए॥११-१६॥

गाणनिक्यान्याषाढीमागच्छेयुः ॥ १७ ॥ आगतानां समुद्रपुस्तभाण्डनीवीकानामेकत्र संभाषावरोधं कारयेत् ॥ १८ ॥

गणना [हिसाब] के छोटे २ अधिकारी, आषाढ़ के महीने में वर्ष की समाप्ति का बड़े कार्यालय [दफ्तर] में आकर हिसाब का मिलान करलें। उन कर्मचारियों के रजिस्टरों पर मुहर लगा कर जबतक उनसे राज्य की वस्तु और शेष धन कोश [खज़ाने] में दाखिल न कर दिया जावे, तब तक उसको परस्पर वार्तालाप न करने दे ॥ १७-१८॥

आयव्ययनीवीनामग्राणि श्रुत्वा नीवीमवहारयेत् ॥ १९ ॥ यच्चाग्रादायस्यान्तरवर्णे नीव्या वर्धेत व्ययस्य वा यत्परिहापयेत्तदष्टगुणमध्यक्षं दापयेत् ॥ २० ॥

इन सारे छोटे २ अफ़सरों के आय व्यय को सुनकर उनका शेष धन उनसे ग्रहण करले। जो रजिस्टर के हिसाब से आमदनी या व्यय बताया गया है उससे अधिक निकले या व्यय कमती बड़ती हो-जो उससे अठ गुना उस कर्मचारी से दण्ड के रूप में ग्रहण करना चाहिए ॥१९-२०॥

विपर्यये तमेव प्रति स्यात्॥ २१ ॥ यथाकालमनागतानामपुस्तनीवीकानां वा देयदशबन्धो दण्डः ॥ २२ ॥

यदि कोई रकम किसी हिसाब की भूल से रजिस्टर में दर्ज होगई हो-तो उसे कर्मचारी या अध्यक्ष को दे देनी चाहिए। जो कर्मचारी नियत-समय पर अपना रजिस्टर लेकर न पहुंचे-तो उसकी ओर जो धन निकले उससे दश गुना उससे ग्रहण (वसूल) किया जावे ॥२१-२२॥

कार्मिके चोपस्थिते कारणिकस्याप्रतिबध्नतः पूर्वः साहसदण्डः ॥२३॥ विपर्यये कार्मिकस्य द्विगुणः ॥ २४ ॥ प्रचारसमं महामात्राः समग्राः श्रावयेयुरविषमात्राः ॥ २५ ॥ पृथग्भूतो मिथ्यावादी चैषामुत्तमदण्डं दद्यात् ॥२६ ॥

जब हिसाब का प्रधान अध्यक्ष आ जावे और कर्मचारी हिसाब दिखाने में बहाना बनावे-तो ऐसी दशा में उस पर प्रथम साहस दण्ड करना चाहिए। यदि प्रधान अध्यक्ष समय पर कर्मचारियों के रजिस्टरों को न देखे-तो अध्यक्ष पर दुगुना दण्ड होना चाहिए। कर्मचारियों के साथ २ बड़े २ अफ़सर मिलकर सारी हिसाब की पड़ताल सबको सुनावे।

जो इस मिलान में पूरा न उतरे या जिसके हिसाब में गड़ बड़ हो-उस पर उत्तम दण्ड होना चाहिए ॥२३-२६॥

अकृताहोरूपहरं मासमाकाङ्क्षेत ॥२७॥ मासादूर्ध्वं मासद्विशतोत्तरं दण्डं दद्यात् ॥ २८ ॥ अल्पशेषनीविकं पञ्चरात्रमाकाङ्क्षेत ततः परम् ॥ २९ ॥

द्रव्य संग्रह के दिन को टला देने पर द्रव्य संग्रहकर्ता की एक मास तक प्रतीक्षा की जावे। यदि मास से भी अधिक हो जावे, तो उस अध्यक्ष पर दोसौ रुपया प्रत्येक मास के हिसाब से दण्ड देना चाहिए। जिसके पास थोड़ा राज्य द्रव्य शेष है-उसकी पांच दिन तक प्रतीक्षा करनी चाहिए और इतने दिन के बाद शेष धन लावे- तो उसे दण्ड देना चाहिए ॥२७-२९॥

कोशपूर्वमहोरूपहरं धर्मव्यवहारचरित्रसंस्थानसंकलननिर्वर्तनानुमानचारप्रयोगैरवेक्षेत ॥३०॥ दिवसपञ्चरात्रपक्षमासचातुर्मास्यसंवत्सरैश्चप्रतिसमानयेत्॥३१॥

संगृहीत धन के लाने वाले कर्मचारी के धर्म, व्यवहार, चरित्र, विशेष स्थिति, हिसाब का जोड़ और कार्य की पड़ताल अनुमान या गुप्तचरों द्वारा करलेनी चाहिए। प्रति दिन, पांच दिन, पन्द्रह दिन, महीना, चतुर्मास या संवत्सर में हिसाब का मिलान अवश्य कर लेना चाहिए ॥३०-३१॥

व्युष्टदेशकालमुखोत्पत्त्यनुवृत्तिप्रमाणदायकदापकनिबन्धकप्रतिग्राहकैश्चायं समानयेत् ॥ ३२ ॥

राजा का वर्ष, मास, पक्ष और दिन, के साथ प्रचलित देशकाल, आय (आमदनी) उत्पत्ति, अनुवृत्ति (इधर उधर ले जाना) प्रमाण, करदाता का नाम, दिलाने वाले अधिकारी का नाम, लेखक और लेने वाले के नाम के साथ आय का पूरा व्योरा रजिस्टर में लिखें ॥३२॥

व्युष्टदेशकालमुखलाभकारणदेययोगपरिमाणाज्ञापकोद्धारकनिधातृकप्रतिग्राहकैश्च व्ययं समानयेत् ॥ ३३ ॥

व्युष्ट (राजा के वर्ष मास) प्रचलित देशकाल, मुख (लाभ, आमदनी) व्यय या लाभ के कारण, देने योग्य वस्तु योग (अच्छे बुरे का मिलान) परिमाण (नांपतोल) आज्ञा देने वाले उद्धारक (द्रव्य लेने वाले) निधातृक (भण्डार में डालने वाले) प्रतिग्राहक, (वापिस लेने वाला) के साथ २ व्यय का समुचित उल्लेख होना चाहिए ॥३३॥

व्युष्टदेशकालमुखानुवर्तनरूपलक्षणपरिमाणनिक्षेपभाजनगोपायकैश्च नीवीं समानयेत् ॥ ३४ ॥

व्युष्ट (राजा की तिथी) देशकाल, मुख, (आमदनी के प्रकार) अनुवर्तन रूप (द्रव्य-का स्वरूप,) लक्षण (द्रव्य के चिन्ह) परिमाण, निक्षेप भाजन (जिसके पास रखा गया) गो पायक (रक्षक) पुरुष को लिख कर नीवी (शेष धन) का मिलान करे ॥ ३४ ॥

राजार्थे ऽर्थकारणिकस्याप्रतिबध्नतः प्रतिषेधयतो वाज्ञां निबन्धादायव्ययमन्यथा वा विकल्पयतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३५ ॥

जो कारणिक (कर्मचारी) राजा के आये हुये सुवर्ण आदि द्रव्य को रजिस्टर में चढ़ाता और राजा की आज्ञा का उलंघन कर देता है या निबन्ध (रजिस्टर) में आय व्यय को उलट पलट कर लिख देता है, उसे प्रथम साहस (प्रथम कोटि का साधारण) दण्ड देना चाहिए ॥ ३५ ॥

क्रमावहीनमुत्क्रममविज्ञातं पुनरुक्तं वा वस्तुकमवलिखतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ३६ ॥ नीवीमवलिखतो द्विगुणः ॥ ३७ ॥ भक्षयतो ऽष्टगुणः ॥३८॥ नाशयतःपञ्चबन्धः प्रतिदानं च ॥ ३९ ॥ मिथ्यावादे स्तेयदण्डः ॥ ४० ॥ पश्चात्प्रतिज्ञाते द्विगुणः प्रस्मृतोत्पन्ने च ॥ ४१ ॥

क्रम के विरुद्ध उलट पलट कर विपरीत लिख देने, अज्ञान से इधर उधर रजिस्टर में डाल देने या दो बार लिख देने वाले कर्मचारी पर बारह मुद्रा दण्ड होना चाहिए। नीवी (शेष धन) को नहीं लिखने वाले पर दुगुणा दण्ड है। जो बचे हुए राज धन को खा जावे-तो उस रक़म से अठगुणा दण्ड लेना चाहिए। जो नीवी का नट नर्तक आदि में व्यय करे उस पर पांच गुणा जुरमाना करके मूल रक़म वसूल करनी चाहिए। जो कर्मचारी इस बाबत झूंठ बोलता है उसे चोरी का दण्ड दिया जावे। जब हिसाब में पकड़ा जावे और उसे अपनी भूल स्वीकार हो जावे, तो दुगुणा दण्ड देना चाहिए। भूली हुई बात के याद आने पर पर भी रकम से दुगुणा दण्ड है ॥ ३६-४१ ॥

अपराधं सहेताल्पं तुष्येदल्पे ऽपि चोदये।
महोपकारं चाध्यक्षं प्रग्रहेणाभिपूजयेत् ॥ ४२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे अक्षपटले गाणनिक्याधिकारः सप्तमो ऽध्यायः ॥ ७ ॥ आदितोष्टाविंशः ॥ ४२ ॥

राजा अध्यक्ष के छोटे २ अपराधों को सह लेवे। यदि अध्यक्ष ने थोड़ी भी आमदनी बढ़ाई-तो उस पर अवश्य प्रसन्न होकर उसे इनाम देवे। यदि किसी अध्यक्ष ने राजा का बहुत अधिक उपकार (सेवा) किया हो-तो उसको सदा सत्कार और मान से पुष्ट करे ॥४२॥

इति श्री कौटलीय अर्थ शास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में अक्षपटल में गणना करने वालों के अधिकार का सातवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



आठवां अध्याय

२६वां प्रकरण

अध्यक्षोंके द्वारा अपहृत धनका प्रत्यानयन।

अब अध्यक्षों द्वारा अपहृत धन के लौटाने के ढङ्गों का वर्णन किया जाता है।

कोशपूर्वाः सर्वारम्भाः ॥ १ ॥ तस्मात्पूर्वं कोशमवेक्षेत ॥ २ ॥

सारे राज्य कार्यों का आधार कोश है, इस लिए राजा प्रथम कोश का ध्यान रखे अर्थात् सर्वदा उसकी देख रेख करता रहे ॥ १-२ ॥

प्रचारसमृद्धिश्चरित्रानुग्रहश्चोरनिग्रहो युक्तप्रतिषेधः सस्यसंपत्पण्यबाहुल्यमुपसर्गप्रमोक्षः परिहारक्षयो हिरण्योपायनमिति कोशवृद्धिः ॥ ३ ॥

राष्ट्र की सम्पत्ति की समृधि, उसके आचार व्यवहार का ध्यान, चोरों का निग्रह, उत्कोच लेने वाले राज्य कर्मचारियों से प्रजा का मुक्त करना, अन्नोत्पत्ति का विचार, जल स्थल में उत्पन्न वस्तुओं की वृद्धि, राज्य में होने वाले अग्नि आदि के उत्पातों से राष्ट्र की रक्षा करना, परिहार (बक़ाया) को ग्रहण (वसूल) करके क्षय कर देना तथा सुवर्ण इकट्ठा करना ये सब कोश वृद्धि के ढङ्ग हैं ॥ ३ ॥

प्रतिबन्धः प्रयोगो व्यवहारोऽवस्तारः परिहापणमुपभोगः परिवर्तनमपहारश्चेति कोशक्षयः ॥ ४ ॥ सिद्धीनामसाधनमनवतारणमप्रवेशनं वा प्रतिबन्धः ॥५॥ तत्र दशबन्धो दण्डः ॥ ६ ॥ कोशद्रव्याणां वृद्धिप्रयोगाः प्रयोगः पण्यव्यवहारो व्यवहारः ॥७॥ तत्र फलद्विगुणो दण्डः ॥ ८ ॥ सिद्धं कालमप्राप्तं करोत्यप्राप्तं प्राप्तं वेत्यवस्तारः ॥ ९ ॥ तत्र पञ्चबन्धो दण्डः ॥१०॥ क्लृप्तमायं परिहापयति व्ययं वा विवर्धयतीति परिहापणम् ॥ ११ ॥ तत्र हीनचतुर्गुणो दण्डः ॥ १२ ॥ स्वयमन्यैर्वा राजद्रव्याणामुपभोजनमुपभोगः ॥ १३ ॥ तत्र रत्नोपभोगे घातः

सारोपभोगे मध्यमः साहसदण्डः फल्गुकुप्योपभोगे तच्च तावच्च दण्डः ॥ १४ ॥ राजद्रव्याणामन्यद्रव्येणादानं परिवर्तनम् ॥ १५ ॥ तदुपभोगेन व्याख्यातम् ॥ १६ ॥ सिद्धमायं न प्रवेशयति निबद्धं व्ययं न प्रयच्छति प्राप्तां नीवीं विप्रतिजानीत इत्यपहारः ॥ १७ ॥ तत्रद्वादशगुणो दण्डः ॥ १८ ॥

प्रतिबन्ध, प्रयोग, व्यवहार, अवस्तार, परिहापण, उपभोग, परिवर्तन और अपहार ये आठ कारण कोश के क्षय करने वाले हैं। जो राज्य का कर प्रजा पर चढ़ चुका-उसे वसूल न करना या अपने अधिकार में न करना अथवा सरकारी कोश में नहीं पहुंचाना प्रतिबन्ध कहाता है। जो भी अध्यक्ष ऐसी भूल करे-उस से उस मूल धन (रक़म) का दश गुणा धन राजा ग्रहण (वसूल) करे अर्थात् उस धन से दश गुणा उस पर जुरमाना करे। कोश के द्रव्य से अपनी वृद्धि करने लग जाना प्रयोग कहलाता है। और उस सरकारी धन से व्यापार करना व्यवहार होता है। प्रयोग या व्यवहार के द्वारा जो अध्यक्ष कोश को हानि पहुंचाये, राजा अपने मूल धन से दुगुणा धन उस अध्यक्ष से वसूल करे। जो कर वसूल करने वाला अध्यक्ष कर वसूली के समय को चुका कर अपने लाभ के कारण (रिश्वत आदि लेने को) दूसरे समय में कर वसूली की तङ्गी करे-तो उसे राजा रक़म से पचगुना दण्ड देवे। जो कलक्टर नियत कर (आमदनी) को घटा देता है और व्यय को चढ़ा लेता है यह परिहापण कहाता है। परिहापण द्वारा जो कोश को हानि पहुंचावे, उसे हानि से चौगुना दण्ड के रूप में वसूल किया जावे। राजा के द्रव्य (वस्त्र) का स्वयं उपभोग करे या अन्य अपने मित्रों को करावें-तो यह उपभोग कहाता है। इस में यदि रत्नों का स्वयं उपभोग करता है अर्थात् उड़ा लेता है तो राजा इसे प्राण दण्ड देवे। उत्तम २ चन्दन आदि की लकड़ी आदि सार वस्तुओं के उपभोग में मध्यम साहस दण्ड का प्रयोग करे तथा वस्त्र या अन्य चमड़े आदि साधारण वस्तुओं का उपभोग करे-तो राजा उसे उस द्रव्य की बराबर दण्ड देवे। राजा की वस्तुओं को अन्य हलकी वस्तुओं से बदल देना परिवर्तन कहाता है। इस का भी उपभोग के अनुसार ही दण्ड समझ लेना चाहिए। प्राप्त हुए धन को जो बही खाते में नहीं चढ़ाता तथा व्यय को रजिस्टर में चढ़ाकर भी व्यय नहीं करता एवं नीवी अर्थात् बचे हुए राज्य धन को उलट पलट करके जो गड़ बड़ में डाल देना चाहता है-राजा उसके ऊपर उस मूल धन (रक़म) से बारह गुना दण्ड करे ॥ ४-१८ ॥

तेषां हरणोपायाश्चत्वारिंशत् ॥ १९ ॥ पूर्वं सिद्धं पश्चादवतारितम् ॥२०॥ पश्चात्सिद्धं पूर्वमवतारितम् ॥ २१ ॥ साध्यं न सिद्धम् ॥ २२ ॥ असाध्यं सिद्धम् ॥ २३ ॥ सिद्धमसिद्धं कृतम् ॥ २४ ॥ असिद्धं सिद्धं कृतम् ॥ २५ ॥ अल्प-

सिद्धं बहुकृतम् ॥ २६ ॥ बहुसिद्धमल्पं कृतम् ॥ २७ ॥ अन्यत्सिद्धमन्यत्कृतम् ॥ २८ ॥ अन्यतः सिद्धमन्यतः ॥ २६ ॥ देयं न दत्तम् ॥ ३० ॥ अदेयं दत्तम् ॥ ३१ ॥ काले न दत्तम् ॥ ३२ ॥ अकाले दत्तम् ॥ ३३ ॥ अल्पं दत्तं बहुकृतम् ॥ ३४ ॥ बहु दत्तमल्पं कृतम् ॥ ३५ ॥ अन्यद्दत्तमन्यत्कृतम् ॥३६॥ अन्यतो दत्तमन्यतः कृतम् ॥ ३७ ॥ प्रविष्टमप्रविष्टं कृतम् ॥ ३८ ॥ अप्रविष्टं प्रविष्टं कृतम् ॥ ३६ ॥कुप्य मदत्तमूल्यं प्रविष्टम् ॥ ४० ॥दत्तमूल्यं न प्रविष्टम् ॥४१॥ संक्षेपो विक्षेपः कृतः ॥ ४२ ॥ विक्षेपः संक्षेपो वा ॥ ४३ ॥ महार्घमल्पार्घेण परिवर्तितम् ॥ ४४ ॥ अल्पार्घं महार्घेण वा ॥ ४५ ॥ समारोपिता ऽर्घः ॥४६॥ प्रत्यवरोपितो वा ॥ ४७ ॥ रात्रयः समारोपिता वा ॥ ४८ ॥ प्रत्यवरोपिता वा ॥ ४६ ॥ संवत्सरो मासविषमः कृतः ॥ ५० ॥ मासो दिवसविषमो वा ॥५१॥ समागमविषमः ॥ ५२ ॥ मुखविषमः ॥५३॥ धार्मिकविषमः ॥ ५४ ॥ निर्वर्तन-विषमः ॥ ५५ ॥ पिण्डविषमः ॥ ५६ ॥वर्णविषमः॥ ५७ ॥अर्घविषमः॥५८॥ मानविषमः ॥ ५६ ॥ मापनविषमः ॥ ६० ॥ भाजनविषमः ॥ ६१ ॥ इति हरणोपायाः ॥ ६२ ॥

राज्य द्रव्य के अपहरण के मोटे २ चालीस प्रकार हैं। (१) प्रथम सिद्ध धन को पीछे रजिस्टर या बही में चढ़ाना (२) पीछे वसूल होने वाले धन को पहले ही चढ़ा देना (३) जो धन वसूल करना चाहिए-उसे उत्कोच (रिश्वत) लेकर वसूल न करना (४) जिन देवालय आदि से धन वसूल नहीं करना है, उनसे झगड़ा करना (५) रुपया वसूल करके भी निषेध (इनकार) कर देना (६) वसूल न होने पर भी वसूल हुआ बता देना (७) थोड़ा वसूल हुए को बहुत बताना (८) और बहुत वसूल हुए को थोड़ा बता देना (६) अन्य मिली वस्तु को अन्य वस्तु लिख देना अर्थात् जौ का गेहूं या गेहूं का जौ लिखना [१०] एक पुरुष से मिला धन दूसरे पुरुष के नाम से रजिस्टर में चढ़ा देना [११] देने योग्य वस्तु को न देना [१२] नहीं देने योग्य को दे देना [१३] देने योग्य वस्तु को समय पर नहीं देना [१४] असमय पर वस्तु देना [१५] थोड़े दिए हुए को अधिक लिखना [१६] बहुत दी हुई वस्तु को थोड़ी लिखना [१७] कुछ देने को कहा और कुछ दे देना [१८] किसी को देने को कहा और अन्य किसी को दे-देना [१६] प्रजा से धन वसूल करके भी खज़ाने में प्रविष्ट [दाख़िल] न कराना (२०) वसूल नहीं हुये का कोश के रजिस्टर में दर्ज करा देना (२१) बिना दाम दिये उधार कपड़ा लाना (२२) मूल्य देकर खरीदे हुये कपड़े आदि वस्तुओं का ठीक रजिस्टर में उल्लेख न होना (२३) इकट्ठे लेने योग्य करको पृथक् लेना (२४) पृथक २ लेने

योग्य टैक्स को इकट्ठे ही ले लेना (२५) अधिक मूल्य वाले द्रव्य को थोड़ी मूल्य की वस्तु से बदल देना (२६) या थोड़े मूल्य की वस्तु को अधिक मूल्य की बताना (२७) वस्तुओं का भाव मिथ्या बढ़वा देना (२८) या इसी तरह वस्तुओं का भाव घटवा देना (२६) किन्हीं कर्मचारियों के दिन बढ़ाकर लिखना (३०) या उनके दिन घटा कर लिख लेना (३१) वर्ष के महीनों में गड़ बड़ मचा देनी (३२) या महीनों में दिनों की झंझट डाल देनी (३३) कर्मचारियों की संख्या में घटा बढ़ी कर देना (३४) आमदनी के मार्गों में अदल बदल मचा देनी (३५) धर्म के कार्यों में न्यूनाधिक कर देना (३६) धन के वसूल करने में नियम भङ्ग करना (३७) किसी का ले लेना और किसी से [रिश्वत लेकर] न लेना, (३८) कर में ब्राह्मण आदि वर्णों की विषमता मचा देना (३६) मूल्य में न्यूनाधिक कर देना (४०) तोल में घटा बढ़ा देना (४१) नाप में कमती बढ़ती करना (४२) पात्र के विषय में गड़ बड़ मचाना-ये अपहरण करने के बयालीस ढंग हैं। (यद्यपि ये बयालिस प्रकार होते हैं-तो भी किन्हीं एक से दो को एक करके गिनने से से चालीस हो जावेंगे) ॥ १६-६२ ॥

तत्रोपयुक्तनिधायकनिबन्धकप्रतिग्राहकदायकदापकमन्त्रिवैयावृत्यकरानेकैकशो ऽनुयुञ्जीत ॥ ६३ ॥ मिथ्यावादे चैषां युक्तसमो दण्डः ॥ ६४ ॥

यदि किसी अध्यक्ष के धन अपहरण का राजा को सन्देह हो-तो वह प्रधान अध्यक्ष भण्डारी या ख़ज़ानची, रजिस्टर रखने वाले लेखक, कर लेने वाले, देने वाले, दिलाने वाले, अपराधी के मन्त्री या उसके नौकरों से पूछताछ (तहक़ीक़ात) करे। यदि इनमें कोई मिथ्यावादी प्रमाणित हो-तो उसे भी राजा अपराधी के तुल्य दण्ड देवे ॥ ६३-६४ ॥

प्रचारे चावघोषयेत् अमुना प्रकृतेनोपहताः प्रज्ञापयन्त्विति ॥ ६५॥ प्रज्ञापयतो यथोपघातं दापयेत् ॥ ६६ ॥

राजा सारे राष्ट्र में यह घोषणा करवादे-कि यदि अमुक अध्यक्ष ने किसी के धन में गड़ बड़ी की है या करने वाला है-तो शीघ्र आकर सूचित करो। यदि किसी ने अपने धन का अपहरण प्रमाणित कर दिया-तो राजा उसको उतना ही धन उस अध्यक्ष से दिलवावे ॥ ६५-६६ ॥

अनेकेषु चाभियोगेष्वपव्ययमानः सकृदेव परोक्तः सर्वं भजेत ॥ ६७ ॥ वैषम्ये सर्वत्रानुयोगं दद्यात् ॥ ६८ ॥

यदि उस अध्यक्ष पर अनेक अभियोग लगाये गए हों-और उनमें से एक भी प्रमाणित हो जावे-तो राजा उन सब का हर्जाना उस से दिलवावे। यदि अध्यक्ष अपना अपराध न माने या प्रमाणित न हो सके-तो भी राजा उससे अभियोग की सफाई के साक्षी उपस्थित करवावे ॥ ६७-६८ ॥

महत्यर्थापहारे चाल्पेनापि सिद्धः सर्वं भजेत ॥ ६९ ॥ कृतप्रतिघातावस्थः सूचको निष्पन्नार्थः षष्ठमंशं लभेत ॥ ७० ॥ द्वादशमंशं भृतकः ॥ ७१ ॥

यदि अध्यक्ष पर बहुत से धन के अपहरण का अपराध लगाया गया और उसमें से यदि एक भी रक़म साबित हो गई-तो वह सारी का देनदार माना जाना चाहिए। अनुचित कर्म के विनाश के निमित्त केवल अन्य के धन के अपहरण की जो सूचना देता है-उस मुखबिर को भी मुक़दमें के प्रमाणित हो जाने पर धन का छठा भाग उपहार में देना चाहिए। यदि सूचना देने वाला अध्यक्ष का भृत्य [सेवक] है-तो उसे धन के बारह भाग देने उचित हैं॥ ६९-७१ ॥

प्रभूताभियोगादल्पनिष्पत्तौ निष्पन्नस्यांशं लभेत ॥ ७२ ॥ अनिष्पन्ने शारीरं हैरण्यं वा दण्डं लभेत ॥ ७३ ॥ न चानुग्राह्यः ॥ ७४ ॥

यदि बहुत से धन का अभियोगी प्रमाणित हुआ हो और उस धन का बहुत थोड़ा भाग प्राप्त हुआ हो तो सूचक [मुख़बिर] को उस प्राप्त धन का ही छठा भाग मिलेगा। यदि अध्यक्ष पर लगाए गए अभियोग को सूचक [मुख़बिर] साबित न कर सके-तो उसे शरीर दण्ड [बेंतों की सज़ा] दिया जावे या सुवर्ण मुद्रा का जुरमाना किया जावे। इस प्रकार के अपराधी को मुआफ कभी नहीं करना चाहिए॥ ७२-७४ ॥

निष्पत्तौ निक्षिपेद्वादमात्मानं वापवाहयेत्।
अभियुक्तोपजापात्तु सूचको वधमाप्नुयात् ॥ ७५ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनमष्टमो ऽध्यायः ॥ ८ ॥ आदितः एकोनत्रिंशः ॥ २९ ॥

यदि अभियोग कुछ प्रमाणित हो जावे-तो सूचक की इच्छा है-वह उस अभियोग में अपने को सम्मिलित रखे या पृथक् करले। परन्तु अपराधी से मिल कर जो सूचक पीछे अभियोग को जान बूझ कर प्रमाणित नहीं करता है-राजा को उसे प्राण दण्ड देना चाहिए॥ ७५ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार नामक अधिकरण में अध्यक्षों द्वारा अपहरण किए हुए धन के लौटाने का आठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

नवां अध्याय

२७वां प्रकरण

उपयुक्तपरीक्षा

छोटे २ कर्मचारियों पर जो अध्यक्ष होता है-उसे उपयुक्त कहते हैं-अब उपयुक्त अध्यक्षों के विषय में निरूपण किया जाता है।

अमात्यसंपदोपेताः सर्वाध्यक्षाः शक्तितः कर्मसु नियोज्याः ॥ १ ॥ कर्मसु चैषां नित्यं परीक्षां कारयेत् ॥ २ ॥ चित्तानित्यत्वान्मनुष्याणाम् ॥ ३ ॥

ये सारे अध्यक्ष, अमात्यों के गुणों से युक्त होने चाहिए। इनको-इनकी शक्ति या योग्यता के अनुसार कर्मों में लगाना चाहिए। जब ये अपने कार्य को कर रहे हों-तब राजा, इनकी नित्य परीक्षा करता रहे, क्योंकि मनुष्यों के चित्त सदा एक से नहीं रहते हैं। वे आज अच्छे हैं, तो कल बिगड़ भी जाते हैं ॥१-३॥

अश्वसधर्माणो हि मनुष्या नियुक्ताः कर्मसु विकुर्वते ॥ ४ ॥ तस्मात्कर्तारं कारणं देशं कालं कार्यं प्रक्षेपमुदयं चैषु विद्यात् ॥ ५ ॥

मनुष्यों की आदत अश्वों की सी होती है। जब उनको काम पर लगा दिया जाता है, तब वे उछल-कूद मचाने लगते हैं, इसलिए राजा, कर्ता [प्रधान अध्यक्ष] कारण [कर्मचारी] देश, काल, कार्य, नौकरों के वेतन और उदय [धन प्राप्ति] के विषय में अवश्य ज्ञान रखे ॥४-५॥

ते यथासंदेशमसंहता अविगृहीताः कर्माणि कुर्युः ॥ ६ ॥ संहता भक्षयेयुः विगृहीता विनाशयेयुः ॥ ८ ॥

ये छोटे २ अधिकारी परस्पर गुट्ट न बना कर और न लड़ झगड़ कर अपने २ कार्य को करते रहे। यदि इनका गुट्ट बन जावेगा-तो ये राजा या प्रजा के धन को खाजावेंगे। यदि ये आपस में झगड़ बैठे तो प्रजा या राजा के स्वार्थ का नाश कर देंगे ॥६-८॥

न चानिवेद्य भर्तुः किंचिदारम्भं कुर्युरन्यत्रापत्प्रतीकारेभ्यः ॥ ९ ॥ प्रमादस्थानेषु चैषामत्ययं स्थापयेद्दिवसवेतनव्ययद्विगुणम् ॥ १० ॥ यश्चैषां यथादिष्टमर्थं सविशेषं वा करोति स स्थानमानौ लभेत ॥ ११ ॥

ये छोटे अध्यक्ष अपने स्वामी [बड़े अफसर] को सूचित किये बिना किसी नवीन कार्य का आरम्भ न करें। हां ? यदि किसी आपत्ति से राजा को बचाना है-तो उस उपाय के मंजूरी लेने की आवश्यकता नहीं है। यदि ये छोटे अध्यक्ष अपने कामों में प्रमाद

करें-तो इन पर कोई दण्ड होना चाहिए और उस दण्ड की अवधि एक दिन के वेतन से दुगुनी होनी चाहिए। जो इन अध्यक्षों में अपने स्वामी की आज्ञानुसार कार्य को पूरा करता है या अधिक कर दिखाता है-तो राजा को उसका पद [दर्जा] और मान बढ़ाना चाहिए ६-११॥

अल्पायतिश्चेन्महाव्ययो भक्षयति ॥ १२ ॥ विपर्यये यथायतिव्ययश्च न भक्षयतीत्याचार्याः ॥ १३ ॥ अपसर्पेणैवोपलभ्यत इति कौटल्यः ॥ १४ ॥

(जिस अध्यक्ष के थोड़ी आमदनी और व्यय अधिक दिखाई दे, उसे समझलो कि वह राज्य के धन का अपहरण करता है या प्रजा को पीड़ित करता है।) यदि जितनी आमदनी है-और उतना ही उसका व्यय दिखाई देता है-तो समझलो, कि वह राज्य के धन का गबन नहीं करता और न उत्कोच [रिश्वत] लेता है। परन्तु आचार्य कौटल्य इस बात को नहीं मानता। वह कहता है, कि धन का अपहरण करने वाला भी थोड़ा खर्च रख सकता है, इससे इनका पता गुप्तचरों द्वारा ही लगाता रहे ॥१२-१४॥

यः समुदयं परिहापयति स राजार्थं भक्षयति ॥ १५ ॥ स चेदज्ञानादिभिः परिहापयति तदेनं यथागुणं दापयेत् ॥ १६ ॥

जो राजा के नियत कर में से न्यूनता कर देता है-तो समझ लेना चाहिए कि वह राज्य धन का अपहरण करता है। यदि किसी की अयोग्यता से कर आदि में न्यूनता आ जावे-तो इससे यथाशक्ति उसका हर्जाना लेकर उससे वह काम छीनकर उसे दूसरी जगह कर देवे ॥१५-१६॥

यः समुदयं द्विगुणमुद्भावयति स जनपदं भक्षयति ॥ १७ ॥ स चेद्राजार्थमुपनयत्यल्पापराधं वारयितव्यः ॥ १८ ॥ महति यथापराधं दण्डयितव्यः ॥१९॥

जो राजा की आमदनी को दुगुनी कर देता है-वह जनपद [राष्ट्र] के धन का अपहरण करता है। यदि उससे वह सारा धन राजा तक पहुंचा दिया-तो उसे थोड़ा ही दण्ड देकर इस काम से रोक देना चाहिए। यदि किसी ने प्रजा का बहुत ही पीड़न कर डाला-तो राजा उस अपराध के योग्य उसे दण्ड दे ॥१७-१९॥

यः समुदयं व्ययमुपनयति स पुरुषकर्माणि भक्षयति ॥ २० ॥ स कर्मदिवसद्रव्यमूलपुरुषवेतनापहारेषु यथापराधं दण्डयितव्यः ॥ २१ ॥

जो अध्यक्ष व्यय के योग्य धन को व्यय न करके राज्य के लाभ में उसे भी रख छोड़ता है-वह काम करने वाले पुरुषों का धन छीनता है अर्थात् उनको हानि पहुंचाता है। इनमें जितने काम, दिन, द्रव्य, पुरुषों के वेतन आदि की हानि हुई उसका निर्णय करके उसे अपराध के अनुसार दण्ड देना चाहिए ॥२१-२१॥

तस्मादस्य यो यस्मिन्नधिकरणे शासनस्थः स तस्य कर्मणो याथातथ्यमायव्ययौ च व्याससमासाभ्यामाचक्षीत ॥ २२ ॥ मूलहरतादात्विककदर्यांश्च प्रतिषेधयेत् ॥ २३ ॥

राजा का जो अधिकारी, जिस पद पर नियुक्त हो-वह अध्यक्ष उस कार्य के ठीक २ आय व्यय का व्योरा संक्षेप या विस्तार से राजा के पास पहुंचाता रहे। जो मूल हर तादात्विक और कदर्य पुरुष हों-उनको भी अपने कार्यों से रोकता रहे ॥२२-२३॥

यः पितृपैतामहमर्थमन्यायेन भक्षयति स मूलहरः ॥ २४ ॥ यो यद्यदुत्पद्यते तत्तद्भक्षयति स तादात्विकः ॥ २५ ॥ यो भृत्यात्मपीडाभ्यामुपचिनोत्यर्थं स कदर्यः ॥ २६ ॥ स पक्षवांश्चेदनादेयः ॥२७॥ विपर्यये पर्यादातव्यः ॥२८॥

जो पिता पितामह की सम्पत्ति को अनर्थ के साथ भोगता है-उसे मूलहर कहते हैं। जो पुरुष, नित्य किराये आदि से उत्पन्न धन का व्यय करके भोग करता रहता है, उसे तादात्विक कहते हैं। जो अपने भृत्य और अपने आपको पीड़ित करके धन का संग्रह करता है-वह कदर्य कहाता है। राजा के चेतावनी देने पर भी यदि ये लोग प्रमाद से अपने ढंग को न छोड़कर प्रजा में उत्क्रान्ति फैलाते हैं, उनको अपने पूर्वजों का भाग नहीं मिलना चाहिए। यदि वे अपना ढंग छोड़ देवें-तो फिर उनको उनका भाग दे देना चाहिए ॥२४-२८॥

यो महत्यर्थसमुदये स्थितः कदर्यः संनिधत्ते ऽवनिधत्ते ऽवस्रावयति वा संनिधत्ते स्ववेश्मन्यवनिधत्ते पौरजानपदेष्ववस्रावयति परविषये तस्य सत्त्री मन्त्रिमित्रभृत्यबन्धुपक्षमागतिं गतिं च द्रव्याणामुपलभेत ॥ २९ ॥ यश्चास्य परविषयतया संचारं कुर्यात्तमनुप्रविश्य मन्त्रं विद्यात् ॥ ३० ॥ सुविदिते शत्रुशासनापदेशेनैनं घातयेत् ॥ ३१ ॥

जो अध्यक्ष, राज्य कार्य करता हुआ महान् धनराशि इकट्ठी कर लेता है और स्वयं कुछ भी खर्च नहीं करता है और वह अपने धन को अपने घर में गाड़ देता है, पुर या जनपद के किसी पुरुष के पास रख छोड़ता है या अन्य देश में पहुंचा देता है; उसके साथी गुप्तचर, उसके मन्त्री (सलाहकार) मित्र, भृत्य, बन्धु और बान्धव द्रव्य के आने और जाने का पता रखें। जो पुरुष इस धन को अन्य राजा के देश में पहुंचाने में सहायता करता है और स्वयं कुछ खर्च नहीं करता है-तो गुप्तचर उससे मिलकर गुप्त रूप से उसका

पता लगाता रहे। यदि इसके इस कार्य का अच्छी तरह प्रमाण मिल जावे-तो उसको शत्रु से मिला हुआ प्रसिद्ध करके राजा मरवा देवे ॥ ३०-३१ ॥

तस्मादस्याध्यक्षाः संख्यायकलेखकरूपदर्शकनीवीग्राहकोत्तराध्यक्षसखाः कर्माणि कुर्युः ॥ ३२ ॥

इन सब बातों पर विचार करके राजा के छोटे २ अध्यक्ष, गणना करने वाले, लेखक, रूप दर्शक [मुद्रा लगाने वाले या खरे खोटे परखने वाले] नीवी ग्राहक [शेष राज्य धन के लेने वाले खजानची] तथा बड़े २ अध्यक्ष सब मिलकर राज्य कार्य का सम्पादन करें ॥३२॥

उत्तराध्यक्षाः हस्त्यश्वरथारोहाः ॥ ३३ ॥ तेषामन्तेवासिनश्शिल्पशौचयुक्तास्सङ्ख्यायकादीनामपसर्पाः ॥ ३४ ॥ बहुमुख्यमनित्यं चाधिकरणं स्थापयेत् ॥ ३५ ॥

हाथी अश्व और रथों के ऊपर चढ़ने वाले वीर ही उत्तराध्यक्ष होते हैं। इनके शिल्प, में कुशल और शुद्ध हृदय के छात्र, इन संख्यायक आदि कर्मचारियों के पता लगाने वाले गुप्तचर होने चाहिए। जो बड़ा अधिकरण (महकमा) हो, उसमें अनेक मुख्य अधिकारी होने चाहिए-तथा उनको समय २ पर बदलते रहना चाहिए ॥३३-३५॥

यथा ह्यनास्वादयितुं न शक्यं, जिह्वातलस्थं मधु वा विषं वा।
अर्थस्तथा ह्यर्थचरेण राज्ञः, स्वल्पो ऽप्यनास्वादयितु न शक्यः ॥ ३६ ॥

जिह्वा पर रखा हुआ मधु या विष अवश्य स्वाद लेने में आ ही जाता है, इसी तरह राजा के अर्थाधिकार पर नियुक्त पुरुष, अवश्य कुछ न कुछ उपभोग करते ही हैं। ॥३६॥

मत्स्या यथान्तः सलिले चरन्तो, ज्ञातुं न शक्याः सलिलं पिबन्तः।
युक्तास्तथा कार्यविधौ नियुक्ताः, ज्ञातुं न शक्या धनमाददानाः ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार पानी में प्रविष्ट मछली, पानी पीती दिखाई नहीं देती, इसी तरह छोटे २ अध्यक्ष, अपने २ कार्य पर नियुक्त हुए और राज्य के धन का अपहरण करते हुए जाने नहीं जा सकते हैं ॥३७॥

अपि शक्या गतिर्ज्ञातुं पततां खे पतत्रिणाम्।
न तु प्रच्छन्नभावानां युक्तानां चरतां गतिः ॥ ३८ ॥

आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गति का पता रखा जा सकता है, परन्तु गुप्त रूप से राजा के धन का अपहरण करने वाले इन छोटे २ अध्यक्षों [कर्मचारियों] की गति का पता लगाना बड़ा ही कठिन कार्य है ॥३८॥

आस्रावयेच्चोपचितान्विपर्यस्येच्च कर्मसु ।
यथा न भक्षयन्त्यर्थं भक्षितं निर्वमन्ति वा ॥ ३९ ॥

जब राजा, ऐसे अध्यक्षों का पता लगाले-तो उन धन सम्पन्न अधिकारियों के धन को छीन ले और उन्हें अपने ओहदे से नीचे गिरादे, जिससे वे आगे धन का अपहरण न कर सकें और जो कर लिया उसे उलटा उगल दें ॥३९॥

न भक्षयन्ति ये त्वर्थान्न्यायतो वर्धयन्ति च ।
नित्याधिकाराः कार्यास्ते राज्ञः प्रियहिते रताः ॥ ४० ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे उपयुक्तपरीक्षा नवमो ऽध्यायः ॥ ९ ॥
आदितस्त्रिंशः ॥ ३० ॥

जो राज्य के धन का अपहरण न करके न्यायानुसार अपनी और राजा की वृद्धि करते हैं, राजा उनको सर्वदा उच्च पद पर अधिकारी बनाये रखे, क्योंकि राजा के हित में तत्पर होते हैं ॥४०॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचारअधिकरण में बड़े २ अध्यक्षों की परीक्षा का नौवां अध्याय समाप्त हुआ।



दसवां अध्याय

२८वां प्रकरण

शासनाधिकार

लेख द्वारा जो आज्ञा दी जाती है, उसे शासन कहते हैं-अब उसके विषय में विचार किया जाता है।

शासने शासनमित्याचक्षते ॥ १ ॥ शासनप्रधाना हि राजानः ॥ २ ॥ तन्मूलत्वात्संधिविग्रहयोः ॥ ३ ॥ तस्मादमात्यसंपदोपेतः सर्वसमयविदाशुग्रन्थश्चार्वक्षरो लेखवाचनसमर्थो लेखकः स्यात् ॥ ४ ॥ सो ऽव्यग्रमना राज्ञः संदेशं श्रुत्वा निश्चितार्थं लेखं विदध्यात् ॥ ५ ॥ देशैश्वर्यवंशनामधेयोपचारमीश्वरस्य देशनामधेयोपचारमनीश्वरस्य ॥ ६ ॥

किसी भी तरह की राजा की लिखित आज्ञा या प्रतिज्ञा शासन कहाता है। राजा लोग शासन प्रधान होते हैं-अर्थात् उनके सारे कार्य लेख पर अवलम्बित हैं। शासन (लेख) के अधीन सारे संधि विग्रह आदि कार्य सम्पन्न होते हैं, इस लिए अमात्य के गुणों से युक्त, प्रत्येक प्रतिज्ञा के लिखने की शैली का जानने वाला-शीघ्रता के साथ सुन्दर अक्षर और विषय (मज़मून) के लिख देने तथा अन्य के लेख पढ़ने में समर्थ राजा का लेखक होना चाहिए। यह लेखक शान्ति पूर्वक राजा के अभिप्राय को समझ कर दोष रहित सुन्दर लेख लिखे। इस लेख में देश, ऐश्वर्य (पदवी-राजराजेश्वरादि) वंश, नाम तथा अन्य उपचार (यथा योग्य नमस्कार आदि) एवं साधारण मनुष्य के देश नाम और उपचार (आदर सत्कार सूचक शब्द) लिखे॥ १-६॥

जातिं कुलं स्थानवयः श्रुतानि, कर्मर्द्धिशीलान्यथ देशकालौ।
यौनानुबन्धं च समीक्ष्य कार्ये, लेखं विदध्यात्पुरुषानुरूम्॥ ७॥

लेखक प्रत्येक राज्य कार्य सम्बन्धी लेख में जाति, कुल, स्थान वय (उमर) शास्त्र ज्ञान [एम, ए, शास्त्री आदि] काम, धन सम्पत्ति, सदाचार, देशकाल, यौन सम्बन्ध [विवाह आदि सम्बन्ध का आचार] लिख कर प्रत्येक पुरुष की प्रतिष्ठा के अनुसार लेख लिखे॥७॥

अर्थक्रमः संबन्धः परिपूर्णता माधुर्यमौदार्यं स्पष्टत्वमिति लेखसंपत्॥८॥ तत्र यथावदनुपूर्वक्रियाप्रधानस्यार्थस्य पूर्वमभिनिवेश इत्यर्थस्य क्रमः॥ ९॥ प्रस्तुतस्यार्थस्यानुरोधादुत्तरस्य विधानमासमाप्तेरिति संबन्धः॥ १०॥ अर्थपदाक्षराणामन्यूनातिरिक्तता हेतूदाहरणदृष्टान्तैरर्थोपवर्णनाश्रान्तपदतेति परिपूर्णता॥ ११॥ सुखोपनीतचार्वर्थशब्दाभिधानं माधुर्यम्॥ १२॥ अग्राम्यशब्दाभिधानमौदार्यम्॥ १३॥ प्रतीतशब्दप्रयोगः स्पष्टत्वमिति॥१४॥

लेख में [१] अर्थ क्रम [२] सम्बन्ध [३] परिपूर्णता [४] माधुर्य [५] औदार्य और स्पष्टता-ये छः गुण माने गए हैं। लेख में क्रियाओं का समुचित प्रयोग करके ठीक २ अर्थ का लिखना अर्थ क्रम कहाता है। जिस अर्थ [विषय] का प्रारम्भ किया, उसका अन्त तक ठीक २ वैसा ही अन्त तक निर्वाह करजाना, सम्बन्ध माना गया है। अर्थ, पद और अक्षरों की न्यूनता या अधिकता न होना तथा हेतु, उदाहरण और दृष्टान्त से लेख के अर्थ को सिद्ध करना एवं अर्थ के वर्णन में ढीले पदों का प्रयोग न करना-परिपूर्णता कहाता हैं। सरलता से अर्थ का बोध न करने वाले, मधुर २ शब्दों का प्रयोग करना-माधुर्य गुण कहाता है। अश्लील शब्दों के प्रयोग से रहित शब्दों का प्रयोग औदार्य गुण कहाता है। सीधा अर्थ दे देने वाले शब्दों का प्रयोग स्पष्टता गुण होता है॥ ८-१४॥

अकारादयो वर्णाः त्रिषष्टिः ॥ १५ ॥ वर्णसंघातः पदम् ॥ १६ ॥ तच्चतुर्विधं नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चेति ॥ १७ ॥ तत्र नाम सत्त्वाभिधायि ॥ १८ ॥ अविशिष्टलिङ्गमाख्यातं क्रियावाचि ॥ १९ ॥ क्रियाविशेषकाः प्रादाय उपसर्गाः ॥२०॥ अव्ययाश्चादयो निपाताः ॥२१॥ पदसमूहो वाक्यमर्थपरिसमाप्तौ ॥२२॥ एकपदावरस्त्रिपदपरः परपदार्थानुरोधेन वर्गः कार्यः ॥ २३ ॥ लेखपरिसंहरणार्थ इतिशब्दो वाचिकमस्येति च ॥ २४ ॥

अकार आदि तरेसठ वर्ण होते हैं। वर्णों के समूह को पद कहते हैं। नाम, आख्यात उपसर्ग और निपात-इस प्रकार चार तरह के पद माने गए हैं। जाति, गुण या द्रव्य (वस्तु) के नाम को नाम [संज्ञा] कहते हैं। स्त्री पुलिङ्ग आदि की विशेषता से हीन क्रिया पदों को आख्यात कहते हैं। क्रिया में विशेष अर्थ के उत्पादक आदि उपसर्ग कहाते हैं। चकार आदि अव्यय निपात हैं। अर्थ को स्पष्ट रीति से बोध न कराने वाले पद समूह को वाक्य कहते हैं। एक पद या तीन पद के आगे अगले पद के अर्थ के अनुरोध से वर्ग [विराम] मानना चाहिए। लेख की परि समाप्ति होने पर इति शब्द का प्रयोग उचित है तथा इस को पढ़ कर सुना दिया गया आदि शब्द लिखने चाहिए ॥ १५-२४ ॥

निन्दा प्रशंसा पृच्छा च तथाख्यानमथार्थना ।
प्रत्याख्यानमुपालम्भः प्रतिषेधोऽथ चोदना ॥ २५ ॥
सान्त्वमभ्यवपत्तिश्च भर्त्सनानुनयौ तथा ।
एतेष्वर्थाः प्रवर्तन्ते त्रयोदशसु लेखजाः ॥ २६ ॥

निन्दा, प्रशंसा, प्रश्न, समाचार, प्रार्थना, प्रत्याख्यान, उपालम्भ [उलाहना] प्रतिषेध [निषेध] प्रेरणा, सान्त्वना, अभ्यवपत्ति [सहायता करना] फटकारना और अनुनय करना ये तेरह अर्थ [बातें] प्रायः लेख में लिखे जाते हैं ॥ २५-२६ ॥

तत्राभिजनशरीरकर्मणां दोषवचनं निन्दा ॥ २७ ॥ गुणवचनमेतेषामेव प्रशंसा ॥ २८ ॥ कथमेतदिति पृच्छा ॥ २९ ॥ एवमित्याख्यानम् ॥ ३० ॥ देहीत्यर्थना ॥ ३१ ॥ न प्रयच्छामीति प्रत्याख्यानम् ॥ ३२ ॥ अननुरूपं भवत इत्युपालम्भः ॥ ३३ ॥ मा कार्षीरिति प्रतिषेधः ॥ ३४ ॥ इदं क्रियतामिति चोदना ॥ ३५ ॥ योऽहं स भवान्यन्मम द्रव्यं तद्भवत इत्युपग्रहः सान्त्वम् ॥ ३६ ॥ व्यसनसाहाय्यमभ्यवपत्तिः ॥ ३७ ॥ सदोषमायतिप्रदर्शनमभिभर्त्सनम् ॥३८ ॥ अनुनयस्त्रिविधोऽर्थकृतावतिक्रमे पुरुषादिव्यसने चेति ॥ ३९ ॥

प्रज्ञापनाज्ञपरिदानलेखास्तथा परीहारनिसृष्टिलेखौ।
प्रावृत्तिकश्च प्रतिलेख एव सर्वत्रगश्चेति हि शासनानि ॥ ४० ॥

किसी के वंश, शरीर और कार्य में दोष कथन करना-निन्दा कहाता है। इन्हीं कुल-शरीर और कार्य के गुणों का कथन करना प्रशंसा कहाता है। यह बात किस तरह है, यह पूछना है। यह घटना इस प्रकार-है यह कहना आख्यान होता है। यह मुझे प्रदान करो-इस प्रकार याचना को अर्थना कहते हैं। मै यह नहीं दे सकता-इस प्रकार याचित वस्तु के दे देने में निषेध [इन्कार] कर देना प्रत्याख्यान कहाता है। यह बात करना-तुम्हारे रूप के अनुकूल नहीं है-ऐसा कहना-उपालम्भ (उलाहना) कहाता है। तुम यह काम मत करना-यह प्रतिषेध होता है। तुम यह करना-इसे चोदना (प्रेरणा) कहते हैं। जो मैं हूं-वही आप हैं-आप में और मुझमें कोई अन्तर नहीं है-मेरा द्रव्य आपका ही है-इस प्रकार कहना सान्त्वना अर्थात् तसल्ली देना कहाता है। किसी विपत्ति में सहायता करना अभ्यवपत्ति कहाता है। दोष सहित भविष्य का दर्शन अर्थात् अनर्थ उत्पन्न कर देने की धमकी देना-अभिभर्त्सन कहाता है। अनुनय तीन प्रकार का माना गया है। किसी कार्य की सिद्धि के लिए जो प्रार्थना की जाती है-वह प्रथम अनुनय है। किसी कुपित पुरुष के शान्त करने की प्रार्थना दूसरा अनुनय है। अपने परिवार या मित्र के व्यसन में किसी से प्रार्थना करना तीसरा अनुनय कहाता है। इस प्रकार लेख के ये तेरह ढंग माने गए हैं ॥२७-३६॥

प्रज्ञापन, आज्ञा, परिदान, लेख, परीहार, निसृष्टि, प्रावृत्तिक, प्रतिलेख और सर्वत्रग शासन पत्र के ये आठ भेद और माने गए है ॥४०॥

अनेन विज्ञापितमेवमाह तद्दीयतां चेद्यदि तत्त्वमस्ति।
राज्ञः समीपे वरकारमाह प्रज्ञापनैषा विविधोपदिष्टा ॥ ४१ ॥

इस मनुष्य ने हमको सूचना दी है हो कि तुमने हमारे धन का अपहरण कर लिया है। यदि यह सत्य है-तो वह वापिस दे दो। जो अफसर या मनुष्य, राजा स स्वीकार करके स्वीकृति लेख लिख देता है, यह प्रज्ञापना पत्र कहाता है। इसके अनेक भेद है ॥४१॥

भर्तुराज्ञा भवेद्यत्र निग्रहानुग्रहौ प्रति।
विशेषेण तु भृत्येषु तदाज्ञालेखलक्षणम् ॥ ४२ ॥

निग्रह और अनुग्रह के विषय में जो राजा का आज्ञा पत्र होता है और विशेष कर यह भृत्यों के सम्बन्ध में लिखा जाता है-इसे आज्ञा पत्र (हुकुमनामा) कहते हैं ॥४२॥

यथार्हगुणसंयुक्ता पूजा यत्रोपलक्ष्यते।
अप्याधौ परिदाने वा भवतस्तावुपग्रहौ ॥ ४३ ॥

जिस पत्र में पूज्य भाव के साथ आदर के अक्षर लिखे गए हों-यह परिदान कहाता है। यह लेख, किसी सम्बन्धी की मृत्यु पर सहानुभूति में तथा किसी दुःखी भृत्य की रक्षा के निमित्त लिखा जाता है। ये दोनों लेख उपग्रह (अनुग्रह सूचक) होते हैं ॥४३॥

ज्ञातेर्विशेषेषु पुरेषु चैव ग्रामेषु देशेषु च तेषु तेषु ।
अनुग्रहो यो नृपतेर्निदेशात्तज्ज्ञः परीहार इति व्यवस्येत् ॥ ४४ ॥

निसृष्टिस्थापना कार्य करणे वचने तथा ।
एषा वाचिक लेखः स्याद्भवेन्नैसृष्टिको ऽपि वा ॥ ४५ ॥

विविधां दैवसंयुक्तां तत्त्वजां चैव मानुषीम् ।
द्विविधा तां व्यवस्यन्तिप्रवृत्तिं शासनं प्रति ॥ ४६ ॥

विशेष २ (खास २) जाति, पुर, ग्राम, और देश पर जो राजा की आज्ञा का अनुग्रह पत्र निकलता है-इसे विद्वान् परीहार पत्र कहते हैं। किसी कार्य के करने या कहने में किसी प्रामाणिक व्यक्ति का अपने ऊपर भार ले लेना निसृष्टि पत्र (जमानतनामा) कहाता है। यह निसृष्टि, वाचिक लेख या नैसृष्टिक लेख भी कहाता है। दैव के उत्पात या मनुष्यों की घटना के जो समाचार पत्र निकलते हैं, वे प्रावृत्तिक कहाते हैं। राज शासन के ये समाचार पत्र शुभ और अशुभ दो तरह के होते हैं ॥४४-४६॥

दृष्ट्वा लेखं यथातत्त्वं ततःप्रत्यनुभाष्य च ।
प्रतिलेखो भवेत्कार्यो यथा राजवचस्तथा ॥ ४७ ॥

प्रथम स्वयं किसी लेख को पढ़कर और फिर उसको राजा के सन्मुख पढ़कर राजा के वचन के अनुसार उत्तर लिखना प्रति लेख कहाता है ॥४७॥

यत्रेश्वरांश्चाधिकृतांश्च राजा रक्षोपकारौ पथिकार्थमाह ।
सर्वत्रगो नाम भवेत्स मार्गे देशे च सर्वत्र च वेदितव्यः ॥ ४८ ॥

जिस पत्र में राजा अपने सामन्त, अध्यक्ष और अधिकारियों को रक्षा तथा उपकार के विषय में लिखता है-वह-सर्वत्रग नामक लेख है। वह लेख सारे मार्ग देश और राष्ट्र में चिपकवा दिया जाता है। यह सर्वत्रग लेख ही (शाही फ़रमान) होता है ॥४८॥

उपायाः सामोपप्रदान भेददण्डाः ॥ ४९ ॥ तत्र साम पञ्चविधम्-गुणसंकीर्तनं संबन्धोपाख्यानम् परस्परोपकारसंदर्शनमायतिप्रदर्शनमात्मोपनिधानमिति ॥ ५० ॥ तत्राभिजनशरीरकर्मप्रकृतिश्रुतद्रव्यादीनां गुणागुणग्रहणं प्रशंसास्तुतिर्गुणसंकीर्तनम् ॥५१॥ ज्ञातियौनमौखस्रौवकुलहृदयमित्रसंकीर्तनं संबन्धोपाख्यानम्

॥५२॥ स्वपक्षपरपक्षयोरन्यो न्योपकारसंकीर्तनं परस्परोपकारसंदर्शनम् ॥ ५३ ॥ अस्मिन्नेवं कृत इदमावयोर्भवतीत्याशाजननमायतिप्रदर्शनम् ॥ ५४ ॥ यो ऽहं स भवान्यन्मम द्रव्यं तद्भवता स्वकृत्येषु प्रयोज्यतामित्यात्मोपनिधानमिति ॥ ५५ ॥ उपप्रदानमर्थोपकारः ॥५६॥ शङ्काजननं निर्भर्त्सनं च भेदः ॥५७॥ वधः परिक्लेशो ऽर्थहरणं दण्ड इति ॥ ५८ ॥

साम, दान, भेद और दण्ड-इस प्रकार चार तरह के उपाय माने गए हैं। गुण संकीर्तन, सम्बन्धो पाख्यान, परस्परोपकार संदर्शन, आयतिप्रदर्शन और आत्मोपनिधान-इस प्रकार साम पांच प्रकार का होता है। कुल, शरीर, कर्म, स्वभाव, विद्वत्ता, तथा अन्य द्रव्य आदि के विषय में गुणों का अनुकीर्तन करना-प्रशंसा, स्तुति और गुण संकीर्तन कहाता है। जाति, यौन (विवाह आदि) गोत्र (गुरु शिष्य आदि) स्रौव (स्रुवाहरण यज्ञादि) कौलिक (कुलपरम्परा से आने वाला) हृदय से किया हुआ, मित्रता से उत्पन्न, संबंध का कथन करना, सम्बन्धोपाख्यान कहाता है। अपने तथा शत्रु के विषय में किए हुए उपकार को बताकर सम्बन्ध प्रदर्शन करना-परस्परोपकार संदर्शन कहाता है। इस कार्य के ऐसा करने पर हम दोनों का लाभ है-इस प्रकार आशा देना-आयति प्रदर्शन कहाता है। जो मैं हूं-सो आप हैं-मेरा द्रव्य आपका ही है। आप इसे अपने कार्य में ले सकते हैं-यह आत्मोपनिधान कहाता है। धन देकर उपकार करना उपप्रदान (दान) कहाता है, शङ्का उत्पन्न कर देना या फटकार बताना- भेद कहाता है। वध, क्लेशदान, या अर्थ (धन) हरण कर लेना दण्ड होता है। ये चार तरह के उपाय कहाते हैं ॥ ४९-५८ ॥

अकान्तिर्व्याघातः पुनरुक्तमपशब्दः संप्लव इति लेखदोषाः ॥५९॥ तत्रकालपत्रकमचारुविषमविरागाक्षरत्वमकान्तिः ॥ ६० ॥ पूर्वेण पश्चिमस्यानुपपत्तिर्व्याघातः ॥ ६१ ॥ उक्तस्याविशेषेण द्वितीयमुच्चारणं पुनरुक्तम् ॥६२॥ लिङ्गवचनकालकारकाणामन्यथाप्रयोगो ऽपशब्दः ॥६३॥ अवर्गे वर्गकरणं वर्गे चावर्गक्रिया गुणविपर्यासः संप्लव इति ॥ ६४ ॥

(अकान्ति, व्याघात, पुनरुक्त, अपशब्द, संप्लव-ये पांच लेख के दोष हैं। काले कलूटे पत्र, असुन्दर छोटे बड़े भद्दे अक्षरों में लेख लिखना-पत्र का अकान्ति दोष होता है। पूर्व लेख का पिछले लेख से सम्बन्ध न जुड़ना-व्याघात दोष होता है। प्रथम कही हुई बात का फिर कथन करना पुनरुक्त दोष है। लिङ्ग (स्त्रिलिङ्ग पुलिङ्ग) वचन, काल, कारक, का अन्यथा प्रयोग करके भाषा का अशुद्ध लिखना, अप शब्द दोष है। विराम नहीं करने के

स्थान में विराम और विराम के स्थान में विरामाभाव तथा अर्थ क्रम के अनुसार लेखन लिखना संप्लव दोष कहाता है। ये पांच लेख पत्र के दोष हैं। ॥ ५६-६४ ॥

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च ।
कौटल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः ॥ ६५ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे शासनाधिकारः दशमो ऽध्यायः ॥१०॥
आदित एकत्रिंश ॥ ३१ ॥

सारे शास्त्रों को विचार कर और शब्द प्रयोगों की व्यवस्था को जानकर कौटल्य (चाणक्य) आचार्य ने राजाओं के निमित्त यह शासन विधि का क्रम बताया है ॥ ६५ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में शासनाधिकार का दशवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



ग्यारहवां अध्याय

२६वां प्रकरण

कोशमें प्रवेश करने योग्य रत्नों की परीक्षा।

इस प्रकरण में कोश (भण्डार) में इकट्ठी की जाने वाली मणि, मुक्ता, काष्ठ और वस्त्र आदि वस्तुओं की परीक्षा का वर्णन किया जावेगा।

कोशाध्यक्षः कोशप्रवेश्यं रत्नं सारं फल्गु कुप्यं वा तज्जातकरणाधिष्ठितः प्रतिगृह्णीयात् ॥ १ ॥

कोशाध्यक्ष, कोश में रखने योग्य, रत्न, सार (चन्दन आदि की लकड़ी) फल्गु (वस्त्र आदि) कुप्य (धातु चमड़ा आदि) संज्ञक वस्तुओं को पृथक २ वस्तुओं के संग्रह कर्ता कर्मचारी की विद्यमानता में ग्रहण करे ॥ १ ॥

ताम्रपर्णिकं पाण्डयकवाटकं पाशिक्यं कौलेयं चार्णेयं माहेन्द्रं कार्दमिकं स्रौतसीयं ह्रादीयं हैमवतं च मौक्तिकम् ॥२॥ शुक्तिः शङ्खः प्रकीर्णकं च योनयः ॥ ३ ॥

ताम्रपर्णी नदी में जो मोती उत्पन्न होता है-उसे ताम्रपर्णिक कहते हैं। मलय कोटि पर्वत के समीपवर्ती सरोवरों में जो मोती उत्पन्न होवे-वे पांडयकवाटक कहाते हैं. पाटलिपुत्र के समीपवर्ती पाशिका नदी के मोती-पाशिक्य होते हैं। सिंहल द्वीप की कुला नामक नदी में

उत्पन्न मोती कौलेय कहाते हैं। केरल देश की चूर्णी नदी में उत्पन्न चौर्णेय, महेन्द्र पर्वत के समीपवर्ती समुद्र के माहेन्द्र, फारस देश की कर्दमा नदी के कार्दमक, वर्बर देश की स्रोतसी नदी के स्रोतसीय, वर्बर देश की श्रीघण्ट नामक झील के मोती ह्रादीय, हिमालय के समीप में उत्पन्न होने वाले मोती हैमवत कहाते हैं। शुक्ति, शङ्ख, और प्रकीर्णक (हाथी सर्प आदि के मस्तकोत्पन्न) ये तीन मोति के उत्पत्ति स्थान हैं॥ २-३॥

मसूरकं त्रिपुटकं कूर्मकमर्धचन्द्रकं कञ्चुकितं यमकं कर्तकं खरकं सिक्थकं कामण्डलुकं श्यावं नीलं दुर्विद्धं चाप्रशस्तम्॥ ४॥

मसूर के समान आकार वाला मसूरक, तीन किनारों वाला, या छोटी इलायची के सदृश आकार वाला त्रिपुटक, कछुए के तुल्य आकार धारी कूर्मक, आधे चांद के तुल्य आकार वाले अर्ध चन्द्रक, ऊपर से मोटे छिलके वाले कञ्चुकित, जुड़े हुए यमक, कटे हुए कतक, खरदरे आकार वाले खरक, दाग वाले सिक्थक, कमण्डलु के रूप वाले कामण्डलुक काले नीले और अस्थान पर विंधे हुए मोती अच्छे नहीं माने जाते हैं॥ ४॥

स्थूलं वृत्तं निस्तलं भ्राजिष्णु श्वेतं गुरु स्निग्धं देशविद्धं च प्रशस्तम्॥५॥

स्थूल (मोटे) वृत्त (गोल) निस्तल (लुढ़कने वाले) चमकीले, श्वेत, भारी चिकने, और स्थान पर विंधे हुए मोती उत्तम माने जाते हैं॥ ५॥

शीर्षकमुपशीर्षकं प्रकाण्डकमवघाटकं तरलप्रतिबन्धं चेति यष्टिप्रदेशाः॥६॥

बीच में एक मोती बड़ा और छोटे २ मोतियों की लड़ी को शीर्षक, एक बीच में बड़ा, दोनों ओर छोटे दो मोती, फिर बड़ा और दो छोटे-इस तरह की बनी मोतियों की लड़ी को उपशीर्षक, एक बीच में बड़ा मोती और दोनों ओर चार २ छोटे मोती-इस तरह की मोतियों की लड़ी को प्रकाण्डक, एक बड़ा मोती बीच में लगाकर उत्तरोत्तर, उतार के छोटे मोतियों की लड़ी को अवघाटक और सब बराबर के मोतियों की लड़ी को तरल प्रतिबन्ध कहते हैं॥ ६॥

यष्टीनामष्टसहस्रमिन्द्रच्छन्दः॥ ७॥ ततोऽर्धं विजयच्छन्दः॥ ८॥ शतं देवच्छन्दः॥ ९॥ चतुष्षष्टिरर्धहारः॥ १०॥ चतुष्पञ्चाशद्रश्मिकलापः॥ ११॥ द्वात्रिंशद्गुच्छः॥ १२॥ सप्तविंशतिर्नक्षत्रमाला॥ १३॥ चतुर्विंशतिरर्धगुच्छः॥ १४॥ विंशतिर्माणवकः॥ १५॥ ततोऽर्धमर्धमाणवकः॥१६॥

एक हजार आठ मोतियों की माला के आभूषण को इन्द्रच्छन्द, पांच सौ चार मोतियों की लड़ियों के आभूषण को विजयच्छन्द, सौ लड़ियों के बने हुए भूषण को देवच्छन्द, चौंसठ लड़ियों के आभूषण को अर्धहार, चौवन लड़ियों के आभूषण को रश्मि-

कलाप, बत्तीस का गुच्छक, सत्ताईस का नक्षत्र माला, चौबिस का अर्ध गुच्छक, बीस का माणवक और दश लड़ियों के आभूषण को अर्धमाणवक कहते हैं ॥ ७-१६ ॥

एत एव मणिमध्यास्तन्माणवका भवन्ति ॥ १७ ॥ एकशीर्षकः शुद्धो हारः ॥ १८ ॥ तद्वच्छेषाः ॥ १९ ॥ मणिमध्यो ऽर्धमाणवकः ॥ २० ॥ त्रिफलकः फलकहारः पञ्चफलको वा ॥ २१ ॥

यदि इतनी ही मोतियों की मालाओं के मध्य में एक २ मणि लगा दी जावे-तो वे इन्द्रच्छन्द माणवक नामक आभूषण कहलाने लगता है। यदि एक शीर्षक लड़ी के ढंग पर मोती लगा दिए जावे-तो इन्द्रच्छन्द शीर्षक शुद्धहार नामक हार बन जाता है। उपशीर्षक के ढंग पर पोये हुए मोती इन्द्रच्छन्दोपशीर्षक शुद्धहार आभूषण बनते हैं। इसी तरह सारे जान लेने चाहिए। यदि इनके मध्य में मणि लगा दी जावे-तो वह इन्द्रच्छन्द अर्धमाणवक हार होता है। यदि किसी भी मोती की माला में तीन दाने या पांच सोने के दाने पो दिए जावें-तो वह फलक हार होता है या मणि मध्य वाले अर्धमाणवक आभूषण में तीन या पांच सोने के दाने पो देने से फलकहार बनता है ॥ १७-२१ ॥

सूत्रमेकावली शुद्धा ॥ २२ ॥ सैव मणिमध्या यष्टिः ॥ २३ ॥ हेममणिचित्रा रत्नावली ॥ २४ ॥ हेममणिमुक्तान्तरो ऽपवर्तकः ॥ २५ ॥ सुवर्णसूत्रान्तरं सोपानकम् ॥ २६ ॥ मणिमध्यं वा मणिसोपानकम् ॥ २७ ॥ तेन शिरोहस्तपादकटीकलापजालकविकल्पा व्याख्याताः ॥ २८ ॥

केवल सूत में पिरोई हुई मोतियों की लड़ी शुद्ध और मणि के साथ पिरोई मोतियों की लड़ी यष्टि कहाती है। सोने में जड़ी हुई मणि से युक्त मोती माला रत्नावली कहाती है, मोतियों के कुछ २ अन्तर पर सुवर्ण जड़ित मणियों के पो देने पर अपवर्तक आभूषण बनता है। सुवर्ण के सूत्र में केवल मोती पोये हों तो वह सोपानक आभूषण (हार) कहाता है। यदि उसके बीच में मणि लगा दी जावे-तो मणि सोपानक हो जाता है। इसी तरह शिर, हस्त, पाद कटी (कमर) के भिन्न २ प्रकार के आभूषणों के नाम होते हैं अर्थात् शिर सोपानक, शिरमणि सोपानक आदि समझ लेने चाहिए ॥ २२-२८ ॥

मणिः कौटो मौलेयकः पारसमुद्रकश्च ॥२९॥ सौगन्धिकः पद्मरागोऽनवद्यरागः पारिजातपुष्पको बालसूर्यकः ॥ ३० ॥

मलय सागर के समीप कोटि नामक स्थान में उत्पन्न मणि कौट, मलय देश के प्रान्त में उत्पन्न होने वाली मणि, मौलेयक, समुद्रपार सिंहलद्वीप में उत्पन्न मणि पार समुद्रक

मणि कहाती है। इनके सौगन्धिक, पद्मराग, अनवद्यराग, पारिजात पुष्पक और वालसूर्यक ये पांच भेद हैं। नील कमल के सदृश मणि सौगन्धिक, लाल कमल के तुल्य पद्मराग, कमलकेसर के सदृश अनवद्यराग, पारिजात के पुष्प तुल्य पारिजातपुष्पक और उदय होते हुए सूर्य के सदृश वालसूर्यक मणि या माणिक्य कहाते हैं॥ २९-३०॥

वैडूर्य उत्पलवर्णः शिरीषपुष्पक उदकवर्णो वंशरागः शुकपत्त्रवर्णः पुष्यरागो गोमूत्रको गोमेदकः॥ ३१॥ नीलावलीय इन्द्रनीलः कलायपुष्पको महानीलो जाम्बवाभो जीमूतप्रभो नन्दकः स्रवन्मध्यः॥३२॥ शुद्धस्फटिकः मूलाटवर्णः शीतवृष्टिः सूर्यकान्तश्चेति मणयः॥ ३३॥

वैदूर्यमणि, के उत्पन्न वर्ण (नील कमल के आकार वाली) शिरीष पुष्पक (सिरस के फूल सदृश) उदक वर्ण (जल के तुल्य स्वच्छ) वंशराग (बांस के तुल्य हरी) पुष्यराग (हल्दी के तुल्य पीली) गोमूत्रक (गोमूत्र तुल्य कुछ पीली) और गोमेदक (गोरोचन के तुल्य वर्ण वाली) ये भेद होते हैं। इन्द्रनील मणि के नीलावलीय (नीली धारा वाली) इन्द्रनील (मोर के पंख सी नीली) कलाय पुष्पक [मटर के पुष्प के आकार वाली] महानील (अत्यन्त नीली) जाम्बवाभ (जामुन के तुल्य नीली) जीमूतप्रभ (मेघ तुल्य रंग वाली) नन्दक (श्वेत और नील) स्रवन्मध्य (मध्य से किरणें छोड़ने वाली) ये भेद माने गए हैं। श्वेत मणि भी-शुद्ध स्फटिक (अत्यन्त श्वेत) मूलाट वर्ण (तक्रवत् श्वेत) शीतवृष्टि [चन्द्रकिरण से पानी टपकाने वाली] सूर्यकान्त [सूर्य स्पर्श से आग उगलने वाली] चार तरह की होती है॥३१-३३॥

षडश्रश्चतुरश्रो वृत्तो वा तीव्ररागसंस्थानवानच्छः स्निग्धो गुरुरर्चिष्मानन्तर्गतप्रभः प्रभानुलेपी चेति मणिगुणाः॥ ३४॥मन्दरागप्रभः सशर्करः पुष्पच्छिद्रः खण्डो दुर्विद्धो लेखाकीर्ण इति दोषाः॥ ३५॥

छः कोने, चार कोने वाली गोल, गहरे रंग वाली निर्मल, चिकनी, भारी, दीप्ति वाली, बीच में चञ्चलकान्ति वाली, अपनी चमक से अन्य को चमका देने वाली मणि उत्तम होती है। ये सब मणियों के गुण माने गए हैं। मन्दराग, और कान्ति वाली, छोटे २ दानों वाली, छोटे २ छेदों से युक्त, कटी हुई, अयोग्य स्थान पर विंधी हुई तथा रेखाओं से घिरी हुई मणि दूषित कहाती है। ये सात मणियों के दोष हैं॥३४-३५॥

विमलकः सस्यकोऽञ्जनमूलकः पित्तकः सुलभको लोहिताक्षो मृगाश्मको ज्योतीरसको मैलेयक आहिच्छत्रकः कूर्पः प्रतिकूर्पः सुगन्धिकूर्पः क्षीरपकः शुक्ति-

चूर्णकः शिलाप्रवालकः पुलकः शुक्रपुलक इत्यन्तरजातयः ॥ ३६ ॥ शेषाः काचमणयः ॥ ३७ ॥

विमलक [श्वेत हरित रंग मिश्रित] सस्यक [नीली] अञ्जन मूलक [नीले काले से मिली हुई] पित्तक [गोरोचन तुल्य] सुलभक [श्वेत] लोहिताक्ष [किनारों पर लाल] मृगाश्मक (श्वेत कृष्ण मिश्रित) ज्योतीरसक (श्वेत रक्त मिला हुआ) मैलेयक [सिंगरफ के तुल्य] आहिच्छत्रक [फीके रंग वाला] कूर्प (खुदहरा) प्रतिकूर्प (धब्बे वाला) सुगन्धिकूर्प [मूंग के तुल्य वर्णधारी] क्षीरपक [दुग्धवत् श्वेत] शुक्तिचूर्णक [सीप के चूर्ण के आकार वाला] शिलाप्रवालक [मूंगे के रंग वाला] पुलक [मध्य कृष्ण] शुक्र पुलक [मध्य में श्वेत] ये मणियों के अन्य अवान्तर भेद या अवान्तर जातियां मानी गई है। इनके अतिरिक्त साधारण कोटि की मणियां काच मणि कहाती हैं ॥३६-३७॥

सभाराष्ट्रकं मध्यराष्ट्रकं काश्मीरराष्ट्रकं श्रीकटनकं मणिमन्तकमिन्द्रवानकं च वज्रम् ॥ ३८ ॥ खनिः स्रोतः प्रकीर्णकं च योनयः ॥ ३९ ॥ मार्जाराक्षकं च शिरीषपुष्पकं गोमूत्रकं गोमेदकं शुद्धस्फटिकं मूलाटीपुष्पकवर्णं मणिवर्णानामन्यतमवर्णमिति वज्रवर्णाः ॥ ४० ॥ स्थूलं गुरु प्रहारसहं समकोटिकं भाजनलेखितं कुभ्रामि भ्राजिष्णु च प्रशस्तम् ॥ ४१ ॥ नष्टकोणं निरश्रिपार्श्वापवृत्तं चाप्रशस्तम् ॥ ४२ ॥

सभाराष्ट्रक [विदर्भ [बरार] देशोत्पन्न] मध्यम राष्ट्रक [कोसल देशोत्पन्न] कश्मीर राष्ट्रक [कश्मीरोत्पन्न] [श्रीकटनकपर्वतोत्पन्न] मणिमन्तक [मणि मान्पर्वतोत्पन्न] इन्द्रवानक [कलिङ्ग देशोत्पन्न] श्रीकटनक इन छः स्थानों पर उत्पन्न होने के कारण हीरे के ये छः भेद होते हैं। इनकी खान, नदी प्रवाह और हाथी के दांत की मूल आदि इसके उत्पत्ति स्थान होते हैं। मार्जाराक्षक [बिलाव की आंखों के रंग वाला) शिरीषपुष्पक [सिरस के फूल के रंग वाला] गोमूत्रक [गोमूत्र रंगधारी] गोमेदक [गोरोचन सदृश] शुद्ध स्फटिक [बिल्लोर के तुल्य श्वेत] मूलाटी पुष्पक वर्ण [मूलाटी पुष्प सदृश] तथा मणियों के बताये हुए वर्णों में से किसी रंग वाला हीरा होता है। ये हीरे के रंग माने गए हैं (मोटा, चीकना, भारी चोट को सह लेने वाला, समान कोनों वाला, बर्तन में लकीर कर देने वाला, तकवे की तरह घूम जाने वाला तथा चमकदार हीरा उत्तम माना गया है। कोनों से हीन, लकीर से रहित, एक ओर से बे ढंगा-हीरा अच्छा नहीं माना जाता है ॥३८-४२॥)

प्रवालकमालकन्दकं वैवर्णिकं च रक्तं पद्मरागं च करटं गर्भिणिकावर्जमिति ॥ ४३ ॥

अलकन्द नामक स्थान में उत्पन्न होने से आलकन्दक और यूनान के विवर्ण नामक समुद्री भाग से उत्पन्न होने से वैवर्णिक संज्ञक-मूंगा, दो प्रकार का होता है। लाल तथा पद्म के समान फीकालाल ये दो मूंगे के वर्ण होते हैं। (कीड़े से खाया हुआ तथा बीच में मोटा होना ये मूंगे के दोष माने गए हैं।।४३।।)

चन्दनं सातनं रक्तं भूमिगन्धि ।। ४४ ।। गोशीर्षकं कालताम्रं मत्स्यगन्धि ।। ।। ४५ ।। हरिचन्दनं शुकपत्त्रवर्णमाम्रगन्धि ।। ४६ ।। तार्णसं च ।। ४७ ।।ग्रामेरुकं रक्तं रक्तकालं वा बस्तमूत्रगन्धि ।। ४८ ।। दैवसभेयं रक्तं पद्मगन्धि ।। ४९ ।। जावकं च ।। ५० ।। जोङ्गकं रक्तं रक्तकालं वा स्निग्धम् ।। ५१ ।। तौरूपं च ।। ५२ ।। मालेयकं पाण्डुरक्तम् ।। ५३ ।। कुचन्दनं कालवर्णकं गोमूत्रगन्धि ।। ५४ ।। कालपर्वतकं रूक्षमगुरुकालं रक्तं रक्तकालं वा ।। ५५ ।। कोशकारपर्वतकं कालं कालचित्रं वा ।। ५६ ।। शीतोदकीयं पद्माभं कालस्निग्धं वा ।। ५७ ।। नागपर्वतकं रूक्षं शैवलवर्णं वा ।। ५८ ।। शाकलं कपिलमिति ।। ५९ ।। लघुस्निग्धमश्यानं सर्पिस्नेहलेपि गन्धसुखं त्वगनुसार्यनुल्बणमविरागयुष्णसहं दाहग्राहि सुखस्पर्शनमिति चन्दनगुणाः ।। ६० ।।

चन्दन के सातन आदि सोलह उत्पत्ति-स्थान, लाल आदि नौ रंग और भूमि गन्ध आदि छः प्रकार के गन्ध होते हैं। सातन देश में उत्पन्न चन्दन का लाल रंग और उसमें भूमि के समान गन्ध होती है। (भूमि में जल डालने पर गन्ध निकलती है) गोशीर्षक देश में उत्पन्न चन्दन, कृष्ण और लाल सा होता है और उसमें मछली या लाल करोंदे की सी गन्ध आती है। हरि चन्दन देशोत्पन्न चन्दन में तोते के सदृश हरा रंग और आम के तुल्य गंध होती है एवं तृणसा नामक नदी के तट पर उत्पन्न चन्दन भी हरि चन्दन जैसा ही होता है। ग्रामेरुक देशोत्पन्न, चन्दन का लाल या लाल काला सा रंग होता है और उसमें बकरे के मूत्र के समान गंध होती है। देव सभा के चन्दन में लाल वर्ण और पद्म की सी गंध होती है। जावक देश का चन्दन भी ऐसा ही होता है। जोङ्ग देश का चन्दन, लाल या लाल कालासा और चिकना होता है। इसका गन्ध भी पद्म तुल्य होता है। तुलप देश का चन्दन भी जोङ्ग देश के तुल्य ही होता है। माला स्थान का पीला लाल सा चन्दन होता है और उसकी गंध भी पद्म की सी होती है। कुचन्दन देशोत्पन्न चन्दन का रंग काला और गन्ध गो मूत्र तुल्य होती है। कालपर्वत देश का चन्दन रूक्ष, अगर के तुल्य काला, रक्त या कुछ रक्त और काला सा होता है। इसका गंध भी गो मूत्र का सा ही है। कोशकार पर्वत में होने वाला चन्दन काला या काले दागों वाला गो मूत्र गन्धी होता

है। शीतोदक देश का चन्दन कमल के समान आकारधारी, काला और चिकना होता है। नाग पर्वत में उत्पन्न चन्दन रूक्ष और सेवाल के सदृश होता है। शाकल देशोत्पन्न कुछ पीला सा होता है। इन सब की मूत्रवत् गंध है। लघु [हल्का] चिकना, बहुत दिन में सूखने वाला, घृत के समान चिकना देह में लिपटने वाला, सुखकारी गन्ध से युक्त, त्वचा में शीतलताकारी फटा सा न दीखने वाला, वर्ण विकार से रहित, गरमी का सहने वाला, सन्तापहारक सुखकारी स्पर्श करने वाला चन्दन उत्तम होता है ॥४४-६०॥

अगुरु जोङ्गकं कालं कालचित्रं मण्डल चित्रं वा ॥६१॥ श्यामं दोङ्गकम् ॥ ६२ ॥ पारसमुद्रकं चित्ररूपमुशीरगन्धि नवमालिकागन्धि चेति ॥ ६३ ॥ गुरु स्निग्धं पेशलगन्धि निर्हार्यग्निसहमसंप्लुतधूमं समगन्धं विमर्दसहमित्यगुरुगुणाः ॥ ६४ ॥

जोङ्गक देशोत्पन्न "अगर" काला चितकबरा और काली सी बून्दों से युक्त होता है। दोङ्गक देशोत्पन्न अगर काला होता है (ये दोनों प्रदेश आसाम में हैं)। समुद्र के पार सिंहलद्वीप आदि देशों में उत्पन्न अगर काली सफेद धारी वाला होता है। इसमें उशीर (खस) नई चमेली की सी गन्ध होती है। भारी, चिकना, मनोहर गन्ध वाला, शान्ति दायक, उष्णताका नाशक, आनन्दित करने वाले धूम से सम्पन्न, एक सी गन्ध वाला, पोंछ देने पर गन्ध देने वाला-अगर उत्तम माना गया है ॥६१-६४॥

तैलपर्णिकमशोकग्रामिकं मांसवर्णं पद्मगन्धि ॥ ६५ ॥ जोङ्गकं रक्तपीतकमुत्पलगन्धि गोमूत्रगन्धि वा ॥ ६६ ॥ ग्रामेरुकं स्निग्धं गोमूत्रगन्धि ॥ ६७ ॥ सौवर्णकुड्यकं रक्तपीतं मातुलुङ्गगन्धि ॥ ६८ ॥ पूर्णकद्वीपकं पद्मगन्धि नवनीतगन्धि चेति ॥ ६९ ॥

तैलपर्णिक नामक एक विशेष सुगन्धि द्रव्य, अशोक ग्राम में उत्पन्न होता है। उसका मांस के सदृश वर्ण और उसमें कमल के समान गन्ध होती है। जोङ्गक देशोत्पन्न तैलपर्णिक, लाल, पीला, कमल और गो-मूत्र तुल्य गंध वाला माना गया है। ग्रामेरुक ग्रामोत्पन्न तैलपर्णिक, चिकना तथा गो-मूत्र गन्धी होता है। आसाम के सुवर्ण कुड्यक स्थान में उत्पन्न तैलपर्णिक, कुछ लाल पीला और बिजोरे के तुल्य गन्ध वाला है। पूर्णकद्वीप में उत्पन्न तैलपर्णिक, कमल तुल्य गन्धी तथा नवनीत (माखन) तुल्य गंध वाला होता है ॥६५-६९॥

भद्रश्रीयं पारलौहित्यकं जातीवर्णम् ॥ ७० ॥ आन्तरवत्य मुशीरवर्णम् ॥ ७१ ॥ उभयं कुष्ठगन्धि चेति ॥ ७२ ॥

आसाम प्रान्त के लौहित्य नामक नद के पार उत्पन्न होने वाला, भद्रश्रीय (कपूर) मालती के पुष्प के समान श्वेत होता है। आसाम की अन्तरवती नदी के तट पर उत्पन्न आन्तरवत्य भद्रश्रीय (कपूर) उशीर (खस) के वर्ण का माना गया है। इन दोनों में कूट औषधि के सदृश गन्ध होता है ॥ ७०-७२ ॥

कालेयकः स्वर्णभूमिजः स्निग्धपीतकः ॥ ७३ ॥औत्तरपर्वतको रक्तपीतक इति साराः ॥ ७४ ॥ पिण्डक्काथधूमसहमविरागि योगानुविधायि च ॥ ७५ ॥ चन्दनागरुवच्च तेषां गुणाः ॥ ७६ ॥

कालेयक (दारू हल्दी या पीला चन्दन) स्वर्ण भूमि प्रदेश में उत्पन्न होता है। यह चिकना और पीला होता है। उत्तर पर्वत (हिमालय) पर होने वाला कालेयक लाल और पीला सा होता है। चन्दन आदि वस्तु सारके अन्तर्गतमानी गई हैं। पीसने, पकाने और आग में जलाने पर भी गन्ध में कोई बदलाव नहीं होना तथा दूसरी वस्तु के साथ मिलने पर भी गन्ध देते रहना-इन तैलपर्णिक, भद्रश्रीय और कालेयक द्रव्य के गुण माने गए हैं। चन्दन और अगर के गुण भी इनमें मानने चाहिए ॥ ७३-७६ ॥

कान्तनावकं प्रैयकं चोत्तरपर्वतकं चर्म ॥ ७७ ॥ कान्तनावकं मयूरग्रीवाभम् ॥ ७८ ॥ प्रैयकं नीलपीतं श्वेतं लेखि बिन्दुचित्रम् ॥ ७९ ॥ तदुभयमष्टाङ्गुलायामम् ॥ ८० ॥ बिसी महाबिसी च द्वादशग्रामीये ॥ ८१ ॥ अव्यक्तरूपा दुहिलितिका चित्रा वा बिसी ॥ ८२ ॥ परुषा श्वेतप्राया महाबिसी ॥ ८३ ॥ द्वादशाङ्गुलायाममुभयम् ॥ ८४ ॥ श्यामिका कालिका कदली चन्द्रोत्तरा शाकुला चारोहजाः ॥८५॥ कपिला बिन्दुचित्रा वा श्यामिका ॥ ८६ ॥ कालिका कपिला कपोतवर्णा वा ॥८७॥ तदुभयमष्टाङ्गुलायामम् ॥८८॥ परुषा कदली हस्तायता ॥ ८९ ॥ सैव चन्द्रचित्रा चन्द्रोत्तरा ॥ ९० ॥ कदलीत्रिभागा शाकुला कोठमण्डलचित्रा कृतकर्णिकाजिनचित्रा चेति ॥ ९१ ॥ सामूरं चीनसी सामूली च बाह्लवेयाः ॥ ९२ ॥ षट्त्रिंशदङ्गुलमञ्जनवर्णं सामूरम् ॥९३॥ चीनसी रक्तकाली पाण्डुकाली वा ॥९४॥ सामूली गोधूमवर्णेति ॥९५॥ सातिना नलतूला वृत्तपुच्छा चौद्राः ॥९६॥ सातिना कृष्णा ॥९७॥ नलतूला नलतूलवर्णा ॥९८॥ कपिला वृत्तपुच्छा च ॥ ९९ ॥ इति चर्मजातयः ॥ १०० ॥ चर्मणां मृदु स्निग्धं बहुल रोम च श्रेष्ठम् ॥ १०१ ॥

उत्तर पर्वत अर्थात् हिमालय प्रदेश में उत्पन्न चमड़ा, कान्तनावक और प्रैयक कहलाता है। कान्तनावक चमड़ा मयूर की ग्रीवा के तुल्य वर्ण वाला होता है। नीला पीला

सा श्वेत लकीरों से युक्त और विन्दुओं से चित्रित प्रैयक चमड़ा होता है। इन दोनों प्रकार के चमड़ों की चौड़ाई आठ अंगुल तक होती है। द्वादश ग्राम में उत्पन्न चमड़ा विसी और महा विसी कहाता है। जिसका रूप स्पष्ट प्रतीत न हो-वालों वाला चित्र विचित्र मृग आदि का चर्म विसी कहाता है। कठोर और श्वेत रङ्ग वाला चमड़ा महा विसी होता है। यह दोनों चमड़े बारह अंगुल तक चौड़े माने गए हैं। श्यामिका, कालिका, कदली, चन्द्रोत्तरा शाकुला-ये पांच प्रकार का चमड़ा हिमालय के आरोह प्रदेश में उत्पन्न होता है। कपिल रङ्ग का विन्दुओं से चित्र चमड़ा श्यामिका कहाता है। कपिल (कुछ पीला सा) तथा कबूतर के वर्ण का चमड़ा कालिका होता है। इन दोनों की मुटाई का प्रमाण भी आठ अंगुल ही माना गया है। कदली नामक चमड़ा कठोर या खुरदरा होता है जो एक हाथ लम्बा होता है। चांद से टिमकने होने से यही चन्द्रोत्तरा होता है। कदली से तीन भाग बड़ा अर्थात् तीन हाथ का शाकुला चर्म होता है। इस में कुछ मण्डलाकार दाग होते हैं तथा कृतकर्णिक मृग चर्म के तुल्य चित्र विचित्र होता है। हिमालय के वाल्हव प्रदेश में सामूर, चीन सी और सामूली-नामक तीन तरह का चमड़ा होता है। अञ्जन के तुल्य काले वर्ण का छत्तीस अंगुल प्रमाण धारी चर्म, सामूर कहाता है। लाल नीले या पीले काले वर्ण का चमड़ा चीनसी होता है। गेंहू के तुल्य वर्ण वाला चमड़ा सामूली होता है। उद्र देशोत्पन्न चमड़ा-सातिना, नल-तूला और वृत्तपुच्छा माना है। (कोई २ इसे उद्र नामक जलचर की खाल मानते हैं) काले रंग का चमड़ा सातिना कहाता है। नलतूल [नरसल] के वर्ण का चमड़ा नलतूला होता है। कपिल वर्ण का चमड़ा वृत्तपुच्छा कहाता है। यहां तक चमड़े की जाति गिनायी हैं- ये फल्गु कहाती हैं। (चमड़ों में कोमल, चिकना और अधिक रोम वाला चमड़ा उत्तम गिना जाता है ॥७७-१०१॥)

शुद्धं शुद्धरक्तं पक्षरक्तं चाविकम् ॥ १०२ ॥ खचितं वानचित्रं खण्डसङ्घात्यं तन्तुविच्छिन्नं च ॥ १०३ ॥ कम्बलः कौचपकः कुलमितिका सौमितिका तुरगास्तरणं वर्णकं तलिच्छकं वारवाणः परिस्तोमः समन्तभद्रकं चाविकम् ॥१०४॥ पिच्छिलमार्द्रमिव च सूक्ष्मं मृदु च श्रेष्ठम् ॥ १०५ ॥ अष्टप्रोतिसङ्घात्या कृष्णा भिङ्गिसी वर्षवारणमपसारक इति नैपालकम् ॥ १०६ ॥ संपुटिका चतुरश्रिका लम्बरा कटवानकं प्रावरकः सत्तलिकेति मृगरोम ॥ १०७ ॥ वाङ्गकं श्वेतं स्निग्धं दुकूलं पौण्ड्रकं श्यामं मणिस्निग्धं सौवर्णकुड्यकं सूर्यवर्णम् ॥ १०८॥ मणिस्निग्धोदकवानं चतुरश्रवानं व्यामिश्रवानं च ॥ १०६ ॥ एतेषामेकांशुकमर्धद्वित्रिचतुरंशुकमिति ॥ ११० ॥ तेन काशिकं पौण्ड्रकं क्षौमं व्याख्यातम् ॥ १११ ॥

भेड़ की ऊन से बने हुए कपड़े, श्वेत, लाल और श्वेत तथा आधे लाल होते हैं। कसीदे के काम वाले खचित, बुनते हुए ही विचित्र फूलों से युक्त वान चित्र, भिन्न २ बुनावट से बुने हुए, खण्ड संघात्य और जालीदार तन्तुविच्छिन्न ऊनी वस्त्र होते हैं। कम्बल, कौचपक (शिरोवस्त्र) कुलमितिका (हाथी का पीठ वस्त्र) सौमितिका [अम्बारी का काला वस्त्र] तुरगास्तरण [अश्व की झूल] वर्णक [रंगा हुआ कपड़ा] तलिच्छक [बिस्तरे के तले का कम्बल] वारवाण [कोट या चोला] परिस्तोम [हाथी की झूल] समन्त भद्रक [चार खाने का कम्बल] ये सब ऊन के बने हुए उत्तम २ वस्त्र होते हैं। चिकना, गीला सा प्रतीत होने वाला, सूक्ष्म [बारीक] और कोमल व ऊनी वस्त्र श्रेष्ठ माना जाता है। आठ टुकड़े जोड़कर बनाई हुई काली भिङ्गसी कहाती है, जो वर्षा के रोकने वाली होती है-इसे ही अपसारक कहते हैं या एक ही कपड़े से बनी अपसारक कहाती है। ये सब नैपाल में बनायी जाती हैं। संपुटिका [जाँघया] चतुरश्रिका [चारों ओर बेल बूटा वाला] लम्बरा [ओढ़ने का वस्त्र] कटवानक [मोटे डोरे से बना हुआ] प्रावरक [किनारीदार दुपट्टा] सत्तलिका [नीचे बिछाने का कपड़ा] ये सब मृग के रोम के वस्त्र होते हैं। वाङ्गक, नामक दुशाला श्वेत चिकना होता है। यह बङ्ग देश में बनता है। पुण्ड्र देश में बना हुआ दुशाला काला और मणि के तुल्य चिकना होता है। यह पौण्ड्रक कहाता है। आसाम के सुवर्ण कुडय देश में उत्पन्न दुशाला सूर्य वर्ण के समान चमकीला होता है। इसे सौवर्ण्य कुडयक कहते हैं। ये वस्त्र, मणि के समान चिकने तन्तु जल में भिगोकर चारों ओर किनारी निकाल कर या चित्र विचित्र किनारी बनाकर बनाये जाते हैं। ये वस्त्र, एक तन्तु दो तन्तु तीन तन्तु चार तन्तु मिलाकर बनाये जाते हैं। इसी प्रकार काशिक पौण्ड्रक रेशमी वस्त्रों को समझ लेना ॥१०२-१११॥

मागधिका पौण्ड्रिका सौवर्णकुडयका च पत्त्रोर्णाः ॥ ११२ ॥ नागवृक्षो लिकुचो वकुलो वटश्च योनयः ॥ ११३ ॥ पीतिका नगवृक्षिका ॥ ११४ ॥ गोधूमवर्णा लैकुचो ॥ ११५ ॥ श्वेता वाकुली ॥ ११६ ॥ शेषा नवनीतवर्णा ॥ ११७ ॥ तासां सौवर्णकुडयका श्रेष्ठा ॥ ११८ ॥ तया कौशेयं चीनपट्टाश्च चीनभूमिजा व्याख्याताः ॥११९॥ माधुरमापरान्तकं कालिङ्गकं काशिकं वाङ्गकं वात्सकं माहिषकं च कार्पासिकं श्रेष्ठमिति ॥ १२० ॥

मागधिक, पौण्ड्रिक सौवर्ण कुडयक-तीन प्रकार की पत्त्रोर्णा [पत्तों के तन्तु की ऊन बनी हुई] होती है। इनके नागवृक्ष, लिकुच, वकुल और वट वृक्ष उत्पत्ति स्थान हैं। नाग वृक्ष से बने पत्त्रोर्ण पीले रंग की होती है। लिकुच (बड़हर) से बनने वाली गेहुंवेरंग

की बनती है। बकुल से श्वेत और बट वृक्ष से नवनीत [मक्खन] सी चिकनी बनती है। [कोई २ इन वृक्षों में रहने वाले कीटों से बने रेशमी वस्त्र को पत्रोर्णा कहते हैं] इन सब में सौवर्ण कुडय देश में उत्पन्न पत्रोर्णा उत्तम मानी गई है। इसी तरह के कौशेय, चीनपट्ट और चीनी भूमि के वस्त्र [चायना शिल्क] समझ लेनी चाहिए। पाण्ड कोङ्कण, कलिङ्ग काशी, वङ्ग, वत्स और महिषक [मैसूर] देश में उत्पन्न कपास के कपड़े श्रेष्ठ माने गए हैं। यहां तक फल्गु वस्तुओं का वर्णन किया गया है ॥१२-१२०॥

अतः परेषां रत्नानां प्रमाणं मूल्यलक्षणम्।
जातिं रूपं च जानीयान्निधानं नवकर्म च ॥ १२१ ॥

कहे हुए रत्न आदि वस्तुओं के मूल्य लक्षण, प्रमाण जाति, रूप, खान और उनके नये २ संस्कारों को कोशाध्यक्ष अवश्य जानलेवे अर्थात् इनसे अवश्य जानकारी रखे ॥१२१॥

पुराणप्रतिसंस्कारं कर्मगुह्यमुपस्करान्।
देशकालपरीभोगं हिंस्राणां च प्रतिक्रियाम् ॥ १२२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे कोशप्रवेश्यरत्नपरीक्षा एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ आदितो द्वात्रिंशः ॥ ३२ ॥

पुराने रत्नों का संस्कार रत्नों के गुह्य प्रकार [छीलना रंग बदलना आदि] उपस्कर (रत्नों के साफ करने के साधन आदि) देश कालानुसार उनका उपयोग तथा उनमें लगने वाले कीड़े या चूहे आदि का प्रतिकार भी कोशाध्यक्ष को अवश्य जान लेना चाहिए ॥१२२॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार नामक अधिकरण में कोश में रखने योग्य रत्नादि की परीक्षा का ग्यारहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



बारहवां अध्याय

३०वां प्रकरण

खानके कार्योंका संचालन।

अब खान के कार्यों के सञ्चालन का प्रकार बताया जाता है।

आकराध्यक्षः शुल्बधातुशास्त्ररसपाकमणिरागज्ञस्तज्ज्ञसखो वा तज्जातकर्मकरोपकरणसंपन्नः किट्टमूषाङ्गारभस्मलिङ्गं वाकरं भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा भूमिप्रस्तररसधातुमत्यर्थवर्णगौरवमुग्रगन्धरसं परीक्षेत ॥ १ ॥

आकराध्यक्ष (खानों का अफसर) तांबा आदि धातु शास्त्र रस पाक (धातु मारण) और मणिराग [मणियों के वर्ण] आदि का उत्तम ज्ञाता होना चाहिए। और अपने साथी कर्मचारी भी इसी विषय के अच्छे जानकार रखे। यह इस काम के करने वाले कारीगर और इसके साधनों [औजारों] से सम्पन्न रहे। लोहे आदि के कीट, मूष (धातु तपाने की मिट्टी की छोटी कटोरी) और अङ्गार भस्म आदि से पुरानी या नई खान की पहचान निकाले अर्थात् यहां कोई खान निकल सकती या नहीं ऐसा पता लगावे। भूमि, पत्थर, रस, [पारा आदि] और धातुओं की भी चमकीले पन और उग्र गन्ध से पता लगाता रहे ॥१॥

पर्वतानामभिज्ञातोद्देशानां बिलगुहोपत्यकालयनिगूढखातेष्वन्तःप्रस्यन्दिनो जम्बूचूततालफलपक्वहरिद्राभेदहरितालमनःशिलाक्षौद्रहिङ्गुलुकपुण्डरीकशुकमयूरपत्त्रवर्णाः सवर्णोदकौषधीपर्यन्ताश्चिक्कणा विशदा भारिकाश्च रसाः काञ्चनिकाः॥२॥ अप्सु निष्ठ्यतास्तैलवद्विसर्पिणः पङ्कमलग्राहिणश्च ताम्ररूप्ययोः शतादुपरि वेद्धारः ॥ ३ ॥ तत्प्रतिरूपकमुग्रगन्धरसं शिलाजतु विद्यात् ॥ ४ ॥

पर्वतों के परिचित प्रदेशों के बिल, गुहा, पर्वत के समीप की ऊंची नीची भूमि और छिपे हुए गर्तों में बहने वाले, जामुन, आम, ताड़ के फल, पकी हलदी, हरताल, मैनसिल, शहद, शिंगरफ, कमल, शुक और मोर के पंखों के समान वर्ण वाले तथा अन्य औषधियों के वर्णधारी, चिकने, स्वच्छ और भारी जलों को देखकर यहां सुवर्ण की खान है-ऐसा समझ लेना चाहिए। जब इस पानी को अन्य जल में मिलाया जावे और उसमें यह जल तेल की तरह फैल जावे, तथा निर्मली के फल के समान यह मैले जल को साफ करके नीचे बैठ जावे, तथा सौ पल चांदी और तांबे को एक पल जल सुनहरा [पीला] बना देवे तो समझ लेना चाहिए, कि इस स्थान पर सुवर्ण की खान है। यदि ऐसा ही पानी हो और उसमें उग्र गंध और उग्र रस हो तो वहां शिलाजीत की खान समझनी चाहिए॥

पीतकास्ताम्रकास्ताम्रपीतका वा भूमिप्रस्तरधातवः प्रभिन्ना नीलराजीवन्तो मुद्गमाषकृसरवर्णा वा दधिबिन्दुपिण्डचित्रा हरिद्रा हरीतकीपद्मपत्त्रशैवलयकृत्प्लीहानवद्यवर्णा भिन्नाश्चुञ्चुवालुकालेखाबिन्दुस्वस्तिकवन्तः सगुलिका अर्चिष्मन्तस्ताप्यमाना न भिद्यन्ते बहुफेनधूमाश्च सुवर्णधातवः प्रतीवापार्थास्ताम्ररूप्यवेधनाः ॥ ५ ॥

पीले, तांबे के रंग के लाल तथा लाल पीले, भूमि (मिट्टी) पत्थर मिले धातु हों इनके गलाने पर इनमें नीली पंक्ति दिखाई देने लगे या मूंग, उड़द के पकाने के जल के

व्रण के तुल्य वर्ण हो जावे। दही के विन्दु समूह से चित्रित, हल्दी, हरड़, कमल का पत्ता, सिवाल, यकृत् (ज़िगर) और प्लीहा (तिल्ली) के सदृश नीला सा वर्ण हो जावे। तोड़ने पर छोटी २ रेत की रेखा और विन्दुओं से युक्त, स्वास्तिक का आकार प्रतीत होने लगे। तपा देने पर गोली सी चमकने लगे-परन्तु वे टूटे नहीं, उनमें बहुत से झाग और धूम खड़ी हो जावे-तो समझना चाहिए कि यहां सुवर्ण की खान है। यदि इनको पिंघलाकर तांबे और चांदी पर डाला जावे-तो उनके भी आकार पीले हो जावेंगे ॥ ५ ॥

शङ्खकर्पूरस्फटिकनवनीतकपोतपारावतविमलकमयूरग्रीवावर्णाः सस्यकगोमेदकगुडमत्स्यण्डिकावर्णाः कोविदारपद्मपाटलीकलायक्षौमातसीपुष्पवर्णा ससीसाः साञ्जनाः विस्रा भिन्नाः श्वेताभाः कृष्णाः कृष्णाभाः श्वेताः सर्वे वा लेखाविन्दुचित्रा मृदवो ध्मायमाना न स्फुटन्ति बहुफेनधूमाश्च रूप्यधातवः ॥ ६ ॥ सर्वधातूनां गौरववृद्धौ सत्ववृद्धिः ॥ ७ ॥

जो धातु तपाने पर शङ्ख, कपूर, स्फटिक (बिल्लौर) नवनीत (मक्खन) कपोत (भूरा कबूतर) पारावत (कबूतर) विमलक (पक्षी विशेष) और मयूर की ग्रीवा के वर्ण वाले सस्यक (अन्न के तुल्य हरित) गोरोचन, गुड़, मत्स्यण्डिक (खांड का राब) के वर्ण वाले, कोविदार (कचनार) कमल, पाटली (नया धान्य) कलाय (मटर) क्षौम [अलसी विशेष] अतसी [अलसी] पुष्प के वर्णधारी, सीसा, अञ्जन (सुर्मा) सहित, दुर्गन्धपूर्ण, तोड़ने पर श्वेत, काली, श्वेत मिश्रिकाली सी रेखा और विन्दुओं से युक्त, कोमल होकर भी टूटे नहीं, बहुत से झाग और धुआं देवे-वहां चांदी धातु की मिलावट या खान समझनी चाहिए। इन सारे धातुओं में जितना गौरव (भारीपन) होगा-उतनी ही उन में उत्तमता समझनी चाहिए ॥६-७॥

तेषामशुद्धा मूढगर्भा वा तीक्ष्णमूत्रक्षारभाविता राजवृक्षवटपीलुगोपित्तरोचना महिषखरकरभमूत्रलण्डपिण्डबद्धास्तत्प्रतीवापास्तदवलेपा वाविशुद्धाः स्रवन्ति ॥८॥ यवमाषतिलपलाशपीलुक्षारैर्गोक्षीराजक्षीरैर्वा कदली वज्रकन्दप्रतीवापो मार्दवकरः ॥ ९ ॥

इन में जो अशुद्ध और मलपूर्ण धातु खण्ड हों-उनको तीक्ष्ण मूत्र क्षार में बुझाकर अमलतास, वड़, पीलु गोरोचन तथा भैंसा, गधा, ऊंट के बच्चे के मूत्र और मलपिण्ड में रखकर तपाले या इनके लेप करके तपावे-तो ये शुद्ध होकर पिंघल निकलते हैं। जौ, उड़द तिल, ढाक और पीलू के क्षार, गाय, बकरी के दूध, कदली तथा वज्रकन्द (सूरण कन्द) की भावना देना या गोले में तपाना इन धातु खण्डों को मृदु बना देता है ॥ ८-९ ॥

मधुमधुकमजापयः सतैलं घृतगुडकिण्वयुतं सकन्दलीकं।

यदपि शतसहस्रधा विभिन्नं भवति मृदु त्रिभिरेव तन्निषेकैः ॥ १० ॥

शहद, मुलहटी, बकरी का दूध, तेल, घृत, गुड़, सुरा बीज या सूरणकन्द आदि के योग से जो धातु खण्ड, सैंकड़ों, सहस्रों चोटों से भी नहीं टूटता है, वह इनकी तीन ही भावना से कोमल हो जाता है॥ १० ॥

गोदन्तशृङ्गप्रतीवापो मृदुस्तम्भनः॥११॥भारिकःस्निग्धो मृदुश्च प्रस्तरधातुर्भूमिभागो वा पिङ्गलो हरितः पाटलो लोहितो वा ताम्रधातुः ॥ १२ ॥ काकमेचकः कपोतरोचनावर्णः श्वेतराजिनद्धो वा विस्रः सीसधातुः ॥१३॥ ऊषरकर्बुरः पक्वलोष्ठवर्णो वा त्रपुधातुः ॥ १४ ॥ कुरुम्बः पाण्डुरोहितः सिन्दुवारपुष्पवर्णो वा तीक्ष्णधातुः ॥ १५ ॥ काकाण्डभुजपत्त्रवर्णो वा वैकृन्तकधातुः ॥ १६ ॥ अच्छः स्निग्धः सप्रभो घोषवाञ्शीतस्तीव्रस्तनुरागश्च मणिधातुः ॥ १७ ॥ धातुसमुत्थितं तज्जातकर्मान्तेषु प्रयोजयेत् ॥ १८ ॥

यदि पिघले हुए इन धातुओं पर गाय के दांत और सींग का चूर्ण बुरका दिया जावे तो ये फिर ज्यों के त्यों जम जाते हैं। भारी, चिकना, कोमल पाषाण धातु तथा हरा कुछ २ लाल या अधिक लाल भूमि भाग हो-तो वहाँ ताम्र धातु की स्थिति समझनी चाहिए। जो भूमि स्थान काक के तुल्य काला कबूतर और गोरोचन सा भूरा, श्वेत पंक्तियों से युक्त और दुर्गन्ध पूर्ण हो वहाँ सीसे की खान का अनुमान करना चाहिए। जो भूमि भाग ऊपर (अनुपजाऊ) भूमि के तुल्य चित्र-विचित्र, अथवा पके हुए मिट्टी के ढेले के आकार का हो-तो वहां भी त्रपु (सीस) धातु की उत्पत्ति का स्थान समझना चाहिए। चिकने पत्थरों वाले, कुछ श्वेत और लाल खिले हुए निर्गुण्डी के पुष्प के वर्ण वाला- जहां भूमि भाग होगा-वहां लोह की उत्पत्ति का स्थान समझना चाहिए। कौवे के अण्डे या भोज पत्र के तुल्य आकार वाले भूमि भाग में वैकृन्तक [इस्पाती] लोहे की उत्पत्ति की खान समझ लेवे। चमकीला चिकना, शुद्ध अग्नि जलाने पर शब्द करने वाला, अत्यन्त शीतल, थोड़े से रङ्ग का धारण करने वाला भूमि भाग मणियों की उत्पत्ति का स्थान होता है। धातुओं से उत्पन्न धन को अन्य सुवर्ण आदि धातुओं की उत्पत्ति में ही व्यय करते रहना चाहिए ॥ ११-१८॥

कृतभाण्डव्यवहारमेकमुखमत्ययं चान्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतृणां स्थापयेत् ॥ १९ ॥ आकरिकमपहरन्तमष्टगुणं दापयेदन्यत्र रत्नेभ्यः ॥ २० ॥ स्तेनमनिसृष्टोपजीविनं बद्धं कर्म कारयेत् ॥ २१ ॥ दण्डोपकारिणश्च ॥ २२ ॥

इन इकट्ठी की हुई सुवर्ण आदि वस्तुओं का किसी एक ही मुख्य स्थान पर विक्रय होना चाहिए। जो राजा से छुप कर इन सुवर्ण आदि धातुओं को निकाले खरीदे और वेचे तो राजा इन्हें दण्ड देवे। रत्न के अतिरिक्त जो खान के अन्य द्रव्य सुवर्ण आदि हैं-यदि उनको कोई वनावे वा वेचे-तो राजा उनसे जुरमाने में आठ गुणा धन वसूल करे। जो चोरी से राजा की विना आज्ञा के खान से द्रव्य इकट्ठा करे-तो राजा उसे वन्धन में डाल कर कठिन काम करवावे और जो अपराधी की सहायता करे-राजा उसको भी उतना ही दण्ड दे॥ १९-२२॥

व्ययक्रियाभारिकमाकरं भागेन प्रक्रयेण वा दद्यात्॥ २३॥ लाघविकमात्मना कारयेत् ॥ २४॥ लोहाध्यक्षस्ताम्रसीसत्रपुवैकृन्तकारकूटवृत्तकंसताललोहकर्मान्तान्कारयेत्॥ २५॥ लोहभाण्डव्यवहारं च ॥२६॥ लक्षणाध्यक्षश्चतुर्भागताम्रं रूप्यरूपं तीक्ष्णत्रपुसीसाञ्जनानामन्यतमं माषबीजयुक्तं कारयेत् पणमर्धपणं पादमष्टभागमिति ॥ २७॥ पादाजीवं ताम्ररूपं माषकमर्धमाषकं काकणीमर्धकाकणीमिति॥ २८॥ रूपदर्शकः पणयात्रां व्यावहारिकीं कोशप्रवेश्यां च स्थापयेत्॥ २९॥ रूपिकमष्टकं शतम्॥ ३०॥ पञ्चकं शतं व्याजीम्॥ ३१॥ पारीक्षिकमष्टभागिकं शतम्॥ ३२॥ पञ्चविंशतिपणमत्ययं चान्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतृपरीक्षितृभ्यः॥ ३३॥

यदि खान के आरम्भ में व्यय अधिक हो गया हो-तो भाग २ [किस्त दर किस्त] उस रुपये को चुका दे या कुछ सुवर्ण वेच कर उस ऋण को चुका दे। यदि थोड़ा सा भार हो-तो राजा या अध्यक्ष अपने पास से देकर उस कार्य को चलता करदे। लोहाध्यक्ष, तांवा, सीसा, त्रपु [आम सीसा] वैकृन्तक [इस्पाती लोहा] आरकूट [दृढ़ लोह] वृत्त [गोल लोह] कांसी, ताल तथा अन्य प्रकार से लोहे के कामों को अपनी देख रेख में करवावे। इसी प्रकार लोहे से वनी हुई तलवार आदि वस्तुओं के वेचने का प्रवन्ध भी स्वयं ही करे। लक्षणाध्यक्ष, [सिक्के वनवाने का अध्यक्ष] चार माशा तांवा तथा एक माशा तीक्ष्ण त्रपु-सीसा या अञ्जन (काला लोह) और शेष ग्यारह मासा चाँदी मिलाकर सौलह मासे का एक पण (रुपया) वनवावे। इस प्रकार अर्ध पण (इस से आधा) आठ आना, पादपण (चौवन्नी) और अष्ट भाग पण (दोअन्नी) वनवावे। रुपये के चतुर्थ भाग के व्यवहार के लिए एक तांवे का सिक्का भी वनवाया जावे, जिसे माषक कहते हैं। इस माषक में ग्यारह मासा तांवा चार मासा चाँदी और एक माशा लोहा आदि होता है। इसी हिसाव से अर्ध माषक काकणी और अर्ध काकणी सिक्के वनते हैं। सिक्कों का अध्यक्ष, इन पणों के चलने या कोश में ढलवा देने की व्यवस्था करे। सौपणपर आठ पण राज्य भाग को रूपिक, सौपणपर पांच पण

राज्य भाग को व्याजी, और सौपणपर आठवें हिस्से राज्य भाग को पारीक्षिक कहते हैं। जिनको सिक्के बनाने लेने देने और परीक्षा करने का अधिकार है। उनसे अतिरिक्त जो इनको बनाता, लेता, देता है, उस पर कम से कम पच्चीस पण दण्ड होना चाहिए॥ २३-३३॥

खन्यध्यक्षः शङ्खवज्रमणिमुक्ता प्रवालक्षारकर्मान्तान्कारयेत् ॥ ३४॥ पणनव्यवहारं च ॥ ३५ ॥

खान का अध्यक्ष, शङ्ख, वज्र (हीरा), मणि, मोती, प्रवाल, (मूङ्गा) तथा यवक्षार आदि से सम्बन्ध रखने वाले कामों का प्रबन्ध करे एवं इनके बेचने का समुचित प्रबन्ध करता रहे ॥ ३५ ॥

लवणाध्यक्षः पाकमुक्तं लवणभागं प्रक्रयं च यथाकालं संगृह्णीयात्॥३६॥ विक्रयाच्च मूल्यं रूपं व्याजीम् ॥३७॥ आगन्तुलवणं षड्भागं दद्यात् ॥३८॥ दत्तभागविभागस्य विक्रयः पञ्चकं शतं व्याजीं रूपं रूपिकं च ॥ ३९ ॥क्रेता शुल्कं राजपण्याच्छेदानुरूपं च वैधरणं दद्यात् ॥४०॥ अन्यत्र क्रेता षट्छतमत्ययं च ॥ ४१ ॥ विलवणमुत्तमं दण्डं दद्यात् ॥ ४२ ॥ अनिसृष्टोपजीवी च ॥४३॥ अन्यत्र वानप्रस्थेभ्यः ॥ ४४ ॥ श्रोत्रियास्तपस्विनो विष्टयश्च भक्तलवणं हरेयुः ॥ ४५ ॥ अतोऽन्यो लवणक्षारवर्गः शुल्कं दद्यात् ॥ ४६ ॥

लवणाध्यक्ष तैय्यार हुए और बेचने योग्य लवण को समयानुसार इकट्ठा करले। विक्रय से प्राप्त मूल्य पर सौ पर पांच रुपये राज्य भाग रूप व्याजी भी लेले। बाहर से आने वाले नमक पर राजा छठा भाग कर के रूप में ग्रहण करे। जो इस प्रकार राजा के टैक्स को भर देता है, वही उस राजा के राज्य में लवण बेचने का अधिकारी हो सकता है वह फिर अपने पाँच प्रतिशत राज्य भाग की व्याजी सौ पर आठवें भाग राज्य भाग की रूप या सौ पर आठ रुपये की रूपिक भी प्रदान करे। खरीदने वाला राजकीय बाजार का नियमित टैक्स भी अदा करे। जो राजकीय बाजार से अन्यत्र चोरी से बेचता है, उसपर प्रतिशत छः रुपये का जुरमाना किया जावे। घटिया या मिलावटी नमक बेचने वाले पर उत्तम दण्ड (अधिक जुरमाना) होना चाहिए। जो बिना राजा की आज्ञा के नमक से जीविका करता है उसपर भी यही दण्ड है। वानप्रस्थ मुनि बिना टैक्स नमक बना सकता है। वेदपाठी, तपस्वी, राज्य की बेगार देने वाले पुरुष, अपने उपयोग में आने मात्र लवण को बिना टैक्स चुङ्गी के भी व्यवहार में ला सकते हैं। इनके अतिरिक्त लवण तथा अन्य क्षार के सम्बन्ध में प्रत्येक बनाने बेचने वाला-राजा को उसका शुल्क (टैक्स) अदा करे। ॥३६-४६॥

एवं मूल्यं विभागं च व्याजीं परिघमत्ययम् ।
शुल्कं वैधरणं दण्डं रूपं रूपिकमेव च ॥ ४७ ॥
खनिभ्यो द्वादशविधं धातुं पण्यं च संहरेत् ।
एवं सर्वेषु पण्येषु स्थापयेन्मुखसंग्रहम् ॥ ४८ ॥

इस प्रकार मूल्य, विभाग, (सौ पर पाँच) व्याजी, (पारीक्षिक दण्ड विशेष) परिघ अत्यय, (दण्ड) शुल्क (टैक्स) वैधरण, (तय-बाजारी टैक्स) रूप (सिक्के) और रूपिक [सौ पर आठ पण] तथा खानों से बारह प्रकार के धातु एवं अन्य वेचने योग्य पदार्थ, को खान का अध्यक्ष संग्रह करे। इन सारी वेचने की चीजों का एक मुख्य बाजार बनाया जावे ॥ ४७-४८ ॥

आकरप्रभवः कोशः कोशाद्दण्डः प्रजायते ।
पृथिवी कोशदण्डाभ्यां प्राप्यते कोशभूषणा ॥ ४९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे आकरकर्मान्तप्रवर्तनं द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥
आदितः त्रयस्त्रिंशः ॥ ३३ ॥

कोश की उन्नति खानों पर निर्भर है कोश के भरे रहने पर सेना तैयार होती है। कोश के आधार पर ही दण्ड व्यवस्था होती है। कोश और दण्ड से ही कोश को भूषित करने वाली भूमि प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में खान की वस्तु उत्पन्न करने का बारहवां अध्याय समाप्त हुआ।

तेरहवां अध्याय

३१वां प्रकरण

अक्षशाला में सुवर्णाध्यक्ष का कार्य

सुवर्णाध्यक्षः सुवर्णरजतकर्मान्तानामसंबन्धावेशनचतुःशालामेकद्वारामक्षशालां कारयेत् ॥ १ ॥ विशिखामध्ये सौवर्णिकं शिल्पवन्तमभिजातं प्रात्ययिकं च स्थापयेत् ॥ २ ॥

खान से निकाले हुए सुवर्ण के साफ करने के स्थान को अक्षशाला कहते हैं इसी अक्षशाला के अध्यक्ष या सुवर्णाध्यक्ष के कामों का अब निरूपण किया जाता है। सुवर्णाध्यक्ष

एक ऐसी अक्षशाला बनवावे जिस में एक द्वार और चारों ओर चार कमरे हों, परन्तु उन चारों कमरों का एक दूसरे में आने जाने का मार्ग न हो। विशिखा [सर्राफे] में सुवर्ण बेचने वाले [सर्राफ] बड़े शिल्पी, कुलीन और अविश्वासघात रखने चाहिए ॥ १-२ ॥

जाम्बूनदं शातकुम्भं हाटकं वैणवं शृङ्गशुक्तिजं, जातरूपं रसविद्धमाकरोद्गतं च सुवर्णम् ॥ ३ ॥ किञ्जल्कवर्णं मृदु स्निग्धमनादि भ्राजिष्णु च श्रेष्ठम् ॥४॥ रक्तपीतकं मध्यमम् ॥ ५ ॥ रक्तमवरम् ॥६॥ श्रेष्ठानां पाण्डु श्वेतं चाप्राप्तकम् ॥ ७ ॥ तद्येनाप्राप्तकं तच्चतुर्गुणेन सीसेन शोधयेत् ॥८॥ सीसान्वयेन भिद्यमानं शुष्कपटलैर्ध्मापयेत् ॥ ९ ॥ रूक्षत्वाद्भिद्यमानं तैलगोमये निषेचयेत् ॥ १० ॥ आकरोद्गतं सीसान्वयेन भिद्यमानं पाकपात्राणि कृत्वा गण्डिकासु कुट्टयेत् ॥११॥ कन्दलीवज्रकन्दकल्के वा निषेचयत् ॥ १२ ॥

मेरु पर्वत की जम्बू नदी से उत्पन्न होने वाले सुवर्ण को जाम्बूनद कहते हैं। शात कुम्भ पर्वत से उत्पन्न सुवर्ण, शात कुम्भ माना गया है। खान से उत्पन्न सुवर्ण हाटक होता है वेणु पर्वत पर उत्पन्न सुवर्ण वैणव कहाता है। भूमि से उत्पन्न सुवर्ण शृङ्ग शुक्तिक होता है। पर्वत से उत्पन्न शुद्ध सुवर्ण जातरूप, रसों के योग से बना रसविद्ध और खानों से साफ करके बनाया हुआ आकरोद्गत कहाता है। कमल के रज के समान वर्ण, कोमलता और चिकनाई से युक्त शब्द रहित तथा चमकीला सुवर्ण उत्तम माना गया है। लाल पीला मध्यम और लाल निकृष्ट कोटि का सुवर्ण है। इन उत्तम सुवर्णों के गलाने साफ करने के समय जो पीला सफेद सा रह जाता है वह अप्रात्तक होता है, जो सुवर्ण अप्राप्तक रह गया, उस में उसके परिमाण से चतुर्गुण सीसा धातु डाल कर उसे शुद्ध कर लेना चाहिए। यदि सीसे के योग से सुवर्ण फटने लगे-तो उसे जङ्गली कण्डों से पिघलाले। यदि रूक्षता के कारण सुवर्ण फटता हो-तो उसमें तेल और गोबर की भावना देवे। खान से उत्पन्न सुवर्ण भी सीसा मिलाने पर फटने लगे-तो उसे तपाकर उसके पत्र बना ले और उसे घन पर खूब कूटे इसके अनन्तर कन्दली लता और वज्रकन्द के कल्क (रस) में इसको बुझावे ॥ ३-१२ ॥

तुत्थोद्गतं गौडिकं काम्बुकं चाक्रवालिकं च रूप्यम् ॥ १३ ॥ श्वेतं स्निग्धं मृदु च श्रेष्ठम् ॥ १४ ॥ विपर्यये स्फोटनं च दुष्टम् ॥ १५ ॥ तत्सीसचतुर्भागेन शोधयेत् ॥ १६ ॥ उद्गतचूलिकमच्छं भ्राजिष्णु दधिवर्णं च शुद्धम् ॥ १७ ॥

तुत्थ नामक पर्वत पर उत्पन्न चांदी तुत्थोद्गत, आसाम में उत्पन्न गौडिक, कम्बु पर्वत पर उत्पन्न काम्बुक तथा चक्रवाल खान से उत्पन्न चाक्रवालिक चांदी होती है, श्वेत

चिकनी और कोमल चाँदी उत्तम मानी गई है। कालापन, रुखाई, और खरदरेपन को लिए हुए फटने वाली चाँदी खराब मानी गई है। इस में चौथाई सीसा डाल कर इसको शुद्धकर लेना चाहिए। जब उस में चूलिका सी उठ आवे और वह स्वच्छ दही के वर्ण के तुल्य चमकने लगे तब उसे शुद्ध समझ लेना चाहिए॥ १३-१७॥

शुद्धस्यैको हारिद्रस्य सुवर्णो वर्णकः॥ १८॥ ततः शुल्वकाकण्युत्तरापसारिता आचतुःसीमान्तादिति षोडशवर्णकाः॥ १९॥ सुवर्णं पूर्वं निकष्य पश्चाद्वर्णिकां निकषयेत्॥ २०॥ समरागलेखमनिम्नोन्नते देशे निकषितम्॥२१॥ परिमृदितं परिलीढं नखान्तराद्वा गैरिकेणावचूर्णितमुपधिं विद्यात्॥ २२॥ जातिहिङ्गुलकेन पुष्पकासीसेन वा गोमूत्रभावितेन दिग्धेनाग्रहस्तेन संस्पृष्टं सुवर्णं श्वेतीभवति॥ २३॥ सकेसरस्निग्धो मृदुर्भ्राजिष्णुश्च निकषरागः श्रेष्ठः॥ २४॥

हरिद्रा के तुल्य शुद्ध वर्णधारी सुवर्ण का सोलह मासे का एक वर्णक होता है। उस में ताँबे की एक काकणी [माषा के चतुर्थांश] के मिला देने पर षोडश वर्णक होते हैं। एक, दो, तीन, चार काकणी बढ़ाते जाने पर ये सोलह तक पहुंचते हैं ये सब मिश्रवर्णक कहाते हैं। वर्णक की परीक्षा करने को प्रथम सुवर्ण दो कसोटी पर कसे और पीछे वर्णिक को घिसे। यदि ऊंचे नीचे कसोटी के किसी हिस्से पर नहीं कसी गई-है-तो शुद्ध वर्णिक की सीधी एक रङ्गत की रेखा आवेगी। खोटे को अधिक रगड़ना अच्छे की कम रेखा लाना तथा नखमें किसी गैरिक आदि पर्वतके धातु को रखकर रेखा खेंचना-छल पूर्ण परीक्षा कहाती है। विशेष प्रकार के शिंगरफ पीले हरताल के साथ गौ मूत्र में भीगे हुए हाथ से छुआ हुआ सुवर्ण श्वेत सा हो जाता है। कमल के केसर के तुल्य पीली चिकनी कोमल और चमकीली कसोटी की रेखा वाला सुवर्ण श्रेष्ठ कहाता है॥ १८-२४॥

कालिङ्गकस्तापी पाषाणो वा मुद्गवर्णो निकषः श्रेष्ठः॥२५॥ समरागी विक्रयक्रयहितः॥ २६॥ हस्तिच्छविकः सहरितः प्रतिरागी विक्रयहितः॥२७॥ स्थिरः परुषो विषमवर्णश्चाप्रतिरागी क्रयहितः॥ २८॥ भेदश्चिक्कणः समवर्णः श्लक्ष्णो मृदुर्भ्राजिष्णुश्च श्रेष्ठः॥ २९॥ तापे बहिरन्तश्च समः किञ्जल्कवर्णः कुरण्डकपुष्पवर्णो वा श्रेष्ठः॥ ३०॥ श्यावो नीलश्चाप्राप्तकः॥ ३१॥ तुलाप्रतिमानं पौतवाध्यक्षे वक्ष्यामः॥ ३२॥ तेनोपदेशेन रूप्य सुवर्णं दद्यादाददीत च॥ ३३॥

कलिङ्ग देशोत्पन्न या तापी नदी में उत्पन्न मूंग के वर्ण का काला कसोटी का पत्थर श्रेष्ठ होता है। जो कसोटी सर्वदा एक सी रेखा देती रहे-वह सुवर्ण बेचने और खरीदने वाले दोनों को ही उत्तम होती है। हाथी के चमड़े के तुल्य खरदरी हरी २ सी रंगत देने वाली कसोटी बेचने वालों को लाभ देती है। बड़ी दृढ़ या कठोर विषम वर्ण की रंग नहीं देने वाली कसोटी खरीदार को लाभ पहुंचाती है। चिकना, समान वर्णधारी, शुद्ध कोमल और चमकीला सुवर्ण का टुकड़ा-उत्तम सुवर्ण का खण्ड होता है। तपाने पर यह बाहर भीतर से एक सा निकलता है। इसका वर्ण कमल के केसर या कुरण्डक पुष्प के वर्ण का होता है-यह भी श्रेष्ठ सुवर्ण माना जाता है। तपाने पर कुछ काला या नीले से रंग का जो सुवर्ण हो जावे-तो उसे खोटा समझना चाहिए। तोलने की प्रक्रिया या प्रमाण का वर्णन पौतवाध्यक्ष नामक प्रकरण में किया जावेगा। उसी प्रमाण के अनुसार चांदी और सुवर्ण लेना और देना चाहिए ॥२५-३३॥

अक्षशालामनायुक्तो नोपगच्छेत् ॥ ३४ ॥ अभिगच्छन्नुच्छेद्यः ॥ ३५ ॥ आयुक्तो वा सरूप्यसुवर्णस्तेनैव जीयेत ॥ ३६ ॥ विचितवस्त्रहस्तगुह्याः काञ्चनपृषतत्वष्टृतपनीयकारवो ध्मायकचरकपांसुधावकाः प्रविशेयुः निष्कसेयुश्च ॥३७॥ सर्वं चैषामुपकरणमनिष्ठिताश्च प्रयोगास्तत्रैवावतिष्ठेरन् ॥ ३८ ॥ गृहीत सुवर्णं धृतं च प्रयोग करणमध्ये दद्यात् ॥ ३९ ॥ सायं प्रातश्च लक्षितं कर्तृकारयितृमुद्राभ्यां निदध्यात् ॥ ४० ॥

विना आज्ञा प्राप्त किए किसी को अक्षशाला (सुवर्ण बनाने के स्थान) में प्रवेश का अधिकार नहीं देना चाहिए। जो कोई विना इजाजत अक्षशाला में घुस जावे-तो राजा उसका सर्वस्व अपहरण करके देश निकाला देदे। जिसको सुवर्ण शाला में जाने की आज्ञा है और वह भी सुवर्ण या चोरी के साथ पकड़ा जावेगा-तो उसे भी यही दण्ड देना चाहिए। सुवर्ण निकालने वाले, तपा कर गोली बनाने वाले, छोटे बड़े पात्र निर्माता, तपाने वाले शिल्पी, धौंकनी लगाने वाले, अन्य कार्य करने वाले, झाड़ू लगाने वाले, धोने वाले आदि सुवर्णशाला के कार्य कर्ता, अपने वस्त्र, हाथ और गुह्य स्थानों की (तलाशी) देकर भीतर जावे और निकलती वार फिर उनकी तलाशी ली जावे। इन सारे कारीगरों के औजार आदि साधन, या आधे सुवर्ण निकालने के प्रयोग वहीं रखे रहें-वे बाहर घर पर तय्यारी के लिए नहीं जाने देने चाहिए। तय्यार सुवर्ण और आधा घाण में पड़ा हुआ सुवर्ण तोलकर कर्मचारी के पास रजिस्टर में लिखा कर रख दिया जावे। इस तरह सांयकाल रखना और प्रातःकाल लेना-यह सब कुछ कार्य, कर्मचारी (अहल्कार)

सरकारी मुहर और काम करने वाले के अंगूठे आदि के चिन्ह के साथ करें अर्थात् मुद्रा से ही लेना देना होवे ॥३४-४०॥

क्षेपणो गुणः क्षुद्रकमिति कर्माणि ॥ ४१ ॥ क्षेपणः काचार्पणादीनि ॥ ४२ ॥ गुणः सूत्रवानादीनी ॥ ४३ ॥ घनं सुषिरं पृषतादियुक्तं क्षुद्रकमिति ॥४४॥ अर्पयेत्काचकर्मणः पञ्चभागंकाञ्चनं दश भागं कटुमानम् ॥४५॥ ताम्रपादयुक्तं रूप्यं रूप्यपादयुक्तं वा सुवर्णं संस्कृतं तस्मादृक्षेत् ॥ ४६ ॥ पृषतकाचकर्मणस्त्रयो हि भागाः परिभाण्डं द्वौ वास्तुकम् ॥ ४७ ॥ चत्वारो वा वास्तुकं त्रयः परिभाण्डम् ॥ ४८ ॥

सुवर्णशाला में बड़े २ तीन कार्य होते हैं। (१) क्षेपण (२) गुण (३) और क्षुद्रक आभूषणों में मणि आदि का जड़ना क्षेपण कहाता है। सुवर्ण सूत्रों के गूंथने को गुण कहते हैं। भरी या पोली घूंघरू बनाना-क्षुद्रक कार्य कहाता है। मणिका पांचवां भाग सुवर्ण में प्रविष्ट कर देना चाहिए और दशवां भाग कटुमान (सुवर्ण की भराई-कुन्दन, करवाई) होनी चाहिएं। तांबे का कुछ भाग मिली हुई चांदी और चांदी का कुछ भाग मिला हुआ सुवर्ण-ये इसमें शुद्ध सुवर्ण के नाम से लगा देते हैं। सुवर्णाध्यक्ष इन कारीगरों की चालाकी से आभूषणों की देख रेख रखे। छोटी २ मणियों के जड़ने के निमित्त पांच भाग सुवर्ण के किये जावे, जिनमें तीन परिभाण्ड, अर्थात् स्वस्तिक आदि आभूषण के निमित्त और दो भाग आधार (मूलभाग) पीठ के निमित्त होते हैं। वास्तुक (आधार पीठ-मूलभाग) के चार भाग और पद्म-स्वस्तिक आदि के निमित्त तीन भाग भी किये जा सकते हैं ॥४१-४८॥

त्वष्टृकर्मणः शुल्वभाण्डं समसुवर्णेन संयूहयेत् ॥ ४९ ॥ रूप्यभाण्डं घनं घनसुषिरं वा सुवर्णार्धेनावलेपयेत् ॥ ५० ॥ चतुर्भागसुवर्णं वा वालुकाहिंगुलकस्य रसेन चूर्णेन वा वासयेत् ॥ ५१ ॥ तपनीयं ज्येष्ठं सुवर्णं सुरागं समसीसातिक्रान्तं पाकपत्रपक्वं सैन्धविकयोज्ज्वालितं नीलपीतश्वेतहरितशुकपोतवर्णानां प्रकृतिर्भवति ॥५२॥ तीक्ष्णं चास्य मयूरग्रीवाभं श्वेतभङ्गं चिमिचिमायितं पीतचूर्णितं काकणिकः सुवर्णरागः ॥ ५३ ॥

अब त्वष्टृ कर्म अर्थात् चांदी तांबे पर पत्र चढ़ाने का वर्णन किया जाता है। तांबे के मूल आभूषण की बराबर सुवर्ण चढ़ाया जावे। चांदी का आभूषण घन (ठोस) होया कुछ ठोस और पोला हो-तो उसपर आधा सुवर्ण चढ़ाया जाता है। तांबे या चांदी के

आभूषण का चतुर्थांश सुवर्ण लेकर वालुका (गन्ध द्रव्य विशेष) के रस और शिंगरफ के चूर्ण के साथ उसपर सुवर्ण का पानी चढ़ा देवे। तपनीय सुवर्ण सर्व श्रेष्ठ होता है। इसमें बड़ी ही सुन्दर रंगत होती है। इसमें बराबर सीसा डाल कर इसके पत्रों को तपावे। उसको सिन्धुदेश की मिट्टी से उजलावे। इस तरह जब सुवर्ण शुद्ध हो जावे-तब उसे नील, पीत, श्वेत, हरित, कपोत वर्ण की मणियों के जड़ने के योग्य समझना चाहिए। इस सुवर्ण को तीक्ष्ण ताप देने पर यह मोर की ग्रीवा के वर्ण का होता है। काटने पर श्वेत चम चमाता निकलता है। इसके पीले २ टुकड़ों में एक काकणी (दोत्ती) तांबा मिला देने पर सुवर्ण को बहुत चमका देता है ॥४९-५३॥

तारमुपशुद्धं वास्थितुत्थे चतुः समसीसे चतुः शुष्कतुत्थे चतुः कपाले त्रिर्गोमये द्विरेवं सप्तदशतुत्थातिक्रान्तं सैन्धविकयोज्ज्वालितम् ॥ ५४ ॥ एतस्मात्काकण्युत्तरापसारिता, आद्विमाषादिति सुवर्णे देयं पश्चाद्रागयोगः, श्वेततारं भवति ॥५५॥ त्रयोंऽशास्तपनीयस्य द्वात्रिंशद्भागश्वेततारमूर्छितं तत् श्वेतलोहितकं भवति ॥ ५६ ॥ ताम्रं पीतकं करोति ॥ ५७ ॥ तपनीयमुज्ज्वाल्य रागत्रिभागं दद्यात् ॥ ५८ ॥ पीतरागं भवति ॥ ५९ ॥ श्वेततारभागौ द्वावेकस्तपनीयस्य मुद्गवर्णं करोति ॥ ६० ॥ कालायसस्यार्धभागाभ्यक्तं कृष्णं भवति ॥ ६१ ॥ प्रतिलेपिना रसेन द्विगुणाभ्यक्तं तपनीयं शुकपत्त्रवर्णं भवति ॥ ६२ ॥ तस्यारम्भे रागविशेषेषु प्रतिवर्णिकां गृह्णीयात् ॥ ६३ ॥ तीक्ष्णताम्रसंस्कारं च बुद्ध्येत ॥ ६४ ॥ तस्माद्वज्रमणिमुक्ताप्रवालरूपाणामपनेयिमानं च रूप्यसुवर्णभाण्डबन्धप्रमाणानि चेति ॥ ६५ ॥

हड्डी से मिली हुई मिट्टी की मूपा में चारबार, सीसे के सम भाग में मिली हुई मिट्टी की बनी मूपा में चार वार, शुष्क शर्करा की मिट्टी की मूपा में चार बार, शुद्ध मिट्टी की मूपा में तीन बार, गोबर मिली हुई मिट्टी की मूपा में दो बार, इस तरह कुल सत्रह बार मूपाओं में बदल लेने से और फिर सिन्धु देश की रज में उजाल लेने पर चांदी शुद्ध हो जाती है। इसमें से काकणी (मापा का चतुर्थांश) चांदी निकाल कर सुवर्ण में मिलाई जावे, और बढ़ाते २ दो माशा चांदी तक बढ़ा दे, और फिर रंग चमकावे यह श्वेत तार बन जावेगा। तीन अंश पूर्वोक्त तपनीय सुवर्ण के और बत्तीस भाग इस श्वेत तार चांदी के मिला दिये जावे-तो श्वेत लोहितक नामक सुवर्ण बनता है। तपनीय सुवर्ण को उजला कर उसमें तीन भाग तांबा मिला दे-तो उसका पीला और लाल रंग हो जाता है। श्वेत तार नामक चांदी के दो भाग और उसमें एक भाग सुवर्ण का मिला दिया जावे-तो वह सुवर्ण

मूंग के वर्ण का चमकने लगता है। कालायस लोहे का छठा भाग मिला देने पर सुवर्ण में काली छठा निकलने लगती है। पिघले हुए लोहे या चांदी के रस से मिला हुआ सुवर्ण शुक (तोते) के पंखों के रंग का हो जाता है। नील, पीत विशेष २ रंगतों में न्यूनता अधिकता के लिए पूर्वोक्त वर्णक की सी प्रक्रिया समझ लेनी चाहिए। सुवर्ण के रंग बदलने में काम आने वाले तीक्ष्ण ताम्र और लोह ये शुद्ध करने की प्रक्रिया जान लेनी चाहिये। वज्र (हीरा) मणि, मुक्ता, प्रवाल, के रूपों का बदलने तथा चांदी सुवर्ण के आभूषण या पात्रों में मिलावट अधिक करने के सारे प्रकार सुवर्णाध्यक्ष को ज्ञात होने चाहिए ॥५८॥६५॥

समरागं समद्वन्द्वमशक्तं पृषतं स्थिरम् ।
सुविमृष्टमसंवीतं विभक्तं धारणे सुखम् ॥ ६६ ॥
अभिनीतं प्रभायुक्तं संस्थानमधुरं समम् ।
मनोनेत्राभिरामं च तपनीयगुणाः स्मृताः ॥ ६७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे अक्षशालाया सुवर्णाध्यक्षस्त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ आदितश्चतुस्त्रिंशः ॥ ३४ ॥

एक जोड़ी में दोनों आभूषणों का समान रंग, और समान आकार होना चाहिए। कहीं पर बीच में गांठ न हो। स्थिर बना हुआ हो। उसके सारे भाग अच्छी तरह चमका दिए हों-ठीक ढ़ङ्ग पर सुन्दर बना हुआ हो, जो धारण करते ही सुख उत्पन्न करे। उस में सब ओर से चमक आती हो। उसके स्थान में समान सुन्दरता हो। जिसको देखते ही मन और नेत्र तृप्त हो-ये तपनीयसुवर्ण के गुण माने गए हैं ॥ ६५-६७ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में अक्षशाला में सुवर्णाध्यक्ष के कार्यों के वर्णन का तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



चौदहवां अध्याय

३२ वां प्रकरण

विशिखा में सौवर्णिकका व्यापार।

विशिखा (सर्राफे के बाजार) में आभूषणों के बेचने वाले सौवर्णिक (सर्राफ) के कार्यों का अत्र वर्णन किया जाता है।

सौवर्णिकः पौरजानपदानां रूप्यसुवर्णमावेशनिभिः कारयेत् ॥ १ ॥ निर्दिष्टकालकार्यं च कर्म कुर्युः अनिर्दिष्टकालं कार्यापदेशम् ॥ २ ॥ कार्यस्यान्यथा-

करणे वेतननाशः तद्द्विगुणश्च दण्डः ॥ ३ ॥ कालातिपातेन पादहीनं वेतनं तद्द्विगुणश्च दण्डः ॥ ४ ॥ यथावर्णप्रमाणं निक्षेपं गृह्णीयुस्तथाविधमेवार्पयेयुः ॥ ५ ॥ कालान्तरादपि च तथाविधमेव प्रतिगृह्णीयुरन्यत्र क्षीणपरिशीर्णाभ्याम् ॥ ६ ॥

सुवर्णाध्यक्ष नगर और राष्ट्र के सोने चाँदी के आभूषण अपनी देख रेख में अपने नीचे काम करने वाले सुवर्णकारों से बनवावे। ये सब ठीक समय पर आभूषण बनाकर तय्यार करें। कार्य कठिनता देखकर किसी किसी कार्य का समय [वायदा] नहीं भी किया जा सकता है। यदि कोई कारीगर आभूषण बिगाड़ देवे-तो उसका वेतन रोक देना चाहिए। यदि अधिक ख़राबी करदी हो-तो उस कारीगर पर आभूषण की कीमत का दुगुणा दण्ड भी किया जा सकता है। यदि किसी कारीगर ने समय [वायदे] पर आभूषण नहीं दिया-तो उस कारीगर का वेतन एक भाग काट कर तीन भाग उसको देना चाहिए। अधिक देर करने पर दुगुने वेतन का दण्ड दिया जा सकता है। कारीगर जैसे वर्ण और जितनी तोल का सुवर्ण ग्रहण करें-उतना ही वैसे के वैसा आभूषण बनाकर देदें। यदि सुवर्ण के देने पर किसी कारण से बहुत दिन भी व्यतीत हो गए-तो भी सुवर्ण देने वाला वैसे ही सुवर्ण के ग्रहण का अधिकार रखता है। यदि सुवर्ण नष्ट कर दिया या उस में से कम हो गया-तो इस दशा में स्वर्णकार [सुनार] दण्ड का भागी होता है ॥ १-६ ॥

आवेशनिभिः सुवर्णपुद्गललक्षणप्रयोगेषु तत्तज्जानीयात् ॥ ७ ॥ तप्तकलधौतकयोः काकणिकः सुवर्णे क्षयो देयः ॥ ८ ॥ तीक्ष्णकाकणीरूप्यद्विगुणो रागप्रक्षेपस्तस्य षड्भागः क्षयः ॥ ९ ॥ वर्णहीने माषावरे पूर्वः साहसदण्डः ॥ १० ॥ प्रमाणहीने मध्यमः तुलाप्रतिमानोपधावुत्तमः कृतभाण्डोपधौ च ॥ ११ ॥ सौवर्णिकेनादृष्टमन्यत्र वा प्रयोगं कारयतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ कर्तुर्द्विगुणः सापसारश्चेत् ॥ १३ ॥ अनपसारः कण्टकशोधनाय नीयेत ॥ १४ ॥ कर्तुश्च द्विशतो दण्डः पणच्छेदनं वा ॥ १५ ॥

राज्य में नौकरी करने वाले स्वर्णकार जिस प्रकार सुवर्ण [सुन्दर भाग बनाना] पुद्गल [आभूषण का मूलपत्र] तथा लक्षण [आभूषण का आकार] की रचना करें-सुवर्णाध्यक्ष उनकी रचना के प्रयोगों को अच्छी तरह जानता रहे। सुवर्णाध्यक्ष यदि जानता रहेगा-तो ये छल नहीं कर सकेगा। यदि सुवर्ण तप्त और कलधौत [अर्थात कुछ अशुद्ध] रूप में दिया जावे-तो उसमें दो रत्ती छीजन भी स्वर्णकार को मिलनी वाजिब है। एक तीक्ष्ण [लोहे] की काकणी [दो रत्ती] और दो काकणी चाँदी सोलह मासे सुवर्ण में मिलाने से सुवर्ण में एक रंगत सी आ जाती है। इसमें एक रत्ती छीजन की कारीगर को मिलनी चाहिए।

यदि एक मापा सुवर्ण कारीगर रद्दी कर दे-तो उसको साधारण दण्ड देना चाहिए। यदि कारीगर तोल में एक मासा सोना खा जावे-तो उसे मध्यम दण्ड देना चाहिए। यदि तोलने के कांटे में छल निकले-तो उत्तम दण्ड देना चाहिए-और बने हुए आभूषण आदि वस्तुओं के चलती कर देने पर उत्तम दण्ड दिया जा सकता है। सुवर्णाध्यक्ष की दृष्टि से बचाकर या अन्य स्थानों में बनाये हुए आभूषण आदि भाण्ड बाट हों-तो बनवाने वाले पर बारह पण (सुवर्ण मुद्रा) दण्ड होना चाहिए और बनाने वाले पर इस से दुगुना दण्ड करके उसे देश स निकाल देना चाहिए। यदि उसे देश निकाला नहीं दिया जावे-तो उसे न्यायाधीश के पास ले जाया जावे अर्थात् उस पर खुला मुकदमा चलाया जावे। बनाने वाले पर दो सौ पण [सुवर्ण मुद्रा] दण्ड होनी चाहिए। यदि अधिक दोषी प्रमाणित हो तो उसकी अंगुली कटवा देवे ॥७-१५॥

तुलाप्रतिमानभाण्डं पौतवहस्तात्क्रीणीयुः ॥ १६ ॥ अन्यथा द्वादशपणो दण्डः ॥ १७ ॥ घनः घनसुपिरं संयूह्यमवलेप्यं संघात्यं वासितक च कारुकर्म ॥ १८ ॥ तुलाविषममपसारणं विस्रावणं पेटकः पिङ्कश्चेति हरणोपायाः ॥ १९ ॥ संनामिन्युत्कीर्णिका भिन्नमस्तकोपकण्ठी कुशिक्या सकटुकक्ष्या पारिवेल्ययस्कान्ता च दुष्टतुलाः ॥ २० ॥ रूप्यस्य द्वौ भागावेकं शुल्वस्य त्रिपुटकम् ॥२१॥ तेना-करोद्गतमपसार्यते तत्त्रिपुटकापसारितम् ॥२२॥ शुल्वेन शुल्वापसारितम्॥२३॥ वेल्लकेन वेल्लकापसारितम् ॥ २४ ॥शुल्वार्धसारेण हेम्ना हेमापसारितम् ॥२५॥ मूकमूषा पूतिकिट्टः करटकमुखं नाली संदंशो जोङ्गनी सुवर्चिकालवणम् ॥ २६ ॥ तदेव सुवर्णमित्यपसरणमार्गाः ॥ २७ ॥

कांटे और उसके बाट आदि पौतवाध्यक्ष से ग्रहण किये जावे। यदि वे स्वयं ही काँटा या बाट बनालें-तो उनपर बारह पण दण्ड होना चाहिए। घन (ठोस) अंगूठी आदि कुछ ठोस और पोले कड़े आदि संयूह्य (मोटे पत्र चढ़े हुए) आभूषण, अवलेप्य (पतले पत्र चढ़ाये हुए तगड़ी आदि) तथा वासितक (पानी दिये हुए) आभूषण बनाना-कारीगरों का काम है। तुलाविषम, अपसारण, विस्रावण, पेटक और पिङ्क-ये पाँच सुवर्ण के उड़ा देने (अपहरण कर लेने) के ढङ्ग हैं। संनामिनी, (अंगुली के इशारे से झुक जाने वाली) उत्कीर्णिका (लोह भरने के छेद युक्त) भिन्न मस्तका [आगे के हिस्से में छेद से युक्त] उप-कण्ठी [गाँठो वाली] कुशिक्या [पलड़े खराब वाली] सकटुकक्ष्या [खराब डोरी से बनी हुई] पारिवेल [लगातार वायु से काँपने वाली] अयस्कान्ता [चुम्बक लगाकर बनी हुई] तराजू खराब होती हैं। इस तरह आठ प्रकार की वस्तु विषमता मानी गई हैं। इसके द्वारा सुवर्ण अपहरण किया जाता है। दो भाग चाँदी और एक भाग तांबा मिला देने से जो चाँदी

तय्यार की जाती है यह त्रिपुटक कहाती है। इसको मिलाकर जो सुवर्ण उड़ाया जाता है-वह त्रिपुटकापसारित कहाता है। जो केवल तांबा मिलाकर सुवर्ण का अपहरण किया जावे-वह शुल्वापसारित कहाता है। लोहा और चांदी मिलाकर जो मेलतय्यार किया जावे-वह वेल्लक कहाता है। इसे सुवर्ण में मिलाकर जो सुवर्ण का अपहरण किया जाता है-यह वेल्लकापसारित कहाता है। तांबे में सोना मिलाकर फिर इस सुवर्ण को शुद्ध सुवर्ण में मिलाकर जो सुवर्ण का अपहरण है-उसे हेमापसारित कहते हैं। मूक मूषा [छुपी हुई भूस] लोहे का मैल, करटकमुख [कन्त्री] नाली [नाल] संदेश [संडासी] जोङ्गनी [लोहे की छड़ी] सुवर्चिका लवण [सुहागा] आदि सुवर्ण अपहरण के साधन हैं। इनके द्वारा ही भूस में से सुवर्णकार सुवर्ण उड़ाता है। और तुम्हारा ऐसा ही खान से निकला हुआ सुवर्ण है-यह कह देता है ॥ १६-२७ ॥

पूर्वप्रणिहिता वा पिण्डवालुका मूषाभेदादग्निष्ठा उद्ध्रियन्ते ॥ २८ ॥ पश्चाद्बन्धने आचितकपत्त्रपरीक्षायां वा रूप्यरूपेण परिवर्तनं विस्रावणम् ॥ २९ ॥ पिण्डवालुकानां लोहपिण्डवालुकाभिर्वा ॥ ३० ॥ गाढश्चाभ्युद्धार्यश्च पेटकः संयूह्यावलेप्यसंघात्येषु क्रियते ॥ ३१ ॥ सीसरूपं सुवर्णपत्त्रेणावलिप्तमभ्यन्तरमष्टकेन बद्धं गाढपेटकः ॥ ३२ ॥ स एव पटलसंपुटेष्वभ्युद्धार्यः ॥ ३३ ॥ पत्त्रमाश्लिष्टं यमकपत्त्रं वावलेप्येषु क्रियते ॥ ३४ ॥ शुल्वं तारं वा गर्भः पत्त्राणाम् ॥ ३५ ॥ संघात्येषु क्रियते शुल्वरूपसुवर्णपत्त्रसंहतं प्रमृष्टं सुपार्श्वम् ॥ ३६ ॥ तदेव यमकपत्त्रसंहतं प्रमृष्टं ताम्रताररूपं चोत्तरवर्णकः ॥३७॥ तदुभयं तापनिकषाभ्यां निःशब्दोल्लेखनाभ्यां वा विद्यात् ॥ ३८ ॥ अभ्युद्धार्यं बदराम्ले लवणोदके वा साधयन्तीति पेटकः ॥ ३९ ॥

सुवर्णकार पूर्व से ही भिन्न २ धातुओं की वालुका अंगीठे में रख देता है और भूसों के उठाने बदलने टूट जाने के बहाने से उन्हें बदल देता है। यह भी सुवर्ण अपहरण का प्रकार है। पीछे कड़ियां जोड़ने जड़े हुए पत्रों की परीक्षा हो लेने पर चाँदी मिले हुए पत्रे बदल देने को विस्रावण कहते हैं। सोने की खान की वालुका को लोहे की खान की वालुका से बदल देना भी विस्रावण कहाता है संयूह्य [गाढ़े पत्र चढ़ाने] अवलेप्य [पतले पत्र या पानी चढ़ाने] तथा संघात्य [कड़ियाँ जोड़ने] पेटक नामक सुवर्णापहरण का सुवर्णकार प्रयोग करते हैं। पेटक गाढ़ और अभ्युद्धार्य भेद से दो प्रकार का होता है। सीसे के पत्रों को सुवर्ण के पत्रों से लाख द्वारा जोड़ कर जो सुवर्ण उड़ाया जाता है-इसे गाढ़ पेटक कहते हैं। वही बन्धन यदि लाख आदि से जोड़ कर दृढ़ नहीं किया जावे-तो वह अभ्युद्धार्य

पेटक कहाता है। अवलेप्य कार्य में दो पत्र जोड़कर एक पत्र सा कर दिया जाता है या दो पत्र में चाँदी या तांवे का पत्र लगा दिया जाता है-यह भी पेटक कहाता है। संघात्य [कड़ी आदि के जोड़ने में] कर्मों में तांवे के पत्र सुवर्ण पत्र से ढक कर साफ करके इधर उधर जोड़ दिए जाते हैं। उस ही तांवे की कड़ी पर दोनों ओर से सुवर्ण चढ़ाकर स्वच्छ कर दिया जाता है। इस में भीतर तांवा या चांदी होती है और ऊपर उसका उत्तम रङ्ग बना दिया जाता है। इन दोनों पेटकों की ताप और कसोटी से परीक्षा हो सकती है या हलकी सी चोट मारने तथा तीक्ष्ण शस्त्र से लकीर खैंचने से भी परीक्षा हो सकती है। अभ्युद्धार्य पेटक [लाख रहित जुड़े पत्रों] की बेर के खट्टे रस या लवण के जल में भी देख लिया जाता है। यही पेटक की क्रिया है ॥ २८-३९ ॥

घनसुषिरे वा रूपे सुवर्णमृन्मालुकाहिङ्गुलुककल्को वा तप्तो ऽवतिष्ठते ॥ ४० ॥ दृढवास्तुके वा रूपे वालुकामिश्रजतुगान्धार पङ्को वा तप्तो ऽवतिष्ठते ॥ ४१ ॥ तयोस्तापनमवध्वंसनं वा शुद्धिः ॥ ४२ ॥ सपरिभाण्डे वा रूपे लवणमुल्कया कटुशर्करया तप्तमवतिष्ठते ॥ ४३ ॥ तस्यकाथनं शुद्धिः ॥ ४४ ॥ अभ्रपटलमष्टकेन द्विगुणवास्तुके वा रूपे बध्यते, तस्य पिहितकाचकस्योदके निमज्जत एकदेशः सीदति, पटलान्तरेषु वा सूच्या भिद्यते ॥ ४५ ॥ मणयो रूप्यं सुवर्णं वा घनसुषिराणां पिङ्कः ॥ ४६ ॥ तस्य तापनमवध्वंसनं वा शुद्धिरिति पिङ्कः ॥ ४७ ॥ तस्माद्वज्रमणिमुक्ताप्रवालरूपाणां जातिरूपवर्णप्रमाणपुद्गललक्षणान्युपलभेत ॥ ४८ ॥

ठोस अथवा पोले कड़े आदि आभूषणों में सुवर्ण की मिट्टी, वालुका, हींगलका कल्क तपा कर भर दिया जाता है। जब आभूषण का आधार पीठ [मूल ढांचा] बन जाता है-तो उसमें सुवर्ण वालुका से मिली हुई लाख भर देते हैं या सिन्दूर की कीचड़ तपा कर भरदी जाती है। उनका तपाना या तोड़ देना ही शुद्धि है। घूंघरुदार मणि बन्ध आदि आभूषणों में लवण को उल्का से तपा कर या छोटी २ कंकड़ियों को तपा कर रख दिया जाता है उसको वेरी के रस में उबाल लेने पर उसकी शुद्धि मानी गई है। अभ्र पटल [अभ्रक] लाख आदि के द्वारा अपने से दुगुने वास्तुक में रख दिया जाता है, उसको वेरी के क्वाथ में डुबो देने से अभ्रक का भाग नहीं डूबता है वह एक ओर से डूबता है। यदि किसी तांवे आदि के पत्र लगाये गये हों-तो उसका सूची से भेदन करने पर ही पता लगता है। ठोस या पोले चांदी सोने के आभूषणों में कांच जड़ कर भी सोना चांदी उड़ा लिया जाता है। यह सब सुवर्ण या चांदी के अपहरण पिङ्क नाम में प्रसिद्ध है। इनकी

तपाने और तोड़ देने से ही शुद्धि का पता लगता है। यहां तक पिङ्क का वर्णन समाप्त हुआ। इन सब बातों पर विचार करके वज्र मणि, मुक्ता, प्रवाल आदि की जाति, रूप [आकार] वर्ण, प्रमाण, पुद्गल [आभरण] तथा लक्षणों का सारा ज्ञान प्राप्त करे, जिससे कोई भी कारीगर किसीके आभूपणों से सुवर्ण न चुरा सके ॥४०-४८॥

कृतभाण्डपरीक्षायां पुराणभाण्डप्रतिसंस्कारे वा चत्वारो हरणोपायाः ॥ ४९ ॥ परिकुट्टनमवच्छेदनमुल्लेखनं परिमर्दनं वा ॥ ५० ॥ पेटकापदेशेन पृषतं गुणं पिटकां वा यत्परिशातयन्ति तत्परिकुट्टनम् ॥ ५१ ॥ यद्द्विगुणवास्तुकानां वा रूपे सीसरूपं प्रक्षिप्याभ्यन्तरमवच्छिन्दन्ति तदवच्छेदनम् ॥ ५२ ॥ यद्घनानां तीक्ष्णेनोल्लिखन्ति तदुल्लेखनम् ॥ ५३ ॥ हरितालमनःशिलाहिङ्गुलकचूर्णानामन्यतमेन कुरुविन्दचूर्णेन वा वस्त्रं संयूह्य यत्परिमृद्नन्ति तत्परिमर्दनम् ॥ ५४ ॥ तेन सौवर्णराजतानि भाण्डानि क्षीयन्ते ॥ ५५ ॥ न चैषां किंचिदवरुग्णं भवति ॥ ५६ ॥ भग्न खण्डघृष्टानां संयूह्यानां सदृशेनानुमानं कुर्यात् ॥ अवलेप्यानां यावदुत्पाटितं तावदुत्पाट्यानुमानं कुर्यात् ॥ ५८ ॥ विरूपाणां वा तापनमुदकपेषणं च बहुशः कुर्यात् ॥ ५९ ॥

नवीन आभूपण बनाने की परीक्षा के अनन्तर पुराने आभूपणों के संस्कार में सुवर्ण अपहरण के प्रकार बताये जाते हैं। परिकुट्टन, अवच्छेदन, उल्लेखन और परिमर्दन ये चार पुराने आभूपणों से सुवर्ण अपहरण के ढंग हैं। पेटक परीक्षा के मिस से छोटी २ घूंघरू, तार, पत्रे आदि को जो काट लिया जाता है-वह परिकुट्टन कहाता है। द्विगुणित सुवर्ण वाले आभूपण के मूल भाग में कुछ सीसे के पत्र भीतर प्रविष्ट कर देना और सुवर्ण काट लेना अवच्छेदन कहाता है। जो सुनार रेती आदि से ठोस सुवर्ण से सोना उतार लेते हैं, यह उल्लेखन कहाता है। हरिताल, मैनशिल, हिंगाठ, तथा कुरुविन्द (पापाण विशेष) के चूर्ण के साथ तगड़ी आदि का जो रगड़ लेना है-यह भी सुवर्ण अपहरण का परिमर्दन नामक ढंग हैं। इससे सुवर्ण और चांदी के आभूपण (पदार्थ) घिस जाते हैं। इस तरह आभूपण में कोई चोट या रगड़ दिखाई नहीं देती है। पृथक् २ पत्रों के घिस लेने या तगड़ी आदि के रगड़ लेने पर जो सुवर्ण छीन लिया जाता है, उसका पता उसके बराबर के दूसरे आभूपणों या पत्रों से लगता है। पतले पत्र चढ़े हुए आभूपणों के कटने का दूसरे आभूपण के भाग को काट कर जांच करे। जिन आभूपण (भाण्डों) को बहुत विरूप कर दिया है, उनकी तपाने और जल में बुझाने से ही शुद्धि या जांच होती है ॥४९-५९॥

अवक्षेपः प्रतिमानमग्निर्गण्डिका भण्डिकाधिकरणी पिञ्छः सूत्रं चेल्लं वोल्लनं शिर उत्सङ्गो मक्षिका स्वकायेक्षादतिरुदकशरावमग्निष्ठमिति काचं विद्यात् ॥६०॥ राजतानां विस्रं मलग्राहि परुषं प्रस्तीनं विवर्णं वा दुष्टमिति विद्यात् ॥ ६१ ॥

अवक्षेप (देखते २ बाजीगरी से सुवर्ण उड़ा देना) प्रतिमान (बदल देना) अग्नि [अग्नि में अपहरण] गण्डिका [घन] भण्डिका [सोने के गलाने के बाद डालने का पात्र] अधिकरणी [सुवर्ण के रखने का पात्र] पिञ्छ [पांख] सूत्र [सुवर्ण की तराजू की डोरी] चेल्ल [वस्त्र] वोल्लन [कहानी के द्वारा गाहक को चुकाना] शिर [शिर का खुजाना] उत्संग [गोदी] मक्षिका [मक्खी के उड़ाने के बहाने से सोना उड़ाना] अपना शरीर दिखाना, धौंकनी, जल की कूंडी अंगीठा-ये सब सुवर्ण अपहरण के उपाय है। चांदी के आभूपणों के मिलावटी बना देने पर उनमें दुर्गन्ध मलिनता, कठोरता, कान्तिहीनता, और फीका पड़ जाना, ये दोप दिखाई देने लगते हैं ॥६०-६१॥

एवं नवं च जीर्णं च विरूपं च विभाण्डकम् ।
परीक्षेतात्ययं चैषां यथोद्दिष्टंप्रकल्पयेत् ॥ ६२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे विशिखायां सौवर्णिकप्रचारः चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ आदितः पञ्चत्रिंश ॥ ३५ ॥

इस प्रकार नये और पुराने, विरूप आभूपणों की परीक्षा और उनके दण्ड का विधान बताया गया है। राजा इनका यथा योग्य प्रयोग करे ॥६२॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में विशिखा [सराफे] के मध्य में सुवर्ण बेचने वालों के कर्तव्यों के निर्णय का चौदहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



पन्द्रहवां अध्याय

३३वां प्रकरण

कोष्ठागाराध्यक्ष ।

धान्य आदि भरने के स्थान को कोष्ठ कहते हैं। इस विपय का अधिकारी कोष्ठागाराध्यक्ष होता है। अब कोष्ठागाराध्यक्ष के कर्मों का निरूपण करते हैं।

कोष्ठागाराध्यक्षः सीताराष्ट्रक्रयिमपरिवर्तकप्रामित्यकापमित्यकसिंहनिकान्यजातव्ययप्रत्यायोपस्थानान्युपलभेत ॥ १ ॥ सीताध्यक्षोपनीतः सस्यवर्णकः सीता

॥ २ ॥ पिण्डकरः षड्भागः सेनाभक्तं बलिः कर उत्सङ्गः पार्श्वं पारिहीणिकमौपायनिकं कौष्ठेयकं च राष्ट्रम् ॥ ३ ॥ धान्यमूल्यं कोशनिर्हारः प्रयोगप्रत्यादानं च क्रयिमम् ॥ ४ ॥ सस्यवर्णानामर्घान्तरेण विनिमयः परिवर्तकः ॥ ५ ॥ सस्ययाचनमन्यतः प्रामित्यकम् ॥ ६ ॥ तदेव प्रतिदानार्थमापमित्यकम् ॥ ७ ॥ कुट्टकरोचकसक्तुशुक्तपिष्टकर्म तज्जीवनेषु तैलपीडनमौरभ्रचाक्रिकेक्षुचूर्णां च क्षारकर्म सिंहनिका ॥ ८ ॥ नष्टप्रस्मृतादिरन्यजातः ॥ ९ ॥ विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेषं च व्ययप्रत्यायः ॥ १० ॥ तुलामानान्तरं हस्तपूरणमुत्करो व्याजी पर्युषितं प्रार्जितं चोपस्थानमिति ॥ ११ ॥

कोष्ठागाराध्यक्ष, सीता, राष्ट्र, क्रयिम, परिवर्तक प्रामित्यक, आपमित्यक, सिंहनिका, अन्यजात, व्ययप्रत्याप, और उपस्थान इन दश बातों का अच्छी तरह चिन्तन करे। सीताध्यक्ष (धान्य संग्रह करने वाला अधिकारी) द्वारा राज्य कोष में पहुंचायी हुई धान्य आदि वस्तु "सीता" कहाती है क्योंकि ये प्रायः सीता (हल) चलाने से उत्पन्न होती है। पिण्डकर (गांवों पर नियत कर) षड्भाग (अन्य का छठा भाग) सेना भक्त (सेना सम्बन्धी कर) बलि (राज्य भेंट) कर (जल या वृक्ष आदि पर नियत कर) उत्सङ्ग, (उत्सव आदि पर राज्यार्पित धन) पार्श्व (समय पड़ने पर अधिक राजा के ग्रहण करने योग्य कर) परिहीणिक (पशुओं पर लगाया हुआ कर) औपायनिक (राज दरबार के समय भेंट में प्राप्त धन) कौष्ठेयक [तालाब बगीचों से प्राप्त धन] यह दश प्रकार का राजा के ग्रहण करने योग्य धन "राष्ट्र" कहलाता है। धान्य मूल्य [धान्य के बेचने से मिला हुआ धन] कोशनिर्हार [राजकीय द्रव्य से खरीदा हुआ धान्यादि] प्रयोग प्रत्यादान [ब्याज के रूप में अधिक प्राप्त धान्य आदि] ये तीन, क्रयिम कहाते हैं। एक धान्य से आवश्यक दूसरे धान्य का बदलना "परिवर्तक" कहाता है। अन्य से धान्य आदि आवश्यक वस्तु का मांग लेना, प्रामित्यक कहाता है। जो धान्य आदि पदार्थ लौटाने की प्रतिज्ञा पर ग्रहण किये जाते हैं, वे आपमित्यक कहाते हैं। कुट्टक [कूटने का कार्य करने वाले] रोचक [मूंग उड़द आदि छड़ने] सक्तु [सत्तु पीसने] शुक्त [सिरका बनाने] पिष्टकर्म अर्थात् गेहूं आदि आटा पीस कर जीविका करने वाले एवं तेल निकालने और भेड़ के ऊन से जीविका करने वाले या चक्र चलाने वाले [कुमार आदि] गन्ने के रस से गुड़, राब, शक्कर आदि बनाने वाले पुरुषों से राजकीय अंश ग्रहण किया जाता है-वह सिंहनिका कहाता है। नष्ट हुए धन का फिर स्मरण हो आना अन्यजात कहाता है। विक्षेप [सेना के व्यय से बचा हुआ] व्याधित शेष (औषधालय के व्यय से बचा हुआ) अन्तरारम्भ (दुर्ग आदि के

निर्माण से बचा हुआ) धन "व्यय प्रत्याय" कहाता है। तुलामानान्तर (तोलने के बाद कुछ अधिक डाला हुआ) हस्तपूरण (हाथ से नापने के अन्तर मुट्ठी भर २ कर अधिक दिया हुआ) उत्कर (अधिक दिया हुआ) व्याजी (कुछ अधिक लिया हुआ सोलहवां या बीसवां भाग) पर्युषित (पिछली साल का शेष) प्रार्जित (अपनी चतुराई से इकट्ठा किया हुआ "उपस्थान" कहाता है ॥१-११॥

धान्यस्नेहक्षारलवणानाम् ॥१२॥ धान्यकल्पं सीताध्यक्षे वक्ष्यामः ॥१३॥ सर्पिस्तैलवसामज्जानः स्नेहाः ॥ १४ ॥ फाणितगुडमत्स्यण्डिकाखण्डशर्कराः क्षारवर्गः ॥ १५ ॥ सैन्धवसामुद्रबिडयवक्षारसौवर्चलोद्भेदजा लवणवर्गः ॥ १६ ॥ क्षौद्रं मार्द्वीकं च मधु ॥ १७ ॥ इक्षुरसगुडमधुफाणितजाम्बवपनसानामन्यतमो मेषशृङ्गीपिप्पलीक्वाथाभिषुतो मासिकः षाण्मासिकः सांवत्सरिको वा चिर्भिटोर्वारुकेक्षुकाण्डाम्रफलामलकावसुतः शुद्धो वा शुक्तवर्गः ॥ १८ ॥ वृक्षाम्लकरमर्दाम्रविदलामलकमातुलुङ्गकोलबदरसौवीरकपरूपकादिः फलाम्लवर्गः ॥१९॥ दधिधान्याम्लादिः द्रवाम्लवर्गः ॥ २० ॥ पिप्पलीमरीचशृङ्गिबेराजाजिकिराततिक्तगौरसर्षपकुस्तुम्बुरुचोरकदमनकमरुवकशिग्रुकाण्डादिः कटुकवर्गः ॥ २१ ॥ शुष्कमत्स्यमांसकन्दमूल फलशाकादि च शाकवर्गः ॥ २२ ॥

अब धान्य स्नेह (घृत आदि) क्षार और लवण के विषय में बताना शेष है। सीताध्यक्ष प्रकरण में धान्यों की चर्चा की जावेगी। घृत, तेल, वसा और मज्जा-ये चार प्रकारके स्नेह होते हैं। गन्ने से बने हुए फाणित (राब) गुड़ मत्स्यण्डिका (विशेष राब) और खांड शर्करा आदि पदार्थ क्षार वर्ग में गिने गए हैं। सैन्धव, (सैंधानमक) सामुद्र (समुद्री नोन) बिड (खारी नमक) यवक्षार (जवाखार) सौवर्चल (सज्जीखार) और उद्भेदज (ऊपर मिट्टी का बना हुआ नमक) ये सब क्षार वर्ग में सम्मिलित हैं। मक्खियों का तय्यार किया हुआ दाख किसमिसों द्वारा बनाया हुआ शहद भी दो प्रकार का होता है। इक्षुरस (ईख का रस) गुड़, मधु (शहद) फाणित (राब) जाम्बव (जामुन का रस) पनस (कटहल) या इमली रस) इनमें से किसी एक के रस में मेष शृङ्गी (मेढ़ा सींगी) और पिप्पली (पीपल) के क्वाथ के साथ मिलाकर एक मास, छः मास तथा एक वर्ष तक बन्द करके रखा जावे एवं चिर्भिट (मीठी ककड़ी) उर्वारुक (खरबूजा) इक्षुकाण्ड (ईख) आम का फल औरआंवला-इन सब को भी उस में डाल कर या इनको न डाल कर भी जो मिट्टी द्वारा अर्क खैंचा जाता है, जो रस खैंचा जाता है-वह सारा शुक्त वर्ग में सम्मिलित है। वृक्षाम्ल [इमली] करौंदा, आम, अनार, आंवला, खट्टा नीबू या बिजोरा. झाडी बेर. बडा बेर. सौवीरक [उन्नाव]

परूपक [फालसा] आदि फल खट्टे फलों के वर्ग में गिने जाते हैं दही, कांजी, छाछ आदि पानी वाली खट्टी वस्तु मानी गई हैं। पीपल, मिरच, अदरख, जीरा, चीरायता, सफेद सर-सों कुस्तुम्बुरु [धनिया] चोरक [चोर बेल] दमनक [कान्ता औषधि] मरुवक [मैंन फल] शिग्रुकाण्ड [सँजना] आदि कटुक वर्ग में माने गए हैं। सूखी मछली, सूखा मांस, कन्द, मूल [गाजर मूली] फल और शाक आदि शाकवर्ग में सम्मिलित होते हैं ॥ १८-२२ ॥

ततोऽर्धमापदर्थं जानपदानां स्थापयेत् ॥ २३ ॥ अर्धमुपयुञ्जीत ॥ २४ ॥ नवेन चानवं शोधयेत् ॥ २५ ॥ क्षुण्णघृष्टपिष्टभृष्टानामार्द्रशुष्कसिद्धानां च धान्यानां वृद्धिक्षयप्रमाणानि प्रत्यक्षीकुर्वीत ॥ २६ ॥ कोद्रवव्रीहीणामर्धं सारः ॥ २७ ॥ शालीनामर्धभागोनः ॥ २८ ॥ त्रिभागोनो वरकाणाम् ॥ २९ ॥ प्रियङ्गूणामर्धं सारः नवभागवृद्धिश्च ॥ ३० ॥ उदारकस्तुल्यः ॥ ३१ ॥ यवा गोधूमाश्च क्षुण्णाः ॥ ३२ ॥ तिला यवा मुद्गमाषाश्च घृष्टाः ॥ ३३ ॥ पञ्चभागवृद्धिर्गोधूमः सक्तवश्च ॥ ३४ ॥ पादोना कलायचमसी ॥ ३५ ॥ मुद्गमाषाणामर्धपादोनः ॥ ३६ ॥ शैम्ब्यानामर्धं सारः ॥ ३७ ॥ त्रिभागोनः मसूराणाम् ॥ ३८ ॥ पिष्टमामं कुल्माषाश्चाध्यर्धगुणाः ॥ ३९ ॥ द्विगुणो यावकः ॥ ४० ॥ पुलाकः पिष्टं च सिद्धम् ॥ ४१ ॥ कोद्रववरकोदारकप्रियङ्गूणां त्रिगुणमन्नम् ॥ ४२ ॥ चतुर्गुणं व्रीहीणाम् ॥ ४३ ॥ पञ्चगुणं शालीनाम् ॥ ४४ ॥ तिमितमपरान्नं द्विगुणमर्धाधिकं विरूढानाम् ॥ ४५ ॥ पञ्चभागवृद्धिः भृष्टानाम् ॥ ४६ ॥ कलायो द्विगुणः ॥ ४७ ॥ लाजाभरुजाश्च ॥ ४८ ॥

इन सब वस्तुओं में जो अपने जनपद [देश] में उत्पन्न हों-राजा अपने देश की रक्षा के निमित्त उनमें से आधी इकट्ठी करलेवे और आधी वस्तुओं को प्रजा के उपयोग में लावे। जब प्रत्येक वर्ष में नई २ फसल में नई २ वस्तु आजावे, तब पुरानी को व्यवहार में ले आवे। कूटी, घिसी, पिसी, भूनी हुई तथा गीली सूखी और पकाकर बनाई हुई वस्तु तथा धान्य की वृद्धि [आय] और क्षय [व्यय] की कोष्ठागाराध्यक्ष, स्वयं अपने सामने जांच करावे। कोद्रव [कोदू] और चाँवलों में आधाधान्य निकलता है। शाली चाँवलों में भी आधा भाग घट जाता है। वरक [लोभिया आदि अन्न विशेष] में एक हिस्सा छीज जाता है प्रियंगू 'कांगनी' आदि में आधा हिस्सा सारभूत निकलता है। किसी २ जगह नवां भाग आधे से अधिक भी हो जाता है। उदारक 'मोटे चाँवल' का भी कांगनी के समान ही आधा सार होता है। यव 'जौ' और गेहूं, क्षुण्ण 'कूटने पर निकलने वाले' कहाते हैं। तिल, यव मूंग उड़द घृष्ट 'मलने पर निकलने वाले' कहाते हैं। गेहूं और जौ भूनने पर पांचवें भाग

की वृद्धि हो जाती है तथा मटर और पिट्ठी एक पाद घट जाती है। मूङ्ग और उड़द पीसे जाने पर आठवां हिस्सा कम हो जाता है। सैमों में आधा सार हो जाता है। मसूरों के पीसने पर तीसरा भाग न्यून हो जाता है। कच्चे पीसे हुए या पकाए हुए गेहूं, मूङ्ग आदि ड्योढ़े हो जाते हैं। जौ पके हुए दुगुने होते हैं। आधे पके हुए या सूजी आदि पकी हुई दुगुनी बैठती है। कोंदो, वरक् 'लोभिया आदि' उदारक 'मोटा चांवल' प्रियंगू 'कांगनी' के पकाए जाने पर तिगुना बोझा बैठता है। शाली 'वासमती आदि चांवल' पकाने पर पच-गुने बैठ जाते हैं। काटने के समय अधपका अन्न दुगुने और कुछ बढ़ने पर काटने पर ढाई गुने पकाने पर हो जाते हैं। भुने हुए धान्यों के पकाने पर उनकी वृद्धि पांचवां भाग होती है। मटर तो दुगुनी हो जाती है। भुने हुए चांवल और जौ भी पकाने पर दुगुने ही होते हैं॥ ३३-४८॥

षट्कं तैलमतसीनाम् ॥ ४९ ॥ निम्बकुशाम्रकपित्थादीनां पञ्चभागः॥५०॥ चतुर्भागिकास्तिलकुसुम्भमधूकेङ्गुदीस्नेहाः ॥ ५१ ॥ कार्पासक्षौमाणां पञ्च-पले पलसूत्रम् ॥ ५२ ॥ पञ्चद्रोणे शालीनां च द्वादशाढकं तण्डुलानां कलभभो-जनम् ॥ ५३ ॥ एकादशकं व्यालानाम् ॥ ५४ ॥ दशकमौपवाह्यानाम् ॥५५॥ नवकं सान्नाह्यानाम् ५६ ॥ अष्टकं पत्तीनाम ॥५७॥ सप्तकं मुख्यानाम् ॥५८॥ षट्कं देवीकुमाराणाम् ॥ ५९ ॥ पञ्चकं राज्ञाम ॥ ६० ॥

अलसी से तेल का छठा भाग तय्यार होता है। नीम कुशा, आम की गुठली, कैथ का पांचवां हिस्सा तेल बैठता है। तिल कुसुम्भ 'कसूम' महुआ और इंगुरी में से, चौथाई हिस्सा तेल तय्यार होता है। कपास और रेशम में पांच पल, (बीस तोला) एक पल 'चार तोला' सूत्र तय्यार होता है। पांच द्रोण शालियों जब बारह आढ़क शेष रह जावें, तब वह एक हाथी के बच्चे का भोजन बनता है। चार सेर का एक आढक और चार आढक का एक द्रोण होता है। कूट छान कर पांच द्रोण में से जब ग्यारह आढक रहे-तो दुष्ट हाथियों का भोजन बनता है। दश आढक शेष रहने पर राजा की सवारी के हाथियों का अन्न बनता है। नौवां हिस्सा आढक शेष रहने पर युद्ध के हाथियों का भोजन बनता है। आठ आढक शेष रहने पर पैदल सैनिकों के भोजन का चांवल बनता है। सात आढक शेष होने पर मुख्य सेनापतियों के भोजन के उपयोग में आता है। छः आढक शेष रहने पर रानी और राजकुमारों के भोजन में आ सकता है। और पांच द्रोण में से जब पांच आढ़क शेष रहे- तो वह राजाओं के भोजन के योग्य बन जाता है॥ ४९-६०॥

अखण्डपरिशुद्धानां वा तण्डुलानां प्रस्थः ॥ ६१ ॥ चतुर्भागः सूपः सूप-षोडशो लवणस्यांशः चतुर्भागः सर्पिषस्तैलस्य वा एकमार्यभक्तम ॥ ६२ ॥

प्रस्थषड्भागः सूपः, अर्धस्नेहमवराणाम् ॥ ६३ ॥ पादोनं स्त्रीणाम् ॥ ६४ ॥ अर्धं बालानाम् ॥ ६५ ॥ मांसपलविंशत्या स्नेहार्धकुडुबः पलिको लवणस्यांशः क्षारपलयोगो द्विधरणिकः कटुकयोगो दध्नश्चार्धप्रस्थः ॥ ६६ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ६७ ॥ शाकानामध्यर्धगुणः ॥ ६८ ॥ शुष्काणां द्विगुणः स चैव योगः ॥ ६९ ॥ हस्त्यश्वयोस्तदध्यक्षे विधाप्रमाणं वक्ष्यामः ॥ ७० ॥ बलीवर्दानां माषद्रोणं यवानां वा पुलाकः शेषमश्वविधानम् ॥ ७१ ॥ विशेषो—घाणपिण्याकतुला कणकुण्डकं दशाढकं वा ॥ ७२ ॥ द्विगुणं महिषोष्ट्राणाम् ॥ ७३ ॥ अर्धद्रोणं खरपृषतरोहितानाम् ॥ ७४ ॥ आढकमेणकुरङ्गाणाम् ॥ ७५ ॥ अर्धाढकमजैलकवराहाणां द्विगुणं वा कणकुण्डकम् ॥ ७६ ॥ प्रस्थौदनःशुनाम् ॥ ७७ ॥ हंसक्रौञ्चमयूराणामर्धप्रस्थः ॥ ७८ ॥ शेषाणामतो मृगपशुपक्षिव्यालानामेकभक्तादनुमानं ग्राहयेत् ॥ ७९ ॥ अङ्गारांस्तुपांल्लोहकर्मान्तभित्तिलेप्यानां हारयेत् ॥ ८० ॥ कणिका दासकर्मकरसूपकाराणामतो ऽन्यदौदनिकापूपिकेभ्यः प्रयच्छेत् ॥ ८१ ॥ तुलामानभाण्डं रोचनी दृषन्मुसलोलूखलकुट्टकरोचकयन्त्रपत्रकशूर्पचालनिकाकण्डोलीपिटकसंमार्जन्यश्चोपकरणानि ॥ ८२ ॥ मार्जकरक्षकधरकमायककापकदायकदापकशलाकाप्रतिग्राहकदासकर्मकरवर्गश्च विष्टिः ॥ ८३ ॥

लगातार शुद्ध करते रहने पर अखण्ड छाँट लेने पर एक सेर चांवल तो राजा के अवश्य ही भोजन के योग्य बन जाता है। चौथाई भाग दाल, दालका सोलहवां हिस्सा नमक सूप का चौथा हिस्सा घृत, अथवा तेल एक योग्य पुरुष का भोजन (सीधा) होता है। एक प्रस्थ चांवलों का छठा भाग दाल और पहिले आधा घी तेल होना चाहिए। यह साधारण मनुष्यों के भोजन का भत्ता 'सीधा' है। इस में चौथाई कम करके स्त्रियों को देना चाहिए। और उस से आधा बालको को समझना चाहिए। बीस पल मांस के साथ आधी कुडुव 'आधा सेर' घी चढ़ाना चाहिए। उस में एक पल नमक डाले या अन्य जवाखार आदि डाल देवे। पीपल मिरच आदि ढ़ाई तोले के लग भग डालने चाहिए। और आधा सेर दही डालना उचित है। इससे अधिक मांस पकाने में इसी हिसाब से ये वस्तु डाले। शाकादि के बनाने में ड्योढ़ा मसाला डालना चाहिए। हाथी और अश्वों के भोजन का प्रमाण उनके प्रकरण में बताया जावेगा। बैलों के लिए एक द्रोण उड़द तथा उतने ही आधे उबले हुए जौ समझने चाहिए। शेष अश्वों की प्रक्रिया के समान जानना। घाणी में बनी हुई तिलों की खल सौ पल और टूटे हुए चांवलों के साथ उनकी भूसी दश आढ़क बैलों को होनी चाहिए।

बैल से दुगुना सामान भैंसा और ऊंटों को होना उचित है। आधा द्रोण विशेष २ गर्दभों के निमित्त होना चाहिए। चीतल लाल, राण और कुरङ्ग संज्ञक हरिणों को आधा द्रोण भोजन (दाना) मिलना चाहिए। आधा आढ़क बकरा, भेड़ और सूअरों के निमित्त बताया गया है। चांवल मिली हुई भूसी एक आढ़क देनी चाहिए। एक सेर पके हुए चांवल कुत्तों के लिए नियत हैं। हंस, क्रौंच, मयूरों का आधा सेर चांवल होने चाहिए। इनके अतिरिक्त, मृग, पशु, पक्षि, व्यालों हिंसक जन्तुओं को उनको एक दिन खिला कर उनका अनुमान कर लेना चाहिए। अङ्गारे और भूसी को लोह के कर्म करने वाले या भींत लेपने वालों को दे देवे। अन्न की बारीक कणिका, दास, कर्म कर (कृषि में सेवा करने वाले) दाल शाक आदि बनाने वाले को देवे। तथा चांवल और पक्की रसोई बनाने वालों को भी इसी अन्न में से देना चाहिए (तुला तराजू) मान भाण्ड (बाट) रोचनी (दलने का चकला) दृषद् (शिल) मुसल (मूसल) ऊखल, कुट्टक (धान कूटने का यन्त्र) रोचक यन्त्र (चक्की) पत्रक (लकड़ी का तख्ता) शूर्प (छाज) चालनिका (छलनी) कण्डोली (टोकरी) पिटक 'पिटारी' और संमार्जनी ये सारी रसोई बनाने की सामग्री या साधन हैं। झाड़ू लगाने वाला, कोष्ठागार रक्षक, तराजू उठाने वाला, तुलवाने वाला, इनका अधिकारी, देने वाला, दिलाने वाला, बोझ आदि उठाने वाला, दास, और अन्य कार्य करने वाले-ये सब लोग विष्टि (सेवक) कहाते हैं ॥६१-८३॥

उच्चैर्धान्यस्य निक्षेपो मूताः क्षारस्य संहताः ।
मृत्काष्ठकोष्ठाः स्नेहस्य पृथिवी लवणस्य च ॥ ८४ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे कोष्ठागाराध्यक्षः पञ्चदशो ऽध्यायः ॥१५॥
आदितः षट्त्रिंशः ॥ ३६ ॥

धान्य आदि को ऊंचे स्थान में रखे। गुड़ शर्कर आदि को घास फूंस पर रखे। घृत आदि स्नेह के रखने के लिए मिट्टी में या काष्ठ के बर्तन होने चाहिए। लवण आदि के रखने के लिए पृथ्वी भी ठीक है। इस प्रकार इन वस्तुओं के रखने का कोष्ठागाराध्यक्ष प्रबन्ध करे ॥८४॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचारअधिकरण में कोष्ठागाराध्यक्ष के कर्तव्यों के वर्णन का पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

सोलहवां अध्याय

३४वां प्रकरण

पण्याध्यक्ष।

राजकीय बेचने योग्य वस्तुओं के अध्यक्ष को पण्याध्यक्ष कहते हैं। अब उन वस्तुओं के बेचने खरीदने और और उस अध्यक्ष के कर्तव्यों के विषय का वर्णन किया जाता है।

पण्याध्यक्षः स्थलजलजानां नानाविधानां पण्यानां स्थलपथवारिपथोपयातानां सारफल्ग्वर्घान्तरं प्रियाप्रियतां च विद्यात् ॥ १ ॥ तथा विक्षेपसंक्षेपक्रयविक्रयप्रयोगकालान् ॥ २ ॥ यच्च पण्यं प्रचुरं स्यात्तदेकीकृत्यार्घमारोपयेत् ॥३॥ प्राप्ते ऽर्घे वार्घान्तरं कारयेत् ॥ ४ ॥ स्वभूमिजानां राजपण्यानामेकमुखं व्यवहारं स्थापयेत् ॥ ५ ॥ परभूमिजानामनेकमुखम् ॥ ६ ॥ उभयं च प्रजानामनुग्रहेण विक्रापयेत् ॥ ७ ॥ स्थूलमपि च लाभं प्रजानामौपघातिकं वारयेत् ॥ ८ ॥ अजस्रपण्यानां कालोपरोधं संकुलदोषं वा नोत्पादयेत् ॥ ९ ॥ बहुमुखं वा राजपण्यं वैदेहकाः कृतार्घं विक्रीणीरन् ॥ १० ॥ भेदानुरूपं च वैधरणं दद्युः॥११॥

पण्याध्यक्ष स्थल और जल में उत्पन्न अनेक प्रकार की विभिन्न वस्तु तथा स्थल मार्ग और जल मार्ग से आने वाली सार 'लकड़ी आदि' और फल्गु 'वस्त्र आदि' के मूल्य के तारतम्य तथा उनकी लोक में कितनी प्रियता और अप्रियता है, इसका अवश्य ज्ञान रखे तथा किस पदार्थ का अधिक और किसका स्वल्प संग्रह करना चाहिए और किसको रखना और किसे बेच देना उचित है, इसके प्रयोग के व्यवहारों का भी पण्याध्यक्ष को अनुभव होना आवश्यक है। जो विक्रेय वस्तु अधिक हो-उसके खरीद करने के अनन्तर पण्याध्यक्ष व्यापार कौशल से उसके दाम बढ़वा देवे और बेचने के अनन्तर फिर उसके दाम गिरवा देवे। जो अपनी भूमि में उत्पन्न राजा की विक्रेय वस्तु हैं, उनको वह एक स्थान पर ही बिकवावे। अन्य देशोत्पन्न वस्तु पृथक् २ बिकनी चाहिए। दोनों प्रकार की वस्तुओं के बेचने बिकवाने में राजा को प्रजा के लाभ का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। यदि राजा को बहुत बड़ा लाभ हो रहा है, और उसमें प्रजा को अधिक पीड़ा होती है, तो उस लाभ को भी राजा रोक देवे। शीघ्र बेच देने योग्य शाक आदि वस्तुओं के बेचने बिकवाने में देर कर देना, या उस वस्तु के अधिक ठेकेदार या बेचने वाले होने देना दोष है-ऐसा नहीं होने देना चाहिए। अनेक स्थानों पर बिकने वाली राजकीय वस्तुओं को व्यापारी, नियत भाव पर बेचें। भेद से बेचने पर जो-राजकीय वस्तु कम भाव पर बिकने से राज्य की हानि हुई उसको व्यापारीगण पूरा करें-इसे ही वैधरण नामक कर कहते हैं ॥१-११॥

षोडशभागो मानव्याजी ॥ १२ ॥ विंशतिभागस्तुलामानम् ॥ १३ ॥ गण्यपण्यानामेकादशभागः ॥ १४ ॥ परभूमिजं पण्यमनुग्रहेणावाहयेत् ॥ १५ ॥ नाविकसार्थवाहेभ्यश्च परिहारमायतिक्षमं दद्यात् ॥ १६ ॥ अनभियोगश्चार्थेष्वागन्तूनामन्यत्र सभ्योपकारिभ्यः ॥ १७ ॥ पण्याधिष्ठातारः पण्यमूल्यमेकमुखं काष्ठद्रोण्यामेकच्छिद्रापि धानायां निदध्युः ॥ १८ ॥ अह्नश्चाष्टमे भागे पण्याध्यक्षस्यार्पयेयुः, इदं विक्रीतमिदं शेषमिति ॥ १९ ॥ तुलामानभाण्डकं चार्पयेयुः ॥२०॥ इति स्वविषये व्याख्यातम् ॥ २१ ॥

व्यापारियों के पास जितनी वस्तु मांगी गई, उसका सोलहवां भाग कर रूप में ग्रहण करना मानव्याजी कहाता है। तोलने योग्य वस्तुओं का बीसवां भाग ग्रहण करना, तुलामान होता है। जो द्रव्य गिने जा सकते हैं उनका ग्यारहवां भाग राज्य शुल्क 'टैक्स' होना चाहिए। पर देश में उत्पन्न वस्तुओं को राजा कुछ अनुग्रह 'नर्मी' के साथ मंगवावे। नौका चलाने वाले, या सार्थवाह 'काफ़ले' के साथ व्यापार करने वाले, बनजारों' से भी परिहार नामक टैक्स में बहुत कुछ कमी कर देवे। आने वाले व्यापारियों का लेन देन, विना सरकारी स्टाम्प के हो जाना चाहिए, परन्तु जो इनके सभ्य (यहीं के साथी) और उपकारी हों-उनका अभियोग 'स्टाम्प' आदि अवश्य होना चाहिए। पण्य 'विक्रेय वस्तु' के बेचने वाले पुरुष, एक स्थान पर प्राप्त राजकीय वस्तुओं के मूल्य को एक काठ की सन्दूक में उसके ऊपर के छेद से डाल देवे। इसके अनन्तर दिन के आठवें भाग में [सायंकाल) पण्याध्यक्ष को उस सन्दूक को समहलवा देवे। और यह वस्तु विक चुकी-इतनी बाकी है-यह भी बेचने वाला उसे बता दे। तराजू या नांपने के बर्तन भी उसके ही अर्पण कर देने चाहिए। यहां तक अपने देश की वस्तुओं के विपय में लिखा गया है ॥१२-२१॥

परविषये तु पण्यप्रतिपण्ययोरर्घमूल्यं चागमय्य शुल्कवर्तन्यातिवाहिकगुल्मतरदेयभक्तभाटकव्ययशुद्धमुदयं पश्येत् ॥ २२ ॥ असत्युदये भाण्डनिर्वहणेन पण्यप्रतिपण्यार्घेण वा लाभं पश्येत् ॥ २३ ॥ ततः सारपादेन स्थलव्यवहारमध्वना क्षेमेण प्रयोजयेत् ॥ २४ ॥ अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं गच्छेदनुग्रहार्थम् ॥ २५ ॥ आपदि सारमात्मानं वा मोक्षयेत् ॥ २६ ॥ आत्मनो वा भूमिमप्राप्तः सर्वदेयविशुद्धं व्यवहरेत् ॥२७॥ वारिपथे च यानभाटकपथ्यदनपण्यप्रतिपण्यार्घप्रमाणयात्राकालभयप्रतीकारपण्यपत्तनचारित्राण्युपलभेत ॥२८॥

अब पण्याध्यक्ष, परदेश में बेचने या खरीदने योग्य वस्तुओं के मूल्य का ज्ञान प्राप्त करके शुल्क (टैक्स) वर्तनीदेय (अन्तपाल को) अतिवाहिकदेय (मार्ग शुल्क) गुल्मदेय

'जंगलात के अफसर के देने योग्य' तरदेय 'नदी टैक्स' भक्त 'भोजन व्यय' तथा भाड़े के व्यय को निकाल कर वृद्धि 'बचत' कामीजान लगावे। यदि इस तरह कुछ उन्नति न दिखाई दे-तो अपनी वस्तु वहां लेजाकर बेचने खरीदने अदलने बदलने की वस्तुओं का विचार कर लाभ पर दृष्टि डाले। अपने बचे हुए धन में से एक चौथाई रुपये से स्थल व्यापार का आरम्भ करे-परन्तु मार्ग के उपद्रवों की पड़ताल करले। अटवीपाल 'जंगल का अफसर' अन्तपाल 'सीमा रक्षक, नगर और देश के मुख्य पुरुषों से मिले, और उनकी सहानुभूति प्राप्त करे। यदि किसी प्रकार की आपत्ति मार्ग आदि में उपस्थित हो-तो उस समय धन प्राण या केवल प्राणों की रक्षा का प्रयत्न करे। जब तक पण्याध्यक्ष द्वारा नियत व्यापारी, अपने राजा की भूमि में न आ जावे-तब तक वहां के राजा के सारे टैक्स देता रहे। जल मार्ग 'समुद्र' से वस्तु बेचने वाले को यान भाटक 'नाव का भाड़ा' मार्ग में खाने पीने का व्यय, अपने पराये बेचने योग्य वस्तुओं के मूल्य का प्रमाण, या मार्ग में व्यतीत होने वाले समय का अनुमान, मार्ग में होने वाले चोर आदि के भय के प्रतीकार के उपाय, तथा वस्तु बेचने के नगर के आचार व्यवहार का भी पण्याध्यक्ष या उसका व्यापारी ज्ञान रखे॥ २२-२८॥

नदीपथे च विज्ञाय व्यवहारं चरित्रतः।
यतो लाभस्ततो गच्छेदलाभं परिवर्जयेत् ॥ २९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे पण्याध्यक्षः षोडशो ऽध्यायः ॥ १६ ॥
आदितः सप्तत्रिंशः ॥ ३७ ॥

इसी तरह नदी से उतर कर किये जाने वाले व्यापार के स्थान के आचार व्यवहार का भी यथोचित ज्ञान होना चाहिए! जहां लाभ हो-वहीं जाना चाहिए-अलाभ के स्थान को दूर से ही छोड़ देना उचित है॥ २२ ॥

इती श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में पण्याध्यक्ष के कर्तव्यों का सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



सत्रहवां अध्याय

३५वां प्रकरण

कुप्याध्यक्ष।

चन्दन आदि की बढ़िया लकड़ी बांस छाल आदि के प्रबन्ध करने वाले कुप्याध्यक्ष के कर्तव्यों का वर्णन किया जाता है।

कुप्याध्यक्षो द्रव्यवनपालैः कुप्यमानाययेत् ॥ १ ॥ द्रव्यवनकर्मान्तांश्च प्रयोजयेत् ॥ २ ॥ द्रव्यवनच्छिदां च देयमत्ययं च स्थापयेदन्यत्रापद्भ्यः ॥ ३ ॥ कुप्यवर्गः-शाकतिनिशधन्वनार्जुनमधूकतिलकसालशिंशपारिमेदराजादनशिरीषखदिरसरलतालसर्जाश्वकर्णसोमवल्ककशाम्रप्रियकधवादिः सारदारुवर्गः ॥४॥ उटजचिमियचापवेणुवंशसातीनकण्टकभाल्लूकादिर्वेणुवर्गः ॥ ५ ॥ वेत्रशीकवल्लीवाशीश्यामलतानागलतादिर्वल्लीवर्गः ॥६॥ मालतीमूर्वार्कशणगवेधुकातस्यादिर्वल्कवर्गः ॥ ७ ॥ मुञ्जवल्वजादि रज्जुभाण्डम् ॥ ८ ॥ तालीतालभूर्जानां पत्त्रम् ॥ ९ ॥ किंशुककुसुम्भकुङ्कुमानां पुष्पम् ॥ १० ॥

कुप्याध्यक्ष, वृक्ष या वन के पालकों द्वारा कुप्य अर्थात् बढ़िया २ लकड़ियां मंगवावे और उन लकड़ियों से जो अच्छी २ मेज कुरसी आदि वस्तु बन सकें-वे बनवावे वन के वृक्ष काटने वाले पुरुषों का वेतन या भूलकरने पर अत्यय 'दण्ड-जुरमाना आदि, भी नियमित होना चाहिए। यदि कोई आपत्ति या आकस्मिक भूल हो जावे-तो उनपर दण्ड नहीं होना चाहिए। शाक 'सागवान' तिनिश 'तेंदुआ' धन्वन 'पीपल' अर्जुन 'अर्जुन वृक्ष' मधूक 'महुआ' तिलक 'ताल मखाना' साल 'स्याल' शिंशपा 'सीसम' अरिमेद 'दुर्गन्धपूर्ण खैर वृक्ष' राजादन 'खिरनी' शिरष 'सिरस' खादर 'खैर' सरल 'देवदारु' ताल 'ताड़' सर्ग 'पीले रङ्ग का साल' आश्वकर्ण 'साल का भेद' सोमवल्क 'सफेद खैर' कश 'कीकर' आम, प्रियक 'कदम्ब' धव 'गूलर' आदि सार दारु वर्ग कहाता है। उटज 'जिस की गांठों पर कांटे होते हैं' चिमिय 'मुलायम छाल वाले' छाय 'पौला और खरदरा' वेणु 'चिकना धनुष बनाने योग्य' वंस 'लम्बी पोरियों का बांस' सातीन, कण्टक 'वंश विशेष' भाल्लूक 'मोटा लम्बा बांस'-ये सब बाँस वेणुवर्ग में सम्मिलित हैं। वेत्र 'बेंत' शीकवल्ली 'लता विशेष' वाशी 'अर्जुन के फूल के समान फूल वाली, श्यामलता 'काली निसोत' नागलता 'नागर बेल' आदि लता वर्ग में सम्मिलित हैं। मालती 'चमेली' मूर्वा (मरोर फली) अर्क (आक) शण (सन) गवेधुका (नाग बला) अतसी (अलसी) आदि वल्कवर्ग में गिने जाते हैं। मुञ्ज (मूंज) बल्वज

आदि [एक प्रकार का घास] वस्तुएं रस्सी बनाने के साधन हैं। ताली ताल (ताड़) भूर्ज [भोज पत्र] ये पत्रों में गिने गए हैं। किंशुक [ढाक] कुसुम्भ [कसूम] कुंकुम [केसर] आदि पुष्प वर्ग में माने गए हैं॥ १-१० ॥

कन्दमूलफलादिरौषधवर्गः ॥ ११ ॥ कालकूटवत्सनाभहालाहलमेषशृङ्गमुस्ताकुष्ठमहाविषवेल्लितकगौरार्द्रबालकमार्कटहैमवतकालिङ्गकदारदकांकोलसारकोष्ट्रकादीनि विषाणि ॥ १२ ॥ सर्पाः कीटाश्च त एव कुम्भगता विषवर्गः ॥ १३ ॥ गोधासेरकद्वीपिशिंशुमारसिंहव्याघ्रहस्तिमहिषचमरसृमरखड्गगोमृगगवयानां चर्मास्थिपित्तस्नाय्वस्थिदन्तशृङ्गखुरपुच्छान्यन्येषां वापि मृगपशुपक्षिव्यालानाम्॥१४॥ कालायसताम्रवृत्तकांस्यसीसत्रपुवैकृन्तकारकूटानि लोहानि ॥ १५ ॥

कन्द, 'विदारी' मूल 'खस आदि' और फल 'आंवला' आदि ओषधि वर्ग कहाते हैं। कालकूट, वत्सनाभ हालाहल, मेषशृङ्ग, मुस्ता, कुष्ठ, महाविष, वेल्लितक, गौरार्द्र, बालक, मार्कट, हैमवत, कालिङ्गक, दारदक, अङ्कोलसारक, उष्ट्रक आदि द्रव्य विष वर्ग में माने गए हैं सर्प, कीट [छिपकली बिच्छू आदि] घड़े में सड़ाने पर अर्क खैंचने पर इनका अर्क भी विष वर्ग में गिना जाता है अर्थात् जहां विष वर्ग की वस्तुएं काम में आती हैं, वहां यथोचित इन का भी व्यवहार हो सकता है। गोह, सेरक [सफेद गोह] द्वीपी (बघेरा,) शिशुमार [जल जन्तु] सिंह, व्याघ्र [शार्दूल] हाथी, अरण्यभैंसा, चंमरी गाय, सृमर [हरिण विशेष] गैंडा गौ, मृग, नील गाय, चर्म, अस्थि, पित्ता, स्नायु, छोटी २ हड्डी, दांत, सींग खुर, पूंछ आदी वस्तुएं काम में आती है। तथा अन्य वन के जीव, पशु पक्षी और व्याल (रेंगने वाले) जन्तुओं की खाल आदि भी व्यवहार में आती है। कालायस [काला लोहा] ताम्र वृत्त 'तांबा' कांस्य 'कांसी' सीस 'सीसा' त्रपु 'रांग' वैकृन्तक 'इस्पाती या खेड़ी लोहा' आरकूट 'पीतल' ये सब लोह भेद में ही गिने जाते हैं ॥११-१५॥

विदलमृत्तिकामयं भाण्डम् ॥ १६ ॥ अङ्गारतुषभस्मानि मृगपशुपक्षिव्यालवाटाः काष्ठतृणवाटाश्चेति ॥ १७ ॥

बांस की खपची आदि से टोकरी और मिट्टी के बर्तन-ये दो तरह के भाण्ड होते हैं। अङ्गार 'कोयले' तुष, भस्म 'राख' मृग, पशु, पक्षी, व्यालों 'हिंसक जन्तुओं' के समूह, काष्ठ, तृण आदि के समूह-ये सब संग्रह की वस्तु हैं ॥१६-१७॥

बहिरन्तरश्च कर्मान्ता विभक्ताः सर्वभाण्डिकाः।
आजीवपुररक्षार्थाः कार्याः कुप्योपजीविना ॥ १८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे कुप्याध्यक्षः सप्तदशो ऽध्यायः ॥१७॥
आदितो ऽष्टत्रिंशः ॥ ३८ ॥

बाहर 'परदेश' अन्तर 'अपने देश' के उत्पन्न वस्तु, तथा काष्ठ आदि से बनवाये हुए भिन्न २ वर्तन, पुर और जनपद की रक्षा की वस्तु, कुप्याध्यक्ष या उसके साथी कर्मचारियों या व्यापारियों द्वारा अवश्य इकट्ठी करानी चाहिए ॥१८॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में कुप्याध्यक्ष के कर्मों के वर्णन का सत्रहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



अठारहवां अध्याय

३६वां प्रकरण

आयुधागाराध्यक्ष ।

शस्त्रों के भण्डार के अध्यक्ष का नाम आयुधागाराध्यक्ष है। अब उसके कर्तव्यों का वर्णन किया जाता है।

आयुधागाराध्यक्षः सांग्रामिकं दौर्गकर्मिकं परपुराभिघातिकं चक्रयन्त्रमायुधमावरणमुपकरणं च तज्जातकारुशिल्पिभिः कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः कारयेत् ॥ १ ॥ स्वभूमिषु च स्थापयेत् ॥ २ ॥ स्थानपरिवर्तनमातपप्रवातप्रदानं च बहुशः कुर्यात् ॥३॥ ऊष्मोपस्नेहक्रिमिभिरुपहन्यमानमन्यथा स्थापयेत् ॥४ ॥ जातिरूपलक्षणप्रमाणागममूल्यनिक्षेपैश्चोपलभेत ॥ ५ ॥

आयुधागाराध्यक्ष, युद्धोपयोगी, दुर्ग की रक्षा में काम आने वाले, शत्रु पुर के नाश करने के उपयोगी, चक्र यन्त्र 'घूमते हुए यन्त्र' आयुध 'शस्त्र' आवरण 'कवच' तथा अन्य युद्ध की सामग्री और उस विषय के साधारण और उत्तम कारीगर उनके काम का प्रमाण, समय, वेतन आदि के विषय में अच्छी जानकारी प्राप्त करके उनसे ये कार्य करव वे। इन सारे पदार्थों को अपने अधिकार में रहने वाले स्थान में रखे। आयुधागाराध्यक्ष, उन शास्त्रा का स्थान परिवर्तन, धूप, वायु आदि अच्छी तरह लगवाता रहे, जिससे खराब न हों। गर्मी स्नेहाभाव 'जरना' और घुन दीमक आदि से बेकार हुए अस्त्रों को मरम्मत के लिए रखवा दे। उनकी जाति 'स्वभाव' रूप 'आकार' लक्षण 'चिन्ह' प्रमाण 'लम्बाई चौड़ाई आगम 'प्राप्ति स्थान' मूल्य 'मोल' निक्षेप 'प्रहार-प्रकार' आदि का भी अध्यक्ष को ज्ञान होना चाहिए ॥१-५॥

सर्वतोभद्रजामदग्न्यबहुमुखविश्वासघातिसङ्घाटीयानकपर्जन्यकबाहूर्ध्वबाह्वर्ध-बाहूनि स्थितयन्त्राणि ॥६॥ पञ्चालिकदेवदण्डसूकरिकामुसलयष्टिहस्तिवारकतालवृन्तामुद्गरगदास्पृक्तलाकुद्दालास्फोटिमोद्घाटिमोत्पाटिमशतघ्नीत्रिशूलचक्राणिचलयन्त्राणि ॥ ७ ॥

सर्वतोभद्र 'एक स्थान पर रखा हुआ चारों ओर बाण या गोली फेंकने वाला अर्थात मशीन गन' जामदग्न्य 'बीच के छेद में से बड़े २ गोले फेंकने वाला अर्थात् तोप' बहुमुख 'सब ओर से गोले छोड़ने वाला' विश्वासघाती 'कुछ भी प्रतीत न होकर शत्रु को छूते ही मार डालने वाला यन्त्र' सङ्घाटी 'आग लगाने वाले यन्त्र' यानक 'सवारी पर चलने वाला यन्त्र' पर्जन्यक 'आग बुझाने वाला' बाहु 'छोटा यन्त्र' ऊर्ध्वबाहु ऊपर उठा हुआ यन्त्र अर्धबाहु 'इससे कुछ छोटा' ये दश यन्त्र स्थित यन्त्र कहाते हैं । पञ्चालिक 'जल से भरी खाई को तैरते हुए शत्रु का घातक यन्त्र' देव दण्ड 'परकोटे पर बहुत ऊंचा रखा हुआ यन्त्र' सूकरिका 'सूत और चमड़े से बनी तोप' मुसलयष्टि 'मूसल में लगा हुआ भाला' हस्तिवारक 'हाथी को मारने का दण्ड' तालवृन्त 'चारों ओर घूमने वाला यन्त्र' मुद्गर, गदा, स्पृक्तला 'कांटेदार गदा' 'कुदाल' कुदाल, आस्फोटिम 'पत्थर फेंकने का यन्त्र' उद्घाटिम 'मुद्गर सा यन्त्र' उत्पाटिम खम्भे आदि का उखाड़ने वाला यन्त्र, शतघ्नी लम्बी २ कीलों का यन्त्र, त्रिशूल और चक्र ये चल यन्त्र कहाते हैं ॥६-७॥

शक्तिप्रासकुन्तहाटकभिण्डिपालशूलतोमरवराहकर्णकणयकर्पणत्रासिकादीनि च हलमुखानि ॥ ८ ॥ तालचापदारवशार्ङ्गाणि कार्मुककोदण्डद्रूणा धनूंषि ॥ ६ ॥ मूर्वार्कशणगवेधुवेणुस्नायूनि ज्याः ॥ १० ॥ वेणुशरशलाकादण्डासननाराचाश्च इषवः ॥ ११ ॥ तेषां मुखानि छेदनभेदनताडनान्यायसास्थिदारवानि ॥ १२ ॥

शक्ति 'लोह का बना हुआ कनेर के पत्ते के आकार का भाला' प्रास 'चौबीस अंगुल लम्बा दुधारा' कुन्त 'सात छः और पांच हाथ लम्बा भाला' हाटक 'तीन कांटो वाला भाला' भिण्डिपाल, मोटी फल वाला भाला-शूल नेजा (बाण के तुल्य मुख वाला भाला) वराह कर्ण (वराह के कान सा भाला) कणय (बीस, बाईस, चौबीस, अंगुल का कांटेदार मूठ वाला भाला) कर्पण (बाण के तुल्य भाला) त्रासिका (लोहे की प्रास जैसी बनी हुई) आदि-भाले मुख कहाते हैं, क्योंकि इनके अग्रभाग तीक्ष्ण होते हैं । ताल (ताड़) चाप (बांस) दारु (लकड़ी) शार्ङ्ग (सींग) से बना होने से कार्मुक, कोदण्ड, द्रूणा और धनुष इनके नाम हो जाते हैं । मूर्वा (मुहार) आक 'सण' गवेधुक (मुनि तृण) वेणु 'बांस' और स्नायु (शिरा) इनकी रस्सी अच्छी बनती है, जिसकी धनुष की डोरी बनाई जाती है । वेणु बांस शर (नरसल) शलाका

(दृढ़ काष्ठ) दण्डासन (आधा लोहा और आधा वांस) ये भिन्न प्रकार के वाण होते हैं। इनके मुख, छेदन, भेदन- और ताडन के लिए लोह, हड्डी और दृढ़ लकड़ी के होते हैं ॥८-१२॥

निस्त्रिंशमण्डलाग्रासियष्टयखड्गाः ॥ १३ खड्गमहिषवारणविषाणदारुवेणु-मूलानि त्सरवः ॥ १४ ॥ परशुकुठारपट्टसखनित्रकुद्दालक्रकचकाण्डच्छेदनाः क्षुर-कल्पाः ॥ १५ ॥ यन्त्रगोप्पणमुष्टिपाषाणरोचनीदृषदश्चायुधानि ॥ १६ ॥

निस्त्रिंश (टेढ़ी तलवार) मण्डलाग्र 'गोल तलवार' असियष्टि (पतली लम्बी तलवार) इस प्रकार तीन तरह की तलवार होती हैं । खड्ग (गैंडा) महिष (भैंसे की सींग) हाथी दांत दृढ़ काष्ठ और वांस की जड़ की तलवारों की मूंठ होती हैं। परशु (फरसा) कुठार (कुल्हाड़ा) पट्टस (दोनों ओर त्रिशूलधारी) खनित्र (कुस्सा) कुद्दाल (कुदाली) क्रकच (करोंत) काण्डच्छेदन 'गंडासा' यह सब क्षुर वर्ग कहाता है। यन्त्र, गोष्पण और मुष्टिका द्वारा फैंके हुए पाषाण, रोचनी (चक्की के पाट) दृषद् (शिला) ये सब आयुध कहाते हैं ॥१३-१६॥

लोहजालजालिकापट्टकवचसूत्रकंकटशिंशुमारकखड्गिधेनुकहस्तिगोचर्मखुरशृ-ङ्गसंघातं वर्माणि ॥१७॥ शिरस्त्राणकण्ठत्राणकूर्पासकञ्चुकवारवाणपट्टनागोदरिकाः पेटीचर्महस्तिकर्णतालमूलधमनिकाकवाटकिटिकाप्रतिहतवलाहकान्ताश्च आवरणानि ॥ १८ ॥ हस्तिरथवाजिनां योग्यभाण्डमालंकारिकं संनाहकल्पनाश्चोपकरणानि ऐन्द्रजालिकमौपनिपदिकं च कर्म ॥ २० ॥

लोह जाल (लोहे की कड़ियों का कवच) जालिका 'लोह की जाली' लोह पट्ट 'लोह पट्टे' लोह कवच (पींठ छाती ढ़कने वाला) सूत्रकंकट 'सूत का कवच' शिंशुमारक 'जल जन्तु या ऊद विलाव' खड्गी (गैंडा) धेनुक (नील गाय) हस्ती, वृषभ इन पांचों के चमड़े, तथा खुर, सींग के संघात से भी कवच वनाये जाते हैं। शिरस्त्राण 'सिर के कवच' कण्ठत्राण 'कण्ठका कवच' कूर्पास 'आधी वाहों का कवच' कञ्चुक 'घोंटुओं तक का कवच' वारवाण 'पैर तक का कवच' पट्ट 'वांहों से रहित' नागोदरिका [अंगुलित्राण] ये सात आवरण [कवच] होते हैं। पेटी चर्म, [चमड़े की पेटी] हस्तिकर्ण [मुंह का कवच] तालमूल [लकड़ी का वना हुआ आवरण] धमनिका [सूत का वना हुआ] कवाट [लकड़ी का कवच] किटिका [चमड़े और वांस की वनी हुई पेटी] अप्रतिहत [हाथ का कवच] वलाहकान्त [लोहे के पत्रों से ढ़का हुआ हाथ का कवच] इनकी गणना भी कवचों में ही की गई है। हाथी, रथ और अश्वों के योग्य पदार्थ, अंकुश आदि, अलङ्कार, कवच-ये सब युद्ध के उपकरण कहाते हैं। ऐन्द्रजालिक [थोड़ी सेना को अधिक दिखा देने तथा अग्नि न होने पर आग दिखा देना आदि] औप-

लिपदक [विषैले धुएँ [गैस] दूषित जलादिका प्रयोग] कर्म भी युद्ध के साधनों में ही माने गए हैं ॥१७-२०॥

कर्मान्तानां च—॥ २१ ॥

इच्छामारम्भनिष्पत्तिं प्रयोगं व्याजमुद्द्यम् ।

क्षयव्ययौ च जानीयात्कुप्यानामायुधेश्वरः ॥ २२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे आयुधागाराध्यक्षः अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

आदितः एकोनचत्वारिंशः ॥ ३९ ॥

जितने भी राज्य सम्बन्धी कर्मान्त [महकमे] चन्दन आदि कुप्य वस्तु रुचि के अनुसार तथा राजा की रुचि, आरम्भ और समाप्ति, उनके प्रयोग, दोष, लाभ, क्षय और व्यय, इन सबका आयुधागाराध्यक्ष ज्ञान रखे ॥२१-२२॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में आयुधागार के अध्यक्ष के कर्तव्यों के निर्णय का अट्ठारहवां अध्याय समाप्त हुआ।



उन्नीसवां अध्याय

३७वां प्रकरण

तोल मापका संशोधन

तोल और नांप के अधिकारी को पौतवाध्यक्ष कहते हैं, अब उसके कर्मों का निरूपण किया जाता है।

पौतवाध्यक्षः पौतवकर्मान्तान्कारयेत् ॥ १ ॥ धान्यमाषा दश सुवर्णमापकः पञ्च वा गुञ्जाः ॥ २ ॥ ते षोडश सुवर्णः कर्षो वा ॥ ३ ॥ चतुःकर्षं पलम् ॥ ४ ॥ अष्टाशीतिर्गौरसर्षपा रूप्यमाषकः ॥ ५ ॥ ते षोडश धरणम् ॥ ६ ॥ शैम्ब्यानि वा विंशतिः ॥ ७ ॥ विंशतितण्डुलं वज्रधरणम् ॥ ८ ॥

पौतवाध्यक्ष, पौतवकर्मान्त [नांप तोल के बाट] आदि बनवावे। दश उड़द के दानों तथा पांच रत्ती का एक सुवर्ण माषा होता है। सोलह मासे का सुवर्ण या एक कर्ष होता है। चार कर्ष का एक पल माना जाता है। अट्ठासी सफेद सरसों के दानों का एक रूप्य माषक होता है। सोलह रूप्य माषक का एक धरण होता है। इसके बराबर ही बीस 'शैम्ब्य' सैम के दाने माने गए हैं। बीस चांवल का एक वज्रधारण होता है-यह हीरे की तोल का साधन है ॥१-८॥

अर्धमापकः मापकः द्वौ चत्वारः अष्टौ मापकाः सुवर्णो द्वौ चत्वारः अष्टौ सुवर्णाः दश विंशतिः त्रिंशत् चत्वारिंशत् शतमिति ॥ ९ ॥ तेन धरणानि व्याख्यातानि ॥ १० ॥ प्रतिमानान्ययोमयानि मागधमेकलशैलमयानि यानि वा नोदकप्रदेहाभ्यां वृद्धिं गच्छेयुरुष्णेन वा ह्रासम् ॥ ११ ॥

अर्ध मापक, मापक, दो मापक, चार मापक, आठ मापक, एक सुवर्ण, दो सुवर्ण, चार सुवर्ण आठ सुवर्ण, दश सुवर्ण, बीस सुवर्ण, तीस सुवर्ण, चालीस सुवर्ण और सौ सुवर्ण-तक के बाट बनवाने चाहिए। इसी हिसाब से धरण नामक बाट भी बनवाये जावे। तोलने के बाट लोहे के बनने चाहिए या मगध और मेकल देश के दृढ़ पत्थर के बनवाये जावे। इसके अतिरिक्त पानी और अन्य लेप से जो वृद्धि को प्राप्त न हो-तथा गरमी से क्षीण न हो-ऐसे द्रव्य के बाट भी बनवाये जा सकते हैं ॥९-११॥

षडङ्गुलादूर्ध्वमष्टाङ्गुलोत्तरा दश तुलाः कारयेल्लोहपलादूर्ध्वमेकपलोत्तरा यन्त्रमुभयतः शिक्यं वा ॥ १२ ॥ पञ्चत्रिंशत्पललोहां द्विसप्तत्यङ्गुलायामां समवृत्तां कारयेत् ॥ १३ ॥ तस्याः पञ्चपलिकं मण्डलं बद्ध्वा समकरणं कारयेत् ॥ १४ ॥ ततः कर्षोत्तरं पलं पलोत्तरं दशपलं द्वादश पञ्चदश विंशतिरिति पदानि कारयेत् ॥ १५ ॥ तत आशताद्दशोत्तरं कारयेत् ॥ १६ ॥ अक्षेषु नान्दीपिनद्धं कारयेत् ॥ १७ ॥

सोने चांदी आदि वस्तुओं के तोलने की छः अंगुल से लेकर आठ २ अंगुल बढ़ाते हुए, दश तरह की तराजू बनायी जा सकती हैं। इसका तोल एक पल लोह से लेकर एक २ पल बढ़ाते हुए अठहत्तर अंगुल की तुला में दश पल का बोझा होना चाहिए। जिसमें दोनों ओर पलड़े रहने चाहिए। पैंतीस पल लोहे की बनी हुई बहत्तर अंगुल (तीन हाथ) लम्बी गोलाकार तुला सुवर्ण आदि से अतिरिक्त वस्तुओं के तोलने को बनावे। उसका पांच पल का मण्डल [मध्य भाग] बनवाकर उसके ठीक मध्य में एक एक चिन्ह या कांटा लगवावे। उसके बाद उस बीच के चिन्ह से एक कर्ष, दो कर्ष, तीन कर्ष, पल, दश पल, बारह पल, पन्द्रह पल, और बीस पल के चिन्ह लगावे। फिर बीस पल के आगे दस २ के अनन्तर से सौ पल तक के चिन्ह लगावे। प्रत्येक अक्ष [पांच पल] के अन्तर के चिन्ह पर पहचान के लिए एक नान्दीपिनद्ध [स्वस्तिक] का विशेष चिन्ह लगा देवे। इसको समवृत्तातुला कहते हैं ॥१२-१७॥

द्विगुणलोहां तुलामतः षण्णवत्यङ्गुलायामां परिमाणीं कारयेत् ॥ १८ ॥ तस्याः शतपदादूर्ध्वं विंशतिः पञ्चाशत् शतमिति पदानि कारयेत् ॥ १९ ॥

विंशतितौलिको भारः ॥२०॥ दशधरणिकं पलम् ॥२१॥ तत्पलशतमायमानी ॥२२॥ पञ्चपलावरा व्यवहारिकी भाजन्यन्तःपुरभाजनी च ॥ २३ ॥ तासामर्धधरणावरं पलम् ॥ २४ ॥ द्विपलावरमुत्तरलोहम् ॥ २५ ॥ षडङ्गुलावराश्चायामाः ॥ २६ ॥ पूर्वयोः पञ्चपलिकः प्रयामो मांसलोहलवणमणिवर्जम् ॥ २७ ॥ काष्ठतुला अष्टहस्ता पदवती प्रतिमानवती मयूरपदाधिष्ठिता ॥२८॥ काष्ठपञ्चविंशतिपलं तण्डुलप्रस्थसाधनम् ॥ २९ ॥ एष प्रदेशो बह्वल्पयोः ॥ ३० ॥ इति तुलाप्रतिमानं व्याख्यातम् ॥ ३१ ॥

समवृत्तातुला से दुगुने लोहे से बनी हुई अर्थात् सत्तर पल लोहे से बनायी हुई और छियानवें अंगुल [चार हाथ] लम्बी तुला बनवावे। इसको परिमाणी तुला कहते हैं। इसमें भी कर्ष से लेकर सौ पल तक चिन्ह करके फिर बीस, पचास और सौ के चिन्ह लगा देवे अर्थात् बीस तुला का एक भार होता है [सौ पल का एक तुला है] दश धारणिक का एक पल और सौ पल की एक आयमानी होती है। आयमानी से पांच पल कम अर्थात् पिचानवें पल की एक व्यवहारिकी, व्यवहारिकी से पांच पल कम अर्थात् नव्वे पल की एक भाजनी तथा भाजनी से पांच पल न्यून अर्थात् पिचासी पल की एक अन्तःपुरभाजनी तुला होती है। इन व्यवहारिकी भाजनी और अन्तःपुर भाजनी नाम की तुलाओं में पल का परिमाण साढ़े नौ नौ और साढ़े आठ धरण का क्रम से जानना चाहिए। इनमें लोहा भी दो दो पल कम होना चाहिए अर्थात् आयमानी तुला पैंतीस, व्यवहारिकी तेतीस, भाजनी इकतीस और अन्तःपुर भाजनी उनतीस पल की होती है। इनकी लम्बाई भी क्रम से छः २ अंगुल कम होती है अर्थात् बहत्तर अंगुल की आयमानी, छियासठ अंगुल की व्यवहारिकी, साठ अंगुल की भाजनी और चौवन अंगुल की अन्तःपुर भाजनी होती है। पहिली दो तुलाओं में पांच पल अधिक तोला जाता है अर्थात् उनमें तोलने से पांच पल का अन्तर पड़ता है, इसमें मांस, लोहा, लवण और मणि नहीं तोलने चाहिए। काष्ठ की तुला [तराजू] आठ हाथ की होनी चाहिए। इसमें एक, दो और तीन आदि चिन्हों पर रेखा बना देवे। इसके बाट पत्थर के होते हैं। इस तराजू के रोकने के खम्भे मयूर के पैर जैसे दो होने चाहिए। पच्चीस पल ईंधन, एक प्रस्थ [सेर] चांवलों को 'पकाने' पर्याप्त है। इसी हिसाब से अधिक और न्यून चांवलों का काष्ठ समझ लेवे। यह तराजू के मान की व्याख्या करदी है। यहां तक सोलह प्रकार की तुला और चौदह प्रकार के बाटों का निरूपण किया गया ॥१८-३१॥

अथ धान्यमाषद्विपलशतं द्रोणमायमानम् ॥३२॥ सप्ताशीतिपलशतमर्धपलं च व्यावहारिकम् ॥ ३३ ॥ पञ्चसप्ततिपलशतं भाजनीयम् ॥ ३४ ॥ द्विप-

ष्टिपलशतमर्धपलं चान्तःपुरभाजनीयम् ॥३५॥ तेषामाढकप्रस्थकुडुवाश्चतुर्भागावराः ॥ ३६ ॥ षोडशद्रोणा खारी ॥ ३७ ॥ विंशतिद्रोणिकः कुम्भः ॥ ३८ ॥ कुम्भैर्दशभिर्वहः ॥ ३९ ॥ शुष्कसारदारुमयं समं चतुर्भागशिखं मानं कारयेत् ॥४०॥ अन्तःशिखं वा ॥ ४१ ॥ रसस्य तु ॥ ४२ ॥ सुरायाः पुष्पफलयोस्तुषाङ्गाराणां सुधायाश्च शिखामानं द्विगुणोत्तरा वृद्धिः ॥४३॥ सपादपणो द्रोणमूल्यम् ॥४४॥ आढकस्य पादोनः ॥४५॥ षण्माषकाः प्रस्थस्य ॥४६॥ माषकः कुडुवस्य ॥४७॥ द्विगुणं रसादीनां मानमूल्यम् ॥४८॥ विंशतिपणाः प्रतिमानस्य ॥४९॥ तुलामूल्यं त्रिभागः ॥ ५० ॥

धान्य माष के दो सौ पल का एक आयमान द्रोण होता है। एक सो साढ़े सत्तासी पल का एक व्यवहारिक द्रोण होता है। एक सौ पिछहत्तर पल का एक भाजनीय द्रोण होता है। एक सौ साढ़े बासठ पल का एक अन्तपुर भाजनीय द्रोण कहाता है। इन चार प्रकार के द्रोणों में चतुर्थांश कम करदेने पर चार प्रकार के आढ़क बनते हैं, आढ़क में चतुर्थांश कम करने पर चार तरह के प्रस्थ और प्रस्थ में चतुर्थांश कम करने पर चार तरह के कुडुव होते हैं। सोलह द्रोण की एक खारी, बीस द्रोण की एक कुम्भ और दश कुम्भ का एक "वह" होता है। सूखी बढ़िया लकड़ी का बना हुआ, नीचे ऊपर से बराबर, चतुर्थांश भाग धारण कर लेने वाली ग्रीवा से युक्त एक मान मात्र (नापने का पात्र) बना लेना चाहिए। पात्र में चतुर्थांश भाग की शिखा पृथक् न रख कर उस में ही सम्मिलित शिखा रखकर भी पात्र बनाया जा सकता है। घृत और तेल का भी इसी तरह का नांप का पात्र होता है। सुरा (शराब) पुष्प, फल तुष (घास फूस) अङ्गार (कोयले) या कला (सफेदी) के नापने के पात्र की शिखा का भाग नीचे से दुगुना होना चाहिए। जिस पात्र में एक द्रोण वस्तु आ जावे-उसका मूल्य सवा पण होता है। एक आढ़क का मूल्य पौन पण, एक प्रस्थ आने वाले का छः मापा और एक कुडुव का एक मापा मूल्य होता है। घृत तेल आदि के नापनेके बर्तन का मूल्य, इनसे दुगुना होता है अर्थात् एक द्रोण घृत नापने से पात्र का मूल्य ढ़ाई पण होता है इस प्रकार आढ़क आदि भी समझ लेवे। चौदह प्रकार के बाटों का मूल्य बीस पण होता हैं। तराजू का मोल इससे तिहाई माना गया है॥ ३२-५० ॥

चतुर्मासिकं प्रातिवेधनिकं कारयेत् ॥ ५१ ॥ अप्रतिविद्धस्यात्ययः सपादः सप्तविंशतिपणः ॥ ५२ ॥ प्रातिवेधनिकं काकणीकमहरहः पौतवाध्यक्षाय दद्युः ॥५३ ॥ द्वात्रिंशद्भागस्तप्तव्याजी सर्पिषश्चतुः षष्टि भागस्तैलस्य ॥ ५४ ॥

पश्चाशद्भागो मानस्रावो द्रवाणाम् ॥ ५५ ॥ कुडुवार्धचतुरष्टभागानि मानानि कारयेत् ॥ ५६ ॥

चार महीने पीछे प्रत्येक तुला और बाटों की जांच करनी चाहिए। जो समय पर शोधन (जांच) नहीं करवावे-उस पर सवा सत्ताईस पण दण्ड होना चाहिए। व्यापारीगण प्रतिदिन की एक काकणी के हिसाब से पौतवाध्यक्ष को टैक्स देवे। यदि गरम किया हुआ घी खरीदा जावे-तो उसके ऊपर बत्तीसवां भाग तप्तव्याजी [राज्य का टैक्स] लेना चाहिए तेल का चौंसठवां भाग लेना उचित है। द्रव [पतले पदार्थों] का पचासवां भाग तोलने की छीजना का होता है। कुडुव, अर्धकुडुव, चौथाई कुडुव, और आठवां हिस्सा कुडुव के बाट या नांप के बर्तन बनवाने चाहिए। ॥ ५१-५६ ॥

कुडुवाश्चतुराशीतिः वारकः सर्पिषो मतः ।
चतुःषष्टिस्तु तैलस्य पादश्च घटिकानयोः ॥ ५७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे तुलामानपौतवं एकोनविंशो ऽध्यायः ॥ १२ ॥ आदितश्चत्वारिंशः ॥ ४० ॥

घी के तोलने में चौरासी कुडुव का वारक होता है और तेल के तोलने में चौंसठ कुडुव का वारक होता है। एक पान ऊन अर्थात् इक्कीस कुडुव की एक घटिका घी तोलने और सोलह कुडुव की एक घटिका तेल नांपने की होती है ॥ ५७ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में तुलामान [तराजू बाट] आदि का उन्नीसवां अध्याय पूरा हुआ।



बीसवां अध्याय

३८वां प्रकरण

देश तथा कालका मान।

अब देश और काल के परिमाण का विचार किया जाता है।

मानाध्यक्षो देशकालमानं विद्यात् ॥१॥ अष्टौ परमाणवो रथचक्रविप्रुट् ॥ २ ॥ ता अष्टौ लिक्षा ॥३॥ ता अष्टौ यूकामध्यः ॥ ४ ॥ ते अष्टौ यवमध्यः ॥ ५ ॥ अष्टौ यवमध्या अङ्गुलम् ॥ ६ ॥ मध्यमस्य पुरुषस्य मध्यमाया अङ्गुल्या मध्यप्रकर्षो वाङ्गुलम् ॥ ७ ॥

मानाध्यक्ष देश और काल के परिमाण को भी अच्छी तरह जाने। आठ परमाणुओं का मिल कर रथ के पहिए की उड़ाई हुई धूलि का एक कण होता है। आठ धूली कण मिलाकर एक लिक्षा होती हैं, आठ लिक्षा का एक यूकामध्य और आठ यूकामध्य का एक यवमध्य होता है। आठ यवमध्यों का एक अंगुल होता है। साधारण मध्यम कद के पुरुष की मध्य अंगुलि मध्य भाग की मुटाई की बराबर एक अंगुल की मुटाई होनी चाहिए ॥१-७॥

चतुरङ्गलो धनुर्ग्रहः ॥ ८ ॥ अष्टाङ्गुला धनुर्मुष्टिः ॥ ९ ॥ द्वादशाङ्गुला वितस्तिः ॥१०॥ छायापौरुषं च ॥ ११ चतुर्दशाङ्गुलं शमः शलः परिरयः पदं च ॥ १२ ॥ द्विवितस्तिररत्निः प्राजापत्यो हस्तः ॥ १३ ॥ सधनुर्ग्रहः पौतवविवीतमानम् ॥ १४ ॥ सधनुर्मुष्टिः किष्कुः कंसो वा ॥१५॥ द्विचत्वारिंशदङ्गलस्तक्ष्णः क्राकचिककिष्कुः स्कन्धावारदुर्गराजपरिग्रहमानम् ॥ १६ ॥ चतुःपञ्चाशदङ्गुलः कुप्यवनहस्तः ॥ १७ ॥

चार अङ्गुल की एक धनुग्रह, आठ अङ्गुल की एक धनुर्मुष्टि, बारह अङ्गुल की वितस्ति (विलांद) या छाया पुरुष होता है। चौदह अंगुल का शम, शल, परिरय और पद नाम है। दो वितस्ति की एक अरत्नि या प्राजापत्य हस्त (एक हाथ) भी कहते हैं। एक हाथ और धनुग्रह अर्थात् अट्ठाईस अंगुल का एक मानदण्ड, पौतव (तराजू) और विवीत (पशुओं की चरागाह वंजर भूमि] को नापना चाहिए। एक हाथ और एक धनुर्मुष्टि अर्थात् बत्तीस अंगुल का एक किष्कु या कंस कहाता है। बयालीस अंगुल का हाथ खातियों [लकड़ी का काम करने वाले कारीगरों] का एक क्राकचिककिष्कु होता है। इसका प्रयोग केवल सेना स्कन्धावार की [छावनी] राज कार्य और दुर्ग निर्माण में करना चाहिए। कुप्य और वन [लकड़ी आदि] की नाप में चौवन अंगुल का हाथ होता है ॥ ८-१७ ॥

चतुरशीत्यङ्गुलो व्यामो रज्जुमानं खातापौरुषं च ॥ १८ ॥ चतुररत्निर्दण्डो धनुर्नालिकापौरुषं च ॥ १९ ॥ गार्हपत्यमष्टशताङ्गुलं धनुः पथिप्राकारमानं पौरुषं चाग्निचित्यानाम् ॥ २० ॥ षट्कंसो दण्डो ब्रह्मदेयातिथ्यमानम् ॥ २१ ॥ दशदण्डो रज्जुः ॥ २२ ॥ द्विरज्जुकः परिदेशः ॥ २३ ॥ त्रिरज्जुकं निवर्तनम् ॥ २४ ॥ एकतो द्विदण्डाधिको बाहुः ॥ २५ ॥ द्विधनुःसहस्रं गोरुतम् ॥ २६ ॥ चतुर्गोरुतं योजनम् ॥ २७ ॥ इति देशमानं व्याख्यातम् ॥ २८ ॥

चौरासी अंगुल के एक मान दण्ड को व्याम कहते हैं। यह रस्सी के नापने या गढ्ढे कुवे आदि के नापने के काम में आता है। चार अरत्नि का एक दण्ड होता है। इसी को धनुष या नालिका भी कहते हैं। एक सौ आठ अंगुल का गार्हपत्य धनुष कहाता है, जो राज

मार्ग [सड़क] किले के परकोटे के नांपने और यज्ञ भूमि नांपने के उपयोग में आता है। छः कल का एक दण्ड माना गया है जो ब्राह्मण या अतिथियों को देय भूमि आदि के नांपने के उपयोग में आता है। दश दण्ड की एक रज्जु होती है। दो रज्जु का एक परदेश और तीन रज्जु का एक निवर्त्तन होता है। एक और दो दण्ड बढ़ा देने से बाहु होता है अर्थात् बत्तीस दण्ड का बाहु है। दो हजार धनुष का एक गोरुत होता है। चार गोरुत का एक योजन है यहां तक देश मान का वर्णन हुआ ॥ १८-२८ ॥

कालमानमत ऊर्ध्वम् ॥ २९ ॥ तुटो लवो निमेषः काष्ठा कला नालिका मुहूर्तः पूर्वापरभागौ दिवसो रात्रिः पक्षो मास ऋतुरयनं संवत्सरो युगमिति कालाः ॥ ३० ॥

इस के आगे कालमान का निरूपण किया जाता है। तुट, लव, निमेष, काष्ठा, कला, नालिका, मुहुर्त पूर्वभाग, अपर भाग, दिवस, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर और युग ये कालके सत्रह भाग माने गए हैं ॥ २९-३० ॥

निमेषचतुर्भागस्तुटः, द्वौ तुटौ लवः ॥ ३१ ॥ द्वौ लवौ निमेषः ॥ ३२ ॥ पञ्च निमेषाः काष्ठा ॥ ३३ ॥ त्रिंशत्काष्ठाः कला ॥ ३४ ॥ चत्वारिंशत्कलाः नालिका ॥ ३५ ॥ सुवर्णमापकाश्चत्वारश्चतुरङ्गुलायामाः कुम्भच्छिद्रमाढकमम्भसो वा नालिका ॥ ३६ ॥ द्विनालिको मुहूर्तः ॥ ३७ ॥ पञ्चदशमुहूर्तो दिवसो रात्रिश्च चैत्रे मास्याश्वयुजे च मासि भवतः ॥ ३८ ॥ ततः परं त्रिभिर्मुहूर्तैरन्यतरः षण्मासं वर्धते ह्रसते चेति ॥ ३९ ॥

पलक मारने में जितना काल लगता है-उसका चतुर्थांश तुट कहाता है। दो तुट का एक लव-दो लव का एक निमेष, पाँच निमेष की एक काष्ठा, तीस काष्ठा की एक कला, चालीस कला की एक नालिका, होती है। चार सुवर्ण मापक मोटा और चार अंगुल लम्बा मटके में छिद्र कर दिया जावे-उस में एक आढ़क जल जितनी देर में निकले उस समय को भी नालिका कहते हैं। दो नालिका का एक मुहुर्त, पन्द्रह मुहुर्त का चैत्र और आश्विन का दिन रात होता है। तीन मुहुर्त तक दिन और रात घट बढ़ जाते हैं ॥ ३१-३९ ॥

छायायामष्टपौरुष्यामष्टादशभागश्छेदः ॥ ४० ॥ षट्पौरुष्यां चतुर्दशभागः ॥ ४१ ॥ चतुष्पौरुष्यामष्टभागः ॥ ४२ ॥ द्विपौरुष्यां षड्भागः ॥ ४३ ॥ पौरुष्यां चतुर्भागः ॥ ४४ ॥ अष्टाङ्गुलायां त्रयो दशभागाः ॥ ४५ ॥ चतुरङ्गुलायां त्रयोऽष्टभागाः ॥ ४६ ॥ अच्छायो मध्याह्न इति ॥ ४७ ॥ परावृत्ते दिवसे शेषमेवं विद्यात् ॥ ४८ ॥

जब धूप घड़ी में छाया छियानवे अंगुल हो-तो उस समय दिन का अष्टादशवां भाग व्यतीत हो जाता है। बहत्तर अंगुल छाया रहने पर दिन का चौदहवां हिस्सा, अड़तालीस अंगुल छाया रहने पर दिन का आठवां हिस्सा, चौबीस अंगुल छाया रहने पर छठा हिस्सा, बारह अंगुल छाया रहने पर दिन का चौथा हिस्सा, आठ अङ्गुल छाया रहने पर दिन के कल्पित दशभागों में तीन भाग और चार अंगुल छाया रहने पर दिन के आठ भागों में से तीन भाग दिवस व्यतीत हुआ समझो। [बारह अङ्गुल का एक पौरुष माना गया है] जब छाया बिल्कुल न रहे-तो उस समय पूरा मध्याह्न समझना चाहिए। जब दिन उलट पड़ता है-तब उलटा इस तरह समझ लेना चाहिए। अर्थात् चार अङ्गुल छाया होने पर दिन के आठ भागों में से तीन भाग दिन शेष समझना चाहिए-इसी तरह सारी पूर्वोक्त विधि जाननी ॥ ४०-४८ ॥

आषाढे मासि नष्टच्छायो मध्याह्नो भवति ॥ ४९ ॥ अतः परं श्रावणादीनां षण्मासानां द्वयङ्गुलोत्तरा माघादीनां द्वयङ्गुलावरा छाया इति ॥ ५० ॥ पञ्चदशाहोरात्राः पक्षः ॥ ५१ ॥ सोमाप्यायनः शुक्लः ॥ ५२ ॥ सोमावच्छेदनो बहुलः ॥ ५३ ॥ द्विपक्षो मासः ॥ ५४ ॥ त्रिंशदहोरात्रः प्रकर्ममासः ॥ ५५ ॥ सार्धः सौरः ॥ ५६ ॥ अर्धन्यूनश्चान्द्रमासः ॥ ५७ ॥ सप्तविंशतिर्नाक्षत्रमासः ॥ ५८ ॥ द्वात्रिंशत् मलमासः ॥ ५९ ॥ पञ्चत्रिंशदश्ववाहायाः ॥ ६० ॥ चत्वारिंशद्धस्तिवाहायाः ॥ ६१ ॥

आसाढ़ के महीने में मध्यान्ह में छाया का पता नहीं रहता है। श्रावण के महीने से लगाकर छः महीने तक दो अंगुल छाया बढ़ती है। और माघ से लेकर छः महीने तक दो अंगुल छाया घटती है। पन्द्रह दिन रात का एक पक्ष होता है। चन्द्रमा के बढ़ने वाले पक्ष को शुक्ल पक्ष और चन्द्रमा के घटने के पक्ष को कृष्ण पक्ष कहते हैं। दो पक्ष का एक मास होता है। तीस दिन रात का वेतन आदि देने के निमित्त मास माना गया है। साढ़े तीस दिन रात का एक सौर [सूर्य गणनानुसार] मास होता है। साढ़े उन्नीस दिन रात का एक चांद्र मास होता है। सत्ताईस दिन रात का नाक्षत्र मास होता है। बत्तीस दिन रात का एक मल मास है। पैंतीस दिन रात का मास अश्व वाहक [सईस] आदि को, वेतन देने के व्यवहार में माना गया है और चालीस दिन रात का हाथी पाल्कों का मास माना गया है ॥४९-६१॥

द्वौ मासावृतुः ॥ ६२ ॥ श्रावणः प्रोष्ठपदश्च वर्षाः ॥ ६३ ॥ आश्वयुजः कार्तिकश्च शरत् ॥ ६४ ॥ मार्गशीर्षः पौषश्च हेमन्तः ॥ ६५ ॥ माघः फाल्गुनश्च

शिशिरः ॥ ६६ ॥ चैत्रो वैशाखश्च वसन्तः ॥ ६७ ॥ ज्येष्ठामूलीय आषाढश्च ग्रीष्मः ॥ ६८ ॥ शिशिराद्युत्तरायणम् ॥ ६९ ॥ वर्षादि दक्षिणायनम् ॥ ७० ॥ द्वययनः संवत्सरः ॥ ७१ ॥ पञ्चसंवत्सरो युगमिति ॥ ७२ ॥

दो महीने का एक ऋतु, होता है। श्रावण भादों ये दो मास वर्षा ऋतु, आश्विन और कार्तिक शरद्, अगहन और पौष हेमन्त, माघ और फाल्गुन शिशिर, चैत्र-वैसाख वसन्त और ज्येष्ठ तथा आषाढ़ ग्रीष्म ऋतु के मास माने गए हैं। शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, उत्तरायण, और वर्षा, शरद् तथा हेमन्त दक्षिणायन मानी गयी है। दक्षिणायन उत्तरायण-ये दो अयन का एक संवत्सर होता है तथा पांच सवंत्सर का एक युग होता है। यहां तक कालमान की व्याख्या हुई ॥६२-७२॥

दिवसस्य हरत्येकं षष्टिभागमृतौ ततः ।
करोत्येकमहश्छेदं तथैवैकं च चन्द्रमाः ॥ ७३ ॥

एवमर्धतृतीयानामब्दानामधिमासकम् ।
ग्रीष्मे जनयतः पूर्वं पञ्चाब्दान्ते च पश्चिमम् ॥ ७४ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे देशकालमानं विंशोऽध्यायः ॥२०॥
आदित एकचत्वारिंशः ॥ ४९ ॥

सूर्य प्रतिदिन, दिन का साठवें भाग [एक घटिका] का छेद कर लेता है अर्थात् बढ़ा देता है-इस प्रकार एक ऋतु [दो मास] में एक दिन बढ़ जाता है। इसी तरह चन्द्रमा प्रत्येक ऋतु में एक दिन कम करता चला जाता है। इसी कारण से प्रत्येक ढ़ाई वर्ष में एक अधिक मास पड़ता है अर्थात् पन्द्रह दिनसूर्य के बढ़ाने और पन्द्रह दिन चन्द्रमा के कम करने से एक मास होता है। जब प्रथम मल मास ग्रीष्म में पड़ेगा-तो पांच वर्ष के अनन्तर दूसरा मल मास हेमन्त में जाकर होगा ॥७३-७४॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में देश काल के मान का बीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



इक्कीसवां अध्याय

३६वां प्रकरण

शुल्काध्यक्ष

शुल्काध्यक्ष राजकीय चुंगी आदि के टैक्स के लेने वाले अफसर को कहते हैं। इस प्रकरण में उसके कर्तव्यों का निर्णय किया जाता है।

शुल्काध्यक्षः शुल्कशालां ध्वजं च प्राङ्मुख मुदङ् मुख वा महाद्वाराभ्याशे निवेशयेत् ॥ १ ॥ शुल्कादायिनश्चत्वारः पञ्च वा सार्थोपयातान्वणिजो लिखेयुः ॥ २ ॥ के कुतस्तयाः कियत्पण्याः क्व चाभिज्ञानमुद्रा वा कृता इति ॥ ३ ॥ अमुद्राणामत्ययो देयद्विगुणः ॥ ४ ॥ कूटमुद्राणां शुल्काष्टगुणो दण्डः ॥ ५ ॥ भिन्नमुद्राणामत्ययो घटिकाः स्थाने स्थानम् ॥ ६ ॥ राजमुद्रापरिवर्तने नामकृते वा सपादपणिकं वहनं दापयेत् ॥ ७ ॥

शुल्काध्यक्ष, एक विशाल शुल्कशाला [टाऊनहाल] बनवावे, जिसमें प्रधान द्वार पूर्व या उत्तर की ओर हो और उस महाद्वार पर एक ऊंची ध्वजा लगानी चाहिए। शुल्क [चुंगी कर] लेने वाले, चार या पांच कर्मचारी, साथी [गिरोह] के साथ आने वाले व्यापारियों के नाम लिखें। ये व्यापारी कौन है, कहां के रहने वाले, कहां से आये हैं। इनके पास कितनी विक्रेय वस्तु है, और उन पर कहां की मुहर लगी है। यदि उनके माल पर अन्तपाल की मुहर नहीं लगी-हो तो उससे दुगुना शुल्क लेना चाहिए। यदि उन्होंने झूंठी मुद्रा बनाली हो-तो उनसे अठ गुना शुल्क [चुंगी-टैक्स] वसूल करना चाहिए। जिस स्थान से मुद्रा लेनी चाहिए और उसके अतिरिक्त दूसरे स्थान की मुद्रा ले-तो उसे कुछ घड़ी रोक कर चला जाने दे। राजकीय मुद्रा के बदल देने या उस पर विक्रेय वस्तु का नाम बदल लेने पर सवापण [सुवर्ण मुद्रा] दण्ड दिया जावे ॥१-७॥

ध्वजमूलोपस्थितस्य प्रमाणमर्घं च वैदेहकाः पण्यस्य ब्रूयुः ॥ ८ ॥ एतत्प्रमाणेनार्घेण पण्यमिदं कः क्रेतेति ॥ ९ ॥ त्रिरुद्घोषितमर्थिभ्यो दद्यात् ॥ १० ॥ क्रेतृसंघर्षे मूल्यवृद्धिः सशुल्का कोशं गच्छेत् ॥ ११ ॥ शुल्कभयात्पण्यप्रमाणं मूल्यं वा हीनं ब्रुवतस्तदतिरिक्तं राजा हरेत् ॥ १२ ॥ शुल्कमष्टगुणं वा दद्यात् ॥ १३ ॥ तदेव निविष्टपण्यस्य भाण्डस्य हीनप्रतिवर्णकेनार्घापकर्षेण सारभाण्डस्य फल्गुभाण्डेन प्रतिच्छादने च कुर्यात् ॥ १४ ॥ प्रतिक्रेतृभयाद्वा पण्यमूल्यादुपरि मूल्यं वर्धयतो मूल्यवृद्धिं राजा हरेत् ॥ १५ ॥

द्विगुणं वा शुल्कं कुर्यात् ॥ १६ ॥ तदेवाष्टगुणमध्यक्षस्य छादयतः ॥ १७ ॥ तस्माद्विक्रयः पण्यानां धृतो मितोगणितो वा कार्यः ॥१८॥ तर्कः फल्गुभाण्डाना-मानुग्रहिकाणां च ॥ १६ ॥ ध्वजमूलमतिक्रान्तानां चाकृतशुल्कानां शुल्कादष्ट-गुणो दण्डः ॥ २० ॥ पथिकोत्पथिकास्तद्विद्युः ॥ २१ ॥

राजकीय शुल्क शाला की ध्वजा के पास अपना माल रख करके व्यापारी गण, अपने माल का परिमाण और मोल बतावें, कि यह माल इतनी तोल और इतने मूल्य का है-क्या कोई खरीदना चाहता है। जब कोई माल का क्रेता खड़ा हो जावे तो तीन आवाज [एक, दो, तीन] बोल कर [नीलाम के ढंग पर] उस माल को बोली लगाने वाले के नाम पर छोड़ दे। जब क्रेता लोग, किसी माल के खरीदने पर संघर्ष [बहस] कर बैठें-तो उसके मोल में वृद्धि हो जावेगी, परन्तु वह वृद्धि और शुल्क सारा राजकीय कोश में ही जावेगा। शुल्क [चुंगी-कर] के भय से जो व्यापारी, अपने माल के तोल और मोल को कम बतावे, और जांचने पर अधिक उतरे-तो राजा उस अधिक माल को अपने खजाने में डाल देवे। यही व्यापारी को दण्ड समझना चाहिए या उस व्यापारी से उस माल का अठ गुना शुल्क [टैक्स] ले लिया जावे। जब कोई व्यापारी किसी बोरी या सन्दूक में मिला कर बढ़िया माल की बोरी या सन्दूकों के स्थान पर घटिया दिखादे और सब में भी वही माल बतावे, तो इस प्रकार उत्तम वस्तु के स्थान में घटिया भाण्ड दिखा देने पर वही पूर्वोक्त दण्ड समझ लेना चाहिए, कि या तो उसके अच्छे माल को लेकर घटिया दे दिया जावे, या अठ गुना कर ले लिया जावे। अन्य खरीदार इस माल को न खरीद ले-इस भय से जो खरीदार माल पर अधिक दाम बढ़ा दे-तो उस वृद्धि को अपने कोश में डलवा दे या उस माल पर दुगुना टैक्स लेले। यदि किसी व्यापारी के माल को चुंगी का अध्यक्ष छिपवा देवे-तो उस माल के कर से अठ गुना दण्ड-उस अध्यक्ष पर होना चाहिए। इस सब का यही अभिप्राय है, कि माल का लेन देन, बड़ा नियमित, मानानुसार और हिसाब के अनुकूल होता रहे। कोयले आदि साधारण वस्तु या थोड़ी चुंगी की वस्तुओं पर अनुमान से ही कर ले लेना चाहिए-उनके तोलने की आवश्यकता नहीं है। जो राजकीय शुल्क दिये बिना राजकीय शुल्कशाला की ध्वजा से आगे निकल जावे-तो उस पर शुल्क से अठ गुना दण्ड होना चाहिए। मार्ग पर घूमने वाले या मार्ग छोड़ कर घूमने वाले राजकीय पुरुष, उनका पता रखे ॥८-२१॥

वैवाहिकमन्वायनमौपायनिकं यज्ञकृत्यप्रसवनैमित्तिकं देवेज्याचौलोपनय-नगोदानव्रतदीक्षणादिषु क्रियाविशेषेषु भाण्डमुच्छुल्कं गच्छेत् ॥ २२ ॥ अन्यथा-

वादिनः स्तेयदण्डः ॥ २३ ॥ कृतशुल्केनाकृतशुल्कं निर्वाहयतो द्वितीयमेकमुद्रया भित्त्वा पण्यपुटमपहरतो वैदेहकस्य तच्च तावच्च दण्डः ॥ २४ ॥ शुल्कस्थानाद्गोमयपलालं प्रमाणं कृत्वापहरत उत्तमः साहसदण्डः ॥ २५ ॥ शस्त्रवर्मकवचलोहरथरत्नधान्यपशूनामन्यतमनिर्वाह्यं निर्वाहयतो यथावघुषितो दण्डः पण्यनाशश्च ॥ २६ ॥ तेषामन्यतमस्यानयने वहिरेवोच्छुल्को विक्रयः ॥ २७ ॥

जो माल विवाह सम्बन्धी हो-जो कन्या को दान में दिया गया हो-जो भेंट में मिला हो, जो यज्ञ और प्रसव (वालकोत्पत्ति) के निमित्त हो, देव पूजा, चौल [मुण्डन] उपनयन गोदान और धार्मिक व्रत विशेष के निमित्त हो-उस माल पर चुङ्गी कर नहीं लेना चाहिए। जो अन्य कार्य या व्यापार आदि के माल को भी विवाह आदि से सम्बन्ध रखने वाला वतावे-तो राजा उसे चोरी का दण्ड देवे। शुल्क दिए हुए माल के साथ विना शुल्क दिये माल, मुहर लगे माल के साथ विना मुहर के माल को छुपाकर धोखे से लेजाने वाले व्यापारी से वह वस्तु छीनली जावे या वही अठगुना शुल्क वसूल किया जावे। जो मनुष्य अपने चुङ्गी के माल को भी गौ के कण्डे या पलाल [भुस-तूड़ा] में भर कर निकाल ले जाने की चेष्टा करे-तो उसपर उत्तम साहस [उस समय का अन्तिम जुरमाने का] दण्ड दिया जावे। शस्त्र, वर्म [भिन्न २ अङ्गों के कवच] कवच 'सारे शरीर के कवच' लोह, रथ, रत्न, धान्य, और पशु आदि जिनकी राजा ने आने जाने की वन्दी करदी है, यदि कोई लावे-लेजावे-तो उसको जो राजकीय दण्ड नियत हो-वह दिया जावे और उसकी वस्तु जब्त करली जावे। इनमें से कोई वस्तु लावे-तो उसे चुङ्गी की सीमासे वाहर ही विना चुङ्गी कर के वेच देनी चाहिए ॥ २२-२७ ॥

अन्तपालः सपादपणिकां वर्तनीं गृह्णीयात्पण्यवहनस्य ॥ २८ ॥ पणिकामेकखुरस्य पशूनामर्धपणिकां क्षुद्रपशूनां पादिकामंसभारस्य माषिकाम् ॥ २९ ॥ नष्टापहृतं च प्रतिविदध्यात् ॥ ३० ॥ वैदेश्यं सार्थं कृतसारफल्गुभाण्डविचयनमभिज्ञानं मुद्रां च दत्त्वा प्रेषयेदध्यक्षस्य ॥ ३१ ॥ वैदेहकव्यञ्जन वा सार्थप्रमाणं राज्ञः प्रेषयेत् ॥ ३२ ॥

विक्री का माल लेजानेवाली गाड़ी आदि वाहनों से अन्तपाल सवापण अपनी वर्तनी (मार्ग का कर) ले लेवे। घोड़े खच्चर, गदहे आदि से एक पण, वैल आदि पशुओं पर आधा पण, वकरी, भेड़ आदि पशुओं से चौथाई पण और कंधे पर माल ले जाने वाले से एक माषक (तांवे का सिक्का) लिया जाना चाहिए। यदि किसी व्यापारी की कोई वस्तु खो जावे तो उसको ढूंढ़ कर या चोरों से छीन कर अन्तपाल दिलावे-या आप फैसला करे-क्योंकि यह

जिम्मेवारी की चौकी है। विदेश से आने वाले सार्थ (गिरोह) के घटिया और बढ़िया माल को जांचकर अन्तपाल उसपर अपनी मुहर लगादे और शुल्काध्यक्ष के पास जाने की उसको सूचना देदे। व्यापारी के वेष में रहने वाले गुप्तचर भी यथा समय इन व्यापारियों की चेष्टाओं की राजा को सूचना देते रहें॥ २८-३२॥

तेन प्रदेशेन राजा शुल्काध्यक्षस्य सार्थप्रमाणमुपदिशेत्सर्वज्ञत्वख्यापनार्थम् ॥ ३३ ॥ ततः सार्थमध्यक्षो ऽभिगम्य ब्रूयात् ॥ ३४ ॥ इदममुष्यामुष्य च सारभाण्डं फल्गुभाण्डं च न निगूहितव्यम् ॥ ३५ ॥ एष राज्ञः प्रभाव इति ॥३६॥ निगूहतः फल्गुभाण्डं शुल्काष्टगुणो दण्डः॥३७॥ सारभाण्डं सर्वापहारः ॥३८॥

इसी सूचना के अनुसार राजा, शुल्काध्यक्ष के पास इन व्यापारियों के समूह के सारे वृतान्त को अपने ज्ञान होने की सूचना निमित्त लिख भेजे या शुल्काध्यक्ष को सारा ज्ञान होने के निमित्त लिख दे। इस अमुक व्यापारी के पास इतना सार और इतना असार भाण्ड है, फिर तुम कोई कुछ न छिपाना। इस में राजा के प्रभाव का पता लगता है। जो व्यापारी घटिया माल को छुपावे-उस पर शुल्क से अठगुना दण्ड होना चाहिए-यदि सार भाण्ड (वस्तु) छुपाया जावे-तो उसकी वह वस्तु छीन लेनी चाहिए॥ ३३-३८॥

राष्ट्रपीडाकरं भाण्डमुच्छिन्द्यादफलं च यत् ।
महोपकारमुच्छुल्कं कुर्याद्बीजं तु दुर्लभम् ॥ ३९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे शुल्काध्यक्ष एकविंशो ऽध्यायः॥ २१ ॥
आदितो द्विचत्वारिंशः ॥ ४२ ॥

राष्ट्र को पीड़ित करने वाले या अच्छा फल न देने वाले विष आदि पदार्थ को राजा नष्ट करवादे, जो माल प्रजा का उपकारी हो-उसको राजा विना शुल्क आने दे-क्योंकि अच्छी वस्तु का बीज बड़ा दुर्लभ होता है॥ ३९॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में शुल्काध्यक्ष के कर्तव्यों का इक्कीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



बाईसवां अध्याय

४०वां प्रकरण

शुल्कव्यवहार।

शुल्कव्यवहारो बाह्यमाभ्यन्तरं चातिथ्यम् ॥ १ ॥ निष्क्राम्यं प्रवेश्यं च शुल्कम् ॥ २ ॥ प्रवेश्यानां मूल्यपञ्चभागः ॥ ३ ॥ पुष्पफलशाकमूलकन्दवाल्लिक्यबीजशुष्कमत्स्यमांसानां षड्भागं गृह्णीयात् ॥ ४ ॥ शङ्खवज्रमणिमुक्ताप्रवालहाराणां तज्जातपुरुषैः कारयेत्कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः ॥ ५ ॥ क्षौमदुकूलक्रिमितानकङ्कटहरितालमनः शिलाहिङ्गुलुकलोहवर्णधातूनां चन्दनागरुकटुककिण्वावराणां सुरादन्ताजिनक्षौमदुकूलनिकरास्तरणप्रावरणक्रिमिजातानामजैलकस्य च दशभागः पञ्चदशभागो वा ॥ ६ ॥

(शुल्काध्यक्ष प्रकरण के अन्तर्गत ही शुल्क व्यवहार है। किस वस्तु पर कितना शुल्क (चुंगी कर) लेना चाहिए इस निर्णय को शुल्क व्यवहार कहते हैं) यह शुल्क व्यवहार, बाह्य, आभ्यन्तर और आतिथ्य भेद से तीन तरह का है। अपने देश में उत्पन्न वस्तु पर चुंगी लेना बाह्य, अपनी राजधानी में उत्पन्न वस्तु पर चुंगी लेना आभ्यन्तर और विदेश से आने वाले माल पर चुंगी लेना आतिथ्य कहाता है। अपने देश से बाहर जाने वाले माल पर जो चुंगी हो-वह निष्क्राम्य और जो अपने देश में बाहर से आने वाले माल पर चुंगी है-वह प्रवेश्य कहाती है। बाहर से आने वाले माल पर उनके मूल्य से पांचवां भाग चुंगी का होना चाहिए। फूल, फल, शाक, मूल, कन्द, वालिक्य (वेल के फल-सीताफल-कद्दू आदि) बीज, सूखी मछली और सूखे मांस पर मूल्य से छठा भाग भी लिया जा सकता है। शङ्ख, वज्र (हीरा) मणि, मुक्ता, प्रवाल, और हारों पर उस २ वस्तु की परीक्षा जानने वाले पुरुषों से करवाने, क्योंकि उस विषय का ज्ञान करने और बहुत दिन से वेतन पाकर नौकरी करने से उनका इस विषय में पर्याप्त अनुभव बन चुका है। क्षौम (मोटा रेशमी कपड़ा) दुकूल (सूक्ष्म रेशमी वस्त्र) क्रिमितान (चीनी रेशमी वस्त्र) कङ्कट (सूत का कवच) हरताल, मैनशिल, हींगलू, लोह, वर्ण धातु (गेरू आदि) चन्दन, अगर, कटुक (पीपल मिरच आदि) मादक द्रव्य, सुरा (शराब) हाथी दांत, चमड़ा, क्षौम-दुकूल बनाने का तन्तु समूह, आस्तरण 'बिछोना' प्रावरण (ओढ़ना) अन्य रेशमी वस्त्र, बकरी तथा भेड़ की ऊन के वस्त्रों पर मूल से दशवां या पन्द्रहवां भाग चुंगी कर लेना, चाहिए ॥१-६॥

वस्त्रचतुष्पदद्विपदसूत्रकार्पासगन्धभैषज्यकाष्ठवेणुवल्कलचर्ममृद्भाण्डानां धान्यस्नेहक्षारलवणमद्यपक्वान्नादीनां च विंशतिभागः पञ्चविंशतिभागो वा ॥७॥ द्वारादेयं

शुल्कपञ्चभागम्, आनुग्राहिकं वा यथादेशोपकारं स्थापयेत् ॥ ८ ॥ जातिभूमिषु च पण्यानामविक्रयः ॥ ९ ॥ खनिभ्यो धातुपण्यादानेषु षट्छतमत्ययः ॥ १० ॥

साधारण वस्त्र, चौपाये, पक्षी, सूत, कपास, गन्ध, औषधि, लकड़ी, बांस, छाल, घी तेल आदि, क्षार, नमक, मद्य, पके हुए अन्न, आदि पर मूल्य से बीसवां या पच्चीसवां हिस्सा चुंगी कर लेना चाहिए। नगर के प्रधान द्वार का प्रवेश कर इन पदार्थों के नियत चुंगी कर से पांचवां भाग होना चाहिए। यदि देश के उपकार की वस्तु है, तो उस पर कर मुआफ होना चाहिए। जो वस्तु जहां उत्पन्न हो-वहां उसके बेचने की व्यवस्था न की जावे। खानों से कच्चे धातु निकाल लेने वाले, या खरीदने वाले, मनुष्य पर छःसौ रुपये जुरमाने की सजा होनी चाहिए ॥७-१०॥

पुष्पफलवाटेभ्यः पुष्पफलादाने चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥११॥ षण्डेभ्यः शाकमूलकन्दादाने पादोनं द्विपञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १२ ॥ क्षेत्रेभ्यः सर्वसस्यादाने त्रिपञ्चाशत्पणः ॥ १३ ॥ पणो ऽध्यर्धपणश्च सीतात्ययः ॥ १४ ॥

पुष्प और फलों के बगीचों से ही फूल फल खरीदने बेचने वाले मनुष्य पर चौवन पण (मुद्रा) दण्ड होना उचित है। शाक की वाड़ियों से शाक खरीदने वाले और बेचने वाले पर पौने बावन पण (मुद्रा) दण्ड किया जावे। अन्न के खेतों से अन्न खरीद लेने पर तरेपन पण दण्ड होना चाहिए। हल के बोने से उत्पन्न अन्य वस्तु खरीदने बेचने पर एक या डेढ़ पण (मुद्रा) दण्ड किया जावे ॥११-१४॥

अतो नवपुराणानां देशजातिचरित्रतः ।
पण्यानां स्थापयेच्छुल्कमत्ययं चापकारतः ॥ १५ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे शुल्कव्यवहारो द्वाविंशो ऽध्यायः ॥२२॥
आदितस्त्रिचत्वारिंशः ॥ ४३ ॥

इन सब बातों पर विचार करके राजा नये और पुराने पदार्थों की देश, काल और जाति के व्यवहार के अनुसार वस्तुओं के भाव नियत करदे-और जो उस आज्ञा को न माने उस पर दण्ड करना चाहिए ॥१५॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में शुल्क व्यवहार का बाईसवां अध्याय समाप्त हुआ।



तेईसवां अध्याय

४१वां प्रकरण

सूत्राध्यक्ष

ऊन और सूत के तारों के अध्यक्ष को सूत्राध्यक्ष कहते हैं, अब उसके कर्तव्यों का निर्णय किया जाता है।

सूत्राध्यक्षः सूत्रवर्मवस्त्ररज्जुव्यवहारं तज्जातपुरुषैः कारयेत् ॥ १ ॥ ऊर्णा-वल्ककार्पासतूलशणक्षौमाणि च विधवान्यङ्गाकन्याप्रव्रजितादण्डप्रतिकारिणीभी रूपाजीवामातृकाभिवृ द्धराजदासीभिर्व्युपरतोपस्थानदेवदासीभिश्च कर्तयेत् ॥ २ ॥ श्लक्ष्णस्थूलमध्यतां च सूत्रस्य विदित्वा वेतनं कल्पयेत् ॥३॥ बह्वल्पतां च ॥४॥ सूत्रप्रमाणं ज्ञात्वा तैलामलकोद्वर्तनैरेता अनुगृह्णीयात् ॥ ५ ॥

सूत्राध्यक्ष, सूत (तन्तु) कवच, वस्त्र और रज्जु का कार्य, उस कार्य में कुशल पुरुषों द्वारा करवावे। ऊन, वल्क (छाल के रेशे) कपास, सेंमल की रूई आदि, सण और क्षौमों (मोटे रेशमी वस्त्र के अंश) को विधवा, अंगहीन, कन्या, सन्यासिनी, अपराधिनी (जाति अपराध करने वाली) वेश्याओं की वृद्धा माता, वृद्धराज दासी तथा देव स्थान से बहिष्कृत देव दासियों से कतवावे। सूत की सफाई, मुटाई, गुलाई देखकर सूत्राध्यक्ष उनके वेतन (मजदूरी) का निश्चय करे। सूत की लम्बाई पर भी ध्यान रखना चाहिए। सूत के प्रमाण (लम्बाई वजन आदि) को जान कर तेल आंवले और उबटना आदि पारितोषिक रूप में देकर राजा इन विधवा आदि को अपने कार्य करने में उत्साहित करें ॥१-५॥

तिथिषु प्रतिपादनमानैश्च कर्म कारयितव्याः ॥६॥ सूत्रह्रासे वेतनह्रासः द्रव्य-सारात् ॥७॥ कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः कारुभिश्चकर्म कारयेत्प्रतिसंसर्गं च गच्छेत् ॥८॥ क्षौमदुकूलक्रिमितानराङ्कवकार्पाससूत्रवानकर्मान्तांश्च प्रयुञ्जानो गन्ध-माल्यदानैरन्यैश्चौपग्राहिकैराराधयेत् ॥ ९ ॥ वस्त्रास्तरणप्रावरणविकल्पानुत्थापयेत् ॥ १० ॥

राजा उन विधवा आदि कार्य करने वाली परिचारिकाओं को कार्य करने की तिथियों में भी कुछ अधिक देने का वचन देकर उनका मान सत्कार करके काम लेता रहे। यदि उनका सूत कम उतरने लगे तो उतना ही उनका वेतन या मजदूरी कम कर देनी चाहिए, क्योंकि वस्तु विकने पर ही दाम घटाये बढ़ाये जाते हैं। जिन कारीगरों ने काम सीखने में बहुत समय लगाया और फिर बहुत दिन से उस कार्य के करने से उनको अनुभव भी

बहुत हो रहा है-ऐसे कारीगरों से काम करवावे-और उनके साथ घूमता रहे। क्षौम [मोटे रेशमी वस्त्र] दूकूल, सूक्ष्म रेशमी कपड़े, क्रिमितान [चीनी रेशमी वस्त्र] रंकुहरन के रोमों के वस्त्र, कपास, सूत, आदि के कतवाने बुनवाने के कामों को करवाता हुआ, सूत्राध्यक्ष, गन्ध, माल्य आदि आदर की वस्तु या अन्य कृपा के लक्षण भूत पदार्थों से उनको सन्तुष्ट रखे। जब वे सन्तुष्ट दिखाईदें-तो उनसे अनेक सुन्दर २ बिस्तर-ओढ़ने, तय्यार करवावे॥ ६-१०॥

कङ्कटकर्मान्तांश्च तज्जातकारुशिल्पिभिः कारयेत् ॥११॥ याश्चानिष्कासिन्यः प्रोषितविधवा न्यङ्गा कन्यका वात्मानं बिभृयुस्ताः स्वदासीभिरनुसार्य सोपग्रहं कर्म कारयितव्याः ॥ १२ ॥ स्वयमागच्छन्तीनां वा सूत्रशालां प्रत्युषसि भाण्डवेतनविनिमयं कारयेत् ॥ १३ ॥ रूत्रपरीक्षार्थमात्रः प्रदीपः ॥ १४ ॥ स्त्रिया मुखसंदर्शने ऽन्यकार्यसंभाषायां वा पूर्वः साहसदण्डः ॥ १५ ॥ वेतनकालातिपातने मध्यमः ॥ १६ ॥ अकृतकर्मवेतनप्रदाने च ॥ १७ ॥

सूत के कवच आदि के कार्यों को भी उन २ विषय के चतुर कारीगरों से करवावे। प्रायः घर से बाहर नहीं निकलने वाली, पति के परदेश जाने से असहाय, अङ्गहीन, कन्यायें जो अपना उदर स्वयं भरना चाहती हैं, सूत्राध्यक्ष उनके पास अपनी दासी भेज कर आदर के साथ उनसे कर्म करवावे। जो स्त्रियां स्वयं सूत्रशाला में आवे-उनके परिश्रम का वेतन शीघ्र राजा देकर उनकी वस्तु बदलवादे, अर्थात् सूत लेकर अन्य रूई आदि देदे। सूत्रशाला में सूत्र के ज्ञान प्राप्त करने के उपयोगी प्रकाश तक ही दीपक जलाया जावे। स्त्रियों के मुख की ओर देखते रहने या बातचीत करने पर प्रथम साहस दण्ड [साधारण दण्ड] होना चाहिए। वेतन देने में देर करे, या बिना काम वेतन दे देवे, तो अध्यक्ष पर मध्यम दण्ड होना चाहिए॥११-१७॥

गृहीत्वा वेतनं कर्माकुर्वान्त्याः अङ्गुष्ठसंदंशं दापयेत् ॥१८॥ भक्षितापहृतावस्कन्दितानां च ॥ १९ ॥ वेतनेषु च कर्मकराणामपराधतो दण्डः ॥ २० ॥ रज्जूवर्तकैश्चर्मकारैश्च स्वयं संसृज्येत ॥ २१ ॥ भाण्डानि च वरत्रादीनि वर्तयेत् ॥ २२ ॥

वेतन लेकर काम नहीं करने वाली स्त्रियों के अंगुष्ठ कटवा देना चाहिए। जो राजकीय द्रव्य को खा जावे, अपहरण कर लेजावे, या लेकर भाग जावें। जो कर्मचारी अपराध करें सूत्राध्यक्ष उनको उनके अपराध के अनुसार वेतन का भी दण्ड दे सकता है। रज्जु वंटने वाले तथा चमड़े के कारीगरों से सूत्राध्यक्ष मिलता रहे तथा उनसे सन की वस्तु और रस्सी आदि बनवाता रहे॥१८-२२॥

सूत्रवल्कमयी रज्जूः वरत्रा वैत्रवैणवीः ।
सांनाह्या बन्धनीयाश्च यानयुग्यस्य कारयेत् ॥ २३ ॥
इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे सूत्राध्यक्षस्त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥
आदितश्चतुश्चत्वारिंशः ॥ ४४ ॥

सूत्र, सन आदि से बनायी जाने वाली रस्सियां तथा बेंत और बांसों से बनाये जाने वाले मोटे रस्से जो बांधने और कवच बनाने के कार्य में आते हैं, तथा घोड़े आदि के जूड़ों में लगते हैं सूत्राध्यक्ष उनको तय्यार करवावे ॥२३॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में सूत्राध्यक्ष के कर्मों के निरूपण का बाईसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



चौबीसवां अध्याय

४२ वां प्रकरण

सीताध्यक्ष

(हल से उत्पन्न होने वाले पदार्थों को सीता कहा जाता है।)

सीताध्यक्षः कृषितन्त्रशुल्बवृक्षायुर्वेदज्ञस्तज्ज्ञसखो वा सर्वधान्यपुष्पफलशाककन्दमूलवाल्लिक्यक्षौमकार्पासबीजानि यथाकालं गृह्णीयात् ॥१॥ बहुहलपरिकृष्टायां स्वभूमौ दासकर्मकरदण्डप्रतिकर्तृभिर्वापयेत् ॥ २ ॥ कर्षणयन्त्रोपकरणबलीवर्दैश्चैषामसङ्गं कारयेत् ॥ ३ ॥ कारुभिश्च कर्मारकुट्टाकमेदकररज्जुवर्तकसर्पग्राहादिभिश्च ॥ ४ ॥ तेषां कर्मफलविनिपाते तत्फलहानं दण्डः ॥ ५ ॥

(इस सीता अर्थात् कृषि कर्म के अध्यक्ष को सीताध्यक्ष कहते हैं, अब उसके कर्मों का निरूपण किया जाता है) सीताध्यक्ष, (कृषि विभाग का अधिकारी) कृषि शास्त्र, शुल्क शास्त्र [भूमि भेद के बताने वाले] तथा वृक्षों की आयु के बोधक शास्त्र का ज्ञान रखे। और इन शास्त्रों का अच्छा अनुभव रखने वाले कर्मचारी [अहलकारों] गण को साथ लेकर सारे धान्य, पुष्प, फल, शाक, कन्द, मूल, वाल्लिक्य [बेल के फल] क्षौम (सन-जूट आदि) और कपास के बीजों का यथा समय संग्रह करे। इन बीजों को बहुत बार हल से जोती हुई, अपनी भूमि में अपने सेवक खेती के काम करने वाले मजदूर या दण्ड [जुरमाने] के भुगतान करने के इच्छुक पुरुषों से बुवावे। कर्षणयन्त्र [खेत जोतने का विशेष यन्त्र] तथा कृषि की अन्य सामग्री और बैलों से इन मजदूरों का कोई सम्पर्क नहीं रहने दे। शिल्पी

[कारीगर] कर्मकार, कुट्टाक [ढले फोड़ने वाले] गड्ढे भरने वाले, रस्सी बटने वाले तथा सर्प पकड़ने वाले लोगों से भी इन अपने सेवकों को न मिलने दिया जावे। यदि इन कर्मचारियों के भूल या अत्र से खेती में कोई हानि हो जावे-तो जितनी हानि हुई है, उतना ही उनसे दण्ड लिया जा सकता है॥ १-५॥

षोडशद्रोणं जाङ्गलानां वर्षप्रमाणमध्यर्धमानूपानाम् ॥६॥ देश वापानाम र्धत्रयोदशाश्मकानां त्रयोविंशतिरवन्तीनाममितमपरान्तानां हैमन्यानां च कुल्यावापानां च कालतः ॥७॥

सोलह द्रोण वर्षा, जल प्रदेशों को पर्याप्त है और चौबीस द्रोण जाङ्गल [खुश्क] प्रदेशों को आवश्यक है (एक गड्ढे में वर्षा का जल भर कर उसका प्रमाण किया जाता है) देशों के भेद से वर्षा का स्थूल प्रमाण यह है, कि अश्मक देश में साढ़े तेरह द्रोण, अवन्ती (मालवा) में तेईस द्रोण, पश्चिम प्रान्त (मारवाड़) में जितनी अधिक वर्षा हो-उतना ही श्रेष्ठ है। हिमालय के रेतीले प्रदेश और नहरों के प्रदेशों में समय २ पर साधारण वृष्टि कृषि के लिए पर्याप्त मानी गई है॥ ६-७॥

वर्षात्रिभागः पूर्वपश्चिममासयोर्द्वौ त्रिभागौ मध्यमयोः सुषमारूपम् ॥ ८ ॥ तस्योपलब्धिर्बृहस्पतेः स्थानगमनगर्भाधानेभ्यः शुक्रोदयास्तमयचारेभ्यः सूर्यस्य प्रकृतिवैकृताच्च ॥ ९ ॥ सूर्याद्बीजसिद्धिः ॥ १० ॥ बृहस्पतेः सस्यानां स्तम्बकारिता ॥ ११ ॥ शुक्राद्वृष्टिरिति ॥ १२ ॥

कुल वर्षा के तीन भाग होने चाहिए-पूर्व मास श्रावण और अन्तिम मास कार्तिक में केवल एक भाग वर्षा और भादों क्वार में वर्षा के दो भाग बरस जाना अत्युत्तम माना गया है। वर्षा तब होती है जब बृहस्पति वर्षा करने वाली राशि पर स्थिति या संक्रमण करता है। तथा उदय को प्राप्त होता है। शुक्र के उदय अस्त या वर्षा करने वाली राशि पर गमन करने से भी वर्षा होती है। सूर्य अपनी प्रकृति या विकृति (मण्डली आदि बनाना) के आकारों से जब दिखाई दे, तो भी वर्षा का अनुमान किया जा सकता है। सूर्य अपनी प्रकृति में चलता रहे-तो अनाज उत्तम उत्पन्न होता है। बृहस्पति के ठीक २ चलने पर धान्यों के स्तम्ब (बाल आदि) पुष्ट होते हैं, शुक्र के ठीक २ चलने पर वर्षा का योग बनता है॥ ८-१२॥

त्रयः सप्ताहिका मेघा अशीतिः कणशीकराः।
षष्टिरातपमेघानामेषा वृष्टिः समाहिता ॥ १३ ॥

सात दिन में तीन बार वर्षा होनां उत्तम है। सारी वर्षा ऋतु में अस्सी बार बूंदों की वर्षा होनी चाहिए। साठ बार धूप खिल गई और फिर साधारण वर्षा हो गई, इस तरह बरसना चाहिए-यह वर्षा सर्वोत्तम मानी गई है॥ १३॥

वातमातपयोगं च विभजन्यत्र वर्षति।
त्रीनूकरीषांश्चजनयंस्तत्र सस्यागमो ध्रुवः॥ १४॥

वायु के चलने और धूप के खिलने को अवकाश देकर तथा तीन बार हल चलाने का अवसर छोड़कर जहां वर्षा होती है-वहां निश्चय अन्न की अधिक उत्पत्ति होती है॥ १४॥

ततः प्रभूतोदकमल्पोदकं वा सस्यं वापयेत्॥ १५॥ शालिव्रीहिकोद्रवतिलप्रियङ्गुदारकवराकाः पूर्ववापाः॥ १६॥ मुद्गमाषशैम्बया मध्यवापाः॥ १७॥ कुसुम्भमसूरकुलुत्थयवगोधूमकलायातसीसर्षपाः पश्चाद्वापाः॥ १८॥ यथर्तुवशेन वा वाजीवापाः॥ १९॥

जिस देश में जैसी वर्षा हुई हो-उसी के अनुसार बीज भी बोना चाहिए। शाली, व्रीहि (चांवल) कोदू, तिल, कांगनी दारक और वराक (लोभिया) आदि वर्षा के अपूर्व काल में अधिक बरसने पर बो देने चाहिए। मूङ्ग, उड़द, शौम्बय (छीमी) आदि मध्य में बरसने पर बोने चाहिए। कुसुम्भ (कुसूंब) मसूर, कुल्थी, जौ, गेहूँ, मटर, अलसी और सरसों वर्षा काल के अन्त में अच्छी वर्षा होने पर बोने उचित है। इस प्रकार ऋतु काल में जिसका जैसा उचित पड़े-उसी प्रकार बीजों को बो देना चाहिए॥ १५-१९॥

वापातिरिक्तमर्धसीतिकाः कुर्युः॥ २०॥ स्ववीर्योपजीविनो वा चतुर्थपञ्चभागिका यथेष्टमनवसितं भागं दद्यु रन्यत्र कृच्छ्रेभ्यः॥ २१॥

जिन खेतों में सीताध्यक्ष बुवाई न करा सके-उनमें आधी बटाई पर अन्य किसानों को बोने के लिए प्रदान करदे। जो अपने परिश्रम से ही अपना निर्वाह करते हैं, उन लोगों को खेती में से चौथा या पांचवां भाग देना चाहिए या जो उनका भाग ठहर जावे-वह देदे-परन्तु इस विषय में कोई उपद्रव खड़ा हो जावे-तो उसके अनुसार व्यवस्था करे॥ २०-२१॥

स्वसेतुभ्यः हस्तप्रावर्तिममुदकभागं पञ्चमं दद्युः॥ २२॥ स्कन्धप्रावर्तिमं चतुर्थम्॥ २३॥ स्रोतोयन्त्रप्रावर्तिमं च तृतीयम्॥ २४॥ चतुर्थं नदीसरस्तटाककूपोद्घाटम्॥ २५॥ कर्मोदकप्रमाणेन केदारं हैमनं ग्रैष्मिकं वा सस्यं स्थापयेत् २६॥ शाल्यादि ज्येष्ठम्॥ २७॥ षण्डो मध्यमः॥ २८॥ इक्षुः प्रत्यवरः

॥ २९ ॥ इक्षवो हि बह्वाबाधा व्ययग्राहिणश्च ॥ ३० ॥ फेनाघातो वल्लीफलानां परीवाहान्ताः मृद्वीकेक्षूणां कूपपर्यन्ताः शाकमूलानां हरिणपर्यन्ताः हरितकानां पाल्योलवानां गन्धभैषज्योशीरह्रीवेरपिण्डालुकादीनाम् ॥ ३१ ॥ यथास्वं भूमिषु च स्थल्याश्चानूप्याश्चौषधीः स्थापयेत् ॥ ३२ ॥

अपने ही सेतुओं (तालाबों) से हाथ से जल लाकर सींचने पर जो उत्पत्ति हो-उसका पांचवाँ भाग राजा को किसान देवें। यदि सरकारी तालाब से जल हाथों से लाया जावे-तो राजा को चौथा भाग देना उचित है। यदि छोटी २ नहरों से खेतों का भाग सींचा गया है-तो राजा को उपज का तीसरा भाग मिलना चाहिए। नदी, सरोवर, तालाब और कुंओं से जल, रहट द्वारा लेकर खेत सींचे जावें-तो राजा को चौथा भागा लेना चाहिए। अपनी जोत आदि के परिश्रम और वर्षा के अनुरूप ही खेतों में हेमन्त और ग्रीष्म की ऋतु के योग्य खरीफ़ और रबी अन्नों को सीताध्यक्ष बुवावे। शाली आदि चांवल बोना लाभ की दृष्टि से सर्व श्रेष्ठ है। षण्ड (बाल से उत्पन्न जो गेहूँ आदि) मध्यम हैं। ईख की खेती छोटी मानी गई है, क्योंकि ईख के बोने में बड़ा श्रम, कीड़े आदि की बाधा और अधिक व्यय होता है जल प्रदेश (अनूप) ककड़ी आदि फलों के लिए उत्तम है। नदी के प्रवाह से सींचा हुआ प्रदेश, अंगूर और ईख को उपयोगी है। शाक मूल आदि को कूपजल श्रेष्ठ माना गया है। हरे शाकों को झील तालाब आदि का हरित तट श्रेष्ठ है। काटे जाने योग्य, गन्ध (सुगन्धि-द्रव्य) भैषज्य (औषधि) उशीर (खस) नेत्रबाला, पिण्डालुक (कचालू सकरकन्दी) आदि के बोने के लिए बीच में तालाब (जोहड़) आदि से सम्पन्न क्षेत्र उत्तम हैं। शुष्क भूमि या जल-प्रदेश से रसीली भूमि में अन्य औषधि आदि जैसी उचित प्रतीत हों-वे भी बोई जा सकती हैं॥ २२-३२ ॥

तुषारपायनमुष्णशोषणं चासप्तरात्रादिति धान्यबीजानां त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा कोशीधान्यानां मधुघृतसूकरवसाभिः शकृद्युक्ताभिः कांडबीजानां छेदलेपो मधुघृतेन कन्दानाम्, अस्थिबीजानां शकृदालेपः, शाखिनां गर्तदाहो गोस्थिशकृद्भिः काले दौहृदं च ॥ ३३ ॥ प्ररूढांश्चाशुष्ककटुमत्स्यांश्च स्नुहिक्षीरेण वापयेत् ॥ ३४ ॥

धान के बीजों को रात में ओस में और दिन में धूप में सात दिन रात तक रखना चाहिए। कोशी धान्य (मूंग उड़द आदि) को तीन या पांच रात तक ओस में रखना और दिन में धूप में सुखाना चाहिए। मधु, घृत और शूकर की चर्बी के साथ गोबर लपेट कर ईख आदि काण्डबीजों को सुरक्षित रखना योग्य है। कन्दों (सूरण जमीकन्द

आदि) को मधु और घृत में काट काट कर सुरक्षित रखना चाहिए। गुठली के भीतर निकलने वाले बीजों को गोबर में मिलाकर रखें। आम कटहल आदि के बीजों को गो की अस्थि या गोबर से धोने के बाद गढ़े में कुछ सेंकना उचित है। समय के ऊपर जो २ वस्तु इनको आवश्यक हैं, वह अवश्य दोहद की भांति इन्हें देनी चाहिए। इनके अंकुर (निकलने पर गीली छोटी २ मछलियों का खात और स्नुही (सेंढ) के दूध से इन्हें सींचना चाहिए॥ ३३-३४॥

कार्पाससारं निर्मोकं सर्पस्य च समाहरेत्।
न सर्पास्तत्र तिष्ठन्ति धूमो यत्रैष तिष्ठति॥ ३५॥

कपास के बीज (बिनौले) और सांपकी कांचुली को इकट्ठा करले। जहां इन दोनो का धुंआ दिया जावेगा, वहां पर सर्प नही ठहरेगा॥ ३५॥

सर्वबीजानां तु प्रथमवापे सुवर्णोदकसंप्लुतां पूर्वमुष्टिं वापयेदमुं च मन्त्रं ब्रूयात्॥ ३६॥

सारे बीजों के बोने के प्रथम काल में सुवर्ण के साथ जल में भीगी हुई मुट्ठी को ही बोना चाहिए। उस बोने के समय इस मन्त्र का पाठ करे॥ ३६॥

प्रजापतये काश्यपाय देवाय च नमः सदा।
सीता मे ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च॥ ३७॥

प्रजापति काश्यप देव को सर्वदा नमस्कार है-उनके अनुग्रह से मेरी कृषि धनधान्य से पूर्ण होवे॥ ३७॥

षण्डवाटगोपालकदासकर्मकरेभ्यो यथापुरुषपरिवापं भक्तं कुर्यात्॥ ३८॥ सपादपणिकं मासं दद्यात्॥ ३७॥ कर्मानुरूपं कारुभ्यो भक्तवेतनम्॥ ४०॥ प्रशीर्णं च पुष्पफलं देवकार्यार्थं व्रीहियवमाग्रयणार्थं श्रोत्रियास्तपस्विनश्चाहरेयुः॥ ४१॥ राशिमूलमुञ्छवृत्तयः॥ ४२॥

खेतों की रखवाली करने वाले सेवक, ग्वाले, दास, तथा कर्मकर (मजदूर) पुरुषों को उनके परिश्रम अनुसार उनके भोजन की व्यवस्था करे। इस भोजन के सिवा इनको सवा पण (सवामुद्रा) मासिक भी मिलना चाहिए। अन्य कारीगरों को भी उनके परिश्रम के अनुरूप भोजन और वेतन की व्यवस्था होनी चाहिए। वृक्ष आदि से गिरे हुए पुष्प और फलों को देव कार्यों के निमित्त तथा व्रीहि, यव आदि को आग्रयण (नवसस्येष्टि) के निमित्त तपस्वी वेद पाठी इकट्ठा करलें। राशि (रास) के पीछे पड़े हुए अन्न को उच्छवृत्ति करने वाले मुनि जन ग्रहण करें॥ ३८-४२॥

यथाकालं च सस्यादि जातं जातं प्रवेशयेत् ।
न क्षेत्रे स्थापयेत्किंचित्पलालमपि पण्डितः ॥ ४३ ॥

समय के ऊपर उत्पन्न हुए अन्नादि को चतुर मनुष्य, सुरक्षित स्थानों पर संग्रहीत करें खेत में तो पीछे पलाल (तुष) आदि असार वस्तुओं को भी पुरुष न छोड़े ॥ ४३ ॥

प्रकाराणां समुच्छ्रायान्वलभीर्वा तथाविधाः ।
न संहतानि कुर्वीत न तुच्छानि शिरांसि च ॥ ४४ ॥

धान्य के रखने के स्थानों को कुछ ऊंचाई पर बनवाना चाहिए, या इस तरह के वलभी नामक स्थान बनवाये। जावें ये सब संहत (इकट्ठे) न बनवाये जावें तथा छोटे या ऊंचे शिर के भी नहीं बनाने चाहिए ॥ ४४ ॥

खलस्य प्रकरान्कुर्यान्मण्डलान्ते समाश्रितान् ।
अनग्निकाः सोदकाश्च खले स्युः परिकर्मिणः ॥ ४५ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे सीताध्यक्षः चतुर्विंशो ऽध्यायः ॥२४॥
आदितः पञ्चचत्वारिंशः ॥ ४५ ॥

मण्डल (पैर) के किनारे पर अन्न भुस आदि की (खल्यान) लगानी उचित है। खलियानों में काम करने वाले मज़दूर पानी अपने पास रखें-उनके पास अग्नि नहीं होनी चाहिए ॥ ४५ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रकार अधिकरण में सीताध्यक्ष के कर्तव्यों के निर्णय का चौबीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



पच्चीसवां अध्याय

४३वां प्रकरण

सुराध्यक्षः

गुड़ मधु और पिट्ठी से सुरा बनायी जाती है, उसके अध्यक्ष को सुराध्यक्ष कहते हैं। अब उसके कर्तव्यों का निरूपण किया जाता है।

सुराध्यक्षः सुराकिण्वव्यवहारान्दुर्गेजनपदे स्कन्धावारे वा तज्जातसुराकिण्वव्यवहारिभिः कारयेत् एकमुखमनेकमुखंवा विक्रयक्रयवशेन वा ॥१॥ षट्छतमत्ययमन्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतॄणां स्थापयेत ॥२॥ ग्रामादनिर्णयनमसंपातं च सुरायाः,

प्रमादभयात्कर्मसु निर्दिष्टानां, मर्यादातिक्रमभयादार्याणामुत्साहभयाच्च तीक्ष्णानाम् ॥ ३ ॥ लक्षितमल्पं वा चतुर्भागमर्धकुडुवं कुडुवं मर्धप्रस्थं प्रस्थंवेति ज्ञातशौचा निर्हरेयुः ॥ ४ ॥ पानागारेषु वा पिबेयुरसंचारिणः ॥ ५ ॥

सुराध्यक्ष, सुरा (शराब) बनवाने और उसके बेचने का व्यवहार, दुर्ग, राष्ट्र और स्कन्धावार (छावनी) में जिनको सुरा के मूल बीज और सुरा बनाने का अनुभव है, उन पुरुषों के द्वारा सुरा बनवावे। यह सुरा एक व्यक्ति या अनेक व्यक्तियों द्वारा बनवाई और बेची जा सकती है अर्थात् इसका एक व्यक्ति को ठेका दिया जा सकता है या बेचने खरीदने के सुभीते के अनुसार अनेक दुकानदारों के द्वारा भी बेची खरीदी जा सकती है। जिन को सुरा बनाने, बेचने और खरीदने का अधिकार है-उनके अतिरिक्त जो सुरा बनाता बेचता या खरीदता है-उसपर छः सौ रुपये जुरमाना होना चाहिए। सुरा या सुरापान किये हुए पुरुषों को ग्राम से बाहर या अन्य उत्सव आदि में प्रविष्ट नहीं होने देना चाहिए। इसे पीकर कर्मचारी अपने कार्य में भूल कर सकते हैं, बड़े २ उत्तम पुरुष भी अपनी मर्यादा को छोड़ देते हैं, और तीक्ष्ण प्रकृति के उद्धत मनुष्य शस्त्रों का अनुचित प्रयोग कर बैठते हैं। राजकीय मुद्रा से युक्त कुडुव (पाव) अर्धकुडुव (आधा पाव) चतुर्भाग कुडुव (छटांक भर के लग भग) आध सेर या सेर भर सुरा, योग्य पुरुष ले जा सकते हैं। जो पीने वाले हैं, वे पानालयों में जाकर ही सुरापान करें-और जबतक उसका नशा रहे-कहीं भी न जावें ॥ १-५ ॥

निक्षेपोपनिधिप्रयोगापहृतादीनामनिष्टोपगतानां च द्रव्याणां ज्ञानार्थमस्वामिकं कुप्यं हिरण्यं चोपलभ्य निक्षेप्तारमन्यत्र व्यपदेशेन ग्राहयेत् ॥ ६ ॥ अतिव्ययकर्तारमनायतिव्ययं च ॥ ७ ॥ न चानर्घेण कालिकां वा सुरां दद्यादन्यत्र दुष्टसुरायाः ॥ ८ ॥ तामन्यत्र विक्रापयेत् ॥ ६ ॥ दासकर्मकरेभ्यो वा वेतनं दद्यात् ॥ १० ॥ वाहनप्रतिपानं सूकरपोषणं वा दद्यात् ॥ ११ ॥

निक्षेप (धरोहर) उपनिधि (गिरवी का माल) प्रयोग (अमानत) चोरी आदि इसी प्रकार अन्य अनुचित उपायों से सञ्चित किए हुए द्रव्य को लोग प्रायः सुरापान में व्यय किया करते हैं, उनका पता लगाने को सुरा गृह अच्छी चीज है। इसी तरह स्वामी से रहित कुप्य [शस्त्र-आदि] तथा सुवर्ण को देख कर लाने वाले पुरुष को पानालय से अन्यत्र किसी बहाने से पकड़वा देवे। जो पुरुष अत्यन्त व्यय करता हो या आमदनी से अधिक खरचता हो-उसका भी सुरा गृह में पता चल जाता है। उसके भी पकड़ने का सुरागृह साधन होना चाहिए। थोड़े मूल्य, उधार या व्याज सहित मिल जाने वाले रुपये से

उत्तम सुरा को कभी न बेचे, साधारण सुरा देदी जावे-तो अधिक हानि नहीं है। इस साधारण सुरा को उत्तम सुरा की दुकानों से पृथक् ही बिकवावे। दास या सुरा के उत्पादन करने वाले कर्मकार [मज़दूरों] को यह घटिया सुरा दे देनी चाहिए तथा वाहनों के पालन और सूकरों के पोषण में भी घटिया सुरा का उपयोग करना चाहिए ॥ ६-११ ॥

पानागाराण्यनेककक्ष्याणि विभक्तशयनासनवन्ति पानोद्देशानि गन्धमाल्योदकवन्त्यृतुसुखानि कारयेत् ॥ १२ ॥ तत्रस्थाः प्रकृत्यौत्पत्तिकौ व्ययौ गूढा विद्युरागन्तूंश्च ॥ १३ ॥ क्रेतॄणां मत्तसुप्तानामलंकाराच्छादनहिरण्यानि च विद्युः ॥ १४ ॥ तन्नाशे वणिजस्तच्च दण्डं दद्युः ॥ १५ ॥ वणिजस्तु संवृतेषु कक्ष्याविभागेषु स्वदासीभिः पेशलरूपाभिरागन्तूनांवास्तव्यानां चार्यरूपाणां मत्तसुप्तानांभावं विद्युः ॥ १६ ॥

पानागारों में अनेक कक्ष्या [कमरे] होनी चाहिए उनमें सोने बिछाने के बिस्तर बिछे रहने उचित हैं। पानों के स्थानों को प्रत्येक वस्तु में सुखदायी गन्ध, माल्य और जल से सम्पन्न बनाने चाहिए। उस स्थान पर गुप्तचर अपने देश और बाहर के आए हुए पुरुषों पर खर्च होने वाली सुरा का पृथक २ पता रखे। एवं बाहर के आने वाले पुरुषों की भी जांच रखे। जो सुरापान करके वहां पर मद में उन्मत होकर लेट गए-उनके अलङ्कार, वस्त्र और नक़दी आदि की भी यही गुप्तचर निगरानी करें कि कोई खोल न ले। यदि किसी शराबी का कोई अलङ्कार चोरी चला जावे-तो सुरा बेचने वाला उतना धन और राजकीय दण्ड का देनदार होगा। सुरा बेचने वाले व्यापारी, अपने २ कमरों में छुपकर सुन्दर २ अपनी दासियों से रमण करने वाले आर्य वेष धारी नगर निवासी या बाहर के उन्मत्त पुरुषों के गुप्त भाव या चेष्टाओं का पता लगाए रखे ॥ १२-१६ ॥

मेदकप्रसन्नासवारिष्टमैरेयमधूनामुदकद्रोणं तण्डुलानामर्धाढकं त्रयः प्रस्थाः किण्वस्येति मेदकयोगः ॥ १७ ॥ द्वादशाढकं पिष्टस्य पञ्च प्रस्थाः किण्वस्य पुत्रकत्वक्फलयुक्तो वा जातिसंभारः प्रसन्नायोगः ॥ १८ ॥ कपित्थतुला फाणितं पञ्चतौलिकं प्रस्थो मधुन इत्यासवयोगः ॥ १९ ॥ पादाधिको ज्येष्ठः पादहीनः कनिष्ठः ॥ २० ॥ चिकित्सकप्रमाणाः प्रत्येकशोविकाराणामरिष्टाः ॥ २१ ॥ मेषशृङ्गित्वक्काथाभिषुतो गुडप्रतीवापः पिप्पलीमरिचसंभारस्त्रिफलायुक्तो वा मैरेयः ॥ २२ ॥ गुडयुक्तानां वा सर्वेषां त्रिफलासंभारः ॥ २३ ॥ मृद्वीकारसो मधु ॥ २४ ॥ तस्य स्वदेशो व्याख्यानं कापिशायनं हारहूरकमिति ॥ २५ ॥

मेदक, प्रसन्ना, आसव, अरिष्ट, मैरेय और मधु-ये सुरा के छः भेद हैं। एक द्रोण जल, आधे आढ़क चांवल, तीन प्रस्थ [सेर] किण्व [सुराबीज] इन को मिलाकर जो सुरा बनाई जाती है, वह मेदक कहाती है। बारह आढ़क चांवल की पिट्ठी, पांच प्रस्थ [सेर] सुरा बीज या पुत्रक वृक्ष की त्वचा और फल तथा कई वस्तु मिलाकर बने हुए जाति संभार से सुरा तैयार होती है, वह प्रसन्ना कहाती है। सौ पल कैथ के फल का सार, पांच सौ पल, गुड़ का राब, एक प्रस्थ मधु-इन सब को मिलाकर जो सुरा बनती है, वह आसव कहाती है। इस में मदकारी फल का योग सवाया कर दिया जावे-तो यह उत्तम सुरा होगी और जो उसमें चतुर्थांश न्यून कर दिया जावेगा-तो वह घटिया सुरा कहलावेगी। इनही सुराओं को चिकित्सक अपने प्रमाण से बनाले-तो यह प्रत्येक अरिष्ट अर्थात् मेदकारिष्ट आदि कहलावेगा। मेढ़ा सींगी की छाल का काथ बनाकर और उसमें गुड़ का योग देकर पीपल मिरच या हरड़ बहड़ा आंवला मिला दिया जावे-तो वह मेदक सुरा बनती है अथवा जिन सुराओं में गुड़ मिलाया जाता है, उन सब में त्रिफला मिला देना चाहिए। मुनक्का [दाख] आदि से जो सुरा बनती है, वह मधु कहाती है यह मधु नामक सुरा, कपिशा नाम नदी पर अधिक बनती है, इससे इसे कापिशायन और हरहूर नगर में बनने से हारहूरक कहाती है॥ १७-२५॥

माषकलनीद्रोणमामं सिद्धं वा त्रिभागाधिकतण्डुलं मोरटादीनां कार्षिकभागयुक्तः किण्वबन्धः ॥ २६ ॥ पाठालोध्रतेजोवत्येलावालुकमधुमधुरसाप्रियङ्गुदारुहरिद्रामरिचपिप्पलीनां च पञ्चकर्षिकः संभारयोगो मेदकस्य प्रसन्नायाश्च॥ २७ ॥ मधुकनिर्यूहयुक्ता कटशर्करा वर्णप्रसादिनी च ॥२८॥ चोचचित्रकविलङ्गगजपिप्पलीनां च पञ्चकर्षिकः क्रमुकमधुकमुस्तालोध्राणां द्विकार्षिकश्चासवसंभारः ॥ २९ ॥ दशभागश्चैषां बीजबन्धः ॥ ३० ॥ प्रसन्नायोगः श्वेतसुरायाः ॥ ३१ ॥ सहकारसुरा रसोत्तरा बीजोत्तरा वा महासुरा संभारिकी वा ॥ ३२ ॥

उड़द का कल्क या आटा एक द्रोण, कच्चे या पके हुए तंडुलों की पिट्ठी पौने दो द्रोण तथा मोरटा आदि औषधियों का एक २ कर्ष [तोला] संयोग होने पर किण्व बन्ध तय्यार होता है। पाठा, लोध, गज पीपल, इलायची, वालुक [सुगन्धि द्रव्य] मधु मुलहठी, केसर, दारु हल्दी, मिरच, पीपल इन सब वस्तुओं को पांच २ कर्ष [तोला] मिला लेवे-तो यह मेदक और प्रसन्ना नामक सुरा का किण्व अर्थात् मूल द्रव्य बनता है। मुलहठी का काढा करके उसमें रवादार शक्कर मिला देने से इस सुरा का रङ्ग बहुत अच्छा निकल आता है दाल चीनी, चीता, वायविडङ्ग और गज पीपल-ये सब एक २ कर्ष [पांच तोला] लेकर तथा

दो २ कर्ष सुपारी, मुलहटी, मोथा और लोध, कुल आठ कर्ष मिला लेने पर आसव नामक सुरा का मूल द्रव्य [किण्व] तय्यार होता है। दालचीनी आदि वस्तुओं का दसवां भाग बीज बन्ध होता है। प्रसन्ना नामक सुरा का योग ही श्वेत सुरा का योग कहाता है। आम का रस डालकर जो सुरा बनाई जावे-वह सहकार सुरा कहाती है। गुड़ का रस डालकर जो तैयार की जावे-वह रसोत्तरा, बीजबन्ध आदि औषधियों के प्रयोग से बनी हुई महा सुरा और जिसमें ये पूर्वोक्त मसाले अधिक मात्रा में पड़े हों-वह संभरिकी सुरा कहाती है॥२६-३२॥

तासां मोरटापलाशपत्तूरमेषशृङ्गीकरञ्जक्षीरवृक्षकषायभावितं दग्धकटशर्कराचूर्णं लोध्रचित्रकविलङ्गपाठामुस्ताकलिंगयवदारुहरिद्रेन्दीवरशतपुष्पापामार्गसप्तपर्णनिम्बास्फोतकल्कार्धयुक्तमन्तर्नखोमुष्टिः कुम्भीं राजपेयां प्रसादयति ॥ ३३॥ फाणितः पञ्चपलिकश्चात्र रसवृद्धिर्देयः ॥ ३४ ॥

मोरट [मरोरफली] ढाक, पत्तूर, मेढ़ासींगी, करंजवा और क्षीरवृक्ष के काढ़े में चासनी किया हुआ रवादार शक्कर का चूर्ण [बूरा] तथा इनसे आधा लोध, चीता, वाय-विडङ्ग, पाठा, मोथा, कलिङ्गयव, दारु हल्दी, कमल, सौंफ, अपामार्ग, सप्तपर्ण, नींव और आस्फोत [आखे] का कल्क [चूर्ण] करके एक मुट्ठी भरकर एक खारी प्रमाण जल भरे कुम्भ में डालने से राजाओं के पीने के योग्य वह सुरा हो जाती है। यदि उसमें पांच पल राब और मिलादी जावे-तो उसका स्वाद भी अत्यन्त बढ़ जाता है॥ ३३-३४॥

कुटुम्बिनः कृत्येषु श्वेतसुरामौषधार्थं वारिष्टमन्यद्वा कर्तुंलभेरन् ॥ ३५ ॥ उत्सवसमाजयात्रासु चतुरहःसौरिको देयः ॥ ३६॥ तेष्वननुज्ञातानां प्रहवणान्तं दैवसिकमत्ययं गृह्णीयात् ॥३७॥ सुराकिण्वविचयं स्त्रियो बालाश्च कुर्युः ॥ ३८॥ अराजपण्याः शतं शुल्कं दद्युः सुरकामेदकारिष्टमधुफलाम्लाम्लशीधूनां च ॥३९॥

गृहस्थी लोग, उत्सव के समय पर श्वेत सुरा का उपयोग करें। औषधि के निमित्त अरिष्ट या अन्य सुरा का व्यवहार किया जा सकता है। वसन्त आदि उत्सव, समाज [पंचायत] देव यात्रा आदि के समय पर सुराध्यक्ष, चार दिन की लोगों को सुरा पीने की छुट्टी देदे। यदि ये लोग, इन उत्सवों पर राज्य की आज्ञा विना ही सुरा पीने लगें-तो उत्सवादि के अन्त में प्रत्येक दिन का इनसे दण्ड लिया जावे। सुरा या सुराबीज के संग्रह को स्त्री या बालक करें। जो राजकीय दुकान से सुरा न लेकर सुरका मेदक, अरिष्ट, मधु फलाम्ल और अम्लशीधु सुराका स्वतन्त्र व्यवहार करते हैं, उनको राज कोष में सौ रुपये शुल्क दे देने चाहिए ॥ ३५-३९ ॥

अहनश्च विक्रयं व्याजीं ज्ञात्वा मानहिरण्ययोः ।
तथा वैधरणं कुर्यादुचितं चानुवर्तयेत् ॥ ४० ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे सुराध्यक्षः पञ्चविंशो ऽध्यायः ॥ २५ ॥
आदितः षट्चत्वारिंशः ॥ ४६ ॥

दैनिक विक्रय तथा तोल और मूल्य पर नियत व्याजी [टैक्स] तथा वैधरण [अन्य-शुल्क] जो नियत हो-ग्रहण किया जावे, परन्तु जो शुल्क हो-वह जहां तक हो उचित ही होना चाहिए। प्रजा के साथ अनुचित वर्ताव ठीक नहीं है ॥ ४० ॥

इति श्री कौटलीय अर्थ शास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में सुराध्यक्ष के कर्तव्यों का पचीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



छब्बीसवां अध्याय

४४वां प्रकरण

सूनाध्यक्ष।

वध्य जन्तुओंके मारने के स्थान को सूना (कमेला) कहते हैं। इसके अध्यक्ष को सूना-ध्यक्ष कहते हैं-अब इसके कर्तव्यों का निरूपण किया जाता है।

सूनाध्यक्षः प्रदिष्टाभयानामभयवनवासिनां च मृगपशुपक्षि मत्स्यानां बन्ध-वधहिंसायामुत्तमं दण्डं कारयेत् ॥१॥ कुटुम्बि नामभयवनपरिग्रहेषु मध्यमम्॥२॥ अप्रवृत्तवधानां मत्स्यपक्षिणां बन्धवधहिंसायां पादोनसप्त विंशतिपणमत्ययं कुर्यात् ॥ ३ ॥ मृगपशूनां द्विगुणम् ॥४॥ प्रवृत्तहिंसानामपरिगृहीतानां षड्भागं गृह्णीयात् ॥ ५ ॥ मत्स्यपक्षिणां दशभागं वाधिकं मृगपशूनां शुल्कं वाधिकम् ॥ ६ ॥ पक्षिमृगाणांजीवत्षड्भागमभयवनेषु प्रमुञ्चेत् ॥ ७ ॥

सरकारी तौर से जिनके नहीं मारने की घोषणा की गई उनको तथा तपोवन निवासी, मृग, पशु, पक्षी और मछलियों को जो मारता या पकड़ता है, उसपर सूनाध्यक्ष, उत्तम साहस दण्ड की व्यवस्था करे। गृहस्थियों के ऐसे स्थानों पर जो पशु आदि मारे या पकड़े-तो उन लोगों पर मध्यम दण्ड होना चाहिए। जिन के वध की कभी भी आज्ञा नहीं है, ऐसे मत्स्य पक्षि आदि का जो वध करता है। उसपर सूनाध्यक्ष पौने सत्ताईस पण (मुद्रा) जुरमाना करे तथा मृग और पशुओं

का वध करे-तो उनपर साढ़े तरेपन पण (मुद्रा) दण्ड होना चाहिए। जो जन्तु हिंसक हैं, तथा जो खुले जंगल में घूमते हैं, ऐसे पशु पक्षियों के मारने पर उनके मूल्य का छठा भाग सूनाध्यक्ष ग्रहण करे, मत्स्य और पक्षियों का दसवां या इससे कुछ अधिक लेलेना चाहिए। इसी प्रकार मृग पशुओं का भी दसवाँ या इससे कुछ अधिक लेना चाहिए। जीवित पकड़े हुए मृग और पक्षियों के छठे भाग को अभय वनों के व्यय पर लगा दे॥ १-७॥

सामुद्रहस्त्यश्वपुरुषवृषगर्दभाकृतयो मत्स्याः सारसा नादेयास्तटाककुल्योद्भवाश्चक्रौञ्चोत्क्रोशकदात्यूहहंसचक्रवाकजीवञ्जीवकभृङ्गराजचकोरमत्त कोकिलमयूरशुकमदनशारिका विहारपक्षिणो मङ्गल्याश्चान्ये ऽपि प्राणिनः पक्षिमृगा हिंसाबाधेभ्यो रक्ष्याः॥ ८॥ रक्षातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः॥ ९॥

समुद्र में उत्पन्न होने वाले हाथी, अश्व, पुरुष, वृष और गर्दभ के आकृति वाले मत्स्य नदी पर उत्पन्न सारस या तड़ाग, छोटी नदी पर उत्पन्न, क्रौंच (कुंज) कुरर, दात्यूह (जल कौआ) हंस, चक्रवाक, जीवजीवक [पक्षि विशेष] भृङ्गराज, चकोर, मत्तकोकिल, मोर तोता, मदन, सारिका [मैना] आदि क्रीड़ा योग पक्षी तथा अन्य सुंदर पक्षी, तथा मृग पक्षी आदि अन्य जन्तु हिंसा करने वाले दुष्ट प्राणियों से बचाने चाहिए। यदि सूनाध्यक्ष रक्षा करने में कोई प्रमाद करे-तो उसे प्रथम साहस दण्ड होना चाहिए॥ ८-९॥

मृगपशूनामनस्थिमांसं सद्योहतं विक्रीणीरन्॥ १०॥ अस्थिमतः प्रतिपातं दद्युः॥ ११॥ तुलाहीने हीनाष्टगुणम्॥ १२॥ वत्सो वृषो धेनुश्चैषामवध्याः॥ १३॥ घ्नतः पञ्चाशत्को दण्डः॥१४॥ क्लिष्टघातं घातयश्च॥१५॥ परिशूनमशिरःपादास्थि विगन्धं स्वयंमृतं च न विक्रीणीरन्॥ १६॥ अन्यथा द्वादशपणो दण्डः॥ १७॥

मृग और पशुओं का हड्डी रहित ताजा मांस ही बिकना चाहिए। हड्डी के साथ बेचा हुआ मांस हड्डी की बराबर और दिया जाना चाहिए। यदि तोल में मांस कम तोल दिया जावे-तो कम दिये हुए माँस से अठ गुणा माँस बेचने वाले को देना पड़ेगा। बछड़ा वृष और गाय सदा अवध्य है, जो पुरुष इन्हें मारे-उसपर पचास पण [सुवर्ण या रजत मुद्रा] का दण्ड होना चाहिए। जो मनुष्य अन्य पशुओं को क्लेश पूर्वक मारता है, उस पर भी पचास मुद्रा दण्ड होना चाहिए। सूनास्थान से अन्य मारे हुए पशु का मांस, तथा शिर पैर और अस्थि हीन मांस, दुर्गन्धपूर्ण, स्वयं मरे हुए पशु आदि का मांस नहीं बेचा जाना चाहिए। यदि कोई ऐसा करे-तो उस पर बारह पण [रुपये] दण्ड होना उचित है॥१०-१७॥

दुष्टाः पशुमृगव्याला मत्स्याश्चाभयचारिणः ।
अन्यत्र गुप्तिस्थानेभ्यो वधबन्धमवाप्नुयुः ॥ १८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे सूनाध्यक्षः षड्विंशो ऽध्यायः ॥ २६ ॥
आदितः सप्तचत्वारिंशः ॥ ४७ ॥

दुष्ट [सिंह आदि] जन्तु मृग [नील गाय आदि] व्याल [सर्पादि] तथा अभय चारी मत्स्य आदि, ये सुरक्षित वनों से अन्यत्र हों-तो मारे या पकड़े जा सकते हैं अर्थात् राजा से सुरक्षित वन में सिंह आदि दुष्ट जन्तु या मृग आदि साधारण जन्तुओं के भी मारने छुट्टी नहीं है। इन सुरक्षित स्थानों के अतिरिक्त स्वच्छन्द घूमने वाले जंगली पशु पक्षियों का बध या बन्धन किया जा सकता है ॥ १८ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थ शास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में सूनाध्यक्ष के कर्तव्यों के निर्णय का छब्बीसवां अध्याय पूरा हुआ।



सत्ताईसवां अध्याय

४५ प्रकरण

गणिकाध्यक्ष

वेश्याओं की व्यवस्था करने वाले राजकीय अधिकारी को गणिकाध्यक्ष कहते हैं, इस प्रकरण में गणिकाध्यक्ष के कार्यों का विवेचन किया जाता है।

गणिकाध्यक्षो गणिकान्वयामगणिकान्वयां वा रूपयौवनशिल्पसंपन्नां सहस्रेण गणिकां कारयेत् ॥ १ ॥ कुटुम्बार्धेन प्रतिगणिकाम् ॥ २ ॥ निष्पतिताप्रेतयोर्दुहिता भगिनी वा कुटुम्बं भरेत ॥ ३ ॥ तन्माता वा प्रतिगणिकां स्थापयेत् ॥ ४ ॥ तासामभावे राजा हरेत् ॥ ५ ॥

गणिकाध्यक्ष, गणिका (वेश्या) के वंश में उत्पन्न या गणिका के वंश में अनुत्पन्न भी रूप, यौवन और गान कला में निपुण स्त्री को एक सहस्र पण [मुद्रा] तक का मासिक वेतन देकर राजा की गणिका बनादे। उसकी साथी दूसरी अमुख्य गणिका को भी कुटुम्ब के पालनार्थ इससे आधा ५००) रुपया वेतन देना चाहिए। यदि कोई गणिका अपने स्थान (नौकरी)को छोड़ना चाहे या मर जावे-तो उसकी पुत्री या बहन उस स्थान पर नियुक्त होकर अपने कुटुम्ब का पालन करे। यदि उसके कोई पुत्री या बहन न हो-तो गणिका की

वृद्धा माता उसकी सहचरी अमुख्य गणिका को ही उसके स्थान पर नियुक्त करादे। यदि इनमें से कोई भी न रहे-तो उस द्रव्य का फिर राजा हीं स्वामी होता है ॥१-५॥

सौभाग्यालंकारवृद्धया सहस्रेण वारं कनिष्ठं मध्यममुत्तमं वारोपयेत् ॥६॥ छत्रभृङ्गारव्यजनशिविकापीठिकारथेषु च विशेषार्थम् ॥ ७ ॥ सौभाग्यभङ्गे मातृकां कुर्यात् ॥ ८ ॥ निष्क्रयश्चतुर्विंशतिसाहस्रो गणिकायाः ॥ ९ ॥ द्वादशसाहस्रो गणिकापुत्रस्य ॥ १० ॥ अष्टवर्षात्प्रभृति राज्ञः कुशीलवकर्म कुर्यात् ॥ ११ ॥

सौन्दर्य और अलङ्कार आदि की अधिकता के कारण गणिका को एक सहस्र पण वेतन की व्यवस्था की गई है। इनमें उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ-तीन भेदों की स्थापना भी कर लेनी चाहिए। मध्यम और कनिष्ठ को एक सहस्र पण मासिक से न्यून भी दिया जा सकता है। ये वेश्याएँ, छत्र, भृङ्गार [बक्स छोटी पेटी आदि] पंखा, पालकी पीठिका [आसन] और रथ पर चढ़ने के समय विशेष २ सेवा के कार्य में नियुक्त रहें। जब इनका रूप सौन्दर्य न्यून पड़ जावे-तो ये वृद्ध वेश्या माता बन जावें और नव युवति वेश्याओं की देख रेख रखे। यदि कोई वेश्या, इस कार्य से पृथक् होना चाहे, तो उसके लिए उसे चौबीस सहस्र पण शुल्क [फीस] देना चाहिए। यदि कोई गणिका पुत्र, इस कर्म से पृथक् होने की इच्छा करे-तो उसे बारह सहस्र रुपया देना होगा। यदि उसके पास इतना रुपया देने को न हो-तो आठ वर्ष तक राजा की परिचर्या करदे-तो वह मुक्त किया जा सकता है ॥६-११॥

गणिकादासी भग्नभोगा कोष्ठागारे महानसे वा कर्म कुर्यात् ॥ १२ ॥ अविशन्ती सपादपणमवरुद्धा मासवेतनं दद्यात् ॥ १३ ॥ भोगं दायमायं व्ययमायतिं च गणिकायाः निबन्धयेत् ॥ १४ ॥ अतिव्ययकर्म च वारयेत् ॥ १५॥ मातृहस्तादन्यत्राभरणन्यासे सपादचतुष्पणो दण्डः ॥ १६ ॥ स्वापतेयं विक्रयमाधानं वा नयन्त्याः सपादपञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १७ ॥ चतुर्विंशतिपणो वाक्पारुष्ये ॥ १८ ॥ द्विगुणो दण्डपारुष्ये ॥ १९ ॥ सपादपञ्चाशत्पणः पणोऽर्धपणश्च कर्णच्छेदने ॥ २० ॥

गणिका की दासी [प्रति गणिका] यदि भोग्य के योग्य न रहे-तो कोष्ठागार [भण्डार] या रसोई के काम में लगाली जावे। यदि प्रति गणिका रसोई में रहना पसन्द न करे-और किसी पुरुष के पास रहना चाहे तो उसे प्रति मासिक सवापण अपनी स्वामिनी वेश्या को देवे। गणिकाध्यक्ष, गणिका के भोग करने वाले पुरुषों की गणना, दाय भाग से प्राप्त धन, अन्य गान आदि से मिले हुए धन, व्यय [खर्च] और भविष्य में होने

वाली आमदनी को अपने रजिस्टर में लिखता रहे और वेश्याओं को अधिक व्यय करने से रोक दे। यदि वेश्या अपनी माता के सिवा अन्य किसी को आभूषण आदि का अधिकारी बनाना चाहे-तो उसे सवा चार पण होना चाहिए। यदि यह गणिका अपने कपड़े बर्तन आभूषण आदि पदार्थों को बेचे या गिरवी रखे-तो इस पर सवा पचास पण [मुद्रा] दण्ड होना चाहिए। यदि वेश्या वाणी से कठोर व्यवहार गणिकाध्यक्ष या अन्य किसी, के साथ करे-तो उस पर चौबीस पण दण्ड होना चाहिए। यदि लड़की आदि से कठोर व्यवहार कर बैठे-तो उस पर अड़तालीस पण का दण्ड होना चाहिए। और यदि वह किसी के कान आदि को छेद डाले-तो उस पर पौने बावन पण का दण्ड होना उचित है ॥१२-२०॥

अकामायाः कुमार्या वा साहसे उत्तमो दण्डः ॥ २१ ॥ सकामायाः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २२ ॥ गणिकामकामां रुन्धतो निष्पातयो वा व्रणविदारणेन वा रूपमुभ्नतः सहस्रदण्डः ॥ २३ ॥ स्थानविशेषेण वा दण्डवृद्धिरानिष्क्रयाद्विगुणात्पणसहस्रं वा दण्डः ॥ २४ ॥ प्राप्ताधिकारां गणिकां घातयतो निष्क्रयत्रिगुणो दण्डः ॥ २५ ॥ मातृकादुहितृकारूपदासीनां घात उत्तमः साहसदण्डः ॥२६॥ सर्वत्र प्रथमे ऽपराधे प्रथमः ॥ २७ ॥ द्वितीये द्विगुणः ॥२८॥ तृतीये त्रिगुणः ॥ २९ ॥ चतुर्थे यथाकामी स्यात् ॥ ३० ॥

जो कोई व्यक्ति किसी कामना रहित स्त्री पर बलात्कार करे या कुमारी कन्या के साथ व्यभिचार करे-तो उस पर उत्तम साहस [उस समय का अन्तिम] दण्ड होना चाहिए। यदि कोई सकाम स्त्री के साथ व्यभिचार करता हो-तो उसे पूर्व साहस [प्रथम कोटि] का साधारण दण्ड होना चाहिए। जो पुरुष, नहीं रहना चाहती हुई गणिका को बलपूर्वक रोककर रखता है या उसे मुक्त नहीं होने देता तथा नाक आदि काट कर उसे कुरूप बनाता है, उस पर एक सहस्र मुद्रा दण्ड होनी चाहिए। वेश्या के मर्म स्थानों की विशेषता से इस दण्ड में भी वृद्धि हो सकती है, वह एक सहस्र पण से लेकर निष्क्रय के दण्ड चौबीस सहस्र से दुगुना अड़तालीस सहस्र तक पहुंच सकता है। जो राजकीय अधिकार प्राप्त गणिकाओं को मार डालता है, उस पर निष्क्रय दण्ड से तिगुना बहत्तर सहस्र पण तक दण्ड हो सकता है। वेश्या की माता, पुत्री और रूप दासी [प्रति गणिका] के आघात पर भी उत्तम साहस दण्ड होना चाहिए। इन सारे अपराधों में जो प्रथम बार अपराध किया हो-तो इस प्रथम दण्ड व्यवस्था का प्रयोग करे। दूसरी बार अपराध करने पर दुगुना और तीसरी बार पर तिगुना और चौथी बार अपराध करने पर गणिकाध्यक्ष

को अधिकार है कि वह उसका सर्वस्व अपहरण करके उसे देश निकाला दे सकता है ॥२१-३०॥

राजाज्ञया पुरुषमनभिगच्छन्ती गणिका शिफासहस्रं लभेत ॥ ३१ ॥ पञ्च-सहस्रं वा दण्डः ॥ ३२ ॥ भोगं गृहीत्वा द्विषत्या भोगद्विगुणो दण्डः ॥ ३३ ॥ वसतिभोगापहारे भोगमष्टगुणं दद्यादन्यत्र व्याधिपुरुषदोषेभ्यः ॥ ३४ ॥ पुरुषं घ्नत्याश्चिताप्रतापो ऽप्सु प्रवेशनं वा ॥ ३५ ॥ गणिकाभरणार्थं भोगं वापहरतो ऽष्टगुणो दण्डः ॥ ३६ ॥ गणिका भोगमायतिं पुरुषं च निवेदयेत् ॥ ३७ ॥

यदि राजा की आज्ञा किसी पुरुष के पास भोग के निमित्त जाने की हुई और उस वेश्याने निषेध (इन्कार) कर दिया-तो उसको एक सहस्र कोड़े या पाँच सहस्र पण का दण्ड होना चाहिए। भोग की फीस लेकर फिर वेश्या किसी पुरुष से झगड़ बैठे-तो उसपर भोग की फीस से दुगुना दण्ड होवे। रात भर के भोग की फीस लेकर यदि वेश्या किसी पुरुष को बहाने बाजी से टरका देवे-तो रात भर की फीस का अठगुना दण्ड वेश्या पर होना चाहिए। यदि वेश्या अचानक से बीमार हो गई या पुरुष अपने पुंस्त्व की कमी से भोग नहीं कर सका-तो वेश्या को कोई दण्ड नहीं होगा। जो वेश्या अपने घर आये हुए किसी धनी पुरुष को मार डाले-तो उस वेश्या को उसी पुरुष की चिता के साथ जला दिया जावे या पीछे जल में डुबो दिया जावे। गणिका के आभूषण के धन या भोग धन (भोग की फीस) को जो पुरुष नही देता-उस पर अठगुणा दण्ड होना चाहिए। गणिका अपने भोगधन इतर आय तथा पुरुषों की सूचना गणिकाध्यक्ष को करती रहे ॥ ३१-३७ ॥

एतेन नटनर्तकगायकवादकवाग्जीवनकुशीलवप्लवकसौभिकचारणानां स्त्रीव्य-वहारिणां स्त्रियो गूढाजीवाश्च व्याख्याताः ॥३८॥ तेषां तूर्यमागन्तुकं पञ्चपणं प्रेक्षावेतनं दद्यात् ॥ ३९ ॥ रूपाजीवा भोगद्वयगुणं मासं दद्युः ॥ ४० ॥

नट नर्तक, गायक, वादक, वागूजीवन (कहानी द्वारा जीविका करने वाले) कुशीलव (भांड आदि) प्लवक (रस्सी पर खेल करने वाले) सौभिक (जादूगर) चारण (यश बखान करने वाले) तथा स्त्रियों के द्वारा अपनी जीविका चलाने वाले पुरुषों की स्त्रियाँ तथा गुप्त व्यभिचार करने वाली स्त्रियों के विषय में भी यही व्यवस्था समझनी चाहिए। इन नट आदि की कोई कम्पनी आवे और खेल दिखावे-तो वह प्रेक्षा फीस पांच पण राजा या गणिकाध्यक्ष को देवे। व्यभिचार से जीविका करने वाली स्त्रियां अपनी मासिक आमदनी में से दो दिन की आय राज कोष में प्रदान करें ॥ ३८-४० ॥

गीतवाद्यपाठ्यनृत्तनाट्याक्षरचित्रवीणावेणुमृदङ्गपरचित्तज्ञानगन्धमाल्यसंयूहनसंपादनसंवाहनवैशिककलाज्ञानानि गणिका दासी रङ्गोपजीविनीश्च ग्राहयतो राजमण्डलादाजीवं कुर्यात् ॥ ४१ ॥ गणिकापुत्रान्रङ्गोपजीविनश्च मुख्यान्निष्पादयेयुः सर्वतालावचाराणां च ॥ ४२ ॥

गाना, बजाना, पढ़ना, नाचना अभिनय करना लिखना, चित्रकारी करना वीणा वेणु और मृदङ्ग बजाना- दूसरे के चित्त को पहचानना, गन्ध, माला गूथना बनाना, पैर दबाना, वेश भूषा तथा अन्य कलाओं के ज्ञान, एवं गणिका दासी, रङ्गमञ्चपर नाचने वाली स्त्रियों की जो देख भाल पड़ताल करता है, राजा उसकी वृत्ति का प्रबन्ध अपने कोष से करे। गणिका के पुत्रों को रङ्गमञ्च से जीविका करने वालों में प्रधान माना जावे अर्थात् प्रथम उनको इस कार्य के लिए स्थान दिया जावे तथा गान विद्या के जितने स्थान हैं, इनमें सर्व प्रथम इनका ही प्रवेश हो ॥ ४१-४२ ॥

संज्ञाभाषान्तरज्ञाश्च स्त्रियस्तेषामनात्मसु ।
चारघातप्रमादार्थं प्रयोज्या बन्धुवाहनाः ॥ ४३ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे गणिकाध्यक्षः सप्तविंशो ऽध्यायः ॥२७॥
आदितो ऽष्टचत्वारिंशः ॥ ४८ ॥

चेष्टा-संकेत आदि से सारा भाव जानलेने वाली तथा प्रत्येक देश की, भाषा में पटु इन स्त्रियों को इनके बन्धु बान्धवों की आज्ञा से दुष्ट पुरुषों और शत्रु राजा के चारों के घात या उनको प्रमादित करने के निमित्त राजा, अपने काममें लावे ॥ ४३ ॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में गणिकाध्यक्ष के कर्मों का सत्ताईसवां अध्याय समाप्त हुआ।

अट्ठाईसवां अध्याय

४६वां प्रकरण

नावाध्यक्ष

नौकाओं के शुल्क आदि का ग्रहण करने वाला राजकीय अफसर नावाध्यक्ष कहाता है। अब उसके कर्मों का निरूपण किया जाता है।

नावध्यक्षः समुद्रसंयाननदीमुखतरप्रचारान्देवसरोविसरोनदीतरांश्च स्थानीयादिष्ववेक्षेत ॥ १ ॥ तद्वेलाकूलग्रामाः क्लृप्तं दद्युः ॥ २ ॥ मत्स्यबन्धका

नौकाभाटकं षड्भागं दद्युः ॥ ३ ॥ पत्तनानुवृत्तं शुल्कभागं वणिजो दद्युः॥४॥ यात्रावेतनं राजनौभिः संपतन्तः ॥ ५ ॥ शङ्खमुक्ताग्राहिणो नौभाटकं दद्युः॥६॥ स्वनौभिर्वा तरेयुः ॥ ७ ॥

नावाध्यक्ष, समुद्र में चलने वाले तथा मुख्य २ नदियों में चलने वाले नौकादि यान एवं बड़ी २ झील सरोवर तथा छोटी २ नदियों के पार करने वाली नौकाओं तथा स्थानीय आदि मार्गों का निरीक्षण करता रहे। नदी के तट या समुद्र की वेल पर बसे हुए गांव अपनी शक्ति के अनुसार कुछ शुल्क अवश्य राजा को देते रहे। मछली पकड़ने वाले, नौका का भाड़ा अपनी आमदनी का छठा भाग देवे। अपने २ गांवों के अनुरूप शुल्क वणिक् जन देते रहें। राज्य की नौकाओं पर जाने वाले इस यात्रा का वेतन (टैक्स) भी देते रहें। शंख-मुक्ता निकालने वाले अपनी आमदनी का छठा भाग दें। अपनी २ नौका से पार होने वाले भी इस शुल्क को देते रहें ॥ १-७ ॥

अध्यक्षश्चैषां खन्यध्यक्षेण व्याख्यातः ॥ ८ ॥ पत्तनाध्यक्षनिबन्धं पण्यपत्तनचारित्रं नावध्यक्षः पालयेत् ॥९॥ मूढवाताहतानां पितेवानुगृह्णीयात् ॥१०॥ उदकप्राप्तं पण्यमशुल्कमर्धशुल्कं वा कुर्यात् ॥ ११ ॥ यथानिर्दिष्टाश्चैताः पण्यपत्तनयात्राकालेषु प्रेषयेत् ॥ १२ ॥ संयान्तीर्नावः क्षेत्रानुगताः शुल्कं याचेत ॥ १३ ॥ हिंस्रिका निर्घातयेत् ॥ १४ ॥ अमित्रविषयातिगाः पण्यपत्तनचारित्रोपघातिकाश्च ॥ १५ ॥ शासकनियामकदात्ररश्मिग्राहकोत्सेचकाधिष्ठिताश्च महानावो हेमन्तग्रीष्मतार्यासु महानदीषु प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥ क्षुद्रकाः क्षुद्रिकासु वर्षास्राविणीषु ॥ १७ ॥ बद्धतीर्थाश्चैताः कार्या राजद्विष्टकारिणां तरणभयात् ॥ १८ ॥ अकाले ऽतीर्थे च तरतः पूर्वः साहसदण्डः ॥१९॥ काले तीर्थे चानिसृष्टतारिणः पादोनसप्तविंशतिपणः तरात्ययः ॥ २० ॥

इनके अध्यक्ष का वही काम समझना चाहिए, जो खान के अध्यक्ष के बताए हैं। नगर के अध्यक्ष तथा बेचने के नगर या बन्दरगाहों के नियमों का नावाध्यक्ष, भी यथा योग्य पालन करे। अनुचित वायु की झपट में आये हुए नौका समूह की नावाध्यक्ष पिताकी तरह सहायता करे। जो माल जल में भीग गया- उसका आधा शुल्क ले या शुल्क बिल्कुल ही छोड़ देवे। इनका जो समय निश्चित है, उसी के अनुसार इन्हें बेचने के बाजार की ओर रवाना करदे। चलती हुई नौका जब शुल्क स्थान पर पहुंचे-तो वहां उनसे शुल्क वसूल कर लिया जावे। जो नौका चोर डाकुओं की हों-उन को नष्ट कर दिया जावे। शत्रु के देश को जाने वाली या बेचने के बाजार या बन्दरगाहों के नियमों को नहीं मानने वाली नौका-

ओं को भी नष्ट कर देना चाहिए। शासक (नौका चलवाने का अधिकारी) नियामक (नियम में रखने वाला) दात्र ग्राहक (दांती आदि रखने वाला) रश्मि ग्राहक (रस्सी पकड़ने वाला) उत्सेचक (भीतर के पानी को उलीचने वाला) इन पाँच कर्मचारियों से युक्त बड़ी २ नौकाओं को हेमन्त और ग्रीष्म (गरमी सरदी) में एक रूपसे बहने वाली बड़ी २ नदियों में आने जाने की आज्ञा दे। वर्षा में बहने वाली क्षुद्र नदियों में क्षुद्र नौकाओं को चलने की नावाध्यक्ष आज्ञा (इजाजत) देता रहे। इन नौकाओं के बन्दरगाहों पर बड़ा प्रबन्ध रखना चाहिए। उनके द्वारा कोई राजा का शत्रु भी न उतरे। जो असमय और अमार्ग द्वारा आकर पहुंचे उसपर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए। समय पर नियत बन्दरगाह पर भी, यदि बिना आज्ञा कोई आ उतरे तो उसपर भी पौने सत्ताईस पण दण्ड होना चाहिए॥८-२०॥

कैवर्तकाष्ठतृणभारपुष्पफलवाटषण्डगोपालकानामनत्ययः सम्भाव्यदूतानुपातिनां च सेनाभाण्डप्रचारप्रयोगाणां च ॥ २१ ॥ स्वतरणैस्तरताम् ॥ २२ ॥ बीजभक्तद्रव्योपस्करांश्चनूपग्रामाणां तारयताम् ॥२३॥ ब्राह्मणप्रव्रजितबालवृद्धव्याधितशासनहरगर्भिण्यो नावध्यक्षमुद्राभिस्तरेयुः ॥२४॥ कृतप्रवेशाः पारविषयिकाः सार्थप्रमाणाः प्रविशेयुः ॥ २५ ॥

धीवर, (मछली मारने वाला) लकड़हारे, घसियारे, माली कूंजड़े, खेतों की रखवाली करने वाले और ग्वाले पर कोई दण्ड नहीं होना चाहिए। किसी चोर आदि के पकड़ने की सम्भावना, सेना आ सेना की वस्तु लेजाने या गुप्तचर के प्रयोगों में समय असमय का दण्ड नहीं है। जो अपनी नौका से तैरते हैं, उनपर भी यह दंड नहीं है। इसी तरह जलमय प्रदेशों में बसे हुए गांवों के बीज (धान्य आदि) भक्त (भोजन) अन्य द्रव्य (शाक फल आदि वस्तु) लेजाने वालोंपर भी यह दंड नहीं है। ब्राह्मण, सन्यासी, बालक, वृद्ध, रोगी, शासनहर (दूत) गर्भिणी, नावाध्यक्ष की मुद्रा से (मुहर) बिना शुल्क ही पार हो सकती है। अन्य देश के निवासी वही प्रवेश कर सकते हैं, जिनको आने की आज्ञा है या आने की आज्ञा वाले साथ के समूह में सम्मिलित हैं॥ २१-२५॥

परस्य भार्यां कन्यां वित्तं वापहरन्तं शङ्कितमाविग्नमुद्भाण्डीकृतं महाभाण्डेन मूर्ध्नि भारेणावच्छादयन्तं सद्योगृहीतलिङ्गिनमलिङ्गिनं वा प्रव्रजितमलक्ष्यव्याधितं भयविकारिणं गूढसारभाण्डशासनशस्त्राग्नियोगं विषहस्तं दीर्घपथिकममुद्रं चोपग्राहयेत् ॥ २६ ॥

दूसरे की भार्या, कन्या या धन को अपहरण करके भागते हुए को इस प्रकार पहचाने तथा जो शङ्कित (घबराया सा) दिखाई दे। बड़े भारी वस्तु समूह तथा किसी ऐसे

भार को रखे हो जिस से मुंह ढक रहा हो। जो ताजा सन्यास लिए हुए या लिङ्ग रहित सन्यासी हो और बीमारी दिखाई न देने पर भी बीमार बने हुए हों। जिस के आकार से भय के चिन्ह प्रकट हो रहे हों। जो बहु मूल्य रत्न आदि को छिपाने और किसी गुप्त लेख तथा छुपे २ वस्त्र या अग्नि प्रयोग रखने वाला हो। जिसके पास विष हो, जो लम्बे सफर में जाने वाला हो, जिसके पास अन्तपाल की मुद्रा (मुहर) न हो-ऐसे पुरुष को अनुमान करके पकड़ लेना चाहिए।॥ २७॥

क्षुद्रपशुर्मनुष्यश्च सभारो मापकं दद्यात् ॥ २७ ॥ शिरोभारः कायभारो गवाश्वं च द्वौ ॥ २८ ॥ उष्ट्रमहिषं चतुरः ॥ २६ ॥ पञ्च लघुयानम् ॥ ३० ॥ षड् गोलिङ्गम् ॥ ३१ ॥ सप्त शकटम् ॥ ३२ ॥ पण्यभारः पादम् ॥३३॥ तेन भाण्डभारो व्याख्यातः ॥ ३४ ॥ द्विगुणो महानदीषु तरः ॥ ३५ ॥क्लृप्तमानूपग्रामा भक्तवेतनं दद्युः ॥ ३६ ॥

भेड़ बकरी आदि क्षुद्र पशु, और हाथ से उठाने के बोझ से युक्त पुरुष से एक मापक (सिक्का) शुल्क लेना चाहिए। शिर और पीठ से उठाने योग्य भार से युक्त पुरुष और गाय तथा अश्व से दो माषक (सिक्का) लेना चाहिए। ऊंट और भैंस आदि से चार मापक, छोटे २ यानों से पांच मापक, मध्यम श्रेणी की बैल गाड़ी से छः मापक, बड़ी बैल गाड़ी से सात मापक तथा बीस तुला बोझ को सवा पण (सवा मुद्रा) भाड़ा होना चाहिए। इसीसे ऊंट आदि पर जाने वाले वस्तुओं के भार का भी नियम समझ लेना चाहिए। यदि बड़ी २ नदियों को पार किया जावे-तो इससे दुगुना शुल्क लेना उचित है। अनूप प्रदेश के गांव अपनी शक्ति के अनुसार कुछ भक्त (भत्ता) और वेतन के भाग का भी शुल्क अदा करते रहें ॥२७-३६॥

प्रत्यन्तेषु तराः शुल्कमातिवाहिकं वर्तनीं च गृह्णीयुः ॥ ३७ ॥ निर्गच्छतश्चामुद्रद्रव्यस्य भाण्डं हरेयुः ॥३८॥ अतिभारेणावेलायामतीर्थे तरतश्च ॥३९॥ पुरुषोपकरणहीनायामसंस्कृतायां वा नावि विपन्नायां नावध्यक्षो नष्टं विनष्टं वभ्यावहेत् ॥ ४० ॥

अपनी २ सीमा से पार करने वाले, अधिकारी, अपने २ शुल्क और वर्तनी (नियमित बन्धन) को यथा स्थान वसूल करलें। जो विना मुहर के अपनी वस्तुओं को लेजा रहा हो, उसकी वस्तुओं को जब्त करलें। अत्यन्त भार लेकर असमय में स्थान पर जो नदी को पार करता हुआ पकड़ा जावे, उसका भी माल जब्त कर लेना उचित है। शासक नियामक आदि पुरुषों से हीन या जीर्ण नौका में जो पार करने वालों को हानि

पहुंचे उनकी जो वस्तु नष्ट हो जावे, या खो जावे-तो उसको नावाध्यक्ष अपने पास से देवे ॥३७-४०॥

सप्ताहवृत्तामाषाढीं कार्त्तिकीं चान्तरा तरन् ।
कार्मिकप्रत्ययं दद्यान्नित्यं चाह्निकमावहेत् ॥ ४१ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे नावध्यक्ष अष्टाविंशो ऽध्यायः ॥ २८ ॥
आदित एकोनपञ्चाशः ॥ ४९ ॥

आषाढ़ की पूर्णमासी के एक सप्ताह से लेकर कार्तिक की पूर्णिमा के एक सप्ताह बाद तक वर्षा का टैक्स लिया जावे। नौका संचालकों का प्रधान, नौका के कामों की सूची और नित्य की आमदनी की सूचना भी नावाध्यक्ष को देता रहे ॥४१॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में नावाध्यक्ष के कर्मों का अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त हुआ।



उनतीसवां अध्याय

४७ वां प्रकरण

गोऽध्यक्ष।

गाय भैंस आदि के निरीक्षण करने वाले अध्यक्ष को गोध्यक्ष कहते हैं, अब उसके ही कार्यों का निरूपण किया जाता है।

गोऽध्यक्षो वेतनोपग्राहिकं करप्रतिकरं भग्नोत्सृष्टकं भागानुप्रविष्टकं व्रजपर्यग्रं नष्टं विनष्टं क्षीरघृतसंजातं चोपलभेत ॥ १ ॥

वेतन मात्र से गौ आदि की सेवा करने वाले सेवकों को वेतनोपग्राहिक कहते हैं। जो राजकीय पुरुषों से कुछ नियत कर पर गौ आदि की सेवा करे, वह कर प्रतिकर कहाता है। बेकार गायों को थोड़े से कर पर जो पालना करता है, वह भग्नोत्सृष्टक कहाता है। जो ग्वाला किसी बाहरी भय से अपने गो समूह की सरकार से रक्षा करावे और उसके निमित्त कुछ आमदनी का दसवां भाग राज्य में देवे-तो वह भागानु प्रविष्टक कहाता है। गाय आदि के स्वस्तिक आदि लोह के चिन्ह को अग्नि में तप्त करके चिन्ह कर देने और इस प्रकार उनकी खोने से रक्षा करने को व्रज पर्यग्र कहते हैं। गाय आदि पशुओं के खो जाने को नष्ट और मारे जाने को विनष्ट कहते है। क्षीर और क्षी विषयक

ज्ञान को क्षीर घृत सञ्जात कहते हैं। गोध्यक्ष को इन सब बातों से अच्छी जानकारी होनी चाहिए ॥१॥

गोपालकपिण्डारकदोहकमन्थकलुब्धकाः शतं शतं धेनूनां हिरण्यभृताः पालयेयुः ॥ २ ॥ क्षीरघृतभृता हि वत्सानुपहन्युरिति वेतनोपग्राहिकम् ॥ ३॥ जरद्गुधेनुगर्भिणीप्रष्ठौहीवत्सतरीणां समविभागं रूपशतमेकः पालयेत् ॥ ४ ॥ घृतस्याष्टौ वारकान्पणिकं पुच्छमङ्कचर्म च वार्षिकं दद्यादिति करप्रतिकरः ॥ ५ ॥ व्याधितान्यङ्गानन्यदोहीदुर्दोहापुत्रघ्नीनां च समविभागं रूपशतंपालयन्तस्तज्जातिकं भागं दद्यु रिति भग्नोत्सृष्टकम् ॥ ६ ॥ परचक्राटवीभयादनुप्रविष्टानां पशूनां पालनधर्मेण दशभागं दद्यु रिति भागानुप्रविष्टकम् ॥ ७ ॥

गोपालक, पिण्डारक [भैंसपालक] दोहक, मन्थक [मथने वाला] और लुब्धक [जंगली जीवों से गायों को बचाने वाला] ये पांच मनुष्य, सौ २ गवादि पशुओं की रक्षा पर नियुक्त होवें। इनको इसका नकद वेतन मिलना चाहिए, यदि इनका दूध या घृत में भाग रखा जावेगा, तो ये बछड़ों को भूखा मार देंगे। इस ढंग को वेतनोपग्राहिक कहा जाता है। बूढ़ी, दूध देने वाली, गर्भिणी, पठोरी, और बछिया-इन पांचों तरह की बीस २ गायें लेकर सौ करदी जावें और उनका एक ही पालक होवे। वह इन पशुओं का आठ वारक [चौरासी कुडुब] घृत, प्रत्येक गाय पर एक पण और राजकीय मुद्रा से अङ्कित मरे पशु का चमड़ा-प्रति वर्ष राज्य कोष में कर के रूप में देवे। इस ढंग को कर प्रतिकर कहते हैं। बीमार, अङ्ग भङ्ग एकसे ही दुही जाने वाली, कठिनाई से दुही जाने वाली, और मृत वत्सा, इन पांच प्रकार की गायों को बीस २ मिलाकर सौ गायों का जो पालन किया जावे और उनसे उत्पन्न घृत आदि का जो भाग ठहर जावे, उसे राजकीय कोष में जमा करा दिया जावे, इसे भग्नोत्सृष्टक कहते हैं। शत्रु के आक्रमण तथा जङ्गली मनुष्य या जन्तुओं के भय से जो राजकीय गोशाला में अपने पशु भेज दे और उनके पालन का शुल्क आमदनी का दशवां भाग राजकीय कोश में देवे-तो यह भागानुप्रविष्टक कहाता है ॥२-७॥

वत्सा वत्सतरा दम्या वहिनो वृषा उक्षाणश्च पुङ्गवाः, युगवाहनशकटवहा वृषभाः सूना महिषाः पृष्ठस्कन्धवाहिनश्च महिषाः वत्सिका वत्सतरी प्रष्ठौही गर्भिणी धेनुश्चाप्रजाता वन्ध्याश्च गावो महिष्यश्च, मासद्विमासजातास्तासामुपजा वत्सा वत्सिकाश्च, मासद्विमासजातानङ्कयेत् ॥ ८ ॥ मासद्विमासपर्युषितमङ्कयेत् ॥ ९ ॥ अङ्कं चिह्नं वर्णं शृङ्गान्तरं च लक्षणमेवमुपजा निबन्धयेदिति व्रजपर्यग्रम् ॥१०॥

वत्स [दूध पीने वाला] वत्सतर [दूध छोड़ देने वाला] दम्य [हल में चलने योग्य] वहिन [बोझ ढोहने में समर्थ] वृष, [सवारी के बैल] उक्षाण [सांड] ये छः प्रकार के वृषभ [बैल] होते हैं। जुआ [हल] वाहन, गाड़ी में चलने वाले, वृषभ, [सांड रूप में छोड़े हुए] केवल मांस के उपयोग में आने वाले, और पीठ पर बोझा ढोहने वाले-ये चार प्रकार के भैंसे होते हैं। वत्सिका [बछिया] वत्सरी [कुछ बड़ी बछिया] प्रष्ठौही [पठोरी] गर्भिणी, दूध देने वाली, पहलून व्याने वाली और वन्ध्या-ये गाय और भैंस दोनों होती हैं। मास, दो मास के इनके बच्चों को उपजा (लवारा) वत्स, वत्सिका कहते हैं। इस अवस्था में ही इनको लोहे के चिन्हों से दाग देना चाहिए। जो बाहर की गायें राजकीय गोशाला में प्रविष्ट हों, उनको भी महीने दो महीने में दाग दे। इनके अङ्क, स्वाभाविक चिन्ह, वर्ण, सींगों का ढंग, आदि लक्षणों को गोध्यक्ष अपने रजिस्टर में लिख लेवे। इसे व्रजपर्यग्र कहते हैं ॥८-१०॥

चोरहृतमन्ययूथप्रविष्टमवलीनं वा नष्टम् ॥ ११ ॥ पङ्कविषमव्याधिजरातोयाधारावसन्नं वृक्षतटकाष्ठशिलाभिहतमीशानव्यालसर्पग्राहदावाग्निविपन्नं विनष्टं प्रमादादभ्याबहेयुः ॥ १२ ॥ एवं रूपाग्रं विद्यात् ॥ १३ ॥ स्वयं हन्ता घातयिता हर्ता हारयिता च वध्यः ॥ १४ ॥ परपशूनां राजाङ्केन परिवर्तयिता रूपस्य पूर्वं साहसदण्डं दद्यात् ॥ १५ ॥ स्वदेशीयानां चोरहृतं प्रत्यानीय पणिकं रूपं हरेत् ॥ १६ ॥ परदेशीयानां मोक्षयितार्धं हरेत् ॥१७॥ बालवृद्धव्याधितानां गोपालकाः प्रतिकुर्युः ॥ १८ ॥ लुब्धकश्वगणिभिरपास्तस्तेनव्यालपरबाधभयमृतुविभक्तमरण्यं चारयेयुः ॥ १९ ॥ सर्पव्यालत्रासनार्थं गोचरानुपातज्ञानार्थं च त्रस्नूनां घण्टातूर्यं च बध्नीयुः ॥ २० ॥

गायों के नष्ट (खोने) होने के तीन प्रकार हैं, (१) चोरों का अपहरण कर ले जाना (२) अन्य के यूथ में मिल जाना (३) अपने यूथ से भ्रष्ट होकर जङ्गल में भटकना। कीचड़, विषमगर्त्त आदि में फंस जाना, बीमार होना, बुढ़ापा, जलप्रवाह, आहार आदि के ठीक न मिलने पर नष्ट हो जाना, वृक्ष, तट, काष्ठ, शिला आदि के आघात से मर जाना, ईश्वरीय उत्पात बिजली आदि, सिंह आदि हिंस्र जन्तु, सर्प, ग्राह, दावाग्नि आदि से नष्ट होना-ये विनष्ट कहाते हैं। यदि यह प्रमाद से हो जावे-तो जिसके प्रमाद से हो वह उस हानि को पूरा करे। इन बातों के स्वरूप को गोध्यक्ष भली प्रकार जाने। जो गाय को मारे या मरवावे, हरण करे या करवावे-उसे मृत्यु दण्ड होना चाहिए। अन्य के पशुओं पर जो कर्मचारी राजकीय चिन्ह लगा कर उसका पूर्व रूप बदल दे-तो उस पर पूर्व साहस दण्ड होना

चाहिए। चोरों से अपहृत, अपने ही देश के पशुओं को लाने वाला, प्रत्येक पशु पर एक पण स्वामी से ले लेवे। परदेश के पशुओं को चोरां से छुड़ाने वाला, उसके स्वामी से उनके मूल्य का आधा द्रव्य ले सकता है। गोपालक, वाल, वृद्ध और वीमार पशुओं की भी यथोचित देख रेख रखें। ग्वाले, लुब्धक (शिकारी) और कुत्तों के समूह रखने वाले, वनवासी मनुष्यों के द्वारा चोर, सिंह आदि से सुरक्षित अपने पशुओं को ऋतु के योग्य वन में चराते रहें। सर्प व्याल आदि जन्तुओं के डराने, कहां गाय चर रही है, इस प्रकार गोचर भूमि के ज्ञान के निमित्त डरने वाली गौओं के गले में घण्टा बांध दे ॥११-२०॥

समव्यूढतीर्थमकर्दमग्राहमुदकवतारयेयुः पालयेयुश्च ॥ २१ ॥ स्तेनव्यालसर्पग्राहगृहीतं व्याधिजरावसन्नं चावेदयेयुरन्यथा रूपमूल्यं भजेरन् ॥ २२ ॥ कारणमृतस्याङ्कचर्म गोमहिषस्य कर्णलक्षणमजाविकानां पुच्छमङ्कचर्म चाश्वखरोष्ट्राणां वालचर्मवस्तिपित्तस्नायुदन्तखुरशृङ्गास्थीनि चाहरेयुः ॥ २३ ॥ मांसमार्द्रं शुल्कं वा विक्रीणीयुः ॥ २४ ॥

सम प्रदेश, अच्छी तरह उतरने योग्य, कीचड़ आदि से रहित ग्राह के भय से हीन, जल में गोपालक गौओं को उतारे और इस प्रकार जल पान आदि कराकर उनकी पालना करे। चोर, हिंस्र जन्तु, सर्प, ग्राह आदि से पकड़े हुए, तथा व्याधि या बुढ़ापे से मरे हुए पशु की फौरन गोऽध्यक्ष को सूचना करें अन्यथा, उसे पशु के मूल्य का रुपया देना पड़ेगा। किसी कारण से मरे हुए गौ भैंस आदि का अङ्कित चर्म, अजा और भेड़ों का चिन्हित कान, अश्व, खर और ऊंटों का अङ्कित चर्म और पुच्छ, गोध्यक्ष को दिखानी चाहिए। मरे हुए पशु के वाल, चर्म, वस्ति (मूत्राशय) पित्ता, स्नायु (आंत) दांत, खुर, सींग और हड्डी तक लाकर दिखानी चाहिए। मृत पशु के गीले या सूखे मांस को वेच देवे ॥२१-२४॥

उदश्विच्छ्ववराहेभ्यो दद्युः ॥ २५ ॥ कूर्चिकां सेनाभक्तार्थमाहरेयुः ॥२६॥ किलाटो घाणपिण्याकक्लेदार्थः ॥२७॥ पशुविक्रेता पादिकं रूपं दद्यात् ॥२८॥ वर्षाशरद्धेमन्तानुभयतः कालं दुह्युः ॥ २९ ॥ शिशिरवसन्तग्रीष्मानेककालम् ॥ ३० ॥ द्वितीयकालदोग्धुरङ्गुष्ठच्छेदो दण्डः ॥ ३१ ॥ दोहकालमतिक्रामतस्तत्फलहानं दण्डः ॥३२॥ एतेन नस्यदम्ययुगपिङ्गनवर्तनकाला व्याख्याताः ॥३३॥

पशुओं की छाछ, कुत्ते वराह आदि को डाल दे। कूर्चिक [दूध दही से वनी हुई] सेना के भोजन को ले आई जावे। किलाट [फटा हुआ दूध] धाणी में वनी खल के गोले करने के उपयोग में लावे। पशु बेचने वाला सवा पण राजकीय कोश में जमा करावे।

वर्षा, शरद और हेमन्त ऋतुओं में गायों को दो समय दुहा जावे। शिशिर वसन्त और ग्रीष्म में एक काल दुहना चाहिए। द्वितीय काल में दूध निकालने वाले को अंगुष्ठ छेदन का दण्ड होना चाहिए। जो गाय के दुहने के समय गाय को आकर न दुहे-तो उसको उस दिन का वेतन नहीं मिलना चाहिए। इसी तरह नाथने वाले, बछड़ों को हिलाने वाले, जुए में जोड़ने वाले, टहलाने वाले-सेवक, समय पर आकर ये सब कुछ जिस दिन न करें-तो इनको भी उस दिन का वेतन न दिया जावे ॥२५-३३॥

क्षीरद्रोणे गवां घृतप्रस्थः ॥ ३४ ॥ पञ्चभागाधिको महिषीणाम् ॥ ३५ ॥ द्विभागाधिको ऽजावीनाम् ॥ ३६ ॥ मन्थो वा सर्वेषां प्रमाणम् ॥ ३७ ॥ भूमितृणोदकविशेषाद्धि क्षीरघृतवृद्धिर्भवति ॥ ३८ ॥

एक द्रोण गाय के दूध में से प्रस्थ (सेरभर) घी निकलता है। भैंस के एक द्रोण दूध में पांच प्रस्थ (सेर) घी निकलता है। भेड़ बकरियों के एक द्रोण दूध में दो प्रस्थ (सेर) घी निकलता है। इसके अतिरिक्त मथ कर जैसी गाय आदि पशु में जितना घी निकलता है, उसका अनुमान कर लिया जावे। भूमि, तृण, जल की उत्तमता अधिकता से भी घृत और दूध की वृद्धि हो जाती है ॥३४-३८॥

यूथवृषं वृषेणावपातयतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३९ ॥ घातयत उत्तमः ॥ ४० ॥ वर्णावरोधेन दशतीरक्षा ॥ ४१ ॥ उपनिवेशदिग्विभागे गोप्रचारान्बलान्वयतां वा गवां रक्षासामर्थ्याच्च ॥ ४२ ॥ अजादीनां षाण्मासिकीमूर्णां ग्राहयेत् ॥ ४३ ॥ तेनाश्वखरोष्ट्रवराहव्रजा व्याख्याताः ॥ ४४ ॥

यूथ के वृष को किसी दूसरे वृष (सांड) से जो लड़ावे, उसे प्रथम साहस दण्ड होना चाहिए। जो सांड को मार डाले, उसे उत्तम साहस दण्ड होना चाहिए। एक २ वर्ण की दश २ गाय मिलाकर भी उनकी रक्षा की टोली बनायी जा सकती है। गाय आदि पशुओं के चरने के लिए स्थानों की व्यवस्था उनके सुभीते, यूथ की योग्यता और उनकी रक्षा के के सुभीते अनुसार होती है। बकरी भेड़ आदि की ऊन छः मास बाद उतार ली जावे। इसी तरह अश्व, खर, ऊंट और सूकरों के समूह की पालना का ढंग भी समझ लेना चाहिए ॥३९-४४॥

बलीवर्दानां नस्याश्वभद्रगतिवाहिनां यवसस्यार्धभारस्तृणस्य द्विगुणं तुला घाणपिण्याकस्य दशाढकं कणकुण्डकस्य पञ्चपलिकं मुखलवणं तैलकुडुबो नस्यं प्रस्थः पानं मांसतुला दध्नश्चाढकं यवद्रोणं माषाणां वा पुलाकः क्षीरद्रोणमर्धाढकं वा सुरायाः स्नेहप्रस्थः क्षारदशपलं शृङ्गिबेरपलं च प्रतिपानम् ॥ ४५ ॥

पादोनमश्वतरगोखराणां द्विगुणं महिषोष्ट्राणां कर्मकरबलीवर्दानां पायनार्थानां च ॥ ४६ ॥ धेनूनां कर्मकालतः फलतश्च विधादानम् ॥ ४७ ॥ सर्वेषां तृणोदकप्राकाम्यमिति गोमण्डलं व्याख्यातम् ॥ ४८ ॥

पञ्चर्षभं खराश्वानामजावीनां दशर्षभम् ।
शत्यं गोमहिषोष्ट्राणां यूथं कुर्याच्चतुर्वृषम् ॥ ४९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे गोध्यक्ष एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥
आदितः पञ्चाशः ॥ ५० ॥

जो बैल नथ चुके और अश्वों की तरह अच्छी तरह रथआदि को ले चलने में समर्थ हैं, उन्हें आधा भार (दस तुला) हरी घास मिलनी चाहिए और साधारण सूखी घास दुगुनी होनी चाहिए। खल की एक तुला, दाना कुट्टी दश आढ़क, पांच पल नमक एक कुडुब तेल नाक में डालने, एक प्रस्थ (सेर) पीने के लिए देना चाहिए। मांस एक तुला (१०० पल) एक आढ़क दही, एक द्रोण जौ, या उड़द का आधा पका हुआ अन्न दिया जावे। दूध एक द्रोण, आधा आढ़क सुरा, घृत एक प्रस्थ, गुड़ दश पल, और सौंठ एक पल ये सब भी उनके भोजन में देना चाहिए, अश्वतर (खचर) और गोखरों को एक हिस्सा (चौथाई) कम करके देना चाहिए। इससे दुगुना भोजन, भैंसे और ऊंटों को होना चाहिए। खेतों में काम करने वाले बैल तथा दूध देने वाली गायों को भी दुगुनी भोजन सामग्री कर देना चाहिए। दूध देने वाली गाय और काम करने वाले बैलों की समयानुसार खाद्य सामग्री का निश्चय करे, परन्तु सबको घास तो यथेष्ट मिलनी चाहिए-इस प्रकार इस गो मंडल के भोजन की व्यवस्था की गई है। खर और अश्वों के झुण्ड में प्रतिशत पांच सांड छोड़ने चाहिए। भेड़ और बकरियों में प्रतिशत दश, गर्भ स्थापन करने वाले मैंढे और बकरे होने उचित हैं। तथा गाएं, भैंस और ऊंटों के प्रतिशत झुण्ड में चार सांड (गर्भ धारक) होने चाहिए ॥ ४५-४९ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थ शास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में गौध्यक्ष के कर्तव्यों का पच्चीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



तीसवां अध्याय

४८वां प्रकरण

अश्वाध्यक्ष

राजकीय अश्वोंके अध्यक्ष को अश्वाध्यक्ष कहते हैं, अब उसके कर्मों का वर्णन किया जाता है।

अश्वाध्यक्षः पण्यागारिकं क्रयोपागतमाहवलब्धमाजातं साहाय्यकागतकं पणस्थितं यावत्कालिकं वाश्वपर्यग्रं कुलवयोवर्णचिन्हवर्गागमैर्लेखयेत् ॥ १ ॥ अप्रशस्तन्यङ्गव्याधितांश्चावेदयेत् ॥ २ ॥ कोशकोष्ठागाराभ्यां च गृहीत्वा मासलाभमश्ववाहश्चिन्तयेत् ॥ ३ ॥

अश्वाध्यक्ष, बिकने को आए हुए, मोल खरीदे हुए, युद्ध में छीने हुए, अपने घर में उत्पन्न हुए, सहायता के बदले में प्राप्त हुए, आधि (गिरवी) में रखे हुए, कुछ समय को धरोहर के ढंग पर आये हुए, अश्व समूह के कुल [अरब फारस आदि] वय, वर्ण, चिन्ह वर्ग [किस्म] तथा उनके आने के स्थान का नाम [अपने रजिस्टर में] लिख लेवे। बेढंगे अङ्ग भङ्ग और बीमार अश्वों को उनकी चिकित्सा आदि के लिए अश्वाध्यक्ष भेजता रहे। कोष [खजाना] और कोष्ठागार [भण्डार] से महीने भर का व्यय लेकर अश्ववाह उन अश्वों के सुधार की व्यवस्था का चिन्तन करे॥ १-३ ॥

अश्वविभवेनायतामश्वायामद्विगुणविस्तारां चतुर्द्वारोपावर्तनमध्यां सप्रग्रीवां प्रद्वारासनफलकयुक्तां वानरमयूरपृषतनकुलचकोरशुकशारिकाभिराकीर्णां शालां निवेशयेत् ॥ ४ ॥ अश्वायामचतुरश्रश्लक्ष्णफलकास्तारं सखादनकोष्ठकं समूत्रपुरीषोत्सर्गमेकैकशः प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा स्थानं निवेशयेत् ॥ ५ ॥ शालावशेन वा दिग्विभागं कल्पयेत् ॥ ६ ॥ वडवावृषकिशोराणामेकान्तेषु ॥ ७ ॥

अश्वों की गणना के अनुसार लम्बी चौड़ी प्रत्येक अश्वके लिए उसकी लम्बाई चौड़ाई से दुगुनी विस्तार वाली, चारद्वारों से युक्त, अश्वों के घूमने के योग्य, बरामदे से सुशोभित प्रधान द्वार में सुन्दर २ बैठने के स्थान से सुसम्पन्न, वानर, मयूर, हिरन, नेवला चकोर, तोता, और मैना आदि सुन्दर जन्तुओं से भरी हुई घुड़साल बनवानी चाहिए। अश्व की लम्बाई के अनुकूल चकोर, सुथरी, चिकने फलक [फर्श] से संयुक्त, खादन कोष्ठ (ठाण) के सहित पुरीष और मूत्रोत्सर्ग के योग्य प्रत्येक अश्व को प्रथक् २ पूर्व या उत्तर मुख वाली शाला बनानी उचित है। जिस ढङ्ग की घुड़साल हो उसी तरह का अश्वों के बंधने

का विभाग करना उचित है। घोड़ी, गर्भधारण करने वाले अश्व और नव युवक अश्वों को पृथक् २ बाँधा जावे ॥ ६-७ ॥

वडवायाः प्रजातायास्त्रिरात्रं घृतप्रस्थः पानम् ॥ ८ ॥ अत ऊर्ध्वं सक्तुप्रस्थः स्नेहभैषज्यप्रतिपानं दशरात्रम् ॥ ९ ॥ ततः पुलाको यवसमार्तवश्चाहारः ॥ १० ॥ दशरात्रादूर्ध्वं किशोरस्य घृतचतुर्भागः सक्तुकुडुवः ॥ ११ ॥ क्षीरप्रस्थश्चाहार आषण्मासादिति ॥ १२ ॥ ततः परं मासोत्तरमर्धवृद्धिर्यवप्रस्थ आत्रिवर्षात् ॥ १३ ॥ द्रोण आचतुर्वर्षादिति ॥ १४ ॥ अत ऊर्ध्वं चतुर्वर्षः पञ्चवर्षो वा कर्मण्यः पूर्णप्रमाणः ॥ १५ ॥

जब घोड़ी बच्चा उत्पन्न करे, उस समय तीन दिन तक उसे सेर सेर भर घी पिलाया जावे। इसके अनन्तर एक सेर घृत और औषधियों के साथ दस रात तक खाने को दिया जावे। फिर आधा पका हुआ जौ आदि का दलिया, और ऋतु के अनुसार घास खाने को देना चाहिए। दस दिन के अनन्तर उस बच्चे को भी एक कुडुव सक्तु (कलिया) घी मिलाकर खिलाया जावे और छः महीने तक एक एक सेर दूध उसके भोजन को नियत हो। इस के अनन्तर प्रत्येक मास में आधा २ सेर बढ़ाकर एक सेर जौ के सत्तू से आरम्भ करके तीन वर्ष तक खिलाना चाहिए। तीन वर्ष से चार वर्षकी आयु तक उस बच्चे को एक द्रोण भोजन मिलना चाहिए। चार वर्ष या पांच वर्ष का अश्व, सब कुछ कार्य में समर्थ हो जाता है-इससे उसके भोजन का प्रमाण भी बड़े अश्व के समान ही मानना उचित है ॥८-१५॥

द्वात्रिंशदङ्गुलं मुखमुत्तमाश्वस्य पञ्चमुखान्यायामो विंशत्यङ्गुला जङ्घा चतुर्जङ्घ उत्सेधः ॥ १६ ॥ त्र्यङ्गुलावरं मध्यमावरयोः ॥ १७ ॥ शताङ्गुलः परिणाहः ॥ १८ ॥ पञ्चभागावरं मध्यमावरयोः ॥ १९ ॥ उत्तमाश्वस्य द्विद्रोणं शालिव्रीहियवप्रियङ्गूणामर्धं शुष्कमर्धसिद्धं वा मुद्गमाषाणां वा पुलाकः ॥२०॥ स्नेहप्रस्थश्च, पञ्चपलं लवणस्य, मांसं पञ्चाशत्पलिकं, रसस्याढकं द्विगुणं वा दध्नः पिण्डक्लेदनार्थः; क्षारपञ्चपलिकः सुरायाः प्रस्थः पयसो वा द्विगुणः प्रतिपानम् ॥ २१ ॥

उत्तम अश्व का मुख बत्तीस अंगुल का होता है। पांच मुख अर्थात् एक सौ साठ अंगुल तक उसकी लम्बाई, बीस अंगुल की जंघा, और अस्सी अंगुल की ऊंचाई मानी गई है। इससे प्रत्येक स्थान में तीन अंगुल न्यूनता वाला, मध्यम और मध्यम से भी तीन २ अंगुल न्यूनताधारी कनिष्ठ अश्व होता है। उत्तम अश्व की मुटाई सौ अंगुल होती

है। अस्सी अंगुल मोटाई मध्यम और चौसठ अंगुल मोटाई कनिष्ठ अश्व की मानी जाती है। उत्तम अश्व को शाली, व्रीहि, जौ, कांगनी, आदि अन्न, आधे सूखे या आधे पकाये हुए तथा मूंग या उड़द का पुलाक [सांदा] बनाकर दो द्रोण परिमाण में खाने को देना चाहिए। घृत तेल, एक प्रस्थ [सेर] लवण पांच पल, मांस पचास पल, दूध आदि का रस, एक आढ़क, दही दो आढ़क उस अन्न के गीला करने को होना चाहिए। गुड़ पांच पल, सुरा एक सेर, और दूध दो सेर मध्यान्होत्तर में प्रत्येक उत्तम अश्व को पीने को मिलना चाहिए ॥१६-२१॥

दीर्घपथभारक्लान्तनां च खादनार्थं स्नेहप्रस्थो ऽनुवासनं कुडुबो नस्यकर्मणः यवसस्यार्धभारस्तृणस्य द्विगुणः षडरत्निः परिक्षेपः पुञ्जीलग्राहो वा ॥ २२ ॥ पादावरमेतन्मध्यमावरयोः ॥ २३ ॥ उत्तमसमो रथ्यो वृषश्च मध्यमः ॥ २४ ॥ मध्यमसमश्चावरः ॥ २५ ॥ पादहीनं वडवानां पारशमानां च ॥ २६ ॥ अतो ऽर्धं किशोराणां च ॥ २७ ॥ इति विधायोगः ॥ २८ ॥

लम्बे मार्ग [सफर] के भार से थके हुए अश्व के खाने के लिए एक प्रस्थ घृत तथा अनुवासन (थकान उतारने को चिकनाई के साथ औषधियों का रस) और नस्य कर्म (नाक में डालने को एक कुडुव घृत पृथक् लेवे। घास आधा भार दस तुला) तृण घास (सूखा) एक भार (वीस तुला) तथा छः हाथ या कोली भरके सूखा घास डाला जा सकता है। मध्यम अश्व को इससे पौना और साधारण अश्व को इससे आधा भोजन माना गया है। रथ में जोड़ा हुआ या घोड़ियां गर्भ धारण में नियुक्त किया हुआ मध्यम अश्व भी होवे-तो भी उसको उत्तम के समान ही भोजन मिलना चाहिए। इसी तरह अवर (साधारण) अश्व की परिपाटी है अर्थात् रथ में जुड़े हुए या गर्भ धारण करने में लगे हुए उत्तम मध्यम और साधारण तीनों प्रकार के अश्वों को एकसा भोजन मिलना चाहिए, घोड़ी या खचरियों को उत्तम अश्व से पौना भोजन मिलना ठीक है। बच्चों को इससे आधा ही पर्याप्त है। यहां तक अश्वों के भोजन विधि का वर्णन हुआ ॥ २२-२८ ॥

विधापाचकसूत्रग्राहकचिकित्सकाः प्रतिस्वादभाजः ॥ २९ ॥ युद्धव्याधि-जराकर्मक्षीणाः पिण्डगोचरिकाः स्युः ॥ ३० ॥ असमरप्रयोग्याः पौरजानपदाना-मर्थेन वृषा वडवास्वायोज्याः ॥ ३१ ॥ प्रयोग्यानामुत्तमाः काम्बोजकसैन्धवार-ट्टजवनायुजाः ॥ ३२ ॥ मध्यमा बाह्लीकपापेयकसौवीरकतैतलाः ॥ ३३ ॥ शेषाः प्रत्यवराः ॥ ३४ ॥

अश्वों के भोजन पकाने वाले, रस्सी पकड़ने वाले, (सईस) और चिकित्सकों को भी इन अश्वों के व्यय के भाग में ही सम्मिलित रखना चाहिए। युद्ध, व्याधि बुढ़ापा आदि के कारण काम करने में असमर्थ अश्वों को उदर पूर्तिमात्र भोजन मिलना चाहिए जो शक्तिशाली अश्व युद्ध में किसी कारण से काम में न आ सके-वे परदेश के स्वार्थ के लिए कूप रूपसे छोड़ दिए जावें-जो प्रजाकी घोड़ियों में गर्भ धारण करने के काम में आते रहें। युद्ध के उपयोगी अश्वों में कम्बोज (काबुल) सैंधव (सिंध) आरट्ट (पञ्जाब का प्रदेश) वनायुज (अरब) देशोत्पन्न अश्व सर्व श्रेष्ठ माने गए हैं। बाल्हीक (बलख) या पञ्जाब पापेयक (सीमा प्रान्त) सौवीरक (राजपूताना) और तितल देशोत्पन्न अश्व मध्यम माने गए हैं। इन के अतिरिक्त देशों में उत्पन्न अश्व साधारण होते हैं॥ २६-३४॥

तेषां तीक्ष्णभद्रमन्दवशेन सांनाह्यमौपवाह्यकं वा कर्म प्रयोजयेत्॥ ३५॥ चतुरश्रं कर्माश्वस्य सांनाह्यम्॥ ३६॥ वल्गनो नीचैर्गतो लङ्घनो धोरणो नारोष्ट्रश्चौपवाह्याः॥ ३७॥ तत्रोपवेणुको वर्धमानको यमक आलीढप्लुतः (वृथाट्ट ? पृथ ? पूर्व) गस्त्रिकचाली च वल्गनः॥ ३८॥ स एव शिरःकर्णविशुद्धो नीचैर्गतः षोडशमार्गो वा॥ ३९॥ प्रकीर्णकः प्रकीर्णोत्तरा निषण्णः पार्श्वानुवृत्त ऊर्मिमार्गः शरभक्रीडितः शरभप्लुतः त्रितालो बाह्यानुवृत्तः पञ्चपाणिः सिंहायतः स्वाधूतः क्लिष्टः श्लिगितो बृंहितः पुष्पाभिकीर्णश्चेति नीचैर्गतमार्गाः॥ ४०॥

इन अश्वों को तीक्ष्ण (तीव्र) भद्र (मध्य) और मन्द गति के अनुसार युद्ध सवारी और खेल कूद के कार्य में लगाना चाहिए। युद्ध सम्बन्धी प्रत्येक कार्य के करने में समर्थ अश्व के काम को सानाह्य माना जाता है। वल्गन, नीचैर्गत, लंघन धोरण और नारोष्ट ये अश्वोंकी गति औपवाह्य कहाती है। गोलमण्डलाकार घूमने को वल्गन कहते हैं। औपवेणुक (एक हाथ के घेर में घूमना) वर्धमानक (उतने ही घेरे में कई बार घूमना) यमक (दो पैरों में एक साथ घूम जाना) आलीढप्लुत [छलांग मारना] पूर्वंग [शरीर के पूर्व भाग को घूमते हुए अधिक मोड़ना] त्रिकचाली [पृष्ठ वंश और पिछली टांगों के आधार पर [घूमना]इस प्रकार वल्गन छः प्रकार का होता है। जब शिर और कान में कोई विकार न आवे-तो उस वल्गन गति को ही नीचैर्गत कहते हैं। इसके सोलह भेद हैं। प्रकीर्णक [सारी चालें मिली होना] प्रकीर्णोत्तर (एक चाल का मुख्य होना) निषण्ण (पृष्ठ का न कंपाना) पार्श्वानुवृत्त[एक और तिरछी चाल करना] ऊर्मिमार्ग [लहरों की तरह उछलना] शरभक्रीडित (शरभ पक्षी की तरह उछलना) शरभप्लुत [शरभ की तरह कूदना] त्रिताल

तीन पैरों से चलना] वाह्यानुवृत्त [मण्डलाकार चलना] पञ्चपाणि (एक पैर को दो बार उठाना) सिंहायत [सिंह की तरह डग भरना] स्वाधूत (लम्बे कूद कर चलना) क्लिष्ट (बिना सवार भी ठीक २ चलना) श्लिङ्गित (अगले भाग को झुकाकर चलना) बृंहित [अगले भाग को ऊंचा करके चलना] पुष्पाभिकीर्ण [इधर उधर झपटकर चलना] ये सोलह प्रकार नीचैर्गत गति के है ॥ ३५-४० ॥

कपिप्लुतो भेकप्लुत एकप्लुत एकपादप्लुतः कोकिलसंचार्युरस्यो वकचारी च लङ्घनः ॥ ४१ ॥ काङ्को वारिकाङ्को मायूरोऽर्धमायूरो नाकुलो ऽर्धनाकुलो वाराहो ऽर्धवाराहश्चेति धोरणः ॥ ४२ ॥ संज्ञाप्रतिकारो नारोष्ट्र इति ॥ ४३ ॥

कूदने को लङ्घन कहते हैं। कपिप्लुत [बन्दर की तरह कूदना] एकप्लुत [हरिण की तरह कूदना] एकपादप्लुत [एक पैर से कूदना] कोकिल संचारी 'कोयल की तरह कूद कर चलना' उरस्य 'छाती ऊंची करके कूदना' वकचारी 'बगुले की तरह उछलकर चलना' ये सात लङ्घन के प्रकार हैं। धीरे २ चली जाने वाली चाल को धोरण कहते हैं। काङ्क [बगुले की तरह धीरे २ चलना] वारिकाङ्क (बतख की तरह चलना) मायूर 'मोर की तरह चलना' अर्ध मायूर 'मोर के बच्चे की तरह चलना' नाकुल 'नोले की तरह चलना, अर्धनाकुल 'कुछ २ नकुल की तरह चलना' वाराह 'सूकर की तरह चलना' अर्धवाराह 'कुछ २ सूकर की तरह चलना' इस प्रकार धोरण गति के सात भेद हैं। संकेत के अनुसार अश्वका चलना नारोष्ट्र कहाता है-यहां तक औपवाह्य गतियों का वर्णन हुआ ॥ ४१-४३ ॥

षण्णव द्वादशेति योजनान्यध्वा रथ्यानां, पञ्चयोजनान्यर्धाष्टमानि दशेति पृष्ठवाह्यानामश्वानामध्वा ॥४४॥ विक्रमो भद्राश्वासो भारवाह्य इति मार्गाः ॥४५॥ विक्रमो वल्गितमुपकण्ठमुपजवो जवश्च धाराः ॥४६॥ तेषां बन्धनोपकरणं योग्याचार्याः प्रतिदिशेयुः ॥ ४७ ॥ सांग्रामिकं रथाश्वालंकारं च सूताः ॥ ४८ ॥ अश्वानां चिकित्सकाः शरीरह्रासवृद्धिप्रतीकारमृतुविभक्तं चाहारम् ॥ ४९ ॥ सूत्रग्राहकाश्वबन्धकयावसिकविधापाचकस्थानपालकेशकारजाङ्गलीविदश्च स्वकर्मभिरश्वानाराधयेयुः ॥ ५० ॥

रथ में जोते जाने वाले अश्वों को छः नौ और बारह योजन तक लेजाया सकता है अर्थात् छः साधारण नौ मध्यम और उत्तम अश्व बारह योजन तक ले जाया जा सकता है। पीठ पर बोझा ढोहने वाले अश्वों का मार्ग पांच, साढ़े सात और दश योजन तक का माना गया है। इन तीनों अश्वों की विक्रम 'मन्द' भद्रा श्वास 'मध्यम' और भार वाह्य 'तीव्र'

तीन गति होती हैं। कोई अश्व धीरे २ चलता है, कोई चौकन्ना होकर चलता है। कोई कूद कर और कोई पहिले तेज और पीछे धीरे चलने लगता है। इन सब चालों का नाम धारा है। इनके बन्धन और आभूषण का प्रकार योग्य आचार्य सिखावे। संग्राम के योग्य रथ अश्व और अलङ्कारों का ढङ्ग सारथि बताते हैं। अश्वों के शरीर की हानि, वृद्ध उनके रोग का प्रतिकार और ऋतु के अनुरूप भोजन व्यवस्था उनके चिकित्सक करें। सूत्र ग्राहक 'सईस' अश्व बन्धक 'अश्वों के बाँधने वाले' यावसिक 'घास लाने वाला' विधापाचक 'उनका अन्नपाचक' स्थानपाल 'घुड़साल को साफ करने वाला' केशाकार 'बालों को साफ करने वाला' तथा जङ्गलीविद 'जंगली जड़ी बूटियोंको पहचानने वाले' अपने २ कामों से अश्वों की सेवा करें ॥ ४४-५० ॥

कर्मातिक्रमे चैषां दिवसवेतनच्छेदनं कुर्यात् ॥ ५१ ॥ नीराजनोपरुद्धं वाहयतश्चिकित्सकोपरुद्धं वा द्वादशपणो दण्डः ॥ ५२ ॥ क्रियाभैषज्यसङ्गेन व्याधिवृद्धौ प्रतीकारद्विगुणो दण्डः ॥ ५३ ॥ तदपराधेन वैलोम्ये पत्रमूल्यं दण्डः ॥ ५४ ॥ तेन गोमण्डलं खरोष्ट्रमहिषमजाविकं च व्याख्यातम् ॥ ५५ ॥

इन कर्मचारियों में जो जिस दिन अपना काम न करे-उस दिन का उसका वेतन काट लिया जावे। नीराजना 'अन्वोत्सव' और चिकित्सा के लिए रोके हुए अश्वों को जो जोत देता है, उसपर बारह पण दण्ड होना उचित है। अश्व की चिकित्सा क्रम के विरुद्ध होने या व्याधि के बढ़जाने पर चिकित्सा करने पर इस प्रमाद का अश्वाध्यक्ष को चिकित्सा में हुए व्यय से दुगुना दण्ड होना चाहिए। प्रमाद से रोग बढ़ने पर चिकित्सा ठीक हुई-तो भी अश्व के मूल्य का अश्वाध्यक्ष पर दण्ड होना चाहिए। इसी तरह गो मण्डल, खर, ऊंट भैंसे, बकरी और भेड़ की व्यवस्था है। समझ लेनी चाहिए ॥ ५१-५५ ॥

द्विरह्नः स्नानमश्वानां गन्धमाल्यं च दापयेत् ।
कृष्णसंधिषु भूतेज्याः शुक्लेषु स्वस्तिवाचनम् ॥ ५६ ॥

शरद और ग्रीष्म ऋतु में अश्वों को दो बार स्नान कराया जावे। उसके अनन्तर उसे गन्ध और माला भी पहनानी चाहिए। कृष्ण पक्ष में अश्वों के निमित्त भूतबलि और शुक्ल पक्ष में उनके निमित्त स्वस्तिवाचन होना चाहिए।॥ ५६ ॥

नीराजनामाश्वयुजे कारयेन्नवमेऽहनि ।
यात्रादाववसाने वा व्याधौ वा शान्तिके रतः ॥ ५७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे अश्वाध्यक्षः त्रिंशो ऽध्यायः ॥ ३० ॥
आदित एकपञ्चाशः ॥ ५१ ॥

आश्विन शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को अश्वों का नीरोजनोत्सव करना चाहिए। इसी प्रकार यात्रा के आरम्भ, समाप्ति व्याधि और शान्ति पाठ के समय में भी अश्वाध्यक्ष निरोजना करवावे ॥ ५७ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में अश्वाध्यक्ष के कर्तव्यों के निर्णय का तीसवां अध्याय पूरा हुआ।



इकत्तीसवां अध्याय

४९वां प्रकरण

हस्त्यध्यक्ष

राजकीय हाथियों के अफसर को हस्त्यध्यक्ष कहते हैं। अब इस प्रकरण में उसके कर्मों का निरूपण किया जाता है।

हस्त्यध्यक्षो हस्तिवनरक्षां दम्यकर्मक्षान्तानां हस्तिहस्तिनीकलभानां शाला-स्थानशय्याकर्मविधायवसप्रमाणं कर्मस्वायोगं बन्धनोपकरणं सांग्रामिकमलंकारं चिकित्सकानीकस्थोपस्थयुक्तवर्गं चानुतिष्ठेत् ॥ १ ॥

हस्त्यध्यक्ष, [हाथियों का अफसर] हाथियों के वन की रक्षा, शिक्षा के ग्रहण करने में समर्थ, हाथी, हथिनी और उनके युवा बच्चों को शाला, स्थान [खुली जगह] शयन स्थान, कर्म (शिक्षा के स्थान) विधा भक्ष्य बनाने के स्थान, ईख आदि हरे भोजन के प्रमाण का अनुभव प्राप्त करे और इन हाथियों को अनेक युद्धोपयोगी कर्मों को सिखलाने का प्रबन्ध भी करता रहे। इन गजों के बांधने की रस्सी, सांकल आदि तथा संग्राम के उपयोगी अलङ्कार, गज चिकित्सक, सेना या स्थान पर सेवा करने वाले सेवक वर्ग का ज्ञान भी हस्त्यध्यक्ष को आवश्यक है ॥१॥

हस्त्यायामद्विगुणोत्सेधविष्कम्भायामां हस्तिनीस्थानाधिकां सप्रग्रीवां कुमारीसंग्रहां प्राङ्मुखीमुदङ्मुखीं वा शालां निवेशयेत् ॥ २ ॥ हस्त्यायामचतुरश्र-श्लक्ष्णालानस्तम्भफलकान्तरकं मूत्रपुरीषोत्सर्गस्थानं निवेशयेत् ॥ ३ ॥ स्थानस-मशय्यामर्धापाश्रयां दुर्गे सांनाह्योपवाह्यानां बहिर्दम्यव्यालानाम् ॥ ४ ॥

हाथी की लम्बाई चौड़ाई दुगुनी से लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई, गजशाला के स्थान की होनी चाहिए। हथिनी के बांधने के स्थान को और भी अधिक रखा जावे। इस गजशाला में बरामदा सुन्दर बनना चाहिए। हाथियों के खूंटे के ऊपर की लकड़ी

कुमारी कहाती है, इस गजशाला में वे कुमारी बड़े सुचारु ढंग से बनी होनी चाहिए। इस शाला का प्रधान द्वार पूर्व या उत्तर को होवे हाथी की लम्बाई चौड़ाई के अनुसार चौकोर, चिकना एक गज वन्धन का स्थान हो, इसी स्थान के सामाने तख्ते सेढ़का हुआ मूत्र और पुरीष [लीद] का स्थान बनवाया जावे। इसी स्थान के सदृश सुन्दर शयन स्थान हो, जिसकी चौड़ाई साढ़े चार हाथ हो। युद्ध के उपयोगी या रथ में जोड़े जाने वाले हाथियों की शाला दुर्ग के भीतर हो और युवक हाथी तथा उन्मत्त हाथियों के रहने का स्थान दुर्ग से वाहर होवे॥२-४॥

प्रथमसप्तमावष्टमभागावह्नः स्नानकालौ तदनन्तरं विधायाः पूर्वाह्णे व्यायामकालः पश्चाह्नः प्रतिपानकालः ॥५॥ रात्रिभागौ द्वौ स्वप्नकालौ त्रिभागः संवेशनोत्थानकः ॥ ६ ॥ ग्रीष्मे ग्रहणकालः, विंशतिवर्षो ग्राह्यः ॥ ७ ॥ विक्को मूढो मत्कुणो व्याधितो गर्भिणी धेनुका हस्तिनी चाग्राह्याः ॥८॥ सप्तारत्निरुत्सेधो नवायामो दश परिणाहः प्रमाणतश्चत्वारिंशद्वर्षो भवत्युत्तमः ॥ ९ ॥ त्रिंशद्वर्षो मध्यमः ॥ १० ॥ पञ्चविंशतिवर्षोऽवरः ॥ ११ ॥ तयो पादावरो विधाविधिः ॥ १२ ॥

दिन के आठ भागों में प्रथम और सातवां भाग हाथी के दो वार स्नान कराने का होना चाहिए इसके अनन्तर हाथी को पका हुआ भोजन खाने को दिया जावे। दो पहर से पूर्व ही हाथी को व्यायाम (गज शिक्षा) करानी उचित है और दोपहर के बाद उसे कुछ पीने को देना है। रात के तीन भागों में दो भाग हाथी के सोने के हैं और एक भाग लेटने उठने में व्यतीत होना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में हाथी पकड़े जा सकते हैं बीस वर्ष तक की आयु के हाथी पकड़ने योग्य है। विक्क (दूध पीने वाला) मूढ़ (हथिनी के से दांत वाला) मत्कुण [दांतों से रहित] व्याधित [रोगी] गर्भिणी और दूध पिलाने वाली हथिनी नहीं पकड़नी चाहिए। सात हाथ ऊंचा, नौ हाथ लम्बा, दश हाथ मोटा और चालीस वर्ष की अवस्था वाला हाथी सर्व श्रेष्ठ होता है। तीस वर्ष का मध्यम और पच्चीस का कनिष्ठ होता है। मध्यम और कनिष्ठ को पौना और आधा क्रम से पका भोजन देना चाहिए॥५-१२॥

अरत्नौ तण्डुलद्रोणोऽर्धाढकं तैलस्य सर्पिषस्त्रयः प्रस्थाः दशपलं लवणस्य मांसं पञ्चाशत्पलिकं रसस्याढकं द्विगुणं वा दध्नः पिण्डक्लेदनार्थं क्षारं दशपलिकं मद्यस्य आढकं द्विगुणं वा पयसः प्रतिपानं गात्रावसेकस्तैलप्रस्थः शिरसोऽष्टभागः प्रादीपिकश्च यवसस्य द्वौ भारौ सपादौ शष्पस्य शुष्कस्यार्धतृतीयो भारः कडङ्कर-

स्यानियमः ॥ १३ ॥ सप्तारत्निना तुल्यभोजनो ऽष्टारत्निरत्यरालः ॥ १४ ॥ यथाहस्तमवशेषः षडरत्निः पञ्चारत्निश्च ॥ १५ ॥ क्षीरयावसिको विक्कः क्रीडार्थं ग्राह्यः ॥ १६ ॥ संजातलोहिता प्रतिच्छन्ना संलिप्तपक्षा समकक्ष्याव्यतिकीर्णमांसा समतल्पतला जातद्रोणिकेति शोभाः ॥ १७ ॥

पूरे सात हाथ के ऊंचे हाथी को एक द्रोण चांवल, आधा आढ़क तेल, तीन प्रस्थ घी, दस पल नमक, पचास पल मांस, सूखे दाने भिगोने को एक आढ़क मांस आदि का रस, इससे दुगुना दो आढ़क दही, दश पल गुड़, एक आढ़क मद्य, दो आढ़क दूध, शरीर में लगाने को एक सेर तेल, शिर में लगाने और रात में दीपक जलाने को आधा २ कुडब पृथक् तेल होना चाहिए। गन्ने आदि हरित भोजन के सवा दो भार [पचास तुला] सूखे घास के साढ़े तीन भार (सत्तर तुला) तथा पत्ते आदि का कुछ नियम नहीं, ये जितने आवश्यक हों, दिए जावें। आठ हाथ ऊंचा हाथी अत्यराल कहाता है। इसका भी सात हाथ ऊंचे हाथी के बाराबर ही भोजन आदि की व्यवस्था है। छः हाथ और पांच हाथ के हाथी को एक चौथाई कम करके भोजन देना उचित है। विक्क (दूध पीने वाला) हाथी का बच्चा, क्रीड़ा के निमित्त पकड़ा जा सकता है, उसको दूध और हरी घास (हरा गन्ना आदि) भोजन को देना उचित है। हाथियों की सात अवस्था हैं। लोहित से उत्पन्न होने वाली हाथी की शोभा को सञ्जात लोहिता, कुछ २ मांस की शोभा को प्रतिच्छन्ना, अधिक मांस की वृद्धि को संलिप्तपक्षा, सब अवयव मांस से भर जाने-पर होने वाली शोभा को समकक्ष्या, ऊंचे नीचे मांस से संयुक्त शोभा को व्यतिकीर्ण मांसा, पीठ की हड्डी पर मांस चढ़ आने पर उत्पन्न शोभा को समतल्पतला और रीढ़ की हड्डी के इधर उधर भी मांस छा जाने से होने वाली शोभा को जातिद्रोणिका कहा जाता हैं ॥१३-१७॥

शोभावशेन व्यायामं भद्रं मन्दं च कारयेत्।
मृगसंकीर्णलिङ्गं च कर्मस्वृतुवशेन वा ॥ १८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे हस्तध्यक्ष एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥
आदितो द्विपञ्चाशः ॥ ५२ ॥

इन अवस्थाओं के अनुसार ही तीव्र, मध्यम और मन्द हाथियों को व्यायाम 'कवायद' कराना चाहिए। जिन हाथियों में मिलावटी लक्षण हो, उनको युद्ध आदि की शिक्षा में ऋतु के अनुसार व्यायाम कर्म में लगाना चाहिए ॥१८॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में हस्त्यध्यक्ष के कर्मों के वर्णन का इकत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

बत्तीसवां अध्याय

५०वां प्रकरण

हस्तिप्रचार।

यह अध्याय हस्त्यध्यक्ष के अन्तर्गत है। इसमें हाथियों की गति और उनके भेद के विषय में वर्णन किया जाता है।

कर्मस्कन्धाः चत्वारो दम्यः सांनाह्य औपवाह्यो व्यालश्च ॥ १ ॥ तत्र दम्यः पञ्चविधः ॥ २ ॥ स्कन्धगतः स्तम्भगतो वारिगतो ऽवपातगतो यूथगतश्चेति ॥ ३ ॥ तस्योपविचारो विक्कर्म ॥ ४ ॥

दम्य, सांनाह्य, औपवाह्य और व्याल इस प्रकार कर्म भेद से हाथी, चार प्रकार के होते हैं। इनमें दम्य के पांच भेद हैं [१] स्कन्धगत [२] स्तम्भगत, [३] वारिगत, (४) अवपातगत और [५] यूथगत। जो हाथी अपने स्कन्ध पर सवारी दे दे-वह स्कन्धगत है। जो स्तम्भ पर बांधने को सहन करले, वह स्तम्भगत कहाता है। हाथियों के पकड़ने के स्थानमें जो सरलता से पहुंच जाय-वह वारिगत कहाता है। हाथियों के पकड़ने के गढ्ढों पर जो हाथी ले जाये-जा सके-वे अवपातगत हैं और जो हथिनियों के यूथ में घूमते हैं, वे यूथगत कहाते हैं। ये युवक हाथी, कुछ सरल होते हैं, जो इस प्रकार वश में आ जाते हैं, इनको युद्ध विद्या सिखाई जा सकती है ॥१-४॥

सांनाह्यः सप्तक्रियापथः ॥५॥ उपस्थानं संवर्तनं संयामं वधावधो हस्तियुद्धं नागरायणं सांग्रामिकं च ॥ ६ ॥ तस्योपविचारः कक्ष्याकर्म ग्रैवेयकर्म यूथकर्म च ॥ ७ ॥ औपवाह्यो ऽष्टविधः ॥ ८ ॥ आचरणः कुञ्जरौपवाह्यः धोरण आधानगतिको यष्ट्युपवाह्यस्तोत्रोपवाह्यः शुद्धोपवाह्यो मार्गायुकश्चेति ॥ ९ ॥ तस्योपविचारः शारदकर्म हीनकर्म नारोष्ट्रकर्म च ॥ १० ॥

सांनाह्य [युद्धोपयोगी] हाथी के उपस्थान (ध्वज रस्सी आदि कूदना) संवर्तन (संकेत के साथ सोना उठना) संयान (सीधे टेढ़े चल देना) वधावध [सूंड दांत आदि से शत्रु का मारना) हस्ति युद्ध [हाथियों से युद्ध करना] नागरायण [दुर्ग के द्वार तोड़ना] और सांग्रामिक [युद्ध करना] ये सात युद्ध के मार्ग हैं। हाथी के रस्सी बांधना, गले आदि में आभूषण पहनाना और उसके यूथ के अनुसार उसे युद्ध शिक्षा देना-इसका प्रत्येक हस्त्यध्यक्ष या हस्तिवाहक को योग्यता के साथ विचार करना चाहिए। आचरण [अगला या पिछला अङ्ग उठा कर चलना] कुञ्जरौपवाह्य [दूसरे हाथी के साथ चलना] धोरण 'धीरे २ एक ओर

कार्य करने वाला' आधानगतिक 'कई चाल चलने वाला' यष्ट्युपावाह्य 'लकड़ी के संकेत पर चलना' तोत्रोपवाह्य 'काटेंदार लोहे के संकेत पर चलना' शुद्धोपवाह्य 'संकेत मात्र से चलदेना' और मार्गायुक 'शिकार के समय स्वयं काम कर दिखाना' यह आठ औपवाह्य हाथी के भेद हैं। मोटे हाथियों को कृश, अग्नि मन्द वालों की तीव्र अग्नि, और अस्वस्थों के स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिए। अपरिश्रमी हाथियों को व्यायाम द्वारा श्रम तथा संकेत के द्वारा चलना सिखाना भी अत्यन्त आवश्यक है॥ ५-१०॥

व्याल एकक्रियापथः ॥ ११ ॥ तस्योपविचार आयम्यैकरक्षः कर्मशङ्कितो ऽवरुद्धो विषमः प्रभिन्नः प्रभिन्नविनिश्चयो मदहेतुविनिश्चयश्च ॥ १२ ॥ क्रियाविपन्नो व्यालः ॥१३॥ शुद्धः सुव्रतो विषमः सर्वदोषप्रदुष्टश्च ॥१४॥ तेषां बन्धनोपकरणमनीकस्थप्रमाणम् ॥ १५ ॥ आलानग्रैवेयकक्ष्यापारायणपरिक्षेपोत्तरादिकं बन्धनम् ॥ १६ ॥ अङ्कुशवेणुयन्त्रादिकमुपकरणम् ॥ १७ ॥ वैजयन्तीक्षुरप्रमालास्तरणकुथादिकं भूषणम्॥ १८ ॥ वर्मतोमरशरावापयन्त्रादिकः सांग्रामिकालंकारः ॥ १९ ॥

दुष्ट हाथी तो एक ही ढंग पर चलता है। उसको रोक कर रखना चाहिऐ। यह सिखाने पर बड़ा चौंकता है। यह बड़े उद्धत स्वभाव का अपनी इच्छानुसार काम करने वाला होता है। यह स्वल्प मदस्रावी, अधिक मदस्रावी तथा मद के विकारों से युक्त होने से इसका वश में करना कठिन है जो हाथी युद्ध आदि समय में काम बिगाड़ दे - वह व्याल कहाता है। केवल मार बैठने वाला, चलने में गड़ बड़ उत्पन्न कर देने वला, इन दोनों दोषों से युक्त तथा हाथी के सारे दोषों से युक्त इस प्रकार व्याल हाथी भी कई ढंग से चलता है। इनके बन्धन आदि का प्रमाण हाथियों के कुशल शिक्षकों पर निर्भर होना चाहिये। आलान 'गजबन्धन' ग्रैवेयक 'गले की जंजीर' पारायण (हाथी पर चढ़ते समय सहारा लेने की रस्सी) परिक्षेप (हाथी के पैर की रस्सी) उत्तर (गले की दूसरी रस्सी) - ये वस्तुएँ हाथियों के बाधने के काम में आती हैं। अंकुश, वेणु (बांस का दण्ड) यन्त्र 'अम्बारी' आदि भी हाथी के उपकरण 'सामिग्री' हैं। हाथी के ऊपर लगाने की ध्वजा वैजयन्ती क्षुर प्रमाला (आभूषण विशेष) आस्तरण लम्बदा-होदे के नीचे रहने वाला) कुथा (झूल) आदि हाथी के भूषण माने जाते हैं। वर्म [कवच] तोमर [शस्त्र] शरावाप [बाणों का स्थान] यन्त्र (भिन्न २ प्रकार के अस्त्र यन्त्र) ये हाथी के युद्ध के अलङ्कार हैं॥ ११-१९ ॥

चिकित्सकानीकस्थारोहकाधोरणहस्तिपकौपचारिकविधापाचकयावसिकपादपाशिककुटीरक्षकौपशायिकादिरौपस्थायिकवर्गः॥ २० ॥ चिकित्सककुटीरक्षवि-

धापाचकाः प्रस्थौदनं स्नेहप्रसृतिं चाम्ललवणयोश्च द्विपलिकं हरेयुः ॥ २१ ॥ दशपलं मांसस्यान्यत्र चिकित्सकेभ्यः ॥२२॥ पथि व्याधिकर्ममदजराभितप्तानां चिकित्सकाः प्रतिकुर्युः ॥ २३ ॥ स्थानस्याशुद्धिर्यवसस्याग्रहणं स्थले शायनमभागे घातः परारोहणमकाले यानमभूमावतीर्थे ऽवतारणं तरुषण्ड इत्यत्ययस्थानानि ॥ २४ ॥ तमेषां भक्तवेतनादाददीत ॥ २५ ॥

चिकित्सक (गजवैद्य) अनीकस्थ (हाथियों का शिक्षक) आरोहक (गजारोही) आधोरण (गज के कार्यों को जानने वाला) हस्तिपक (हथवान) औपचारिक (हाथी का सईस) विधापाचक (हाथी का भोजन बनाने वाला) यावसिक (हरा घास गन्ने आदि लाने वाला) पादपाशक 'पैर में सांकल डालने वाला' कुटीरक्षक 'गज शाला का रक्षक' औपशायिक 'शयन शाला का रक्षक' आदि हाथी की सेवा करने वाले कर्मचारियों की गणना है। चिकित्सक, कुटी रक्षक, और अन्न पाचकों को एक २ सेर चांवल तेल या घृत एक अञ्जली गुड़ और लवण दो दो पल मिलने चाहिए। कुटी रक्षक और विधा 'अन्न' पाचक को दश २ पल मांस दिया जावे। मार्गगमन, व्याधि, युद्ध कर्म मद और जरासे दुःखी हाथियोंकी चिकित्सा करना राज वैद्य का कार्य है। हाथी के स्थान को शुद्ध न करना, हरे गन्ने आदि न लाना, जमीन पर सुलाना, मर्म स्थलों पर चोट मार देनी, अनधिकारी को हाथी पर चढ़ा लेना, असमय सवारी लेना, कुस्थान और कुतीर्थ (जल प्रदेश) में उतार देना तथा पेड़ों के झुन्डों में हाथियों को ले जाना-ये सब कार्य उन कार्य कर्ताओं पर दण्ड के कराने के कारण हैं। यह दण्ड उनके भत्ते और वेतन से काटा जा सकता है ॥ २०-२५ ॥

तिस्रो नीराजनाः कार्याश्चातुर्मास्यर्तुसंधिषु ।
भूतानां कृष्णसंधीज्याः सेनान्यः शुक्लसंधिषु ॥ २६ ॥

चार २ महीनों की ऋतु सन्धियों में हाथियों के तीन निराजनोत्सव कराने चाहिए। कृष्ण पक्ष की सन्धि 'अमावस्या' में भूतों को वलि और शुक्ल पक्ष की सन्धि 'पूर्णिमा' में स्कन्द की पूजा कराना उचित है-इस से हाथियों का कल्याण रहता है ॥ २६ ॥

दन्तमूलपरीणाहाद्द्विगुणं प्रोज्झ्य कल्पयेत् ।
अब्दे द्व्यर्धे नदीजानां पञ्चाब्दे पर्वतौकसाम् ॥ २७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे हस्तिप्रचारो द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

आदितः त्रिपञ्चाशः ॥ ५३ ॥

हाथी के दाँत में जितनी मोटाई हो-उससे दुगुना हिस्सा छोड़ कर उसे काट लेना चाहिए। जो हाथी नदी प्रांत के हों, उनके ढाई और जो पर्वत प्रान्त के हों-उनके पाँच साल में दाँत कटने चाहिए ॥ २७ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थ शास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में हाथियों की गति के बांध कराने का बत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

तेतीसवां अध्याय

५०-५१वाँ प्रकरण

रथाध्यक्ष पत्त्यध्यक्ष, तथा सेनापतिप्रचार

सेना के रथों के अध्यक्ष को रथाध्यक्ष पैदल सेना के अध्यक्ष को पत्त्यध्यक्ष, तथा सम्पूर्ण सेना के अधिपति को सेनापति कहते हैं। इस अध्याय में क्रम से इनके कार्यों का वर्णन किया जावेगा।

अश्वाध्यक्षेण रथाध्यक्षो व्याख्यातः ॥१॥ स रथकर्मान्तान्कारयेत् ॥ २ ॥ दशपुरुषो द्वादशान्तरो रथः ॥ ३ ॥ तस्मादेकान्तरावरा आपडन्तरादिति सप्त-रथाः ॥४॥ देवरथपुष्यरथसांग्रामिकपारियाणिकपरपुराभियानिकवैनयिकांश्च रथा-न्कारयेत् ॥५॥ इष्वस्त्रप्रहरणावरणोपकरणकल्पनाः सारथिरथिकरथ्यानां च कर्मस्वा-योगं विद्यात् ॥६॥ आकर्मभ्यश्च भक्तवेतनं भृतानामभृतानां च योग्यारक्षानुष्ठान-मर्थमानकर्म च ॥ ७ ॥

जो नियम अश्वाध्यक्ष के पूर्व में कहे गए-वे ही नियम रथाध्यक्ष के समझने चाहिए अर्थात् उसी तरह रथशाला आदि की रचना करावे। वह जितने भी नये पुराने रथके कार्य हैं-उन सबको करे, करवावे। दस पुरुषों के बैठने योग्य बारह हाथ लम्बा रथ होना चाहिए। इन में एक २ हाथ कम करते जाने से सात प्रकार के रथ बन जाते हैं। देवों के उत्सवों में काम आने वाला रथ देवरथ, विवाह आदि मङ्गल कार्यों में व्यवहार में आने वाला रथ पुष्परथ, संग्राम के योग्य रथ सांग्रामिक, साधारण यात्रा के उपयोगी पारि-याणिक शत्रु पर चढ़ाई के उपयोगी रथ पर पुराभियानिक, और अश्व आदि की शिक्षा के उपयोगी रथ वैनयिक कहाते हैं। रथाध्यक्ष इन सब तरह के रथों को तय्यार करावे। बाण, धनुष आदि अस्त्र, रथ के ऊपर डालने के आवरण, रस्सी आदि उपकरण, तथा सारथि, रथिक 'योद्धा' और रथ के अश्वों की सारी विधियों का रथाध्यक्ष को अनुभव होना

चाहिए। कर्म की समाप्ति तक काम करने वाले शिल्पियों के भत्ते और वेतन तथा ठेकेपर काम करने वाले मजदूरों की रक्षा के योग्य धन के दान की विधि का जानने वाला रथाध्यक्ष होना योग्य है॥ १-७॥

एतेन पत्यध्यक्षो व्याख्यातः॥ ८॥ स मौलभृतश्रेणिमित्रामित्राटवीबलानां सारफल्गुतां विद्यात्॥ ९॥ निम्नस्थलप्रकाशकूटखनकाकाशदिवारात्रियुद्धव्यायामं च विद्यात्॥ १०॥ आयोगमयोगं च कर्मसु॥ ११॥

पत्यध्यक्ष का भी यही ढङ्ग है। वह पत्यध्यक्ष मूल सेना भृत सेना 'वेतन भोगी सेना' श्रेणिबल, 'भिन्न स्थानों पर नियत सेना' मित्र सेना, शत्रु सेना और वनवासियों की सना का सार और असारता का ज्ञान रखे। नीचे ऊंचे प्रदेश, समप्रदेश, और सन्मुख युद्ध तथा कूट, खनक 'खाई' आकाश, दिन और रात में होने वाले युद्धों का भी पत्यध्यक्ष को भली प्रकार अनुभव होना चाहिए। युद्ध कर्म में कैसे प्रवृत्त होना, और कैसे पीछे हट जाना-ये सब पत्यध्यक्ष के जानने की वस्तु हैं॥ ८-११॥

तदेव सेनापतिः सर्वयुद्धप्रहरणविद्याविनीतो हस्त्यश्वरथचर्यासंघुष्टश्चतुरङ्गस्य बलस्यानुष्ठानाधिष्ठानं विद्यात्॥॥ १२॥ स्वभूमिं युद्धकालं प्रत्यनीकमभिन्नभेदनं भिन्नसंधानं संहतभेदनं भिन्नवधं दुर्गवधं यात्राकालं च पश्येत्॥ १३॥

अश्वध्यक्ष से लेकर पत्यध्यक्ष तक जो युद्ध के कार्य बताए गए-उन सारे युद्ध और उन में काम में आने वाले सारे शस्त्रों के चलाने का सेनापति को ज्ञान होना अत्यावश्यक है। हाथी, अश्व, रथ आदि के चलाने में भी सेनापति को निपुण होना चाहिए। इस प्रकार अपनी चतुरङ्गिणी सेना के कर्तव्य अकर्तव्य का उसे पूरा ज्ञान होना आवश्यक है। अपनी भूमि, युद्ध का समय, शत्रु की सेना, शत्रु के व्यूह को तोड़ना, बिखरी हुई सेना इकट्ठा करना, संगठित शत्रु बल का तोड़ देना, बिखरी हुई शत्रु सेना का वध, दुर्ग का नाश और चढ़ाई के समय का ज्ञान भी सेनापति को करना होता है॥ १२-१३॥

तूर्यध्वजपताकाभिर्व्यूहसंज्ञाः प्रकल्पयेत्।
स्थाने याने प्रहरणे सैन्यानां विनये रतः।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे रथाध्यक्षः पत्यध्यक्षः सेनापतिप्रचारश्च त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥ आदितः चतुष्पञ्चाशः॥ ५४॥

सेना की शिक्षा में तत्पर सेनापति बाजे ध्वज और पताकाओं से अपनी सेना के संकेत नियत करे और इनही संकेतों के द्वारा वह युद्ध में ठहरने, चढ़ाई करने या शस्त्र चलाने के कार्य का सम्पादन करता रहे॥ १४॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में रथाध्यक्ष पत्यध्यक्ष और सेनापति के कर्मों के वर्णन का तेतीसवां अध्याय पूरा हुआ।



चौंतीसवां अध्याय

५२-५३वां प्रकरण

मुद्राध्यक्ष और विवीताध्यक्ष

राजकीय मुहर लगाकर पत्र 'परवाना' देने वाला मुद्राध्यक्ष और पशुओं के चरने के जंगल के अध्यक्ष को विवीताध्यक्ष कहते हैं। अब उनके कर्मों का विवेचन किया जाता है।

मुद्राध्यक्षो मुद्रां मापकेण दद्यात् ॥ १ ॥ समुद्रो जनपदं प्रवेष्टुं निष्क्रमितुं वा लभेत ॥ २ ॥ द्वादशपणममुद्रो जानपदो दद्यात् ॥ ३ ॥ कूटमुद्रायां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ४ ॥ तिरोजनपदस्योत्तमः ॥ ५ ॥ विवीताध्यक्षो मुद्रां पश्येत् ॥ ६ ॥ भयान्तरेषु च विवीतं स्थापयेत् ॥ ७ ॥

एक मापक 'छोटा सिक्का' लेकर मुद्राध्यक्ष विदेशी व्यापारी आदिको अपने देश में घूमने के आज्ञापत्र पर राजकीय मुद्रा 'मुहर' लगादे। इसी मुद्रा से व्यापारी इस देश में घुस सकता है, और सकुशल लौट सकता है। अपने ही देश का निवासी किसी व्यापार आदि में आवश्यक मुहर को न लगवावे-तो उसपर बारह पण 'रुपया' दण्ड होना चाहिए। यदि उसने झूठी मुहर बना ली तो उस पर 'पूर्व साहस प्रथम कोटिका' दण्ड होना चाहिए। यदि इन कार्यों का कर्ता विदेशी व्यापारी हो-तो उसपर उत्तम साहस दण्ड होना उचित है। विवीताध्यक्ष 'जंगलात का अफ़सर' प्रत्येक व्यक्तिकी मुहर देखा करे। जो स्थान भय जनक हैं- उन्हीं स्थानों पर विवीताध्यक्ष अपनी चौकी बैठावे ॥ ७ ॥

चोरव्यालभयान्निम्नारण्यानि शोधयेत् ॥ ८ ॥ अनुदके कूपसेतुबन्धोत्सान्स्थापयेत्पुष्पफलवाटांश्च ॥ ९ ॥ लुब्धकश्वगणिनः परिव्रजेयुररण्यानि ॥ १० ॥

चोर और हिंसक जन्तुओं के भय स्थान गहरे बनों का खोज करवाता रहे। जल हीन प्रदेश में कुवे, तालाब या कच्चे कुवे बनवावे तथा पुष्प और फलों से युक्त बाग बगीचे यत्र तत्र लगवा देने उचित है। लुब्धक 'शिकारी' और कुत्ते रखने वाले राजकीय नौकर रात दिन भयावह जंगलों की छान बीन करते रहें ॥ ८-१० ॥

तस्करामित्राभ्यागमे शङ्खदुन्दुभिशब्दमग्राह्याः कुर्युः शैलवृक्षविरूढा वा शीघ्रवाहना वा ॥ ११ ॥ अमित्राटवीसंचारं च राज्ञो गृहकपोतैर्मुद्रायुक्तैर्हारयेयुः धूमाग्निपरंपरया वा ॥ १२ ॥

चोर और शत्रु के आने पर शङ्ख और दुन्दुभियों को वृक्ष पर चढ़ कर इस ढङ्ग से बजावे, कि वे लोग उसे न पहचान सके, और अन्तपाल को सूचना मिल जावे या शीघ्र गामी अश्वों से अन्तपाल को विवीताध्यक्ष सूचना करदेवे। शत्रु की चढ़ाई बन्द हो जाने पर पालतू कबूतर के गले में मुहर लगा हुआ पत्र बांधकर शीघ्र राजा को सूचना करे अथवा धूम और अग्नि के परम्परागत संकेतों 'लालटेन के संकेतों' द्वारा सूचना देवे ॥ ११-१२ ॥

द्रव्यहस्तिवनाजीवं वर्तिनीं चोररक्षणम् ।
सार्थातिवाह्यं गोरक्ष्यं व्यवहारं च कारयेत् ॥ १३ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे मुद्राध्यक्षो विवीताध्यक्षः चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ आदितः पञ्चपञ्चाशः ॥ ५५ ॥

चन्दन आदि उत्तम २ वस्तु के वन और हस्तिवन की उपयोगी वस्तु वर्तनी 'मार्ग-शुल्क' चोर से रक्षा, सार्थों 'गिरोह' का पार करदेना, गो रक्षा तथा उपर्युक्त वस्तुओं के क्रय विक्रय का प्रबन्ध करना विवीताध्यक्ष का ही कार्य है ॥ १३ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में मुद्राध्यक्ष और विवीताध्यक्ष के कर्मों के निरूपण का चौंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



पैंतीसवां अध्याय

५४-५५वां प्रकरण

समाहर्त्ता का कार्य, गृह-पति वैदेहक तथा तापस के वेश में गुप्तचर।

दुर्ग, जन पद खान, वन आदि की सारी आमदनी को इकट्ठा करने वाला समाहर्ता कहाता है। प्रथम इसके कर्मों का निरूपण करके फिर गृहपति, वैदेहक और तापसवेशधारी गुप्तचरों के कर्तव्यों का वर्णन किया जावेगा।

समाहर्ता चतुर्धा जनपदं विभज्य ज्येष्ठमध्यमकनिष्ठविभागेन ग्रामाग्रं परिहारकमायुधीयं धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टिकरप्रतिकरमिदमेतावदिति निबन्धयेत् ॥ १ ॥ तत्प्रदिष्टः पञ्चग्रामीं दशग्रामीं वा गोपश्चिन्तयेत् ॥ २ ॥

समाहर्ता, अपने देश को चार भागों में बांटकर, फिर उसके ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ-ये तीन भाग करे। यह ज्येष्ठ कनिष्ठ विभाग उपज और मनुष्य गणना के आधार पर होना चाहिए। इनमें जिन गावों में उत्तम आमदनी है, उनको तथा दान में किये हुए गावों को पृथक् २ समाहर्ता लिखे। सेना शस्त्र आदि के व्यय में लगे हुए गांवों का भी रजिस्टर में लेख रखे। धान्य, पशु, सुवर्ण, कुप्य (चन्दन आदि) विष्टि (बेगार) कर, प्रतिकर (शुल्क) इतना है-यह सब कुछ निर्बन्ध [रजिस्टर] में लिख लेवें। समाहर्ता द्वारा नियत किया हुआ पांच या दस गावों का एक २ गोप [चौधरी-पटेल] इन गावों की देख रेख रखे ॥१-२॥

सीमावरोधेन ग्रामाग्रं कृष्टाकृष्टस्थलकेदारारामषण्डवाटवनवास्तुचैत्यदेवगृहसेतुबन्धश्मशानसत्रप्रपापुण्यस्थानविवीतपथिसंख्यानेन क्षेत्राग्रं, तेन सीम्नां क्षेत्राणां च मर्यादारण्यपथिप्रमाणसंप्रदानविक्रयानुग्रहपरिहारनिबन्धान्कारयेत् ॥ ३ ॥ गृहाग्राञ्च करदाकरदसंख्यानेन ॥ ४ ॥ तेषु चैतावच्चातुर्वर्ण्यमेतावन्तः कर्षकगोरक्षकवैदेहककारुकर्मकरदासाश्चैतावच्च द्विपदचतुष्पदमिदं च हिरण्यविष्टिशुल्कदण्डं समुत्तिष्ठतीति ॥ ५ ॥

अच्छी आय वाले गांव की सीमा, कृष्ट (खेती होने योग्य खेत) अकृष्ट (बंजर) स्थल (ऊंची भूमि) केदार (धानों के खेत) आराम (बगीचे) षण्ड (केले के खेत) वाट [ईख के खेत] वन, [लकड़ी के जङ्गल] वास्तु [गांव की भूमि] चैत्य [गांव के बगीचे] देवालय, सेतुबन्ध [तालाब आदि] श्मशान, सत्र, [सदावर्त स्थान] प्रपा [प्याऊ] पुण्यस्थान [पवित्र स्थान] विवीत [चरागाह] और रथ आदि के मार्गों के सहित खेत, तथा इसीके अनुसार खेतों की सीमा, उनकी मर्यादा, वन, वन के मार्गों के प्रमाण, सम्प्रदान [जोतने बोने को दिया जाना] विक्रय [बेच देना] अनुग्रह-लगान मुआफी परिहार [मुआफी] आदि सारी बातों को समाहर्ता, अपने निबन्ध [रजिस्टर] में दर्ज करे। गांव के घरों का भी कर देने वाले या किसी प्रकार के कर नहीं देने वाले लोगों के उल्लेख के साथ उल्लेख होना उचित है। इन घरों में इतने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं। इतने किसान, ग्वाले, व्यापारी, शिल्पी, कर्मक [मजदूर] और सेवा वृत्ति करने वाले लोग बसते हैं-यह सब कुछ समाहर्ता के रजिस्टर में होना चाहिए। इसी तरह इतने पक्षी, इतने मनुष्य चौपाये हैं, इनसे इतना सुवर्ण, विष्टि (बेगार) शुल्क (टैक्स) और दण्ड प्राप्त होता है-यह भी लिखा जावे ॥३-५॥

कुलानां च स्त्रीपुरुषाणां बालवृद्धकर्मचरित्राजीवव्ययपरिमाणं विद्यात् ॥६॥ एवं च जनपदचतुर्भागं स्थानिकः चिन्तयेत् ॥ ७ ॥ गोपस्थानिकस्थानेषु प्रदेष्टारः कार्यकरणं बलिप्रग्रहं च कुर्युः ॥ ८ ॥

समाहर्ता, प्रत्येक कुल के स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, काम, इनके चरित्र, आजीविका और खरच का परिमाण भी जानता रहे। इसी तरह जनपद के चतुर्थांश की देख रेख स्थानिक नामक अध्यक्ष करता रहे। गोप और स्थानिक अधिकारियों को प्रदेष्टा नामक अधिकारी अपने २ कार्य करते हुए भी इनको अपना टैक्स वसूल करने में सहायता पहुंचावें ॥६-८॥

समाहर्तृप्रदिष्टाश्च गृहपतिकव्यञ्जना येषु ग्रामेषु प्रणिहितास्तेषां ग्रामाणां क्षेत्रगृहकुलाग्रं विद्युः ॥ ६ ॥ मानसंजाताभ्यां क्षेत्राणि भोगपरिहाराभ्यां गृहाणि वर्णकर्मभ्यां कुलानि च ॥ १० ॥ तेषां जंघाग्रमायव्ययौ च विद्युः ॥ ११ ॥ प्रस्थितागतानां च प्रवासकारणमनर्थ्यानां च विद्युः ॥ १२ ॥

समाहर्ता की आज्ञानुसार गृहपति (गृहस्थ) के रूप में रहने वाले गुप्तचर, जिन गावों में नियुक्त हों-वे उन गावों के खेत और कुलों का सारा वृत्तान्त बताते रहें। ये गुप्तचर, क्षेत्रों की नांप और उपज, घरों के कर की वसूली और मुआफी तथा परिवारों के वर्ण और कामों को अच्छी तरह जानते रहें। ये ही गुप्तचर उन घरों के मनुष्य पशु आदि की गणना का भी ब्योरा रखते रहें। जो परदेश गए या परदेश से आकर बसे, उनके आने जाने के कारण, दुष्ट स्त्री पुरुष तथा शत्रु के गुप्तचरों की देख भाल भी ये ही गुप्तचर रखें ॥६-१२॥

एवं वैदेहकव्यञ्जनाः स्वभूमिजानां राजपण्यानां खनिसेतुवनकर्मान्तक्षेत्रजानां परिमाणमर्घं च विद्युः ॥ १३ ॥ परभूमिजातानां वारिस्थलपथोपयातानां सारफल्गुपण्यानां कर्मसु च शुल्कवर्तन्यातिवाहिकगुल्मतरदेयभागभक्तपण्यागारप्रमाणं विद्युः ॥ १४ ॥

व्यापारी वेश में रहने वाले गुप्तचर, अपने देश में उत्पन्न राजकीय वस्तु, तथा खान, सेतु, वन कारखानों और खेतों में उत्पन्न राजकीय वस्तुओं के परिमाण (नांप तोल) और मूल्य का पता रखें। दूसरे देश में उत्पन्न, जल-मार्ग तथा स्थल मार्ग से अपने देश में आना, सार और असार वस्तुओं के क्रय विक्रय होने वाले परिमाण और मूल्य का भी ये ही गुप्तचर ज्ञान रखे। इसी तरह शुल्क (टैक्स) वर्तनी (मार्ग शुल्क) आतिवाहिक (वाहनों का टैक्स) गुल्म (मार्ग रक्षक टैक्स) तर [नाव का शुल्क] भाग

[साथियों का भाग] भक्त [बैल आदि का भोजन] तथा पण्यागार [बाजारी टैक्स] अदा किया गया या नहीं इन सब बातों का ये ही गुप्तचर पता रखते रहें ॥१३-१४॥

एवं समाहर्तृप्रदिष्टास्तापसव्यञ्जनाः कर्षकगोरक्षकवैदेहकानामध्यक्षाणां च शौचाशौचं विद्युः ॥ १५ ॥ पुराणचोरव्यञ्जनाश्चान्तेवासिनश्चैत्यचतुष्पथशून्यपदोदपाननदीनिपानतीर्थायतनाश्रमारण्यशैलवनगहनेषु स्तेनामित्रप्रवीरपुरुषाणां च प्रवेशनस्थानगमनप्रयोजनान्युपलभेरन् ॥ १६ ॥

इसी तरह समाहर्ता की आज्ञा में रहते हुए तपस्वी गुप्तचर, किसान, ग्वाले, व्यापारी और अध्यक्षों की ईमानदारी या बेईमानी का पता रखें। पुराने चोरों के वेष में रहने वाले इन गुप्तचरों के अन्तेवासी (उम्मेदवार) गांव के बगीचे, चौराहे, निर्जन स्थान, तालाब नदी आदि, तीर्थ स्थान, आश्रम, वन, पर्वत और घने जङ्गलों में रहकर चोर, शत्रु तथा शत्रु के वीर पुरुषों के आने, ठहरने जाने आदि का पूरा पता रखें ॥१५-१६॥

समाहर्ता जनपदं चिन्तयेदेवमुत्थितः ।
चिन्तयेयुश्च संस्थास्ताः संस्थाश्चान्याः स्वयोनयः ॥ १७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे समाहर्तृप्रचारो गृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनप्रणिधयश्च पञ्चत्रिंशो ऽध्यायः ॥ ३५ ॥
आदितः षट्पञ्चाशः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार बड़ी सावधानी से रहने वाला, समाहर्ता (कलक्टर) राष्ट्र की भलाई का विचार करता रहे। इसी तरह समाहर्त्ता से नियुक्त किये हुए गोप आदि अधिकारी तथा स्वयं बने हुए संघ भी राष्ट्र की भलाई के प्रबन्ध में सहायता करें ॥१७॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्षप्रचार अधिकरण में समाहर्ता के कर्म और गृहपति आदि गुप्तचरों के कर्तव्यों के निरूपण का पैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

छत्तीसवां अध्याय

५६ वां प्रकरण

नागरिक का कार्य।

नगर के प्रबन्धकर्ता को नागरिक कहते हैं। इस प्रकरण में उसी के कर्तव्यों का निरूपण किया जावेगा।

समाहर्तृवन्नागरिको नगरं चिन्तयेत् ॥ १ ॥ दशकुलीं गोपो विंशतिकुलीं चत्वारिंशत्कुलीं वा ॥ २ ॥ स तस्यां स्त्रीपुरुषाणां जातिगोत्रनामकर्मभिः जंघाग्रमायव्ययौ च विद्यात् ॥ ३ ॥ एवं दुर्गचतुर्भागं स्थानिकश्चिन्तयेत् ॥ ४ ॥ धर्मावसथिनः पाषण्डपथिकानावेद्य वासयेयुः ॥ ५ ॥ स्वप्रत्ययांश्च तपस्विनः श्रोत्रियांश्च ॥ ६ ॥ कारुशिल्पिनः स्वकर्मस्थानेषु स्वजनं वासयेयुः ॥ ७ ॥ वैदेहकाश्चान्योन्यं स्वकर्मस्थानेषु पण्यानामदेशकालविक्रेतारमस्वकरणं च निवेदयेयुः ॥ ८ ॥

समाहर्ता, जिस प्रकार सारे राष्ट्र के प्रबन्ध का विचार करता है, नागरिक अध्यक्ष केवल नगर के प्रबन्ध की चिन्ता करे। नागरिक भी एक गोप नामक कर्मचारी की नियुक्ति करे-जो दस, बीस या चालीस कुल का प्रबन्ध करता है। यह गोप इन कुलों के स्त्री पुरुष, जाति, गोत्र, नाम, काम, चलने फिरने वाले पशु और आय तथा व्यय का भी ज्ञान रखे। इसी प्रकार दुर्ग के चतुर्थ भाग का प्रबन्ध स्थानिक करे। धर्मशालाओं के निरीक्षक, स्थानिकों को ऐसे पथिकों की सूचना देते रहें, जो पाखण्डी हों, जब स्थानिक की मन्जूरी हो जावे तो इन धूर्तों को धर्मशाला में धर्माध्यक्ष ठहरने दे। हां ? जिनको धर्माध्यक्ष स्वयं जानता है-या जो, सच्चे तपस्वी और वेदपाठी हों-उनको बिना स्थानिक की मन्जूरी लिए भी धर्माध्यक्ष ठहरा सकता है। जो कर्म करने वाले शिल्पी [कारीगर] हैं, वे अपने कारखानों में आने वाले शिल्पियों को ठहरा लेवें। व्यापारी लोग, विदेशी व्यापारी को अपनी दुकानों पर ठहरा सकते हैं, परन्तु जो वस्तु देशकाल के विपरीत हो, उसे बेचे या पराई वस्तु का व्यवहार करें-तो इसकी सूचना नागरिक [अध्यक्ष] को वे अवश्य करदें ॥१-८॥

शौण्डिकपाकमांसिकौदनिकरूपाजीवाः परिज्ञातमावासयेयुः ॥ ९ ॥ अतिव्ययकर्तारमत्याहितकर्माणं च निवेदयेयुः ॥ १० ॥ चिकित्सकः प्रच्छन्नव्रणप्रतीकारकारयितारमपथ्यकारिणं च गृहस्वामी च निवेद्य गोपस्थानिकयोर्मुच्येतान्यथा तुल्यदोषः स्यात् ॥ ११ ॥ प्रस्थितागतौ च निवेदयेत् ॥१२॥ अन्यथा रात्रिदोषं भजेत ॥ १३ ॥ क्षेमरात्रिषु त्रिपणं दद्यात् ॥ १४ ॥

मद्य विक्रेता, पके मांस या चांवल आदि पका अन्न बेचने वाले और वेश्याएँ, अपने जान पहचान के पुरुष को ही अपने पास ठरहने दें। जो पुरुष अत्यन्त व्यय कर रहा हो-या अनुचित कर्म में प्रवृत्त हो-उसकी सूचना गोप या स्थानिक को ये पुरुष करदें। जो चिकित्सक, छुपी रीति से लगे हुए घाव आदि की चिकित्सा करता हुआ नागरिक या

स्थानिक को सूचना देदे तथा अनुचित कर्म करने वाले पुरुष की-गृहस्वामी नागरिक को सूचना करदे-तो उनका कोई अपराध नहीं है-यदि वे सूचना न करें-तो दोष के भागी माने जावेंगे। घर से जाने वाले और आने वाले अतिथि की घर का स्वामी नागरिक को सूचना देवे। यदि सूचना न दी और रात में उन्होंने कुछ अपराध (जुर्म) कर लिया-तो इसका गृहस्वामी भी अपराधी माना जावेगा। यदि अभ्यागतों ने रात में कोई जुर्म नहीं किया, परन्तु गृहस्वामी ने सूचना भी नहीं दी, तो भी गृहस्वामी पर सूचना नहीं देने का तीन पण दण्ड होना चाहिए ॥६-१४॥

पथिकोत्पथिकाश्च बहिरन्तश्च नगरस्य देवगृहपुण्यस्थानवनश्मशानेषु सव्रण-मनिष्टोपकरणमुद्भाण्डीकृतमाविग्नमतिस्वप्नमध्वक्लान्तमपूर्वं वा गृह्णीयुः ॥ १५ ॥ एवमभ्यन्तरे शून्यनिवेशावेशनशौण्डिकौदनिकपाकमांसिक द्यूतपाषण्डावासेषु विचयं कुर्युः ॥ १६ ॥

व्यापारी आदि के वेश में मार्ग में घूमने वाले, तथा ग्वाले आदि के रूप में मार्ग छोड़ कर जंगल में घूमने वाले गुप्तचर, नगर के बाहर या नगर के देवालय, धर्मशाला, वन या शमशान में किसी व्रण वाले, विष शस्त्र आदि अनुचित साधन से युक्त, अधिक भारधारी, घबड़ाये हुए, अत्यन्त सोने वाले, मार्ग की थकान से युक्त तथा अजीब से ढंग के मनुष्य को देखकर उसकी सूचना नागरिक को देवें। इसी प्रकार नगर के भीतर भी शून्य स्थान, शिल्पशाला, मद्य की दुकान, चांवल और पके मांस की दुकान, जुआ एवं पाखण्डी साधुओं के स्थानों की भी ये लोग खोज रखें ॥१५-१६॥

अग्निप्रतीकारं च ग्रीष्मे मध्यमयोरह्नश्चतुर्भागयोः ॥ १७ ॥ अष्टभागोऽग्निदण्डः ॥ १८ ॥ बहिरधिश्रयणं वा कुर्युः ॥ १९ ॥ पादः पञ्चघटीनां, कुम्भ-द्रोणीनिश्रेणीपरशुशूर्पाङ्कुशकचग्रहणीदृतीनां चाकरणे ॥ २० ॥ तृणकटच्छन्ना-न्यपनयेत् ॥ २१ ॥ अग्निजीविन एकस्थान् वासयेत् ॥ २२ ॥ स्वगृहप्रद्वारेषु गृहस्वामिनो वसेयुरसंपातिनो रात्रौ ॥ २३ ॥ रथ्यासु कटव्रजाः सहस्रं तिष्ठेयुः ॥ २४ ॥ चतुष्पथद्वारराजपरिग्रहेषु च ॥ २५ ॥

ग्रीष्म ऋतु में दिन के आठ भाग में, बीच के चार भागों में (फूंस के घरों में) आग जलाने का निषेध रहना चाहिए। जो कोई इस आज्ञा का प्रतिपालन न करे, उसपर अग्नि लग जाने पर हानि का अठगुना दण्ड होना चाहिए, अथवा आग जलाने मात्र पर एक मुद्रा का आठवां भाग दण्ड होना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो घर से बाहर आग जला कर अपना कार्य किया जा सकता है। जो पांच घड़ी तक मध्यान्ह में आग

जलाता रहे, उसपर चौथाई पण का दण्ड हो। जो मनुष्य, ग्रीष्म ऋतु में मटकी, नांद, नसेनी, कुल्हाड़ी, छाज, अंकुश, (कौंचा, कचग्रहणी, (फूंस खैंचने की डंगी) और चमड़े की मशक का प्रबन्ध न रखे, उस पर भी एक पण का चौथाई दण्ड होना चाहिए। इस समय घास फूस और चटाई की बनी हुई झोंपड़ियां उठा देनी उचित है। अग्नि के द्वारा जीविका करने वाले मनुष्यों को नगर के एक ओर बसाया जावे। रात में कहीं न जाकर घर के मालिक अपने घर के द्वारों पर ही शयन करें। गली या बाजारों में सहस्रों की संख्या में जल से भरे घड़ों का प्रबन्ध रहे। इसी तरह चौराहा, नगर के प्रधान द्वार और राज्य कार्यालयों पर भी जल का प्रबन्ध रहना चाहिए ॥१७-२५॥

प्रदीप्तमनभिधावतो गृहस्वामिनो द्वादशपणो दण्डः ॥ २६ ॥ षट्पणोऽवक्रयिणः ॥ २७ ॥ प्रमादादीप्तेषु चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ २८ ॥ प्रादीपिकोऽग्निना वध्यः ॥ २९ ॥ पांसुन्यासे रथ्यायामष्टभागो दण्डः ॥ ३० ॥ पङ्कोदकसंनिरोधे पादः ॥ ३१ ॥ राजमार्गे द्विगुणः ॥ ३२ ॥ पुण्यस्थानोदकस्थानदेवगृहराजपरिग्रहेषु पणोत्तरा विष्ठादण्डाः ॥ ३३ ॥ मूत्रेष्वर्धदण्डाः ॥ ३४ ॥ भैषज्यव्याधिभयनिमित्तमदण्डयाः ॥ ३५ ॥

यदि अपने घर में आग लग गई हो और उसे देखकर भी जो आलस्यादि के वश में उसे बुझाने को नहीं दौड़े-उन पर बारह पण दण्ड होना चाहिए। जो भाड़ा देकर घर में रहता है, और आग लगने पर नहीं दौड़ता, उसको छः पण दण्ड दिया जावे। जिसकी असावधानी से आग लगे, उसपर चौवन पण उचित है। यदि कोई आग लगाता पकड़ा जावे, तो उसको आग में जलाकर मार दिया जावे। जो गलियों में कूड़ा करकट डाले-उसपर पण का आठवां भाग दण्ड किया जावे। जो पानी कीचड़ से गलियों को गन्दा करे-उसपर चौथाई दण्ड पण होना चाहिए। राज मार्ग [प्रधान सड़क] को गन्दी करने वाले मनुष्य पर आधा पण दण्ड किया जावे। राज मार्ग धर्मशाला, तीर्थ आदि पवित्र स्थान, जलस्थान, देवालय, और राज्य कार्यालयों पर जो कोई मनुष्य मलोत्सर्ग कर दे, उसपर क्रम से एक एक पण बढ़ाते हुए दण्ड होना चाहिए। मूत्रोत्सर्ग करने वाले पर इसका आधा दण्ड है। राजमार्ग में एक पण, पुण्य स्थान में दो पण, जल स्थान में मलोत्सर्ग करने पर तीन पण दण्ड देना चाहिए। औषध, रोग, भय आदि के कारण इन स्थानों पर किसी का मल निकल जावे-तो उनको दण्ड न दिया जावे ॥२६-३५॥

मार्जारश्वनकुलसर्पप्रेतानां नगरस्यान्तरुत्सर्गे त्रिपणो दण्डः ॥ ३६ ॥ खरोष्ट्राश्वतराश्वपशुप्रेतानां षट्पणः ॥ ३७ ॥ मनुष्यप्रेतानां पञ्चाशत्पणः ॥ ३८ ॥

मार्गविपर्यासे शवद्वारादन्यतः शवनिर्णयने पूर्वः साहसदण्डः ॥३९॥ द्वाःस्थानां द्विशतम् ॥ ४० ॥ श्मशानादन्यत्रन्यासे दहने च द्वादशपणो दण्डः ॥ ४१ ॥

मरे हुए बिलाव, कुत्ता, नौला और सांप को नगर में डालने वाले पर तीन पण दण्ड का विधान है। यदि गधे, ऊंट, खच्चर और घोड़े आदि पशुओं को नगर में डाल देवे-तो डालने वाले पर छः पण दण्ड की व्यवस्था है। यदि अपने मृतक को कोई नगर में पड़ा सड़ने देगा-उस पर भी पचास पण दण्ड होगा। मृतक के ले जाने के मार्ग के बदलने और नियत द्वार को छोड़कर नगर के दूसरे द्वार से ले जाने वाले पुरुष पर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए। जो द्वार रक्षक, मृतक को अपने द्वार पर न रोके उन पर दोसौ रुपया जुरमाना किया जावे। श्मशान से अन्यत्र कहीं रखने या जलाने वाले पर बारह पण दण्ड का विधान है ॥३६-४१॥

विपणनालिकमुभयतोरात्रं यामतूर्यम् ॥ ४२ ॥ तूर्यशब्दे राज्ञो गृहाभ्याशे सपादपणमक्षणताडनं प्रथमपश्चिमयामिकम् ॥ ४३ ॥ मध्यमयामिकं द्विगुणं, बहिश्चतुर्गुणम् ॥४४॥ शङ्कनीये देशे लिङ्गं पूर्वापदाने च गृहीतमनुयुञ्जीत ॥४५॥ राजपरिग्रहोपगमने नगररक्षारोहणे च मध्यमः साहसदण्डः ॥ ४६ ॥ सूतिकाचिकित्सकप्रेतप्रदीपयाननागरिकतूर्यप्रेक्षाग्निनिमित्तं मुद्राभिश्चाग्राह्याः ॥ ४७ ॥'

रात के पूर्व और अन्त भाग की छः २ घड़ी छोड़कर तुरी आदि बाजे का शब्द कर देना चाहिए। जब यह बाजे का शब्द हो जावे, तो राजमहल के समीप इस समय जो घूमता मिले-उस पर सवा पण दण्ड होना चाहिए। यह दण्ड निषिद्ध समय की प्रथम और अन्तिम घड़ियों के लिए ही है। यदि इस समय के मध्य भाग अर्धरात्रि के समीप राजमहल के समीप कोई पुरुष घूमता मिले-तो उसपर दुगुना और नगर से बाहर वन में घूमने वाले पर चौगुना दण्ड होना उचित है। शङ्का के योग्य स्थान पर पकड़े हुए शस्त्र आदि किसी चोरी आदि के साधन से सम्पन्न अथवा पूर्व में चोरी के अपराध में पकड़े गए, पुरुष से उसके वहां आने के विषय में प्रश्न करने-चाहिए। जो कोई पुरुष, राज्य कार्यालयों या नगर की रक्षा की भींत [दीवार] पर चढ़ता पकड़ा जावे-तो उस पर मध्यम साहस दण्ड होवे। यदि कोई पुरुष इस निषिद्ध समय में भी सूतिका [बच्चे उत्पन्न कराने को दाई के बुलाने को जाते हुए] चिकित्सक [वैद्य बुलाने] प्रेत [मुर्दा उठाने] दीपक [लालटैन] लेकर चलते हुए, नागरिक, के पास जाने, बाजा, बजवाने, नाटक देखने और आग आदि के बुझाने को जो आवे-जावे-उसपर कोई दण्ड नहीं है। जिनके पास मुहर लगा हुआ आज्ञा पत्र विद्यमान है-उनको भी न पकड़े ॥४२-४७॥

चाररात्रिषु प्रच्छन्नविपरीतवेषाः प्रव्रजिता दण्डशस्त्रहस्ताश्च मनुष्या दोषतो दण्ड्याः ॥ ४८ ॥ रक्षिणामवार्यं वारयतां वार्यं चावारयतामक्षणद्विगुणो दण्डः ॥ ४९ ॥ स्त्रियं दासीमधिमेहयतां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५० ॥ अदासीं मध्यमः ॥ ५१ ॥ कृतावरोधामुत्तमः ॥ ५२ ॥ कुलस्त्रियं वधः ॥ ५३ ॥

जिन महोत्सव आदि की खुली रात्रियों में छुपे २ या स्त्री आदि का वेष बनाकर घूमते हुए, तथा संन्यासी, दण्ड शस्त्रधारी, मनुष्य पकड़े जावें-उनके अपराध का निर्णय करके उनको दण्ड दिया जावे। जो रक्षक [पहरेदार] नहीं रोकने योग्य पुरुषों को रात में रोक दें-और रोकने योग्य पुरुषों को न रोकें-तो उनपर निषिद्ध समय के नियत दण्ड से दुगुना दण्ड होना चाहिए। जो पुरुष किसी दासी स्त्री के साथ व्यभिचार के अपराध में पकड़ा जावे-उसपर प्रथम साहस दण्ड होवे। अदासी-साधारण स्त्री से व्यभिचार करे-तो मध्यम दण्ड होवे। किसी की भार्या से व्यभिचार करे-तो उत्तम साहस दण्ड का विधान है. तथा जो कुल स्त्री को भ्रष्ट कर दे-उसका वध कर देना चाहिए ॥४८-५३॥

चेतनाचेतनिकं रात्रिदोषमशंसतो नागरिकस्य दोषानुरूपो दण्डः ॥५४॥ प्रमादस्थाने च ॥ ५५ ॥ नित्यमुदकस्थानमार्गभूमिच्छन्नपथवप्रप्राकाररक्षावेक्षणं नष्टप्रस्मृतापसृतानां च रक्षणम् ॥ ५६ ॥ बन्धनागारे च बालवृद्धव्याधितानाथानां च जातनक्षत्रपौर्णमासीषु विसर्गः ॥ ५७ ॥ पुण्यशीलाः समयानुबद्धा वा दोषनिष्क्रयं दद्युः ॥ ५८ ॥

चेतन या अचेतन किसी से भी सम्बन्ध रखने वाले अपराध की जो पुरुष नागरिक अध्यक्ष को उसकी सूचना न देवे-उसपर उस अपराध के अनुसार दण्ड होना चाहिए। प्रमाद करने पर नगर रक्षकों पर भी यही दण्ड उचित है। नागरिक, 'नगर कोतवाल' नित्य जल स्थान, मार्ग भूमि, छन्न पथ 'छुपे सुरङ्ग आदि' वप्र 'सफील' प्राकार 'परकोटे' रक्षा 'बुर्ज खाई आदि' स्थानों की अच्छी तरह देख भाल करता रहे। जो कोई वस्तु खोई हुई, भूली हुई, गिरी हुई मिले-उसकी उसके स्वामी के आने तक रक्षा करे। बन्धनागार (जेलखाने] से बालक, वृद्ध, रोगी और अनाथों को राजा की वर्ष गांठ, शुभ नक्षत्र और पूर्णमासी आदि पर्व पर छोड़ दिया जाया करे। अच्छे चाल चलन वाले, प्रतिज्ञा करने को तत्पर [मुचलके देने वाले] पुरुष अपने अपराध का हरजाना देकर छुटकारा पा सकते हैं ॥५४-५८॥

दिवसे पञ्चरात्रे वा बन्धनस्थान् विशोधयेत् ।
कर्मणा कायदण्डेन हिरण्यानुग्रहेण वा ॥ ५९ ॥

अपूर्वदेशाधिगमे युवराजाभिषेचने ।
पुत्रजन्मनि वा मोक्षो बन्धनस्य विधीयते ॥ ६० ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे नागरिकप्रणिधिः षट्त्रिंशो ऽध्यायः ॥३६॥
आदितः सप्तपञ्चाशः ॥ ५७ ॥

प्रति दिन या पांचवे दिन-इस प्रकार अपराध का निष्क्रय लेकर अपराधी छोड़े जाने चाहिए। कुछ काम कराकर, बैंत आदि शरीर का दण्ड देकर या जुरमाना आदि लेकर अपराधी दोषानुसार छोड़े जा सकते हैं। राजा की इच्छा है-वह बिना कुछ लिए अपने अनुग्रह से भी छोड़ सकता है। किसी नये देश के जीतने, युवराज के अभिषेक और राज पुत्र की उत्पत्ति के समय कैदियों को छोड़ देने का समय माना गया है ॥ ५९-६० ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार नामक अधिकरण में नागरिक [नगर कोतवाल] के अधिकारों के वर्णन का छत्तीसवां अध्याय और आरम्भ से सत्तावनवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ। यहीं पर अध्यक्ष प्रचार अधिकरण भी समाप्त हो गया।





तृतीय-अधिकरण

धर्मस्थीय



प्रथम अध्याय

५७-५८वां प्रकरण

व्यवहार की स्थापना और विवाद का लेखन

इस प्रकरण में व्यवहार 'दीवानी मुकदमे सम्बन्धी लेख आदि' तथा विचार 'फौजदारी मुकदमों' का विचार किया जावेगा।

धर्मस्थास्त्रयस्त्रयोऽमात्या जनपदसंधिसंग्रहद्रोणमुखस्थानीयेषु व्यावहारिकानर्थान्कुर्युः ॥ १ ॥ तिरोहितान्तरगारनक्तारण्योपध्युपह्वरकृतांश्च व्यवहारान्प्रतिषेधयेयुः ॥ २ ॥ कर्तुः कारयितुश्च पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३ ॥ श्रोतृणामेकैकं प्रत्यर्धदण्डाः ॥ ४ ॥ श्रद्धेयानां तु द्रव्यव्यपनयः ॥ ५ ॥ परोक्षेणाधिकर्णग्रहणमवक्तव्यकरा वा तिरोहिताः सिद्ध्येयुः ॥ ६ ॥ दायनिक्षेपोपनिधिविवाहयुक्ताः स्त्रीणामनिष्कासिनीनां व्याधितानां चामूढसंज्ञानामन्तरगारकृताः सिद्ध्येयुः ॥७॥

तीन धर्माध्यक्ष 'न्यायाधीश' और तीन अमात्य, देश सीमा प्रान्त, संग्रहण 'दशगाँव' द्रोण मुख 'चार सौ गांव' और स्थानीय 'आठसौ गांवों' के प्रधान भूत स्थान' में परस्परों के व्यवहारों 'मुकदमे सम्बन्धी लेखों' की व्यवस्था करें। छुपाकर घर के भीतर रात वन, छल तथा एकान्त में किए गए व्यवहार सम्बन्धी लेखों को प्रमाणित न माना जावे। इस प्रकार जो व्यवहार करे या करवावेगा, उसपर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए। जो इस प्रकार के लेखों की चर्चा सुनकर भी राज्य को सूचना न दे, उन प्रत्येक को पूर्व साहस दण्ड का आधा दण्ड होना चाहिए। जो इस तरह के व्यवहार के पत्र लिखने का समर्थन करते हों, उनपर द्रव्य दण्ड 'जुरमाना' होना उचित है। नहीं कहने योग्य व्यवहारों को यदि छुपाकर किया गया और परोक्ष रूपसे किसी ने सुन भी लिया-तो भी उनका पत्र प्रमाणित माना जावेगा और सूचना नहीं देने वाले पर कोई दण्ड न होगा। जो घर से नहीं निकलने

वाली स्त्रियों तथा संज्ञाहीन 'अचेत' नहीं हुए रोगियोंने जो घर के भीतर छुपे २ दायभाग धरोहर, निधि; 'गिरवी' और विवाह सम्बन्धी लेख 'विना स्टाम्प' साधारण कागज़ पर भी लिख लिए-तो भी वे सिद्ध समझे जावेंगे-नाजायज नहीं होंगे। ॥ १-७ ॥

साहसानुप्रवेशकलहविवाहराजनियोगयुक्ताः पूर्वरात्रव्यवहारिणां च रात्रिकृताः सिद्धयेयुः ॥ ८ ॥ सार्थव्रजाश्रमव्याधचाराणां मध्येष्वरण्यचराणामरण्यकृताः सिद्धयेयुः ॥ ६ ॥ गूढाजीविषु चोपधिकृताः सिद्धयेयुः ॥ १० ॥ मिथः समवाये चोपह्वरकृताः सिद्धयेयुः ॥ ११ ॥ अतोऽन्यथा न सिद्धयेयुः ॥ १२ ॥ अपाश्रयवद्भिश्च कृताः पितृमता पुत्रेण पित्रा पुत्रवता निष्कुलेन भ्रात्रा कनिष्ठेनाविभक्तांशेन पतिमत्या पुत्रवत्या च स्त्रिया दासाहितकाभ्यामप्राप्तातीतव्यवहाराभ्यामभिशस्तप्रव्रजितव्यङ्गव्यसनिभिश्चान्यत्र निसृष्टव्यवहारेभ्यः ॥ १३ ॥

साहस के साथ अनुचित रीति से किसी के घर में घुस जाना, झगड़ा कर बैठना, विवाह, राजा की आज्ञा से होने वाले कार्य, रात के पूर्व भाग में काम धन्धे करने वाले-लोगों के व्यवहारों पर न्यायाधीशों को विचार करना चाहिए। साथ बनाकर चलने वाले, आश्रम वासी, वानप्रस्थी, व्याध 'शिकारी' गुप्तचर और वनवासी लोगों के वन में किए हुए व्यवहारों पर भी विचार किया जा सकता है। गुप्त रूप से व्यवहार करने वाले जुआरी आदि के छल पूर्वक लिखे लिखाए गए लेखों के आधार पर भी मुकदमों की सुनाई हो सकेगी। परस्पर समझौता होने पर एकान्त में किए गए व्यवहार ' पत्र व्यवहार आदि ' भी सिद्ध 'जायज' समझने उचित है। इनके अतिरिक्त पूर्वोक्त स्थानों में किए गए व्यवहारों पर विचार ही नहीं करना चाहिए अर्थात् इस किस्म के लेख नाजायज होने चाहिए। जिन कामों के करने की मन्जूरी सरकार से मिल गई है, उनके अतिरिक्त निराश्रय, पुरुष, जीवित पिता के पुत्र, पुत्र वाले पिता, कुलहीन, सम्पत्ति के भाग नहीं पाए हुए छोटे भाई पति और पुत्रवती स्त्री, दास और प्रतिनिधि 'एजंट' मनुष्य अप्राप्त व्यवहार ' नाबालिग ' अतीत व्यवहार 'अतिवृद्ध' लोकनिन्दित, सन्यासी लंगड़े, लूले आदि तथा विपत्ति में फसे हुए मनुष्यों द्वारा किए गए व्यवहारों को उचित (जायज) नही मानना चाहिए है ॥ ८-१३॥

तत्रापि क्रुद्धेनार्तेन मत्तेनोन्मत्तेनापगृहीतेन वा कृता व्यवहारा सिद्धयेयुः ॥ १४ ॥ कर्तृकारयितृश्रोतृणां पृथग्यथोक्ता दण्डाः ॥ १५ ॥ स्वे स्वे तु वर्गे देशे काले च स्वकरणकृताः संपूर्णाचाराः शुद्धदेशा दृष्टरूपलक्षणप्रमाणगुणाः सर्वव्यवहाराः सिद्धयेयुः ॥ १६ ॥ पश्चिमं त्वेषां करणमादेशाधिवर्जं श्रद्धेयम् ॥१७॥ इति व्यवहारस्थापना ॥ १८ ॥

यदि राजा ने भी आज्ञा देदी हो-तो भी क्रोधी, व्याकुल, मत्त (जनूनी) उन्मत्त (पागल) अपगृहीत (पकड़े हुए अपराधी) द्वारा किए गए व्यवहार (कार्य) भी सिद्ध (जायज) नहीं हैं। इस प्रकार के लेख बनाने, बनवाने और उनको सुनकर सूचना नहीं देने वाले पुरुषों पर पूर्वोक्त पृथक् २ दण्ड समझना चाहिए। अपनी २ जाति, देश, काल और प्रकृति के अनुकूल सादे शुद्ध व्यवहार, उचित समझने चाहिए, यदि उनके स्वरूप लक्षण, प्रमाण तथा गुणों पर भली प्रकार दृष्टि डालली गई हो। सारांश यह है कि बल पूर्वक किए गए कार्यों को छोड़ कर अन्य सारे व्यवहार के कार्य लेख आदि उचित माने जा सकते हैं, चाहे सरकारी कागज पर न लिखे गए हों! यहाँ एक व्यवहार (मुकदमों के लेख आदि) की स्थापना (विचार) की गई है॥ १४-१८ ॥

संवत्सरमृतुं मासं पक्षं दिवसं करणमधिकरणमृणं वेदकावेदकयोः कृतसमर्थावस्थयोर्देशग्रामजातिगोत्रनामकर्माणि चाभिलिख्य वादिप्रतिवादिप्रश्नानर्थानुपूर्व्यान्निवेशयत् ॥ १९ ॥ निविष्टांश्चावेक्षेत ॥ २० ॥ निबद्धं पादमुत्सृज्यान्यं पादं संक्रामति ॥ २१ ॥ पूर्वोक्तं पश्चिमेनार्थेन नाभिसंधत्ते ॥ २२ ॥ परवाक्यमनभिग्राह्यमभिग्राह्यावतिष्ठते ॥ २३ ॥ प्रतिज्ञाय देशं निर्दिशेत्युक्ते न निर्दिशति ॥ २४ ॥ हीनदेशमदेशं वा निर्दिशति ॥ २५ ॥ निर्दिष्टोद्देशादन्यं देशमुपस्थापयति ॥ २६ ॥ उपस्थिते देशे ऽर्थवचनं नैवमित्यपव्ययते ॥ २७ ॥ साक्षिभिरवधृतं नेच्छति ॥ २८ ॥ असंभाष्ये देशे साक्षिभिर्मिथः संभाषते ॥ २९ ॥ इति परोक्तहेतवः ॥ ३० ॥

जब कोई न्यायाधीशों के सन्मुख मुकदमा आवे-तो उसका संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष दिवस, जिसके द्वारा हुआ उसका नाम और जहाँपर हुआ हो- वहस्थान, ऋण, अपने २ पक्ष के साक्षी, प्रति साक्षी, उनके देश, ग्राम, जाति, गोत्र, नाम और कर्मों को लिख कर वादी प्रति वादी के प्रश्न (जिरह) उनके तत्वार्थ, सबको अपने निवेश पत्र 'मिसल' में लिखे अन्त में उनपर न्यायाधीश अच्छी तरह विचार करे। जो प्रकरण गत सिलसिले को छोड़ कर दूसरी ओर चला जाता है। जिसका पूर्व कथन पश्चिम कथन से नहीं मिलता। दूसरे के नही मानने योग्य वचन को मान बैठे। जो ऋण आदि देश के बताने की एक बार प्रतिज्ञा करके फिर टाल मटोल करने लगे। जब बहुत पूछा जावे-तो किसी साधारण देश या अदेश का नाम ले देता है या कहे हुए देश को बता कर फिर बदल जाता है। स्थान बताकर भी धन के ग्रहण के बताने का जब समय आता है-तो उससे इन्कार कर देता है। जो साक्षियों से कही गई बात को स्वीकार नहीं करता। जो नहीं भाषण करने योग्य

स्थान में आकर अपने या दूसरे के साक्षियों से गुप चुप बातें करता है-वह पराजित समझना चाहिए-ये सारी बातें पराजित करने के कारण हैं ॥ १६-३० ॥

परोक्तदण्डः पञ्चबन्धः ॥ ३१ ॥ स्वयंवादिदण्डो दशबन्धः ॥ ३२ ॥ पुरुषभृतिरष्टाङ्गः ॥ ३३ ॥ पथि भक्तमर्थविशेषतः ॥ ३४ ॥ तदुभयं नियम्यो दद्यात् ॥ ३५ ॥ अभियुक्तो न प्रत्यभियुञ्जीत ॥ ३६ ॥ अन्यत्र कलहसाहससार्थ-समवायेभ्यः ॥ ३७ ॥ न चाभियुक्ते ऽभियोगोऽस्ति ॥ ३८ ॥ अभियोक्ता चेत्प्र-त्युक्तस्तदहरेव न प्रतिब्रूयात्परोक्तः स्यात् ॥३९॥ कृतकार्यविनिश्चयो ह्यभियोक्ता नाभियुक्तः ॥ ४० ॥ तस्याप्रतिब्रुवतस्त्रिरात्रं सप्तरात्रमिति ॥ ४१ ॥ अत ऊर्ध्वं त्रिपणावराध्यं द्वादशपणपरं दण्डं कुर्यात् ॥ ४२ ॥ त्रिपक्षादूर्ध्वमप्रतिब्रुवतः परोक्तदण्डं कृत्वा यान्यस्य द्रव्याणि स्युस्ततोऽभियोक्तारं प्रतिपादयेदन्यत्र प्रत्युपकरणेभ्यः ॥ ४३ ॥ तदेव निष्पततो ऽभियुक्तस्य कुर्यात् ॥४४॥ अभियो-क्तुर्निष्पातसमकालः परोक्तभावः ॥ ४५ ॥ प्रेतस्य व्यसनिनो वा साक्षिवचन-मसारमभियोक्तारं दण्डयित्वा कर्म कारयेत् ॥ ४६ ॥ अधिवासकामं प्रवेशयेत् ॥४७॥ रक्षोघ्नरक्षितं वा कर्मणा प्रतिपादयेत् ॥४८॥ अन्यत्र ब्राह्मणादिति ॥४९॥

पराजित पुरुष को देयधन का पांचवां भाग राज्य को दण्ड रूप में देना पड़ेगा। जो मिथ्या वादी, सरकार में आकर पुकारे और झूंटा निकले-उसपर देयधन का दसवां भाग दण्ड होना चाहिए। कर्मचारियों के वेतन का आठवां भाग तथा दूसरे पक्ष का जो भोजन आदि में विशेष व्यय हुआ हो, इन दोनों व्ययों को हारने वाला ही देवे। कलह (मारपीट) डाका, व्यापारी तथा कम्पनियों के मुकदमों को छोड़ कर अपराधी से किसी बात का दण्ड नही लिया जा सकता और न अभियुक्त पर कोई मुकदमा चलाया जा सकता है। अभियोक्ता (मुस्तगीस) से जब कुछ पूछा जावे और वह उस दिन उत्तर न देवे-तो उसको पराजित समझना चाहिए, क्योंकि वह तो सोचविचार कर दावा करता है, परन्तु अभियुक्त [अपराधी या प्रतिवादी] दूसरे दिन भी उत्तर दे सकता है, क्योंकि वह प्रश्नों का उत्तर पूर्व में ही कैसे सोच सकता है। इसको उत्तर [जवाबदावा] देने को तीन दिन या सात दिन की छुट्टी [मुहलत] मिलनी चाहिए। जब तीन या सात दिन की नियत अवधि में भी वह उत्तर न दे-तो उसपर प्रति दिन के हिसाब से तीन पण से लेकर बारह पण तक [हर्जाने] का दण्ड किया जा सकता है। यदि इस तरह करने पर भी तीन पक्ष से अधिक समय हो जावे-और वह कोई उत्तर न दे-तो उसपर पराजित होने का दंड करके इसका सारा माल कुर्क करके वादी को दिला दिया जावे-उसके लिए केवल खाने पीने आदि की सामग्री छोड़ी जा सकती है। यदि अभियुक्त

(वादी या मुस्तगीस) झूंठा सिद्ध हो जावे-तो अभियुक्त का सारा हर्जाना वादी का माल, कुर्क करके अभियुक्त को दिला दिया जावे। अभियुक्त को यह दंड उससे प्रश्न करते ही और उसका ठीक २ उत्तर न देते ही हो जाना चाहिए-उसे कुछ भी मुहलत मिलने की आवश्यकता नहीं है। यदि प्रतिवादी या अभियुक्त मर जावे या कहीं विपत्ति में पड़ जावे तो एक तरफा साक्षी लेकर उसका सार असार जानकर यदि अभियोक्ता मिथ्यावादी सिद्ध हो-तो उसपर सरकारी दंड करके उससे उचित कार्य कराया जावे। यदि वह नगर में सेवा करना मान ले, तो उसे नगर में जाया जा सकता है। उसके पास अधिक धन हो-तो राक्षसों के नाश करने के यज्ञ, इसके द्वारा करवाये जावे। ब्राह्मणों से यह काम नहीं करवाया जा सकता। यदि बड़ा अपराधी हो-तो उसे राक्षसों को बलि भी चढ़ाया जा सकता है ॥ ४२-४६ ॥

चतुर्वर्णाश्रमस्यायं लोकस्याचाररक्षणात् ।
नश्यतां सर्वधर्माणां राजा धर्मप्रवर्तकः ॥ ५० ॥

चारों वर्ण, चारों आश्रम, और संसार के सारे मनुष्यों के आचार का रक्षक होने से राजा सारे नष्ट होते हुए धर्मों का प्रवर्तक माना गया है ॥ ५० ॥

धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम् ।
विवादार्थश्चतुष्पादः पश्चिमः पूर्वबाधकः ॥ ५१ ॥

तत्र सत्ये स्थितो धर्मो व्यवहारस्तु साक्षिषु ।
चरित्रं संग्रहे पुंसां राज्ञामाज्ञा तु शासनम् ॥ ५२ ॥

धर्म, व्यवहार- चरित्र और राजा शासन-ये चार विवाद (मुकदमे) के पाद माने गए हैं-इन में सब से पिछला राज शासन सब से अधिक बलवान है। अर्थात् धर्म आदि सारी बातें किसी मुकदमें के निबटाने में राजाज्ञा की बराबर नहीं होती हैं, क्योंकि धर्म तो सत्य, व्यवहार 'मुकदमा' साक्षी, चरित्र, संग्रहण आदि स्थानों में प्रसिद्ध रहता है। इस से राजा की आज्ञा ही सर्वोपरि शासन है ॥५१-५२ ॥

राज्ञः स्वधर्मः स्वर्गाय प्रजा धर्मेण रक्षितुः ।
अरक्षितुर्वा क्षेप्तुर्वा मिथ्यादण्डमतोऽन्यथा ॥ ५३ ॥

धर्म के साथ प्रजा की रक्षा करना राजा का अपना धर्म है, इसी से राजा को स्वर्ग की प्राप्ती होती है। जो राजा-प्रजा की रक्षा नहीं करता या व्यर्थ पीड़ा पहुंचाता है, उस को मिथ्याभाषी पुरुष की बराबर दंड होना चाहिए ॥ ५३ ॥

दण्डो हि केवलो लोकं परं चेमं च रक्षति ।
राज्ञा पुत्रे च शत्रौ च यथादोषं समं धृतः ॥ ५४ ॥

दंड ही इस लोक और परलोक की रक्षा करता है इसी से राजा-पुत्र और शत्रु को उसके दोष के अनुसार दंड दिया करता है ॥ ५४ ॥

अनुशासद्धि धर्मेण व्यवहारेण संस्थया ।
न्यायेन च चतुर्थेन चतुरन्तां महीं जयेत् ॥ ५५ ॥

जो राजा, धर्म, व्यवहार, चरित्र और चतुर्थ न्याय के अनुसार प्रजा का पालन करता है, वह चारों समुद्र से घिरी हुई इस पृथ्वी के शासन करने में समर्थ होता है ॥५५॥

संस्थया धर्मशास्त्रेण शास्त्रं वा व्यावहारिकम् ।
यस्मिन्नर्थे विरुध्येत धर्मेणार्थं विनिर्णयेत् ॥ ५६ ॥

चरित्र, धर्मशास्त्र, व्यवहारिक शास्त्र, 'कानून' का जहां विरोध हो वहाँ धर्मानुसार न्याय से ही उनका निर्णय करना चाहिए। ॥ ५६ ॥

शास्त्रं विप्रतिपद्येत धर्मन्यायेन केनचित् ।
न्यायस्तत्र प्रमाणं स्यात्तत्र पाठो हि नश्यति ॥ ५७ ॥

यदि धार्मिक न्याय के सन्मुख व्यवहारिक शास्त्र का विरोध हो-तो वहां न्याय 'धर्म' ही प्रमाण है, ऐसे स्थान पर राज्य शासन का निषेध कर देना चाहिए ॥५७॥

दृष्टदोषः स्वयंवादः स्वपक्षपरपक्षयोः ।
अनुयोमार्जवं हेतुः शपथश्चार्थसाधकः ॥ ५८ ॥

जिसके वाद में प्रत्यक्ष दोष हों। जो अपने और परपक्ष के विषय में अपने दोष को स्वयं स्वीकार करले। सीधी तरह से किए गए प्रश्न 'जिरह' हेतु 'प्रमाण' और शपथ-ये बातें झगड़े के निवटाने में बड़ी सहायक हैं. ॥ ५८ ॥

पूर्वोत्तरार्थव्याघाते साक्षिवक्तव्यकारणे ।
चारहस्ताच्च निष्पाते प्रदेष्टव्यः पराजयः ॥ ५९ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे विवादपदनिबन्धः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥
आदितो ऽष्टपञ्चाशः ॥ ५८ ॥

जब वादी और प्रति वादी के विवाद में परस्पर बड़ा विरोध हो, तथा साक्षी कथन और गुप्तचरों को कारण मानकर उस विवाद का न्यायाधीश को निर्णय 'फैसला' करना चाहिए। इसी के अनुसार न्यायाधीश, जयपराजय की आज्ञा जारी करे ॥ ५९ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में व्यवहार और विवाद 'दीवानी और फौजदारी' के मुकदमों के विषय के वर्णन का पहिला अध्याय समाप्त हुआ।



द्वितीय अध्याय

विवाह धर्म, स्त्रीधन और आधिवेदनिक।

५९वां प्रकरण

विवाह

विवाह के धर्म, उसमें दिया हुआ कन्यादान (स्त्रीधन) तथा पति दूसरा विवाह करे-तो स्त्री को देय धन की व्यवस्था का अब इस प्रकरण में वर्णन किया जाता है।

विवाहपूर्वो व्यवहारः। ॥ १ ॥ कन्यादानं कन्यामलंकृत्य ब्राह्मो विवाहः ॥ २ ॥ सहधर्मचर्या प्राजापत्यः ॥ ३ ॥ गोमिथुनादानादार्षः ॥ ४ ॥ अन्तर्वेद्यामृत्विजे दानाद्दैवः ॥ ५ ॥ मिथःसमवायाद्गान्धर्वः ॥ ६ ॥ शुल्कादानादासुरः ॥ ७ ॥ प्रसह्यादानाद्राक्षसः ॥ ८ ॥ सुप्तमत्तादानात्पैशाचः ॥९॥ पितृप्रमाणाश्चत्वारः पूर्वे धर्म्याः ॥ १० ॥ मातापितृप्रमाणाः शेषाः ॥ ११ ॥ तौ हि शुल्कहरौ दुहितुः ॥ १२ ॥ अन्यतराभावे ऽन्यतरो वा ॥ १३ ॥ अद्वितीयं शुल्कं स्त्री हरेत ॥ १४ ॥ सर्वेषां प्रीत्यारोपणमप्रतिषिद्धम् ॥ १५ ॥

संसार के सारे व्यवहारों का विवाह के अनन्तर ही आरम्भ होता है। किसी की कन्या का सन्तानोत्पत्ति निमित्त ग्रहण करना विवाह माना गया है। कन्या को आभूषण वस्त्र आदि से अलंकृत करके जो कन्या का दान किया जाता है, इसे ब्राह्मविवाह कहते हैं। वर और कन्या, दोनों साथ २ रहकर संसार यात्रा करने की प्रतिज्ञा करके, वर जब कन्या ग्रहण करता है, तो प्राजापत्य विवाह कहाता है। वर-कुल से गौ का जोड़ा लेकर जो कन्या दान किया जाता है, वह आर्ष विवाह है। [यह गौ मिथुन कन्या निमित्त या विवाह व्यय निमित्त समझना चाहिए] वेदी के समीप बैठ कर किसी याज्ञिक तपस्वी के लिए कन्या दान कर देना दैव विवाह है। जब वर और कन्या दोनों प्रसन्नता पूर्वक मिल बैठें-तो यह गांधर्व विवाह कहाता है। कन्या के पिता आदि को धन देकर जो विवाह किया जाता है, वह आसुर विवाह है। बल पूर्वक कन्या का छीन लेना राक्षस विधि है। सोती और नशा आदि से उन्मत्त हुई कन्या से विवाह कर लेना पिशाच विवाह कहाता है।

पिता की इच्छा के अनुकूल होने से प्रथम के ब्राह्म आदि चार विवाह धर्म सम्मत हैं। अन्य चार विवाह, माता पिता के स्वार्थ पर अवलम्बित हैं, इनमें दोनों माता और पिता, कन्या के शुल्क [मोल] के अधिकारी होते हैं, क्योंकि वे ही दोनों अपनी कन्या पर शुल्क ले सकते हैं, इन दोनों माता पिता में से एक न हो-तो-जो हो वह कन्या के शुल्क का अधिकारी है यदि दोनों माता पिता नष्ट हो गए हों-तो इस शुल्क का अधिकारी वही कन्या मानी जावेगी। इन सारे विवाहों में वर और कन्या की प्रीति (मन्जूरी) की बड़ी आवश्यकता है, यदि बल-पूर्वक किये हुए विवाह के अनन्तर वर या कन्या प्रसन्न न हो-तो विवाह नहीं माना जा सकता है ॥१-१५॥

स्त्री धन।

वृत्तिराबध्यं वा स्त्रीधनम् ॥ १६ ॥ परद्विसाहस्रा स्थाप्या वृत्तिः ॥१७॥ आबध्यानियमः ॥ १८ ॥ तदात्मपुत्रस्नुषाभर्मणि प्रवासाप्रतिविधाने च भार्याया भोक्तुमदोषः ॥ १९ ॥ प्रतिरोधकव्याधिदुर्भिक्षभयप्रतीकारे धर्मकार्ये च पत्युः ॥ २० ॥ संभूय वा दंपत्योर्मिथुनं प्रजातयोस्त्रिवर्षोपभुक्तं च धर्मिष्ठेषु विवाहेषु नानुयुञ्जीत ॥ २१ ॥ गान्धर्वासुरोपभुक्तं सवृद्धिकमुभयं दाप्येत ॥ २२ ॥ राक्षसपैशाचोपभुक्तं स्तेयं दद्यात् ॥ २३ ॥ इति विवाहधर्मः ॥ २४ ॥

जो वर की ओर से कन्या को धन दिया जाता है अर्थात् वस्त्र आभूषण आदि चढ़ाए जाते हैं, वह स्त्री धन कहाता है। यह दो प्रकार का है, वृत्ति और आबध्या, नकद रुपये को वृत्ति और आभूषण आदि को आबध्य कहते हैं। वृत्ति (नकद रुपया) दो हज़ार से अधिक होना चाहिए और आभूषण आदि आबध्य धन का कोई नियम नहीं है। यदि पति विदेश चला गया और स्त्री का कोई प्रबन्ध कर गया-तो स्त्री उस धन में से अपने पुत्र, पुत्रवधू आदि का पालन पोषण कर सकती है। कुटुम्ब पर आई हुई विपत्ति, व्याधि, दुर्भिक्ष, किसी भय प्रतीकार में तथा धर्म कार्य में पति भी उस स्त्री धन में से व्यय [खर्च] कर सकता है इसमें दोष नहीं माना जाता। यदि उन वर और कन्या के विवाह के अनन्तर दो बच्चे उत्पन्न हो गए या उनके धार्मिक विवाह को तीन वर्ष व्यतीत हो चुकें-तो वे दोनों मिलकर उस धन का व्यय कर सकते हैं। यदि किसी ने गान्धर्व और आसुर विवाह किये, उनसे राज्य की ओर से जो स्त्री धन नियत किया गया, यदि वे खर्च कर डालें-तो उनसे व्याज सहित जमा करवा लेना चाहिए। जिन्होंने राक्षस या पैशाच विवाह किया हो और वे स्त्री धन को उड़ा दें-तो उनको चोरी का दण्ड मिलना चाहिए। यहां तक विवाह के धर्मों के विषय में विवेचना की गई ॥१६-२४॥

मृते भर्तरि धर्मकामा तदानीमेवास्थाप्याभरणं शुल्कशेषं च लभेत ॥२५॥ लब्ध्वा वाविन्दमाना सवृद्धिकमुभयं दाप्येत ॥ २६ ॥ कुटुम्बकामा तु श्वशुरपतिदत्तं निवेशकाले लभेत ॥ २७ ॥ निवेशकालं हि दीर्घप्रवासे व्याख्यास्यामः ॥ २८ ॥ श्वशुरप्रातिलोम्येन वा निविष्टा श्वशुरपतिदत्तं जीयेत ॥२९॥ ज्ञातिहस्तादभिमृष्टायां ज्ञातयो यथागृहीतं दद्युः ॥ ३० ॥ न्यायोपगतायाः प्रतिपत्ता स्त्रीधनं गोपायेत् ॥ ३१ ॥ पतिदायं विन्दमाना जीयेत ॥ ३२ ॥ धर्मकामा भुञ्जीत ॥ ३३ ॥

यदि किसी स्त्री का पति मर जावे, और वह अपने जीवन को पूर्व पति की स्मृति में ही धर्मानुसार व्यतीत करना चाहे, तो उसको वे आभूषण और नकद रुपया शीघ्र मिल जाना चाहिए। यदि उस धन को पाकर वह फिर विवाह करना चाहे, तो उससे वह धन ब्याज सहित वापिस लेना उचित है। जो केवल सन्तान के निमित्त ही कुछ दिन को विवाह करना चाहे-तो वह विवाह के समय श्वशुर और पति के दिए हुए धन को पा सकती है। ऐसी स्त्री का विवाह काल क्या है, यह बात दीर्घप्रवास प्रकरण में लिखी जावेगी। यदि कोई स्त्री अपने श्वशुर की इच्छा के विरुद्ध विवाह करना चाहती है, तो श्वशुर और पति के दिए हुए धन के लेने का उसको हक़ नहीं है। यदि उसका स्त्री धन बन्धु बान्धवों के पास है, तो वे उस धन को इस समय वापिस कर दें। क्योंकि अब जो न्याय पूर्वक स्त्री की रक्षा करेगा, वही उस स्त्री धन की रक्षा का भी अधिकारी है। यदि स्त्री पुनर्विवाह करना चाहती है, तो वह अपने पति का दाय भाग नहीं पा सकती। यदि वह धर्मानुसार पूर्व पति के नाम पर ही जीवन व्यतीत करती है, तो उसे अपने पति का दाय भाग (हिस्सा) मिल सकेगा ॥२५-३३॥

पुत्रवती विन्दमाना स्त्रीधनं जीयेत ॥३४॥ तत्तु स्त्रीधनं पुत्रा हरेयुः ॥३५॥ पुत्रभरणार्थं वा विन्दमाना पुत्रार्थं स्फातीकुर्यात् ॥ ३६ ॥ बहुपुरुषप्रजानां पुत्राणां यथापितृदत्तं स्त्रीधनमवस्थापयेत् ॥ ३७ ॥ कामकरणीयमपि स्त्रीधनं विन्दमाना पुत्रसंस्थं कुर्यात् ॥ ३८ ॥ अपुत्रा पतिशयनं पालयन्ती गुरुसमीपे स्त्रीधनमायुःक्षयाद्भुञ्जीत ॥ ३९ ॥ आपदर्थं हि स्त्रीधनम् ॥ ४० ॥ ऊर्ध्वं दायादं गच्छेत् ॥ ४१ ॥

यदि कोई पुत्रवती विधवा होने पर विवाह करना चाहती है, तो वह स्त्री धन को नहीं पा सकती, क्योंकि उस धन के अधिकारी उसके पुत्र हैं। यदि कोई स्त्री अपने पुत्रों के भरण पोषण के निमित्त विवाह करना चाहे, तो उस धन को अपनी सन्तान के नाम

सरकारी तौर पर सुरक्षित कर दे। यदि किसी स्त्री के पृथक् २ सन्तान, पृथक् २ विवाहित पतियों से हुई हैं, तो वह स्त्री उन २ पिताओं के दिए हुए स्त्री धन को उनके पुत्रों के नाम सुरक्षित करादे। अपनी इच्छानुसार खर्च करने को प्राप्त हुए स्त्री धन को भी इस दशा में वह अपने पुत्रों को देदे। जिस स्त्री के पुत्र नहीं है और वह अपने पति के नाम पर बैठी हुई धर्म-पूर्वक जीवन व्यतीत करती है-तो वह अपने किसी पूज्य सम्बन्धी के पास रहकर अपने स्त्री धन का आयुपर्यन्तभोग कर सकती है। उसको देने का अधिकार नहीं है, उसके मरने पर उसके हक़दार उसे प्राप्त करलें ॥३४-४१॥

जीवति भर्तरि मृतायाः पुत्रा दुहितरश्च स्त्रीधनं विभजेरन् ॥ ४२ ॥ अपुत्राया दुहितरः ॥ ४३ ॥ तदभावे भर्ता ॥ ४४ ॥ शुल्कमन्वाधेयमन्यद्वा बन्धुभिर्दत्तं बान्धवा हरेयुः ॥ ४५ ॥ इति स्त्रीधनकल्पः ॥ ४६ ॥

पति के जीवित रहने पर यदि स्त्री मर जाय, तो उस स्त्री धन को पुत्र और पुत्री बांट लें। यदि उसके कोई पुत्र न हों-तो उसकी पुत्रियां ही उस स्त्री धन को बांट सकती हैं। यदि उस दम्पती के कोई सन्तान न हो और स्त्री मर जावे, तो उस धन का पति अधिकारी है। जो कुछ स्त्री का शुल्क या धरोहर के ढंग पर तथा अन्य किसी प्रकार का ऐसा ही धन स्त्री के पास हो-तो उसके बान्धव उस धन के ग्रहण करने के अधिकारी हैं। यहां तक स्त्री धन के विषय में विचार किया गया है ॥४२-४६॥

वर्षाण्यष्टावप्रजायमानामपुत्रां वन्ध्यां चाकांक्षेत ॥ ४७ ॥ दश निन्दुं द्वादश कन्याप्रसविनीम् ॥ ४८ ॥ ततः पुत्रार्थी द्वितीयां विन्देत ॥ ४९ ॥ तस्यातिक्रमे शुल्कं स्त्रीधनमर्धं चाधिवेदनिकं दद्यात् ॥ ५० ॥ चतुर्विंशतिपणपरं च दण्डम् ॥ ५१ ॥ शुल्कस्त्रीधनमशुल्कस्त्रीधनायांतत्प्रमाणमाधिवेदनिकमनुरूपां च वृत्तिं दत्त्वा बह्वीरपि विन्देत ॥ ५२ ॥ पुत्रार्था हि स्त्रियः ॥ ५३ ॥

यदि किसी स्त्री के सन्तान न होने से अपुत्रवती या वन्ध्या हो तो उसका पति आठ वर्ष प्रतीक्षा करे, यदि किसी के मृत सन्तान हों-तो दस और कन्या ही कन्या उत्पन्न हों-तो बारह वर्ष प्रतीक्षा करे-उसके अनन्तर वह पुत्र का अभिलाषी द्वितीय विवाह कर सकता है। जो इस आज्ञा के विरुद्ध करे-उस को कन्या शुल्क स्त्री धन, तथा द्वितीय विवाह सम्बन्धी धन-सब कुछ देना पड़ेगा। और राज्य की ओर से उस पर बीस पण दण्ड होगा। कोई भी पुरुष, अपनी पूर्व स्त्री को शुल्क धन और स्त्री धन तथा जिस के पास शुल्क या स्त्री धन न हो-उसको आधिवेदनिक (द्वितीय विवाह का शुल्क) के रूप में इन सब की बराबर का रुपया देकर द्वितीय विवाह कर सकता है। इस तरह वह कितने भी विवाह करे, क्योंकि स्त्री तो केवल सन्तान उत्पत्ति के साधन हैं ॥ ४७-५३ ॥

तीर्थसमवाये चासां यथाविवाहं पूर्वोढां जीवत्पुत्रां वा पूर्वं गच्छेत् ॥५४॥ तीर्थगूहनागमने पण्णवतिर्दण्डः ॥ ५५ ॥ पुत्रवतीं धर्मकामां वन्ध्यां विन्दुं नीरजस्कां वा नाकामामुपेयात् ॥ ५६ ॥ न चाकामः पुरुषः कुष्ठिनीमुन्मत्तां वा गच्छेत् ॥ ५७ ॥ स्त्री तु पुत्रार्थमेवंभूतं वोपगच्छेत् ॥ ५८ ॥

यदि बहुत स्त्रियों के पति की कई स्त्रियाँ एक दम ऋतुमति हो जावें-तो पति प्रथम विवाहिता या पुत्रवती के पास जावे। यदि कोई किसी स्त्री के ऋतुकाल को टलाकर उसमें गमन नहीं करता-तो उसपर छियानवें पण (मुद्रा) दण्ड होना चाहिए। जो पुरुष व्रताचारव्रती पुत्रवती, वन्ध्या, विन्दु (मृत पुत्रोत्पादन करने वाली) रजोहीन स्त्रियाँ यदि संभोग की इच्छा न करें-तो उनके पास न जावे। काम से पागल हुए बिना पुरुष, कुष्ठिनी या उन्मत्त (पागल) स्त्री के साथ संसर्ग न करे। भार्या, पुत्रोत्पत्ति की लालसा से कुष्ठी या उन्मत्त (पुरुष) के साथ भी संसर्ग कर सकती है॥ ५४-५८॥

नीचत्वं परदेशं वा प्रस्थितो राजकिल्बिषी।
प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः क्लीबो ऽपि वा पतिः ॥ ५९ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे विवाहसंयुक्ते विवाहधर्मः स्त्रीधनकल्प आधिवेदनिकं द्वितीयो ऽध्यायः॥ २ ॥
आदितः एकोनषष्टितमो ऽध्यायः ॥ ५९ ॥

कोई भी स्त्री-नीच, परदेश में गए हुए (जिनके आने की आशा न हो) राजा से सजा पाए हुए, प्राणघात की चेष्टा करने में लग्न, पतित (ईसाई, मुसलमान आदि हो जाने वाले) तथा नपुंसक पति को छोड़ सकती है॥ ५९॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अधिकरण में विवाह धर्म, स्त्रीधन और द्वितीय विवाह के सम्बन्ध के धन की व्यवस्था का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।

तृतीय अध्याय

५६ वां प्रकरण

इस प्रकरण में भी विवाह से संबन्ध रखने वाली शुश्रूषा पालन पोषण आदि की व्यवस्था का वर्णन होगा।

द्वादशवर्षा स्त्री प्राप्तव्यवहारा भवति ॥ १ ॥ षोडशवर्षः पुमान् ॥ २ ॥ अत ऊर्ध्वमशुश्रूषायां द्वादशपणः स्त्रिया दण्डः पुंसो द्विगुणः ॥ ३ ॥ भर्मण्यायामनिर्दिष्टकालायां ग्रासाच्छादनं वाधिकं यथापुरुषपरिवापं सविशेषं दद्यात् ॥ ४ ॥ निर्दिष्टकालायां तदेव संख्याय बन्धं च दद्यात् ॥ ५ ॥ शुल्कस्त्रीधनाधिवेदनिकानामनादाने च ॥ ६ ॥ श्वशुरकुलप्रविष्टायां विभक्तायां वा नाभियोज्यः पतिः ॥ ७ ॥ इति भर्म ॥ ८ ॥

बारह वर्ष की स्त्री और सोलह वर्ष का पुरुष प्राप्त व्यवहार (मुकदमे के योग्य अर्थात् वालिग़) माने जावेंगे, बारह और सोलह वर्ष की अवस्था के ऊपर जो कोई भी स्त्री और पुरुष, राजा के कानून को ध्यान से नहीं सुनेगा-उनमें स्त्री पर बारह पण और पुरुष पर चौबीस पण दण्ड होना चाहिए, यदि किसी स्त्री के भरण पोषण का काल नियत नहीं है तो उसको भोजन वस्त्र या अपनी आमदनी और परिवार के अनुसार अधिक भी नियत कर सकता है। यदि किसी स्त्री का समय नियत है, तो उसके देय धन की संख्या नियत करके बन्धन पूर्वक दे देना चाहिए। तथा जिसने शुल्क, स्त्रीधन या आधिवेदनिक (द्वितीय विवाह का शुल्क) कुछ भी ग्रहण नहीं किया-उसको भी एक नियत रक़म बांध देनी चाहिए। यदि स्त्री अपने पितृकुल (पीहर) में रहने लग जावे-या अपने को पृथक् रखने लगे-तो उसके भरण पोषण का भार पति पर नहीं है-यहां तक शुश्रूषा और भरण पोषण की व्यवस्था का वर्णन किया गया ॥ १-८ ॥

नग्ने विनग्ने न्यङ्गे ऽपितृके ऽमातृक इत्यनिर्देशेन विनयग्राहणम् ॥ ९ ॥ वेणुदलरज्जुहस्तानामन्यतमेन वा पृष्ठे त्रिराघातः ॥ १० ॥ तस्यातिक्रमे वाग्दण्डपारुष्यदण्डाभ्यामर्धदण्डाः ॥ ११ ॥ तदेव स्त्रिया भर्तरि प्रसिद्धायामदोषायामीर्ष्यया बाह्यविहारेषु द्वारेष्वत्ययो यथानिर्दिष्टः ॥ १२ ॥ इतिपारुष्यम् ॥ १३ ॥

यदि स्त्री आज्ञा न मानती हो-तो पति-नंगी, अधनंगी, लंगड़ी, लूली, आप मरो, मां मरी आदि गाली न देकर उसे नम्रता पूर्वक रहने की प्रथम शिक्षा देवे। यदि इस प्रकार शिक्षा देने पर भी वह कथित बात पर ध्यान न देवे-तो उसके बांस की पतली लकड़ी [खपच्ची] रस्सी या तीन थप्पड़ पीठ में मारे जा सकते हैं। यदि फिर भी वह न माने तो वाग्दण्ड और पारुष्य दण्ड का आधा दण्ड उनको दिया जा सकता है। (वागदण्ड और पारुष्य दण्ड का वर्णन आगे किया जावेगा) इसी प्रकार यद्यपि स्त्री अदोष है, परन्तु भर्ता से ईर्ष्या (पर स्त्री गमन आदि के कारण) के कारण वह बाह्य विहार (बाहर के घूमने के स्थान) या द्वार पर कोई कुचेष्टा करे-तो उसका दण्ड बताया गया है। यहां तक कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई ॥ ९-१३ ॥

भर्तारं द्विषती स्त्री सप्तार्तवान्यमण्डयमाना तदानीमेव स्थाप्याभरणं निधाय भर्तारमन्यया सह शयानमनुशयीत ॥ १४॥ भिक्षुक्यन्वाधिज्ञातिकुलानामन्यतमे वा भर्ता द्विषन्स्त्रियमेकामनुशयीत ॥ १५ ॥ दुष्टलिङ्गे मैथुनापहारे सवर्णापसर्पोपगमे वा मिथ्यावादी द्वादशपणं दद्यात् ॥ १६ ॥ अमोक्ष्या भर्तुरकामस्य द्विषती भार्या ॥ १७ ॥ भार्यायाश्च भर्ता ॥ १८ ॥ परस्परं द्वेषान्मोक्षः ॥ १९ ॥ स्त्रीविप्रकाराद्वा पुरुषश्चेन्मोक्षमिच्छेद्यथागृहीतमस्यै दद्यात् ॥ २० ॥ पुरुषविप्रकाराद्वा स्त्री चेन्मोक्षमिच्छेन्नास्यै यथा गृहीतं दद्यात् ॥२१॥ अमोक्षो धर्मविवाहानामिति ॥ २२ ॥ प्रतिषिद्धा स्त्री दर्पमद्यक्रीडायां त्रिपणं दण्डं दद्यात् ॥ २३ ॥ दिवा स्त्रीप्रेक्षाविहारगमने षट्पणो दण्डः ॥ २४ ॥ पुरुषप्रेक्षाविहारगमने द्वादशपणः ॥ २५ ॥ रात्रौ द्विगुणः ॥ २६ ॥

भर्ता से द्वेष करने वाली स्त्री सात ऋतु तक अपने पति से द्वेष करके यदि वह दूसरे को चाहती रहे-तो वह अपना स्त्रीधन आदि भर्ता को सौंपकर अपने भर्ता को दूसरे विवाह की छुट्टी देकर आप उस से पृथक् हो जावे। यदि भर्ता अपनी स्त्री से द्वेष रखता है, तो वह उसे सन्यासिनी होने या स्त्रीधन के रक्षक तथा अपने बन्धु बाँधव के मध्य में अकेली रहने की छुट्टी (फ़ारगती) देदे। यदि पति के शरीर पर मैथुन आदि के चिन्ह सपष्ट हों, अथवा किसी अपनी सवर्ण स्त्री के पास गमन करके भी मैथुन का अपलाप करे-तो उस मिथ्या वादी पति से स्त्री को बारह पण दिलाने चाहिए, यदि स्त्री भर्ता से द्वेष करती है, परन्तु पति उसको छोड़ना नही चाहता तो इस दशा में स्त्री को छुटकारा नही दिया जा सकता। यदि बिना अपराध पति स्त्री को छोड़ना चाहता है, और स्त्री छोड़ना नहीं चाहती है-तो भी पति पत्नी पृथक् २ नही हो सकते हैं। यदि दोनों परस्पर द्वेष करने

लगे-तो उनको शीघ्र छुटकारा मिल सकता हैं। यदि स्त्री की किसी बुराई के कारण पुरुप उसे छोड़ना चाहता है-तो जो स्त्रीधन आदि उसका है, वह उसे फौरन देदे। पुरुष की किसी बुराई (दोप) के कारण स्त्री पुरुप को छोड़ना चाहती है, तो उसको उस स्त्रीधन आदि का कुछ भाग नहीं मिल सकता है। धर्म पूर्वक किए गए ब्राह्म आदि चारों विवाहों में छोड़ना (तलाक) जायज्ञ नहीं है। त्यागी हुई स्त्री अभिमान युक्त और निर्लज्ज होकर जो मद्य पीवे या क्रीड़ा करे -तो उसपर तीन पण (स्वर्ण मुद्रा) दण्ड होना चाहिए। यदि कोई स्त्री, दिनमें भी स्त्रियों के नाटक घर और क्रीड़ा स्थानों में जावें-तो उनपर छः पण (स्वर्ण मुद्रा) दण्ड होना चाहिए। यदि पुरुषों के प्रेक्षा गृह में या विहारस्थल में कोई उद्दण्ड स्त्री पहुंच जावे-तो उसपर बारह पण और रात में चौबीस पण दण्ड कहा गया है॥ १४-२६॥

सुप्तमत्तप्रव्रजने भर्तुरदाने च द्वारस्य द्वादशपणः ॥२७॥ रात्रौ निष्कासने द्विगुणः ॥ २८ ॥ स्त्रीपुंसयोर्मैथुनार्थेनाङ्गविचेष्टायां रहोऽश्लीलसंभाषायां वा चतुर्विंशतिपणः स्त्रिया दण्डः ॥ २९ ॥ पुंसो द्विगुणः ॥ ३० ॥ केशनीवीदन्त-नखावलम्बनेषु पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३१ ॥ पुंसो द्विगुणः ॥ ३२ ॥ शङ्कितस्थाने संभाषायां च पणस्थाने शिफादण्डः ॥३३॥ स्त्रीणां ग्राममध्ये चण्डालः पक्षान्तरं पञ्चशिफा दद्यात् ॥३४॥ पणिकं वा प्रहारं मोचयेत् ॥३५॥ इत्यतिचारा ॥३६॥

यदि कहीं अन्य सोने, नशा करने या बाहर चले जाने पर फिर लौटकर आए हुए पति को जो स्त्री द्वार नहीं खोले-उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए। यदि कोई स्त्री अपने पति को रात में बाहर निकालदे-तो उसपर चौबीस पण दण्ड होवे। मैथुन के निमित्त स्त्री और पुरुषों के संकेत करने पर अथवा एकान्त में अश्लील भाषण करने पर स्त्री को चौबीस पण का दंड है और पुरुष पर अड़तालीस पण दंड होना चाहिए। केश, नावी (नाड़ा) दांत [जोर से चुम्बन लेना] नखावलम्बन [स्तन आदि पर हाथ गेरना] आदि में से स्त्री कुछ कर बैठे-तो उसपर पूर्व साहस दंड हो और पुरुप पर इससे दुगुना दंड होना चाहिए। यदि स्त्री पुरुष शङ्कित स्थान में बात चीत करते पाये जावें-तो उनको पण दंड न देकर उनपर कौड़े लगवाए जावें। यदि कौड़े लगाने हों-ता गांव के मध्य में चांडाल, एक स्त्री के एक पक्ष में पाँच कौड़े मार सकता है। यदि इन प्रहारों के बदले जुर्माना कर दिया जावे-तो यह प्रहार मुआफ किए जा सकते हैं। यहां तक अनाचार के विषय में नियमों का वर्णन किया गया॥ २७-३६॥

प्रतिषिद्धयोः स्त्रीपुंसयोरन्योपकारे क्षुद्रकद्रव्याणां द्वादशपणो दण्डः ॥३७॥ स्थूलकद्रव्याणां चतुर्विंशतिपणः ॥३८॥ हिरण्यसुवर्णयोश्चतुष्पञ्चाशत्पणः स्त्रिया

दण्डः ॥ ३९ ॥ पुंसो द्विगुणः ॥ ४० ॥ त एवागम्ययोरर्धदण्डाः ॥ ४१ ॥ तथा प्रतिषिद्धपुरुषव्यवहारेषु च ॥ ४२ ॥ इति प्रतिषेधः ॥ ४३ ॥

यदि रोके जाने पर भी स्त्री पुरुष परस्पर छोटी मोटी वस्तु देते लेते रहें-तो उन पर बारह पण दंड होना उचित है। यदि वे बड़ी २ चीजें दें-लेवें-तो उनपर चौबीस पण दंड होना चाहिए [रोकने पर ऐसा करना व्यभिचार सूचक है] यदि वे सोना या सोने के आभूषण देवे-लेवें-तो स्त्री पर चौवन पण दंड और पुरुष पर एक सौ आठ पण दण्ड होना योग्य है। यदि स्त्री पुरुष अवतक अपने नहीं मिलने का प्रमाण देदे-तो भी उन पर आधा दण्ड अवश्य होना चाहिए-सम्भव है, वे आगे मिलने की चेष्टा करते हों। यही दंड पुरुषों को परस्पर व्यवहार रोकने पर भी व्यवहार जारी रखने के दोष में दंड है, क्योंकि जिनपर शङ्का है, उनको रोकने पर भी व्यवहार रखना अपराध का कारण माना जावेगा। यहाँ तक उपकार या व्यवहार के प्रतिषेध के नियमों की व्याख्या हुई॥ ३७-४३ ॥

राजद्विष्टातिचाराभ्यामात्मापक्रमणेन च।
स्त्रीधनानीतशुल्कानामस्वाम्यं जायते स्त्रियाः ॥ ४४॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे विवाहसंयुक्ते शुश्रूषाभर्मपारुष्यद्वेषातिचारा उपकारव्यवहारप्रतिषेधाश्च तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आदितः षष्टितमः ॥ ६० ॥

राजा के द्वेष, आचार के उल्लंघन आत्मापक्रमण [आवारागर्द] कर लेने पर कोई भी स्त्री, स्त्रीधन, अनीत धन [पति के दूसरे विवाह के समय प्राप्तधन] तथा शुल्क अर्थात् अपने विवाह के समय प्राप्त धन पर अपना प्रभुत्व नहीं रख पाती हैं अर्थात् इस धन पर उस का अधिकार नहीं रह जाता है ॥ ४४॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रन्तार्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में विवाह सम्बन्धी शुश्रूषाआदि के वर्णन का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

चौथा अध्याय

५९वां प्रकरण

इस प्रकरण में भी विवाह सम्बन्धी निष्पतन-आदि का वर्णन किया जावेगा।

पतिकुलान्निष्पतितायाः स्त्रियाः षट्पणो दण्डोऽन्यत्र विप्रकारात् ॥ १ ॥ प्रतिषिद्धायां द्वादशपणः ॥ २ ॥ प्रतिवेशगृहातिगतायाः षट्पणः ॥ ३ ॥ प्रातिवेशिकभिक्षुकवैदेहकानामवकाशभिक्षापण्यादाने द्वादशपणो दण्डः ॥ ४ ॥ प्रतिषिद्धानां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५ ॥ परगृहातिगतायां चतुर्विंशतिपणः॥ ६ ॥ परभार्यावकाशदाने शत्यो दण्डो ऽन्यत्रापद्भ्यः ॥ ७ ॥

यदि स्त्री के साथ कोई अत्याचार न हुआ हो और वह पति कुल से किसी भी कारण से भाग कर चली आवे-तो उसपर छः पण दण्ड होना चाहिए। पति के रोकने पर भी यदि स्त्री मौक़ा पाकर भाग निकले-तो उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए। यदि भागकर पड़ोसी के घर में जा छुपे तो छः पण दण्ड होना चाहिए। पति की आज्ञा के बिना पड़ोसी को घर में स्थान, भिक्षुक को भिक्षा और व्यापारी को माल बेच देने पर स्त्री को बारह पण दण्ड देना चाहिए। यदि जिनका आना जाना रोका जा चुका-उनके साथ स्त्री ये व्यवहार करे-तो उसपर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए। यदि स्त्री, दूर के घरों तक दौड़ लगाने लग जावे-तो उसपर चौबीस पण दण्ड देना योग्य है। यदि किसी अन्य स्त्री पर कोई आपत्ति नहीं है और उस स्त्री को अपने घर में जो स्त्री ठहरा लेती है, तो उसपर सौ पण दण्ड होना चाहिए ॥१-७॥

वारणाज्ञानयोर्निर्दोषः॥ ८ ॥ पतिविप्रकारात् पतिज्ञातिसुखावस्थग्रामिकान्वाधिभिक्षुकीज्ञातिकुलानामन्यतममपुरुषं गन्तुमदोष इत्याचार्याः ॥ ९ ॥ सपुरुषं वा ज्ञातिकुलं कुतो हि साध्वीजनस्य छलं सुखमेतदवबोद्धुमिति कौटल्यः ॥१०॥ प्रेतव्याधिव्यसनगर्भनिमित्तमप्रतिषिद्धमेव ज्ञातिकुलगमनम् ॥ ११ ॥ तन्निमित्तं वारयतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ तत्रापि गूहमाना स्त्रीधनं जीयेत ॥ १३॥ ज्ञातयो वा छादयन्तः शुल्कशेषम् ॥ १४ ॥ इति निष्पतनम् ॥ १५ ॥

यदि स्त्री मना करती रहे और वह आने वाली स्त्री चली आवे-तथा अपने पति के रोकने की आज्ञा का पता न हो-तो इस दशा में उस स्त्री पर कोई दण्ड नहीं होगा। पति के निकाल देने पर पति के बान्धव, सुखी लोग, गांव के पटेल, अपने धन के निरीक्षक, संन्यासिनी तथा अपने सम्बन्धियों में से किसी के घर चली जाने पर कोई भी स्त्री, दूषित नही मानी जावेगी ऐसा पूर्वाचार्यों का मत है। कौटल्य के मत में पुरुषों से भरे हुए भी बन्धु-बान्धवों के घरों पर साध्वी स्त्री जा सकती है, क्योंकि यदि स्त्री का कोई छल होगा-तो वह इस तरह पहचाना जा सकेगा। मृत्यु, बीमारी, आपत्ति और गर्भ

निमित्त दशा में कोई भी स्त्री अपने बन्धु बान्धवों के कुल में जा सकता है-इसमें उसको रोक टोक नहीं है। यदि कोई पुरुष, ऐसे समय में भी स्त्री को सम्बन्धियों के यहां जाने से रोकता है, तो उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए। यदि स्त्री स्वयं जाने से अपने आपको छुपाले-तो उसका स्त्री धन [बन्ध-बान्धवों के पास सुरक्षित धन] उनके ही पास रहेगा। यदि बन्धु-बान्धव, उत्सव के समय पर अपनी बहन बेटी को न बुलावें-तो उनको देयधन का शेष धन नहीं देना चाहिए। यहां तक स्त्री के निष्पतन [निकल जाने] की व्यवस्था का वर्णन हुआ ॥८-१५॥

पतिकुलान्निष्पत्य ग्रामान्तरगमने द्वादशपणो दण्डः स्थाप्याभरणलोपश्च ॥ १६ ॥ गम्येन वा पुंसा सहप्रस्थाने चतुर्विंशतिपणः सर्वधर्मलोपश्चान्यत्र भर्म-दानतीर्थगमनाभ्याम् ॥ १७ ॥ पुंसः पूर्वः साहसदण्डस्तुल्यश्रेयसः ॥ १८ ॥ पापीयसो मध्यमः ॥ १९ ॥ बन्धुरदण्डयः ॥ २० प्रतिषेधे ऽर्धदण्डः ॥ २१ ॥

पति कुल से निकल कर दूसरे गांव में पहुंच जाने पर स्त्री पर बारह पण दण्ड होवे और उसका सुरक्षित धन तथा आभरण आदि भी जब्त कर लिए जावे। यदि स्त्री गम्य (मैथुन के योग्य) पुरुष के निकल जावे-तो उसपर चौबीस पण का दण्ड हो और उसके सारे धर्म [पति के साथ यज्ञ आदि करने] का नाश समझना चाहिए। पालन पोषण, दान; तीर्थगमन के निमित्त ऐसे पुरुष के साथ जाने पर भी शंका नहीं माननी चाहिए। यदि कुलीन पुरुष पूर्वोक्त अपराधों में से किसी एक को करे-तो उसे पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए। और नीचजाति वाले पुरुष को मध्यम दण्ड है। बन्धु-बान्धव अपनी बहन बेटी के आने पर अदण्डय हैं। यदि उनको रोक दिया जावे और वे फिर भी अपनी कन्या आदि को आने दें-तो उनपर आधा दण्ड होगा ॥१६-२१॥

पथि व्यन्तरे गूढदेशाभिगमने मैथुनार्थेन शङ्कितप्रतिषिद्धाभ्यां वा पथ्यनु-सारेण संग्रहणं विद्यात् ॥ २२ ॥ तालापचार चारणमत्स्यबन्धकलुब्धकगोपालक-शौण्डिकानामन्येषां च प्रसृष्टस्त्रीकाणां पथ्यनुसरणमदोषः प्रतिषिद्धे वा नयतः पुंसः स्त्रियो वा गच्छन्त्यास्त एवार्धदण्डाः ॥ २४॥ इति पथ्यनुसरणम् ॥२५॥

शंका के योग्य और प्रतिषिद्ध [रोके हुए] पुरुष के साथ गमन करते हुए मार्ग, जङ्गल और गुप्त स्थान में मैथुन की अभिलाषा से जाती हुई स्त्री को भागने के अपराध में पकड़ लेना चाहिए। गाने बजाने वाले, कत्थक, भाट, मछियारे, शिकारी, ग्वाले, कलवार, तथा इसी तरह के अन्य पुरुषों की स्त्रियों के मार्ग में अकेली मिल जाने पर भी यह अपराध निश्चित नहीं माना जावेगा। जिनको परस्पर मिलने या ले जाने का निषेध

कर दिया गया है, वे यदि स्त्री को ले जाते हों या स्त्री उनके साथ आग्रह से जाती हों-तो उनपर आधा दण्ड होना चाहिए। यहां तक भागने के अपराध का वर्णन हुआ ॥२२-२५॥

हस्वप्रवासिनां शूद्रवैश्यक्षत्रियब्राह्मणानां भार्याः संवत्सरोत्तरं कालमाकांक्षेरन्नप्रजाताः संवत्सराधिकं प्रजाताः ॥२६॥ प्रतिविहिता द्विगुणं कालम् ॥२७॥ अप्रतिविहिताः सुखावस्था बिभृयुः परं चत्वारि वर्षाण्यष्टौ वा ज्ञातयः ॥२८॥ ततो यथादत्तमादाय प्रमुञ्चेयुः ॥२९ ॥

थोड़े समय को बाहर गए हुए शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मणों की स्त्रियां एक संवत्सर तक अपने पतियों के आने की प्रतीक्षा करें। यदि उनके पति अन्न का प्रबन्ध करके विदेश गए हों-तो दो वर्ष तक उनकी प्रतीक्षा करे। यदि आगे तक चलने वाली आजीविका का प्रबन्ध कर गए हों-तो चार वर्ष प्रतीक्षा करे यदि उनके पति उनका प्रबन्ध नहीं कर गए-तो सुखी [मालदार] भाई बन्धु उसकी चार वर्ष या आठ वर्ष तक पालना कर दें इसके अनन्तर वे अपना धन लेकर उसे [दूसरे विवाह के लिए] स्वतन्त्र करदें ॥२६-२९॥

ब्राह्मणमधीयानां दशवर्षाण्यप्रजाता द्वादश प्रजाता राजपुरुषमायुः क्षयादाकाङ्क्षेत ॥ ३० ॥ सवर्णतश्च प्रजाता नापवादं लभेत ॥ ३१ ॥ कुटुम्बर्द्धिलोपे वा सुखावस्थैर्विमुक्ता यथेष्टं विन्देत जीवितार्थम् ॥ ३२ ॥ आपद्गता वा धर्मविवाहात्कुमारी परिगृहीतारमनाख्याय प्रोषितं श्रूयमाणं सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ ३३ ॥ संवत्सरं श्रूयमाणमाख्याय ॥ ३४ ॥ प्रोषितमश्रूयमाणं पञ्चतीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ ३५ ॥ दश श्रूयमाणम् ॥ ३६ ॥ एकदेशदत्तशुल्कं त्रीणि तीर्थान्यश्रूयमाणम् ॥ ३७ ॥ श्रूयमाणं सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ ३८ ॥ दत्तशुल्कं पञ्चतीर्थान्यश्रूयमाणम् ॥ ३९ ॥ दश श्रूयमाणम् ॥ ४० ॥ ततः परं धर्मस्थैर्विसृष्टा यथेष्टं विन्देत ॥ ४१ ॥

पढ़ने के निमित्त गए हुए ब्राह्मण की अपुत्रवती नववधू दश वर्ष और पुत्रवती बारह वर्ष तक प्रतीक्षा करे। यदि कोई राज्य कार्य के निमित्त बाहर गया है तो उसकी आयु भर प्रतीक्षा करनी होगी। इस समय यदि उसके सवर्ण से सन्तान उत्पन्न हो जावे-उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिए अर्थात् उससे कोई दण्ड नहीं लेना चाहिए। कुटुम्ब की सम्पत्ति के नाश या धन धान्य पूर्ण जेठ देवरों से अपमानित होने पर अपने जीवन के निर्वाह के निमित्त स्त्री अपना दूसरा विवाह कर सकती है। धर्म विवाह होने पर आपत्ति में फंस जाने के कारण कुमारी, [अक्षतयोनि] बिना कहकर गए हुए पते वाले पति की सात ऋतुधर्म तक प्रतीक्षा करे। यदि कहकर गया हो-तो एक वर्ष तक उसकी प्रतीक्षा

करले और विदेश गए हुए विना पते वाले पति की पांच मासिक धर्म तक प्रतीक्षा करे-पता होने पर दश मासिक धर्म तक उसकी बाट देखे। विवाह के शुल्क का एक भाग चुका दने वाले लापते पति की तीन ऋतु, काल तक और पते वाले की सात ऋतु तक एवं सारे दिये हुए शुल्क और विना पते वाले पति की पांच ऋतु, पते वाले की दस तक वह कुमारी [अक्षत योनि स्त्री] प्रतीक्षा करे। इसके बाद, प्रत्येक स्त्री धर्माधिकारियों से आज्ञा लेकर अपनी इच्छानुसार दूसरा विवाह कर सकती है ॥२०-४१॥

तीर्थोपरोधो हि धर्मवध इति कौटल्यः ॥ ४२ ॥ दीर्घप्रवासिनःप्रव्रजितस्य प्रेतस्य वा भार्या सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ ४३ ॥ संवत्सरं प्रजाता ॥४४॥ ततः पतिसोदर्यं गच्छेत् ॥ ४५ ॥ बहुपु प्रत्यासन्नं धार्मिकं भर्मसमर्थं कनिष्ठमभार्यं वा ॥ ४६ ॥ तदभावेऽप्यसोदर्यं सपिण्डं कुल्यं वासन्नम् ॥ ४७ ॥ एतेषां एप एव क्रमः ॥ ४८ ॥

कौटल्य का मत है, कि ऋतुकाल का उपरोध (उल्लंघन) कर जाना धर्म का लोप है। लम्बे काल तक को विदेश गए-सन्यासी, मरे हुए की स्त्री सात ऋतु तक चुपरहकर फिर अपना पुनर्विवाह कर सकती है। यदि उसके कोई बच्चा हो-तो वह एक वर्ष तक चुप रह कर उसके सहोदर भाई के साथ विवाह करले-पति के अनेक सहोदर भाई हों-तो उनमें जो अधिक समीप धार्मिक और भरण पोषण में समर्थ, भार्याहीन छोटा भाई होतो उसके साथ उसका विवाह कर देना चाहिए, यदि सहोदर भाई न हो-तो समान गोत्र वाले, सात पीढ़ी में कुटुम्बी पति के छोटे भाई के साथ विवाह कर सकती है। इन भाइयों के विषय में यही क्रम है ॥ ४२-४८ ॥

एतानुत्क्रम्य दायादान्वेदने जातकर्मणि ।
जारस्त्रीदातृवेत्तारः संप्राताः संग्रहात्ययम् ॥ ४९ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे विवाहसंयुक्ते निष्पतनं पथ्यनुसरणं ह्रस्वप्रवासः दीर्घप्रवासश्च चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ विवाहसंयुक्तं समाप्तम् ।
आदित एकषष्टितमः ॥ ६१ ॥

इन कुटुम्बियों को छोड़कर विवाह के सम्बन्ध में यदि स्त्री पुरुष अन्य के साथ विवाह करने को उद्यत हो-तो वह जार [वर] स्त्री विवाह कराने वाला या विवाह में सम्मिलित होने वाले पुरुष दंड के भागी होते हैं ॥ ४९ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में निष्पतन आदि के वर्णन का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।

पांचवां अध्याय

६०वां प्रकरण

दाय विभाग।

इस प्रकरण में दाय भाग (बटवारे) के अधिकारों का वर्णन किया जावेगा।

अनीश्वराः पितृमन्तः स्थितपितृमातृकाः पुत्राः ॥ १ ॥ तेषामूर्ध्वं पितृतो दायविभागः पितृद्रव्याणां स्वयमार्जितमविभज्यमन्यत्र पितृद्रव्यादुत्थितेभ्यः॥२॥ पितृद्रव्यादविभक्तोपगतानां पुत्राः पौत्रा वा चतुर्थादित्यंशभाजः ॥ ३ ॥ तावदविच्छिन्नः पिण्डो भवति ॥ ४ ॥ विच्छिन्नपिण्डाः सर्वे समं विभजेरन् ॥ ५ ॥ अपितृद्रव्या विभक्तपितृद्रव्या वा सहजीवन्तः पुनर्विभजेरन् ॥ ६ ॥ यतश्चोत्तिष्ठेत स ह्यंशं लभेत ॥ ७ ॥

माता पिता दोनों या केवल पिता के जीवित रहने पर पुत्र अपनी पैतृक सम्पत्ति के अधिकारी नहीं हो सकते। जब माता पिता का देहान्त हो जावे-तो पितृ पितामहादि से चली आती हुई सम्पत्ति या पिता के धन का पुत्र बटवारा करलें। अपने २ कमाए हुए द्रव्य को परस्पर नहीं बांटा जा सकता है, यदि वह द्रव्य पिता के द्रव्य के द्वारा कमाया गया है, तो उसमें भी विभाग होने चाहिए। पिता के द्रव्य को नहीं बांटने वाले पुरुषों के पुत्र और पौत्र चार पीढ़ी तक अपने पिता की संख्या के अनुसार विभाग कर सकेंगे, क्योंकि चार पीढ़ी तक पिंड [पीढ़ी] छिन्न भिन्न नहीं होती। जब चार पीढ़ी से आगे सन्तान चल पड़े और आगे जाकर बटवारा हो-तो पुत्र पौत्र भी अपनी २ संख्या के अनुसार विभाग कर सकते हैं। जिनको पिता की सम्पत्ति न मिली या जो पिता की सम्पत्ति का भाग ले चुके, यदि ये सब फिर साथ रहने लगे-तो फिर अपनी सारी सम्पत्तिको मिलाकर बांट सकते हैं। परन्तु इसमें उनका ही अंश होगा, जो भाई इस सम्पत्ति के बढ़ाने में सहयोग देते रहे होंगे ॥ १-७ ॥

द्रव्यमपुत्रस्य सोदर्या भ्रातरः सहजीविनो वा हरेयुः कन्याश्च रिक्थम् ॥ ८ ॥ पुत्रवतः पुत्राः दुहितरो वा धर्मिष्ठेषु विवाहेषु जाताः ॥ ९ ॥ तदभावे पिता धरमाणः ॥ १० ॥ पित्रभावे भ्रातरो भ्रातृपुत्राश्च ॥ ११ ॥ अपितृका बहवोऽपि च भ्रातरो भ्रातृपुत्राश्च पितुरेकमंशं हरेयुः ॥ १२ ॥ सोदर्याणामनेकपितृकाणां पितृतो दायविभाग पितृभ्रातृपुत्राणां पूर्वे विद्यमाने नापरमवलम्बन्ते ॥१३॥ ज्येष्ठे च कनिष्ठमर्थग्राहिणम् ॥ १४ ॥जीवद्विभागे पिता नैकं विशेषयेत्

॥१५॥ न चैकमकारणान्निर्विभजेत ॥ १६ ॥ पितुरसत्यर्थे ज्येष्ठाः कनिष्ठाननुगृह्णीयुरन्यत्र मिथ्यावृत्तेभ्यः ॥ १७ ॥ प्राप्तव्यवहाराणां विभागः ॥ १८ ॥ अप्राप्तव्यवहाराणां देयविशुद्धं मातृबन्धुषु ग्रामवृद्धेषु वा स्थापयेयुर्व्यवहारप्रापणात्प्रोषितस्य वा ॥१९॥ संनिविष्ट समसंनिविष्टेभ्यो नैवेशनिकं दद्युः ॥२०॥

अपुत्र पुरुष के द्रव्य को उसके सहोदर भ्राता ले सकेंगे, सहोदरों के अभाव में जो उसके साथ कमाते रहे हैं, वे उस धन के भागी हैं। उस पुरुष के कन्या हो-तो वह नकद द्रव्य को छोड़ कर आभूषण आदि सम्पत्ति की अधिकारिणी होगी। जिन्होंने धर्मकी रीति से विवाह किया है उनके पुत्र और पुत्र के अभाव में पुत्रियाँ अपने पिताके धनके स्वामी हैं। यदि कोई सन्तान न हो और पिता जीवित हो-तो पुत्र के धन का पिता अधिकारी है। यदि पिता भी न रहा हो-तो पिता के भ्राता [ताऊ चाचा] या उसके पुत्र, उस धन के अधिकारी बनें। यदि पिता नहीं है, और पिता के अनेक भ्राता या उनके पुत्र विद्यमान हैं-तो वे उस सम्पत्ति को बराबर बांट लें। एक माता से अनेक पिताओं के द्वारा पृथक् २ विवाह से जो सन्तान उत्पन्न हो-वह अपने २ के धनके अनुसार विभाग करले, क्योंकि पिता के भ्राताओं [उपपिता] के पुत्रों के पूर्व से विद्यमान होने से पीछे होने वाले पिता के धन का वे कैसे अधिकार पा सकते हैं। यदि एक पिता के दो भाई हों-तो ज्येष्ठ के रहने पर भी कनिष्ठ को आधा देना पड़ेगा। यदि पिता जीवित है और बांट देना चाहता है, तो किसी को अधिक नहीं दे सकता है और न बिना कारण किसी को दायभाग से पृथक् कर सकता है। पिता की सम्पत्ति न होने पर बड़े भाई छोटों की रक्षा करें-यदि उनका आचरण खराब होने लगे-तो वे उनको घर से निकाल भी सकते हैं। जब पुत्र प्राप्त व्यवहार [बालिग] हो जावे, तब ही सम्पत्ति का बटवारा उचित है। यदि कुछ बालिग और कोई नाबालिग या विदेश गया हो तो नाबालिग की सम्पत्ति का भाग उसके माता के बन्धु [मामा आदि] या ग्राम के सेठ साहूकार के सुरक्षित करवादी जाये, जब तक वह बालिग हो यही विदेश गए हुए पुरुष के विषय में व्यवस्था है, कि वह जबतक आवे उसकी सम्पत्ति कहीं सुरक्षित रखदी जावे। जिनका विवाह हो गया-वे अपने अविवाहित छोटे भाइयों को उनके विवाह का व्यय पृथक् देवें ॥ ८-२० ॥

कन्याभ्यश्च प्रादानिकम् ॥२१॥ ऋणरिक्थयोः समो विभागः ॥२२॥ उदपात्राण्यपि निष्किंचना विभजेरन्नित्याचार्याः ॥२३॥ छलमेतदिति कौटल्यः ॥ २४ ॥

सतोऽर्थस्य विभागो नासत एतावानर्थः सामान्यस्तस्यैतावान्प्रत्यंश इत्यनुभाष्य ब्रुवन्साक्षिषु विभागं कारयेत् ॥ २५ ॥

कन्याओं के रहने पर उनके विवाह और प्रादानिक [दहेज] का धन भी सुरक्षित करवा दिया जावे। ऋण और आभूषण आदि भी समान बांटे जाने चाहिए। आचार्य कहते हैं, कि यदि बांटने वाले साधारण मनुष्य हैं, तो पानी पीने आदि के वर्तन भी बांट लें। कौटल्य आचार्य के मत में इस तरह गुप चुप बांटने में छल हो जाने की सम्भावना है। विद्यमान सम्पत्ति का विभाग होता है, अविद्यमान का नहीं। इतना धन इनके पास है, इतना इनका पृथक् २ अंश हुआ, यह इनको बताकर और योग्य साथियों के सन्मुख सारी व्यवस्था को रख कर इन का बटवारा करे ॥२१-२५॥

दुर्विभक्तमन्योन्यापहृतमन्तर्हितमविज्ञातोत्पन्नं वा पुनर्विभजेरन् ॥ २६ ॥ अदायादकं राजा हरेत्स्त्रीवृत्तिप्रेतकार्यवर्जमन्यत्र श्रोत्रियद्रव्यात् ॥ २७ ॥ तत्त्रैविद्येभ्यः प्रयच्छेत् ॥ २८ ॥ पतितः पतिताज्जातः क्लीबश्चानंशाः ॥ २९ ॥ जडोन्मत्तान्धकुष्ठिनश्च ॥ ३० ॥ सति भार्यार्थे तेषामपत्यमतद्विधं भागं हरेत् ॥ ३१ ॥ ग्रासाच्छादनमितरे पतितवर्जाः ॥ ३२ ॥

यदि किसी वस्तु का ठीक विभाग नहीं हुआ या किसीने उसे झपट लिया या छुपा लिया तथा जानकारी में न आई और फिर प्रकट हुई है-तो उसका फिर बटवारा हो जाना चाहिए। जिसके कोई कुटुम्बी न रहा हो, उस धन को राजा अपने कोष में डाल सकता है, परन्तु स्त्री के निर्वाह और प्रेतक्रिया के निमित्त धन को छोड़ दे तथा वेदपाठी [वेद के ज्ञाता] के धन को राजा अपने कोष में न डाले, किन्तु उस धन को वेद विद्या के जानने वालों की सभा में देदे। पतित [धर्मच्युत] तथा पतित से उत्पन्न और नपुंसक-इस धन के भाग के अधिकारी नहीं हो सकते। जड़ उन्मत्त, अन्धे और कुष्ठी भी दायभाग के अधिकारी नहीं हैं। जो धन भार्या के निमित्त छोड़ा है, वे उस धन का यथा योग्य विभाग पा सकते हैं। जड़ उन्मत्त आदि पुत्र भी अपने पिता की सम्पत्ति में भोजन आच्छादन का व्यय पाने के अधिकारी हैं पतित को भोजन आच्छादन भी नहीं मिलना चाहिए ॥२६-३२॥

तेषां च कृतदाराणां लुप्ते प्रजनने सति ।
सृजेयुः बान्धवाः पुत्रांस्तेषामंशान् प्रकल्पयेत् ॥ ३३ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे दायविभागे दायक्रमः पञ्चमो ऽध्यायः ॥५॥

आदितो द्विषष्टितमः ॥ ६२ ॥

यदि इन भाइयों का विवाह हो गया और विवाह के अनन्तर वे नपुंसक हुए हों, यदि उनके बान्धवों ने उन स्त्रियों में सन्तान उत्पन्न की है-तो वह सन्तान अपने दायभाग की अधिकारिणी हो सकेगी ॥३३॥

इति श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में दायक्रम का पांचवां अध्याय समाप्त हुआ।

छठा अध्याय

६०वां प्रकरण

अंश विभाग।

इस प्रकरण में अंशों के भेदों की व्यवस्था की गई है।

एकस्त्रीपुत्राणां ज्येष्ठांशः ॥ १ ॥ ब्राह्मणानामजाः क्षत्रियाणामश्वा वैश्यानां गावः शूद्राणामवयः ॥ २ ॥ काणलिङ्गास्तेषां मध्यमांशः ॥ ३ ॥ भिन्नवर्णाः कनिष्ठांशः ॥ ४ ॥ चतुष्पदाभावे रत्नवर्जानां दशानां भागं द्रव्याणामेकं ज्येष्ठो हरेत् ॥ ५ ॥ प्रतिमुक्तस्वधापाशो हि भवति ॥ ६ ॥ इत्यौशनसो विभागः ॥ ७ ॥

एक स्त्री के पुत्रों में ज्येष्ठ का हिस्सा इस प्रकार है, कि ब्राह्मणों में बकरे, क्षत्रियों में अश्व, वैश्यों में बैल और शूद्रों में मेंढ़े-बड़े पुत्र को मिलने चाहिए। उन पशुओं में जो काणलिङ्ग [यज्ञानुपयोगी] हों-वे मध्यम पुत्र को और रंग विरंगे छोटे पुत्र को मिलने चाहिए। यदि किसी के चतुष्पद न हों-तो रत्नादि छोड़कर सारी सम्पत्ति का दशवां भाग ज्येष्ठ लड़के को अधिक मिलना चाहिए, क्योंकि पिता आदि के श्राद्ध में ज्येष्ठ को ही अधिक व्यय करना है। यह उशनस [शुक्र] आचार्य का मत है ॥१-७॥

पितुः परिवापाद्यानमाभरणं च ज्येष्ठांशः ॥ ८ ॥ शयनासनं भुक्तकांस्यं च मध्यमांशः ॥ ९ ॥ कृष्णं धान्यायसं गृहपरिवापो गोशकटं च कनिष्ठांशः ॥ १० ॥ शेषाणां द्रव्याणामेकद्रव्यस्य वा समो विभागः ॥ ११ ॥ अदायादा भगिन्यः मातुः परिवापाद्भुक्तकांस्याभरणभागिन्यः ॥ १२ ॥ मानुषहीनो ज्येष्ठस्तृतीयमंशं ज्येष्ठांशाल्लभेत ॥ १३ ॥ चतुर्थमन्यायवृत्तिः ॥ १४ ॥ निवृत्तधर्मकार्यो वा कामाचारः सर्वं जीयेत ॥ १५ ॥

पिता की सम्पत्ति में सवारी और आभूषण ज्येष्ठ पुत्र का भाग है। शयन आसन, और खाने पीने के कांसी के पात्र मध्यम के तथा काला अन्न, लोहा आदि घर का सामान, बैल-गाड़ी, यह सब छोटे पुत्र का अंश है। शेष द्रव्य या एक मकान आदि सम्पत्ति का समान विभाग होना उचित है। जिन बहनों को दायभाग में अधिकार नहीं है, वे कांसी के बर्तन और आभूषण ले सकती हैं। यदि बड़ा लड़का मनुष्योचित चरित्र से गिर गया है, तो वह अपने भाग का तृतीयांश पा सकता है। यदि वह अन्याय से वृत्ति करता है, तो उसको अपने भाग में से चतुर्थांश ही मिलना चाहिए। जिसने धर्म कार्य छोड़ दिए या जो कामाचार होकर घूमता है-वह अपना सारा हिस्सा खो बैठता है ॥८-१५॥

तेन मध्यमकनिष्ठौ व्याख्यातौ ॥ १६ ॥ तयोर्मानुषोपेतो ज्येष्ठांशादर्धं लभेत ॥ १७ ॥ नानास्त्रीपुत्राणां तु संस्कृतासंस्कृतयोः कन्याकृतक्रियाभावे चैकस्याः पुत्रयोर्यमयोर्वा पूर्वजन्मना ज्येष्ठभावः १८ ॥ सूतमागधव्रात्यरथकाराणामैश्वर्यतो विभागः शेषास्तमुपजीवेयुः ॥१९॥ अनीश्वराः समविभागा इति ॥२०॥ चातुर्वर्ण्यपुत्राणां ब्राह्मणीपुत्रश्चतुरोऽशान्हरेत् ॥२१॥ क्षत्रियापुत्रस्त्रीनंशान् ॥२२॥ वैश्यापुत्रौ द्वावंशौ ॥ २३ ॥ एकं शूद्रापुत्रः ॥ २४ ॥ तेन त्रिवर्णद्विवर्णपुत्रविभागः क्षत्रियवैश्ययोर्व्याख्यातः ॥ २५ ॥

यही व्यवस्था मध्यम और कनिष्ठ की समझनी चाहिए। इन दोनों में जो मनुष्यता के गुणों से सम्पन्न है, वह बचे हुए ज्येष्ठ के भाग का आधा भाग ले सकता है। अनेक स्त्रियों के पुत्रों में जिसके साथ विवाह संस्कार हुआ उसका पुत्र पीछे उत्पन्न होने पर भी ज्येष्ठ माना जावेगा। अन्य भुक्त विवाहिता और कन्या विवाहिता में कन्या का पुत्र ज्येष्ठ है। यमज [जोड़ले] उत्पन्न होने वाले पुत्रों में प्रथम उत्पन्न पुत्र ज्येष्ठ कहावेगा। सूत, मागध व्रात्य [संस्कारहीन] और रथकारों में जो कुछ योग्य हो-वही लड़का धन का भाग प्राप्त करे-शेष पुत्र उसके आश्रय से अपनी वृत्ति चलावे। यदि उन में कोई विशेष योग्यता वाला न हो-तो वे अपने पिता की सम्पत्ति बराबर बांट सकते हैं। यदि किसी के चारों वर्ण की स्त्री हों-तो उसमें ब्राह्मणी के पुत्र को सम्पत्ति के चार भाग, क्षत्रिय स्त्री के पुत्र को तीन भाग, वैश्य स्त्री पुत्र को दो भाग और शूद्रा के पुत्र को एक भाग मिलना उचित है। इसी प्रकार पीछे के तीन वर्ण [क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र] तथा दो वर्ण [वैश्य और शूद्र] के विषय जान लेना चाहिए ॥१६-२५॥

ब्राह्मणस्यानन्तरापुत्रस्तुल्यांशः क्षत्रियवैश्ययोरर्धांशः ॥ २६ ॥ तुल्यांशो वा मानुषोपेतः ॥ २७ ॥ तुल्यातुल्ययोरेकपुत्रः सर्वं हरेत् ॥ २८ ॥ बन्धूंश्च बिभृयात् ॥ २९ ॥ ब्राह्मणानां तु पारशवस्तृतीयमंशं लभेत ॥ ३० ॥ द्वावंशौ सपिण्डः कुल्यो वासन्नः स्वधादानहेतोः ॥ ३१ ॥ तदभावे पितुराचार्योऽन्तेवासी वा ॥ ३२ ॥

यदि ब्राह्मण के ब्राह्मणी से उत्पन्न पुत्र बराबर का भाग बांट लेवे तो क्षत्रिया वैश्या की सन्तान को आधा भाग मिल सकेगा। यदि वे मानुषोपेत [मनुष्योचित के] उत्तम गुणों से युक्त हों-तो बराबर का भाग भी पा सकते हैं। यदि समान वर्ण या असमान वर्ण की स्त्री में एक ही पुत्र हो-तो वह अपने पिता के सारे धन को ग्रहण कर सकेगा। उसको अपने बन्धु बान्धवों का पालन करना पड़ेगा। ब्राह्मण से शूद्रा में उत्पन्न, अपने पिता की सम्पत्ति में तीसरा भाग पा सकेगा। पिता के श्राद्धादि कर्म का अधिकारी होने से सपिण्ड कुलीन या नजदीकी, पिता की सम्पत्ति में दो भाग अधिक लेगा। इन सबके न होने पर श्राद्धादि के निमित्त सुरक्षित भाग को पिता का आचार्य या विद्यार्थी उस धन को ग्रहण करे ॥२६-३२॥

क्षेत्रे वा जनयेदस्य नियुक्तः क्षेत्रजं सुतम् ।
मातृबन्धुः सगोत्रो वा तस्मै तत्प्रदिशेद्धनम् ॥ ३३ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे दायविभागेऽशविभागः षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥ आदितस्त्रिषष्टितम् ॥ ६३ ॥

इस पुरुष की स्त्री में कोई नियुक्त होकर यदि क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न करे, उस पुत्र, तथा माता के बन्धु या सगोत्री भी पुत्र के अभाव में उस धन के अधिकारी हैं ॥३३॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में दाय के अंश विभाग का छठा अध्याय समाप्त हुआ।

सातवां अध्याय

६०वां प्रकरण

पुत्र विभाग

अब पुत्रों के विषय में व्यवस्था दी जाती है।

परपरिग्रहे बीजमुत्सृष्टं क्षेत्रिण इत्याचार्याः ॥ १ ॥ माता भस्त्रा यस्य रेतस्तस्यापत्यमित्यपरे ॥ २ ॥ विद्यमानमुभयमिति कौटल्यः ॥ ३ ॥

अन्य के क्षेत्र [स्त्री] में डाले हुए बीज का अधिपति क्षेत्री [उसका पति] ही होता है-ऐसा आचार्य का मत है। माता तो भस्त्रा (चर्म की पिटारी) है, उसमें जो अपना वीर्य डालेगा, उसका ही पुत्र होगा ऐसा अन्य आचार्यों का मत है। कौटल्य के मत में वे दोनों ही उसके पिता माने जाने चाहिए॥ १-३ ॥

स्वयंजातः कृतक्रियायामौरसः ॥ ४ ॥ तेन तुल्यः पुत्रिकापुत्रः ॥ ५ ॥ सगोत्रेणान्यगोत्रेण वा नियुक्तेन क्षेत्रजातः क्षेत्रजः पुत्रः ॥ ६ ॥ जनयितुरसत्यन्यस्मिन्पुत्रे स एव द्विपितृको द्विगोत्रो वा द्वयोरपि स्वधारिक्थभाग्भवति ॥ ७ ॥ तत्सधर्मा बन्धूनां गृहे गूढजातस्तु गूढजः॥ ८ ॥ बन्धुनोत्सृष्टोऽपविद्धः संस्कर्तुः पुत्रः ॥ ९ ॥ कन्यागर्भः कानीनः ॥ १० ॥ सगर्भोढायाः सहोढः ॥ ११ ॥ पुनर्भूतायाः पौनर्भवः ॥ १२ ॥ स्वयंजातः पितृबन्धूनां च दायादः ॥ १३ ॥ परजातः संस्कर्तुरेव न बन्धूनाम॥१४॥ तत्सधर्मा मातापितृभ्यामद्भिर्मुक्तो दत्तः ॥ १५ ॥ स्वयं बन्धुभिर्वा पुत्रभावोपगत उपगतः ॥ १६ ॥ पुत्रत्वेनाङ्गीकृतः कृतकः ॥ १७ ॥ परिक्रीतः क्रीत इति ॥ १८ ॥

अपनी विवाहित स्त्री में उत्पन्न पुत्र औरस कहाता है। अपनी लड़की से पुत्र लेने की प्रतिज्ञा करके विवाह करने पर जो पुत्र उत्पन्न हो-वह भी औरस के तुल्य ही माना जाता है। नियुक्त सगोत्र अथवा अन्य गोत्री से अपनी स्त्री में उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज कहाता है। यदि उत्पन्न करने वाले के कोई पुत्र नहीं है, तो वही क्षेत्रज पुत्र उसका भी अधिकारी होगा। उसके दो पिता के दो गोत्र होंगे। वह दोनों के श्राद्धादि कर्म का कर्त्ता और धनका अधिकारी होता है। इन्हीं के समान गूढ़जपुत्र है, जो पति के विदेश जाने पर बान्धवोंने गुप चुप उत्पन्न कर दिया हो, यदि इस गूढ़ज पुत्र को बन्धु बान्धव फैंक फांक दे, जो उसका संस्कार या पालन करें-उसका वह अपविद्ध पुत्र है। कन्या के गर्भ से उत्पन्न कानीन कहाता है। गर्भवती के साथ विवाह करने पर विवाह के अनन्तर उत्पन्न पुत्र सहोढ़ कहाता है। पुनर्विवाह की स्त्री का पुत्र पौनर्भव होता है। जो अपने आपको अन्य को अर्पण

करदे वह स्वयं जात पुत्र है। वह पिता और बान्धवों के धन का भागी होता है। जिस को बन्धु बान्धव देदे-वह पर जात है, वह संस्कार करने वाले (पालन कर्ता) के धन का ही भागी होता है, बांधवों का नहीं होता। माता पिता संकल्प द्वारा जिस पुत्र को प्रदान करदे-वह दत्तक कहाता है, यह भी औरसादि के तुल्य ही है। जो स्वयं या बन्धुओं द्वारा पुत्र भाव से स्वीकार कराया गया वह उपगत, जिसको पुत्र रूप से अङ्गिकार किया वह कृतक और जिसको रुपये से खरीदा-वह क्रीत होता है॥ ४-१८॥

औरसे तूत्पन्ने सवर्णास्तृतीयांशहराः॥ १६॥ असवर्णा ग्रासाच्छादन-भागिनः॥ २०॥ ब्राह्मणक्षत्रिययोरनन्तरापुत्राः सवर्णा एकान्तरा असवर्णाः॥ २१॥ ब्राह्मणक्षत्रियोरनन्तरापुत्राः सवर्णा एकान्तरा असवर्णाः॥ २१॥ ब्राह्मणस्य वैश्यायामम्बष्ठः॥ २२॥ शूद्रायां निषादः पारशवो वा॥ २३॥ क्षत्रियस्य शूद्रायामुग्रः॥ २४॥ शूद्र एव वैश्यस्य॥ २५॥ सवर्णासु चैषाम-चरितव्रतेभ्यो जाता व्रात्याः॥ २६॥ इत्यनुलोमः॥ २७॥

औरसपुत्र के उत्पन्न होने पर सवर्ण अन्य पुत्र तीसरे हिस्से के भागी होते हैं असवर्ण पुत्र केवल भोजन और वस्त्र के अधिकारी हैं। ब्राह्मण और क्षत्रिय के अपनी २ सवर्ण भार्या में उत्पन्न पुत्र (अनन्तरा पुत्र) सवर्ण होते हैं। एकान्तरा (दूसरे वर्णोत्पन्न) असवर्ण हैं। ब्राह्मण के वैश्या में उत्पन्नअम्बष्ठ शूद्रा में निषाद या पारशव, पुत्र होता है। क्षत्रिय द्वारा शूद्रा में उग्र, और वैश्य द्वारा शूद्रा में शूद्र ही उत्पन्न होता है। सवर्णा स्त्रियों में जो संस्कार से हीन सन्तान उत्पन्न हो-वह व्रात्य कहाती है। यहां तक अनुलोम पुत्रों की चर्चा की गई॥ १६-२७॥

शूद्रादायोगवक्षत्तचण्डालाः॥ २८॥ वैश्यान्मागधवैदेहकौ॥ २६॥ क्षत्रियात्सूतः॥ ३०॥ पौराणिकस्त्वन्यः सूतो मागधश्च ब्रह्मक्षत्राद्विशेषः॥३१॥ त एते प्रतिलोमाः स्वधर्मातिक्रमाद्राज्ञः संभवन्ति॥ ३२॥

शूद्र द्वारा वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण कन्या में उत्पन्न क्रमसे आयोगव, क्षत्ता और चाण्डाल पुत्र उत्पन्न होते हैं। वैश्य द्वारा क्षत्रिया और ब्राह्मणी में उत्पन्न मागध और वैदेहक पुत्र होते हैं। क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न सूत कहाता है। पुराणों में जो सूत जी का वर्णन आता है, वह इस से पृथक् है। मागध भी वहां दूसरे ही हैं। ये ब्रह्म और क्षत्रियों से भी श्रेष्ठ माने गए हैं। ये राजा के विपरीत धर्म के ग्रहण से उत्पन्न होते हैं, अतएव प्रतिलोम कहाते हैं॥ २८-३२॥

उग्रान्नैषाद्यां कुक्कुटः ॥ ३३ ॥ विपर्यये पुल्कसः ॥ ३४ ॥ वैदेहिकायामम्बष्ठाद्वैणः ॥ ३५ ॥ विपर्यये कुशीलवः ॥ ३६ ॥ क्षत्तायामुग्राच्छ्वपाक इत्येते चान्तरालाः ॥ ३७ ॥ कर्मणा वैण्यो रथकारः ॥ ३८ ॥ तेषां स्वयोनौ विवाहः ॥ ३६ ॥ पूर्वापरगामित्वं वृत्तानुवृत्तं च स्वधर्मं स्थापयेत्॥ ४० ॥ शूद्रसधर्माणो वा ॥ ४१ ॥ अन्यत्र चण्डालेभ्यः ॥ ४२ ॥ केवलमेवं वर्तमानः स्वर्गमाप्नोति राजा नरकमन्यथा ॥ ४३ ॥ सर्वेषामन्तरालानां समोविभागः ॥ ४४ ॥

उग्र नामक पुरुष से निषादी में उत्पन्न कुक्कुट, और निषाद द्वारा उग्रा स्त्री में पुल्कस पुत्र उत्पन्न होता है। अम्बष्ठ द्वारा वैदेहिक स्त्री में वैण और वैदेहिक द्वारा अम्बष्ठ स्त्री में कुशील पुत्र उत्पन्न माना जाता है। उग्रद्वारा क्षत्ता में श्वपाक होता है । इसी तरह अन्य भी अवान्तर जाति समझ लेनी चाहिए। काम करने के कारण वेणु का पुत्र ही रथकार माना जाता है, उनका अपनी ही योनि में विवाह माना जाता है। पूर्व [ऊपर] अपर [नीचे] गमन करने और धर्म का निर्णय करने में ये अपने पूर्वजों के अनुसार ही अनुगमन करें। चांडालों को छोड़ कर सब सङ्कर जातियाँ शूद्र तुल्य माननी चाहिए। इस प्रकार अपनी प्रजा की व्यवस्था करता हुआ राजा स्वर्ग पाता है और वर्ण धर्म का लोप करने वाला नरक जाता है। समस्त अन्तर जातियों में सम्पत्ति का समान भाग माना गया है ॥३३-४४॥

देशस्य जात्या संघस्य धर्मो ग्रामस्य वापि यः ।
उचितस्तस्य तेनैव दायधर्मं प्रकल्पयेत् ॥ ४५ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे दायविभागे पुत्रविभागः सप्तमोऽध्यायः ॥७॥
दायविभागः समाप्तः । आदितश्चतुःषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

देश, जाति, समाज, और ग्रामकी जो रीति चली आती हो, उसी के अनुसार उस देश आदि के दायभाग की व्यवस्था करनी चाहिए ॥ ४५ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में पुत्र विभाग के निरूपण का सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



आठवां अध्याय

६१ वां प्रकरण

गृह वास्तुक

इस प्रकरण में गृहवास्तुक या अचल सम्पत्ति के विषय में विचार किया जावेगा।

सामन्तप्रत्यया वास्तुविवादाः ॥ १ ॥ गृहं क्षेत्रमारामः सेतुबन्धस्तटाकमाधारो वा वास्तुः ॥ २ ॥ कर्णकीलायससंबन्धोऽनुगृहं सेतुः ॥ ३ ॥ यथासेतुभोगं वेश्म कारयेत् ॥४॥ अभूतं वा परकुड्यादविक्रम्य ॥५॥ द्वावरत्नी त्रिपदीं वा देशबन्धं कारयेत् ॥ ६ ॥ अवस्करभ्रममुदपानं पानगृहोचितमन्यत्र सूतिकाकूपादानिर्दशाहादिति ॥ ७ ॥ तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ८ ॥

वास्तु (जायदाद) के झगड़ों [मुकद्दमों] का निर्णय सामन्त (गांव के मुखिया) के अधीन होना चाहिए। घर, खेत, बाग बगीचे, तालाब, बन्ध और पड़त भूमि, ये सब वास्तु कहाते हैं। कोनों में लोहे की छड़ गाड़ कर जो प्रत्येक घर की सीमा बनाली जाती है अर्थात् अपनी २ अधिकृत भूमि पर तार गाड़ लिए जाते हैं-यह सेतु कहाता है। जिस भूमि की जितनी सीमा है, उतना ही वह स्वामी मकान बना सकता है, उसे मकान बनाते समय इस सेतु के कारण दूसरे की भूमि पर अधिकार करने का अवसर नहीं मिल सकता है। नया मकान दूसरे की भींत को बिना दबाए बनाना उचित है। दो हाथ से कुछ कम या तीन पद अपने मकान का आसार बनावे। दश दिन के लिए बनाये हुए सूतिका घर को छोड़कर अन्य स्थानों शौच (पाखाना) जाने का स्थान, कूआ और पानगृह [पानी पीने के योग्य घाट] अवश्य बनने चाहिए। जो अपने मकान बनाते समय ये दो वस्तु न बनावे, उसपर पूर्व साहस दण्ड होना उचित है ॥१-८॥

तेनेन्धनावघातनकृतं कल्याणकृत्येष्वाचामोदकमार्गाश्च व्याख्याताः ॥ ९ ॥ त्रिपदीप्रतिक्रान्तमध्यर्धमरत्निं वा प्रवेश्य गाढप्रसृतमुदकमार्गं प्रस्रवणप्रपातं वा कारयेत् ॥ १० ॥ तस्यातिक्रमे चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ ११ ॥ एकपदीं प्रतिक्रान्तमरत्निं वा चक्रिचतुष्पदस्थानमग्निष्ठमुदञ्जरस्थानं रोचनीं कुट्टनीं वा कारयेत् ॥ १२ ॥ तस्यातिक्रमे चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ १३ ॥

इसी तरह विवाह आदि मङ्गल कृत्यों में इन्धन वघातन (भट्टी) आदि का स्थान और कुल्ले आदि के जल बहने की मोरियां होनी चाहिए। तीन पद या डेढ़ अरत्नि

चौड़ी उत्तमता से बनी हुई कीचड़ और जल के निकलने योग्य नाली प्राघात [वम्वा] बना देना चाहिए। जो मकान में ऐसी नाली न बनावे-उसपर चौवन पण दण्ड होना उचित है। एक पद चौड़ी या एक अरत्नि चौड़ी नाली बनाकर चार खम्भों की एक अग्निशाला बनाई जावे, जिसमें जल आटा पीसने को चक्की और धान्य आदि कूटने को ओखली आदि होवे। इस नियम को नहीं मानने वाले पर चौबीस पण दण्ड है ॥६-१३॥

सर्ववास्तुकयोः प्राक्षिप्तकयोर्वा शालयोः किष्कुरन्तरिका त्रिपदी वा॥१४॥ तयोश्चतुरंगुलं नीव्रान्तरं समारूढकं वा ॥१५॥ किष्कुमात्रमाणिद्वारमन्तरिकायां खण्डफुल्लार्थमसंपातं कारयेत् ॥ १६ ॥ प्रकाशार्थमल्पमूर्ध्वं वातायनं कारयेत् ॥ १७ ॥ तदवसिते वेश्मनि च्छादयेत् ॥ १८ ॥ संभूय वा गृहस्वामिनो यथेष्टं कारयेयुरनिष्टं वारयेयुः ॥१६॥ वानलटयाश्चोर्ध्वमाहार्यभोगकटप्रच्छन्नमवमर्शभित्तिं वा कारयेद्वर्षाबाधाभयात् ॥ २० ॥ तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ २१ ॥

सारे मकान जिनमें छज्जे आदि लगे हों-या न लगे-हों उनमें मकानों एक किष्कु [डेढ़ फुट] या तीन पद का अन्तर [फासला] होना चाहिए। उनमें चार अंगुल मोटी छत्त और सीढ़ी होनी उचित हैं। एक किष्क मात्र [डेढ फुट] गली में आणि द्वार (खिड़की की सी) होनी चाहिए, जिसको कभी २ खोला जा सके। उसमें आमतौर से आना जाना बन्द हो। प्रकाश आने के लिए ऊपर की ओर वातायन [उजालदान] भी रखाने उचित हैं। उनसे ऊपर घर को छत्त से पाट देवे। पड़ौसी मिलकर अपने २ सुख के अनुसार मकान बनाले, जो कुछ दुःखदायी बात हो-उसे न करे। वानलटया (सब से ऊपर की छत्त) के ऊपर उत्तम २ चटाइयों से छपाई हुई, दीवारों के साथ एक झोंपड़ी सी (बरसाती) बनाई जा सकती है, इससे छत्त पर सोने से वर्षा से रक्षा हो जाती है ऐसा नहीं करने वाले पर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए ॥१४-२१॥

प्रतिलोमद्वारवातायनबाधायां च ॥ २२ ॥ अन्यत्र राजमार्गरथ्याभ्यः ॥२३॥ खातसोपानप्रणालीनिश्रेण्यवस्करभागैर्बहिर्बाधायां भोगनिग्रहे च परकुड्य-मुदकेनोपघ्नतो द्वादशपणो दण्डः ॥ २४ ॥ मूत्रपुरीषोपघाते द्विगुणः ॥ २५ ॥ प्रणालीमोक्षो वर्षति ॥ २६ ॥ अन्यथा द्वादशपणो दण्डः ॥ २७ ॥ प्रतिषिद्धस्य च वसतो निरस्यतश्चावक्रयणम् ॥२८॥ अन्यत्र पारुष्यस्तेयसाहससंग्रहणमिथ्या-भोगेभ्यः ॥ २६ ॥

जो कोई पुरुष उलट पलट दरवाजा या खिड़की निकाले, उसपर भी प्रथम साहस दण्ड होना चाहिए। राजमार्ग पर दरवाजा बनाने पर व्यर्थ किसी को क्लेश हो-तो इसपर

दण्ड नहीं दिया जा सकता है। गड्ढा, सीढ़ी, नाली, ऊपर की सीढ़ी, और शौचालय आदि का स्थान बनाकर आने जाने वालों को कष्ट और दूसरे के सुख में बाधा डाले या पानी से दूसरे की भींत को हानि पहुंचावे, उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए तथा मूत्र पुरीष की नाली से कष्ट दे-तो चौबीस पण दण्ड नियत है। वर्षा ऋतु में प्रत्येक मोटी नाली खुली होनी चाहिए, जो मोरी रोककर पानी द्वारा किसी को हानि पहुंचावे उसपर बारह पण दण्ड होना उचित है। किराये दार को मकान खाली कर देने की कहने पर भी जो मकान खाली न करे और जो किराया देने पर भी एक दम खाली करवावे-इन दोनों पर भी बारह पण दण्ड होना चाहिए। कठोर व्यवहार चोरी, डाका, व्यभिचार और मिथ्या व्यवहार (छल) का प्रयोग होने पर एक दम मकान छोड़ा या खाली कराया जा सकता है॥ २२-२६॥

स्वयमभिप्रस्थितो वर्षावक्रयशेषं दद्यात् ॥ ३० ॥ सामान्ये वेश्मनि साहाय्यमप्रयच्छतः सामान्यमुपरुन्धतो भोगनिग्रहे द्वादशपणो दण्डः ॥ ३१ ॥ विनाशयतस्तद्द्विगुणः ॥ ३२ ॥

यदि किरायेदार स्वयं मकान छोड़े-तो वह वर्षभर का शेष (सत्र क्रय) किराया चुका दे। धर्म शाला आदि सामान्य स्थानों में सहायता न देने वाले या सर्व साधारण के उपभोग में आने से रोकने वाले को बारह पण दण्ड होना चाहिए। यदि ऐसी सार्वजनिक सेवा की वस्तु का जो विनाश करे, उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए॥ ३०-३२॥

कोष्ठकाङ्गणवर्जानामग्निकुट्टनशालयोः।
विवृत्तानां च सर्वेषां सामान्ये भोग इष्यते ॥ ३३ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे वास्तुके गृहवास्तुकमष्टमो अध्यायः ॥८॥
आदितः पञ्चषष्टिरध्यायः ॥ ६५ ॥

कोठे और आँगन को छोड़कर अग्नि शाला और धान्य आदि कूटने की शाला, तथा अन्य खुले स्थानों को सर्व साधारण जनता अपने व्यवहार में ला सकती है ॥ ३३ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में आठवां अध्याय समाप्त हुआ।



नौवां अध्याय

६१वां प्रकरण

वास्तु-विक्रय

इस प्रकरण में मकानों के विकने की व्यवस्था का वर्णन है।

ज्ञातिसामन्तधनिकाः क्रमेण भूमिपरिग्रहान्क्रेतुमभ्याभवेयुः ॥ १ ॥ ततोऽन्ये बाह्याः सामन्तचत्वारिंशत्कुल्या गृहप्रतिमुखे वेश्म श्रावयेयु ॥ २ ॥ सामन्तग्रामवृद्धेषु क्षेत्रमारामं सेतुबन्धं तटाकमाधारं वा मर्यादासु यथासेतुभोगमनेनार्घेण कः क्रेता इति त्रिराघुषितवीतमव्याहतं क्रेता क्रेतुं लभेत ॥ ३ ॥

जाति के लोग सामन्त (गांव का मुखिया) या धनिक लोग ही भूमि खरीद सकते हैं। यदि ये लेना स्वीकार न करें-तो अन्य गांव के सामन्त या उनके चालीस कुल उस भूमि को खरीदें घर के सन्मुख ही नीलाम के ढङ्ग पर घर के दाम उद्घोषित किये जावे। सामन्त (गांव का मुखिया तहसीलदार आदि) या गांव के वृद्ध चौधरियों के सन्मुख ही खेत, बगीचे, सीमाबन्ध स्थान, तालाब और आधार भूमि (कुछ बनाने योग्य भूमि) जैसी जिसकी कीमत है, उसीके अनुसार मर्यादा पूर्वक "इस मूल्य में कौन इसका खरीदने वाला है" इस प्रकार तीन बोली वालें। जब कोई आगे बोली न बढ़ावे-तो बोली लगाने वाला बे रोक टोक उस भूमि को खरीद ले ॥ १-३ ॥

स्पर्धितयोर्वा मूल्यवर्धने मूल्यवृद्धिः सशुल्का कोशं गच्छेत् ॥ ४ ॥ विक्रयप्रतिक्रोष्टा शुल्कं दद्यात् ॥ ५ ॥ अस्वामिप्रतिक्रोशे चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ६ ॥ सप्तरात्रादूर्ध्वमनभिसरतः प्रतिक्रुष्टो विक्रीणीत ॥ ७ ॥ प्रतिक्रुष्टातिक्रमे वास्तुनि द्विशतो दण्डः ॥ ८ ॥ अन्यत्र चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ९ ॥ इति वास्तुविक्रयः ॥ १० ॥

जब दो मनुष्यों में किसी जायदाद पर बहस छिड़ जावे और बोली अधिक बढ़ जावे-तो सरकारी टैक्स के साथ बड़ी बढ़ी हुई कीमत सरकारी कोष में पहुंचनी चाहिए मकान का खरीदने वाला सरकारी टैक्स अदा करे। मकान के स्वामी के न रहने पर जो मकान पीछे से नीलाम किया जावे, तो करने कराने वाले पर चौबीस पण दण्ड होना उचित है। यदि सात दिनका नोटिस निकलने पर भी मकान का मालिक न आवे-तो प्रति क्रुष्ट (मकान का नीलाम करने वाला) उसपर बोली बुलवा सकता है। यदि मकान पर बोली लगाकर मकान को न लेवे-तो उसपर दोसौ पण दण्ड होना चाहिए। मकान के

अतिरिक्त नीलाम की बोली बोलकर न लेने वाले पर चार सौ पण दण्ड होवे। यहां तक मकान के बेचने के नियमों की व्यवस्था की गई है॥ ४-१०॥

सीमविवादं ग्रामयोरुभयोः सामन्ताः पञ्चग्रामी दशग्रामी वा सेतुभिः स्थावरैः कृत्रिमैर्वा कुर्यात्॥ ११॥ कर्षकगोपालवृद्धकाः पूर्वभुक्तिका वा बाह्याः सेतूनामनभिज्ञा बहव एको वा निर्दिश्य सीमसेतून्विपरीतवेषाः सीमानं नयेयुः॥ १२॥ उद्दिष्टानां सेतूनामदर्शने सहस्रं दण्डः॥ १३॥ तदेव नीते सीमापहारिणां सेतुच्छिदां च कुर्यात्॥ १४॥ प्रनष्टसेतुभोगं वा सीमानं राजा यथोपकारं विभजेत्॥ १५॥

यदि गांवों की सीमाका झगड़ा हो जावे-तो दोनो गाँवों के मुखिया या पांच और दस गांवों के मुख्य पुरुष उनके सेतु [तारवन्दी] या स्थान [पर्वत आदि] तथा कृत्रिम (बनावटी मींढ़ा) आदि द्वारा वे उस का निर्णय करदें। गांव के किसान, ग्वाले, वृद्ध या पूर्व में उस जगह खेती आदि करने वाले तथा बाहर के लोग जो सीमा की मर्यादा के नहीं जानने वाले हैं, वे विपरीत वेष बना कर सीमा का पता लगावे और ये सब मिलकर अपने गांवकी सीमा को निश्चित करले। बनी हुई सीमा परिधि (सेतु) को नहीं देखने वाले निर्णायकोंपर एक सहस्र पण दण्ड होना चाहिए। यही दण्ड उस पुरुष को दिया जाना चाहिए, जोसीमाके कृत्रिम चिन्ह या सेतु (तार आदि) को नष्ट करे। यदि सीमा के चिन्हों का विल्कुल लोप हो जावे-तो राजा इस तरह उसका विभाग करे-जिस से सब के उपकार की सम्भावना हो॥ ११-१५॥

क्षेत्रविवादं सामन्तग्रामवृद्धाः कुर्युः॥ १६॥ तेषां द्वैधीभावे यतो बहवः शुचयोऽनुमता वा ततो नियच्छेयुः॥ १७॥ मध्यं वा गृह्णीयुः॥ १८॥ तदुभयं परोक्तं वास्तु राजा हरेत॥ १९॥ प्रनष्टस्वामिकं च यथोपकारं वा विभजेत्॥ २०॥ प्रसह्यादाने वास्तुनि स्तेयदण्डः॥ २१॥ कारणादाने प्रयासमाजीवं च परिसंख्याय बन्धं दद्यात्॥ २२॥ मर्यादापहरणे पूर्वः साहसदण्डः॥ २३॥ मर्यादाभेदे चतुर्विंशतिपणः॥ २४॥ तेन तपोवनविवीतमहापथश्मशानदेवकुलयजनपुण्यस्थानविवादा व्याख्याताः॥ २५॥ इति मर्यादास्थापनम्॥ २६॥

खेतों के झगड़ों का निर्णय गांव के मुखिया या गांव के वृद्ध पुरुष करें। यदि उन में मत भेद रह जावे-तो उन में बहुत से धार्मिक पुरुष प्रजा की अनुमति से उनका निर्णय कर

दें या सब मिलकर मध्यस्थ स्वीकार करें-जो निर्णय (फैसला) करदे। यदि इन दोनों वादी प्रति वादी, दोनों की ही वह भूमि या मकान हो-तो राजा उसपर अधिकार करले। जिसका स्वामी भी नष्ट हो गया, उसको प्रजा के उपकार की दृष्टि से राजा चाहे, जिसे बाँट दे। जो बल पूर्वक किसी की भूमि को कोई छीने-उस पर चोरी का दण्ड होना चाहिए। यदि कोई किसी कारण से किसी की भूमि पर अधिकार करता है, तो भू स्वामी के परिश्रम और ऋण से अधिक धन उस भू स्वामी को दिलाया जावे। यदि कोई किसी के मकान की सीमा (हद) को दबाले-तो उसपर पूर्व साहस की व्यवस्था है और मर्यादा की सीमा नष्ट करे-तो उस पर चौबीस पण दण्ड होना चाहिए। इस व्यवस्था के अनुसार ये तपोवन, विवीत (चरागाह) बड़ी २ सड़कें, श्मशान, देवालय, भजनस्थान, धर्म शाला आदि के विवादों का निर्णय कर लेना चाहिए। यहां तक क्षेत्र आदि की सीमा का वर्णन हुआ॥ १६-२६ ॥

सर्व एव विवादाः सामन्तप्रत्ययाः ॥ २७ ॥ विवीतस्थलकेदार षण्डखल-वेश्मवाहनकोष्ठानां पूर्वं पूर्वमाबाधं सहेत ॥ २८ ॥ ब्रह्मसोमारण्यदेवयजनपुण्य-स्थानवर्जाः स्थलप्रदेशाः ॥ २९ ॥ आधारपरिवाहकेदारोपभोगैः परक्षेत्रकृष्टबीज-हिंसायां यथोपघातं मूल्यं दद्युः ॥ ३० ॥ केदारारामसेतुबन्धानां परस्परहिंसायां हिंसाद्विगुणो दण्डः ॥ ३१ ॥ पश्चान्निविष्टमधरतटाकं नोपरितटाकस्य केदारमुदकेनाप्लावयेत् ॥ ३२ ॥ उपरिनिविष्टं नाधरतटाकस्य पूरास्रावं कारयेदन्यत्र त्रिवर्षोपरतकर्मणः ॥ ३३ ॥ तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥३४॥ तटाकवामनं च ॥ ३५ ॥

सब तरह के विवादों (मुकदमों) का निर्णय सामन्त (गाँव के मुखिया) कर सकते हैं। चराहगाह, स्थल, खेत, खलिहान, मकान और घुड़साल आदि का निर्णय पूर्व की अपेक्षा पिछले का प्रथम करना उचित है। ब्रह्मारण्य, सोमारण्य, (सोम रस खेंचने का स्थान) देवालय यज्ञशाला, धर्मशाला आदि को छोड़ कर सारे प्रदेश स्थल के तुल्य मानने चाहिए। जलाशय नाली, क्यारी आदि के बनाने से किसी पड़ोसी के बीज का नाश हो जावे-तो उस हर्जाने के अनुसार उसको मूल्य दिलाया जावे। केदार (क्यारी) बगीचा, सेतु बन्ध (तार आदि से सीमा) के नाश कर देने पर हर्जाने से दुगुना दण्ड होना चाहिए पीछे के बने हुए नीचे के तालाब से ऊपर के तालाब की क्यारी को न सींचे। ऊपर के तालाब से नीचे के तालाब को न भरे-यदि तीन वर्ष तक नीचे का तालाब खाली पड़ा रहा हो-तो भरा जा सकता है। इन नियमों के उल्लंघन करने वाले को पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए और तड़ाग का पानी निकलवा देना उचित है॥ २७-३५ ॥

पञ्चवर्षोपरतकर्मणः सेतुबन्धस्य स्वाम्यं लुप्येतान्यत्रापद्भ्यः ॥ ३६ ॥ तटाकसेतुबन्धानां नवप्रवर्तने पाञ्चवर्षिकः परिहारः ॥ ३७ ॥ भग्नोत्सृष्टानां चातुर्वर्षिकः ॥ ३८ ॥ समुपारूढानां त्रैवर्षिकः ॥३९॥ स्थलस्य द्वैवर्षिकः स्वात्माधाने विक्रये च ॥४०॥ वातप्रावृत्तिमनदीनिबन्धायतनतटाककेदारारामषण्डवपानां सस्यवर्णभागोत्तरिकमन्येभ्यो वा यथोपकारं दद्युः ॥ ४१ ॥ प्रक्रयावक्रयाधिभागभोगनिसृष्टोपभोक्तारश्चैषां प्रतिकुर्युः ॥४२॥ अप्रतीकारे हीनद्विगुणो दण्डः ॥४३॥

यदि किसी पर कोई आपत्ति आ जावे-तो पाँच वर्ष तक तड़ाग के बिना काम पड़े रहने पर भी अधिकार रह सकता है अन्यथा उसके अधिकार का लोप हो जाता है। यदि कोई नया तालाब या सेतुबन्ध किया जावे-तो पांच वर्ष तक उसका राजकीय शुल्क मुआफ रहना चाहिए यदि टूटे फूटे ठीक करवावे-तो उसपर चार वर्ष तक टैक्स मुआफ रहे। बने हुए पर कुछ और बनवाया जावे-तो तीस वर्ष तक उस से कोई उसका सरकारी टैक्स नहीं लिया जावे। स्थल भूमि को गिरवी रखने या वेचने पर नये स्वामी से दो वर्ष तक टैक्स नहीं लेना चाहिए। वायु से चलने वाले रहट या नदी, बन्ध, तड़ाग, क्यारी- आराम [बगीचे] फुलवाड़ियों या ऐसी अन्य चीजों पर उनकी उपज के अन्न, पत्ते, फूल आदि लिए जावे-या जिस से प्रजा को कष्ट न हो-इतना सरकारी टैक्स लेना चाहिए मूल्य, सालान बन्धन, या किराया, उपज का भाग, या खाने पीने की छुट्टी देकर किसान लोग उनके स्वामी का भी प्रत्युपकार करते रहें। जो इस प्रकार इन तड़ाग आदि बनाने वालों का उपकार न करें-या उन स्थानों की मरम्मत न करवावे-तो उनपर उस नुक़सान से दुगुना दण्ड होना चाहिए ॥ ३६-४३ ॥

सेतुभ्यो मुञ्चतस्तोयमपारे षट्पणो दमः ।
पारे वा तोयमन्येषां प्रमादेनोपरुन्धतः ॥ ४४ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे वास्तुके वास्तुविक्रयः सीमाविवादः क्षेत्रविवादः मर्यादास्थापनं बाधाबाधिकं नवमो ऽध्यायः ॥ ९ ॥
आदितः षट्षष्टितमो ऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सेतुओं से पानी छोड़ने पर जितना पानी लेना चाहिए उस से अधिक लेने वाले पर छः पण दण्ड होना चाहिए तथा जो ठीक जल ले रहा है और अधिक समझकर यदि उस का पानी रोक दे-तो इस मूल का उसको भी इतना ही दण्ड होना उचित है।

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में मकान बेचने आदि के नियमों के वर्णन का नवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

दसवां अध्याय

६१-६२वां प्रकरण

इस अध्याय में पशुओं के चरने, खेत के मार्ग रोकने आदि के दण्ड के विषय में वर्णन किया जावेगा तथा समय के लोप नहीं करने का विचार किया जावेगा।

कर्मोदकमार्गमुचितं रुन्धतः कुर्वतो ऽनुचितं वा पूर्वः साहस दण्डः ॥१॥ सेतुकूपपुण्यस्थानचैत्यदेवायतनानि च परभूमौ निवेशयतः पूर्वानुवृत्तं धर्मसेतुमाधानं विक्रयं वा नयतो नाययतो वा मध्यमः साहसदण्डः श्रोतृणामुत्तमः ॥ २ ॥ अन्यत्र भग्नोत्सृष्टात् ॥ ३ ॥ स्वाम्यभावे ग्रामाः पुण्यशीला वा प्रतिकुर्युः ॥४॥ पथिप्रमाणं दुर्गनिवेशे व्याख्यातम् ॥ ५ ॥ क्षुद्रपशुमनुष्यपथं रुन्धतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ६ ॥ महापशुपथं चतुर्विंशतिपणः ॥७॥ हस्तिक्षेत्रपथं चतुष्पञ्चाशत्पणः ॥ ८ ॥ सेतुवनपथं षट्छतः ॥ ९ ॥ श्मशानग्रामपथं द्विशतः ॥ १० ॥ द्रोणमुखपथं पञ्चशतः ॥ ११ ॥ स्थानीयराष्ट्रविवीतपथं साहस्रः ॥ १२ ॥

काम धन्धे और जल के उचित मार्गों के रोकने वाले या अनुचित रीति पर निकाल देने वालेपुरुष पर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिये। जो पुरुष दूसरे की भूमि की सीमा, कूप पुण्यस्थान, चैत्य (गाँव के बगीचे) देवालय को दूसरे की भूमि बनादे या पूर्व से बने हुये धर्म स्थान को गिरवी रखदे, बेच दे अथवा बिकवा दे-तो मध्यम दण्ड देना चहिये। और जो पुरुष इस कार्यवाही को सुनकर देखते रहें-उनको उत्तम साहस दण्ड देना उचित है। यदि वह धर्म स्थान टूट फूट गया हो और उस से धर्म कार्य किया जा रहा हो-तो उनपर दण्ड नहीं होना चाहिए। यदि किसी धर्मशाला आदि स्थानों का स्वामी न रहे, तो गांव के धार्मिक जन उसकी मरम्मत करादें। मार्ग कितना कैसा होना चाहिए, यह दुर्ग निवेश में वर्णन कर दिया है। छोटे पशु और मनुष्यों के मार्ग को कोई रोक दे-तो उसपर चौबीस पण दण्ड होगा। हाथी और खेत के मार्ग रोकने पर चौबीस, सेतु और वन के मार्ग रोकने पर छः सौ पण, श्मशान और ग्राम के मार्ग रोकने पर दो सौ द्रोण मुख स्थान के रोकने पर

पांच सौ स्थानीय राष्ट्र और वनजर स्थानों के मार्ग रोकने पर एक सहस्र पण दण्ड होना उचित है ॥ १-१२ ॥

अतिकर्षणे चैषां दण्डचतुर्थो दण्डः ॥ १३ ॥ कर्षणे पूर्वोक्ताः ॥ १४॥ क्षैत्रिकस्याक्षिपतः क्षेत्रमुपवासस्य वा त्यजतो बीजकाले द्वादशपणो दण्डः ॥१५॥ अन्यत्र दोषोपनिपाताविषह्येभ्यः ॥ १६ ॥ करदाः करदेष्वाधानं विक्रयं वा कुर्युः ॥ १७ ॥ ब्रह्मदेयिका ब्रह्मदेयिकेषु ॥ १८ ॥ अन्यथा पूर्वः साहसदण्डः ॥ १९॥ करदस्य वाऽकरदग्रामं प्रविशतः ॥ २० ॥ करदं तु प्रविशतः सर्वद्रव्येषु प्राकाम्यं स्यात् ॥ २१ ॥ अन्यत्रागारात् ॥ २२ ॥ तदप्यस्मै दद्यात् ॥ २३ ॥

यदि इन स्थानों के मार्गों को कोई जोत जात कर नष्ट करने की चेष्टा करे-तो उनपर इस दण्ड का चतुर्थांश दण्ड होना चाहिए। जो इसे अपने खेत का भाग कर जोत डाले-तो भी यही दण्ड उचित है। खेत का स्वामी अन्यत्र रहने लगे और समय पर खेत में बीज न डाले-तो उसपर बारह पण दण्ड होवे। यदि खेत में कोई दोष हो, बाहरी विपत्ति आ गई हो या बो नहीं सकता हो-और वह न बो सके-तो कोई दोष नहीं है। कर [लगान] देने वाले, कर देने वालों के ही अपनी भूमि को गिरवी रख सकता है या बेच सकता है। जिन को भूमि ब्राह्मण की रीति पर दान में मिली है, वह ब्राह्मण अपनी भूमि ऐसे ही ब्राह्मणों के गिरवी रख सकता है। यदि इन नियमों का कोई उल्लंघन करता है-तो उसपर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए। जो कर देने वाला नहीं कर देने वाले के ग्राम में चला जावे, उसपर भी यही दण्ड होना उचित है। यदि फिर वह पुरुष कर देने वाले गांव में आ बसे-तो उसको उसके सारे अधिकार दे देने चाहिए, परन्तु उसका मकान उसको शीघ्र नहीं मिलना चाहिए। जब उचित समझा जावे-तब उसको उसका मकान सौंपा जावे ॥ १३-२३ ॥

अनादेयमकृषतो ऽन्यः पञ्चवर्षाण्युपभुज्यप्रयासनिष्क्रयेण दद्यात् ॥२४॥ अकरदाः परत्र वसन्तो भोगमुपजीवेयुः ॥२५॥ ग्रामार्थेन ग्रामिकं व्रजन्तमुपवासाः पर्यायेणानुगच्छेयुरननुगच्छन्तः पणार्धपणिकं योजनं दद्युः ॥ २६ ॥ ग्रामिकस्य ग्रामादस्तेनपारदारिकं निरस्यश्चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥२७॥ ग्रामस्योत्तमः ॥२८॥ निरस्तस्य प्रवेशो ह्यभिगमने व्याख्यातः ॥ २९ ॥ स्तम्भैः समन्ततो ग्रामाद्धनुः-शतापकृष्टमुपशालं कारयेत् ॥ ३० ॥ पशुप्रचारार्थं विवीतमालवनेनोपजीवेयुः ॥ ३१ ॥ विवीतं भक्षयित्वापसृतानामुष्ट्रमहिषाणां पादिकं रूपं गृह्णीयुः ॥ ३२॥

गवाश्वखराणां चार्धपादिकम् ॥३३॥ क्षुद्रपशूनां षोडशभागिकम् ॥३४॥ भक्षयित्वा निषण्णानामेत एव द्विगुणा दण्डाः ॥ ३५ ॥ परिवसयां चतुर्गुणाः ॥ ३६ ॥ ग्रामदेववृषावा अनिर्दशाहा वा धेनुरुक्षाणो गोवृषाश्चादण्ड्याः ॥ ३७ ॥

जो पुरुष आप किसी खेत को न जोते-दूसरा बिना किसी लगान के उसे ठीक करले तो वह पांच वर्ष तक उसका उपयोग करके परिश्रम का मूल्य लेकर फिर उसके स्वामी को उसकी भूमि लौटा दे। जो पुरुष किसी भूमि का कर नहीं देते-उनको मुआफी में भूमि मिली है-वह दूसरे गांव में रहता हुआ भी अपनी भूमि का भोग के अधिकारी है। गांव के कार्य के निमित्त जब गांव का मुखिया, बाहर, जावे-तो वहां के रहने वाले, नम्बरदार उसके पीछे जावें। जो नहीं जावे, वह डेड़ पण प्रति भोजन के हिसाब से दण्ड देवे। जब गांव का मुखिया, गाँव से चोर और व्यभिचारी के अतिरिक्त किसी को निकाले-तो उस पर चौबीस पण दंड होना चाहिए। यदि गांव के लोग, किसी को निकाले-तो उनपर उत्तम साहस दंड हों। निकाले हुए का प्रवेश भी इसी ढङ्ग से समझे। यदि उसे कोई न बसने दे-तो उसपर पूर्वांश दंड हो। पशुओं के प्रचार [घूमने] के लिए चरागाह, घास फूंस कटवाकर बनवायी जावें। चरागाह में चरका, घरपर गए हुए ऊंट भैंसों का कर एक चौथाई पण कम होना चाहिए। गाय, घोड़े और गधों पर आधा पण और क्षुद्र पशु भेड़ बकरी पर पण का सोलहवां भाग लिया जावे। जो चराकर उसी स्थान पर बैठे-तो उनपर दुगुना कर होगा, जो रात में ये वहीं निवास करें-तो उन से चौगुना कर लेना चाहिए। गांव के देवता का सांड़, दश दिन की ब्याई हुई गाय, गौओं में रहने वाले सांडों से कोई कर नहीं होना चाहिए॥ २४-३७॥

सस्यभक्षणे सस्योपघातं निष्पत्तितः परिसंख्याय द्विगुणं दापयेत् ॥३८॥ स्वामिनश्चानिवेद्य चारयतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ३९ ॥ प्रमुञ्चतश्चतुर्विंशतिपणः ॥ ४० ॥ पालिनामर्धदण्डाः ॥ ४१ ॥ तदेव पण्ड भक्षेण कुर्यात् ॥ ४२ ॥ वाटभेदे द्विगुणः ॥ ४३ ॥ वेश्मखलवलयगतानां च धान्यानां भक्षेण हिंसाप्रतीकारं कुर्यात् ॥ ४४ ॥ अभयवनमृगाः परिगृहीता भक्षयन्तः स्वामिनो निवेद्य यथावध्यास्तथा प्रतिषेद्धव्याः ॥ ४५ ॥ पशवो रश्मिप्रतोदाभ्यां वारयितव्याः ॥ ४६ ॥ तेषामन्यथा हिंसायां दण्डपारुष्यदण्डाः ॥ ४७ ॥ प्रार्थयमाना दृष्टापराधा वा सर्वोपायैर्नियन्तव्याः ॥ ४८ ॥ इति क्षेत्रपथहिंसाः ॥ ४९ ॥

यदि किसी का पशु किसी किसान के खड़े अनाज को खा जावे, तो जो आगे चल कर उत्पन्न होता-उसका दुगुना उस से खेत के स्वामी को दिलवाया जावे, जो अपने पशु

को दूसरे के खेत में चोरी से चरावे, उस पर बारह दंड होना चाहिए। जो अपने पशुको किसी के खेत में चरने को छोड़ दे, तो उसपर चौबीस पण दंड होवे। खेतों की रखवाली करने वालों पर आधा दंड होगा कि उन्हों ने क्यों नही खेतों की रक्षा की। यदि साँड खेत में चर जावे-तो भी रखवाले पर दंड होना ही चाहिए। यदि साँड दीवार तोड़ कर घुस गया-तो रखवाले पर दुगुना दंड हो। घर, खलिहान, और राशि के स्थान पर यदि सांड आदि कोई पशु अन्न को चर जावे-तो जो अन्न का नुकसान हुआ उतना दंड होना उचित है। अभय वन के मृग आकर यदि खेती को खावे-तो इस बात की रखवाला स्वामी को सूचना दे और उन मृगों को इस प्रकार से हटावे, कि उनकी हिंसा न हो सके। पशुओं को रस्सी या कोड़े से हटाना चाहिए, उनको यदि और कठोर तरह से हटाया गया-तो उन पर दंड की कठोरता का दंड होना चाहिए। यदि निकालते हुए या पूर्व में किसी पशु ने मनुष्य को मारने की चेष्टा की तो उसे किसी भी तरह से हटाया जा सकता है। यहां तक क्षेत्र [खेत] मार्ग के नाश करने के विषय में व्यवस्था बांधी गई है। ॥ ३८-४९ ॥

कर्षकस्य ग्राममभ्युपेत्याकुर्वतो ग्राम एवात्ययं हरेत् ॥ ५० ॥ कर्माकरणे कर्मवेतनद्विगुणं हिरण्यदानं प्रत्यंशद्विगुणं भक्ष्यपेयदाने च प्रवहणेषु द्विगुणमंशं दद्यात् ॥ ५१ ॥ प्रेक्षायामनंशदः स्वस्वजनो न प्रेक्षेत ॥ ५२ ॥ प्रच्छन्नश्रवणेक्षणे च सर्वहिते च कर्मणि निग्रहेण द्विगुणमंशं दद्यात् ॥ ५३ ॥

यदि कोई मनुष्य, गांव में आकर भी खेती न करे-तो उसपर गांव के लोग अपनी ओर से जुर्माना करें। काम करने के समय काम न करे तो उसपर काम के वेतन का दुगुना दंड हो। समाज के कार्यों में उचित चन्दा नहीं देने वाले पर दुगुने चन्दे का दंड होना उचित है और इसी तरह खाने पीने की उचित गोष्ठी या उत्सव पर सवारी का चन्दा न दे-तो उसपर भी दुगुना दण्ड होवे। किसी खेल तमाशे में जो चन्दा न दे, उसके कुटुम्ब के लोग उस तमाशे को न देख सकें। यदि वे छुपकर सुन लें या सर्व हितकारी काम में सहायता न करें-तो उसपर दुगुने चन्दा लेना योग्य है ॥ ५०-५३ ॥

सर्वहितमेकस्य ब्रुवतः कुर्युराज्ञाम् ॥ ५४ ॥ अकरणे द्वादशपणो दण्डः ॥ ५५ ॥ तं चेत्संभूय वा हन्युः पृथगेषामपराध द्विगुणो दण्डः ॥ ५६ ॥ उपहन्तृषु विशिष्टः ब्राह्मणतश्चैषां ज्येष्ठं नियम्येत ॥ ५७ ॥ प्रवहणेषु चैषां ब्राह्मणा नाकामाः कुर्युः ॥ ५८ ॥ अंशं च लभेरन् ॥ ५९ ॥ तेन देशजातिकुलसंघानां समयस्यानपाकर्म व्याख्यातम् ॥ ६० ॥

जो सब के हित की बात कहे, उसकी बात को सारे गांव के लोग माने। जो उस की आज्ञा में न चले, उसपर बारह पण दंड होना उचित है। यदि उसी आज्ञा को बहुत से लोग इकट्ठे ही नष्ट करदें तो पृथक् २ इनको यथापराध दुगुना दंड होना चाहिए। उस की आज्ञा पंचातरों कोई प्रतिष्ठ ब्राह्मण हो, तो उनमें सब से बड़े नेता पर दंड किया जावे। यदि सवारी आदि लेकर किसी कार्य [मेले आदि] में जाने की ब्राह्मण की इच्छा न होवे तो उसको छोड़ दिया जावे, परन्तु व्यय का भाग ब्राह्मण भी देवे। इस से देश, जाति, कुल और समाज के नियमों की व्यवस्था के उल्लंघन की भी व्यवस्था समझ लेनी चाहिए ॥ ५४-६० ॥

राजा देशहितान्सेतून्कुर्वतां पथि संक्रमात् ।
ग्रामशोभाश्च रक्षाश्च तेषां प्रियहितं चरेत् ॥ ६१ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे वास्तुके विवीतक्षेत्रपथहिंसा दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ वास्तुकं समाप्तम्

राजा राजकीय मार्गों पर धर्म शाला आदि उत्तम २ स्थानों को पुरुष बनावे तथा जो गांव की शोभा और रक्षा के कार्य करें, उनके कल्याण में तत्पर होता रहे ॥ ६१ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में चरागाह आदि के वर्णन का दसवां अध्याय समाप्त हुआ।



ग्यारहवां अध्याय

६३वां प्रकरण

ऋण लेना

इस प्रकरण में ऋण के लेने देने के प्रकारों का वर्णन किया जावेगा।

सपादपणा धर्म्या मासवृद्धिः पणशतस्य ॥ १ ॥ पञ्चपणा व्यावहारिकी ॥ २ ॥ दशपणा कान्तारकाणाम् ॥ ३ ॥ विंशतिपणा सामुद्राणाम् ॥ ४ ॥ ततः परं कर्तुः कारयितुश्च पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५ ॥ श्रोतृणामेकैकं प्रत्यर्धदण्डः ॥ ६ ॥ राजन्ययोगक्षेमवहे तु धनिकधारणिकयोश्चरित्रमपेक्षेत ॥ ७ ॥

एक रुपये पर मासवृद्धि [ब्याज] सवा रुपये से अधिक नहीं लेना चाहिए यह धर्म की व्यवस्था है। विदेशी व्यापारियों से सौ रुपये पर पांच रुपये भी ब्याज हो सकता है।

जंगल में रहने वाले वनवासी भील आदि से दस रुपया सैंकड़ा व्याज लिया जा सकता है। समुद्र के मार्ग से व्यापार करने वालों से प्रतिशत बीस रुपया तक व्याज लेले। इस से अधिक व्याज लेने और दिलवाने वाले पर प्रथम साहस दण्ड होना चाहिए। इस प्रकार के व्याज में सहायता करने वाले प्रत्येक पुरुष को पूर्वोक्त से आधा दण्ड होना चाहिए। किसी ऋण पर राज्य का सुख दुःख निर्भर हो, तो ऐसे समय में ऋण देने और लेने वाले पर राजा अपनी निगरानी रखे॥ १-७॥

धान्यवृद्धिः सस्यनिष्पत्तावुपार्धावरं मूल्यकृता वर्धेत ॥ ८ ॥ प्रक्षेपवृद्धिरुदयादर्धं संनिधानसन्ना वार्षिकी देया ॥ ९ ॥ चिरप्रवासस्तम्भप्रविष्टो वा मूल्यद्विगुणं दद्यात् ॥ १० ॥ अकृत्वा वृद्धिं साधयतो वर्धयतो वा मूल्यं वा वृद्धिमारोप्य श्रावयतो बन्धचतुर्गुणो दण्डः ॥ ११ ॥

धान्यकी वृद्धि का व्याज हो तो, जब अन्न उत्पन्न हो-उस समय तक मूल रकम से आधे से अधिक व्याज नहीं होना चाहिए। बेचे हुए माल पर नकद रक़म न मिलने पर जो व्याज लगेगा, वह प्रक्षेप वृद्धि होता है। यह व्याज लाभ की मूल रक़म से आधा होना चाहिए, जिसका हिसाब एक वर्ष में होना उचित है। यदि चिरकाल तक विदेश चला गया और रक़म को चुकता नहीं किया, तो उसके मूल रक़म से दुगुना व्याज देना होगा। जो ऋण देने वाला-अभी व्याज की रक़म चढ़ी नहीं है और चढ़ी बता दे या कम मूल्य को अधिक बतावे तथा व्याज को मूल रक़म बता कर मांगे तो उसपर मूल धन का चौगुना दण्ड होगा॥ ८-११॥

तुच्छचतुरश्रावणायामभूतचतुर्गुणः ॥ १२ ॥ तस्य त्रिभागमादाता दद्यात् ॥ १३ ॥ शेषं प्रदाता ॥ १४ ॥ दीर्घसत्त्रव्याधिगुरुकुलोपरुद्धं बालमसारं वा नर्णमनुवर्धेत ॥ १५ ॥ मुच्यमानमृणमप्रतिगृण्हतो द्वादशपणो दण्डः ॥१६॥ कारणापदेशेन निवृत्तवृद्धिकमन्यत्र तिष्ठेत् ॥ १७ ॥ दशवर्षोपेक्षितमृणमप्रतिग्राह्यमन्यत्र बालवृद्धव्याधितव्यसनिप्रोषितदेशत्यागराज्यविभ्रमेभ्यः ॥ १८ ॥

जो कोई इस प्रकार की ऋण की रक़म को छोटे या बड़े पुरुषों को बढ़ाकर सुनावे तो उनको बढ़ाकर सुनाई हुई रक़म का चौगुना दण्ड हो और उसमें तीन भाग ऋण लेने वाला [अधमर्ण] और एक भाग ऋण देने वाला [उत्तमर्ण] प्रदान करे। लम्बे यज्ञ, रोग, और गुरुकुल में रुके हुए बालक या शक्ति हीन पुरुष पर ऋण का व्याज नहीं लगाया जा सकता। ऋण का चुकता करने को दी जाने वाली रकम को यदि ऋण दाता न ले और कर्जदार को उलझाये ही रखना चाहे तो उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए। यदि नहीं लेने

में कोई कारण बतावे-तो वह रकम कहीं अन्य स्थान पर जमा करदेनी चाहिए, इस के पीछे उसपर व्याज नहीं होगा। ऋण [कर्ज] की मियाद दस वर्ष की होती है, इसके अनन्तर कोई भी ऋण दाता अपने ऋण के लेने का अधिकारी नहीं हो सकता। बालक, वृद्ध व्याधिग्रस्त, विपत्ति निमग्न, विदेशगत, देश त्यागी, और राज्य की उथल पुथल में फंसा हुआ व्यक्ति दस वर्ष के उपरान्त भी अपनी रकम को वसूल कर सकता है॥ १२-१८॥

प्रेतस्य पुत्राः कुसीदं दद्युः॥ १६॥ दायादा वा रिक्थहराः सहग्राहिणः प्रतिभुवो वा ॥ २०॥ न प्रातिभाव्यमन्यदसारं बालप्रातिभाव्यम् ॥ २१॥ असंख्यातदेशकालं तु पुत्राः पौत्रा दायादा वा रिक्थं हरमाणा दद्युः ॥ २२॥ जीवितविवाहभूमिप्रातिभाव्यमसंख्यात देशकालं तु पुत्राः पौत्रा वा वहेयुः ॥२३॥ नानर्णसमवाये तु नैकं द्वौ युगपदभिवदेयातामन्यत्र प्रतिष्ठमानात् ॥२४॥ तत्रापि गृहीतानुपूर्व्या राजश्रोत्रियद्रव्यं वा पूर्वं प्रतिपादयेत्॥ २५॥

यदि ऋण का लेने वाला [अधमर्ण] मृत्यु को प्राप्त हो जावे-तो उस ऋण के देने वाले मृतक के पुत्र होंगे। यदि पुत्र न हों-तो उसकी सम्पत्ति के लेने वाले- कुटुम्बी, साथी या प्रति भू [जामिन] उस ऋण को चुकावें। इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी इस ऋण के देने का जिम्मेवार नहीं है। बालक को जामिन बनाना व्यर्थ है। जिस धन में देश काल की अवधि नहीं है, उस ऋण को पुत्र, पौत्र, कुटुम्बी और उसके शेष धन के लेने वाले पुरुष उसके ऋण को चुकावे। जीविका, विवाह, भूमि के सम्बन्ध में यदि किसी ने जमानत देदी हो और उस में देश काल की अवधि न हो-तो उस जमानत का रुपया भी पुत्र या पौत्रों को चुकाना पड़ेगा। जब किसी व्यक्ति पर कई व्यक्तियों का ऋण हो-तो उस एक कर्जदार पर अनेक उत्तमर्ण [कर्ज देने वाले] एक दम दावा नही कर सकते। यदि वह कहीं छोड़कर भाग रहा हो-तो उसपर एक दम भी दावे कर सकते हैं। इस ऋण का चुकता यथा क्रम से होना चाहिए। पूर्व में ऋण देने वाले का पूर्व में ऋण चुकाना योग्य है। राजा या श्रोत्रिय [वेदनिष्ठ] ब्राह्मण का भी देय द्रव्य शेष हो-तो उसका सर्व प्रथम चुकता करवाना चाहिए॥ १६-२५॥

दम्पत्योः पितापुत्रयोःभ्रातृणां चाविभक्तानां परस्परकृतमृणमसाध्यम्॥२६॥ अग्राह्याः कर्मकालेषु कर्षका राजपुरुषाश्च ॥ २७॥ स्त्री चाप्रतिश्राविणी पतिकृत-मृणमन्यत्र गोपालकार्द्धसीतिकेभ्यः॥ २८॥ पतिस्तु ग्राह्यः ॥ २६॥ स्त्रीकृत-मृणमप्रतिविधाय प्रोषित इति संप्रतिपत्तावुत्तमः ॥३०॥ असंप्रतिपत्तौ तु साक्षिणः प्रमाणम्॥ ३१॥

पति पत्नी, पिता पुत्र और बिना बटे हुए भाइयों का परस्पर लिया हुआ ऋण, मुकदमे के योग्य नहीं है। काम के समय पर किसान और राज्य कर्मचारी ऋण के संबंध में गिरफ्तार नहीं करवाए जा सकते। पति का ऋण यदि भार्या न चुकाना चाहिए, तो उसे उस ऋण के चुकाने को मजबूर नहीं किया जा सकता। हां ? गोपालक और अर्धसीतिक [स्त्रियों को साथ रखकर मजदूरी करने वाले] पुरुषों की स्त्रियाँ भी उनके पतियों के ऋण के चुकाने की जिम्मेवार हैं। स्त्रियों का ऋण पति को अवश्य चुकाना पड़ेगा। स्त्री के ऋण को बिना चुकाये बहाने से विदेश को चला जावे, और यह सिद्ध हो जावे-तो उसपर उत्तम साहस दण्ड होना चाहिए। यदि यह बात सिद्ध न हो सके-तो साक्षियों पर दंड होना चाहिए॥ २६-३१ ॥

प्रात्ययिकाः शुचयोऽनुमता वा त्र्यवरा अर्थ्याः ॥ ३२ ॥ पक्षानुमतौ वा द्वौ ॥ ३३ ॥ ऋणं प्रति न त्वेवैकः ॥ ३४ ॥

विश्वासी, पवित्र चरित्र और दोनों पक्ष के माने हुए कम से कम तीन साक्षी होने उचित हैं अथवा दोनों पक्ष के सम्मतता दो ही साक्षी पर्याप्त हैं। ऋण के निर्णय में एक साक्षी नहीं हो सकता है॥ ३२-३४ ॥

प्रतिषिद्धाः स्यालसहायाबद्धधनिकधारणिकवैरिन्यङ्गधृतदण्डाः ॥ ३५ ॥ पूर्वे चाव्यवहार्याः ॥ ३६ ॥ राजश्रोत्रियग्रामभृतकुष्ठिव्रणिनः पतितचण्डालकुत्सितकर्माणोऽन्धबधिरमूकाहंवादिनः स्त्रीराजपुरुषाश्चान्यत्र स्ववर्गेभ्यः ॥ ३७ ॥ पारुष्यस्तेयसंग्रहणेषु तु वैरिस्यालसहायवर्जाः ॥ ३८ ॥ रहस्यव्यवहारेष्वेका स्त्री पुरुष उपश्रोता उपद्रष्टा वा साक्षी स्याद्राजतापसवर्जम् ॥ ३९ ॥

साला, सहायक, आबद्ध [किसी का क्रीत दास] धनिक [ऋणदाता] धारणिक [ऋण लेने वाला] शत्रु, अङ्ग हीन और राज्य से सजा पाया हुआ साक्षी होने के योग्य नहीं है। किसी कारण से पूर्वोक्त भी साक्षी होने के योग्य नहीं रह सकते हैं। राजा, वेद वक्ता ब्राह्मण, गांव का साहूकार, कुष्ठी, व्रण वाला, पतित, चंडाल, कुत्सित काम करने वाला, अन्ध बधिर, मूक [गूंगे] अहंकारी, स्त्री और राज पुरुष ये अपने वर्ग को छोड़ कर अन्यत्र साक्षी नहीं बन सकते हैं। कठोर व्यवहार, चोरी और व्यभिचार के झगड़ों में वैरी, साला और सहायक को छोड़कर अन्य साक्षी माने जा सकते हैं। एकान्त के गुप्त व्यवहारों में अकेली स्त्री या उन घटनाओं का देखने सुनने वाला अकेला पुरुष भी साक्षी हो सकता है। राजा या तपस्वी के वेश में रहने वाला गुप्तचर साक्षी नहीं हो सकता है॥ ३५-३९ ॥

स्वामिनो भृत्यानामृत्विगाचार्याः शिष्याणां मातापितरौ पुत्राणां चानिग्रहेण साक्ष्यं कुर्युः ॥ ४० ॥ तेषामितरे वा ॥ ४१ ॥ परस्पराभियोगे चैषामुत्तमाः परोक्ता दशबन्धं दद्यु रवराः पञ्चबन्धम् ॥ ४२ ॥ इति साक्ष्यधिकारः ॥ ४३ ॥

स्वामी नौकरों ऋत्विक और आचार्य शिष्यों और माता पिता पुत्रों के बे रोक टोक साक्षी हो सकते हैं। इसी तरह भृत्य आदि भी स्वामी आदि के साक्षी हो सकते हैं। जब इन का परस्पर अभियोग चल पड़े, तो स्वामी आदि उत्तम जन यदि पराजित होवे, वे अपने धन का दसवाँ भाग और क्षुद्र भृत्य आदि हारने पर पांचवां भाग देवे। यहां तक साक्षी के विषय में विचार किया गया॥ ४०-४३ ॥

ब्राह्मणोदकुम्भाग्निसकाशे साक्षिणः परिगृह्णीयात् ॥ ४४ ॥ तत्र ब्राह्मणं ब्रूयात्सत्यं ब्रूहीति ॥ ४५ ॥ राजन्यं वैश्यं वा मा तवेष्टापूर्तफलं कपालहस्तः शत्रुबलं भिक्षार्थी गच्छेरिति ॥ ४६ ॥ शूद्रं जन्ममरणान्तरे यद्वः पुण्यफलं तद्राजानं गच्छेत् ॥ ४७ ॥ राज्ञश्च किल्बिषं युष्मान् ॥४८॥ अन्यथावादे दण्डश्चानुबन्धः ॥ ४९ ॥ पश्चादपि ज्ञायेत यथादृष्टश्रु तम् ॥ ५० ॥ एकमन्त्राः सत्यमवहरतेत्यनवहरतां सप्तरात्रादूर्ध्वं द्वादशपणो दण्डः ॥ ५१ ॥ त्रिपक्षादूर्ध्वमभियोगं दद्यु ः ॥ ५२ ॥ साक्षिभेदे यतो बहवः शुचयो ऽनुमता वा ततो नियच्छेयुः ॥ ५३ ॥ मध्यं वा गृह्णीयुः ॥ ५४ ॥

ब्राह्मण, जल का कुम्भ और अग्नि समीप, साक्षी को ले जाया जावे। वहाँ यदि साक्षी ब्राह्मण हो तो उससे कहना चाहिए कि तुम सच बोलो। राजन्य [क्षत्रिय] को कहना चाहिए, कि यदि तुम झूंठ बोलोगे-तो तुमको शत्रुके सन्मुख कपाल [ठीकरा] लेकर भीख माँगनी पड़ेगी और वैश्य को कहना है, कि तुम यज्ञ और धर्मशाला आदि बनवाने के पुण्य के भागी न बनोगे। यदि साक्षी शूद्र हो-तो उस से कहा जावे, कि तुम्हारे जन्म जन्मान्तर का पुण्य राजा को चला जावेगा, जो तुम सच न कहोगे। इस प्रकार सब से कहो कि राजा का पाप तुमको लगेगा तथा झूंठ बोलने पर दंड भी मिलेगा। तुम्हारे कहने के बाद भी मुकदमे की जांच की जावेगी। अब तुम सब लोग सत्य २ साक्षी दो-यदि वे सत्य न कहे तो उनको सात दिन रोके रखे-और फिर उनपर बारह पण दंड कर दिया जावे। यदि ये लोग डेढ़ महीने तक कुछ भी न बतावे-तो जिसके साक्षी कुछ न कहे-उसके विरुद्ध मुकदमा कर दिया जावे। यदि साक्षियों के कथन में परस्पर भेद हो-तो जो पवित्र और दोनों ओर सम्मत श्रेष्ठ व्यक्ति हों उनके आधार पर अभियोग का निर्णय किया जावे या मध्यस्थ बनाया जावे ॥ ४४-५४ ॥

तद्वा द्रव्यं राजा हरेत् ॥ ५५ ॥ साक्षिणश्चेदभियोगादूनं ब्रूयुरतिरिक्तस्याभियोक्ता बन्धं दद्यात् ॥ ५६ ॥ अतिरिक्तं वा ब्रूयुस्तदतिरिक्तं राजा हरेत् ॥५७॥ बालिश्यादभियोक्तुर्वा दुःश्रुतं दुर्लिखितंप्रेताभिनिवेशं वा समीक्ष्य साक्षिप्रत्ययमेव स्यात् ॥ ५८ ॥ साक्षिबालिश्येष्वेव पृथगनुपयोगे देशकालकार्याणां पूर्वमध्यमोत्तमा दण्डा इत्यौशनसाः ॥ ५९ ॥ कूटसाक्षिणो यमर्थमभूतं वा नाशयेयुस्तद्दशगुणं दण्डं दद्युरिति मानवाः ॥ ६० ॥ बालिश्याद्वा विसंवादयतां चित्रो घात इति बार्हस्पत्याः ॥ ६१ ॥ नेति कौटल्यः ॥६२॥ ध्रुवं हि साक्षिभिः श्रोतव्यम् ॥ ६३ ॥ अशृण्वतां चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥६४॥ ततो ऽर्धमब्रुवाणाम् ॥६५॥

यदि दोनों पक्षों की कोई सम्पत्ति प्रमाणित न हो—तो उसको राजा अपने अधिकार में करले। यदि ऋण दाता वादी ने अधिक धन का दावा किया और वह साक्षियों से कम सिद्ध हुआ-तो अधिक बताई हुई रक़म का पांचवां भाग अभियोक्ता सरकार में जमा कराके यदि साक्षियों से धन अधिक प्रमाणित होवे, तो वह धन भी सरकारी ख़जाने में दाख़िल किया जावे। वादी के मूर्ख होन या बेढंगे तौर पर लिखने और सुनने के कारण या प्रेत के मर जाने से कुछ अटपट कह देने से जो बात साक्षियों से प्रमाणित हो उसी पर निर्णय होना चाहिए। साक्षी लोग अपनी मूर्खता से देश काल और कार्य को यदि ठीक २ न बता सकें-तो उन पर यथा योग्य प्रथम मध्यम या उत्तम साहस दण्ड होना चाहिए। जो झूंठे साक्षी, झूंठा दावा कराके धन का नाश करवावे, उनको इस धन से दश गुणा दण्ड होना चाहिए यह मनुजी का मत है। जो साक्षी अपनी शैतानी से मिथ्या भाषण करे-तो उनको बुरी तरह मरवाया जावे-यह बृहस्पति का मत है। कौटल्य आचार्य ऐसा नहीं मानते। वे तो कहते हैं, कि साक्षियों को सत्य बताना चाहिए। यदि साक्षी सत्य की स्थापना न करें-तो उन पर चौबीस पण दण्ड की व्यवस्था है जो साक्षी के विषय में कुछ न कहें- उनपर इससे आधा दण्ड होना चाहिए ॥५५-६५॥

देशकालाविदूरस्थान्साक्षिणः प्रतिपादयेत् ।
दूरस्थानप्रसारान्वा स्वामिवाक्येन साधयेत् ॥ ६६ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे ऋणादानं एकादशो ऽध्यायः ॥ ६६ ॥
आदितोऽष्टषष्टितमः ॥ ६८ ॥

वादी, जहां तक हो सके देश काल से समीप के पुरुष कोही साक्षी बनावे। यदि न्यायाधीश दूरके साक्षियों को भी बुलाना चाहे-तो उनको समक्ष उपस्थित करदे ॥६६॥

इति श्रीकौटलीय अर्थ शास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में ऋणदान का ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ।



बारहवां अध्याय

६४ वां प्रकरण

औपनिधिक

इस प्रकरण में उपनिधि के सम्बन्ध में वर्णन किया जावेगा। उपनिधि मुहर लगाकर रखी हुई बन्द धरोहर का नाम है।

उपनिधिर्ऋणेन व्याख्यातः ॥ १ ॥ परचक्राटविकाभ्यां दुर्गराष्ट्रविलोपे वा प्रतिरोधकैर्वा ग्राम सार्थव्रजविलोपेचक्रयुक्ते नाशे वा ग्राममध्याग्न्युदकाबाधे वा किंचिदमोच्यमाणे कुप्यमनिर्हार्यवर्जमेकदेशमुक्तद्रव्ये वा ज्वालावेगोपरुद्धे वा नावि निमग्नायां मुषितायां स्वयमुपरूढो नोपनिधिमभ्याभवेत् ॥ २ ॥

ऋण के नियमों के अनुसार ही उपनिधि के भी नियम समझने चाहिए। शत्रु के आक्रमण या जंगली जातियों की चढ़ाई से दुर्ग और राष्ट्र में विप्लव मच जाने, चोर लुटेरों से गांव, व्यापारियों के समूह और पशुओं के झुंडों के घेर लेने, गांव में आग लगने या पानी की बाढ़ चली आने पर कुछ भी न बचने तथा कुप्य तांबा आदिधातु और कुछ अन्य वस्तुओं के बचा लेने पर आग के बुझा देने पर भी एवं नाव के डूबने, सारे माल की चोरी हो जाने पर धरोहर का रखने वाला स्वयं बच भी निकला, तो भी वह इस धरोहर के देने का अधिकारी नहीं है ॥१-२॥

उपनिधिमोक्ता देशकालानुरूपं भोगवेतनं दद्यात् ॥ ३ ॥ द्वादशपणं च दण्डम् ॥ ४ ॥ उपभोगनिमित्तं नष्टं वाभ्याभवेच्चतुर्विंशतिपणश्च दण्डः ॥ ५ ॥ अन्यथा वा निष्पतने ॥ ६ ॥ प्रेतं व्यसनगतं वा नोपनिधिमभ्याभवेत् ॥ ७ ॥ आधानविक्रयापव्ययनेषु चास्य चतुर्गुणपञ्चबन्धो दण्डः ॥ ८ ॥ परिवर्तने निष्पतने वा मूल्यसमः ॥ ९ ॥

यदि कोई पुरुष किसी की उपनिधि (वस्तु की धरोहर) का व्यवहार करले, तो वह देश काल के अनुसार उसके व्यवहार में लाने का मूल्य चुकावे और उस पर बारह पण दण्ड होने चाहिए। यदि उपभोग करने पर नष्ट हुई है, तो उसे उस धरोहर का मूल्य

देना होगा और उस पर चौबीस पण दण्ड होगा नहीं तो इस तरह भोग २ कर तो प्रत्येक व्यक्ति धरोहर की वस्तु को नष्ट कर देगा। धरोहर की वस्तु रखकर कोई विदेश चला गया या विपत्ति में फंस गया और धरोहर की वस्तु नष्ट हो गई-तो वह उसका देनदार नहीं है। यदि कोई धरोहर की वस्तु को गिरवी रखदे, बेचदे किसी तरह उसका अपव्यय कर डाले-तो उसको चतुर्गुण मूल्य देना होगा, और उस पर पचगुना दण्ड होगा। यदि धरोहर की वस्तु बदली गई या नष्ट हो गई-तो मूल्य मात्र चुकाना होगा। ॥३-६॥

तेन आधिप्रणाशोपभोगविक्रयाधानापहारा व्याख्याताः ॥ १० ॥ नाधिः सोपकारः सीदेन्न चास्य मूल्यं वर्धेत ॥ ११ ॥ निरुपकारः सीदेन्मूल्यं चास्य वर्धेत ॥ १२ ॥ उपस्थितस्याधिमप्रयच्छतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १३ ॥ प्रयोजकासंनिधाने वा ग्रामवृद्धेषु स्थापयित्वा निष्क्रयमाधिं प्रतिपद्येत ॥ १४ ॥

जो नियम धरोहर की वस्तु के विषय में बताए गए-वे ही नियम गिरवी रखी हुई वस्तु के नाश, भोग, विक्रय, गिरवी रख देने या छुपा लेने पर समझने चाहिए। यदि धरोहर (आभूषण आदि) किसी उपकार (सहायता) के निमित्त की गई है, तो उसको तोड़ना बनवाना नहीं चाहिए। इस धरोहर पर व्याज नहीं बढ़ता है। गिरवी के रूप में रखी हुई धरोहर व्यापार में लाई जा सकती है और उसपर मूल्य व्याज भी बढ़ता है। किसी पुरुष के पास धरोहर विद्यमान है और वह उसे देने में आनाकानी करे-तो उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए। यदि धरोहर का भोगने वाला बाहर है और पत्र आदि से धरोहर [गिरवी जवर] का तक़ाजा कर रहा है, या मांग कर बाहर चला गया है, तो धरोहर देने वाला गांव के वृद्ध पुरुषों को उस धरोहर को सौंप कर आप उसका मूल चुकाकर उऋण हो जावे ॥१०-१३॥

निवृत्तवृद्धिको वाधिस्तत्कालकृतमूल्यस्तत्रैवावतिष्ठेत ॥ १५ ॥ अनाशविनाशकरणाधिष्ठितो वा धारणकसंनिधाने वा विनाशभयादुद्गतार्घं धर्मस्थानुज्ञातो विक्रीणीत ॥ १६ ॥ आधिपालप्रत्ययो वा ॥ १७ ॥ स्थावरस्तु प्रयासभोग्यः फलभोग्यो वा प्रक्षेपवृद्धिमूल्यं शुद्धमाजीवं मूल्यक्षयेणोपनयेत् ॥ १८ ॥ अनिसृष्टोपभोक्ता मूल्यशुद्धमाजीवं बन्धं च दद्यात् ॥१९॥ शेषमुपनिधिना व्याख्यातम् ॥ २० ॥ एतेनादेशोऽन्वाधिश्च व्याख्यातौ ॥ २१ ॥

जब गिरवी आभूषणों पर व्याज बन्द हो गया-तो उसी समय उसकी मूल रक़म और व्याज का हिसाब हो जाना चाहिए और रुपया नहीं चुकाया गया है, तो वह आभू-

पण साहूकार के पास ही रहना चाहिए। यद्यपि किसी गिरवी वस्तु के गलवाने या वेचने का साहूकार को अधिकार नहीं है, तो भी यदि गिरवी वस्तु के साहूकार के पास नष्ट होने का भय हो-या उसपर व्याज वहुत वढ़ गया हो न्यायाधीश की आज्ञा लेकर साहूकार उसे वेच सकता है। आधिपाल (गिरवी के मामलों की देख रेख करने वाला सरकारी अध्यक्ष) के कथनानुसार कहीं रखी या वेची जा सकती है। जो कोई स्थावर सम्पत्ति धरती जोतने वोने के परिश्रम से फल देती है या जिसका किराया लिया जाता है, उसपर गिरवी रखने की मूल रक़म और व्याज लिया जा सकता है-या आजीवन शुद्ध मूल रक़म व्याज छोड़कर चुका देवे। जैसी शर्त हो, कर लिया जावे, परन्तु ये चीजें वेची न जावें। आज्ञा के विना गिरवी वस्तु का उपभोग करने वा जीवन भर शुद्ध रक़म और व्याज के देने का अधिकारी है और उसे कुछ हरजाना भी देना पड़ेगा। शेष सारी वातें, उपनिधी (धरोहर) की भांति गिरवी धरोहर में भी समझ लेनी चाहिए। इसी तरह किसी वस्तु के आई गई कर देने या एक स्थान से दूसरे स्थान पर गिरवी रखने के नियम समझ लेने चाहिए ॥१५-२१॥

सार्थेनान्वाधिहस्तो वा प्रदिष्टां भूमिमप्राप्तश्चोरैर्भग्नोत्सृष्टो वा नान्वाधिमभ्यावेत् ॥ २२ ॥ अन्तरे वा मृतस्य दायदोऽपि नाभ्याभवेत् ॥ २३ ॥ शेषमुपनिधिना व्याख्यातम् ॥ २४ ॥ याचितकमवक्रीतकं वा यथाविधं गृह्णीयुस्तथाविधमेवार्पयेयुः ॥ २५ ॥ भ्रेषोपनिपाताभ्यां देशकालोपरोधि दत्तं नष्टं विनष्टं वा नाभ्याभवेयुः ॥ २६ ॥ शेषमुपनिधिना व्याख्यातम् ॥ २७ ॥

किसी साहूकार ने गिरवी के आभूषण किसी को देकर किसी नियत स्थान पर भेजा वह वहां न पहुंच सका और उसे वीच में ही चोरों ने लूट लिया, तो वह वीच का पुरुष, उस धन के देने का अधिकारी नहीं है। यदि वह मध्य का पुरुष मध्य में ही कहीं मर जावे, तो उसके वन्धु-वान्धव उस रक़म के देने के जिम्मेवार नहीं हैं। शेष वातें उपनिधि के समान समझो उधार मांगी हुई और किराये पर ली हुई वस्तु, जैसे ली जावे, वैसे ही लौटा देनी चाहिए। किसी आकस्मिक घटना या विपत्ति से देशकाल की प्रतिज्ञा से दी हुई वस्तु नष्ट हो जावे, या खो जावे, तो उधार लेने वाला वस्तु के देने का जिम्मेवार नहीं समझना चाहिए। शेष वातें, उपनिधि (धरोहर वस्तु) के तुल्य ही समझो ॥२२-२७॥

वैय्यावृत्यविक्रयस्तु ॥ २८ ॥ वैय्यावृत्यकरा यथादेशकालं विक्रीणानाः पण्यं यथाजातमूल्यमुदयं च दद्युः ॥ २९ ॥ शेषमुपनिधिना व्याख्यातम् ॥ ३० ॥ देशकालातिपातने वा परिहीणं संप्रदानकालिकेनार्घेण मूल्यमुदयं च

दद्युः ॥ ३१ ॥ यथासंभाषितं वा विक्रीणाना नोदयमधिगच्छेयुः ॥३२॥ मूल्यमेव दद्युः ॥ ३३ ॥ अर्घपतने वा परिहीणं यथापरिहीणमूल्यमूनं दद्युः ॥३४॥ सांव्यवहारिकेषु वा प्रात्ययिकेष्वराजवाच्येषु भ्रेषोपनिपाताभ्यां नष्टं विनष्टं वा मूल्यमपि न दद्युः ॥ ३५ ॥ देशकालान्तरितानां तु पण्यानां क्षयव्ययशुद्धं मूल्यमुदयं च दद्युः ॥ ३६ ॥ पण्यसमवायानां च प्रत्यंशम् ॥ ३७ ॥ शेषमुपनिधिना व्याख्यातम् ॥ ३८ ॥ एतेन वैय्यावृत्यविक्रयो व्याख्यातः ॥ ३९ ॥ निक्षेपश्चोपनिधिना ॥ ४० ॥

अब फुटकर वस्तु वेचने के नियमों की व्याख्या की जावेगी। फुटकर में वस्तु बेचने वाले, देशकाल की प्रतिज्ञा के अनुसार बेची हुई वस्तुओं के मूल्य और ब्याज को थोक व्यापारी के पास पहुंचाते रहें। इसके नियम भी उपनिधि के तुल्य ही जानो। यदि देशकाल की प्रतिज्ञा के अनुसार कोई वस्तु नहीं ली गई और वस्तु के दाम उतर गए तो देने के समय जो मूल्य होगा-वही देना चाहिए। हां ? जो उसपर लाभ देना है-वह दोनों अवस्था में देना पड़ेगा। यदि किसी की प्रतिज्ञा-जितने में खरीदा-उतने में ही बेचने की है-तो उसपर थोक व्यापारी को लाभ की रक़म नहीं दी जा सकती। हां ? मूल्य अवश्य देना पड़ेगा। यदि बेचने के समय मूल्य गिर जावे-तो गिरे हुए मूल्य के अनुसार उतने ही कम दाम देवे। व्यवहार के विश्वास या राज विप्लव आदि अचानक आपत्ति से कोई वस्तु नष्ट होजावे या बिगड़ जावे, तो छोटा व्यापारी थोक व्यापारी को मूल्य भी न देवे। देशकाल की प्रतिज्ञा से लिए मालपर छीजन और खर्च काटकर थोक व्यापारी की रक़म और उसका लाभ अवश्य देना पड़ेगा। जो अनेक वस्तु ली हों-तो उनमें प्रत्येक का छीजन और खर्च काटकर मूल्य और लाभ दिया जावे। शेष बातें उपनिधिके तुल्य जानो। इसी प्रकार शेष व्यापारी से लेकर बेचे हुए माल की व्याख्या जानो निक्षेप (खुली धरोहर) के नियम उपनिधि(बन्द धरोहर) के समान ही जानो ॥ ३१-४० ॥

तमन्येन निक्षिप्तमन्यस्यार्पयतो हीयेत ॥ ४१ ॥ निक्षेपापहारे पूर्वापदानं निक्षेप्तारश्च प्रमाणम् ॥ ४२ ॥ अशुचयो हि कारवः ॥ ४३ ॥ नैषां करणपूर्वो निक्षेपधर्मः ॥ ४४ ॥ करणहीनं निक्षेपमपव्ययमानं गूढभित्तिन्यस्तान्साक्षिणो निक्षेप्ता रहस्यप्रणिपातेन प्रज्ञापयेत् ॥ ४५ ॥ वनान्ते वा मद्यप्रवहणे विश्वासेन रहसि वृद्धो व्याधितो वैदेहकः कश्चित्कृतलक्षणं द्रव्यमस्य हस्ते निक्षिप्यापगच्छेत् ॥ ४६ ॥ तस्य प्रति देशेन पुत्रो भ्राता वाभिगम्य निक्षेपं याचेत् ॥ ४७ ॥

दाने शुद्धिरन्यथा निक्षेपं स्तेयदण्डं च दद्यात् ॥ ४८ ॥

यदि अन्य की धरोहर को अन्य को दे देवे तो उसका नुक़सान देने वाला भोगेगा। यदि धरोहर के खा जाने का मुकद्दमा हो-तो पूव में धरोहर खाने वाले उसका प्रमाण दे-या धार्मिक पुरुष हो तो उनकी बात ही प्रमाण मानली जावे। शिल्पी लोग प्रायः ठीक २ सत्य बात नहीं कहते-इससे उनसे प्रमाण लेना चाहिए। ये लोग किसी सिखावट के आधार पर धरोहर नहीं रखते हैं। यदि किसी लेख के विना रखी गई है, और उसको साहूकार ने नष्ट विनष्ट कर दिया है-तो भीत के पीछे छुपाकर साक्षियों को धरोहर रखने वाला अपनी धरोहर का रहस्य सुनवादे। बन या नाव में कोई वृद्ध, रोगी, या व्यापारी एकान्त में विश्वास के साथ चिन्ह बनाकर कोई वस्तु धरोहर नहीं देने वाले शिल्पी के हाथ में रखवावे। इसी वृद्ध की आज्ञा का हवाला देकर उसका पुत्र या भाई जाकर उस धरोहर को मांगे-यदि उसने लौटा दी-तो उसे शुद्ध समझना चाहिए अन्यथा उस से पूर्व की धरोहर और दण्ड लेना उचित है ॥ ४१-४८ ॥

प्रव्रज्याभिमुखो वा श्रद्धेयः कश्चित्कृतलक्षणं द्रव्यमस्य हस्ते निक्षिप्य प्रतिष्ठेत ॥ ४९ ॥ ततः कालान्तरागतो याचेत ॥ ५० ॥ दाने शुचिरन्यथा निक्षेपं स्तेयदण्डं च दद्यात् ॥ ५१ ॥ कृतलक्षणेन वा द्रव्येण प्रत्यानयेदेनम् ॥ ५२ ॥ बालिशजातीयो वा रात्रौ राजदायिकाङ्क्षणभीतः सारमस्य हस्ते निक्षिप्यापगच्छेत् ॥ ५३ ॥ स एनं बन्धुना अगारगतो याचेत ॥ ५४ ॥ दाने शुचिरन्यथा निक्षेपं स्तेयदण्डं च दद्यात् ॥ ५५ ॥

कोई सन्यास लेने का बहाना बनाकर श्रद्धालु पुरुष धरोहर खा जाने वाले पुरुष के पास चिन्ह वाली वस्तु रखकर चला जावे, फिर कुछ काल में आकर उसे मांगे। यदि देदे-तो वह पुरुष शुद्ध है और न देवे-तो उस से पूर्व धरोहर दिला दी जावे और उसे चोरी का दण्ड हो। जब इसको पकड़ा जावे-तो चिन्ह युक्त वस्तु इसके साथ ही ले आनी चाहिए। कोई मूर्ख बुद्धि सा पुरुष, रात में राजकीय पुरुषों से भयभीत सा हुआ इसके पास आभूषण आदि रखकर चल देवे। वही पुरुष अपने किसी बन्धु के साथ इसके घर आकर याचना करे। यदि इसने देदी-तो यह शुद्ध है-नहीं दी-तो उससे पूर्व झगड़े की धरोहर लेकर और इसे चोरी का दण्ड देना होगा ॥ ४९-५५ ॥

अभिज्ञानेन चास्य गृहे जनमुभयं याचेत ॥ ५६ ॥ अन्यतरादाने यथोक्तं पुरस्तात् ॥ ५७ ॥ द्रव्यभोगानामागमं चास्यानुयुञ्जीत ॥ ५८ ॥ तस्य चार्थस्य

व्यवहारोपलिङ्गनमभियोक्तुश्चार्थसामर्थ्यम् ॥ ५९ ॥ एतेन मिथः समवायो व्याख्यातः ॥ ६० ॥

दो वस्तुओं के चिन्ह करके उन्हें पृथक् २ पुरुष रखकर आवें-यदि वह एक को लोटा दे-और एक को न लोटावे-तो भी वही दण्ड होगा। इस पुरुष की द्रव्य की आमदनी और खर्च की भी खोज लगानी चाहिए। धरोहर रखने वाले पुरुष के व्यापार और कमाए धन की तहकीकात की जावे, कि यह इतनी धरोहर रखने की योग्यता भी रखता है या नहीं। इसी तरह साझे के व्यापारों की छान वीन हो सकती है ॥ ५९-६० ॥

तस्मात्साक्षिमदच्छन्नं कुर्यात्सम्यग्विभाषितम्।
स्वे परे वा जने कार्यं देशकालाग्र्यवर्णतः ॥ ६१ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे औपनिधिकं द्वादशो ऽध्याय ॥ १२ ॥
आदित एकोनसप्ततिः ॥ ६९ ॥

इन सब झगड़ों को देखकर पुरुष जितने काम करे-वह साक्षियों के सन्मुख खुल्लम खुल्ला करने चाहिए जिनका कोई लेख आदि भी हो। देश काल और ब्राह्मणादि उत्तम वर्णों की सन्निधि में अपने और विदेशी जनों की साक्षी में ही ये काम करने उचित है ॥ ६१ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में धरोहर गिरवी माल आदि के नियमों के निरूपण का वारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



तेरहवां अध्याय

६५वा प्रकरण

दास कर्मकरकल्प

इस प्रकरण में दास और कर्मकर (मजदूरों) के कामों के विषय में वर्णन किया जावेगा।

उदरदासवर्जमार्यप्राणमप्राप्तव्यवहारं शूद्रं विक्रयाधानं नयतः स्वजनस्य द्वादशपणो दण्डः ॥ १ ॥ वैश्यं द्विगुणः ॥ २ ॥ क्षत्रियं त्रिगुणः ॥३॥ ब्राह्मणं चतुर्गुणः ॥ ४ ॥ परजनस्य पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः क्रेतृश्रोतृणां च ॥ ५ ॥ म्लेच्छानामदोषः प्रजां विक्रेतुमाधातुं वा ॥ ६ ॥ न त्वेवार्यस्य दासभावः ॥७॥

जो कोई व्यक्ति अप्राप्त व्यवहार (नाबालिग) शूद्र को बेचे या गिरवी रखे-तो उस बेचने वाले उस कुटुम्बी पर बारह पण दण्ड होना चाहिए। हां ? जिनकी जन्म से ही दास-वृत्ति है और जो आर्य जाति के प्राण भूत है, ऐसे शूद्रों को सेवा कार्य के लिए भेजने में किसी पर दण्ड नहीं है। जो पुरुष वैश्य को बेचे या गिरवी रखे- उसपर चौबिस पण जो क्षत्रिय को बेचे या गिरवी रखे, उसपर छत्तीस पण और नाबालिग ब्राह्मण को बेचे या गिरवी रखे-उसपर अड़तालीस पण दंड होना चाहिए- जो कोई, परिवार से अन्य जन चुराकर शूद्र बच्चों को बेचे या गिरवी रखे तो उनपर पूर्व-मध्यम या उत्तम साहस दंड होना चाहिए-यहां तक कि अपराध की ऊंची कोटि होने पर अपराधी को बध दंड भी दिया जा सकता है। यही दंड उसके सहायक को होगा। म्लेच्छ लोग अपनी सन्तान को बेचे या गिरवी रखें-तो उनपर यह दंड नहीं होगा, उन में यह रीति प्रचलित है, परन्तु जाति में कभी दास प्रथा को प्रचलित नहीं होने देना चाहिए ॥ १-७ ॥

अथ वार्यमाधाय कुलबन्धन आर्याणामापदि निष्क्रयं चाधिगम्य बालं साहाय्यदातारं वा पूर्वं निष्क्रीणीरन् ॥ ८ ॥ सकृदात्माधाता निष्पतितः सीदेत् ॥ ९ ॥ द्विरन्येनाहितकः ॥ १० ॥ सकृदुभौ परविषयाभिमुखौ ॥ ११ ॥ वित्तापहारिणो वा दासस्यार्यभावमपहरतो ऽर्धदण्डः ॥ १२ ॥ निष्पतितप्रेतव्यसनिनामाधाता मूल्यं भजेत ॥ १३ ॥

यदि किसी समय आर्य कुल शत्रु के बन्धन में पड़ जावे या ऐसी ही कोई अन्य आपत्ति आ जावे-तो एक सन्तान को धन भिजवा देने की प्रतिज्ञा से आर्य पुरुष गिरवी रख आवे, और फिर धन चुराकर उत्तम सहायता देने वाले बच्चे को प्रथम छुड़ा ले जिस ने अपने आपको गिरवी रखा, वह भागे-तो उसे दंड होना चाहिए और अधिकारी पुरुष द्वारा गिरवी रखा हुआ दो बार मानने पर दंड का भागी है। ये दोनों प्रकार के दास यदि भागकर अन्य देश में आना चाहे-तो इनको दंड देना चाहिए या जीवन पर्यन्त दास बना देना चाहिए। आर्य भाव को छोड़ कर धन चुराकर भागने वाले पुरुष को आधा होना चाहिए। भागेहुए, मरेहुए और रोग आदि में फंसे हुए के गिरवी रखने को कहकर धन लाने वाले पुरुष को उस का धन लौटाना पड़ेगा ॥ ८-१३ ॥

प्रेतविरामूत्रोच्छिष्टग्राहणमाहितस्य नग्नस्नापनं दण्डप्रेषणमतिक्रमणं च स्त्रीणां मूल्यनाशकरम् ॥ १४ ॥ धात्रीपरिचारिकार्धसीतिकोपचारिकाणां च मोक्षकरम् ॥ १५ ॥

जो पुरुष मुर्दा, बिष्ठा, मूत्र और झूंठन किसी दास से उठवावे, जो पुरुष, स्त्री दास को नंगी करके धूप में खड़ी करे या दंड दे या अन्य प्रकार से उसकी मान मर्यादा भंग करे-तो उसे बिना मूल्य दिलाए ही उस पुरुष या स्त्री को स्वतन्त्र करवा देना चाहिए। जो धाय, दासी और मजदूरनी जाति की स्त्री, तथा घरके भीतर सेवा कार्य करने वाली स्त्री के साथ उपर्युक्त अत्याचार करे-तो उस से सदा के लिए इन्हें मुक्त करवा दिया जावे ॥१४-१५॥

सिद्धमुपवारकस्याभिप्रजातस्यापक्रमणम्॥ १६ ॥धात्रीमाहितिकां वाकामां स्ववशामधिगच्छतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ १७ ॥ परवशां मध्यमः ॥ १८ ॥ कन्यामाहितकां वा स्वयमन्येन वा दूषयतः मूल्यनाशः शुल्कं तद्द्विगुणश्च दण्डः ॥ १९ ॥ आत्मविक्रयिणः प्रजामार्यां विद्यात् ॥ २० ॥ आत्माधिगतं स्वामिकर्माविरुद्धं लभेत पित्र्यं च दायम् ॥ २१ ॥ मूल्येन चार्यत्वं गच्छेत् ॥ २२ ॥ तेनोदरदासाहितकौ व्याख्यातौ ॥ २३ ॥ प्रक्षेपानुरूपश्चास्य निष्क्रयः ॥ २४ ॥ दण्डप्रणीतः कर्मणा दण्डमुपनयेत् ॥ २५ ॥ आर्यप्राणो ध्वजाहृतः कर्मकालानुरूपेण मूल्यार्धेन वा विमुच्येत ॥ २६ ॥

यदि किसी मान्य व्यक्ति से पूर्वोक्त व्यवहार किया जावे, तो वह स्वयं भाग सकता है। धाय या रखी हुई अन्य स्त्री को जो बल पूर्वक अपने वश में करे, उसपर पूर्व साहस दण्ड की व्यवस्था है और जो अन्य के अधीन करना चाहे, उस पर मध्यम साहस दण्ड होना चाहिये। जो व्यक्ति गिरवी रखी हुई कन्या का कन्यात्व दूषित करे, या अन्य से करवावे-तो उसका मूल्य न दिलवाया जावे और कन्या को उस पुरुष से धन दिलवाया जावे और कन्या के धन से सरकारी धन दुगुना दण्ड दिया जावे, अपने आपको बेच देने वाले आर्य पुरुष की सन्तान को आर्य ही समझा जावे, उसे दास न माना जावे। जो आर्य-दास भाव को प्राप्त हो गया, वह स्वामी के अनुकूल कम करके अपना धन जोड़ सकता है और उसको अपने पिता के धन का भी भाग मिलेगा। जब वह दासभूत आर्य अपना मूल्य चुका दे तब फिर वह स्वतन्त्र या आर्य पदवी प्राप्त कर सकता है। इसी तरह उदर दास (दासी से उत्पन्न) और गिरवी रखे हुए अन्य दासों की व्यवस्था जान लेनी चाहिए। गिरवी रखने के समय जो धन दिया, वही उसके छुड़ाने के समय लिया जावेगा, अधिक नहीं। दण्ड के कारण जो दास भाव को प्राप्त हुआ वह कार्य करके अपने को मुक्त कर लेवे। आर्य प्राण (क्षुद्र) ध्वजा ले चलता हुआ यदि युद्ध में पकड़ा जावे-तो कुछ दिन काम करके या अन्य व्यक्ति से आधा मूल्य चुकाकर अपने को छुड़ा सकता है ॥१६-२६॥

गृहेजातदायागतलब्धक्रीतानामन्यतमं दासमूनाष्टवर्षं विबंधुमकामं नीचे कर्मणि विदेशे दासीं वा सगर्भामप्रतिविहितगर्भभर्मण्यां विक्रयाधानं नयतः पूर्वः साहसदण्डः क्रेतृश्रोतृणां च ॥२७॥ दासमनुरूपेण निष्क्रयेणार्यमकुर्वतो द्वादशपणो दण्डः ॥ २८ ॥ संरोधश्चाकारणात् ॥२९॥ दासद्रव्यस्य ज्ञातयो दायादाः ॥ ३० ॥ तेषामभावे स्वामी ॥३१॥ स्वामिनोऽस्यां दास्यां जातं समातृकमदासं विद्यात् ॥३२॥ गृह्या चेत्कुटुम्बार्थचिन्तनी माता भ्राता भगिनी चास्या अदासाः स्युः ॥ ३३ ॥ दासं वा निष्क्रीय पुनर्विक्रयाधानं नयतो द्वादशपणो दण्डः ॥३४॥ अन्यत्र स्वयंवादिभ्यः ॥ ३५ ॥ इति दासकल्पः ॥ ३६ ॥

घर में उत्पन्न, दाय भाग में आये हुए किसी प्रकार से प्राप्त या खरीदे हुए, बन्धुहीन आठ वर्ष से कम बच्चे को जो बल-पूर्वक दास कर्म में प्रवृत्त करता है या विदेश भेज देता है तथा गर्भवती दासी के गर्भ का प्रबन्ध न करके विक्रय और आधान (बेचना और गिरवी) करता है, उस पर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए। यही दण्ड उनके सहायकों को होना चाहिए। जब कोई दास भाव का मूल्य चुका दे और फिर भी उसे मुक्त न करे तो उस पुरुष पर बारह पण दण्ड होवे। और बिना कारण दास बनाने वाले, पुरुष को संरोध (कैद) का दण्ड होना चाहिए। दास के द्रव्य के भागी, उसके बन्धु बान्धव होंगे। यदि कोई बन्धु-बान्धव न हो-तो उसका स्वामी ही उस धन का अधिकारी होगा। यदि किसी दासी में उसके स्वामी से सन्तान उत्पन्न हो जावे, तो उस माता और सन्तान को दासता से मुक्त कर दिया जावे। यदि वह अपने कुटुम्ब के भरण पोषण की चिन्ता घर की स्त्री होकर करने लगे-तो उसकी माता, भ्राता, बहन आदि को दासता से मुक्त कर दिया जावे। जो किसी दास या दासी के छुड़ाने के योग्य नियत धन को प्राप्त कर चुका और फिर भी बल-पूर्वक उनको बेचता या गिरवी रखता है उस पर बारह पण दण्ड होना चाहिए। हाँ यदि वे-स्वयं दास रहने की इच्छा प्रकट करे तो रह सकते हैं। यहां तक दासों के विषय में व्यवस्था-की गई ॥२७-३६॥

कर्मकरस्य कर्मसंबन्धमासन्ना विद्युः ॥ ३७ ॥ यथा संभाषितं वेतनं लभेत ॥ ३८ ॥ कर्मकालानुरूपमसंभाषितवेतनः ॥ ३९ ॥ कर्षकः सस्यानां गोपालकः सर्पिषां वैदेहकः पण्यनामात्मना व्यवहृतानां दशभागमसंभाषितवेतनो लभेत ॥ ४० ॥ संभाषितवेतनस्तु यथासंभाषितम् ॥ ४१ ॥ कारुशिल्पिकुशीलवचिकित्सकवाग्जीवनपरिचारकादिराशाकारिकवर्गस्तु यथान्यस्तद्विधः कुर्याद्यथा वा कुशलाः कल्पयेयुस्तथा वेतनं लभेत ॥ ४२ ॥

कर्मकर (नौकर या मजदूर) की मजदूरी को उसके साथी जानते रहें। उनका जो वेतन निश्चित हो जावे, वह उनको मिलता रहे। जिनका वेतन तय नहीं हुआ, उनका काम और समय देखकर वेतन देना चाहिए। जिसका वेतन नियत न हुआ हो, वह कृषक अनाज में, ग्वाला घृत में, व्यापारी वस्तुओं में दसवां भाग ले सकता है। जिसकी नौकरी खुल गई, उसको वह नियत वेतन ही मिलेगा। कारीगर, गाने बजाने वाले, वैद्य, कथावाचक, या वकील, नौकर चाकर, आदि परिश्रम से कमाने खाने वाले, लोगों को बाजार भाव के अनुसार देवे या बुद्धिमान् जैसा नियत कर दें, वैसा देते रहना चाहिए ॥३७-४२॥

साक्षिप्रत्ययमेव स्यात् ॥ ४३ ॥ साक्षिणामभावे यतः कर्म ततो ऽनुयुञ्जीत ॥ ४४ ॥ वेतनादाने दशबन्धो दण्डः षट्पणो वा ॥ ४५ ॥ अपव्ययमाने द्वादशपणो दण्डः पञ्चबन्धो वा ॥ ४६ ॥ नदीवेगज्वालास्तेनव्यालोपरुद्धः सर्वस्वपुत्रदारात्मदानेनार्तस्त्रातारमाहूय निस्तीर्णः कुशलप्रदिष्टं वेतनं दद्यात् ॥४७॥ तेन सर्वत्रार्तदानानुशया व्याख्याताः ॥ ४८ ॥

यदि विवाद हो जावे-तो साक्षियों पर निर्णय दिया जावे। यदि साक्षी न हों-तो काम को देखकर उनको मजदूरी दी जावे। नियत वेतन न देने पर दसवां भाग दण्ड या छः पण दण्ड होना चाहिए यदि वेतन, अपव्यय के कारण न दिया गया तो बारह पण या पच गुना दण्ड होना चाहिए। नदी के वेग, अग्नि, चोर सिंह आदि हिंसक जन्तुओं से घिरा हुआ पुरुष, सर्वस्व, पुत्र, दारा और अपने आपको भी प्रदान करदे और जब उसकी रक्षा हो, जावे-तो जो योग्य पुरुष उस रक्षक का वेतन नियत करवादे-वह देते रहना चाहिए। इसी प्रकार सर्वत्र दुःखी पुरुष का नियम समझना चाहिए ॥४३-४८॥

लभेत पुंश्चली भोगं संगमस्योपलिङ्गनात् ।
अतियाच्ञा तु जीयेत दौर्मत्याविनयेन वा ॥ ४९ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे दासकर्मकरकल्पे दासकल्पः कर्मकरकल्पे स्वाम्यधिकारः त्रयोदशो ऽध्यायः ॥ १३ ॥ आदितः सप्ततिरध्यायः ॥ ७० ॥

वेश्या स्त्री अपने भोग के नियत धन को प्राप्त कर सकती है। यदि वह दुष्ट बुद्धि या अन्याय से अधिक ले लेती है, तो उसका वह अधिक धन छिनवा कर वापिस दिलवाना चाहिए ॥४९॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत, धर्मस्थीय अधिकरण में दास वृत्ति के विषय का तेरहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ!

चौदहवां अध्याय

६६वां प्रकरण

सम्भूय समुत्थानम् ।

अनेक व्यक्ति मिलकर जो काम करें, उसमें किस प्रकार अपना २वेतन ग्रहण कर अब इस बात का विवेचन किया जावेगा।

गृहीत्वा वेतनं कर्माकुर्वतो भृतकस्य द्वादशपणो दण्डः ॥ १ ॥ संरोधश्चाकारणात् ॥ २ ॥ अशक्तः कुत्सिते कर्मणि व्याधौ व्यसने वानुशयं लभेत ॥३॥ परेण वा कारयितुम् ॥ ४ ॥ तस्य व्ययं कर्मणा लभेत ॥ ५॥ भर्ता वा कारयितुं नान्यस्त्वया कारयितव्यो मया वा नान्यस्य कर्तव्यमित्यत्रिरोधे भर्तुर कारयतो भृतकस्याकुर्वतो वा द्वादशपणो दण्डः ॥६॥ कर्मनिष्ठापने भर्तुरन्यत्र गृहीतवेतनो नासकामः कुर्यात् ॥ ७ ॥

जो नौकर वेतन लेकर भी अच्छी तरह काम न कर सके, उसपर बारह पण दण्ड किया जावे। यदि किसी भी कारण के बिना केवल हराम खोरी के ढंग पर जिसने काम न किया हो-उस को संरोध (क़ैद) का दण्ड होना चाहिए। यदि नौकर किसी कठिन कार्य व्याधि, या विपत्ति में फंस गया हो-तो वह अवकाश छुट्टी ले सकता है या किसी दूसरे को अपना प्रतिनिधि (ऐवर्जी) कर सकता है। उस प्रतिनिधि का व्यय उसी काम पर होगा। यदि नौकर भर्ता से यह निश्चय कराले, कि तुम अन्य से काम नहीं करा सकोगे-और स्वामी भी नौकर से यह प्रतिज्ञा तय करले, कि मैं अन्यत्र काम न करूंगा, यदि भर्ता और नौकर दोनों अपने २ वायदे को पूरा न करें-तो उनपर बारह पण दण्ड होवें। यदि किसी नौकर ने कर्म का ठेका ले लिया और उससे पूर्व किसी दूसरे स्वामी का वेतन ले चुका है-तो वह पूर्व स्वामी के काम को करके ही दूसरे काम पर आ सकेगा ॥१-७॥

उपस्थितमकारयतः कृतमेव विद्यादित्याचार्याः ॥ ८ ॥ नेति कौटल्यः ॥६॥ ॥ ६ ॥ कृतस्य वेतनं नाकृतस्यास्ति ॥ १० ॥ स चेदल्पमपि कारयित्वा न कारयेत्कृतमेवास्य विद्यात् ॥ ११ ॥ देशकालातिपातनेन कर्मणामन्यथाकरणे वा

नासक्तामः कृतमनुमन्येत ॥ १२ ॥ संभाषितादधिकक्रियायां प्रयासं मोघं कुर्यात् ॥ १३ ॥ तेन संघभृता व्याख्याताः ॥ १४ ॥

यदि नौकर या मजदूर अपनी नौकरी पर आकर उपस्थित हो जावे और किसी कारण से उससे काम न लिया जावे, तो भी वह वेतन का अधिकारी है, यह आचार्यों का मत है। कौटल्य का मत है, कि काम करने पर ही मजदूरी दी जावेगी विना काम कोई वेतन नहीं दिया जा सकता। यदि मालिक थोड़ा काम करवाके सारा काम न करवावे-तो नौकर को सारे दिन का वेतन देना होगा। देशकाल का अतिक्रमण करके काम के करने या उलट पलट कर देने पर काम को पूरा किया हुआ नहीं माना जा सकता है। जितना काम करने को कहा-उससे अधिक कर देने पर वह करना व्यर्थ होगा। इसीसे संघ बनाकर काम करने वालों के नियमों की व्याख्या हो जाती है ॥८-१४॥

तेषामाधिः सप्तरात्रमासीत ॥ १५ ॥ ततो ऽन्यमुपस्थापयेत् ॥ १६ ॥ कर्मनिष्पाकं च ॥ १७ ॥ न चानिवेद्य भर्तुः संघः किंचित्परिहरेदपनयेद्वा ॥१८॥ तस्यातिक्रमे चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ १९ ॥ संघेन परिहृतस्यार्धदण्डः ॥२०॥ इति भृतकाधिकारः ॥ २१॥

मजदूरों का वेतन सात दिन रोका जा सकता है। यदि सात दिन में काम ठीक न होवे-तो वह ठेका दूसरे को दे दिया जावे और जो काम पूर्व में हो चुका-उसका वेतन दे देना उचित है। स्वामी को विना सूचना दिए, सेवक न तो कुछ नष्ट करे और न कोई वस्तु ले जावे। इन नियमों के उल्लंघन करने पर चौबीस पण का दण्ड होना चाहिए। यदि संघ किसी वस्तु का अपहरण करे-तो आधा दण्ड किया जावे। यहां तक नौकरों के विषय में व्यवस्था की गई ॥१५-२१॥

संघभृताः संभूयसमुत्थातारो वा यथासंभाषितं वेतनं समं वा विभजेरन् ॥ २२ ॥ कर्षकवैदेहका वा सस्यपण्यारम्भपर्यवसानान्तरे सन्नस्य यथाकृतस्य कर्मणः प्रत्यंशं दद्युः ॥ २३ ॥ पुरुषोपस्थाने समग्रमंशं दद्युः ॥ २४ ॥ संसिद्धे तूद्धृतपण्ये सन्नस्य तदानीमेव प्रत्यंशं दद्युः ॥ २५ ॥ सामान्या हि पथि सिद्धिश्चासिद्धिश्च ॥ २६ ॥ प्रक्रान्ते तु कर्मणि स्वस्थस्यापक्रमतो द्वादशपणो दण्डः ॥ २७ ॥ न च प्राकाम्यमपक्रमणे ॥ २८ ॥ चौरं त्वभयपूर्वं कर्मणः प्रत्यंशेन ग्राहयेद्दद्यात्प्रत्यंशमभयं च ॥ २९ ॥ पुनः स्तेये प्रवासनमन्यत्र गमनं च ॥ ३०॥

किसी संघ (कम्पनी) से इकट्ठी तनख्वाह पाने वाले या मिलकर ठेके पर काम करने वाले पुरुषों को जो रुपया मिले-उसमें से वे बराबर २ बांटले। किसान या व्यापारी, अन्न

बोने और वस्तु खरीदने के समय से लेकर अन्न उत्पन्न होने या वस्तु बिकने तक जो काम जिसने जितना किया, उसका अंश उसको अवश्य देवे। यदि अपने स्थान पर किसी दूसरे पुरुष को भी रख दिया जावे-तो भी उसे पूरा अंश प्राप्त हो सकेगा। यदि वस्तु बिककर अचुकी और उसका रुपया आचुका-तो फौरन साझी का हिसाब कर देना चाहिए। आगे के मार्ग में सफलता होना न होना अनिश्चित है, इससे साझे की बात अगली आमदनी पर नहीं लटकाई जा सकती। यदि काम आरम्भ कर दिया गया और उसमें काम करने वाला पुरुष स्वस्थ होने पर भी खसक गया हो-तो बारह पण दण्ड दिया जावेगा, क्योंकि इस तरह भाग जाने का किसी को अधिकार नहीं है। यदि किसी चोर साझी को अभय वचन के साथ यह कह दिया जावे, कि तुम रुपया का गमन सही २ बतादो-तो तुमको हिस्सा दे दिया जावेगा, और यदि वह सच बतादे, तो उसको उसका हिस्सा दे देना चाहिए और चोरी का भी उसे दण्ड नहीं दिया जा सकता। यदि फिर भी वह साझे की रकम उड़ादे, तो उसे निकाल दें या सत्य कहने पर फिर दूसरे स्थान पर बदल दे ॥२२-३०॥

महापराधे तु दूष्यवदाचरेत् ॥ ३१ ॥ याजकाः स्वप्रचार द्रव्यवर्जं यथासंभाषितं वेतनं समं वा विभजेरन् ॥३२ ॥ अग्निष्टोमादिषु च क्रतुषु दीक्षणादूर्ध्वं याजकः सन्नः पञ्चममंशं लभेत ॥ ३३ ॥ सोमविक्रयादूर्ध्वं चतुर्थमंशम् ॥ ३४॥ मध्यमोपसदः प्रवर्ग्योद्वासनादूर्ध्वं द्वितीयमंशम् लभेत ॥ ३५ ॥ मायादूर्ध्वमर्धमंशम् ॥ ३६ ॥ सुत्ये प्रातः सवनादूर्ध्वं पादोनमंशम् ॥ ३७ ॥ मध्यन्दिनात्सवनादूर्ध्वं समग्रमंशं लभेत ॥३८॥ नीता हि दक्षिणा भवन्ति ॥३९॥

यदि किसी साझी ने फर्म के फेल हो जाने आदि की घटना खड़ी करदी-तो उस पर अपराधी का सा दण्ड होना चाहिए। यज्ञ कराने वाले पुरुष, अपने २ काम में आने वाली मिली हुई अपनी २ वस्तु के अतिरिक्त अपने निश्चय के अनुसार वेतन को समान भाग में बांट लें। यदि अग्निष्टोम आदि बड़े यज्ञों में साझा निश्चित होने पर और यज्ञ के आरम्भ होने पर कोई याजक बीमार हो जावे-तो उसे अपने अंश का पांचवां भाग मिले। यदि सोम विक्रय के अनन्तर बीमार होवे-तो चौथा अंश मिल सकेगा। मध्यमोपसत्, प्रवर्ग्योद्वासन नामक यज्ञ की विधि के अनन्तर दो भाग का अधिकारी हो जाता है। माय नामक विधि के अनन्तर आधे भाग को याजक प्राप्त कर सकता है। यदि सोम का रस निकाला जा चुका और प्रातः सवन की विधि हो चुकी, तो अपने भाग के बारह आने उसे मिलेंगे और मध्यन्दिन सवन के अनन्तर यज्ञ थोड़ा ही शेष रह जाता है, तब यदि याजक

बीमार हो जावे, तो उसे सारा भाग मिल जावेगा, क्योंकि यज्ञ का बहुत भाग व्यतीत हो जाने पर दक्षिणा सही हो जाती है ॥३१-३६॥

बृहस्पतिसवनवर्जं प्रतिसवनं हि दक्षिणा दीयन्ते ॥४०॥ तेनाहर्गणदक्षिणा व्याख्याताः ॥ ४१ ॥ सत्रानामादशाहोरात्राच्छेपभृताः कर्म कुर्युः ॥ ४२ ॥ अन्ये वा स्वप्रत्ययाः ॥ ४३ ॥ कर्मण्यसमाप्ते तु यजमानः सीदेत् ॥ ४४ ॥ ऋत्विजः कर्म समापय्य दक्षिणां हरेयुः ॥ ४५ ॥ असमाप्ते तु कर्मणि याज्यं याजकं वा त्यजतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ४६ ॥

बृहस्पति सवन को छोड़कर प्रत्येक सवन में दक्षिणा दी जाती है। इसी से अहर्गण दक्षिणाओं के नियम भी समझ लेने चाहिए। साझी याजकों के प्रतिनिधि दश दिन तक प्रतिनिधि रह सकते हैं। अन्य पुरुष तो अपने २ काम के आप मालिक हैं, वे प्रतिनिधि नहीं हैं। यदि यज्ञ कर्म के असमाप्त होने पर ही यज्ञ को रोक दिया जावेगा-तो यजमान को अशुभकारी है। ऋत्विक् लोग कर्म समाप्त करा देने पर ही दक्षिणा के अधिकारी होते हैं। कर्म के विना समाप्त हुए यजमान याजक को और याजक भगवान को छोड़ें-तो उन पर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए ॥४०-४६॥

अनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः ।
सुरापो वृषलीभर्ता ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ ४७ ॥
असत्प्रतिग्रहे युक्तः स्तेनः कुत्सितयाजकः ।
अदोषस्त्यक्तुमन्योन्यं कर्मसंकरनिश्चयात् ॥ ४८ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे दासकर्मकरकल्पे भृतकाधिकारः संभूयसमुत्थानं चतुर्दशो ऽध्यायः ॥ १४ ॥ आदितएकसप्ततिः ॥ ७१ ॥

सौ गाय रखने पर अग्न्याधान न करने वाला, और सहस्र गौ रखने पर यज्ञ का अकर्ता, सुरा पीने वाला, शूद्रपति, ब्रह्मघातक, गुरुपत्नी से गमन करने वाला, बुरेदान का लेने वाला, चोर, कुत्सित पुरुषों को यज्ञ कराने वाले व्यक्तियों के परस्पर त्याग देने पर भी कोई दोष नहीं है, क्योंकि इससे कर्म भ्रष्ट हो जाता है ॥४७-४८॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में मिल कर काम करने वाले पुरुषों के नियम का चौदहवां अध्याय समाप्त हुआ।

पन्द्रहवां अध्याय

६७ वां प्रकरण

विक्रीत क्रीतानुशयः।

इस प्रकरण में बेची वस्तु के नहीं बेचने आदि की व्यवस्था का वर्णन है।

विक्रीय पण्यमप्रयच्छतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १॥ अन्यत्र दोषोपनिपाताविषह्येभ्यः ॥ २ ॥ पण्यदोषो दोषः ॥ ३ ॥ राजचोराग्न्युदकबाध उपनिपातः ॥ ४ ॥ बहुगुणहीनमार्तकृतं वाविषह्यम् ॥ ५ ॥ वैदेहकानामेकरात्रमनुशयः ॥६॥ कर्षकाणां त्रिरात्रम् ॥७॥ गोरक्षकाणां पञ्चरात्रम् ॥ ८ ॥ व्यामिश्राणामुत्तमानां च वर्णानां विवृत्तिविक्रये सप्तरात्रम् ॥ ९ ॥ आतिपातिकानां पण्यानामन्यत्राविक्रयमित्यविरोधेनानुशयो देयः ॥ १० ॥

जो व्यक्ति वस्तु बेचकर प्रदान न करे, तो उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए। यदि सौदे में कोई दोष हो या अचानक कोई झंझट खड़ी हो गई हो या उनके बेचने की असामर्थ्य हो-तो उसे दण्ड नहीं हो सकता है। विक्रेय वस्तु में दोष होने को यहां दोष कहा गया है। राजा, अग्नि, चोर या जल की अकस्मात् उत्पन्न हुई बाधा को उपनिपात कहते हैं। किसी वस्तु में बहुत ही गुण हीनता, या दुःख दाय होना इस वस्तु की असामर्थ्य (अविसह्य) कहाता है।। क्रय-विक्रय करने वाले व्यापारियों का सौदा एक रात में अनुशय (साई) हो सकता है। इसी तरह किसानों का तीन, गौ रक्षकों का पाच दिन में सौदा लौट सकता है। मिले हुए उत्तम पुरुषों का भूमि आदि का सौदा सात दिन में लौटाया जा सकता है। जो चीजें, बिगड़ सकती हैं, उनको अन्यत्र नहीं बेचने के रोकने में अवश्य अनुशय (साई) होना चाहिए ॥१-१०॥

तस्यातिक्रमे चतुर्विंशतिपणो दण्डः पण्यदशभागो वा ॥ ११ ॥ क्रीत्वा पण्यमप्रतिगृह्णतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ अन्यत्र दोषोपनिपाताविषह्येभ्यः ॥ १३ ॥ समानश्चानुशयो विक्रेतुरनुशयेन ॥१४॥ विवाहानां तु त्रयाणां पूर्वेषां वर्णानां पाणिग्रहणात्सिद्धमुपावर्तनम् ॥१५॥ शूद्राणां च प्रकर्मणः ॥१६॥ वृत्तपाणि ग्रहणयोरपि दोषमौपशायिकं दृष्ट्वा सिद्धमुपावर्तनम् ॥ १७ ॥ न त्वेवाभिप्रजातयोः ॥ १८ ॥

इस नियम के उल्लंघन करने वाले पुरुषों को चौबीस पण या विक्रेय वस्तु का दसवां भाग दण्ड होना चाहिए। वस्तु खरीद कर जो ग्रहण नहीं करता, उसपर बारह पण दण्ड की व्यवस्था है। यदि वस्तु में दोष, राज विसव आदि उपनिपात और वस्तु का

दुःखदायी होना सिद्ध न हो। यदि खरीदने वाले को अनुशय (बयाना) दिया गया हो-तो उसके भी यही नियम हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इन तीनों वर्णं के विवाह में पाणि ग्रहण के अनन्तर उलट फेर नहीं हो सकता है-इससे पूर्व उलट पलट हो सकता है। शूद्रों के फेरे पड़ने तक उलट पलट हो सकती है। यदि कन्या और वर का पाणि ग्रहण हो चुका और उनमें शयन के समय कुछ त्रुटि सिद्ध हो जावे-तो उनका विवाह सम्बन्ध तोड़ा जा सकता है। सन्तान हो जाने पर सम्बन्ध नहीं टूट सकता ॥११-१८॥

कन्यादोषमौपशायिकमनाख्याय प्रयच्छतः कन्यां पणण्णवतिर्दण्डः शुल्कस्त्री धनप्रतिदानं च ॥ १९ ॥ वरयितुर्वा वरदोषमनाख्याय विन्दतो द्विगुणः ॥२०॥ शुल्कस्त्रीधननाशश्च ॥ २१ ॥ द्विपदचतुष्पदानां तु कुष्ठव्याधितानामशुचीनामुत्साहस्वास्थ्यशुचीनामाख्याने द्वादशपणो दण्डः ॥२२॥ आत्रिपक्षादिति चतुष्पदानामुपावर्तनम् ॥ २३ ॥ आसंवत्सरादिति मनुष्याणाम् ॥ २४ ॥ तावता हि कालेन शक्यं शौचाशौचौ ज्ञातुमिति ॥ २५ ॥

जो पुरुष कन्या के गुप्त दोष को छिपाकर विवाह कर देता है, उसपर छियानवे पण दण्ड होना चाहिए तथा उससे, शुल्क स्त्री धन उलटा ले लेवें। इसी प्रकार वर के सम्भोग सम्बन्धी दोष छुपाकर विवाह कर दिया जावे, तो दुगुना दण्ड हो। उसका दिया हुआ शुल्क और स्त्री धन नष्ट माना जावे। द्विपद [मनुष्य या पक्षी] और चतुष्पद [चौपायों] के कोढ़, व्याधि और अन्य दोषों को छुपाकर उत्साह स्वास्थ्य तथा दोष रहित बताने पर बारह पण दण्ड होना चाहिए। चौपाये तीन पक्ष तक लौटाये जा सकते हैं। मनुष्यों को एक संवत्सर में उलटा फेरा जा सकता है। इतने समय में इनकी दोषता या निर्दोषता जानी जा सकती है ॥१९-२५॥

दाता प्रतिगृहीता च स्यातां नोपहतौ यथा ।
दाने क्रये वानुशयं तथा कुर्युः सभासदः ॥ २६ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे विक्रीतक्रीतानुशयः पञ्चदशो ऽध्यायः ॥१५॥
आदितो द्विसप्ततितमः ॥ ७२ ॥

देने लेने वाला, जिस प्रकार दुःखी न हो सके, उसी तरह दान, क्रय या अनुशय [ब्याने] की राजा के सभासद पुरुष व्यवस्था करें ॥२६॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में क्रय विक्रय और ब्याने के सम्बन्ध के नियमों की व्यवस्था का पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

सोलहवां अध्याय

६८-७२ वां प्रकरण

दत्तस्यानपाकर्म, अस्वामिविक्रयः, स्वस्वामिसम्बन्धः

इस प्रकरण में दी हुई वस्तु का जो प्रदान न करे और स्वामी न होने पर वस्तु को वेचदे इनके नियम तथा किसका वस्तु पर अधिकार होना चाहिए इसके नियमों की व्याख्या की जावेगी।

दत्तस्याप्रदानमृणादानेन व्याख्यातम् ॥ १ ॥ दत्तमप्यपहार्यमेकत्रानुशये वर्तेत ॥ २ ॥ सर्वस्वं पुत्रदारमात्मानं वा प्रदायानुशयिनः प्रयच्छेत ॥ ३ ॥ धर्मदानमसाधुषु कर्मसु चौपघातिकेषु वार्थदानमनुपकारिष्वपकारिषु वा कामदानमनर्हेषु च यथा च दाता प्रतिगृहीता च नोपहतौ स्यातां तथानुशयं कुशलाः कल्पयेयुः ॥ ४ ॥

किसी वस्तु के देने की प्रतिज्ञा करके न देने में ऋण के नहीं देने के नियम ही लागू होते हैं। दिया हुआ धन यदि किसी कारण से न दिया जा सके-तो उसको एक स्थान में धरोहर के ढंग पर रखदेवे। जब समय आवे, तब दाता अपना सर्वस्व पुत्र, स्त्री और अपने तक को बन्धन में डालकर दान का रुपया चुका देना चाहिए। असाधु पुरुष और नाशकारी कर्म में धर्म पूर्वक दान, अनुपकारी या अपकारी पुरुषों को नीति में चूक कर किया हुआ दान, वेश्या आदि अयोग्य जन में काम तृप्ति के निमित्त किए हुए दान को दाता या प्रति गृहीता का जिस प्रकार अकल्याण न हो, उस तरह कुशल पुरुष कहां रखवा दे। १-४॥

दण्डभयादाक्रोशभयादनर्थभयाद्वा भयदानं प्रतिगृह्णतः स्तेय दण्डः प्रयच्छतश्च ॥ ५ ॥ रोषदान परहिंसायाम् ॥ ६ ॥ राज्ञामुपरि दर्पदानं च ॥७॥ तत्रोत्तमो दण्डः ॥ ८ ॥ प्रातिभाव्यं दण्डशुल्कशेषमाक्षिकं सौरिकं कामदानं च नाकामः पुत्रो दायादो वा रिक्थहारो दद्यात् ॥ ९ ॥इति दत्तस्यानपाकर्म ॥१०॥

दण्ड, निन्दा और अनर्थ का भय देकर जो दान पत्र लिखवाता या दान लेता है उसको चोरी का दण्ड होना चाहिए या जो किसी को दण्ड देने, निन्दा कराने या अनर्थ उत्पत्ति के लिए कुछ देता है, उसे भी चोरी का दण्ड होवे। पर हिंसा के लिए दिया हुआ दान रोष दान कहाता है-इसका भी वही दण्ड है। राजाओं से बढ़कर अभिमान

पूर्वक जो दान दिया जाता है, उसमें उत्तम दण्ड की व्यवस्था है। व्यर्थ कार्य के निमित्त लिय हुआ ऋण, दण्ड और शुल्क का शेष, जुए में हारा हुआ धन, सुरापान का ऋण, काम तृप्ति के निमित्त वेश्या आदि के देने के लिए हुए ऋण को पुत्र या धन लेने वाला कुटुम्बी यदि न चाहे-तो उस ऋण को न चुकावे। यहां तक दान की हुई वस्तु के न देने के सम्बन्ध में वर्णन किया गया॥ ५-१०॥

अस्वामिविक्रयस्तु ॥ ११ ॥ नष्टापहृतमासाद्य स्वामी धर्मस्थेन ग्राहयेत् ॥ १२ ॥ देशकालातिपत्तौ वा स्वयं गृहीत्वोपहरेत् ॥ १३ ॥ धर्मस्थश्चस्वामिन मनुयुञ्जीत कुतस्ते लब्धमिति ॥ १४ ॥ स चेदाचारक्रमं दर्शयेत न विक्रेतारं तस्य द्रव्यस्यातिसर्गेण मुच्येत ॥ १५ ॥ विक्रेता चेद्दर्शयेत मूल्यं स्तेयदण्डं च ॥ १६ ॥ स चेदपसारमधिगच्छेदपसरेदापसारक्षयादिति क्षये मूल्यं स्तेयदण्डं च दद्यात् ॥ १७ ॥ नाष्टिकं च स्वकरणं कृत्वा नष्टप्रत्याहृतं लभेत ॥ १८ ॥ स्वकरणाभावे पञ्चबन्धो दण्डः ॥ १९ ॥ तच्चद्रव्यं राजधर्म्यं स्यात् ॥ २० ॥

जो मनुष्य जिस वस्तु का स्वामी न हो-अब उस विषय में वर्णन किया जाता है खोई हुई वस्तु को पाने वाले पुरुष को पकड़ कर स्वामी धर्माध्यक्ष के द्वारा उसको पकड़वा दे। यदि धर्मस्थ तक पहुंचने में देश काल बाधक हो तो स्वयं पकड़कर उसके पास लेजावे। धर्माध्यक्ष, उस वस्तु के नकली स्वामी बनने वाले से मालूम करे, कि तुमने यह वस्तु कहांसे प्राप्त की है। यदि वह वस्तु की प्राप्ति का ठीक २ क्रम बतादे, और विक्रेता को न बतावे अर्थात् वस्तु को मोल ली हुई न बतावे, तो उससे वस्तु दिलाकर उसे छोड़ दिया जावे। यदि वह उस वस्तु को मोल खरीदना बतावे और बेचने वाले को सामने लावे-तो उसको मूल्य लौटवाकर बेचने वाले को चोरी का दण्ड होवे। यदि वह भी किसी दूसरे मनुष्यसे खरीदी बतावे, तो इस परम्परा में अन्त में जिसने उस वस्तु को प्रथम बेचा है, उस से मूल्य दिलाकर उसे ही चोरी का दण्ड देना उचित है। नष्ट हुई वस्तु को उसका स्वामी प्रमाण उपस्थित करके ही वापिस ले सकता है। यदि उसका स्वामी प्रमाण न कर सके-तो उसके मूल्य का पांचवाँ भाग दण्ड में देवे। उस वस्तु को राज्य के कोष में डलवादी जावे॥ ११-२०॥

नष्टापहृतमनिवेद्योत्कर्षतः स्वामिनः पूर्वः साहस दण्डः ॥ २१ ॥ शुल्कस्थाने नष्टापहृतोत्पन्नं तिष्ठेत् ॥ २२ ॥ त्रिपक्षादूर्ध्वमनभिसारं राजा हरेत्स्वामी वा ॥ २३ ॥ स्वकरणेन पञ्चपणिकं द्विपदरूपस्य निष्क्रयं दद्यात ॥ २४ ॥

चतुष्पणिकमेकखुरस्य द्विपणिकं गोमहिषस्य पादिकं क्षुद्रपशूनां रत्नसारफल्गु-कुप्यानां पञ्चकं शतं दद्यात् ॥ २५ ॥

जो पुरुष अपनी नष्ट हुई वस्तु की राज्य के अधिकारी को सूचना (रिपोर्ट) न देकर स्वयं छीने-तो उसे पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए। यदि कोई नष्ट (खोई हुई या चुराई हुई वस्तु) सरकारी मनुष्यों को मिले तो उसे शुल्क स्थान में रखवा देना चाहिए, तीन पक्ष के अनन्तर यदि उसका कोई स्वामी न आवें, तो उसे राजा रख लेवे या प्रमाण उपस्थित करके उसका मालिक ले जावे। जब स्वामी अपना प्रमाण देदे, तो (दास दासी) मनुष्य के छुड़ाने का पांच पण सरकारी शुल्क देवे। एक खुर वाले घोड़े आदि के लिए चार पण, दो खुर वाली गाय भैंस के निमित्त दो पण, भेड़ बकरी का एक पण, रत्न, सार (उत्तम वस्तु) फल्गु (रसहीन) और कुप्य (धातु, वस्तुओं पर प्रतिशत पांच पण छुड़ाने का शुल्क देना पड़ेगा ॥ २१-२५ ॥

परचक्राटवीभृतं तु प्रत्यानीय राजा यथास्वं प्रयच्छेत् ॥ २६ ॥ चोरहृत-मविद्यमानं स्वद्रव्येभ्यः प्रयच्छेत् ॥ २७ ॥ प्रत्यानेतुमशक्तो वा स्वयंग्राहेणाहृतं प्रत्यानीय तन्निष्क्रयं वा प्रयच्छेत् ॥ २८ ॥ परविषयाद्वा विक्रमेणानीतं यथा-प्रदिष्टं राज्ञा भुञ्जीतान्यत्रार्यप्राणेभ्यो देवब्राह्मणतपस्विद्रव्येभ्यश्च ॥ २९ ॥ इत्यस्वामिविक्रयः ॥ ३० ॥

दूसरे देश के राजा या जंगली मनुष्यों द्वारा अपहृत प्राणियों को राजा लाकर जिस के हों-उनको देदेवे। यदि वस्तु चोर चुरा ले गए और राजा वापिस न ला सका तो राजा अपने कोष से उसका मूल्य प्रदान करे। जब राजा स्वयं चोरों से वस्तु न मंगवा सके-तो अन्य मनुष्यों द्वारा उन वस्तुओं को मंगवावे और उसका मूल्य स्वयं चुकावे। यदि अन्य देश को विजय किया है, तो वहां जो लूट में धन प्राप्त हुआ, उसे राजा की आज्ञा के अनुसार मनुष्य ग्रहण कर सकता है। यदि वह धन आर्य प्राण (शूद्र) देव, ब्राह्मण और तपस्वियोंका हो-तो उसे वापिस लौटा दे। यहां तक जो स्वामी न हो, और वस्तु को वेचदे-उसके विषय में विवेचन किया गया है ॥ २६-३० ॥

स्वस्वामिसंबन्धस्तु ॥ ३१ ॥ भोगानुवृत्तिरुच्छिन्नदेशानां यथास्वद्रव्या-णाम् ॥ ३२ ॥ यत्स्वं द्रव्यमन्यैर्भुज्यमानं दशवर्षाण्युपेक्षेत हीयेतास्य ॥ ३३ ॥ अन्यत्र बालवृद्धव्याधितव्यसनिप्रोषितदेशत्यागराज्यविभ्रमेभ्यः ॥ ३४ ॥ विंश-तिवर्षोपेक्षितमनवसितं वास्तु नानुयुञ्जीत ॥ ३५ ॥

अब किस वस्तु पर किसका किस तरह अधिकार मानना चाहिए-इसका वर्णन किया जाता है। अपने क़ब्जे से निकलकर जो सम्पत्ति दूसरे के अधिकार में चली गई-तो उस का भोग ही पर्याप्त प्रमाण है। इसी तरह अन्य द्रव्यों की भी यथा योग्य व्यवस्था जानो। जो अपनी सम्पति को दस वर्ष तक अन्य से भोगता देखता है, तो फिर उस पर से उस का अधिकार नष्ट हो जाता है। यदि वह सम्पत्ति बालक, वृद्ध, रोगी, व्यसनी, विदेशी, देश त्यागी की हो या राज्य विप्लव के समय में दबाई गई हो तो उसपर दश वर्ष का अधिकार (क़ब्जा) पर्याप्त नहीं माना जावेगा। यदि किसी मकान या भूमि को बीस वर्ष तक भोगते देखकर भी जो कुछ नहीं करता, तो इसके बाद उसपर से उसका अधिकार नष्ट हुआ मानो ॥ ३१-३५ ॥

ज्ञातयः श्रोत्रियाः पाषण्डा वा राज्ञामसंनिधौ परवास्तुषु विवसन्तो न भोगेन हरेयुः ॥ ३६ ॥ उपनिधिमाधिं निधिं निक्षेपं स्त्रियं सीमानं राजश्रोत्रिय-द्रव्याणि च ॥३७॥ आश्रमिणः पाषण्डा वा महत्यवकाशे परस्परम बाधमाना वसेयुः ॥ ३८ ॥ अल्पां बाधां सहेरन् ॥ ३९ ॥ पूर्वागतो वा वासपर्यायं दद्यात् ॥ ४० ॥ अप्रदाता निरस्येत ॥ ४१ ॥

बन्धु बान्धव, वेदपाठी, पाषण्डी, राजा के पास न होने या कहीं दूर चले जाने पर दूसरे के मकान में रहते हुए भी रहने वाले का अधिकार नहीं होता है। उपनिधि (बन्द धरोहर) आधि (गिरवी) निधि (कोष) निक्षेप (धरोहर) स्त्री, सीमा, राजा और वेदपाठी ब्राह्मण की भूमि या सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं कर सकता है। आश्रमानुसार संन्यास लेने वाले या विनाशास्त्र कपड़े रंगे हुए पंथाई साधु खुले विशाल स्थान में रह सकते हैं, परन्तु वे परस्पर लड़ाई झगड़ा न करें। यदि इनको कोई थोड़ा कष्ट भी हो-तो भी ये सहन करलें। प्रथम आया हुआ व्यक्ति पीछे आने वाले को यथा योग्य स्थान दे देवे। यदि स्थान देने पर झगड़ा करे-तो पूर्व आये हुए को वहां से निकाल दें ॥३६-४१॥

वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणामाचार्यशिष्यधर्मभ्रातृसमानतीर्थ्या रिक्थभाजः ॥ ४२ ॥ क्रमेण विवादपदेषु चैषां यावन्तः पणाः दण्डास्तावती रात्रीः क्षपणाभिषेकाग्निकार्यमहाकच्छ्रवर्धनानि राज्ञश्चरेयु ॥ ४३ ॥ अहिरण्यसुवर्णाः पाषण्डाः साधवस्ते यथास्वमुपवासव्रतैराराधयेयुः ॥ ४४ ॥ अन्यत्र पारुष्यस्तेयसाहससंग्रहणेभ्यः ॥ ४५ ॥ तेषु यथोक्ता दण्डाः कार्याः ॥ ४६ ॥

वानप्रस्थी, संन्यासी, और ब्रह्मचारियों की सम्पत्ति के स्वामी उनके आचार्य, शिष्य, धर्म-भ्राता या सहाध्यायी होते हैं। यदि इनमें किसी का झगड़ा हो और एक पर दण्ड होने,

तो वह साधु उतनी रात, राजा के कल्याण के निमित्त, उपवास, स्नान, अग्नि होत्र तथा कठिन चान्द्रायण जैसे व्रतों का अनुष्ठान करे। धन सुवर्ण आदि अपने पास न रखने वाले पाषण्डी (पन्थाई) साधु भी यथा योग्य उपवास व्रत करके राजा की आराधना करें, परन्तु यदि इन्होंने मारपीट, चोरी, डाका या व्यभिचार किया हो तो उनको पूर्वोक्त दण्ड दिये जावेंगे ॥४२-४६॥

प्रव्रज्यासु वृथाचारान्राजा दण्डेन वारयेत्।
धर्मो ह्यधर्मोपहतः शास्तारं हन्त्युपेक्षितः ॥ ४७ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे अस्वामिविक्रयः स्वस्वामिसंबन्धः षोडशो ऽध्यायः ॥ १६ ॥ आदितस्त्रिसप्ततिः ॥ ७३ ॥

राजा संन्यासियों में होने वाले दुष्ट आचारों को भी दण्ड के द्वारा दूर करे। अधर्म से दबाया हुआ या उपेक्षा किया हुआ धर्म, शासन करने वाले राजा को मार बैठता है ॥४७॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में अस्वामि विक्रय आदि का सोलहवां अध्याय समाप्त हुआ।

सत्रहवां अध्याय

७१वां प्रकरण

साहसम्

इस अध्याय में साहस डाके का वर्णन होगा।

साहसमन्वयवत्प्रसभकर्म ॥ १ ॥ निरन्वये स्तेयमपव्ययने च ॥ २ ॥ रत्नसारफल्गुकुप्यानां साहसे मूल्यसमो दण्ड इति मानवाः ॥ ३ ॥ मूल्यद्विगुण इत्यौशनसाः ॥ ४ ॥ यथापराधमिति कौटल्यः ॥ ५ ॥ पुष्पफलशाकमूलकन्द-पक्वान्नचर्मवेणुमृद्भाण्डादीनां क्षुद्रकद्रव्याणां द्वादशपणावरश्चतुर्विंशतिपणपरो दण्डः ॥ ६ ॥

बलात्कार से सबके सन्मुख द्रव्य आदि का अपहरण साहस [डाका] कहाता है और छुपकर वस्तु का अपहरण कर लेना चोरी है। रत्न, सार फल्गु चन्दन आदि की लकड़ी कुप्य [धातु] के डाके में उनपर उनकी कीमत का जुरमाना होना चाहिए ऐसा मनु का मत है। मूल्य से दुगुना उशना आचार्य मानते हैं। कौटल्य का मत है, कि जैसा डाका देखा जावे, वैसा दण्ड हो। पुष्प, फल, शाक, मूल, कन्द, पकान्न, चर्म, वेणु, [वांस]

मिट्टी, के बर्तनों जैसी छोटी चीजों के डाके डालने वाले पर बारह पण से लेकर चौबीस पण तक दण्ड होना चाहिए ॥१-६॥

कालायसकाष्ठरज्जुद्रव्यक्षुद्रपशुवाटादीनां स्थूलकद्रव्याणां चतुर्विंशतिपणावरो ऽष्टचत्वारिंशत्पणपरो दण्डः ॥ ७ ॥ ताम्रवृत्तकंसकाचदन्तभाण्डादीनां स्थूलद्रव्याणामष्टचत्वारिंशत्पणावरं पण्णवतिपरं पूर्वः साहसदण्डः ॥ ८ ॥ महापशुमनुष्यक्षेत्रगृहहिरण्यसुवर्णसूक्ष्मवस्त्रादीनां स्थूलकद्रव्याणां द्विशतावरः पञ्चशतपरः मध्यमः साहसदण्ड ॥६॥ स्त्रियं पुरुषं वाभिषह्य बध्नतो बन्धयतो बन्धं वा मोक्षयतः पञ्चशतावरः सहस्रपर उत्तमः साहसदण्ड इत्याचार्याः ॥ १० ॥

लोहा, लकड़ी रस्सी आदि वस्तु, क्षुद्र पशु और वस्त्र आदि तथा स्थूल वस्तु आदि के बल पूर्वक अपहरण में चौबीस पण से लेकर अड़तालीस पण तक दण्ड होना चाहिए। तांबा पीतल, कांसी, कांच और दांत की बनी स्थूल वस्तुओं के अपहरण में अड़तालीस पण [मुद्रा] से लेकर छियानवें पण तक पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए। बड़े २ पशु, मनुष्य, खेत, मकान, हिरण्य, सुवर्ण और सूक्ष्म रेशमी वस्त्र जैसी उत्तम वस्तुओं के अपहरण में दो सौ पण से लेकर पांच सौ पण तक मध्यम दण्ड होना चाहिए। किसी स्त्री या मनुष्य को बल-पूर्वक रोक रखने या रखवा देने तथा राजा के कैदी को छुड़ाने वाले पुरुष पर पांच सौ से लेकर एक सहस्र पण तक उत्तम साहस दण्ड होना चाहिए ॥७-१०॥

यः साहसं प्रतिपद्यतेति कारयति स द्विगुणं दद्यात् ॥ ११ ॥ यावद्धिरण्यमुपयोक्ष्यते तावद्दास्यामीति स चतुर्गुणं दण्डं दद्यात् ॥ १२ ॥ य एतावद्धिरण्यं दास्यामिति प्रमाणमुद्दिश्य कारयति स यथोक्तं हिरण्यं दण्डं च दद्यादिति बार्हस्पत्याः ॥१३॥ स चेत्कोपं मदं मोहं वापदिशेद्यथोक्तवद्दण्डमेनं कुर्यादिति कौटल्यः ॥ १४ ॥

जो मनुष्य, डाके पड़ने को जानकर उनसे मिल जाता है या डाका डलवा देता है, उसपर दुगुना दण्ड होना चाहिए। जो डाकुओं से कहता है, कि तुम्हारी सहायता में जो धन व्यय होगा-वह मैं दूंगा-ऐसे पुरुष पर चौगुना दण्ड होना चाहिए। बृहस्पति आचार्य मानते हैं, कि जिस पुरुष ने जितने सुवर्ण मुद्रा व्यय की प्रतिज्ञा करके डाका डलवाया है, उससे उतना ही सुवर्ण छीन कर पूर्वोक्त दण्ड होना चाहिए। यदि वह अपराधी, इस कार्य को किसी कोप, मद या मोह से करना बतावे, तो उस पर पूर्वोक्त ही दण्ड होना चाहिए ऐसा कौटल्य का मत है ॥११-१४॥

दण्डकर्मसु सर्वेषु रूपमष्टपणं शतम् ।
शतात्परे तु व्याजीं च विद्यात्पञ्चपणं शतम् ॥ १५ ॥

इन सारे दण्डों में प्रतिशत आठ पण सरकारी कोप में जमा होवे-यह रूप कहाता है। यदि दण्ड की रकम सौ से कम है-तो उसपर पांच प्रतिशत व्याजी नामक टैक्स सरकार में दाखिल होवे ॥१५॥

प्रजानां दोपबाहुल्याद्राज्ञां वा भावदोपतः ।
रूपव्याज्यावधर्मिष्ठे धर्म्यानुप्रकृतिः स्मृता ॥ १६ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे साहसं सप्तदशो ऽध्यायः ॥ १७ ॥
आदितश्चतुःसप्ततिः ॥ ७४ ॥

प्रजा में दोप बढ़ने का कारण हो जाने या राजा की नीयत में लोभ बढ़ने से रूप और व्याजी धर्म से हीन है। पूर्वोक्त दण्ड ही धर्मानुसार मानने चाहिए ॥१६॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में साहस के निरूपण का सत्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।



अठारहवां अध्याय

७५वां प्रकरण

वाक्पारुष्यम् ।

इस प्रकरण में गाली गलोज आदि वाक्पारुष्य के दण्ड की व्यवस्थाका वर्णन होगा।

वाक्पारुष्यमुपवादः कुत्सनमभिभर्त्सनमिति ॥ १ ॥ शरीरप्रकृतिश्रुतवृत्तिजनपदानां शरीरोपवादेन काणखञ्जादिभिः सत्ये त्रिपणो दण्डः ॥ २ ॥ मिथ्योपवादे षट्पणो दण्डः ॥ ॥ शोभनाक्षिमन्त इति काणखञ्जादीनां स्तुतिनिन्दायां द्वादशपणो दण्डः ॥ ४ ॥ कुष्ठोन्मादक्लैब्यादिभिः कुत्सायां च ॥ ५ ॥ सत्यमिथ्यास्तुतिनिन्दासु द्वादशपणोत्तरा दण्डास्तुल्येषु ॥६॥ विशिष्टेषु द्विगुणः ॥७॥ हीनेष्वर्धदण्डः ॥८॥ परस्त्रीषु द्विगुणः ॥९॥ प्रमादमदमोहादिभिरर्धदण्डाः ॥१०॥

किसी को गाली देना, निन्दा करना या धमकाना वाक्पारुष्य कहाता है। शरीर प्रकृति (जाति) शास्त्र, जीविका और देश विषय को लेकर वाक्पारुष्य चलता है। शरीर को आश्रय बनाकर काणे, लंगड़े, लूले को काणा लंगड़े लूले कहने वाले पर तीन पण दण्ड

होवे। यदि काणा आदि न हो और काने की गाली दी जावे-तो छः पण दण्ड होवे। जो काणे को-तुम्हारी आंखें बड़ी सुंदर हैं, इस प्रकार व्याज स्तुति करके जो उपहास उड़ाता है उसपर बारह पण दण्ड होना चाहिए। कोढ़ी उन्माद और नपुंसक आदि कहकर जो निन्दा की जावे, इसपर भी बारह पण दंड की व्यवस्था है। यदि कोई व्यक्ति अपने बराबर वाले की सच्ची या झूंठी स्तुति निन्दा करके उपहास करे-तो उसपर बारह पण से अधिक दण्ड होवे। यदि किसी उत्तम गुण वाले की निन्दा करे-तो दुगुना और छोटी प्रतिष्ठा वाले को ऐसे कटु वचन कहे-तो आधा दण्ड होना चाहिए। यदि किसी पराई स्त्री की इस प्रकार निन्दा करे तो दुगुना दण्ड हो। ये सारे कुवचन, किसी प्रमाद मद और मोह आदि के कारण कहे गए हों तो उनपर आधा दंड होना चाहिए॥ १-१० ॥

कुष्ठोन्मादयोश्चिकित्सकाः संनिकृष्टाः पुमांसश्च प्रमाणम् ॥११॥ क्लीबभावे स्त्रियो मूत्रफेनमप्सु विष्ठानिमज्जनं च ॥ १२ ॥ प्रकृत्युपवादे ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रान्तावसायिनामपरेण पूर्वस्य त्रिपणोत्तराः दण्डाः ॥ १३ ॥ पूर्वेणापरस्य द्विपणाधराः ॥१४॥ कुब्राह्मणादिभिश्च कुत्सायाम् ॥ १५ ॥ तेन श्रुतोपवादो वाग्जीवनानां कारुकुशीलवानां वृत्त्युपवादः प्राज्जूणकगान्धारादीनां च जनपदोपवादा व्याख्याताः ॥ १६ ॥

किसी के कुष्ठ और पागल होने की तहकीकात में वैद्यों को प्रमाण मानना चाहिए या उनके सहचर उनकी बात बता सकते हैं। नपुंसक के ज्ञान करने में स्त्री प्रमाण है या उसके मूत्र में झागों का नहीं उठना तथा विष्ठा का पानी में डूब जाना आदि भी नपुंसक के लक्षण माने गए हैं। ब्राह्मण आदि जाति को आधार बनाकर जो कटु वचन का प्रयोग किया जावे उसमें यदि चांडाल आदि शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण की निन्दा करे-तो उनपर क्रम से तीन पण बढ़ाते हुए दंड होना चाहिए। यदि ब्राह्मण आदि वर्ण नीचे की ओर कटु वचन का प्रयोग करें तो क्रम से दो पण बढ़ाते हुए दंड होना चाहिए। किसी ब्राह्मण को कुब्राह्मण आदि कहना कुत्सा या निन्दा कहाती है। इन ही नियमों के अनुसार विद्या वाणी से जीवन वृत्ति शिल्पी तथा नटों की निन्दा करे-तथा प्राज्जूणक या गान्धार आदि देशों को लेकर किसी की निन्दा की जावे-तो वही पूर्वोक्त दंड होना चाहिए॥ ११-१६ ॥

यः परमेवं त्वां करिष्यामीति करणेनाभिभर्त्सयेदकरणे यस्तस्य करणे दण्डस्ततोऽर्धदण्डं दद्यात् ॥१७॥ अशक्तः कोपं मदं मोहं वापदिशेद् द्वादश पणं दण्डं दद्यात् ॥१८॥ जातवैराशयः शक्तश्चापकर्तुं यावज्जीविकावस्थं दद्यात् ॥ १९ ॥

जो पुरुष दूसरे को यह कहे, कि मैं तुझे ऐसा कर डालूंगा परन्तु करे नहीं-उस पर करने से आधा दंड होना चाहिए। जो हाथ पैर आदि के तोड़ने में असमर्थ पुरुष, कोप मद या मोह को ऐसा करने का कारण बतावे, तो उस पर बारह पण दंड होना चाहिए। यदि किसी का वैर बढ़ रहा है और वह हाथ पैर तोड़ने में समर्थ भी है, तो उसपर उस की आमदनी के अनुसार दंड होना चाहिए॥ १७-१६॥

स्वदेशग्रामयोः पूर्वं मध्यमं जातिसंघयोः।
आक्रोशाद्देवचैत्यानामुत्तमं दण्डमर्हति॥ २०॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे वाक्पारुष्यं अष्टादशो ऽध्यायः॥ १८॥
आदितः पञ्चसप्ततिः॥ ७५॥

जो व्यक्ति अपने देश, गांव की निन्दा करे तो पूर्व साहस दंड जाति और समाज की निन्दा करे-तो मध्यम साहस दंड तथा देवालयों की निन्दा करे-तो उसपर उत्तम साहस दंड होना चाहिए॥ २०॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में वाक्पारुष्य के वर्णन का अठारहवां अध्यायसमाप्त हुआ।



उन्नीसवां अध्याय

७३वां प्रकरण

दण्ड पारुष्यम्

इस प्रकरण में मार पीट के विषय में कानूनी व्यवस्था का निर्णय किया जावेगा।

दण्डपारुष्यं स्पर्शनमवगूर्णं प्रहतमिति॥ १॥ नाभेरधः कायं हस्तपङ्क भस्मपांसुभिरिति स्पृशतस्त्रिपणो दण्डः॥ २॥ तैरेवामेध्यैः पादष्ठीवनिकाभ्यां च षट्पणः छर्दिमूत्रपुरीषादिभिर्द्वादशपणः॥ ३॥ नाभेरुपरि द्विगुणाः॥ ४॥ शिरसि चतुर्गुणाः समेषु॥ ५॥ विशिष्टेषु द्विगुणाः॥ ६॥ हीनेष्वर्धदण्डाः॥ ७॥ परस्त्रीषु द्विगुणाः॥ ८॥ प्रमादमदमोहादिभिरर्धदण्डाः॥ ९॥

किसी के शरीर पर कीचड़ आदि लगा देना, हाथ डालना, लकड़ी चलाना या मार देना-दंड पारुष्य नामक अपराध होता है। नाभि के नीचे शरीर पर हाथ डालने तथा कीचड़, भस्म, मिट्टी लगा देने पर-लगाने वाले पर तीन पण दंड किया जावे। यदि उपयुक्त वस्तु अपवित्र हो और लगादी जावे एवं पैर की ठोकर थूक खखार का स्पर्श कर

दिया जावे, तो छः पण दंड हो-वमन, मूत्र मलका स्पर्श कर देने पर बारह पण दंड की व्यवस्था है। यदि ये ही वस्तु नाभि से ऊपर लगा दी जावे-तो दुगुना दंड होना चाहिए। यदि ये ही वस्तु सिर पर डालदी जावे-तो चौगुना दंड हो। ये समान जाति वालों की व्यवस्था हैं। बड़ी जाति वाले छोटी जाति पर ऐसा करें, तो आधा दंड हो। यदि पर स्त्री पर ऐसा कर दिया जावे, तो दुगुना दंड हो। किसी प्रमाद, मद और मोह से ऐसी बात हो जाने पर आधा दंड होना चाहिए ॥ १-९ ॥

पादवस्त्रहस्तकेशावलम्बनेषु षट्पणोत्तरा दण्डाः ॥ १० ॥ पीडनावेष्टनाञ्जनप्रकर्षणाध्यासनेषु पूर्वः साहस दण्डः ॥ ११ ॥ पातयित्वापक्रमतोऽर्धदण्डाः ॥ १२ ॥ शूद्रो येनाङ्गेन ब्राह्मणमभिहन्यात्तदस्य च्छेदयेत् ॥ १३ ॥ अवगूर्णे निष्क्रयः स्पर्शेऽर्धदण्डः ॥ १४ ॥ तेन चण्डालाशुचयो व्याख्याताः ॥ १५ ॥

यदि कोई अपराधी किसी के पैर, वस्त्र, हाथ और बाल पकड़ ले, तो क्रम से छः बारह, अठारह और चौबीस पण दंड होवे। किसी के पीड़ित करदेने, लपेट लेने, मुंह काला करने, रगड़ने या नीचे डाल कर चढ़ बैठने पर पूर्व साहस दंड होना चाहिए। जो कोई किसी को गिराकर भाग जावे-तो उसे आधा दंड होना उचित है। शूद्र जिस अङ्ग से ब्राह्मण को मारे उसका वही अङ्ग कटवा दिया जावे। यदि शूद्र-ब्राह्मण की ओर हाथ उठा दे-तो उसका जुरमाना लिया जावे और हाथ मार दे-तो पूर्वोक्त आधा पूर्व साहस दंड होवे। इसी तरह कोई चंडाल या अन्य अशुचि मनुष्य ऐसा करे-तो उसे भी यही दंड होवे ॥ १०-१५ ॥

हस्तेनावगूर्णे त्रिपणावरो द्वादशपणपरो दण्डः ॥ १६ ॥ पादेन द्विगुणः ॥ १७ ॥ दुःखोत्पादनेन द्रव्येण पूर्वः साहसदण्डः ॥ १८ ॥ प्राणाबाधिकेन मध्यमः ॥ १९ ॥ काष्ठलोष्टपाषाणलोहदण्डरज्जुद्रव्याणामन्यतमेन दुःखमशोणितमुत्पादयतश्चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ २० ॥ शोणितोत्पादने द्विगुणः ॥ २१ ॥ अन्यत्र दुष्टशोणितात् ॥ २२ ॥

यदि मारने को हाथ उठाया है, तो तीन पण से लेकर बारह पण तक दण्ड हो, जो पैर, उठाया है. तो इससे दुगुना और दुःख उत्पादक लट्ठ आदि उठाया है, तो पूर्व साहस दण्ड तथा प्राणों को भय में डालने वाला खड्ग आदि कोई शस्त्र उठाया है, तो मध्यम साहस दण्ड की व्यवस्था है। काष्ठ, मिट्टी का ढेला, पत्थर, लोहा, दण्ड, रस्सी आदि वस्तुओं में से किसीका प्रहार कर दिया, परन्तु रक्त नहीं निकला, तो मारने वाले पर चौबीस

पण और रक्त निकल आया तो अड़तालीस पण दण्ड होना चाहिए। यदि प्रहार से कोई दूषित रक्त निकल पड़े तो यह दण्ड नहीं होगा ॥१६-२२॥

मृतकल्पमशोणितं घ्नतो हस्तपादपारंचिकं वा कुर्वतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २३ ॥ पाणिपाददन्तभङ्गे कर्णनासाच्छेदने व्रणविदारणे च ॥ २४ ॥ अन्यत्र दुष्टव्रणेभ्यः ॥ २५ ॥ सक्थिग्रीवाभञ्जने नेत्रभेदने वा वाक्यचेष्टाभोजनोपरोधेषु च मध्यमः साहसदण्डः समुत्थानव्ययश्च देशकालातिपत्तौ कण्टकशोधनाय नीयेत ॥ २६ ॥

यदि किसी ने किसी के रक्त नहीं निकाला परन्तु मारते २ अधमरा कर दिया या हाथ पैरों के जोड़ ढीले कर दिये-तो अपराधी पर पूर्व साहस दण्ड हो। यदि हाथ, पैर, दांत तोड़ने, कान, नाक छेदने या क्षत (घाव) कर देने जांघ, ग्रीवा मरोड़ देने, आंख फोड़ देने, बोलने, फिरने और भोजन के साधन नष्ट कर देने पर मध्यम साहस दण्ड होना चाहिए। घाव किसी पुराने फोड़े का न हो। जिस व्यक्ति के चोट आई उसके नीरोग होने तक उसका हर्जाना भी अपराधी से दिलाया जावे। यदि देश काल की कोई रुकावट हो-तो कण्टकशोधन अगले ही प्रकरण में बताये गए दण्ड विधान का प्रयोग किया जावे ॥२३-२६॥

महाजनस्यैकं घ्नतो प्रत्येकं द्विगुणो दण्डः ॥ २७ ॥ पर्युषितः कलहे ऽनुप्रवेशो वा नाभियोज्य इत्याचार्याः ॥ २८ ॥ नास्त्यपकारिणो मोक्ष इति कौटल्यः ॥ २९ ॥ कलहे पूर्वागतो जयत्यक्षममाणो हि प्रधावतीत्याचार्याः ॥ ३० ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ पूर्वं पश्चाद्वाभिगतस्य साक्षिणः प्रमाणम् ॥ ३२ ॥ असाक्षिके घातः कलहोपलिङ्गनं वा ॥ ३३ ॥ घाताभियोगमप्रतिब्रुवतस्तदहरेव पश्चात्कारः ॥ ३४ ॥ कलहे द्रव्यमपहरतो दशपणो दण्डः ॥ ३५ ॥

यदि बहुत से आदमी मिलकर एक व्यक्ति को मारे-तो पूर्वोक्त दण्ड का दुगुना दण्ड हो। यदि झगड़े को बहुत दिन बीत हो गये हों-तो उसका अभियोग नहीं चलना चाहिए, ऐसा आचार्य कहते हैं, परन्तु कौटल्य का मत है, कि अपकारी को कभी न छोड़े कितने दिन का पुराना झगड़ा हो, प्रमाणित होने पर दण्ड होना ही चाहिए। कलह में जो प्रथम न्यायालय में आता है, वही सच्चा समझना चाहिए क्योंकि वह दुःख को नहीं सह कर ही तो भागा आया है। कौटल्य का मत है, कि पूर्व या पीछे आने का कुछ नहीं। जिसका साक्षियों से प्रमाण हो-वही सच्चा समझना होगा। झगड़ा होने पर झूंठा भी प्रथम भाग कर आ सकता है। किसी आदमी के साक्षी न होने पर झगड़ने के निर्णय के लिए मनुष्य के घाव देखने उचित है या कलह का सारा स्वरूप मालूम करना चाहिए।

चोट मारने के विषय में जो प्रश्न हो-यदि प्रार्थी उनका फौरन उत्तर न दे-तो उसको उसी दिन हटा देना चाहिए। झगड़े के समय कोई किसी की वस्तु को उठा ले जाय तो इसका दश पण दण्ड होना योग्य है ॥२७-३५॥

क्षुद्रकद्रव्यहिंसायां तच्च तावच्च दण्डः ॥ ३६ ॥ स्थूलकद्रव्यहिंसायां तच्च द्विगुणश्च दण्डः ॥ ३७ ॥ वस्त्राभरणहिरण्यसुवर्णभाण्डहिंसायां तच्च पूर्वश्च साहसदण्डः ॥ ३८ ॥ परकुड्यमभिघातेन क्षोभयतस्त्रिपणो दण्ड ॥ ३९ ॥

यदि लड़ाई झगड़े में कोई किसी की छोटी मोटी वस्तु तोड़ फोड़ दे, तो उसका मूल्य मालिक को और उतना दण्ड सरकार को देवे। बड़ी वस्तु नष्ट करने में दुगुना दण्ड होगा। वस्त्र, आभूषण, हिरण्य, सुवर्ण या अन्य किसी उत्तम वस्तु के नष्ट कर देने पर पूर्व साहस दण्ड की व्यवस्था है। यदि कोई आघात से किसी की दीवार को गिराने की चेष्टा करे-तो उसपर तीन पण दण्ड हो॥३६-३९॥

छेदनभेदने षट्पणः प्रतीकारश्च ॥ ४० ॥ दुःखोत्पादनं द्रव्यमस्य वेश्मनि प्रक्षिपतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ४१ ॥ प्राणाबाधिकं पूर्वः साहसदण्डः ॥ ४२॥ क्षुद्रपशूनां काष्ठादिभिर्दुःखोत्पादने पणो द्विपणो वा दण्डः ॥ ४३ ॥ शोणितोत्पादने द्विगुणः ॥ ४४ ॥ महापशूनामेतेष्वेव स्थानेषु द्विगुणो दण्डः समुत्थानव्ययश्च ॥ ४५ ॥

दीवार के तोड़ने फोड़ने पर छः पण दंड और उसकी लागत लेनी होगी। यदि कोई मनुष्य, किसी के घर में दुःख उत्पादक वस्तु फैंक दे, तो बारह पण दंड होवे। यदि प्राणों की बाधा करने वाले शस्त्र, सर्प आदि को फैंक देवे-तो पूर्व साहस दंड हो। यदि किसी ने किसी के क्षुद्र पशु के लकड़ी से मार दिया-तो एक पण या दो पण दंड होवे। यदि रक्त निकल आवे-तो दुगुना दंड हो। गाय, भैंस आदि बड़े पशुओं को दुःख उत्पादन कर देने में दुगुना दंड हो और उसके अच्छे होने में जो व्यय हो वह भी दिलाया जावे ॥४०-४५॥

पुरोपवनवनस्पतीनां पुष्पफलच्छायावतं प्ररोहच्छेदने षट्पणः ॥ ४६ ॥ क्षुद्रशाखाच्छेदने द्वादशपणः ॥ ४७ ॥ पीनशाखाच्छेदने चतुर्विंशतिपणः ॥४८॥ स्कन्धवधे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ४९ ॥ समुच्छित्तौ मध्यमः ॥ ५० ॥ पुष्पफलच्छायावद्गुल्मलतास्वर्धदण्डः ॥५१॥ पुण्यस्थानतपोवनश्मशान द्रुमेषु च ॥५२॥

नगर के बगीचे के पुष्प, फल और छाया वाले वृक्षों के फूल फल या पत्ते तोड़ने वाले पर छः पण दंड हो। छोटी २ शाखा काटने पर बारह, बड़ी शाखा काटने पर चौबीस, बड़े

काटने पर पूर्व साहस दंड और पेड़ को जड़ से काट देने पर मध्यम साहस होना चाहिए। पुष्प, फल और छाया वाली छोटी २ लता झाड़ी के नाश करने पर इनसे आधा दंड हो। किसी पवित्र स्थान, तपोवन, श्मशान के वृक्षों के नष्ट करने पर भी यही दंड होना चाहिए ॥४६-५२॥

सीमवृक्षेषु चैत्येषु द्रुमेष्वालक्षितेषु च ।
त एव द्विगुणा दण्डाः कार्या राजवनेषुच ॥ ५३ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे दण्डपारुष्यमेकोनविंशो ऽध्यायः ॥ १९ ॥
आदितः षट्सप्ततिः ॥ ७६ ॥

सीमा के वृक्ष, देवालयों के बगीचे के वृक्ष, राजा के किसी चिन्ह के निमित्त खड़े हुए वृक्ष तथा सरकारी बगीचे के वृक्षों को हानि पहुंचाने पर इससे दुगुना दंड होगा ॥५३॥

इति श्रीकौटलीय अर्थ शास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में मारपीट के कानूनों का उन्नीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



बीसवां अध्याय

७४-७५वां प्रकरण

द्यूतसमाह्वयं और प्रकीर्णकानिच

इस अध्याय में द्यूत (जुआ) की व्यवस्था तथा अन्य छोटे मोटे अपराधों की व्यवस्था का वर्णन होगा।

द्यूताध्यक्षो द्यूतमेकमुखं कारयेत् ॥ १ ॥ अन्यत्र दीव्यतो द्वादशपणो दण्डो गूढाजीविज्ञापनार्थम् ॥ २ ॥ द्यूताभियोगे जेतुः पूर्वः साहसदण्डः ॥३॥ पराजितस्य मध्यमः ॥ ४ ॥ बालिशजातीयो ह्येष जेतुकामः पराजयं न क्षमत इत्याचार्याः ॥ ५ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ६ ॥ पराजितश्चेद्द्विगुणदण्डः क्रियेत न कश्चन राजानमभिसरिष्यति ॥ ७ ॥ प्रायशो हि कितवाः कूटदेविन ॥ ८ ॥

द्यूताध्यक्ष, किसी स्थान पर जुआ खेलने की व्यवस्था करदे। जो उस स्थान के अतिरिक्त जुआ खेले-उसे बारह पण दंड हो। एक स्थान पर जुआ की छुट्टी देने से लुक छिप कर अपराध करने वालों का एक स्थान पर ही पता लग जावेगा। जब जुआ का कोई अभियोग सन्मुख आवे-तो जुए में जीतने वाले पर पूर्व साहस दंड और हारने वाले पर,

मध्यम साहस दंड होना चाहिए क्योंकि यह मूर्ख, दूसरे के जीतने को जुआ खेला और हार गया-तो झगड़ा करता है-ऐसा आचार्यों का मत है, परन्तु कौटल्याचार्य-ऐसा नहीं मानते, क्योंकि हारने वाले पर दुगुना दंड होगा-तो वेचारा फिर क्यों अपना झगड़ा राज्य में लावेगा। जुआ ही तो प्रायः छल बल से जुआरी खेलते ही हैं ॥१-८॥

तेषामध्यक्षाः शुद्धाः काकण्यक्षांश्च स्थापयेयुः ॥ ९ ॥ काकण्यक्षाणामन्योपधाने द्वादशपणो दण्डः ॥ १० ॥ कूटकर्मणि पूर्वः साहसदण्डो जितप्रत्यादानमुपधास्तेयदण्डश्च ॥ ११ ॥ जितद्रव्यादध्यक्षः पञ्चकं शतमाददीत काकण्यक्षारलाशलाकावक्रयमुदकभूमिकर्मक्रयं च ॥ १२ ॥ द्रव्याणामाधानं विक्रयं च कुर्यात् ॥ १३ ॥ अक्षभूमिहस्तदोषाणां चाप्रतिषेधने द्विगुणो दण्डः ॥ १४ ॥ तेन समाह्वयो व्याख्यातः ॥ १५ ॥ अन्यत्र विद्याशिल्पस माह्वयादिति ॥ १६ ॥

जुआ के शुद्ध आचरण वाले अधिकारी द्यूत स्थान में कौड़ी और पासे रखवा दे। जो इन कौड़ी और पासों को बदल दे, उसपर बारह पण दंड हो। जो छल के साथ जुआ खेले उसपर पूर्व साहस दंड हो, जीता हुआ धन छीन लिया जावे और पासों के बदलने पर चोरी का दंड होना चाहिए। जीतने वाले जुआरी से अध्यक्ष, पांच प्रति सैंकड़ा लेवे। कौड़ी, पासे, चमड़े की अरल [आसन] शलाका, जल, जमीन का किराया और सरकारी टैक्स भी उससे वसूल किया जावे। यदि आवश्यकता हो-तो जुआरियों के द्रव्य को गिरवी रखले या वेच देवे। यदि अध्यक्ष, पासा, भूमि और हाथ के दोनों को न मिटावे-तो अध्यक्ष पर भी दुगुना दंड हो। यही व्यवस्था मुर्गा तीतर आदि के लड़ाने की शर्त के विषय में जाननी चाहिए, परन्तु विद्या और शिल्प की उन्नति की शर्त में यह नियम लागू नहीं है ॥९-१६॥

प्रकीर्णकं तु ॥ १७ ॥ याचितकावक्रीतकाहितकनिक्षेपकाणां यथादेशकालमदाने यामच्छायासमुपवेशसंस्थितीनां वा देशकालातिपातने गुल्मतरदेयं ब्राह्मणं साधयतः प्रतिवेशानुप्रवेशयोरुपरि निमन्त्रणे च द्वादशपणो दण्ड ॥१८॥

इसके प्रकीर्ण (छोटे मोटे बिखरे हुए) अपराधों के विषय में लिखा जावेगा। मांगी हुई, किराये पर ली हुई, साधारण तौर पर रखी हुई या धरोहर रखी हुई, वस्तु को नियत देश काल पर न देने दिन या रात में किसी स्थान पर वस्तु देने को मिलने का

वायदा करके न मिले, छोटी २ नौका का ब्राह्मण से किराया मांगने, पड़ोसी या आने जाने वाले श्रोत्रिय को छोड़कर अन्य को बुलाने पर बारह पण दण्ड किया जावे ॥१७-१८॥

संदिष्टमर्थमप्रयच्छतो भ्रातृभार्यां हस्तेन लंघयतोरूपाजीवामन्योपरुद्धां गच्छतः परवक्तव्यं पण्यं क्रीणानस्य समुद्रं गृहमुद्भिन्दतः सामन्तचत्वारिंशत्कुल्याबाधामाचरतश्चाष्टचत्वारिंशत्पणो दण्ड ॥ १९ ॥

देने की प्रतिज्ञा करके धन के न देने वाले, भाई की स्त्री पर हाथ डालने वाले, दूसरे की रुकी हुई वेश्या के पास जाने वाले, दूसरे के खरीदी हुई वस्तु को खरीदने वाले, राजकीय चिन्हों से युक्त घरों के ढाहने वाले, सामन्तों के चालीस कुल तक पीड़ा पहुंचाने वाले पुरुष पर अड़तालीस पण दण्ड होना चाहिए ॥१९॥

कुलनीविग्राहकस्यापव्ययने विधवां छन्दवासिनीं प्रसह्यातिचरतश्चण्डालस्यार्यां स्पृशतः प्रत्यासन्नमापद्यनभिधावतो निष्कारणमभिधावनं कुर्वतः शाक्याजीवकादीन्वृषलप्रव्रजितान्देवपितृकार्येषु भोजयतः शत्यो दण्डः ॥ २० ॥

कुल क्रमागत प्राप्त सम्पत्ति का व्यर्थ व्यय करने वाले, स्वच्छन्द रहने वाली विधवा से सम्भोग की चेष्टा करने वाले, चण्डाल होकर आर्य स्त्री के स्पर्श की चेष्टा के कर्ता, पड़ोसी पर आपत्ति आने पर भी उसकी सहायता न करने वाले, बिना कारण इधर उधर दौड़ने वाले, बौद्ध और शूद्र संन्यासियों को देव, पितृ कार्यों में भोजन कराने वाले पुरुष पर सौ पण दण्ड होना चाहिए ॥२०॥

शपथवाक्यानुयोगमनिसृष्टं कुर्वतो युक्तकर्म चायुक्तस्य क्षुद्रपशुवृषाणां पुंस्त्वोपघातिनो दास्या गर्भमौषधेन पातयतश्च पूर्वः साहसदण्डः ॥ २१ ॥

धर्मस्थकी आज्ञा के बिना ही शपथ आदि दिलाकर निर्णय करने वाले- अनधिकारी को बल के भरोसे पर अधिकार देने वाले, क्षुद्र पशु, या बैलों को बधिया करने वाले तथा दासी के गर्भ को दवा से गिराने वाले पुरुष पर पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए ॥२१॥

पितापुत्रयोर्दम्पत्योर्भ्रातृभगिन्योर्मातुलभागिनेययोः शिष्याचार्ययोर्वा परस्परमपतितं त्यजतः स्वार्थाभिप्रयातं ग्राममध्ये वा त्यजतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २२ ॥ कान्तारे मध्यमः ॥ २३ ॥ तन्निमित्तं भ्रेषयत उत्तमः सहप्रस्थायिष्वन्येष्वर्धदण्डाः ॥ २४ ॥ पुरुषमबन्धनीयं बन्धतो बन्धयतो बन्धं वा मोक्षयतो बालमप्राप्तव्यवहारं बन्धतो बन्धयतो वा सहस्रदण्डः ॥ २५ ॥

पिता पुत्र, पति पत्नी, भाई बहन, मामा भानजा, और गुरु शिष्य, यदि इनमें कोई सा दूसरे को बिना पतित हुए त्यागता है, या जो साथ के संग चलते हुए पुरुष को गांव के

मध्य में छोड़कर चल देता है, उसपर पूर्व साहस दण्ड, यदि वन में छोड़े तो मध्यम साहस दण्ड होना चाहिए। यदि इन्हीं स्थानों पर डरा धमका कर उसे डाल जावे-तो डालने वाले को उत्तम साहस दण्ड हो तथा साथी के साथ चलने वालों के ऊपर आधा दण्ड होवे। जो पुरुष, निरपराध पुरुष को बांधे या बंधवावे या कैदी को छुड़ाने का प्रयत्न करे एवं नाबालिग लड़के को बांधे या बन्धवावे तो उस अपराधी को एक सहस्र पण का दण्ड दिया जावे ॥२२-२६॥

पुरुषापराधविशेषेण: दंडविशेषः कार्यः ॥ २६ ॥ तीर्थकरस्तपस्वी व्याधितः क्षुत्पिपासाध्वक्लान्तस्तिरोजानपदो दंडखेदी निष्किंचनश्चानुग्राह्याः॥ २७॥ देवब्राह्मणतपस्विस्त्रीबालवृद्धव्याधितानामनाथानामनभिसरतां धर्मस्थाः कार्याणि कुर्युः ॥ २८ ॥ न च देशकालभोगच्छलेनातिहरेयुः ॥२६॥ पूज्या विद्याबुद्धिपौरुषाभिजनकर्मातिशयतश्च पुरुषाः ॥ ३० ॥

जिस पुरुष का जैसा विशेष अपराध हो-वैसा दण्ड देना चाहिए। दानी तीर्थ यात्री, तपस्वी, बीमार, भूखा, प्यासा, थका हुआ, परदेशी, दण्ड से क्लान्त, और अशक्त पुरुष को हो सके तो कृपा-पूर्वक छोड़ देना चाहिए। देव, ब्राह्मण, तपस्वी, स्त्री, बालक, वृद्ध, रोगी, और अनाथ, राज्य में उपस्थित न भी हुए हों तो भी पता लगने पर धर्माधिकारी स्वयं पहुंच कर उनके दुःखों का प्रतीकार कर दें। देश काल आदि का बहाना करके कभी इनका धन न छीने, जो पुरुष, विद्या, बुद्धि, पौरुष, कुल और सेवा कार्यों में बढ़े हुए हों-उनको सदा पूज्य माने और दण्ड के समय उनपर यथा शक्ति अनुग्रह दिखावे ॥२६-३०॥

एवं कार्याणि धर्मस्थाः कुर्युरच्छलदर्शिनः।
समाः सर्वेषु भावेषु विश्वास्या लोकसंप्रियाः ॥३१॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे द्यूतसमाह्वयं प्रकीर्णकानि विंशो ऽध्यायः ॥२०॥ आदितः सप्तसप्ततिरध्यायः ॥ ७७ ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य धर्मस्थीयं तृतीयमधिकरणं समाप्तम् ॥३॥

इस प्रकार धर्माधिकारी, छल छोड़ कर धर्म कार्य करते रहें। ये सबको समान दृष्टि से देखते हुए पक्षपात हीन हों तथा सारे मनुष्य, इन का विश्वास करें और ये लोक के प्रेम पात्र बनें। ऐसी इनकी चेष्टा होनी चाहिए ॥३१॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत धर्मस्थीय अधिकरण में द्यूत प्रसङ्ग और अन्य अपराधों की व्यवस्था के निर्णय का बीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



कण्टकशोधन-चतुर्थ अधिकरण

प्रथम अध्याय

७३वां प्रकरण

कारुक रक्षणम् ।

प्रजा के पीड़न करने वाले लोगों को कण्टक कहते हैं। इन प्रजा पीड़कों में कारुक (शिल्पी) भी माने गए हैं। शिल्पियों से किस प्रकार प्रजा की रक्षा की जावे-अब इस प्रकरण में यही बात बताई जावेगी।

प्रदेष्टारस्त्रयस्त्रयो वामात्याः कण्टकशोधनं कुर्युः ॥१॥ अर्थ्यप्रतीकाराः कारुशासितारः संनिक्षेप्तारः स्ववित्तकारवः श्रेणीप्रमाणा निक्षेपं गृह्णीयुः ॥ २ ॥ विपत्तौ श्रेणी निक्षेपं भजेत ॥ ३ ॥ निर्दिष्टदेशकालकार्यं च कर्म कुर्युः ॥ ४ ॥ अनिर्दिष्टदेशकालकार्यापदेशं कालातिपातने पादहीनं वेतनं तद्द्विगुणश्च दण्डः ॥ ५ ॥ अन्यत्र भ्रेषोपनिपाताभ्याम् ॥६॥ नष्टं विनष्टं वाभ्याभवेयुः॥७॥

तीन प्रदेष्टा (कण्टकशोधन के अधिकारी) या तीन अमात्य प्रजा के पीड़न करने वाले कण्टकों से प्रजा की रक्षा करें। शिल्पियों के शासक अपनी बनवाई हुई चीज के बना देने में समर्थ, लेन देन करने वाले अपने धन से ही दूसरे की वस्तु बनाकर पीछे दाम लेने वाले बहुत व्यक्तियों के मान्य शिल्पी ही किसी की वस्तु बनाने के द्रव्य की धरोहर रख सकते हैं। यदि मूल रकम का लेने वाला किसी मृत्यु आदि की विपत्ति में फंस जावे तो उस धरोहर को उसका साक्षी अदा करे। जो किसी देश काल की प्रतिज्ञा करने में आना कानी करे, और समय पर बनाकर वस्तु न दे-तो समय की देरी में उसका चौथाई वेतन (मजदूरी) काट लिया जावे, और उससे दुगुना दंड हो। यदि किसी हिंसक प्राणी या दैवी विपत्तिके आजाने पर कोई समय पर काम न दे सका-तो उस पर कोई दंड न होगा। यदि कोई वस्तु बिगाड़दी गई या खो गई तो कारीगर को वह देनी पड़ेगी। किसी अचानक विपत्ति से ऐसा हो जावे-तो कारीगर पर कोई दंड न होगा ॥ १-७ ॥

कार्यस्यान्यथाकरणे वेतननाशस्तद्द्विगुणश्च दण्डः ॥ ८ ॥ तन्तुवाया दशैकादशिकं सूत्रं वर्धयेयुः ॥ ९ ॥ वृद्धिच्छेदे छेदद्विगुणो दण्डः ॥ १० ॥ सूत्रमूल्यं वानवेतनं क्षौमकौशेयानामध्यर्धगुणम् ॥ ११ ॥ पत्त्रोर्णाकम्बलतूलानां द्विगुणम् ॥ १२ ॥ मानहीने हीनापहीनं वेतनं तद्द्विगुणश्च दण्डः ॥ १३ ॥ तुलाहीने हीनचतुर्गुणो दण्डः ॥ १४ ॥ सूत्रपरिवर्तने मूल्यद्विगुणः ॥ १५ ॥ तेन द्विपटवानं व्याख्यातम् ॥ १६ ॥

यदि कारीगर किसी काम को उलटा करदे-तो उसका वेतन नाश होगा, उसे कुछ मजदूरी नहीं मिलेगी और उसपर मजदूरी से दुगुना दण्ड भी हो सकता है। जुलाहा दस पल सूत पर एक पल और अधिक सूत लेवे। दस पल में एक पल छीजन जाती है। इस से अधिक छीज जावे तो छीजन से दुगुना दण्ड होवे। जितना सूत का मोल हो उतनी ही बुनने की मजदूरी होगी। रेशमी स्थूल सूक्ष्म वस्त्रों की बुनाई मूल्य से ड्योढ़ी मानी जाती है यदि कपड़ा नाप में कम आया होवे-तो जितना नाप में कम हो उतना वेतन (मजदूरी) काट ली जावे और उस से दुगुना दण्ड हो। यदि सूत आदि तोल में कम बैठे-तो जितने मूल्य का सूत घटे-उस से चौगुना दण्ड हो। यदि सूत बदल दिया जावे, तो मूल्य से दुगुना दंड किया जावे। इसी तरह दुतई आदि की बुनाई के नियम भी जान लेने चाहिए ॥ ८-१६ ॥

ऊर्णा तूलायाः पञ्चपलिको विहननच्छेदो रोमच्छेदश्च ॥ १७ ॥ रजकाः काष्ठफलकश्लक्ष्णशिलासु वस्त्राणि नेनिज्युः ॥ १८ ॥ अन्यत्र नेनिजन्तो वस्त्रोपघातं षट्पणं च दण्डं दद्युः ॥ १९ ॥ मुद्गराङ्कादन्यद्वासः परिदधानास्त्रिपणं दण्डं दद्युः ॥ २० ॥ परवस्त्रविक्रयावक्रयाधानेषु च द्वादशपणो दण्डः ॥ २१ ॥ परिवर्तने मूल्यद्विगुणो वस्त्रदानं च ॥ २२ ॥ मुकुलावदातं शिलापट्टशुद्धं धौत्रसूत्रवर्णं प्रमृष्टश्वेतं चैकरात्रोत्तरं दद्युः ॥ २३ ॥ पञ्चरात्रिकं तनुरागम् ॥ २४ ॥ षड्रात्रिकं नीलं पुष्पलाक्षामञ्जिष्ठारक्तम् ॥ २५ ॥ गुरुपरिकर्मयत्नोपचार्यं जात्यं वासः सप्तरात्रिकम् ॥ २६ ॥ ततः परं वेतनहानिं प्राप्नुयुः ॥ २७ ॥

ऊन की धुनाई बुनाई में पांच २ पल रूआं कम हो जाता है। अर्थात् सौ पल में दस पल घट जाता है। धोबी लोग, लकड़ी के तख़ते या चिकनी शिला पर कपड़ा धोवें। यदि अन्य स्थान पर धोवें और वस्त्र पर कोई आघात हो जावे-तो छः पण दण्ड होवे। मुद्गर के अङ्क से चिन्हित अन्य वस्त्र के पहनने वाले धोबी पर तीन पण दंड होवे। दूसरे के वस्त्र बेचने, किराए पर दे देने या गिरवी रख देने पर बारह पण दंड होवे। यदि धोबी वस्त्र बदल दे, तो दुगुना मूल्य का दंड और वस्त्र का मोल देना पड़ेगा। धोबी, फूल की

कली के सदृश श्वेत शिला के तुल्य स्वच्छ धुले हुए सूत के वर्ण के तुल्य सलवट मेट कर एक वस्त्र को एक रात के हिसाब से धोकर देदेवे अर्थात् चार वस्त्र हों तो चार दिन में देवे या कली, शिला, सूत और श्वेत वस्त्र को क्रम से एक, दो, तीन और चार दिन में देवे। थोड़ी रङ्गत वाले को पांच दिन में, नीले रंग वाले पुष्प की तरह गहरे लाख और मजीठ के रङ्ग के कपड़े को छः दिन में देदेना चाहिए। बड़ी महनत से धुलने वाले रेशम, पशमीने आदि के वस्त्रों को सात दिन में धोकर दिया जा सकता है। यदि इस से आगे वस्त्र रखेगा-तो धोबी की धुलाई काट ली जावेगी ॥ १७-२७ ॥

श्रद्धेया रागविवादेषु वेतनं कुशलाः कल्पयेयुः ॥ २८ ॥ परार्घ्यानां पणो वेतनम् ॥ २९ ॥ मध्यमानामर्धपणः ॥ ३० ॥ प्रत्यवराणां पादः ॥ ३१ ॥ स्थूलकानां माषद्विमाषकम् ॥ ३२ ॥ द्विगुणं रक्तकानाम् ॥ ३३ ॥ प्रथमनेजने चतुर्भागः क्षयः ॥ ३४ ॥ द्वितीये पञ्चभागः ॥ ३५ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ३६ ॥ रजकैस्तुन्नवाया व्याख्याताः ॥ ३७ ॥

रङ्गत वाले कपड़ों की धुलाई के झगड़ों में समझने वाले चतुर पुरुष इसकी मजदूरी का निपटारा करदे। अधिक कीमत के वस्त्रों की धुलाई का एक पण वेतन होगा। मध्यम मूल्य के वस्त्रों की धुलाई प्रति वस्त्र आधा पण और साधारण कपड़ों की चौथाई पण धुलाई होगी। मोटे कपड़ों की धुलाई माषा दो माषा का सिक्का होगा। लाल रंग के वस्त्रों की धुलाई दो या चार मासे का सिक्का समझना चाहिए। पहली धुलाई में कपड़े की क़ीमत का चार भाग क्षय हो जावेगा। दूसरी में पांच भाग, इसी तरह प्रत्येक धुलाई में एक भाग मूल्य का घटाए रहेगा। धोबियों के तुल्य तुन्नवाया (दर्जी) के भी नियम समझ लेने चाहिए ॥ २८-३७ ॥

सुवर्णकाराणामशुचिहस्ताद्रूप्यं सुवर्णमनाख्याय सरूपं क्रीणतां द्वादशपणो दण्डः ॥ ३८ ॥ विरूपं चतुर्विंशतिपणः ॥ ३९ ॥ चोरहस्तादष्टचत्वारिंशत्पणः ॥ ४० ॥ प्रच्छन्नविरूपं मूल्यहीनक्रयेषु स्तेयदण्डः ॥ ४१ ॥ कृतभाण्डोपधौ च ॥ ४२ ॥ सुवर्णान्माषकमपहरतो द्विशतो दण्डः ॥ ४३ ॥ रूप्यधरणान्माषकमपहरतो द्वादशपणः ॥ ४४ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ४५ ॥ वर्णोत्कर्षमपसाराणां योगं वा साधयतः पञ्चशतो दण्डः ॥ ४६ ॥ तयोरपचरणे रागस्यापहारं विद्यात् ॥ ४७ ॥

दास या नौकर चाकरों से सुनार, चांदी सोना या उनके आभूषण बिना सुवर्णाध्यक्ष को सूचना दिए-खरीदे-तो उसपर बारह पण दण्ड होवे। जो अलंकार आदि

के रूप में नहीं बदले हुए सुवर्ण चोरी से खरीदता है, उसपर चौबीस पण दंड होवे। चोर के हाथ से सुवर्ण खरीदने वाले पर अड़तालीस पण दंड होवे। टूटे फूटे अलंकारों को थोड़े मोल पर खरीदने वाले पर भी चोरी का दंड होना चाहिए। बनी हुई वस्तु के बदल देने पर भी चोरी का ही दंड है। एक तोला सुवर्ण में से एक मासा अपहरण करने वाले सुनार पर बारह पण दंड होना उचित है। इसी तरह प्रत्येक मासे पर बारह पण बढ़ाने चाहिए। घटिया सुवर्ण का माल बनाकर उसपर मुलम्मा कर देने वाले, या खरे सोना चांदी में किसी अन्य तरह से खोट मिलाने वाले पर पांच सौ दंड हों। इनकी पहचान, उस आभूषण को आंच में देने से हो जावेगी ॥३८-४७॥

मापको वेतनं रूप्यधरणस्य ॥ ४८ ॥ सुवर्णस्याष्टभागः ॥ ४९ ॥ शिक्षाविशेषेण द्विगुणा वेतनवृद्धिः ॥ ५० ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ५१ ॥ ताम्रवृत्तकंसवैकृन्तकारकूटकानां पञ्चकं शतं वेतनम् ॥ ५२ ॥ ताम्रपिण्डो दशभागः क्षयः ॥ ५३ ॥ पलहीने हीनद्विगुणो दण्डः ॥ ५४ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ५५ ॥

एक धरण (तोल) चांदी की वस्तु के बनाने की मजदूरी एक मासा अर्थात् सिक्के का सोलहवां भाग है। सुवर्ण के आभूषण बनवाने में सुवर्ण के मोल का आठवां भाग मजदूरी होगी। यदि कोई विशेष कारीगरी दिखावे-तो दुगुनी मजदूरी हो सकेगी। इसी तरह जैसी कोई कारीगरी करेगा-वैसी मजदूरी होगी। तांबा, सीसा, कांसी, लोहा, रांग, पीतल की बनवाई में लिए प्रतिशत पांच रुपये वेतन (मजदूरी) होगा। तांबे की वस्तु बनवाने दशवां भाग छीजन का समझना चाहिए। यदि फिर भी एक पल और अधिक छीज जावे-तो उस मोल से दुगुना दण्ड हो। इसी प्रकार अधिक हानि पर दण्ड बढ़ा दिया जावेगा ॥४८-५५॥

सीसत्रपुपिण्डो विंशतिभागः क्षयः ॥ ५६ ॥ काकणी चास्य पलवेतनम् ॥ ५७ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ५८ ॥ रूपदर्शकस्य स्थितां पणयात्रामकोप्यां कोपयतः कोप्यामकोपयतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ५९ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ६० ॥ कूटरूपं कारयतः प्रतिगृह्णतो निर्यापयतो वा सहस्रं दण्डः ॥ ६१ ॥ कोशे प्रक्षिपतो वधः ॥ ६२ ॥

सीसा, और रांग की वस्तु बनवाने में बीसवां भाग छीज जाता है। इसमें प्रति पल की बनवाई एक काकणी (छोटा सिक्का) होगी। इस तरह प्रत्येक पल पर एक काकणी बढ़ती जावेगी। जो रुपयों का परीक्षक, चलने वाले रुपयों को न चलने और न चलने वालों को चलने दे-उसपर बारह पण दंड होना चाहिए। इसी तरह बड़े पणों

पर जुरमाने की रक़म बढ़ादी जावे। यदि कोई जाली सिक्के बनाकर चलावे या जो जाली सिक्के जानकर लेवे या उन्हें चलने देवे-तो उसपर एक सहस्र पण का दंड होवे। अच्छे सिक्कों के स्थान में जो पुरुष, सरकारी कोष में जाली सिक्के रख दे-उसको वध दंड की व्यवस्था है ॥५६-६२॥

अधरकपांसुधावकाः सारत्रिभाग लभेरन् ॥६३॥ द्वौ राजा रत्नं च॥६४॥ रत्नापहार उत्तमो दण्डः ॥ ६५ ॥ खनिरत्ननिर्धिनिवेदनेषु षष्ठमंशं निवेत्ता लभेत ॥ ६६ ॥ द्वादशमंशं भृतकः ॥ ६७ ॥ शतसहस्रादूर्ध्वं राजगामी निधिः ॥ ६८ ॥ ऊने षष्ठमंशं दद्यात् ॥ ६९ ॥ पौर्वपौरुषिकं निधिं जानपदः शुचिः स्वकरणेन समग्रं लभेत ॥ ७० ॥ स्वकरणाभावे पञ्चशतो दण्डः ॥७१ ॥प्रच्छन्नादाने सहस्रम् ॥ ७२ ॥

खान से रत्न निकालने वाले, साफ करने वाले, खोदने फोड़ने वाले-रत्नों के मूल्य का तीसरा भाग वेतन में लेकर बांटलें। राजा उसके दो भाग ले या उस रत्न को ले लेवे। यदि कोई रत्न को उड़ाले, तो उसपर उत्तम साहस दण्ड होना चाहिए यदि कोई रत्नों की खान या गडे खजाने की राजा को सूचना देवे-तो उसे उस धन का छठा भाग मिलना चाहिए। यदि वह पुरुष राजा का इसी काम पर नौकर हो-तो उसको बारहवां अंश मिलना ठीक है। एक लाख से अधिक धन का स्वामी राजा होगा। इससे कम पर ही छठा भाग दिया जावेगा। यदि कोई खजाना किसी के पूर्वजों का लेख आदि से सिद्ध हो जावे, तो शुद्ध आचार वाला पुरुष, उस खजाने के पाने का अधिकारी है। यदि किसी पर लेख आदि न हों और व्यर्थ ही खजाने को अपना बनाना चाहे-तो उसपर पांच सौ पण दंड होवे। यदि वह चुप चाप खजाने को ले जावे-तो एक सहस्र मुद्रा दंड हो ॥६३-७२॥

भिषजः प्राणाबाधिकमनाख्यायोपक्रममाणस्य विपत्तौ पूर्वः साहसदण्डः ॥ ७३ ॥ कर्मापराधेन विपत्तौ मध्यमः ॥७४॥ मर्मवधवैगुण्यकरणे दण्डपारुष्यं विद्यात् ॥ ७५ ॥

यदि वैद्य राजा को बिना सूचना दिए ऐसे रोगी की चिकित्सा करे-जिसके मरजाने का भय हो और वह मरजावे, तो वैद्य को पूर्व साहस दंड होवे। यदि उसकी मृत्यु कुछ चिकित्सा के दोष से हुई हो तो मध्यम साहस दंड हो। यदि मर्म स्थान के काटने छेदन में वह अङ्ग बेकार हो जावे, तो दंड पारुष्य के नियमानुसार उस वैद्य पर भी दंड हो ॥७३-७५॥

कुशीलवा वर्षारात्रमेकस्था वसेयुः ॥ ७६ ॥ कामदानमतिमात्रमेकस्यातिपातं च वर्जयेयुः ॥ ७७॥ तस्यातिक्रमे द्वादशपणो दण्डः ॥ ७८ ॥ कामं देशजातिगोत्रचरणमैथुनापहाने नर्मयेयुः ॥ ७९ ॥ कुशीलवैश्चारणा भिक्षुकाश्च व्याख्याताः ॥ ८० ॥ तेषामयः शूलेन यावतः पणानभिवदेयुस्तावन्तः शिफाप्रहारा दण्डाः ॥ ८१ ॥ शेषाणां कर्मणां निष्पत्तिवेतनं शिल्पिनां कल्पयेत् ॥ ८२ ॥

नट आदि तमाशा करने वाले लोग, वर्षा ऋतु में एक ही स्थान पर रहें। यदि कोई उन पर प्रसन्न होकर बहुत अधिक दान देवे-तो इस अधिक दान को राजा रोक देवे। इस नियम के उल्लंघन करने वाले पर बारह पण दंड होना चाहिए। देश, जाति, गोत्र, शाखा और मैथुन की बात छोड़कर नट भांड आदि कुछ भी हंसी कर सकते हैं। नटों के सदृश ही गाने बजाने वाले और भिक्षुकों के नियम समझ लेने चाहिए। यदि इन्होंने किसी के मर्म स्थान पर प्रहार किया-तो इनपर जितना पण दण्ड हो-यदि वे उतना न दे सकें-तो उतने ही गिनती के इनके शरीर पर कोड़े या बेंत लगवाये जावें। इनके अतिरिक्त अन्य काम करने वालों की भी वृत्ति या दण्ड पूर्वोक्त के तुल्य ही कल्पना कर लेना चाहिए ॥७६-८२॥

एवं चोरानचोराख्यान्वणिक्कारुकुशीलवान् ।
भिक्षुकान्कुहकांश्चान्यान्वारयेद्देशपीडनात् ॥ ८३ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे कारुकरक्षणं प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
आदितोऽष्टसप्ततिरध्यायः ॥ ७८ ॥

इस प्रकार साहूकार, शिल्पी, नट भिक्षुक और ऐन्द्र जालिक (बाजीगर) आदि अचोर के रूप में चोर ही हैं। इनसे पीड़ित होती हुई प्रजा की राजा रक्षा करता रहे ॥८३॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन अधिकरण में कारुक आदि से रक्षा करने का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।



दूसरा अध्याय

७७ वां प्रकरण

वैदेहकरक्षणम् ।

इस प्रकरण में व्यापारियों से प्रजा की रक्षा किस प्रकार की जावे-इस विषय का वर्णन होगा।

संस्थाध्यक्षः पण्यसंस्थायां पुराणभाण्डानां स्वकरणविशुद्धानामाधानं विक्रयं वा स्थापयेत् ॥ १ ॥ तुलामानभाण्डानि चावेक्षेत पौतवापचारात् ॥२॥ परिमाणीद्रोणयोरर्धपलहीनातिरिक्तमदोषः ॥ ३ ॥ पलहीनातिरिक्ते द्वादशपणो दण्डः ॥ ४ ॥ तेन पलोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ ५ ॥ तुलायाः कर्षहीनातिरिक्तमदोषः ॥ ६ ॥ द्विकर्षहीनातिरिक्ते षट्पणो दण्डः ॥ ७ ॥ तेन कर्षोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ ८ ॥

संस्थाध्यक्ष, (माल बिकवाने का सरकारी अध्यक्ष) बाजार में लेख आदि से अपनी सिद्ध की हुई व्यापारी की वस्तुओं को कहीं भरने दे या कोई बेचना चाहे-तो बिकवादे। तराजू बाट और नांप के बर्तनों की भी यह अध्यक्ष पड़तालता रहे, जिससे तोल में कमी न हो जावे। परमाणी या द्रोणी तोल के नांपने वाले बर्तन या तोल में ही आधा पल कमती बढ़ती हो जाना कोई अपराध नहीं है। यदि पल से अधिक कमती बढ़ती-हो जावे, तो बारह पण दण्ड होना चाहिए। इसी तरह पल के घटने बढ़ने से दंड की व्यवस्था भी घटती बढ़ती जावेगी। इसी प्रकार किसी एक तुला में एक कर्ष का फर्क रह जावे, तो कोई दोष नहीं मानना चाहिए। दो कर्ष घटने बढ़ने पर छः पण दंड किया जावे। इसी तरह कर्ष के घटने बढ़ने पर दंड की व्यवस्था है ॥१-८॥

आढकस्यार्धकर्षहीनातिरिक्तमदोषः ॥ ६ ॥ कर्षहीनातिरिक्ते त्रिपणो दण्डः ॥ १० ॥ तेन कर्षोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ ११ ॥ तुलामानविशेषाणामतोऽन्येषामनुमानं कुर्यात् ॥ १२ ॥ तुलामानाभ्यामतिरिक्ताभ्यां क्रीत्वा हीनाभ्यां विक्रीणानस्य त एव द्विगुणा दण्डाः ॥ १३ ॥ गण्यपण्येष्वष्टभागं पण्यमूल्येष्वपहरतः षण्णवतिर्दण्डः ॥ १४ ॥ काष्ठलोहमणिमयं रज्जुचर्ममृण्मयं सूत्रवल्करोममयं वा जात्यमित्य जात्यं विक्रयाधानं नयतो मूल्याष्टगुणो दण्डः ॥ १५ ॥

आढ़क तोल के आधा कर्ष कमती बढ़ती हो जाने पर कोई अपराध नहीं होगा और इससे अधिक कमती बढ़ती होने पर तीन पण दंड होवे। इसी प्रकार कर्षों के घटने बढ़ने

पर दंड होना चाहिए। अन्य तुला या मान के विषय जो कुछ नहीं कहा गया, उसकी भी इसी कथन से व्यवस्था कर लेनी चाहिए। जो व्यापारी, अधिक तोलने वाले तराजू और बाटों से खरीदे और कम तोलने वाले तराजू और बांटों से बेचे, उसे दुगुना दंड होना चाहिए। गिनकर बेची जाने वाली चीजों में मूल्य का आठवां भाग ठग लेने वाले बनिये पर छियानवें पण दंड होना उचित है। जो व्यापारी, काष्ठ लोह और पत्थर, रस्सी, चमड़ा और मिट्टी तथा सूत, वल्कल और ऊन की घटिया वस्तुओं को धोखे से बढ़िया बताकर बेच देता है या कोठे में भर देता है, उसपर कीमत से आठ गुना दंड होना चाहिए ॥९-१५॥

सारभाण्डारमित्यसारभाण्डं तज्जात मित्य तज्जातं राधायुक्तमुपधियुक्तं समुद्रपरिवर्तिमं वा विक्रयाधानं नयतो हीनमूल्यं चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १६ ॥ पणमूल्यं द्विगुणो द्विपणमूल्यं द्विशतः ॥ १७ ॥ तेनार्घवृद्धौ दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥१८॥ कारुशिल्पिनां कर्मगुणापकर्षमाजीवं विक्रयं क्रयोपधातं वा संभूय समुत्थापयतां सहस्रं दण्डः ॥ १९ ॥

बनावटी कस्तूरी कपूर आदि को असली तथा जो वस्तु कश्मीर आदि देश की न हो, उसको उस देश की बताकर एवं बनावटी शोभायुक्त वस्तु बनाकर छल से बनी हुई वस्तु को असली बताकर समुद्र की रत्न आदि वस्तु को बदल कर बेचने रखने वाले पर चौवन पण दण्ड होवे। यदि यह माल असली मोल पर बेचा हो तो पहले से दुगुना और दुगुने मोल पर बेचा हो तो दो सौ पण दण्ड होवे। इसी प्रकार मूल्य बढ़ने पर दंड की वृद्धि होती जानी चाहिए। यदि कारीगर लोग कर्म और गुण में कम कीमत वाले मकान आदि को सदा के लिए बेचने के समय मिलकर किसी मकान के कमती बढ़ती दाम करदें तो उनपर सहस्र पण दंड होना चाहिए ॥ १६-१९ ॥

वैदेहकानां वा संभूय पण्यमारुन्धतामनर्घेण विक्रीणतां वा सहस्रं दण्डः ॥ २० ॥ तुलानामानान्तरमर्घवर्णान्तरं वा धरकस्य मापकस्य वा पणमूल्यादष्टभागं हस्तदोषेणाचरतो द्विशतो दण्डः ॥ २१ ॥ तेन द्विशतोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ २२ ॥ धान्यस्नेह क्षारलवणगन्धभैषज्यद्रव्याणां समवर्णोपधाने द्वादशपणो दण्डः ॥ २३ ॥ यन्निसृष्टमुपजीवेयुस्तदेषां दिवससंजातं संख्याय वणिक् स्थापयेत् ॥ २४ ॥

इसी तरह जो व्यापारी मिलकर किसी माल के बिकने को रोक दें और समय पर भाव से अधिक दाम लेकर बेचें तो उनपर सहस्र पण दंड होवे। तराजू बाट भाव या वर्णों के कारण जो लाभ हो, उसमें तोलने या नापने वाले की हाथ चालाकी से वस्तु के

मोल से आठवां भाग अधिक खैंच लिया गया हो-तो उसपर दो सौ रुपये दण्ड होना चाहिए इसी तरह कीमत के अधिक खैंचने पर अधिक दण्ड की व्यवस्था कर दी जावे। धान्य, घृत, तेल, गुड़, लवण, गन्ध औषध आदि वस्तुओं में कैसी ही रंग की कोई चीज़ मिला कर वेचने पर बारह पण दण्ड होवे। व्यापारी को जो प्रति दिन लाभ हो-उसका हिसाव करके अपनी वही में लिखा करे ॥ २०-२४ ॥

क्रेतृविक्रेत्रोरन्तरपतितमादायादन्यद्भवति ॥ २५ ॥ तेन धान्यपण्यनिचयांश्चानुज्ञाताः कुर्युः ॥ २६ ॥ अन्यथा निचितमेषां पण्याध्यक्षो गृह्णीयात् ॥ २७ ॥ तेन धान्यपण्यविक्रये व्यवहरेतानुग्रहेण प्रजानाम् ॥ २८ ॥ अनुज्ञातक्रयादुपरि चैषां स्वदेशीयानां पण्यानां पञ्चकं शतमाजीवं स्थापयेत् ॥ २९ ॥ परदेशीयानां दशकम् ॥३०॥ ततः परमर्घं वर्धयतां क्रये विक्रये वा भावयता पणशते पञ्चपणाद्द्विशतो दण्डः ॥ ३१ ॥ तेनार्घवृद्धौ दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ ३२ ॥

खरीदार और वेचने वाले के वीच में संस्थाध्यक्ष को अन्न आदि टैक्स मिलता है उससे अलग एक राशि वन जाती है। इस से व्यापारी धान्य आदि वस्तुओं की ढेरी सरकारी आज्ञा से खरीदे। यदि कोई ऐसा न करे-तो उनकी ढेरी को पण्याध्यक्ष जब्त करले संस्थाध्यक्ष को चाहिए, कि वह धान्य आदि वस्तुओं के वेचने खरीदने में ऐसा व्यवहार करे-कि जिस से प्रजा के लिए सुखकारी हो सके जो वस्तु संस्थाध्यक्ष की आज्ञा से वेचता है, उनमें अपने देश की वस्तुओं पर प्रतिशत पांच पण लाभ लेना चाहिए। विदेश की वस्तुओं पर दश प्रतिशत लाभ होना उचित है। उस से अधिक मूल्य बढ़ाकर खरीदने वेचने वाले यदि पांच प्रतिशत अधिक लाभ लेवे-तो उसपर दो सौ पण दण्ड होवे। इसी तरह जो मूल्य बढ़ाया जावे, उसी प्रकार से उसपर दण्ड भी अधिक हो जाना चाहिए ॥२५-३२॥

संभूयक्रये चैषामविक्रीतेतान्यं संभूयक्रयं दद्यात् ॥ ३३ ॥ पण्योपघाते चैषामनुग्रहं कुर्यात् ॥ ३४ ॥ पण्यबाहुल्यात्पण्याध्यक्षः सर्वपण्यान्येकमुखानि विक्रीणीत ॥ ३५ ॥ तेष्वविक्रीतेषु नान्ये विक्रीणीरन् ॥ ३६ ॥ तानि दिवसवेतनेन विक्रीणीरन्ननुग्रहेण प्रजानाम् ॥ ३७ ॥ देशकालान्तरितानां तु पण्यानां ॥ ३८ ॥

यदि कुछ लोगों ने मिलकर सरकारी माल वेचने का ठेका लिया, और यदि वह नहीं वेच सके-तो उन से छीन कर दूसरे को देदेवे। यदि व्यापारी पर सरकारी माल जल अग्नि आदि से नष्ट हो जावे-तो उसे मुआफ़ कर देना चाहिए। वस्तुएं बहुत सी होती हैं इससे पण्याध्यक्ष, प्रत्येक वस्तु को उसकी मंडी में ही विकने दे। यदि सरकारी माल उनसे

भी न बिके-तो अन्य व्यापारी तब तक माल न बेचे-जब तक वह न बिक जावे। उस माल को उस प्रकार प्रति दिन मजदूरी पर बिकवाया जावे, जिस से प्रजा को कोई कष्ट न बढ़ जावे। जो वस्तु अन्य देश या पूर्व समय में उत्पन्न हुई-उन को भी इकट्ठी करवाकर समय समय पर पण्याध्यक्ष विकवाता रहे॥ ३३-३८॥

प्रक्षेपं पण्यनिष्पत्तिं शुल्कं वृद्धिमवक्रयम्।
व्ययानन्यांश्च संख्याय स्थापयेदर्घमर्घवित्॥ ३६॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे वैदेहकरक्षणं द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥
आदित एकोनाशीतिः॥ ७६॥

मूल्य बनवाई का समय, मजदूरी, ब्याज, भाड़ा तथा अन्य व्यय लगाकर चतुर पण्याध्यक्ष वस्तुओं के भावों को नियत करे॥ ३६॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत, कण्टकशोधन अधिकरण में व्यापारियों से रक्षा करने का दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



तीसरा अध्याय

७८वां प्रकरण

उपनिपात प्रतिकार

इस प्रकरण में दैवी आपत्तियों से प्रजा के बचाने की विधि का वर्णन किया जावेगा।

दैवान्यष्टौ महाभयानि॥ १॥ अग्निरुदकं व्याधिर्दुर्भिक्षं मूषिका व्यालाः सर्पा रक्षांसीति॥ २॥ तेभ्यो जन पदं रक्षेत्॥३॥ ग्रीष्मे बहिरधिश्रयणं ग्रामाः कुर्युः॥ ४॥ दशमूलीसंग्रहेणाधिष्ठितावा॥ ५॥ नागरिकप्रणिधावग्निप्रतिषेधो व्याख्यातः॥ ६॥ निशान्त प्रणिधौ राजपरिग्रहे च॥ ७॥ बलिहोमस्वस्तिवाचनैः॥ पर्वसु चाग्निपूजाः कारयेत्॥ ८॥

अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष, चूहे, हिंसक जन्तु, सर्प और राक्षस-ये आठ दैव से आने वाले महाभय हैं। इन महाभयों से राष्ट्र की रक्षा करना राजा का परम कर्तव्य है। गांव के रहने वाले गरमी के दिनों में अपने झोपड़ों से बाहर भोजन बनावे और यह भी जहां सरकारी दश कुल पर नियुक्त अफसर-जिसको जिस जगह भोजन बनाने की आज्ञा दे, वहीं उसे भोजन बनाना चाहिए, नागरिक प्रणिधि (अधि:१-६) नामक प्रकरण में अग्नि

से बचने के उपाय बता दिए गए हैं। निशान्त प्रणिधि (अधि.१-२०) प्रकरण के अन्तर्गत राज परिग्रह नामक प्रकरण में भी ये अग्नि शान्त करने वाले उपाय लिखे हैं। पर्व के दिनों में बलि, होम, स्वस्ति वाचन से अग्नि पूजा करनी चाहिए ॥१-८॥

वर्षारात्रमनूपग्रामा पूर्वेलामुत्सृज्य वसेयुः ॥ ९ ॥ काष्ठवेणुनावश्चापगृह्णीयुः ॥१०॥ उह्यमानमलाबुदीतप्लवगण्डिकावेणिकाभिस्तारयेयुः ॥ ११ ॥ अनभिसरतां द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ अन्यत्र प्लवहीनेभ्यः ॥ १३ ॥ पर्वसु च नदीपूजाः कारयेत् ॥ १४ ॥ मायायोगविदो वेदविदो वा वर्षमभिचरेयु ॥ १५ ॥

वर्षा ऋतु की रातों में नदी के समीप के गांव, पूर्व की ओर के तट को छोड़ कर शयन करें। काष्ठ, बांस के बेड़े और नावों का सदा संग्रह रखें। बहकर जाते हुए पुरुष को तूंबी, मशक, नौका, काठ और बांसों के बेड़े से तिरा कर बचा लेवे। जो डूबते हुए पुरुष के बचाने का प्रयत्न न करे-उसपर बारह पण दण्ड होवे। यदि उनके पास नौका आदि साधन न हो-तो उनपर दण्ड नहीं होगा। पर्व के समय पर नदी-पूजा होनी चाहिए। अथर्व वेद के योगों को जानने वाले, या तान्त्रिक लोग, अतिवृष्टि की शान्ति का प्रयोग करते रहें ॥९-१५॥

वर्षावग्रहे शचीनाथगङ्गापर्वतमहाकच्छपूजाः कारयेत् ॥ १६ ॥ व्याधिभयमौपनिषदिकैः प्रतीकारैः प्रतिकुर्युः ॥१७॥ ओषधैश्चिकित्सकाः शान्तिप्रायश्चित्तैर्वा सिद्धतापसाः ॥ १८ ॥ तेन मरको व्याख्यातः ॥१९॥ तीर्थाभिषेचनं महाकच्छवर्धनं गवां श्मशानावदोहनं कबन्धदहनं देवरात्रिं च कारयेत् ॥ २० ॥ पशुव्याधिमरके स्थानान्यर्धनीराजनं स्वदैवतपूजनं च कारयेत् ॥ २१ ॥

वर्षा की समाप्ति पर इन्द्र, गङ्गा, पर्वत और समुद्र की पूजा करवावे। औपनिषदिक प्रकरण में कहे हुए उपायों से व्याधि और भय की शान्ति करे। चिकित्सक लोग औषध, और सिद्ध तापस, शान्ति प्रायश्चितों से रोग की शान्ति करे। इसी तरह संक्रामक बिमारियों की शान्ति के उपाय करते रहना चाहिए। गङ्गा आदि तीर्थों में स्नान, समुद्र पूजा, श्मशान में गोदोहन, आटे के कबन्ध का दहन तथा देवता के निमित्त जागरण करे। पशुओं में व्याधि या मरी फैल जावे-तो स्थान २ पर दीपक दान और अपने २ देवता का पूजन करे ॥१६-२१॥

दुर्भिक्षे राजा बीजभक्तोपग्रहं कृत्वानुग्रहं कुर्यात् ॥ २२ ॥ दुर्गसेतुकर्म वा भक्तानुग्रहेण भक्तसंविभागं वा देशनिक्षेपं वा ॥ २३ ॥ मित्राणि वाप्यपाश्रयेत

॥ २४ ॥ कर्शनं वमनं वा कुर्यात् ॥२५॥ निष्पन्नसस्यमन्यविषयं वा सजनपदो यायात् ॥ २६ ॥ समुद्रसरस्तटाकानि वा संश्रयेत ॥ २७॥ धान्यशाकमूलफलावापान्सेतुषु कुर्वीत ॥ २८ ॥ मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्यारम्भान्वा ॥ २९ ॥

दुर्भिक्ष के होने पर राजा प्रजा को बीज और खाद्य सामग्री देकर उनका उपकार करे। इस समय राजा दुर्ग या कोई सेतु बनवाना आरम्भ करदे और वह भोजन देने के ध्यान से होना चाहिए। जो परिश्रम न कर सकें-उनको भोजन बटवाया जावे तथा सुभिक्ष पूर्ण देश में भेजने की व्यवस्था भी कर दे। यदि अधिक आवश्यकता हो तो प्रजा की रक्षा के निमित्त राजा अपने मित्र राजाओं से सहायता भी लेवे। मालदार आदमियों पर कर लगा कर या चन्दा लेकर दीनों का उद्धार करे। यदि अन्य प्रकार से कार्य न चले-तो अपनी सारी प्रजा को लेकर राजा अन्य सुभिक्ष वाले मित्र राष्ट्र में चला जावे। समुद्र, जलाशय या अन्य सजल प्रदेश का आश्रय लेना भी उचित है। वहां पर धान्य, शाक, मूल, फल की क्यारी बनवा कर खेती करवावे। मृग, पशु, पक्षी, दुष्ट जन्तु और मछली के शिकार का सुभीता करदे या इनकी प्राप्ति के देश में चला जावे ॥२२-२९॥

मूषिकभये मर्जारनकुलोत्सर्गः ॥ ३० ॥ तेषां ग्रहणहिंसायां द्वादशपणो दण्डः ॥ ३१ ॥ शुनामनिग्रहे च ॥ ३२ ॥ अन्यत्रारण्यचरेभ्यः ॥ ३३ ॥ स्नुहिक्षारीलप्तानि धान्यानि विसृजेदुपनिषद्योगयुक्तानि वा मूषिककरं वा प्रयुञ्जीत ॥ ३४ ॥ शान्तिं वा सिद्धतापसाः कुर्युः ॥ ३५ ॥ पर्वसु च मूषिकपूजाः कारयेत् ॥ ३६ ॥ तेन शलभपक्षिक्रिमिभयप्रतीकारा व्याख्याताः ॥ ३७ ॥

मूषकों के भय उत्पन्न होने पर बिलाव, नकुल आदि जीवों को छोड़े। जो बिलाव नकुल को मारे-उनपर बारह पण दण्ड हो। अपने २ कुत्तों को जो रोक कर नहीं रखे-उस पर भी दण्ड हो। जंगली कुत्तों के रोक कर रखने का किसी पर भार नहीं है। सेहुंड (छोटा थूहर) के दूध में या उपनिषद प्रकरण में कही हुई औषधों के रस में धान्य भिगो कर चूहों को खिलाये जावे-या चूहों के पकड़ने का उपाय किया जावे। सिद्ध तापस शान्ति मन्त्र जपे। पर्व के समय मूषको की पूजा कर देनी चाहिए। इसी प्रकार शलभ, पक्षी और छोटे छोटे कीटों के भय से प्रतीकार करने के उपाय जान लेने चाहिए ॥३०-३७॥

व्यालभये मदनरसयुक्तानि पशुशवानि विसृजेत् ॥३८॥ मदनकोद्रवपूर्णान्यौदर्याणि वा ॥ ३९ ॥ लुब्धकाः श्वगणिनो वा कूटपञ्जरावपातैश्चरेयुः ॥ ४०॥ आवरणिनः शस्त्रपाणयो व्यालानभिहन्युः ॥ ४१ ॥ अनभिसर्तुर्द्वादशपणो दण्डः

॥ ४२ ॥ स एव लाभो व्यालघातिनः ॥ ४३ ॥ पर्वसु स पर्वतपूजाः कारयेत् ॥ ४४ ॥ तेन मृगपशुपक्षिसंघग्राहप्रतीकारा व्याख्याताः ॥ ४५ ॥

हिंसक व्याघ्रादि पशुओं के भय के खड़े होने पर औपनिषदिक प्रकरण में बताए हुए मदन रस आदि से युक्त पशुओं के शरीरों को वन में डलवादे। मदन (धतूरा) कोदों को पेट में भर कर पशुओं की लाश भी वन में डलवा देनी चाहिए। शिकारी या कुत्तों के साथ शिकार करने वाले लोग, धोखे से जाल बिछा कर पींजरों में उन्हें पकड़ ले वीर लोग कवच पहन कर शस्त्र से व्याघ्र आदि को मार डाले। जो शक्ति रखते हुए हिंसकों पर आक्रमण न करे-उस पर बारह पण दंड होवे। जो व्याघ्रादि जन्तु को मार लेवे-उसको बारह पण इनाम में मिलना चाहिए। पर्व पर पर्वत पूजा होनी उचित है। इसी मृग, पशु पक्षी संघ के पकड़ने या मार देने के उपायों को समझ लेना चाहिए ॥३८-४५)

सर्पभये मन्त्रैरोषधिभिश्च जाङ्गलीविदश्चरेयुः ॥ ४६ ॥ संभूय चोपसर्पान्हन्युः ॥ ४७ ॥ अथर्ववेदविदो वाभिचरेयुः ॥ ४८ ॥ पर्वसु नागपूजाः कारयेत् ॥ ४९ ॥ तेनोदकप्राणिभयप्रतीकारा व्याख्याताः ॥ ५० ॥

जब सर्पों का अधिक भय हो-तो मन्त्र विष और औषधों से वैद्य उनका प्रतीकार करें, जहां कहीं सर्प को लोग देखें-लपक कर उनको मार देवे। अथर्वेद के जानने वाले उसका मन्त्र प्रयोग से उपचार करें। पर्व पर नाग पूजा की जावे। इसी तरह जलचर प्राणियों के भय के उपायों का अवलम्बन करना चाहिए ॥४६-५०॥

रक्षोभये रक्षोघ्नान्यथर्ववेदविदो मायायोगविदो वा कर्माणिकुर्युः ॥५१॥ पर्वसु च वितर्दिछत्रोल्लोपिकाहस्तपताकाच्छागोपहारैश्चैत्यपूजाः कारयेत् ॥५२॥ चरुं वश्चरामीत्येवं सर्वभयेष्वहोरात्रं चरेयुः ॥ ५३ ॥ सर्वत्र चोपहतान्पितेवानुगृह्णीयात् ॥ ५४ ॥

राक्षसों के भय के उत्पन्न होने पर राक्षसों के नाशक अथर्व वेद के मंत्र या तांत्रिक मन्त्रों के अनुसार कर्म किये जावें। पर्व काल में वेदी के ऊपर छत्र, भोजन सामग्री, छोटी २ पताका, बकरा आदि की भेंट दे और चैत्य (देवालय के बगीचे) में पूजा करे। प्रत्येक भय में "तुमको मैं चरु अर्पण करता हूं" ऐसा मन्त्र बोलकर रात दिन हवन करे। उपर्युक्त भय से ग्रस्त प्रजा की राजा-पिता की तरह रक्षा करे ॥५१-५४॥

मायायोगविदस्तस्माद्विषये सिद्धतापसाः।
वसेयुः पूजिता राज्ञा दैवापत्प्रतिकारिणः ॥ ५५ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे उपनिपातप्रतीकारस्तृतीयो ऽध्यायः ॥३॥
आदितो ऽशीतितमः ॥ ८० ॥

राजा, दैवी आपत्तियों से रक्षा करने के लिए माया योग (तान्त्रिक विधि) और अथर्व वेद के जानने वाले सिद्ध तापसों को बड़े आदर से अपने देश में बसावे ॥२५॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन प्रकरण में दैवी आपत्तियों के प्रतीकार का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।



चौथा अध्याय

७६ वां प्रकरण

गूढ़ाजीविनांरक्षा

इस प्रकरण में छुपे हुए प्रजा पीड़कों से रक्षा करने के उपाय बताये जावेंगे।

समाहर्तृप्रणिधौ जनपदरक्षणमुक्तम् ॥ १ ॥ तस्य कण्टकशोधनं वक्ष्यामः ॥ २ ॥ समाहर्ता जनपदे सिद्धतापसप्रव्रजितचक्रचरचारणकुहकप्रच्छन्दककार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकचिकित्सकोन्मत्तमूकवधिरजडान्धवैदेहककारुशिल्पिकुशीलववेशशौण्डिकापूपिकपाक्वमांसिकौदनिकव्यञ्जनान्प्रणिदध्यात् ॥३॥

समाहर्तृ प्रचार प्रकरण में जन पद की रक्षा के उपाय बता दिए गए हैं। अब जन पद के प्रच्छन्न प्रजा पीड़कों से बचने के उपाय बताए जाते हैं। समाहर्ता नामक राज कर्मचारी (अफसर) राष्ट्र में सिद्ध, तापस संन्यासी, निरन्तर घूमने वाले, चारण, कुहक (कारीगर) प्रच्छन्दक, (स्वच्छन्द) घूमने वाले, ज्योतिषी, शकुन, मुहूर्त बताने वाले, चिकित्सक, पागल, गूंगे, बहरे, मूर्ख, अन्धे, व्यापारी, कारीगर, शिल्पी, नट, भांड, कलाल, हलवाई, पक्का मांस बेचने वाले, तथा रसोइये आदि के रूप में गुप्त चरों को नियुक्त करे ॥१-३॥

ते ग्रामाणामध्यक्षाणां च शौचाशौचं विद्युः ॥ ४ ॥ यं चात्र गूढ़जीविनं विशङ्केत तं सत्त्रिसवर्णेनापसर्पयेत् ॥ ५ ॥ धर्मस्थं विश्वासोपगतं सत्त्री ब्रूयात् ॥ ६ ॥ असौ मे बन्धुरभियुक्तः ॥ ७ ॥ तस्यायमनर्थः प्रतिक्रियतामय चार्थः प्रतिगृह्यतामिति ॥ ८ ॥ स चेत्तथा कुर्यादुपदाग्राहक इति प्रवास्येत ॥ ९ ॥ तेन प्रदेष्टारो व्याख्याताः ॥ १० ॥

वे गुप्तचर, गांव के मनुष्य और अध्यक्षों की पवित्रता अपवित्रता का पता रखें। जिसको गुप्तचर, गूढ़जीवी (छलोपजीवी) समझे उसे संत्री के साथ अध्यक्ष के सामने उपस्थित करे। विश्वास योग्य धर्माध्यक्ष को सत्री कहे, कि यह अभियुक्त मेरा बन्धु है-उसके इस अपराध को क्षमा करो और इस के बदले में यह धन राशि स्वीकार करो। यदि न्यायाधीश रुपये लेकर उसे छोड़ दे-तो अफसर को घूंस खोर समझ कर निकाल देना चाहिए। यही नियम प्रदेष्टा (राज्य का दूसरे अध्यक्ष) के विषय में जानने चाहिए ॥४-१०॥

ग्रामकूटमध्यक्षं वा सत्त्री ब्रूयात् ॥ ११ ॥ असौ जाल्मः प्रभूतद्रव्य-स्तस्यायमनर्थः ॥ १२ ॥ तेनैनमाहारयस्वेति ॥ १३ ॥ स चेत्तथा कुर्या-दुत्कोचक इति प्रवास्येत ॥ १४ ॥ कृतकाभियुक्तो वा कूटसाक्षिणो ऽभिज्ञा-तानर्थवैपुल्येनारभेत ॥ १५ ॥ ते चेत्तथा कुर्युः कूटसाक्षिणः इति प्रवास्येरन ॥ १६ ॥ तेन कूटश्रावणकारका व्याख्याताः ॥ १७ ॥

सत्री नामक गुप्तचर ग्राम के चौधरी या अध्यक्ष से कहें, कि यह दुष्ट बड़ा सम्पत्ति, मान् है, उसने आज यह अपराध किया है-अब चलकर उससे बहुत कुछ छीना जा सकता है। यह सुनकर यदि गांव का चौधरी या अध्यक्ष उससे द्रव्य छीन लावे, तो उसे उत्कोचक (रिश्वत खोर) समझकर राजा उसे निकाल दे। बनावटी अपराधी बनकर गुप्तचर, जिनको झूंठी गवाही देने वाला समझे-उनसे कहे, मैं तुमको बहुत धन दूंगा, तुम झूंठी गवाही दे दो। यदि वे ऐसा कह दें-तो उनको झूंठे साक्षी समझकर देश से बाहर निकलवा दिया जावे। यही नियम झूंठी दस्तावेज बनाने वाले या सहायता करने वालों के जानने के लिए उचित होंगे ॥११-१७॥

यं वा मन्त्रयोगमूलकर्मभिः श्मशानिकैर्वा संवननकारकं मन्येत तं सत्त्री ब्रूयात् ॥१८॥ अमुष्यभार्यां स्नुषां दुहितरं वा कामये ॥ १९ ॥ सा मां प्रतिका-मयताम् ॥ २० ॥ अयं चार्थः प्रतिगृह्यतामिति ॥ २१ ॥ स चेत्तथा कुर्यात्संवन-नकारक इति प्रवास्येत ॥ २२ ॥ तेन कृत्याभिचारशीलौ व्याख्यातौ ॥ २३ ॥

मन्त्रयोग औषधिप्रयोग तथा श्मशान की क्रियाओं से जिसको वशीकरण आदि करने वाला समझा जावे, उसके पास सत्री जाकर कहे, कि अमुक मनुष्य की भार्या, पुत्रवधू, या पुत्री से संभोग करना चाहता हूं। वह मुझे चाहने लगे। तुम यह धन स्वीकार करो-जो वह धन ग्रहण करले-तो उसे वशीकरण आदि मन्त्रों के द्वारा ठगने वाला समझकर राजा नगर से निकलवा दे। यही ढंग भूत प्रेत शरीर में भरने वाले या मारण प्रयोग करने वालों पर बर्तने चाहिए ॥१८-२३॥

यं वा रसस्य कर्तारं क्रेतारं विक्रेतारं भैषज्याहारव्यवहारिणं वा रसदं मन्येत तं सत्त्री ब्रूयात् ॥ २४ ॥ असौ मे शत्रुस्तस्योपघातः क्रियतामयं चार्थः प्रतिगृह्यतामिति ॥ २५ ॥ स चेत्तथा कुर्याद्रसद इति प्रवास्येत ॥ २६ ॥ तेन मदनयोगव्यवहारी व्याख्यातः ॥ २७ ॥

विष के बनाने वाले, बेचने या खरीदने वाले दवा और भोजन के व्यवहार के कर्ता, पर यदि विष देने का सन्देह हो-तो उससे सत्री गुप्तचर, कहे, कि, यह मेरा शत्रु है, तुम इसका मारण करदो और इसके बदल में तुम यह धन ग्रहण करो। यदि वह वैसा करने को तय्यार हो जावे-तो उसको विषदाता प्रसिद्ध करके नगर से निकलवा दे। यही नियम मूर्च्छित करने वाली धतूरे आदि की औषधियों के विषय में जानना चाहिए ॥२४-२७॥

यं वा नानालोहक्षाराणामङ्गारभस्त्रासंदंशमुष्टिकाधिकरणीबिम्बटङ्कमूषाणामभीक्ष्णं क्रेतारं मूषीभस्मधूमदिग्धहस्तवस्त्रलिङ्गं कर्मारोपकरणसंवर्गं कूटरूपकारकं मन्येत तं सत्त्री शिष्यत्वेन संव्यवहारेण चानुप्रविश्य प्रज्ञापयेत् ॥ २८॥ प्रज्ञातः कूटरूपकारक इति प्रवास्येत ॥ २९ ॥ तेन रागस्यापहर्ता कूटसुवर्णव्यवहारी च व्याख्यातः ॥ ३० ॥

जो व्यक्ति, अनेक प्रकार के लोह, खार, कोयला, धोंकनी, संडासी, हथोड़ी, घन, सांचे, छैनी, मूष आदि को अधिक मात्रा में खरीदे तथा जो मूष की भस्म, धुआं आदि से हाथ वस्त्र मैले हो रहे हों-जो लुहार आदि के औजार अधिक मात्रा में रखता हो-यदि उसपर जाली सिक्के बनाने का सन्देह हो, तो सत्री नामक गुप्तचर उसका शिष्य बन जावे या अन्य किसी व्यवहार से उनकी पार्टी में मिल जावे-और उसका सारा ढंग मालूम करले। जब उसके जाली सिक्के बनना प्रमाणित हो जावे-तो उसे जाली सिक्के बनाने वाला घोषित करके देश से राजा निकाल दे। इसी प्रकार सुवर्ण आदि की रंगत उड़ा देने वाले या झूंठे सुवर्ण बनाने वाले का पता लगा कर राजा राज्य से निकाल दे ॥२८-३०॥

आरब्धारस्तु हिंसायां गूढाजीवास्त्रयोदश ।
प्रवास्या निष्क्रयार्थं वा दद्युर्दोषविशेषतः ॥ ३१ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे गूढाजीवानां रक्षा चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥
आदित एकाशीतिः ॥ ८१ ॥

लोक में दुःख के उत्पन्न करने वाले, धर्मस्थ, प्रदेष्टा, ग्रामकूट, ग्रामअध्यक्ष, कूटसाक्षी, कूटश्रावक, वशीकरणकर्ता, कृत्याकारक, मारणशील, विष देने वाला, मदन (धतूरे)

रसदाता, कूटरूपकर्ता, कूटसुवर्ण व्यापारी-ये तेरह गूढ़ा जीवी माने जाते हैं अर्थात् ये छुपकर प्रजा को कष्ट पहुंचा सकते हैं। प्रजा को दुःख से छुड़ाने के निमित्त इनको देश से राजा निकाल दे या अपराध के अनुसार दण्ड भी देवे ॥३१॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन अधिकरण में गुप्त रूप से प्रजा के पीड़कों से बचाने के उपायों के वर्णन का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।



पांचवां अध्याय

८०वां प्रकरण

सिद्धव्यञ्जनै र्माणव प्रकाशनम्

इस प्रकरण में सिद्ध पुरुषों के वेष में रहने वाले गुप्तचरों द्वारा चोर आदि दुःखदायी व्यक्तियों के पता लगाने की विधि का वर्णन किया जावेगा।

सत्त्रीप्रयोगादूर्ध्वं सिद्धव्यञ्जना माणवा माणवविद्याभिः प्रलोभयेयुः प्रस्वापनान्तर्धानद्वारापोहमन्त्रेण प्रतिरोधकान्संवननमन्त्रेण पारतल्पिकान् ॥१॥ तेषां कृतोत्साहानां महान्तं संघमादाय रात्रावन्यं ग्राममुद्दिश्यान्यं ग्रामं कृतकाः स्त्रीपुरुषं गत्वा ब्रूयुः ॥ २ ॥ इहैव विद्याप्रभावो दृश्यताम् ॥ ३ ॥ कृच्छ्रः परग्रामो गन्तुमिति ॥ ४ ॥

सत्री नामक गुप्तचर के कार्य के अनन्तर सिद्ध तापस वेशधारी अपराधियों में मिले हुए, संमोहन करने वालों के रूप में विद्यमान, गुप्तचर अपनी संमोहन विद्याओं से कभी सुला देने कभी छुपा देने आदि के मन्त्रों द्वारा चोरों को और स्त्री वशीकरण के मन्त्रों से व्यभिचारियों को लुब्ध करता रहे। जब वे दुष्ट लोग सिद्ध रूपधारी गुप्तचर पर प्रीति करने लगें-तो वह बनावटी महात्मा इन लुटेरों या व्यभिचारियों के बड़े भारी संघ को लेकर रात में किसी अन्य गांव के उद्देश्य से चल दे। वहां उन स्त्री पुरुषों से कहे आज तुम यहीं पर हमारी विद्या का प्रभाव देखो-दूसरे गांव में पहुंचना तो कठिन है ॥१-४॥

ततो द्वारापोहमन्त्रेण द्वाराण्यपोह्य प्रविश्यतामिति ब्रूयुः ॥ ५ ॥ अन्तर्धानमन्त्रेण जाग्रतामारक्षिणां मध्येन माणवानतिक्रामयेयुः ॥६॥ प्रस्वापनमन्त्रेण प्रस्वापयित्वा रक्षिणः शय्याभिर्माणवैः संचारयेयुः ॥ ७ ॥

इसके पीछे वह बनावटी सिद्ध, जिस गांव में ठहरा है, वहां उसके संकेत में आये हुए स्त्री पुरुष विद्यमान हैं। वे द्वारों को खुला छोड़ दें। फिर द्वार खोलने के मन्त्रों से द्वार खोलकर उन लोगों से कह दे, कि तुम घुस जाओ। अन्तर्धान के मन्त्रों से जागते हुए पहरेदारों के मध्य से उन अपराध करने वालों को प्रविष्ट करादे तथा सुला देने के मन्त्रों से पहरेदारों को झूंठ-मूंठ सुला कर उनकी खाट उन अपराधियों द्वारा घुमवा देवे ॥५-७॥

संवननमन्त्रेण भार्याव्यञ्जनाः परेषां माणवैः संमोदयेयुः ॥ ८ ॥ उपलब्धविद्याप्रभावाणां पुरश्चरणाद्यादिशेयुरभिज्ञानार्थम् ॥६॥ कृतलक्षणद्रव्येषु वा वेश्मसु कर्म कारयेयुः ॥ १० ॥ अनुप्रविष्टान्वैकत्र ग्राहयेयुः ॥ ११ ॥ कृतलक्षणद्रव्यक्रयविक्रयाधानेषु योगसुरामत्तान्वा ग्राहयेयुः ॥१२॥ गृहीतान्पूर्वापदानसहायाननुयुञ्जीत ॥१३॥ पुराणचोरव्यञ्जना वा चोराननुप्रविष्टास्तथैव कर्म कारयेयुर्ग्राहयेयुश्च ॥ १४ ॥

वशीकरण मन्त्रों से अन्य की भार्या बने हुए गुप्तचरों द्वारा उन दुष्ट पुरुषों को हंसी दिल्लगी से प्रसन्न करादे। जब वे विद्या के प्रभाव से चकित हो जावें, तो उनको सिखाने के लिए उनको व्रत उपवास पुरश्चरण आदि का उपदेश करे। इसके अनन्तर राज चिन्ह से अङ्कित द्रव्य वाले घरों में इनकी चोरी करवादें। हो सके तो किसी एक घर में ही इन सबको पकड़वादे। जिन वस्तुओं पर राजकीय चिन्ह हो रहे हैं, उनके बेचने खरीदने कहीं रखने के समय या सुरापान आदि में उन्मत्त होने पर इन दुष्ट पुरुषों को वह बनावटी महात्मा पकड़वादे। जब ये पकड़े जावें-तो इनसे पूर्व की हुई वारदातों के सहायकों के नाम पूछे। पुराने चोर, गुप्तचर बनकर चोरों में मिलजावे और वे भी ऐसा ही काम करवावे तथा उन सबको पकड़वा देवे ॥८-१४॥

गृहीतान्समाहर्ता पौरजानपदानां दर्शयेत् ॥ १५ ॥ चोरग्रहणीं विद्यामधीते राजा ॥ १६ ॥ तस्योपदेशादिमे चोरा गृहीताः ॥१७॥ भूयश्च ग्रहीष्यामि ॥१८॥ वारयितव्यो वः स्वजनः पापाचार इति ॥ १६ ॥ यं चात्रापसर्पोपदेशेन शम्याप्रतोदादीनामपहर्तारं जानीयात्तमेषां प्रत्यादिशेत ॥ २० ॥ एष राज्ञ प्रभाव इति ॥ २१ ॥

समाहर्ता (सरकारी अफसर) पकड़े हुए इन दुष्ट पुरुषों को पुर और देश के लोगों को दिखावे और कहे, कि चोर पकड़ने की विद्या को राजा जान चुका है। उस विद्या से ही ये चोर पकड़े गए हैं। जो ऐसा काम करेगा-उसे फिर मैं पकड़ूंगा-अब तुम जहां तक हो अपने मिलने वालों को पाप कर्म करने से रोक दो। गुप्तचरों के प्रभाव शम्या (सैल)

प्रतोद (पैनी) जैसी छोटी वस्तुओं के चोरों का भी पता लगाकर जनता से कहो, कि राजा का इतना प्रभाव है, कि छोटी २ चोरी को भी जान लेता है ॥१५-२१॥

पुराणचोरगोपालकव्याधश्वगणिनश्च वनचोराटविकाननुप्रविष्टाः प्रभूतकूट-हिरण्यकुप्यभाण्डेषु सार्थव्रजग्रामेष्वेनानभियोजयेयु ॥२२॥ अभियोगे गूढबलैर्घातयेयुः ॥२३॥ मदनरसयुक्तेन वा पथ्यादनेनानुगृहीतलोप्त्रभारानायतगतपरिश्रान्तान्प्रस्वपतः प्रहवणेषु योगसुरामत्तान्वा ग्राहयेयुः॥२४॥

इसी तरह पुराने चोर, ग्वाले, शिकारी, कुत्ते वाले, शिकारी बने हुए गुप्तचर, वन के चोर और वन में ही रहने वाले इन दुष्ट पुरुषों में रल-मिल जावें और बहुत सा सुवर्ण तांबे आदि के बर्तनों से परिपूर्ण, व्यापारियों के संघ के गावों में लूटने के लिए इनको ले जावें । जब ये लूट मचाने लगें-तो प्रथम से छुपाई हुई सेना द्वारा इनका नाश करवादे । धतूरे आदि के संमोहन करने वाले रस से मिश्रित भोजन से वेहोश, माल को उठाकर, लाने पर सोये हुए या सवारी पर चलते हुए तथा उत्तम सुरापान कर उन्मत्त हुए इन लुटेरों को पकड़वा दे ॥ २२-२४ ॥

पूर्ववच्च गृहीत्वैनान्समाहर्ता प्ररूपयेत् ।
सर्वज्ञख्यापनं राज्ञः कारयन्राष्ट्रवासिषु ॥२५॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे सिद्धव्यञ्जनैर्माणवप्रकाशनं पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥ आदितो द्व्यशीतिः ॥ ८२ ॥

राजकीय अध्यत्त, इनको भी पकड़कर पूर्व की भांति राजा का सर्वज्ञत्व घोषित करने के निमित्त सारी प्रजा को इनको दिखावे ॥ २५ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टक शोधन अधिकरण में सिद्ध तपस्वियों के वेप में रहकर चोरों के पकड़ने के उपायों के वर्णनों का पांचवां अध्याय समाप्त हुआ।



छठा अध्याय

८१वां प्रकरण

शङ्का रूप कर्माभिग्रहः

सिद्ध तापसों के गुप्तचर कर्म के वर्णन के अनन्तर अब इस अध्याय में जिनपर अपराध करने की आशङ्का हो सके उनका तथा नष्ट वस्तु के रूप और चोरी के कर्म का वर्णन किया जावेगा।

सिद्धप्रयोगादूर्ध्वं शङ्कारूपकर्माभिग्रहः ॥ १ ॥ क्षीणदायकुटुम्बमल्पनिर्वेशं विपरीतदेशजातिगोत्रनामकर्मापदेशं प्रच्छन्नवृत्तिकर्माणं मांससुराभक्ष्यभोजनगन्धमाल्यवस्त्रविभूषणेषु प्रसक्तमतिव्ययकर्तारं पुंश्चलीद्यूतशौण्डिकेषु प्रसक्तमभीक्ष्णप्रवासिनमविज्ञातस्थानगमनपण्यमेकान्तारण्यनिष्कुटविकालचारिणं प्रच्छन्ने सामिषे वा देशे बहुमन्त्रसंनिपातं सद्यःक्षतव्रणानां गूढप्रतीकारयितारमन्तर्गृहे नित्यमभ्यधिगन्तारं कान्तापरं परपरिग्रहाणां परस्त्रीद्रव्यवेश्मनाम भीक्ष्णप्रष्टारं कुत्सितकर्मशास्त्रोपकरणसंसर्गं विरात्रे छन्नकुड्यच्छायासंचारिणं विरूपद्रव्याणामदेशकालविक्रेतारं जातवैराशयं हीनकर्मजातिं विगूहमानरूपं लिङ्गेन अलिङ्गिनं लिङ्गिनं वा भिन्नाचारं पूर्वकृतापदानं स्वकर्मभिरपदिष्टं नागरिकं महामात्रदर्शने गूहमानमपसरन्तमनुच्छ्वासोपवेशिनमाविग्नं शुष्कभिन्नस्वरमुखवर्णं शस्त्रहस्तं मनुष्यसंपातत्रासिनं हिंस्रस्तेननिधिनिक्षेपापहारप्रयोगगूढाजीविनामन्यतमं शङ्केतेति शङ्काभिग्रहः ॥ २ ॥

जिनकी कुल क्रमागत सम्पत्ति या कुटम्ब क्षीण हो गया हो, जिनकी आमदनी थोड़ी रह गई हो, जो अपने देश, जाति, गोत्र, नाम, और काम के बताने में बहाने बनावे; जो अपनी वृत्ति को किसी पर प्रकट करना न चाहे, जो मांस, सुरा, भक्ष्य, भोजन, गन्ध, माला, वस्त्र और आभूषणों को पसन्द करने वाला हो, जिसके बहुत व्यय हो, व्यभिचारिणी, जुआरी और शराबियों की सङ्गति में रहता हो, जो सर्वदा घर से बाहर विदेश में घूमता हो; जिसके स्थान, गमन और बेचने की चीजों का कुछ पता न लगता हो, जो, एकान्त, वन, बगीचों में असमय में घूमता मिले, छुपे हुए स्थान या धनियों के घरों के समीप जो अनेक पुरुष के साथ बार २ गुप चुप बात करता देखा हो; जो ताजा घावों का छुपकर इलाज कराता हो; जो अधिकतर घर के भीतर रहने वाला हो तथा किसी को देख कर झटपट लौट जाता हो, जो दूसरों की स्त्रियों में गमन करने वाला देखा गया हो, पर स्त्री, द्रव्य और मकान के विषय में जिसने बार २ प्रश्न किये हो, चोरी आदि कुत्सित कर्म के शस्त्र और साधनों को जो अच्छी तरह जानता हो, जो आधीरात में दीवार की छाया में घूमता देखा गया हो, जिसने वस्तुओं की आकृति बदलकर अनुचित स्थान और काल पर बेची हो, जो सबसे शत्रु भाव रखता हो, जिसकी नीच जाति और नीच कर्म हों, जो अपने असली रूप को छुपाये रखता हो, जो ब्रह्मचारी आदि न होकर भी ब्रह्मचारी का रूप बनाये रखता हो, जिस का ब्रह्मचारी आदि रूपधारी मनुष्य का अपने रूप के विरुद्ध आचरण हो, जिसने पूर्व में कभी अपराध किया हो, जिसकी बुरे कर्म करने की प्रसिद्धि हो,

जो नागरिक राजकीय कर्मचारी को देखकर छुप जाता हो, या खसक जाता हो, जो एकान्त में हटकर बैठा हो, जो उद्विग्न सा रहता हो, जिसका मुख सूखा-वर्ण हीन और भिन्न स्वर धारी हो, जो शस्त्र रखता हो, ऐसे पुरुष को मनुष्य मात्र को दुःख देने वाला, हिंसक, चोर, धन या धरोहर हर्ता, विष का प्रयोग करने वाला या गूढ़ जीविका से प्रजा को कष्ट पहुंचाने वाला समझ लेना चाहिए इन शङ्काओं से गुप्त अपराध करने वाले पुरुष पर सन्देह किया जा सकता है ॥१-२॥

रूपाभिग्रहस्तु ॥ ३ ॥ नष्टापहृतमविद्यमानं तज्जातव्यवहारिषु निवेदयेत् ॥ ४ ॥ तच्चेन्निवेदितमासाद्य प्रच्छादयेयुः साचिव्यकरदोषमाप्नुयुः ॥ ५ ॥ अजानन्तोऽस्य द्रव्यस्यातिसर्गेण मुच्येरन् ॥ ६ ॥ न चानिवेद्य संस्थाध्यक्षस्य पुराणभाण्डानामाधानं विक्रयं वा कुर्युः ॥ ७ ॥

चोरी आदि की वस्तु के आकार से उसके पकड़ने के प्रकार के विषय में इस ढंग से समझना चाहिये, कि, जो वस्तु खो गई या उड़ाली गई, उसके व्यापारियों के उसके आकार की सूचना देदे। यदि व्यापारी उस वस्तु के आने पर और पहचान लेने पर भी छुपाकर ले लें तो उन्हें, उस अपराध में सहायक मान कर दण्ड देना चाहिए। यदि उन्होंने भूल से उस वस्तु को ले लिया तो उस वस्तु को लेकर उनको छोड़ दिया जावे। संस्थाध्यक्ष को सूचना दिये बिना पुरानी वस्तुओं के रखने और बेचने का किसी व्यापारी को अधिकार नहीं होना चाहिए। ।३-७।।

तच्चेन्निवेदितमासाद्येत रूपाभिगृहीतमागमं पृच्छेत ॥ ८ ॥ कुतस्ते लब्धमिति ॥ ९ ॥ स चेद्ब्रूयाद्दायाद्यादवाप्तममुष्माल्लब्धं क्रीतं कारितमाधिप्रच्छन्नम् ॥ १० ॥ अयमस्य देशः कालश्चोपसंप्राप्तः ॥ ११ ॥ अयमस्यार्घः प्रमाणं लक्षणमूल्यं चेति तस्यागमसमाधौ मुच्येत ॥ १२ ॥ नाष्टिकश्चेत्तदेव प्रतिसंदध्यात् ॥ १३ ॥ यस्य पूर्वो दीर्घश्च परिभोगः शुचिर्वा देशस्तस्य द्रव्यमिति विद्यात् ॥ १४ ॥ चतुष्पदद्विपदानामपि हि रूपलिङ्गसामान्यं भवति किमङ्ग पुनरेकयोनिद्रव्यकर्तृप्रसूतानां कुप्याभरणभाण्डानामिति ॥ १५ ॥

यदि आकार बताई हुई वस्तु व्यापारी के पास आ जावे, तो आकार (हुलिए) से उस वस्तु को जानकर उसके लाने वाले से पूछे, तुमने यह वस्तु कहां से पाई। वह अपने कुल क्रमागत प्राप्त बतावे, किसी का नाम ले, या खरीदी हुई, बनवाई हुई बतावे या गुपचुप गहने रखी हुई बतावे, यह इसके लेने का समय और स्थान है, यह इसका मूल्य और

प्रमाण है, आजकल इसके ये दाम हैं। यदि इसका बताना सही निकल आवे-तो इसको छोड़ दिया जावे। अभियोक्ता (मुस्तगीस) भी उसे अपनी बतावे, और दोनों के पास साक्षी न हो-तो जो उसका उपभोग कर रहा है, या जिसका व्यवहार शुचि हो-उसकी वस्तु समझनी चाहिए। चौपायों और मनुष्यों तक में रूप और चिन्हों की समानता होती है, फिर एक से काष्ठ आदि सामान से बनी हुई लकड़ी, भूषण, और बर्तन के समान होने में सन्देह ही क्या किया जा सकता है ॥८-१५॥

स चेद्ब्रूयात् ॥ १६ ॥ याचितकमवक्रीतकमाहितकं निक्षेपमुपनिधिं वैय्यावृत्यकर्म वामुष्येति तस्यापसरप्रतिसंधानेन मुच्येत ॥ १७ ॥ नैवमित्यपसारो वा ब्रूयात् ॥ १८ ॥ रूपाभिगृहीतः परस्य दानकारणमात्मनः प्रतिग्रहकारणमुपलिङ्गनं वा दायकदापकनिबन्धकप्रतिग्राहकोपदेष्टृभिरुपश्रोतृभिर्वा प्रतिसमानयेत् ॥ १९ ॥ उज्झितप्रनष्टनिष्पतितोपलब्धस्य देशकाललाभोपलिङ्गनेन शुद्धिः ॥ २० ॥ अशुद्धस्तच्च तावच्च दण्डं दद्यात् ॥ २१ ॥ अन्यथा स्तेयदण्डं भजेत ॥ २२ ॥ इति रूपाभिग्रहः ॥ २३ ॥

यदि वस्तु लाने वाला पुरुष, प्रश्न करने पर कहे, कि मैं इसे मांग कर या किराये पर लाया हूं। इस वस्तु को अमुक पुरुष, मेरे पास गिरवी, धरोहर, या बदले में रख गया है या इसको सुधरवाने मेरे पास लाया है तो इस बात की खोज करके सही निकलने पर उसको छोड़ दिया जावे। यदि जिस पुरुष के पास से लाने की पूर्व पुरुष ने कहा और वह पिछला पुरुष कहदे, कि मुझे कुछ नहीं मालूम है, तो वह अपराधी पुरुष, दूसरे के द्वारा दिया जाना प्रमाणित करे। अपने उस वस्तु के लेने के कारण को बतावे। इसके चिन्ह भी न्यायालय में प्रस्तुत करने चाहिए। देने दिलाने वाले, लिखने वाले अन्य लेने वाले, लेने को उत्साहित करने वाले, तथा जानने वालों को साक्षी के रूप में न्यायालय में लावे। कहीं पर भूली हुई, खोई हुई, गिरी हुई, वस्तु मिलने पर चोरी लगाई जावे, तो उस देश काल और प्राप्ति के प्रमाण उपस्थित कर देने पर वस्तु लेकर उसे छोड़ देना चाहिए। यदि वह सिद्ध न कर सके तो उसे उतना ही अर्थात् वस्तु की कीमत का ही दण्ड हो और यदि वह अपना सिद्ध न कर सके और अभियोक्ता उसे चोर बतावे, तो उससे प्रमाण लेकर उसे चोरी का दण्ड होना चाहिए। यहां तक रूप (आकार) द्वारा वस्तु के प्राप्त करने के विषय में वर्णन किया गया है ॥१६-२३॥

कर्माभिग्रहस्तु ॥ २४ ॥ मुषितवेश्मनः प्रवेशनिष्कसनमद्वारेण द्वारस्य संधिना बीजेन वा वेधमुत्तमागारस्य जालवातायननीप्रवेधमारोहणावतरणे च

कुडयस्य वेधमुपखननं वा गूढद्रव्यनिक्षेपण ग्रहणो पायमुपदेशोपलभ्यम-भ्यन्तरच्छेदोत्करपरिमर्दोपकरणमभ्यन्तरकृतं विद्यात् ॥ २५ ॥ विपर्यये बाह्यकृतं उभयत उभयकृतम् ॥ २६ ॥

इसके आगे चोरी के विषय- में लिखा जावेगा। जिस घर में चोरी हुई हो, यदि उसमें घुसना और निकसना द्वार के विना हुआ हो, द्वार की संधि [खिड़की] से प्रवेश या चूल से किवाड़ उतार दिया गया हो, ऊंचे मकान के झरोखे, खिड़की और उजालदान तोड़ दिए गए हों, चढ़ने और उतरने के लिए दीवार में गड्ढे बना लिए गए हों या दीवार तोड़ दी गई हो, छुपे हुए द्रव्य के निकालने के उपाय किये गए हों, जो धन विना बताये प्राप्त न हो-उसकी प्राप्ति का उद्योग किया गया हो, भीतर घुसकर मकान खोदा गया और उसके गड्ढे भर दिए गए-हों तो-इस चोरी को अपने भीतर के मनुष्य के द्वारा की गई समझनी चाहिए। यदि ये बात न हों-तो बाहर के लोगों ने चोरी की है-ऐसा जानना और दोनों चिन्ह हों तो-बाहर और भीतर के दोनों ने मिलकर चोरी की है ॥२४-२६॥

अभ्यन्तरकृते पुरुषमासन्नं व्यसनिनं क्रूरसहायं तस्करोपकरणसंसर्गं स्त्रियं वा दरिद्रकुलामन्यप्रसक्तां वा परिचारकजनं वा तद्विधाचारमतिस्वप्नं निद्रा-क्लान्तमाविक्लान्तमाविग्नं शुष्कभिन्नस्वर मुखवर्णमनवस्थितमतिप्रलापिनमुच्चारो-हणसंरब्धगात्रं विलूननिघृष्ट भिन्नपाटितशरीरवस्त्रं जातकिरणसंरब्धहस्तपादं पांसुपूर्णकेशनखं विलूनभुग्नकेशनखं वा सम्यक्स्नातानुलिप्तं तैलप्रमृष्टगात्रं सद्योधौतहस्तपादं वा पांसुपिच्छिलेपु तुल्यपादपदनिक्षेपं प्रवेशनिष्कसनयोर्वा तुल्यमाल्यमद्यगन्धवस्त्रच्छेदविलेपनस्वेदं परीक्षेत ॥ २७ ॥ चोरं पारदारिकं वा विद्यात् ॥ २८ ॥

यदि अपने ही किसी नौकर चाकर पर चोरी का सन्देह हो तो समीप रहने वाले, जुआरी शराबी, दुष्ट पुरुषों के साथी, चोरों के सहचर, दरिद्र कुल की व्यभिचारिणी स्त्री या व्यभिचारी दरिद्री सेवक, अत्यन्त ऊंघने वाले, सोने वाले, व्याकुल, उद्विग्न, शुष्क और भिन्न स्वर और मुख की आकृतिधारी, चञ्चल, बकवादी, ऊपर चढ़ने योग्य शरीर वाले, रगड़ खा कर फटे हुए वस्त्रधारी, हाथ और पैरों में रगड़ के चिन्हों से युक्त, मिट्टी में भरे हुए केशनख वाले, या कटे-फटे केश नख धारी, अच्छी तरह स्नान के अनन्तर चन्दन लगाये हुए, तैल की मालिश से युक्त, तत्काल हाथ पैर धोये हुए, कीचड़ में घुसने और निकसने

के पद चिन्ह के समान पद चिन्ह वाले, जो माला और मद्य मकान में थी उसकी गन्ध वाले तथा मकान में मिले हुए वस्त्रों के टुकड़े में जो लेप और पसीने की गन्ध थी, वैसी ही गन्ध वाले पुरुष की पड़ताल करे। जो चोर हो या पर स्त्री गामी हो, उस से भी पूछताछ करे ॥२७-२८॥

सगोपस्थानिको बाह्यं प्रदेष्टा चोरमार्गणम् ।
कुर्यान्नागरिकश्चान्तर्दुर्गे निर्दिष्टहेतुभिः ॥ २९ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे शङ्कारूपकर्माभिग्रहः षष्ठो ऽध्यायः ॥६॥

आदितस्त्र्यशीतिः

गोप और स्थानिक को साथ लेकर प्रदेष्टा नामक राज्य कर्मचारी, बाहर के चोर की खोज लगावे तथा उपर्युक्त लक्षणों से युक्त चोर का पता, अपने नगर या दुर्ग में नागरिक नामक अध्यक्ष, खोज निकाले ॥२९॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत, कण्टकशोधन अधिकरण में शङ्का आदि के ढंग से चोर के पते लगाने के उपायों के वर्णन का छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



सातवां अध्याय

८२वां प्रकरण

आशुमृतक परीक्षा

इस प्रकरण में आशुमृतक (क़तल) के अभियोगों का वर्णन किया जावेगा।

तैलाभ्यक्तमाशुमृतक परीक्षेत ॥ १ ॥ निष्कीर्णमूत्रपुरीषं वातपूर्णकोष्ठत्वक्कं शूनपादपाणिमुन्मीलिताक्षं सव्यञ्जनकण्ठं पीडननिरुद्धोच्छ्वासहतं विद्यात् ॥ २ ॥ तमेव संकुचितबाहुसक्थिमुद्बन्धहतं विद्यात् ॥ ३ ॥ शूनपाणिपादोदरमपगताक्षमुद्वृत्तनाभिमवरोपितं विद्यात् ॥ ४ ॥ निस्तब्धगुदाक्षं संदष्टजिह्वमाध्मातोदरमुदकहतं विद्यात् ॥ ५ ॥

जो अभी मारा गया हो, अर्थात् कतल हो गया हो, उसको तेल में डालकर परीक्षा करे। जिसका मल मूत्र निकल गया हो, जिसके उदर या त्वचा में वायु भरा हुआ हो, जिसके हाथ पैरों पर सूजन हो, जिसकी आंखें फटी रह रही हों, जिसके गले में रस्सी आदि का चिन्ह हो, तो उस व्यक्ति को रस्सी से गला घोटकर मारा हुआ समझना चाहिए। यदि ऐसे पुरुष की बाहु और जांघे सुकड़ी हो, तो उसको फांसी पर लटका कर

मारा हुआ समझना चाहिए। यदि उसके हाथ पैरों पर सूजन हो, आंखें, गड़ गई हों और नाभि निकल आई हो, तो उसे शूली पर चढ़ा कर मारा गया है। जिसकी गुदा और आंख सुकड़ गई हो, जीभ दांतों में दबी हो और पेट फूला हो, तो उसे जल में डुबाकर मारा जानना चाहिए ॥१-५॥

शोणितानुसिक्तं भग्नभिन्नगात्रं काष्ठै रश्मिभिर्वा हतं विद्यात् ॥६॥ संभग्नस्फुटितगात्रमवक्षिप्तं विद्यात् ॥७॥ श्यावपाणिपाददन्तनखं शिथिलमांसरोमचर्माणं फेनोपदिग्धमुखं विषहतं विद्यात् ॥ ८ ॥ तमेव सशोणितदंशं सर्पकीटहतं विद्यात् ॥ ९ ॥ विक्षिप्त वस्त्रगात्रमतिवांत वरिक्तं मदनयोगहतं विद्यात् ॥ १० ॥ अतोऽन्यतमेन कारणेन हतं हत्वा वा दण्डभयादुद्बन्धनिकृत्तकण्ठं विद्यात् ॥ ११ ॥

जो रक्त से भीगा हो, जिसके शरीर के अवयव कट गए हो, उसे लाठी और पत्थरों से मारा हुआ जानो। जिसका सारा शरीर फट गया हो, उसे मकान से गिराकर मरा हुआ समझो। जिसके हाथ, पैर, दांत, नख, काले पड़ गए हों, मांस रोम और चर्म ढ़ीली पड़ गई हो मुंह झागों से भरा हो, उसे विष से मारा समझो। यदि ऐसे ही पुरुष के किसी स्थान से रक्त निकल रहा हो-तो उसे सांप या अन्य जन्तु के काटने या कटाने से मारा हुआ जानो। जिसके वस्त्र और शरीर बिखरे हो-जो छट-पटाता हो, जिसको दस्त और वमन हो रही हों, उसे धतूरे के योग से मारा जानो। इस प्रकार मारने योग्य शत्रु को मार कर राजा के दण्ड के भय से स्वयं भी पुरुष फांसी खाकर या गला काट कर मर जाता है॥६-११॥

विषहतस्य भोजनशेषं पयोभिः परीक्षेत ॥ १२ ॥ हृदयादुद्धृत्याग्नौ प्रक्षिप्तं चिटचिटायदिन्द्रधनुर्वर्णं वा विषयुक्तं विद्यात् ॥१३॥ दग्धस्य हृदयमदग्धं दृष्ट्वा वा तस्य परिचारकजनं वा दण्डपारुष्यातिलब्धं मार्गेत ॥ १४ ॥ दुःखोपहतमन्यप्रसक्तं वा स्त्रीजनं दायनिवृत्तिस्त्रीजनाभिमन्तारं वा बन्धुम् ॥ १५ ॥ तदेव हतोद्बन्धस्य परीक्षेत ॥१६॥ स्वयमुद्बन्धस्य वा विप्रकारमयुक्तं मार्गेत ॥१७॥

जो विष से मारा गया हो, उसके शेष भोजन की दूध के द्वारा परीक्षा की जावे। मरे हुए पुरुष का हृदय अग्नि में डाला जावे, यदि उसमें चटचट शब्द और इन्द्र धनुष का रंग निकले-तो उसे विष युक्त समझना चाहिए। जले हुये पुरुष के, नहीं जले हुए हृदय को देखकर उसके सेवक जन से या जिससे उसका लड़ाई झगड़ा हुआ है, उससे पूछताछ या तहकीकात की जावे। दुःख से मारे हुए अन्य में आसक्त पुरुष को स्त्री जन या दायभाग तथा उसकी स्त्री को भोगने की इच्छा रखने वाले बान्धवों से पूछताछ करे। इसी प्रकार

किसी को मार कर स्वयं मर जाने वाले पुरुष की पूछताछ या तहकीकात करे। जो स्वयं फांसी आदि से मरा है, उसके मरने के कष्ट का पता लगाया जावे ॥१२-१७॥

सर्वेषां वा स्त्रीदायाद्यदोषः कर्मस्पर्धा प्रतिपक्षद्वेषः पण्यसंस्थ समवायो वा विवादपदानामन्यतमद्वा रोषस्थानम् ॥ १८ ॥ रोषनिमित्तो घातः ॥ १९ ॥ स्वयमादिष्टपुरुषैर्वा चोरैरर्थनिमित्त सादृश्यादन्यवैरिभिर्वा हतस्य घातमासन्नेभ्यः परीक्षेत ॥ २० ॥ येनाहुतः सहस्थितः प्रस्थितो हतभूमिमानीतो वा तमनुयुञ्जीत ॥ २१ ॥

सब पुरुषों के स्त्री, दायभाग, राजकुल की हुकूमत का संघर्ष, शत्रुका द्वेष, व्यापार की प्रधानता या न्यूनता, अभियोग (मुकदमें बाजी) ये प्राय: रोष के उत्पादक कारण होते हैं और शेप उत्पन्न हो जाने पर (क़तल) होता है। जिसने आत्म हत्या की हो, जिस को किसी की प्रेरणा से मारा हो, धन के कारण से जिसको चोरों ने मार दिया हो, अन्य बैरियों ने समान रूप देख कर भूल से मार डाला हो, इसके मारने की खोज उस मृतक व्यक्ति के सहचरों से करनी चाहिए। जिसने मृतक को बुलाया, जिसके साथ ठहरा, जिसके साथ गया या जो मारने की भूमि में लाया उन सबसे उस मृतक की खोज की जावे और उनमें से अपराधी को खोज निकाला जावे ॥१८-२१॥

ये चास्य हतभूमावासन्नचरास्तानेकैकशः पृच्छेत् ॥२२॥ केनायमिहानीतो हतो वा ॥ २३ ॥ कः सहस्त्रः संगूहमान उद्विग्नो वा युष्माभिर्दृष्ट इति ॥२४॥ ते यथा ब्रूयुस्तथानुयुञ्जीत ॥ २५ ॥

जो मनुष्य, मृतक के मारने के स्थान में फिरते हों-उन सबसे पूछताछ करे कि कौन इसे यहां लाया और किसने इसे मारा है। किस आदमी को तुमने हथियार लिये हुए छुपा हुआ घबराया सा देखा था। ये जो बतावे उसके अनुसार आगे खोज की जावे ॥२२-२५॥

अनाथस्य शरीरस्थमुपभोगं परिच्छदम् ।
वस्त्रं वेषं विभूषां वा दृष्ट्वा तद्व्यवहारिणः ॥ २६ ॥
अनुयुञ्जीत संयोगं निवासं वासकारणम् ।
कर्म च व्यवहारं च ततो मार्गणमाचरेत् ॥ २७ ॥

जिस मृत व्यक्ति का कुछ पता न लगे, तो उसके शरीर की माला आदि उपभोग सामग्री, वस्त्र, वेष, भूषा, देखकर इन वस्तुओं के बेचने वाले व्यापारियों से इसके विषय में पूछताछ की जावे, कि यह किनके साथ रहता था या किनके साथ में माला आदि

खरीदने आया। इसके साथी, निवास स्थान, निवास का कारण, कर्म, व्यवहार (वृत्ति) का पता लगाकर मृतक के विषय में अन्वेषण (तहकीकात) की जावे ॥२६-२७॥

रज्जुशस्त्रविषैर्वापि कामक्रोधवशेन यः।
घातयेत्स्वयमात्मानं स्त्री वा पापेन मोहिता ॥ २८ ॥
रज्जुना राजमार्गे तां चण्डालेनापकर्षयेत्।
न श्मशानविधिस्तेषां न संबन्धिक्रियास्तथा ॥ २९ ॥

जो पुरुष, रज्जु, शस्त्र, विषसे या काम क्रोध के वश में होकर अपने आपको मार डाले या कोई स्त्री, किसी पाप के कारण आत्महत्या करले-तो चण्डाल उसे रस्सी में बांध कर सड़क पर खैंचे उनको श्मशान में न जलाने दिया जावे और न उसकी लाश उसके सम्बन्धियों को दी जावे ॥२८-२९॥

बन्धुस्तेषां तु यः कुर्यात्प्रेतकार्यक्रियाविधिम्।
तद्गतिं स चरेत्पश्चात्स्वजनाद्वा प्रमुच्यते ॥ ३० ॥

जो बान्धव, आत्मघाती की प्रेत क्रिया आदि करे-तो मरने के अनन्तर राजा उसे भी इसी तरह घसीटवा के या उसे अपनी जाति से च्युत करवादे ॥३०॥

संवत्सरेण पतति पतितेन समाचरन्।
याजनाध्यापनाद्यौनात्तैश्चान्यो ऽपि समाचरन् ॥ ३१ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे आशुमृतकपरीक्षा सप्तमो ऽध्यायः ॥७॥
आदितश्चतुरशीतिः ॥ ८४ ॥

पतित पुरुष के साथ एक वर्ष तक यजन, अध्ययन या विवाह करने से पुरुष पतित हो जाता है। उस पुरुष से भी जो व्यवहार करता है वह भी एक वर्ष में पतित हो जाता है ॥३१॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन अधिकरण में आशुमृतक (कतल) के मुकदमों की तहक़ीकात का सातवां अध्याय समाप्त हुआ।



आठवां अध्याय

८३वां प्रकरण

वाक्य कर्मानुयोग ।

इस प्रकरण में अपराधी के विषय में साक्ष देने वाले से जो वाक्य कर्म (जिरह) की जावेगी अब उसका वर्णन होगा ।

मुपितसंनिधौ बाह्यानामभ्यन्तराणां च साक्षिणामभिशस्तस्य देशजाति-गोत्रनामकर्मसारसहायनिवासाननुयुञ्जीत ॥ १ ॥ तांश्चापदेशैः प्रतिसमानयेत् ॥ २ ॥ ततः पूर्वस्याह्नः प्रचारं रात्रौ निवासं चाग्रहणादित्यनुयुञ्जीत ॥ ३ ॥ तस्यापसारप्रतिसंधाने शुद्धः स्यात् ॥ ४ ॥ अन्यथा कर्मप्राप्तः ॥ ५ ॥ त्रिरात्रा-दूर्ध्वमग्राह्यः शङ्कितकः पृच्छाभावादन्यत्रोपकरणदर्शनात् ॥ ६ ॥

जिसका माल चोरी गया है, उस अभियोगी [मुद्दगील] के सन्मुख बाहर भीतर के साक्षियों से अपराधी (मुलजिम) के देश, जाति, गोत्र, नाम, कर्म, सम्पत्ति, सहायक और निवास के विषय में पूछा जावे। इसके अनन्तर चक्कर देकर फिर साक्षी से अपराधी के विषय में पूछी हुई बातों की उलट पलट प्रश्नों द्वारा पुष्टि करे। इसके अनन्तर अपराधी से पूर्व दिन के कार्य, रात्रि निवास और गिरफ्तारी तक के सारे वृत्तान्त मालूम किये जावें। जब उसके छुटकारे के प्रमाण मिल जावें, तो उसे छोड़ दिया जावे, नहीं तो उसे अपराधी मानकर पूर्वोक्त दण्ड दिया जावे। चोरी के दिन से तीन दिन गुजर जाने पर केवल शङ्का के आधार पर किसी को नहीं पकड़ना चाहिए, क्योंकि उनसे ठीक २ प्रश्न नहीं हो सकेंगे। यदि कहीं चोरी का माल (मुद्दा) मिलजावे, तो उसे फौरन पकड़ लेना चाहिए ॥१-६॥

अचोरं चोर इत्यभिव्याहरश्चोरसमो दण्डः ॥ ७ ॥ चोरं प्रच्छादयतश्च ॥ ८ ॥ चोरेणाभिशस्तो वैरद्वेषाभ्यामपदिष्टकः शुद्धः स्यात् ॥ ९ ॥ शुद्धं परि-वासयतः पूर्वः साहसदण्डः ॥१०॥ शङ्कानिष्पन्नमुपकरणमन्त्रिसहायरूपवैय्या-वृत्यकरान्निष्पादयेत् ॥११॥ कर्मणश्च प्रदेशद्रव्यादानांशविभागैः प्रतिसमानयेत् ॥ १२ ॥ एतेषां कारणानामनभिसंधाने विप्रलपन्तमचोरं विद्यात् ॥ १३ ॥ दृश्यते ह्यचोरोऽपि चोरमार्गे यदृच्छया ॥ १४ ॥ संनिपाते चोरवेषशस्त्रभाण्ड-सामान्येन गृह्यमाणो दृष्टश्चोरभाण्डस्योपवासेन वा यथा हि माण्डव्यः कर्मक्लेश-

भयाद्चोरश्चोरो ऽस्मीति ब्रुवाणः ॥ १५ ॥ तस्मात्समाप्तकरणं नियमयेत् ॥१६॥

जो मनुष्य, साधु पुरुष को चोर बनावे या चोर को छुपावे-उसपर चोर के तुल्य ही दण्ड किया जावे। चोर ने अपने वैर या द्वेष से किसी को पकड़वा दिया, तो जब उसका अपदेश [सफाई] हो जावे, तो उसे शुद्ध समझकर छोड़ दिया जावे। जब शुद्ध प्रतीत हो जावे, और अधिकारी उसे पकड़े ही रखे-तो इस अधिकारी पर भी पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए। चोरी के सन्देह में पकड़े हुए पुरुष के पास से चोरी करने के साधन, सलाहकार सहायक, वस्तुओं का रूप, और उनके वेतन की पूछताछ की जावे। चोरी करने को कौन भीतर घुसा, क्या द्रव्य चुराया, क्या किसको दिया गया, किसका क्या देना है-इत्यादि बातों की भी जांच की जावे। यदि किसी पर ये बातें साबित न हों और वह अपने को डर से चोर भी बतावे-तो भी उसे छोड़ देना चाहिए, क्योंकि कभी २ अचोर भी अचानक चोरों के मार्ग में आकर पकड़ लिया जाता है। कभी २ उसके चोरों के तुल्य ही वेष, शस्त्र, और सामान होता है और वह उन चोरों के समान सामग्री के कारण पकड़ा भी जाता है। माण्डव्य ने चोरी के क्लेश के भय से चोर न होने पर भी अपने को चोर बताया-यह कथा महाभारत के आदि पर्व में है, इसलिए इस प्रकार के मामलों में खूब छान-बीन करनी चाहिए ॥७-१६॥

मन्दापराधं बालं वृद्धं व्याधितं मत्तमुन्मत्तं क्षुत्पिपासाध्वक्लान्तमत्याशितमात्मकाशितं दुर्बलं वा न कर्म कारयेत् ॥ १७॥ तुल्यशीलपुंश्चलीप्रापाविककथाविकाशभोजनदातृभिरपसर्पयेत् ॥ १८ ॥ एवमतिसंदध्यात् ॥ १९ ॥ यथा वा निक्षेपापहारे व्याख्यातम् ॥ २० ॥ आप्तदोषं कर्म कारयेत् ॥ २१ ॥ न त्वेव स्त्रियं गर्भिणीं सूतिकां वा मासावरप्रजाताम् ॥२२॥ स्त्रियास्त्वर्धकर्म वाक्यानुयोगो वा ॥ २३ ॥

थोड़ा अपराध करने वाले बालक, वृद्ध, रोगी, बेसमझ, पागल, भूखे, प्यासे, थके हुए, अधिक भोजन किये हुए, अजीर्ण रोगी, दुर्बल अपराधी से जेल में काम नहीं करवाना चाहिये। अपराध करने वालों के साथी, वेश्या, दूती, कत्थक, भोजन बनाने वालों (सराय होटल वालों) से अपराधियों का पता लगाया जावे। इस प्रकार चोरी आदि के झगड़ों की बड़े ध्यान से खोज की जावे। निक्षेप (धरोहर) के अपहरण में जो खोज के ढंग बताये हैं; उसी तरह यहां भी किया जा सकता है। जिसका अपराध प्रमाणित हो उसी को दण्ड दिया जावे। एक महीने से कम की प्रसूता, और गर्भिणी को जेल का दण्ड नहीं देना

चाहिए । स्त्री को जहां तक हो आधी सजा देनी चाहिए या झिड़ककर छोड़ देना चाहिए ॥१७-२३॥

ब्राह्मणस्य सत्त्रिपरिग्रहः श्रुतवतस्तपस्विनश्च ॥२४॥ तस्यातिक्रम उत्तमो दण्डः कर्तुः कारयितुश्च कर्मणा व्यापादनेन च ॥२५॥ व्यावहारिकं कर्मचतुष्कम् ॥ २६ ॥ षड्दण्डाः सप्त कशा द्वावुपरिनिबन्धावुदकनालिका च ॥ २७ ॥ पर पापकर्मणां नववेत्रलता द्वादशकं द्वावूरौ अष्टौ विंशतिर्नक्तमाललता द्वात्रिंशत्तला द्वौ वृश्चिकबन्धावुल्लम्बने चले सूचीहस्तस्त यवागूपीतस्यैकपर्वदहनमङ्गल्याः स्नेहपीतस्य प्रतापनमेकमह शिशिररात्रौ बल्वजाग्रशय्या चेत्यष्टादशकं कर्म ॥२८॥

वेदपाठी और तपस्वी ब्राह्मण को सत्री नामक गुप्तचर के साथ नगर में घुमाकर छोड़ दिया जावे । जो अधिकारी, चोर या उसके सहायकों को अधिक दण्ड दे या मरवादे-तो इन नियमों के उल्लंघन के कारण उस पर उत्तम साहस दण्ड होना चाहिए आजकल शारारिक छः दण्ड के दण्डे मारना, सात कशा (चाबुक) लगाना, हाथ पैर बांध कर ओंधे लटकाना, और नमक का पानी नाक में डालना ये चार प्रकार हैं । अत्यन्त अपराध करने वालों के-नये बारह बैंत लगाकर; दो रस्सियों से अलग खैंचकर टांग बांध देना, करञ्जवे की छड़ो से अट्ठाईस बार मारना, बत्तीस चोटे लगाना, बांयें हाथ को बायें पैर से पीछे को बांधना और दायें को दायें से बांध देना, दोनों हाथ बांधकर लटका देना, दोनों पैर बांधकर ओंधा लटका देना हाथ के नांखूनों में सुई चुभोना, खिचड़ी लप्सी पिलाकर अंगुली का एक पौरवा जलाना, घी पिलाकर एक दिन धूप में खड़े कर देना, जाड़े की रात में भीगी खाट पर सुलाना, ये भी दंड के प्रकार होते हैं । इस प्रकार अट्ठारह दंड के प्रकार हैं ॥२४-२८॥

तस्योपकरणं प्रमाणं प्रहरणं प्रधारणमवधारणं च खरपट्टादागमयेत् ॥२९॥ दिवसान्तरमेकैकं च कर्म कारयेत् ॥ ३० ॥ पूर्वकृतापदानं प्रतिज्ञाया अपहरन्तमेकदेशमदृष्टद्रव्य कर्मणा रूपेण वा गृहीतं राजकोशमपस्तृणन्तं कर्मवध्य वा राजवचनात्समस्तं व्यस्तमभ्यस्तं वा कर्म कारयेत् ॥ ३१ ॥ सर्वापराधेष्वपीडनीयो ब्राह्मणः ॥ ३२ ॥ तस्याभिशस्ताङ्को ललाटे स्याद्व्यवहारपतनाय ॥ ३३ ॥ स्तेये श्वा ॥ ३४ ॥ मनुष्यवधे कबन्धः ॥ ३५ ॥ गुरुतल्पे भगम् ॥ ३६ ॥ सुरापाने मद्यध्वजः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार के दंड के नियमों के प्रमाण, मारने के ढंग, अपराधी के खड़े करने के प्रकार का अध्ययन खरपट्ट के शास्त्र से जानना चाहिए । यदि किसी पर इनमें कई का

प्रयोग करना है, तो एक दिन बीच में डालकर इनका प्रयोग करे। पहिले चोरी आदि अपराध करने वाले, प्रतिज्ञा करके चोरी करने वाले, माल के मुद्दे के साथ पकड़े हुए, माल न होने पर भी चोरी या चिन्हों से पकड़े हुए, राजा की सम्पत्ति को हड़प जाने वाले वध-कर्ता (कातिल) को ये सारे आधे पर इनमें से एक दंड दिया जा सकता है। ब्राह्मण को किसी भी अपराध में मृत्यु दंड या शारीरिक दंड न दिया जावे। भिन्न २ अपराधों के लिए उसके मस्तक में लोहे से दाग का चिन्ह कर दिया जावे। जिससे उसकी आमदनी और प्रतिष्ठा का पतन हो जावे। चोरी में कुत्ते, मनुष्य वध में कबन्ध, गुरु भार्या गमन पर भग और सुरापान पर मद्य ध्वजा का चिन्ह दाग देना चाहिए ॥२६-३७॥

ब्राह्मणं पापकर्माणमुद्घुष्याङ्ककृतव्रणम् ।
कुर्यान्निर्विषयं राजा वासयेदाकरेषु वा ॥ ३८ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे वाक्यकर्मानुयोगः अष्टमोऽध्यायः ॥८॥
आदितः पञ्चाशीतिः ॥ ८५ ॥

राजा, अपराध करने वाले ब्राह्मण के मस्तक पर इस प्रकार चिन्ह करके और जनता में घोषणा कराके उस ब्राह्मण को देश से निकाल दे या खानों वाले पर्वत में रहने की आज्ञा दे दे ॥३८॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन अधिकरण में साक्षी से वाक्यानुयोग (जिरह) के वर्णन का आठवां अध्याय समाप्त हुआ।



नवां अध्याय

८४वां प्रकरण

सर्वाधिकरण रक्षणम्

इस प्रकरण में सारे अध्यक्ष और राजकीय कर्मचारियों तथा उनके स्थानों की पड़ताल का वर्णन किया जावेगा।

समाहर्तृप्रदेष्टारः पूर्वमध्यक्षाणामध्यक्षपुरुषाणां च नियमनं कुर्युः ॥ १ ॥ खनिसारकर्मान्तेभ्यः सारं रत्नं वापहरतः शुद्धवधः ॥ २ ॥ फल्गुद्रव्यकर्मान्तेभ्यः फल्गुद्रव्यमुपस्करं वा पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३ ॥ पण्यभूमिभ्यो वा राजपण्यं

माषमूल्यादूर्ध्वमापादमूल्यादित्यपहर्तो द्वादशपणो दण्डः, आद्विपादमूल्यादिति चतुर्विंशतिपणः ॥४॥ आत्रिपादमूल्यादिति षट्त्रिंशत्पणः ॥ ५ ॥ आपणमूल्यादित्यष्टचत्वारिंशत्पणः ॥६॥ आद्विपणमूल्यादिति पूर्वः साहसदण्डः ॥७॥ आचतुष्पणमूल्यादिति मध्यमः ॥ ८ ॥ आष्टपणमूल्यादित्युत्तमः ॥ ९ ॥ आदशपणमूल्यादिति वधः ॥ १० ॥

समाहर्त्ता (कलक्टर) और प्रदेष्टा नामक राजकीय अधिकारी, प्रथम अध्यक्ष और उनके साथ काम करने वाले राज्य कर्मचारियों (अहलकारों) का नियमन (इन्तजाम) करे। जो कर्मचारी खान या वन से रत्न या चन्दन आदि की लकड़ी चलती करदे, उसे प्राण दण्ड दिया जावे। जो पुरुष साधारण वस्तुओं के कारखाने से कपास आदि साधारण वस्तु उड़ादे या उनकी प्राप्ति के औजार चलते करदे-उसे पूर्व साहस दण्ड हो। राजकीय खेतों से एक मासे के मूल्य की वस्तु से लेकर चार मासे की वस्तु के अपहरण करने वाले राजकीय कर्मचारी या अन्य पुरुष पर बारह पण दण्ड होवे और जो आठ मासे की वस्तु का अपहरण करे-तो उसपर चौबीस पण दण्ड होना चाहिए। यदि वस्तु बारह मासे की अपहरण की गई-तो छत्तीस और एक पण की हो तो अड़तालीस पण दण्ड होना चाहिए। जो दो पण के मोल की हो तो पूर्व साहस, चार पण की हो-तो मध्यम साहस, आठ पण की हो-तो उत्तम साहस दंड होना चाहिए और जो वस्तु दस पण के मूल्य की होजावे-तो वध दंड होना उचित है ॥ १-१० ॥

कोष्ठपण्य कुप्या युधागारेभ्यः कुप्यभाण्डोपस्करापहारेष्वर्धमूल्येष्वेत एव दण्डाः॥११॥ कोशभाण्डागाराक्षशालाभ्यश्चतुर्भागमूल्येष्वेत एव द्विगुणा दण्डाः ॥१२॥ चोराणामभिप्रधर्षणे चित्रो घात इति राजपरिग्रहेषु व्याख्यातम् ॥ १३ ॥ बाह्येषु तु प्रच्छन्नमहनि क्षेत्रखलवेश्मापणेभ्यः कुप्यभाण्डमुपस्करं वा माषमूल्यादूर्ध्वमापादमूल्यादित्यपहरतस्त्रिपणो दण्डः ॥ १४ ॥ आद्विपादमूल्यादिति षट्पणः ॥ १५ ॥ गोमयभस्मना वा प्रलिप्यावघोषणम् ॥ १६ ॥ आत्रिपादमूल्यादिति नवपणः ॥ १७ ॥ गोमयभस्मना वा प्रलिप्यावघोषणम् ॥ १८ ॥ शरावमेखलया वा ॥ १९ ॥

जो कर्मचारी कोठार (गोदाम) पण्यस्थान (दुकान) तांबे, लोहे के कारखाने से तांबे आदि की बनी आधा मासा वस्तु तथा उनके साधन उड़ालेता है, उसपर बारह पण दण्ड होवे। कोश, भंडार और अक्ष शाला से चौथाई पण की वस्तु भी चुराले-तो उसपर

चौवीस पण दंड हो। जो कर्मचारी, आप वस्तु चुराकर चोरों के शिर लगावे, उसका कष्ट पूर्वक वध किया जावे, यह राजपरिग्रह प्रकरण में लिखा गया है। यदि जनताके खेत, खलियान, घर या दुकानों से दिन में छुपाकर तांबे आदि के वर्तन या उनके साधनों को उड़ादे, जो एक मासे से चार मासे तक के हों-तो उसपर तीन पण दण्ड हो। यदि वस्तु का मूल्य आठ मासा हो तो उसपर छः पण दंड हो अथवा इन दोनों के शरीर में गोवर और भस्म लपेट कर नगर ढिंढोरे के साथ घुमाया जावे। जो वस्तु बारह मासे के मूल्य की हो तो उस पर नौ पण दंड है। इसको भी गोवर भस्म में लपेटकर इसके गले में सकोरा बांधकर नगर में घुमावे ॥ ११-१६ ॥

आपणमूल्यादिति द्वादशपणः ॥ २० ॥ मुण्डनं प्रव्राजनं वा ॥ २१ ॥ आद्विपणमूल्यादिति चतुर्विंशतिपणः ॥ २२ ॥ मुण्डनमिष्टकाशकलेन प्रव्राजनं वा ॥ २३ ॥ आचतुष्पणमूल्यादिति षट्त्रिंशत्पणः ॥ २४ ॥ आपञ्चपणमूल्यादित्यष्टचत्वारिंशत्पणः ॥ २५ ॥ आदशपणमूल्यादिति पूर्वः साहसदण्डः ॥ २६ ॥ आविंशतिपणमूल्यादिति द्विशतः ॥ २७ ॥ आत्रिंशत्पणमूल्यादिति पञ्चशतः ॥ २८ ॥ आचत्वारिंशत्पणमूल्यादिति सहस्रः ॥ २९ ॥ आपञ्चाशत्पणमूल्यादिति वधः ॥ ३० ॥

जो वस्तु एक पण मूल्य की हो-तो बारह पण दंड दे या उसका मूंड मुंडाकर देश से निकाल दे। दो पण की वस्तु चुराने पर चौवीस पण दंड दे या उसे मूंड मुंडाकर ईंट मारते हुए नगर से निकाल दे। चार पण मूल्य की वस्तु हो-तो छत्तीस पण, पांच पण की हो-तो अड़तालीस पण, दश पण की हो तो पूर्व साहस दंड, वीस पण की हो तो दो सौ पण दंड, तीस पण के मूल्य की हो तो तीन सौ पण, चालीस पण के मूल्य की हो तो एक सहस्र पण और पचास पण मूल्य की वस्तु चुराने पर प्राण दंड होना चाहिए ॥ २०-३० ॥

प्रसह्य दिवा रात्रौ वान्तर्याममेव हरतोऽर्धमूल्येष्वेत एव द्विगुणा दण्डाः ॥ ३१ ॥ प्रसह्यदिवा रात्रौ वा सशस्त्रस्यापहरतश्चतुर्भागमूल्येष्वेत एव दण्डाः ॥ ३२ ॥ कुटुम्बाध्यक्षमुख्यस्वामिनां कूटशासनमुद्राकर्मसु पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः ॥ ३३ ॥ यथापराधं वा ॥ ३४ ॥ धर्मस्थश्चेद्विवदमानं पुरुषं तर्जयति भर्त्सयत्यपसारयत्यभिग्रसते वा पूर्वमस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ३५ ॥ वाक्पारुष्ये द्विगुणम् ॥ ३६ ॥ पृच्छ्यं न पृच्छत्यपृच्छ्यं पृच्छति पृष्ट्वा वा विसृजति शिक्षयति समारयति पूर्वं ददाति वेति मध्यममस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ३७ ॥

दिन या रात में कुपित होकर आने जाने वाले की वस्तु को सब कुछ छीनने पर क्रमशः यह दण्ड हो। दिन या रात में शस्त्र लेकर जाने के चतुर्थांश भाग की वस्तु को छीनने पर यही दण्ड होवे। साधारण अपराध, अभद्र, गांव का पुलिस या अन्य पदाधिकारियों की जानी पुत्रादि या ... दण्डविधि तत्पर क्रम से प्रथम साहस, मध्यम साहस, उत्तम साहस दण्ड और वध दण्ड तक होना चाहिए। जैसा जिसका अपराध हो वैसा ही दण्ड हो। जो धर्मस्थ, बयान देते हुए पुरुष को धमकाता, फटकारता, कचहरी से निकाल देता या रिश्वत खा जाता है, तो धर्मस्थ को पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए। वादी प्रतिवादी को धर्माधिकारी गाली देवे तो उसे दुगुना दण्ड हो। जो धर्मस्थ, पूछने योग्य बात को नहीं पूछता, नहीं पूछने योग्य को पूछता है, कुछ बात को पूछकर वहीं छोड़ देता है, साक्षी देते समय सिखाता, किसी बात को याद दिलवाता, या पूर्व बात को पूर्ण कर देता है, तो ऐसे अपराध को मध्यम साहस दण्ड होना चाहिए॥ ३६-३७॥

देयं देशं न पृच्छत्यदेयं देशं पृच्छति कार्यमदेशेनातिवाहयति छलेनातिहरति कालहरणेन श्रान्तमपवाहयति मार्गापन्नं वाक्यमुत्क्रमयति मतिसाहाय्यं साक्षिभ्यो ददाति तारितानुशिष्टं कार्यं पुनरपि गृह्णाति उत्तममस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ३८ ॥ पुनरपराधे द्विगुणं स्थानाद्व्यवरोपणं च ॥ ३९ ॥ लेखकश्चेदुक्तं न लिखत्यनुक्तं लिखति दुरुक्तमुपलिखति सूक्तमुल्लिखत्यर्थोत्पत्तिं वा विकल्पयतीति पूर्वमस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ४० ॥ यथापराधं वा ॥ ४१ ॥

जो धर्मस्थ (जज या मजिस्ट्रेट) देने योग्य आज्ञा नहीं देता और नहीं देने योग्य आज्ञा दे देता है, किसी झगड़े को बिना साक्षी के निबटा देता है, किसी को छल करके चुका देता है, काल व्यतीत करके थके हुए वादी प्रतिवादी को तंग करता है। ठीक २ बोलते हुए वादी प्रतिवादी या साक्षी को गड़बड़ा देता है। साक्षियों को मति (सलाह) दे देता है, जिसका फैसला हो चुका उसे फिर से छेड़ता है, ऐसे धर्मस्थ को राजा उत्तम साहस दण्ड देवे। दुबारा यही अपराध करने पर दुगुना दण्ड हो और स्थान से हटा दिया जावे। लेखक यदि लिखने की बात को न लिखे, नहीं कही हुई बात को लिखले, अच्छी को बुरी तरह और बुरी को अच्छी बना कर लिखता है तथा बात के तात्पर्य में विकल्प खड़ा कर देता है, उस कर्मचारी (क्लर्क) को पूर्व साहस दण्ड हो या उसने वैसे विषय में यह अपराध किया वैसा दण्ड हो॥ ३८-४१॥

धर्मस्थः प्रदेष्टा वा हैरण्यमदण्ड्यं क्षिपति क्षेपद्विगुणमस्मै दण्डं कुर्यात् ॥ ४२ ॥ हीनातिरिक्ताष्टगुणं वा शारीरदण्डं क्षिपति शारीरमेव दण्डं

भजेत ॥ ४३ ॥ निष्क्रयद्विगुणं वा ॥ ४४ ॥ यं वा भूतमर्थं नाशयत्यभूतमर्थं करोति तदष्टगुणं दण्डं दद्यात् ॥ ४५ ॥ धर्मस्थीयाच्चारकान्निस्सारयतो बन्धनागाराच्छय्यासनभोजनोच्चारसंचारं रोधबन्धनेषु त्रिपणोत्तरा दण्डाः कर्तुः कारयितुश्च ॥ ४६ ॥

धर्माधिकारी या प्रदेष्टा, यदि दण्ड नहीं देने योग्य व्यक्ति को सुवर्ण दण्ड देवे-तो इस सुवर्ण से दुगुना दण्ड इन अधिकारियों पर किया जावे। यदि किसीको कम दण्ड के स्थान पर अधिक और अधिक स्थान पर कम दण्ड देता है, तो अधिकारी पर आठ गुना दण्ड होना चाहिए और जो धर्माध्यक्ष ने व्यर्थ ही शरीर दण्ड दे डाला है, तो उसपर भी शरीर दण्ड होना चाहिए और मूल्य से दुगुना जुरमाना होना चाहिए। जो धर्माधिकारी न्याय की बात न करके अन्याय की बात करे, उसपर भी आठ गुना दण्ड है। मजिस्ट्रेट के द्वारा निर्दिष्ट, चारक [दण्ड स्थान] से या बन्धनागार से जो व्यक्ति, कैदी को घुमा के, या वहीं उसके सोने, बैठने, भोजन, शौच और घूमने का प्रबन्ध करदे या करादे, तो उन्हें उत्तरोत्तर तीन पण बढ़ाते हुए दण्ड देना चाहिए ॥४१-४६॥

चारकादभियुक्तं मुञ्चतो निष्पातयतो वा मध्यमः साहसदण्डोऽभियोगदानं च ॥ ४७ ॥ बन्धनागारात्सर्वस्वं वधश्च ॥ ४८ ॥ बन्धनागाराध्यक्षस्य संरुद्धकमनाख्याय चारयतश्चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ४९ ॥ कर्म कारयतो द्विगुणः ॥ ५० ॥ स्थानान्यत्वं गमयतोऽन्नपानं वा रुन्धतः षण्णवतिर्दण्डः ॥ ५१ ॥ परिक्लेशयत उत्कोटयतो वा मध्यमः साहसदण्डः ॥ ५२ ॥ घ्नतः साहस्रः ॥ ५३ ॥ परिगृहीतां दासीमाहितिकां वा संरुद्धिकामधिचरतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५४ ॥

जो दण्ड स्थान से अभियुक्त को छोड़ दे या चले जाने को प्रेरणा करे, तो उसपर मध्यम साहस दण्ड हो और जो अभियोग (मुकद्में) का हर्जाना हो-वह भी उससे ही लिया जावे। यदि बन्धनागार से चलता करदे-तो उसका सर्वस्व छीनकर प्राण दंड देना चाहिए। बन्धनागार [जेल] के अध्यक्ष की विना आज्ञा, कैदी को जो घुमावे-उसपर चौबीस पण दंड हो और जो ऐसा करने को उकसावे-उसपर दुगुना दंड हो। जो मनुष्य, कैदी का स्थान बदले या खाने पीने में रुकावट डाले-उसपर छियानवे पण दण्ड हो। जो कैदी को क्लेश दे या रिश्वत के लिए तंग करे-उस पर मध्यम साहस दंड हो। यदि कोई कैदी को मारे-तो उसपर एक सहस्र पण दण्ड हो। कैद में आई हुई दासी, या रखेल स्त्री के साथ जो जेल में बुरा व्यवहार करे-उसपर पूर्व साहस दंड हो ॥४७-५४॥

चोरडामरिकभार्यां मध्यमः ॥ ५५ ॥ संरुद्धिकामार्यामुत्तमः ॥ ५६ ॥ संरुद्धस्य वा तत्रैव घातः ॥ ५७ ॥ तदेवाध्यक्षगृहीतायामार्यायां विद्यात् ॥५८ ॥ दास्यां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५९ ॥ चारकमभित्वा निष्पातयतो मध्यमः ॥ ६० ॥ भित्वावधः ॥ ६१ ॥ बन्धनागारात्सर्वस्वं वधश्च ॥ ६२ ॥

चोर या (लुटेरे) की भार्या के साथ बुरा व्यवहार करने पर मध्यम साहस और कैद में आई हुई स्त्री के साथ बुरा व्यवहार करने वाले पर उत्तम साहस दंड होना चाहिए। यदि कोई कैदी किसी स्त्री से बुरा व्यवहार कर ले तो उसे प्राण दंड हो। यही मृत्यु दंड आर्य स्त्री के साथ अध्यक्ष आदि के बुरा व्यवहार करने पर दिया जावे। दासी के साथ अध्यक्ष ऐसा करे-तो पूर्व साहस दण्ड हो। हवालात को बिना तोड़े कैदी को निकाल दिया जावे-तो मध्यम साहस दंड हो। हवालात तोड़कर कैदी छुड़ाने पर वध का दंड है। बन्धनागार (जेलखाने) से छुड़ाने में सर्वस्व हरण और मृत्यु दण्ड की व्यवस्था है ॥५५-६२॥

एवमर्थचरान्पूर्वं राजा दण्डेन शोधयेत् ।
शोधयेयुश्च शुद्धार्थैः पौरजानपदान्दमैः ॥ ६३ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे सर्वाधिकरणरक्षणं नवमो ऽध्यायः ॥९॥
आदितः षडशीतिः ॥ ८६ ॥

राजा प्रथम अपने कर्म-चारियों को दंड द्वारा ठीक चलावे, फिर नियमानुसार दंड व्यवस्था द्वारा राजकीय अध्यक्ष, पुर और देश की जनता का ठीक २ शासन करे ॥६३॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन अधिकरण में सारे अधिकारियों के कर्मों के वर्णन का नौवां अध्याय पूरा हुआ।



दसवां अध्याय

८५वां प्रकरण

एकाङ्गवध निष्क्रयः

इस प्रकरण में अपराधी के एक अङ्ग कटवाने या उसका निष्क्रय (बदले का द्रव्य) लेने का वर्णन किया जावेगा।

तीर्थघातग्रन्थिभेदोर्ध्वकराणां प्रथमे ऽपराधे संदंशच्छेदनं चतुष्पञ्चाशत्पणो वा दण्डः ॥ १ ॥ द्वितीये छेदनं पणस्य शत्यो दण्डः ॥ २ ॥ तृतीये

दक्षिणहस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः ॥ ३ ॥ चतुर्थे यथाकामी वधः ॥ ४ ॥ पञ्चविंशतिपणावरेषु कुक्कुटनकुलमार्जारश्वसूकरस्तेयेषु हिंसायां वा चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ ५ ॥ नासाग्रच्छेदनं वा ॥ ६ ॥ चण्डालारण्यचराणामर्धदण्डाः ॥ ७ ॥

तीर्थ के ऊपर धोखा देने वाले, ठग उठाई गिरों के प्रथम अपराध पर अङ्गुलियों के नख निकलवा देने चाहिए या इसके वदले में चौवन पण दंड में लिए जावे। यदि वही अपराधी दुबारा भी ऐसा ही करे-तो उसकी सारी अङ्गुलि कटवादी जावे, या उससे सौ पण दंड लिया जावे। यदि फिर तीसरी बार वही अपराध करता पकड़ा जावे-तो उसका दांया हाथ कटवा देना चाहिए या चारसौ रुपये दंड लेने उचित है। यदि फिर चौथी वार अपराध करे,तो जैसे राजा की इच्छा हो, उसी तरह उसे मृत्यु दंड दिया जावे। पच्चीस पण से कम मूल्य के कुक्कुट, नौले, विलाव, कुत्ते, और सूअरों की चोरी करने या उनके मार देने पर चौवन पण दंड या उसकी नाक का ज़रा सा अगला हिस्सा कटवा देना चाहिए। यदि ये मुर्गे आदि किसी चण्डाल पुरुष के हों या जंगली मनुष्यों के हों-तो अपराधी को आधा दंड होगा ॥१-७॥

पाशजालकूटापपातेषु बद्धानां मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्यानामादाने तच्च तावच्च दण्डः ॥ ८ ॥ मृगद्रव्यवनान्मृगद्रव्यापहारे शत्यो दण्डः ॥ ९ ॥ बिम्बविहारमृगपक्षिस्तेये हिंसायां वा द्विगुणो दण्डः ॥ १० ॥ कारुशिल्पिकुशीलवतपस्विनां क्षुद्रकद्रव्यापहारे शत्यो दण्डः ॥ ११ ॥ स्थूलकद्रव्यापहारे द्विशतः ॥ १२ ॥ कृषिद्रव्यापहारे च ॥ १३ ॥

फांसी, जाल, प्रच्छन्न गडढे खोदकर जो विना अधिकार सुरक्षित वन के मृग, पशु पक्षी और मत्स्यों को पकड़ता है, उस से उसका मूल्य और उतना ही दंड लेना चाहिए। वन में स्वच्छन्द घूमने वाले मृग या वन की लकड़ी आदि वस्तुओं को अपहरण करने वाले पुरुष पर सौ रुपये दंड होवें। वगीचे और विहारस्थलों के पशु और पक्षियों के चुराने वाले पर इस से दुगुना दंड होवे। कारीगर, शिल्पी, नट और तपस्वी पुरुषों की छोटी मोटी वस्तु के चुराने पर सौ रुपये दंड हों और वड़ी चीजों के चुराने पर दो सौ दण्ड हो। खेती के साधन हल आदि के चुराने पर भी दो सो पण दंड होना चाहिए॥ ८-१३॥

दुर्गमकृतप्रवेशस्य प्रविशतः प्राकारच्छिद्राद्वा निक्षेपं गृहीत्वापसरतः कन्धरावधो द्विशतो वा दण्डः ॥ १४ ॥ चक्रयुक्तं नावं क्षुद्रपशुं वापहरत

एकपादवधः त्रिशतो वा दण्डः ॥ १५ ॥ कूटकाकण्यक्षारालाशलाकाहस्तविषमकारिण एकहस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः ॥ १६ ॥ स्तेनपारदारिकयोः साचिव्यकर्मणि स्त्रियाः संगृहीतायाश्च कर्णनासाच्छेदनं पञ्चशतो वा दण्डः ॥ १७ ॥ पुंसो द्विगुणः ॥ १८ ॥ महापशुमेकं दासं दासीं वापहरतः प्रेतभाण्डं वा विक्रीणानस्य द्विपादवधः षट्छतो वा दण्डः ॥ १९ ॥

दुर्ग में प्रवेश नहीं होने की आज्ञा वाले पुरुष का दुर्ग में प्रवेश करने वाले अथवा परकोटे के छिद्र से घुस कर दुर्ग से द्रव्य उड़ा लेने वाले पुरुष की गर्दन काट कर मार देना या उससे दो सौ पण दंड लेना चाहिए। पाहियों की नाव या क्षुद्र पशु के अपहरण करने वाले अपराधी का एक पैर काट देना चाहिए या उस से तीन सौ पण दंड में लेवे। जाली कौड़ी, पासे चमड़े की चौकड़ी और शलाका बनाने तथा छल से हाथ चलाने की शिक्षा देने वाले का एक हाथ काट दिया जावे या उसपर चार रुपये दंड होवे। चोर और व्यभिचारी पुरुषों की सहायता करने वाली पकड़ी हुई स्त्रियों की नाक और कान कटवा देने उचित हैं या उनसे पांचसौ रुपये दंड लिये जावें। जो पुरुष उनकी सहायता करे-तो उसे भी दुगुना दंड हो। जो पुरुष बड़े पशु और दास या दासी तथा प्रेत निमित्त आई हुई वस्तुओं को चुरावे-तो उसके दोनों पैर कटवा दिये जावें या उससे छः सौ पण दंड में लिया जावे ॥१४-१९॥

वर्णोत्तमानां गुरूणां च हस्तपादलङ्घने राजयानवाहनाद्यारोहणे चैकहस्तपादवधः सप्तशतो वा दण्डः ॥ २० ॥ शूद्रस्य ब्राह्मणवादिनो देवद्रव्यमवस्तृणतो राजद्विष्टमादिशतो द्विनेत्रभेदिनश्च योगाञ्जनेनान्धत्वमष्टशतो वा दण्डः ॥२१॥ चोरं पारदारिकं वा मोचयतो राजशासनमूनमतिरिक्तं वा लिखतः कन्यां दासीं वा सहिरण्यमपहरतः कूटव्यवहारिणो विमांसविक्रयिणश्च वामहस्तपादवधो नवशतो वा दण्डः ॥ २२ ॥ मानुषमांसविक्रये वधः ॥ २३ ॥ देवपशुप्रतिमामनुष्यक्षेत्रगृहहिरण्यसुवर्णरत्नसस्यापहारिण उत्तमो दण्डः शुद्धवधो वा ॥ २४ ॥

आम वर्ण के पूज्य पुरुषों के हाथ या पैर से मारने या राजा की सवारी, अश्व आदि पर चढ़ने वाले पुरुष का एक हाथ और एक पैर कटवा देना चाहिए या उससे सात सौ पण दंड में लेने उचित हैं। जो शूद्र, अपने को ब्राह्मण बतावे और देव द्रव्य को अपने अधीन करले, राजा के द्वेष की बात फैलावे या किसी की दोनों आंखे फोड़ दे-तो औषधियों का अञ्जन लगाकर उसे अन्धा कर देना चाहिए। चोर या व्यभिचारी, पुरुष को छुड़ाने

वाले, राज शासन को घटा बढ़ाकर लिखने वाले, कन्या या दासी को आभूषणों के साथ चुराने वाले, छल कपट का व्यवहार करने वाले, अभक्ष्य पशुओं का मांस वेचने वाले, अपराधी का बांया हाथ और दोनों पैर काट देने उचित है या उनसे नो सौ पण दंड लेने। यदि कोई मनुष्य का मांस वेचता पकड़ा जावे-तो उसका वध करना उचित है। देवता के पशु, प्रतिमा, मनुष्य खेत, घर, सुवर्ण, रत्न और अन्न के अपहरण करने वाले मनुष्यों को उत्तम साहस दंड वा शुद्ध ढंग से मृत्यु दंड देना चाहिए॥२०-२४॥

पुरुषं चापराधं च कारणं गुरुलाघवम्।
अनुबन्धं तदात्वं च देशकालौ समीच्य च॥ २५॥

उत्तमावरमध्यत्वं प्रदेष्टा दण्डकर्मणि।
राज्ञश्च प्रकृतीनां च कल्पयेदन्तरास्थितः॥ २६॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे एकाङ्गवधनिष्क्रयो दशमोऽध्यायः॥१०॥
आदितः सप्ताशीतिः॥ ८७॥

दंड देने वाला पुरुष अपराधी, उसके अपराध, कारण का गौरव-लाघव, उसके जोड़-तोड़ उस समय के देश और काल, को देखकर राजा और प्रजा के मध्य में स्थित होकर उत्तम, मध्यम और प्रथम आदि दंड देवे॥२५-२६॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत, कण्टकशोधन अधिकरण में अपराधी के एक अङ्ग वध और उसके निष्क्रय का दशवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



ग्यारहवां अध्याय

८६वां प्रकरण

इस प्रकरण में कष्ट-पूर्वक वध और विना कष्ट वध करने का वर्णन किया जावेगा।

कलहे घ्नतः पुरुषं चित्रो घातः॥ १॥ सप्तरात्रस्यान्तर्मृते शुद्धवधः॥ २॥ पक्षस्यान्तरुत्तमः॥ ३॥ मासस्यान्तः पञ्चशतः समुत्थानव्ययश्च॥४॥ शस्त्रेण प्रहरत उत्तमो दण्डः॥ ५॥ मदेन हस्तवधः॥ ६॥ मोहेन द्विशतः॥७॥ वधे वधः॥ ८॥ प्रहारेण गर्भं पातयत उत्तमो दण्डः॥ ९॥ भैषज्येन मध्यमः॥ १०॥ परिक्लेशेन पूर्वः साहसदण्डः॥ ११॥

लड़ाई झगड़े में जो पुरुष, किसी दूसरे पुरुष को मार दे-तो उसको कष्ट पूर्वक मृत्यु दण्ड देना चाहिए। यदि लड़ाई झगड़े में इतनी चोट लग गई, कि सात दिन में मृत्यु हो-तो उसको शुद्ध मृत्यु दण्ड अर्थात् विना कष्ट फांसी दी जावे। यदि लड़ाई दंगे के पन्द्रह दिन बाद किसी आहत की मृत्यु हो-तो अपराधी को उत्तम साहस दंड होवे और महीने के अनन्तर मृत्यु हो-तो पांच सो दंड और चिकित्सा व्यय वसूल किया जावे। जो लड़ाई में शस्त्र का प्रयोग करे, उसको उत्तम साहस दंड हो। यदि मद में आकर प्रहार कर बैठे-तो हाथ कटवाया जावे। मोह में आकर मार बैठे-तो दो सौ पण दंड हो यदि किसीका दंगे में प्राण निकल गया हो-तो अपराधी को प्राण दंड दिया जावे। यदि प्रहार से किसी स्त्री का गर्भ गिर जावे-तो उत्तम साहस दंड हो। औषधि द्वारा गर्भ गिराने पर मध्यम दंड हो। यदि कठोर काम कराकर गर्भ पात करा दिया गया हो तो पूर्व साहस दंड होना चाहिए॥१-११॥

प्रसभस्त्रीपुरुषघातकाभीसारकानिग्राहकानवघोषकावस्कन्दकोपवेधकान्पथि वेश्मप्ररोधकान्राजहस्त्यश्वरथानां हिंसकान्स्तेनान्वा शूलानारोहयेयुः॥१२॥यश्चैनान्दहेदपनयेद्वा स तमेव दण्डं लभेत साहसमुत्तमं वा॥ १३॥ हिंस्रस्तेनानां भक्तवासोपकरणाग्निमन्त्रदानवैयावृत्यकर्मसूत्तमो दण्डः॥ १४॥ परिभाषणमविज्ञाने॥ १५॥ हिंस्रस्तेनानां पुत्रदारमसमन्त्रंविसृजेत्समन्त्रमाददीत॥ १६॥

बलात्कार द्वारा स्त्री पुरुषों के घातक, किसी के उड़ा ले जाने या रोक रखने वाले-किसीके मारने की धमकी देने वाले या लूट मचाने वाले तथा कान नाक काट लेने वाले मार्ग के धर्मशाला आदि स्थानों पर बलपूर्वक अधिकार करने वाले तथा राजा के हाथी, अश्व और रथों को मार देने चुरा लेने वाले अपराधियों को शूली पर चढ़ाकर मार देवे। जो इन पुरुषों का दाह कर्म करे या इन्हें हटा ले जावे, उनपर यही दंड या उत्तम साहस दंड होना चाहिए। हत्यारे और चोरों को भोजन, वस्त्र, सामग्री, अग्नि, सम्मति, दान या वेतन से नौकरी करे-तो उसपर उत्तम साहस दंड होवे। यदि भूल से उनकी सहायता हो जावे-तो उन सहायक पुरुषों को चेतावनी देकर छोड़ दिया जावे। घातक और चोरों के पुत्र और स्त्रियों को यदि उनके कामों में सम्मिलित न हों-तो उन्हें छोड़ दिया जावे और यदि सम्मिलित हों-तो यथा योग्य दंड दिया जावे॥१२-१६॥

राज्यकामुकमन्तः पुरप्रधर्षकमटव्यमित्रोत्साहकं दुर्गराष्ट्रदण्डकोपकं वा शिरोहस्तप्रादीपिकं घातयेत्॥ १७॥ ब्राह्मणं तमः प्रवेशयेत्॥ १८॥ मातृपितृपुत्रभ्रात्राचार्यतपस्विघातकं वा त्वक्छिरःप्रादीपिकं घातयेत्॥ १९॥ तेषामाक्रोशे जिह्वाच्छेदः॥ २०॥ अङ्गाभिरदने तदङ्गान्मोच्यः॥ २१॥

राजा के राज्य के छीनने के अभिलाषी, राजा के रनिवास में व्यभिचार की चेष्टा करने वाले, वन के लोग या राजा के शत्रु को उत्साह देने वाले, दुर्ग, राष्ट्र की जनता को चमका देने वाले अपराधी के शिर और हाथ पर अङ्गारा धर कर मरवा देना चाहिए। यदि ब्राह्मण ऐसा करे-तो उसे आजीवन काल कोठरी में डाल दे। माता, पिता, पुत्र, भ्राता, आचार्य, तपस्वी के घातक पुरुष की खाल और शिर पर अङ्गारा रखवाकर मरवा दिया जावे। यदि कोई माता पिता आदि को गाली देदे-तो उसकी जिह्वा का छेद करवा दिया जावे। यदि किसी अङ्ग से अङ्ग को मसल दिया गया-तो उसके उसी अङ्ग को तोड़ दिया जावे ॥१७-२१॥

यदृच्छाघाते पुंसः पशुयूथाऽश्वस्तेये च शुद्धवधः ॥ २२ ॥ दशावरं च यूथं विद्यात् ॥ २३ ॥ उदकधारणं सेतुं भिन्दतस्तत्रैवाप्सु निमज्जनम् ॥ २४ ॥ अनुदकमुत्तमः साहसदण्डः ॥ २५ ॥ भग्नोत्सृष्टकं मध्यमः ॥ २६ ॥ विषदायकं पुरुषं स्त्रियं च पुरुषघ्नीमपः प्रवेशयेदगर्भिणीम् ॥ २७॥ गर्भिणीं मासावर-प्रजातां पतिगुरुप्रजाघातिकामग्निविषदां संधिच्छेदिकां वा गोभिः पाटयेत् ॥२८॥

यदि कोई अपराधी अचानक किसी पुरुष को मार दे, या पशुओं के झुंड से अश्व आदि की चोरी करले-तो उसे विना कष्ट दिए मरवा देना चाहिए। कम से कम दश पशुओं का एक यूथ माना जाता है। यदि जल के रोकने वाले सेतु को जो तोड़ देता है, उसको पानी में डुबो देना चाहिए। यदि जल न आया हो और पुल बना हो-तो जो उस पुल को तोड़ता है, उसे उत्तम साहस दंड देना चाहिए। जो पुल खंडहर हो रहा हो और कोई पुरुष उसे तोड़ गिरावे-तो उसे मध्यम साहस दंड होवे। विष देने वाले पुरुष या पुरुष मारने वाली स्त्री को पानी में डुबो दे-परन्तु स्त्री गर्भवती नहीं होनी चाहिए। गर्भवती स्त्री को बच्चा उत्पन्न हो जाने पर एक महीने बाद पानी में डुबो दे। पति, गुरु, सन्तान के मारने वाली, अग्नि लगाने वाली, विष देने वाली और संधि काट देने वाली स्त्री को गौओं से रुंधवा कर मरवा दे ॥२२-२८॥

विवीतक्षेत्रखलवेश्मद्रव्यहस्तिवनादीपिकमग्निना दाहयेत् ॥ २९ ॥ राजा-क्रोशकमन्त्रभेदकयोरनिष्टप्रवृत्तिकस्य ब्राह्मणमहानसावलेहिनश्चजिह्वामुत्पाटयेत् ॥ ३० ॥ प्रहरणावरणस्तेनमनायुधीयमिषुभिर्घातयेत् ॥ ३१ ॥ आयुधीय-स्योत्तमः ॥ ३२ ॥ मेढ्रफलोपघातिनस्तदेव छेदयेत् ॥ ३३ ॥ जिह्वानासोपघाते संदंशवधः ॥ ३४ ॥

गोचर भूमि, खेत, खलिहान, घर, वन की वस्तु, हाथियों के वन में आग लगाने वाले अपराधी को आग में जला देवे। राजा को गाली देने वाले, गुप्त भेद खोलने वाले, राजा के अनिष्ट करने वाले और ब्राह्मण की रसोई से चुराकर चाट जाने वाले पुरुष की जिह्वा उखड़वा लेनी चाहिए। जो कवच और शस्त्र चुरावे और शस्त्रों से जीविका न करे उसे बाणों से मार डालना चाहिए, जो वह शस्त्र जीवी होवे-तो उसे उत्तम साहस दंड होना चाहिए। जो कोई किसी के लिङ्ग और अंड कोशों को काट दे, तो उस अपराधी के भी लिङ्ग और अंडकोश कटवा दिये जावे। जिह्वा और नाक काट देने पर अंगूठा और अंगुली कटवा देनी चाहिए ॥२९-३४॥

एते शास्त्रेष्वनुगताः क्लेशदण्डा महात्मनाम्।
अक्लिष्टानां तु पापानां धर्म्यः शुद्धवधः स्मृतः ॥ ३५ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्प एकादशो ऽध्यायः ॥ ११ ॥ आदितो ऽष्टाशीतिः ॥ ८८ ॥

ये कठिन दंड महात्माओं ने शास्त्रों में कहे हैं, परन्तु जो अनुचित पाप कर्म हैं, उनमें शुद्ध वध ही धर्म माना गया है ॥३५॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन अधिकरण में शुद्ध और चित्त वध का ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ।



बारहवां अध्याय

८७वां प्रकरण

कन्या प्रकर्म

इस प्रकरण में कन्या सम्बन्धी अपराधों का वर्णन किया जावेगा।

सवर्णामप्राप्तफलां कन्यां प्रकुर्वतो हस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः ॥ १ ॥ मृतायां वधः ॥ २ ॥ प्राप्तफलां प्रकुर्वतो मध्यमप्रदेशिनीवधो द्विशतो वा दण्डः पितुश्चावहीनं दद्यात् ॥ ३ ॥ न च प्राकाम्यमकामायां लभेत ॥ ४ ॥ सकामायां चतुष्पञ्चाशत्पणो वा दण्डः ॥ ५ ॥ स्त्रियास्त्वर्धदण्डः ॥ ६॥ परशुल्कावरुद्धायां हस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः शुल्कदानं च ॥ ७ ॥ सप्तार्तवप्रजातां वरणादूर्ध्वमलभमानः प्रकृत्य प्राकामी स्यात् ॥ ८ ॥ न च पितुरपहीनं दद्यात् ॥ ९ ॥ ऋतुप्रतिरोधिभिः स्वाम्यादपक्रामति ॥ १० ॥

जो पुरुष रजोहीन कन्या पर प्रहार करता है, उसके हाथ कटवा लिये जावें, या उस पर चार सौ पण दंड हों। जो वह कन्या मर जावे, तो उसको भी फांसी दी जावे। जो रजस्वला कन्या पर प्रहार करे-तो उसकी बीच की अङ्गुली कटवा दी जावे या उसपर दो सौ पण दंड हो और पिता जो हर्जाना बतावे-वह दिया जावे। अकामा कन्या अर्थात् छोटी कन्या से कभी संयोग की इच्छा न करे, अन्यथा दंढ होगा। जो सकामा कन्या हो, उससे संभोग करने पर चौवन पण दंड हो और सकामा स्त्री के साथ संभोग करने पर आधा दंड होवे। जो दूसरे के साथ सगाई हुई कन्या को दूषित करे उसके हाथ कटवा दिये जावें या चार सौ पण दंड दिया जावे और प्रथम वर का शुल्क दिलाया जावे। वरण के अनन्तर कन्या के सात ऋतु हो गए हों और किसी कारण से उसका पिता उसका विवाह न करे-तो पति उसे छीनकर ला सकता है। उस समय पिता का हर्जाना नही दिया जावेगा। जो कन्या का ऋतु घात करता है, वह कन्या पर से अपना स्वत्व हटा लेता है॥१-१०॥

त्रिवर्षप्रजातार्तवायास्तुल्यो गन्तुमदोषः ॥ ११ ॥ ततः परमतुल्यो ऽप्यनलंकृतायाः ॥ १२ ॥ पितृद्रव्यादाने स्तेयं भजेत ॥ १३ ॥ परमुद्दिश्यान्यस्य विन्दतो द्विशतो दण्डः ॥ १४ ॥ न च प्राकाम्यमकामायां लभेत ॥ १५ ॥ कन्यामन्यां दर्शयित्वान्यां प्रयच्छतः शत्यो दण्डस्तुल्यायाम् ॥ १६ ॥ हीनायां द्विगुणः ॥ १७ ॥ प्रकर्मण्यकुमार्याश्चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १८ ॥ शुल्कव्ययकर्मणी च प्रतिदद्याद् अवस्थाय॥१६॥ तज्जातं पश्चात्कृता द्विगुणं दद्यात्॥२०॥

यदि तीन वर्ष तक कन्या के ऋतु आता रहे, और पिता उसका विवाह न करे-तो उसी जाति का कोई भी पुरुष उसकी इच्छा से उसके साथ संयोग करके उसका पति बन सकता है। यदि तीन वर्ष से अधिक ऋतु होते हो जावें-तो छोटी स्थिति का वर भी उस कन्या के साथ स्वेच्छा से विवाह कर सकता है, परन्तु कन्या के आभूषणों पर उसका अधिकार नहीं होगा। यदि वह पति उस पिता के अलंकारों को न लौटावे-तो उसे चोरी का दण्ड दिया जावे। यदि कोई कन्या अन्य को देना स्वीकार किया गया हो और वह मैं ही हूं ऐसा कहकर यदि दूसरा विवाह लेता है-तो उसपर दो सौ पण दंड हो। अकामा (छोटी कन्या) से किसी को सुख नहीं मिल सकता है। यदि और कन्या दिखाई गई और विवाह तुल्य वर्ण की दूसरी के साथ कर दिया गया-तो उस विवाह करने वाले अपराधी पर सौ पण दण्ड हो। यदि हीन वर्ण की कन्या देदी जावे-तो दुगुना दण्ड हो। जो क्षतयोनि स्त्री को अक्षत योनि बताकर विवाह करदे, उसपर चौवन पण दण्ड हो और उसके शुल्क तथा

व्यय उस पति के पास पहुंचाए जावें। यदि वह कन्या से प्राप्त होने पर भी शुल्क आदि न देवे-तो उस से दुगुना लिया जावे ॥ १९-२० ॥

अन्यशोणितोपधाने द्विशतो दण्डः ॥ २१ ॥ मिथ्याभिशंसिनश्च पुंसः ॥ २२ ॥ शुल्कव्ययकर्मणी च जीयेत ॥ २३ ॥ न च प्राकाम्यमकामायां लभेत ॥ २४ ॥ स्त्री प्रकृता सकामा समाना द्वादशपणदण्डं दद्यात् ॥ २५ ॥ प्रकर्त्री द्विगुणम् ॥ २६ ॥ अकामायाः शत्यो दंड आत्मरागार्थं शुल्कदानं च ॥ २७ ॥ स्वयं प्रकृता राजदास्यं गच्छेत् ॥ २८ ॥ बहिर्ग्रामस्य प्रकृतायां मिथ्याभिशंसने च द्विगुणो दंडः ॥ २९ ॥

अपना अक्षत योनित्व दिखाने के लिए जो स्त्री अन्य स्त्री के रक्त कपड़ों पर लगा ले-उसपर दो सौ पण दण्ड हो। जो इस विषय में मिथ्या कहने वाला पुरुष है अर्थात् अक्षत योनि कहकर विवाह करने वाला पुरुष है, उसपर भी दो सौ पण दंड हो तथा अपना शुल्क और विवाह का व्यय भी इस पति को मिलना चाहिए। नहीं चाहने वाली स्त्री के साथ संभोग करने में आनन्द नहीं है। समान वर्ण की युवति स्त्री से जो भोग कर लेता है, उसपर बारह पण दंड होवे। यदि स्त्री हस्त क्रिया आदि से अपने को क्षत कर ले-तो उसे दुगुना दंड हो। विवाह की इच्छा न रखकर भी थोड़ी देर के आनन्द के लिए जो स्त्री किसी से संयोग करले-तो उसे सौ पण दंड होगा और पूर्व पति का शुल्क लौटाना पड़ेगा। जो स्वयं अपने को क्षत करती है, उसे राजा दासी बना सकता है। गांव के बाहर दोनों के संयोग करने और फिर अपराध के स्वीकार न करने पर दुगुना दंड हो ॥ २१-२९ ॥

प्रसह्य कन्यामपहरतो द्विशतः ॥ ३० ॥ ससुवर्णामुत्तमः ॥ ३१ ॥ बहूनां कन्यापहारिणां पृथग्यथोक्ता दंडाः ॥ ३२ ॥ गणिकादुहितरं प्रकुर्वतश्चतुष्पञ्चाशत्पणो दंडः ॥ ३३ ॥ शुल्कं मातुर्भोगः षोडशगुणः ॥ ३४ ॥ दासस्य दास्या वा दुहितरमदासीं प्रकुर्वतश्चतुर्विंशतिपणो दंडः शुल्कावध्यदानं च ॥ ३५ ॥

जो बल-पूर्वक कन्या का अपहरण करे-उसपर दो सौ पण दंड हो। यदि सुवर्ण के सहित अपहरण करता है-तो उस पर उत्तम साहस दंड हो। यदि कन्या के अपहरण करने वाले अनेक व्यक्ति हों-उनको पूर्वोक्त पृथक् २ दंड दिया जावे। जो वेश्या की पुत्री के साथ अनिच्छा से सम्भोग करता है, उसपर चौवन पण दंड हो तथा दंड से सोलह गुना शुल्क उस वेश्या कन्या की माता को दिया जावे। दास या दास की पुत्री को जो स्वतन्त्र कर दे

अर्थात् आप उससे विवाह करले-तो उसपर चौबीस पण दंड तथा उसे शुल्क और आभूषण देने पड़ेंगे ॥ ३०-३५ ॥

निष्क्रयानुरूपां दासीं प्रकुर्वतो द्वादशपणो दंडो वस्त्राबन्ध्यदानं च ॥३६॥ साचिव्यावकाशदाने कर्तृसमो दंडः ॥ ३७ ॥ प्रोषितपतिकामपचरन्तीं पतिबन्धुस्तत्पुरुषो वा संगृह्णीयात् ॥३८॥ संगृहीता पतिमाकांक्षेत ॥३९॥ पतिश्चेत्क्षमेत विसृज्येतोभयम् ॥ ४०॥ अक्षमायाः स्त्रियाः कर्णनासाच्छेदनं वधं जारश्च प्राप्नुयात् ॥ ४१ ॥ जारं चोरं इत्यभिहरतः पञ्चशतो दण्डः ॥ ४२॥ हिरण्येन मुञ्चतस्तदष्टगुणः ॥ ४३ ॥

जो दासी कन्या का मोल चुकाकर उस से भोग करता है, उस पर बारह पण दंड और उसे वस्त्र आभूषणदेने होंगे। इन स्त्रियों को दूषित करने में जो सहायता और सम्मति देता है, उसको भी अपराधी के तुल्य दंड होना चाहिए। जिसका पति विदेश गया, यदि वह कुछ अनुचित करती है तो उसके बांधव या कुटुम्बी पुरुष उसे रोक रख सकते हैं। बांधवों द्वारा रोकी हुई वह स्त्री पति के आने की प्रतिज्ञा करे। यदि पति क्षमा करदे-तो उन दोनों को छोड़ दे। यदि पति क्षमा न करे-तो उस स्त्री के नाक कान काट दिए जावें और उस जार को मार दिया जावे। जो कोई व्यभिचार के लिए घर में आवे और उसे चोर बताया जावे, तो बताने वाले पर पांच सौ पण दंड होवे। यदि सुवर्ण लेकर कोई जार पुरुष को छोड़ दे-तो छोड़ने वाले से अठगुना सुवर्ण दंड में लिया जावे ॥ ३६-४३ ॥

केशाकेशिकं संग्रहणमुपलिङ्गनाद्वा शरीरोपभोगानां तज्जातेभ्यः स्त्रीवचनाद्वा ॥ ४४ ॥ परचक्राटवीहृतामोघप्रव्यूढामरण्येषु दुर्भिक्षे वा त्यक्तां प्रेतभावोत्सृष्टां वा परस्त्रियं निस्तारयित्वा यथासंभाषितं समुपभुञ्जीत ॥ ४५ ॥ जातिविशिष्टामकामामपत्यवतीं निष्क्रयेण दद्यात् ॥ ४६ ॥

जब स्त्री पुरुषों को ऊपर नीचे पकड़ लिया जावे, स्त्री या पुरुष के शरीर पर संभोग के चिन्ह हों, उन दोनों द्वारा संतान उत्पन्न होने या स्त्री के कहने पर संभोग का निश्चय माना जाता है। दूसरे देश के वन में घूमती हुई लायी गई, नदी के प्रवाह में डूबती बचाई गई, वन में दुर्भिक्ष के समय त्यागी हुई या मरी समझकर छोड़ी हुई पर स्त्री को भी आपत्ति से छुड़ाकर उसकी इच्छा के अनुसार भोग सकता है। यदि वह स्त्री जाति में श्रेष्ठ हो, उद्धार कर्ता की चाह न करती हो, या सन्तान वाली हो-तो उसका मूल्य लेकर उसे उसके पूर्व पति को सौंप देवे ॥४४-४६॥

चोरहस्तान्नदीवेगाद्दुर्भिक्षाद्देशविभ्रमात् ।
निस्तारयित्वा कान्तारान्नष्टां त्यक्तां मृतेति वा ॥ ४७ ॥
भुञ्जीत स्त्रियमन्येषां यथासंभाषितं नरः ।
न तु राजप्रतापेन प्रमुक्तां स्वजनेन वा ॥ ४८ ॥
न चोत्तमां न चाकामां पूर्वापत्यवतीं न च ।
ईदृशीं चानुरूपेण निष्क्रयेणापवाहयेत् ॥ ४९ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे कन्याप्रकर्म द्वादशो ऽध्यायः ॥ १२ ॥
आदित एकोननवतिः ॥ ८९ ॥

चोर, नदी वेग, दुर्भिक्ष, देश विप्लव, वन में छोड़ी हुई, मरी समझकर फेंकी हुई स्त्री की रक्षा करके पुरुष उसकी अनुमति से उस स्त्री को भी भोग सकता है। परन्तु राज कोप या स्वजन से निकाली हुई, उत्तम वर्ण वाली अकामा, और सन्तान वाली स्त्री को कोई नहीं भोग सकता है, उसको तो उद्धारक अपने श्रम का मोल लेकर उसके पति को वापिस करदे ॥४७-४९॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन अधिकरण में कन्या दूषित करने के सम्बन्ध में राजकीय व्यवस्था का बारहवां अध्याय समाप्त हुआ।



तेरहवां अध्याय

८८वां प्रकरण

अतिचार दण्ड

इस प्रकरण में अभक्ष्य भक्षण आदि के विषय में राजकीय नियमों का उल्लेख होगा।

ब्राह्मणमपेयमभक्ष्यं वा ग्रासयत उत्तमो दंडः ॥ १ ॥ क्षत्रियं मध्यमः ॥ २ ॥ वैश्यं पूर्वः साहसदंडः ॥ ३ ॥ शूद्रं चतुष्पञ्चाशत्पणो दंडः ॥ ४ ॥ स्वयंग्रसितारो निर्विषयाः कार्याः ॥ ५ ॥ परगृहाभिगमने दिवा पूर्वः साहसदंडः ॥ ६ ॥ रात्रौ मध्यमः ॥ ७ ॥ दिवा रात्रौ वा सशस्त्रस्य प्रविशत उत्तमो दंडः ॥ ८ ॥

जो मनुष्य, ब्राह्मण को अपेय पिलादे और अभक्ष्य खिलादे, उसे उत्तम साहस, जो क्षत्रिय को खिलादे, उसे मध्यम और जो वैश्य को खिला-पिलादे, उसे प्रथम और शूद्र को

खिलाने पिलाने वाले को चौवन पण दंड होना चाहिए। यदि ब्राह्मण आदि वर्ण, स्वयं अभक्ष्य भक्षण करे,तो उन्हें स्वदेश से निकाल दिया जावे। जो पुरुष दिन में किसी के घर में विना आज्ञा घुस जावे-तो उसे पूर्व साहस, रात में मध्यम साहस और दिन या रात में शस्त्र लेकर घुसने पर उत्तम साहस दंड दिया जावे ॥१-८॥

भिक्षुकवैदेहकौ मत्तोन्मत्तौ बलादापदि चातिसंनिकृष्टाः प्रवृत्तप्रवेशाश्चा-दंड्या अन्यत्र प्रतिषेधात् ॥ ६ ॥ स्ववेश्मनो ऽपि रात्रादूर्ध्वं परिवार्यमारोहतः पूर्वः साहसदंडः ॥ १० ॥ परवेश्मनो मध्यमः ॥ ११ ॥ ग्रामारामवाटभेदिनश्च ॥ १२ ॥ ग्रामेष्वन्यतः सार्थिका ज्ञातसारा वसेयुः ॥ १३ ॥ मुषितं प्रवासितं चैषामनिर्गतं रात्रौ ग्रामस्वामी दद्यात् ॥ १४ ॥ ग्रामान्तेषु वा मुषितं प्रवासितं विवीताध्यक्षो दद्यात् ॥ १५ ॥

भिखारी, फेरी लगाकर माल बेचने वाले, नशे में लीन, पागल, बलपूर्वक आपत्ति में धकेले हुए तथा जिनका घर में आना जाना है, वे दंड के भागी नहीं है, यदि इनको रोक दिया गया-तो इनको भी घर में घुसने का अधिकार नहीं है। एक पहर रात बीतने पर अपने ही घर की दीवार चढ़ने वाले को पूर्व साहस दंड हो। यदि दूसरे की दीवार पर चढ़े या गांव के बगीचों की दीवार तोड़े तो मध्यम साहस दंड होवे। यदि ग्राम के पास कोई व्यापारियों का पड़ाव पड़े तो वह ग्रामाध्यक्ष को अपनी सारी सूचना देकर डेरा डाले। यदि फिर रात में चोरी, लूट भूल, चूक हो जावे, तो उस वस्तु को ग्रामाध्यक्ष देवे। ग्राम के अन्त में यदि चोरी या लूट हो तो विवीताध्यक्ष राज्य का अधिकारी उस चोर को देवे ६-१५॥

अविवीतानां चोररज्जुकः ॥ १६ ॥ तथाप्यगुप्तानां सीमावरोधेन विचयं दद्युः ॥ १७ ॥ असीमावरोधे पञ्चग्रामी दशग्रामी वा ॥ १८ ॥ दुर्बलं वेश्म शकटमनुत्तब्धमूर्ध्वस्तम्भशस्त्रमनपाश्रयमप्रतिच्छन्नं श्वभ्रं कूपं कूटावपातं वा कृत्वा हिंसायां दंडपारुष्यं विद्यात् ॥ १९ ॥ वृक्षच्छेदने दम्यरश्मिहरणे चतुष्पदानामदान्तसेवने वा काष्ठलोष्टपाषाणदण्डबाणबाहुविक्षेपणेषु याने हस्तिना च ॥ २० ॥ संघट्टने चापेहीति प्रक्रोशन्नदण्ड्यः ॥ २१ ॥

यदि वहां विवीताध्यक्ष का अधिकार न हो-तो उसको चोर पकड़वाने वाला गांव का चौधरी देवे। यदि ये भी न हों तो सीमापालक खोज लगाकर उनकी वस्तु दिलवादे। यदि सीमापालक का प्रान्त न हो तो उसे पञ्च ग्रामी या दश ग्रामी देवे। कमजोर मकान, गाड़ी, खड़ा शस्त्र, असुरक्षित गड्ढा, कुआ, या पत्थरों का ढ़ेर कोई करदे और उससे

किसी की मृत्यु हो जावे, तो दंड पारुष्य प्रकरणानुसार अपराधी को दंड दिया जावे। वृक्ष के काटने, रस्सी पकड़े हुए जाने, बैल घोड़ों को हिलाने, काष्ठ, ढेला, पत्थर, दंड, बाण और बाहु फैंकने पर सवारी या हाथी के आने और हट जाओ की आवाज़ लगा देने परभी जो टक्कर में आजावे, तो इसमें किसी को भी दंड नहीं होगा ॥१६-२१॥

हस्तिना रोपितेन हतो द्रोणान्नमद्यकुम्भं माल्यानुलेपनं दन्तप्रमार्जनं च पटं दद्यात् ॥ २२ ॥ अश्वमेधावभृथस्नानेन तुल्यो हस्तिना वध इति पादप्रक्षालनम् ॥ २३ ॥ उदासीनवधे यातुरुत्तमो दण्डः ॥ २४ ॥ शृङ्गिणा दंष्ट्रिणा वा हिंस्यमानममोक्षयतः स्वामिनः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २५ ॥ प्रतिक्रुष्टस्य द्विगुणः ॥ २६ ॥ शृङ्गिदंष्ट्रिभ्यामन्योन्यं घातयतस्तच्च तावच्च दण्डः ॥ २७ ॥ देवपशुमृषभमुक्षाणं गोकुमारीं वा वाहयतः पञ्चशतो दण्डः ॥ २८ ॥ प्रवासयत उत्तमः ॥ २९ ॥

रोप में भरे हुए हाथी के द्वारा यदि कोई अचानक मारा जावे, तो द्रोण भर अन्न, मद्य का घड़ा, माला चन्दन, दांतों का वस्त्र उसके उत्तराधिकारी हाथी के निमित्त देवे। अश्वमेध यज्ञ के स्नान के तुल्य हाथी से मारा जाना उत्तम माना गया है, दूसरे यह हाथी की पूजा है। यदि हाथीवान की भूल से हाथी किसीको मार दे-तो हथवान पर उत्तम साहस दंड होगा। सींग वाले गौ और दांत वाले अश्व आदि द्वारा मारे जाते हुए मनुष्यों को यदि उस पशु का स्वामी रक्षा के लिए न दौड़े-तो उस स्वामी पर पूर्व साहस दंड हो यदि वह मनुष्य रक्षा के लिए बार २ चिल्ला रहा हो और स्वामी बिलकुल चेष्टा न करता हो, तो दुगुना दंड हो। सींग और दांत वाले पशु लड़कर एक पशु को मारदे-तो उसमें पशु का मोल और उतना ही दंड मारने वाले पशु का स्वामी देवे। जोदेवता के पशु, सांड बैल, और बछिया या गाय को जोत में लगावे, उसपर पांच सौ पण दंड होवे। इनको कोई नगर से निकाले-तो उत्तम साहस दंड हो ॥२२-२९॥

लोमदोहवाहनप्रजननोपकारिणां क्षुद्रपशूनामादाने तच्च तावच्च दण्डः ॥ ३० ॥ प्रवासने च ॥ ३१ ॥ अन्यत्र देवपितृकार्येभ्यः ॥ ३२ ॥ छिन्ननस्यं भग्नयुगं तिर्यक्प्रतिमुखागतं प्रत्यासरद्वा चक्रयुक्तं यातपशुमनुष्यसंबाधे वा हिंसायामदण्ड्यः ॥ ३३ ॥ अन्यथा यथोक्तं मानुषप्राणिहिंसायां दण्डमभ्याभवेत् ॥ ३४ ॥ अमानुषप्राणिवधे प्राणिदानं च ॥ ३५ ॥ बाले यातरि यानस्थः स्वामी दण्ड्यः ॥ ३६ ॥ अस्वामिनि यानस्थः प्राप्तव्यवहारो वा याता ॥ ३७ ॥ बालाधिष्ठितमपुरुषं वा यानं राजा हरेत् ॥ ३८ ॥

ऊन; दूध सवारी देने वाले और सन्तान उत्पन्न करके उपकार करने वाले छोटे पशुओं का जो अपहरण करे-उनको उतना मोल और उतना ही दंड होना चाहिए। नगर से निकालने पर भी यही दंड है। यदि देव कार्य या पितृ कार्य के निमित्त बाहर लेजाना है-तो लेजाया जा सकता है। यदि बैल की नाथ टूट जावे, जुआ खंड बंड हो जावे, टेढ़ा चौक कर चल पड़े, पक्षियों के साथ भाग निकले और मनुष्य तथा गाड़ियों के आने जाने का मेला लगा हो तो ऐसे मौके पर किसी के मर जाने पर गाड़ीवान पर कोई दंड नहीं है। यदि ये बातें न हों-तो मनुष्य या प्राण के वध के दंड के वे भागी होंगे। यदि मनुष्य या बड़ा पशु न मरा हो और छोटा पशु मरा हो तो वैसा ही पशु बदले में दंदे। यदि सवारी को कोई मूर्ख या बच्चा चला रहा हो, तो उसमें बैठने वाला यान का स्वामी उसको दंड भोगे। यदि स्वामी यान में न बैठा हो और चलाने वाला बालिग हो-तो उसको दंड मिलेगा। यदि यान भी बालक चला रहा है और यान में कोई सवार नही है, तो उस यान को राजा अपने कब्जे में करले॥ ३०-३८॥

कृत्याभिचाराभ्यां यत्परमापादयेत्तदापादयितव्यः ॥३९॥ कामं भार्यायामनिच्छन्त्यां कन्यायां वा दारार्थिनां भर्तरि भार्याया वा संवननकरणम् ॥ ४० ॥ अन्यथा हिंसायां मध्यमः साहसदण्डः ॥ ४१ ॥ मातापित्रोर्भगिनीं मातुलानीमाचार्याणीं स्नुषां दुहितरं भगिनीं वाधिचरतः लिङ्गच्छेदनं वधश्च ॥ ४२ ॥ सकामा तदेव लभेत ॥ ४३ ॥ दासपरिचारकाहितकभुक्ता च ॥ ४४ ॥ ब्राह्मण्यामगुप्तायां क्षत्रियस्योत्तमः ॥ ४५ ॥ सर्वस्वं वैश्यस्य ॥ ४६ ॥ शूद्रः कटाग्निना दह्येत ॥ ४७ ॥ सर्वत्र राजभार्यागमने कुम्भीपाकः ॥ ४८ ॥

मारण मोहन कर्मों से जो संसार को तंग करे-तो जिस पुरुष पर ऐसा मारण मोहन किया गया और उसका पता लग गया-तो अपराधी को दण्ड दिया जावे। यदि भार्या पति को न चाहे या कन्या अपने वर से विवाह की अभिलाषा न करे या स्त्री भर्ता से प्रेम चाहती हो, तो ये तान्त्रिक प्रयोग किये जा सकते हैं। यदि कोई किसी की हिंसा कर डालेगा, तो मध्यम साहस दंड होगा। जो पुरुष, मौसी, बुआ, मामी, आचार्यानी, पुत्रवधू, पुत्री, बहन के साथ व्यभिचार करे तो उसका लिङ्ग छेदन करके वध दण्ड देवे। यदि ये स्त्रियां ऐसा करें तो उनको भी यही दंड हो। यदि कोई स्त्री दास परिचारक (नौकर) या रखे हुए मनुष्य व्यभिचार करे-उसे भी उपयुक्त दंड होवे। स्वतन्त्र ब्राह्मणी के साथ क्षत्रिय व्यभिचार करे, तो उसे उत्तम साहस दंड, वैश्य करे-तो सर्वस्वापहरण, शूद्र करे तो फूंस की आग

से वध करना चाहिए। राजा की स्त्री के साथ व्यभिचार करने वाले को भाड़ में भून दिया जावे ॥ ३९-४८ ॥

श्वपाकीगमने कृतकबन्धाङ्कः परविषयं गच्छेच्छ्वपाकत्वं वा ॥ ४९ ॥ शूद्रश्वपाकस्यार्यागमने वधः स्त्रियाः कर्णनासाच्छेदनम् ॥ ५० ॥ प्रव्रजितागमने चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ५१ ॥ सकामा तदेव लभेत ॥ ५२ ॥ रूपाजीवायाः प्रसह्योपभोगे द्वादशपणो दण्डः ॥ ५३ ॥ बहूनामेकाधिचरतां पृथक्चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ५४ ॥ स्त्रियमयोनौ गच्छतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५५ ॥ पुरुषमधिमेहतश्च ॥ ५६ ॥

श्वपाकी के साथ गमन करने वाले पुरुष के माथे में कबन्ध का चिन्ह दाग कर अन्य देश में निकाल दे या श्वपाक बनादे। शूद्र और श्वपाक यदि किसी आर्या स्त्री के साथ सम्भोग करे, तो उसका वध और स्त्री के नाक कान काट लेने उचित हैं। संन्यासिनी के साथ गमन करने पर चौबीस पण दंड हो। यदि संन्यासिनी सकामा होकर स्वयं करावे तो उसे भी यही दंड हो। वेश्या के साथ बलपूर्वक भोग करे-तो बारह पण दंड होवे। यदि कई मनुष्य मिलकर एक साथ एक स्त्री से भोग करें, तो उनको पृथक् २ चौबीस पण दंड दिया जावे। स्त्री की योनि छोड़कर उसके मुख आदि में मैथुन करे-तो पूर्व साहस दंड हो पुरुष के साथ गुदा मैथुन करने पर भी प्रथम साहस दंड होना चाहिए ॥ ४९-५६ ॥

मैथुने द्वादशपणः तिर्यग्योनिष्वनात्मनः ।
दैवतप्रतिमानां च गमने द्विगुणः स्मृतः ॥ ५७ ॥

अदण्डयदण्डने राज्ञो दण्डस्त्रिंशद्गुणो ऽम्भसि ।
वरुणाय प्रदातव्यो ब्राह्मणेभ्यस्ततः परम् ॥ ५८ ॥

तेन तत्पूयते पापं राज्ञो दण्डापचारजम् ।
शास्ता हि वरुणो राजा मिथ्या व्याचरतां नृषु ॥ ५९ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे अतिचारदण्डः त्रयोदशो ऽध्यायः ॥ १३ ॥
आदितः नवतिः ॥ ९० ॥

पशुओं के साथ गमन करने वाले दुराचारी पुरुष पर बारह पण दण्ड होवे। देव प्रतिमाओं के साथ गमन करने पर चौबीस पण दंड हो। जो राजा अदंडनीय को दंड देता है, उसपर भी तीस गुना दंड हो। वह धन जल में डाल दिया जावे और फिर उसको ब्राह्मण निकाल लें ॥ ५७-५८ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन अधिकरण में अनाचार के दंड के वर्णन का तेरहवां अध्याय समाप्त हुआ।





योगवृत्त पंचम अधिकरण

प्रथम अध्याय

८६वां प्रकरण

दण्डकर्मिकम्

इस प्रकरण में राजकीय कर्मचारियों के कण्टक पन का वर्णन और उसके शोधन का प्रकार बताया जावेगा।

दुर्गराष्ट्रयोः कण्टकशोधनमुक्तम् ॥ १ ॥ राजराज्ययोर्वक्ष्यामः ॥ २ ॥ राजानमवगृह्योपजीविनः शत्रुसाधारणा वा ये मुख्यास्तेषु गूढपुरुषप्रणिधिः कृत्यपक्षोपग्रहो वा सिद्धिर्यथोक्तं पुरस्तादपजा पोपसर्पो वा यथा च पारग्रामिके वक्ष्यामः ॥३॥ राज्योपघातिनस्तु वल्लभाः संहता वा ये मुख्याः प्रकाशमशक्याः प्रतिषेद्धुं दूष्यास्तेषु धर्मरुचिरुपांशुदण्डं प्रयुञ्जीत ॥ ४ ॥

दुर्ग और राष्ट्र के कष्टदायी चोर लुटेरे आदि कण्टकों के नष्ट करने के उपाय चौथे अधिकरण में बता दिए गए अब राजा और उसके राज्य में अमात्य आदि का जो कण्टकत्व है, अब उसके निराकरण के उपाय बताये जावेंगे। राजाओं को दावकर जो अपना व्यवहार चलाना चाहते हैं, वे अमात्य आदि भी शत्रु के समान है। उन में राजा गुप्त पुरुषों की नियुक्ति करे तथा शत्रुओं से द्वेष करने वाले पुरुषों को अपनी ओर मिलाये रहे इसी से सिद्धि है, जैसा की पूर्व में प्रथम अधिकरण में कहा जा चुका और अपने मनुष्यों को नहीं फूटने देना तथा शत्रु के मनुष्यों में फूट डलवाना आदि उपाय आगे पार ग्रामिक (तेरहवें) प्रकरण में कहेंगे - जो राजा के प्रेमी राजा के नाश के उपायों में लगे हैं या जो अमात्य आदि मुख्य २ पुरुष संगठित हो गए हैं तथा जिनसे प्रकाश में कुछ नहीं कहा जा सकता, उन दोष युक्त व्यक्तियों को धर्मात्मा राजा गुप चुप मरवादे ॥१-४॥

दूष्यमहामात्रभ्रातरमसत्कृतं सत्त्री प्रोत्साह्य राजानं दर्शयेत् ॥५॥ तं राजा दूष्यद्रव्योपभोगातिसर्गेण दूष्ये विक्रमयेत् ॥ ६ ॥ शस्त्रेण रसेन वा विक्रान्तं तत्रैव घातयेद्भ्रातृघातको ऽयमिति ॥ ७ ॥ तेन पारशवः परिचारिकापुत्रश्च

व्याख्यातौ ॥ ८ ॥ दूष्यमहामात्रं वा सत्त्रिप्रोत्साहितो भ्राता दायं याचेत ॥९॥ तं दूष्यगृहप्रतिद्वारि रात्रावुपशयानमन्यत्र वा वसन्तं तीक्ष्णो ब्रूयात् ॥ १० ॥ हतो ऽयं दायकामुक इति ॥ ११ ॥ ततो हतपक्षं परिगृह्येतरं निगृह्णीयात् ॥ १२ ॥ दूष्यसमीपस्था वा सत्त्रिणो भ्रातरं दायं याचमानं घातेन परिभर्त्सयेयुः ॥ १३ ॥ तं रात्राविति समानम् ॥ १४ ॥

यदि हाथियों का अध्यक्ष राजा से बिगड़ गया हो-तो संत्री नामक गुप्तचर, उस हस्त्यध्यक्ष के भाई को-जिसका हस्त्यध्यक्ष ने अपमान किया हो, उसे उत्साहित करके राजा के पास लावे। उस भ्राता को राजा यह कहकर उभाड़दे, कि तुम्हारे भाई के सारे अधिकार और द्रव्य तुमको दिया जावेगा, तुम इसे मार दो। जब वह शस्त्र या विष से अपने भाई को मारदे-तो राजा उसे भातृ घातक कहकर मरवा देवे। यदि भाई न हो; तो महामात्र के नीच वर्ण की स्त्री से उत्पन्न या दासी पुत्र से ऐसा करवादे और उन्हें फिर पितृ घातक कहकर मरवादे। यदि भाइयों में बिगाड़ न हो,तो सत्री नामक गुप्तचर महामात्र के भाई को अपना भाग बांट लेने को उत्साहित करे। जब वह दायभाग मांगने वाला भ्राता महामात्र (हस्त्यध्यक्ष) के घर के द्वार पर रात को सोवे या गुजरे तो उसे मारकर कहे, कि यह व्यक्ति मारा गया इसको इसके भाई ने इसलिए मारा है, कि यह अपना हिस्सा मांगता था। इस प्रकार मृत व्यक्ति के पक्ष से उस महामात्र को भी दंड दे दे। या महामात्र के समीप के मनुष्यों से सत्री उनको धमकवादे, कि हम तुम्हें मारेंगे फिर राजा का तीक्ष्ण घातक मार कर पूर्व रीति से उसके भाई को उसका वना कर मरवा दिया जावे॥९-१४॥

दूष्यमहामात्रयोर्वा यः पुत्रः पितुः पिता वा पुत्रस्य दारानधिचरति भ्राता वा भ्रातुस्तयोः कापटिकमुखः कलहः पूर्वेण व्याख्यातः ॥ १५ ॥ दूष्यमहामात्रपुत्रमात्मसंभावितं वा सत्त्री राजपुत्रस्त्वं शत्रुभयादिह न्यस्तो ऽसीत्युपजपेत् ॥ १६ ॥ प्रतिपन्नं राजा रहसि पूजयेत् ॥ १७ ॥ प्राप्तयौवराज्यकालं त्वां महामात्रभयान्नाभिषिञ्चामीति ॥ १८ ॥ तं सत्त्री महामात्रवधे योजयेत् ॥१९॥ विक्रान्तं तत्रैव घातयेत्पितृघातकोऽयमिति ॥ २० ॥ भिक्षुकी वा दूष्यभार्यां सांवननकीभिरौषधीभिः संवास्य रसेनातिसंदध्यात् ॥ २१ ॥ इत्याप्यः प्रयोगः ॥ २२ ॥

दूषित करने योग्य दो महामात्रों को कापटिक गुप्तचर यह कहकर लड़वादे, कि पिता पुत्र की स्त्री से या पुत्र पिता की स्त्रियों से; भाई भाई की स्त्री से व्यभिचार करता है;

जब कलह हो जावे, तो उनमें एक को मरवाकर दूसरे को फांसी दे दी जावे। दूषित करने योग्य महामात्र के अभिमानी पुत्र के पास सभी जावे, और कहे कि तुमतो राजपुत्र हो, शत्रु के भय से तुम को यहां गुप्त रखा है, इसी से युवराज नहीं बनाये जाते हो। जब वह राजा के पास आवे तो राजा उस का सत्कार करे और कहे कि यद्यपि तुम्हारा युवराज होने का समय है, परन्तु महामात्र के भय से तुम्हें युवराज नहीं बनाता हूं, वह तुम्हें अपना पुत्र कहता है। इसके बाद संत्री उसे महामात्र के वध के लिए प्रेरित करे जब वह उसे मार दे-तो उसे पितृघातक कहकर मरवादे। जिस महामात्र आदि को दूषित करना है, उसकी स्त्री के पास जाकर कोई साधनी कहे, कि मेरे पास वशीकरण की औषधि है, तुम अपने पति को खिलाओ-यह कहकर उसे विष दे आवे-इससे महामात्र आदि अध्यक्ष मारा जावेगा। यह ढंग आप्य प्रयोग कहाता है॥१५-२२॥

दूष्यमहामात्रमटवीं परग्रामं वा हन्तुं कान्तारव्यवहिते वा देशे राष्ट्रपाल-मन्तपालं वा स्थापयितुं नागरस्थानं वा कुपितमवगृहीतुं सार्थातिवाह्यं प्रत्यन्ते वा सप्रत्यादेयमादातुं फल्गुबलं तीक्ष्णयुक्तं प्रेषयेत् ॥ २३ ॥ रात्रौ दिवा वा युद्धे प्रवृत्ते तीक्ष्णाः प्रतिरोधकव्यञ्जना वा हन्युरभियोगे हत इति ॥ २४ ॥ यात्राविहारगतो वा दूष्यमहामात्रान्दर्शनायाह्वयेत् ॥ २५ ॥ ते गूढशस्त्रैस्तीक्ष्णैः सह प्रविष्टा मध्यमकक्ष्यायामात्मविचयमन्तः प्रवेशनार्थं दद्युः ॥ २६ ॥ ततो दौवारिकाभिगृहीतास्तीक्ष्णा दूष्यप्रयुक्ताः स्म इति ब्रूयुः ॥ २७ ॥ ते तदभिविख्याप्य दूष्यान्हन्युः ॥ २८ ॥

इसके अतिरिक्त जिस महामात्र (अफसर) को मरवाना हो, उसको वन या शत्रु के ग्रामपर गहन वन में भेज दे या राष्ट्रपाल तथा अन्तपाल की स्थापना का बहाना लेकर भेजे अथवा अमुक नगर की बाग़ी प्रजा को दबाना है, ऐसा कहकर भेजे या इस व्यापारियों के संघ को सीमा तक पहुंचाना है, या हमारी कुछ भूमि शत्रु ने दबाली है, वह निकालनी है, ऐसा कहकर साधारण सेना के साथ एक घातक पुरुष को भी भेज दे। रात में या दिन में जब युद्ध प्रवृत्त हो-तो वे तीक्ष्ण पुरुष सेना के रोकने के बहाने उस अफसर कोही मारदे और कहदे, कि लड़ाई में मारा गया। राजा यात्रा सैर करने के बहाने से बाहर जाने लगे-तो मिलने के लिए उन दूषित अफसरों को भी बुलावे। इनके साथ गुप्त रूप से शस्त्र लेकर राजा के तीक्ष्ण पुरुष भी चलदे और मध्यम कक्षा में जब भीतर घूमने की तलाशी ली जावे, तो द्वारपाल उन तीक्ष्ण पुरुषों को पकड़े-वे उन महामात्रों

का नाम लेवे। राजा उनके द्वारा अपने मारन का षड्यन्त्र नगर में घोषित कराकर उन्हें फांसी पर चढ़ादे ॥ ७-२८॥

तीक्ष्णस्थाने चान्ये वध्याः ॥ २९ ॥ बहिर्विहारगतो वा दूष्यानासन्नावासान्पूजयेत् ॥ ३० ॥ तेषां देवीव्यञ्जना वा दुःस्त्री रात्रावावासेषु गृह्येतेति समानं पूर्वेण ॥ ३१ ॥ दूष्यमहामात्रं वा सूदो भक्षकारो वा ते शोभन इति स्तवेन भक्ष्यभोज्यं याचेत ॥ ३२ ॥ बहिर्वा क्वचिदध्वगतः पानीयं तदुभयं रसेन योजयित्वा प्रतिस्वादने तावेवोपयोजयेत् ॥ ३३ ॥ तदभिविख्याप्य रसदाविति घातयेत् ॥ ३४ ॥

यदि किसी अन्य पुरुष को मरवाना होतो तीक्ष्ण पुरुषों के स्थान पर मरवा देवे। कहीं वाहर सैर करने के स्थान पर दूषित करने योग्य अफसरों के भी डेरे डलवादे, वह महारानी के वेश में किसी व्यभिचारी स्त्री को भेजदे और रात में उस अफसर को पकड़ कर मरवादे। राजा, दूषित करने योग्य वड़े अफसर से उसके रसोइये की प्रशंसा करे-हमें भी कुछ भोजन वनवाकर भेजो या कहीं वाहर रास्ते में पानी मांगे और उस भोजन या पानी को विष संयुक्त करके उसी महामात्र को वह खिला दिये जावे-इस प्रकार उनको राजा को विष देने वाला विख्यात करके मरवादे ॥२९-३४॥

अभिचारशीलं वा सिद्धव्यञ्जनो गोधाकूर्मकर्कटकूटानां लक्षण्यानामन्यतमप्रकाशनेन मनोरथानवाप्स्यसीति ग्राहयेत् ॥ ३५ ॥ प्रतिपन्नं कर्मणि रसेन लोहमुसलैर्वा घातयेत्कर्मव्यापदा हत इति ॥ ३६ ॥ चिकित्सकव्यञ्जनो वा दौरात्मिकमसाध्यं वा व्याधिं दूष्यस्य स्थापयित्वा भैषज्याहारयोगेषु रसेनातिसंदध्यात् ॥ ३७ ॥ सूदारालिकव्यञ्जना वा प्रणिहिता दूष्यं रसेनातिसंदध्युः ॥ ३८ ॥ इत्युपनिषत्प्रतिषेधः ॥ ३९ ॥

जो किसी का मारण करना चाहता हो, ऐसे दूष्य अफसर के पास कोई मंत्र जंत्र करने वाला सिद्ध गुप्तचर पहुंचे। वह उससे कहे, कि तुम अच्छे लक्षणों से युक्त गोधा, कछुआ, केंकड़ा या हरिण में से किसी एक को श्मशान आदि में पका कर खाने से अपनी कामना को प्राप्त कर सकोगे-जब वह इस काम में लग जावे, तो उसको विष या लोहे के मुद्गरों से मार दे और यह प्रसिद्ध करे, कि मारण कर्म के उलटा पड़ जाने से यह स्वयं मारा गया। कोई वैद्य गुप्तचर, किसी दुष्ट असाध्यरोग होने की दूष्य अफसर को चेतावनी दे। जब वह औषध आहार लेने लगे-तो उसको विष देकर मरवादे। दूष्य

अफसर का कोई रसोइया या मांस पकाने वाला बनकर गुप चुप दूष्य को विष प्रयोग से मारदे। यहां तक जो वर्णन किया गया-यह उपनिषद प्रयोग कहाता है ॥३५-३६॥

उभयदूष्यप्रतिषेधस्तु ॥ ४० ॥ यत्र दूष्यः प्रतिषेद्धव्यस्तत्र दूष्यमेव फल्गुबलतीक्ष्णयुक्तं प्रेषयेत् ॥ ४१ ॥ गच्छामुष्मिन्दुर्गे राष्ट्रे वा सैन्यमुत्थापय ॥ ४२ ॥ हिरण्यं वा ॥ ४३ ॥ वल्लभाद्वा हिरण्यमाहारय ॥ ४४ ॥ वल्लभकन्यां वा प्रसह्यानय ॥ ४५ ॥ दुर्गसेतुवणिक्पथशून्यनिवेशखनिद्रव्यहस्तिवनकर्मणामन्यतमद्वा कारय ॥ ४६ ॥ राष्ट्रपाल्यमन्तपाल्यं वा ॥ ४७ ॥ यश्च त्वा प्रतिषेधयेन्न वा ते साहाय्यं दद्यात्स बन्धव्यः स्यादिति ॥ ४८ ॥ तथैवेतरेषां प्रेषयेदमुष्याविनयः प्रतिषेद्धव्य इति ॥ ४६ ॥ तमेतेषु कलहस्थानेषु कर्मप्रतिघातेषु वा विवदमानं तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा प्रच्छन्नं हन्युः ॥ ५० ॥ तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५१ ॥

अब दो दूष्यों को एक ही प्रयोग से मार देने की विधि को बताया जाता है। जहां पर एक विरोधी अधिकारी को मरवाना हो, दूसरे ऐसे ही दुष्ट अधिकारी को थोड़ी सी दुर्बल सेना और घातक पुरुष के साथ भेज दे और कहे, कि जाओ, इस दुर्ग या राष्ट्र में तुम सेना या सुवर्ण का संग्रह करो अथवा उस अधिकारी के पक्षपाती राजा से धन संग्रह करने को भेजे अथवा उसी प्रेमी राजा की कन्या छीन कर लाने को उसे भेजे। अमुक स्थान पर तुम दुर्ग, सेतु, व्यापारियों को सड़क, वन में मकान, खान की वस्तु या वन की उत्तम लकड़ी या हाथी इकट्ठे करो अथवा राष्ट्रपाल या अन्तपाल के कामों की देख रेख रखो। जो तुम्हें इस काम को रोके या सहायता न दे, उसे पकड़लो। इसी तरह अन्य दुष्ट अध्यक्षों को दूसरे की दुष्टता रोकने को भेजे। जब इनका परस्पर कोई कलह हो-तो घातक पुरुष शस्त्र मारकर इन सब दुष्ट अधिकारियों को मारदे-अब अन्य भी मरवाने से बचे हों-तो उनपर इनके मरवाने का दोष लगाकर मरवादे ॥४०-५१॥

पुराणां ग्रामाणां कुलानां वा दूष्याणां सीमाक्षेत्रखलवेश्ममर्यादासु द्रव्योपकरणसस्यवाहनहिंसासु प्रेक्षाकृत्योत्सवेषु वा समुत्पन्ने कलहे तीक्ष्णैरुत्पादिते वा तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा ब्रूयुः ॥ ५२ ॥ एवं क्रियन्ते ये ऽमुना कलहायन्त इति ॥ ५३ ॥ तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५४ ॥ येषां वा दूष्याणां जातमूलाः कलहास्तेषां क्षेत्रखलवेश्मान्यादीपयित्वा बन्धुसंबन्धिषु वाहनेषु वा तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा तथैव ब्रूयुः ॥ ५५ ॥

यदि नगर, गांव, या कुल बिगड़ गए हों, तो उनकी सीमा, खेत, खलिहान घर के समीप, द्रव्य, वस्तु अन्न वाहन आदि के नष्ट भ्रष्ट होने का वहाना करके अथवा खेल तमाशे में कलह करके तीक्ष्ण घातकों दूष्यों को मारकर अपने शस्त्र फेंक कर कहें, कि तुम लोगों ने इन्हें मारा है। जो उपद्रव करते हैं, वे यहां तक कर डालते हैं। इस प्रकार कहकर जिनको दण्ड देना है, दण्ड देदे। जिन दुष्ट मनुष्यों के परस्पर वैर बढ़ रहे हों-उनके खेत, खलिहान, घर आदि में आग लगाकर उनके बन्धु-बान्धवों के घर या वाहनों में शस्त्र फेंक कर वे घातक कहें, कि उन्होंने इन्हें मारा है, इस प्रकार कहकर उन शेषों को भी मरवा दे ॥५२-५५॥

अमुना प्रयुक्ताः स्म इति ॥ ५६ ॥ तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५७ ॥ दुर्गराष्ट्रदूष्यान्वा सत्त्रिणः परस्परस्यावेशनिकान्कारयेयुस्तत्र रसदा रसं दद्युस्तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५८ ॥ भिक्षुकी वा दूष्यराष्ट्रमुख्यं दूष्यराष्ट्रमुख्यस्य भार्या स्नुषा दुहिता वा कामयत इत्युपजपेत् ॥ ५९ ॥ प्रतिपन्नस्याभरणमादाय स्वामिने दर्शयेत् ॥ ६० ॥

इनमें कुछ कहदे, कि हम को तो इस पुरुष ने कहकर इन्हें मरवाया, इस दोष से कुछ को मरवादे। दुर्ग और राष्ट्र के लोग बिगड़ रहे हों, तो सत्री गुप्तचर उनमें मेल कराकर उनको निमन्त्रित करे। वहां विष देने वाले उनको विष देदें और कुछ पर विष देने का अभियोग लगा कर मरवादे। गुप्तचर बनी हुई संन्यासिनी किसी दुष्ट अधिकारी से कहे, कि अमुक (दूष्य) अधिकारी की भार्या पुत्र वधू या पुत्री तुमको बहुत चाहती है-जब वह उससे मिलने की इच्छा प्रकट करे-तो आभूषण लेकर राजा को दिखादे-इस प्रकार राजा उसे मरवावे ॥५९-६०॥

असौ ते मुख्यो यौवनोत्सिक्तो भार्यां स्नुषां दुहितरं वाभिमन्यत इति ॥ ६१ ॥ तयोः कलहो रात्राविति समानम् ॥ ६२ ॥ दूष्यदण्डोपनतेषु तु युवराजः सेनापतिर्वा किंचिदुपकृत्यापक्रान्तो विक्रमेत ॥ ६३ ॥ ततो राजा दूष्यदण्डोपनतानेव प्रेषयेत्फल्गुबलतीक्ष्णयुक्तानिति समानाः सर्व एव योगाः ॥ ६४ ॥ तेषां च पुत्रेष्वनुक्षिपत्सु यो निर्विकारः स पितृदायं लभेत ॥ ६५ ॥ एवमस्य पुत्रपौत्राननुवर्तते राज्यमपास्तपुरुषदोषमिति ॥ ६६ ॥

किसी दूसरे दुष्ट अधिकारी से कहो कि यह अमुक अधिकारी तुम्हारी भार्या, पुत्रवधु या पुत्री से व्यभिचार करना चाहता है, जब उनका झगड़ा चले-तो उन को गुप चुप मरवा कर दूसरे को फांसी देदे। जिन दुष्ट पुरुषों को दण्ड देकर मिला लिया है, युवराज या

सेनापति उनका कुछ उपकार करके उनसे अलग रहकर उनके मरवाने का प्रयत्न करता रहे, इसके अनन्तर राजा उन दुष्ट अधिकारियों को साधारण सेना और घातक अपने तीक्ष्ण पुरुष के साथ कहीं चढ़ाई पर भेजे और उसी तरह घातकों द्वारा आक्रमण करवाके मरवा दे। इन पिताओं के मारे जाने पर जो पुत्र राजा से द्वेष न करे या अपने पिता का बदला लेने का विचार न रखे-उसे उसके पिता का अधिकार दे दिया जावे। राजा की भक्ति करने वाले पुरुषों के कुल क्रमागत पुत्र, पौत्रों तक राज्य कार्य चला आता रहता है ॥ ६१-६६ ॥

स्वपक्षे परपक्षे वा तूष्णीं दण्डं प्रयोजयेत् ।
आयत्यां च तदात्वे च क्षमावानविशङ्कितः ॥ ६७ ॥
इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे दाण्डकर्मिकं प्रथमो ऽध्यायः
आदित एकनवतिः ॥ ९१ ॥

क्षमा शील राजा विना किसी संकोच के अपने और पर पक्ष के दुष्ट पुरुषों में ऐसे गुप्त मारण प्रयोगों का अवश्य व्यवहार करता रहे। यह वर्तमान और भविष्य में हितकारी है ॥ ६७ ॥

इतिश्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत योगवृत्त अधिकरण में दुष्ट पुरुषों को गुप चुप दंड देने का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।



दूसरा अध्याय

९०वां प्रकरण

कोशाभिसंहरणम्

इस प्रकरण में कोश के बढ़ाने के प्रयत्नों का वर्णन किया जावेगा।

कोशमकोशः प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छ्रः संगृह्णीयात् ॥ १ ॥ जनपदं महान्तमल्पप्रमाणं वा देवमातृकं प्रभूतधान्यं धान्यस्यांशं तृतीयं चतुर्थं वा याचेत ॥ २ ॥ यथासारं मध्यमवरं वा दुर्गसेतुकर्मवणिक्पथशून्यनिवेशखनिद्रव्यहस्तिवनकर्मोपकारिणं प्रत्यन्तमल्पप्रमाणं वा न याचेत ॥३॥ धान्यपशुहिरण्यादि निविशमानाय दद्यात् ॥ ४ ॥

जिस राजा के कोश में धन नहीं है, वह धन की कठिनाई उपस्थित होने पर कोश को बढ़ावे। राष्ट्र का बड़ा भाग या छोटा भाग कैसा ही हो, यदि उस में अच्छी वर्षा और बहुत सा अन्न उत्पन्न होता है, उसमें प्रजा की इच्छा से तीसरा भाग या चौथा भाग अन्न

माँग ले। इसी प्रकार जहां मध्यम या थोड़ी अन्न की उत्पत्ति हो, वहां से भी यथा योग्य अन्न ग्रहण करे, परन्तु जो स्थान, दुर्ग, सेतु, कारखाने, सड़क, जंगल में भवन, खान, चंदन आदि लकड़ी हाथियों के वन के योग्य हो या सीमा के अन्त में या शक्ति हीन हो-उससे कुछ ग्रहण न करे। जो नये स्थानों में आकर वास करे, उस किसान को अन्न, बैल और नक़द रुपये की भी राजा कुछ सहायता करे॥ १-४॥

चतुर्थमंशं धान्यानां बीजभक्तशुद्धं च हिरण्येन क्रीणीयात् ॥५॥ अरण्यजातं श्रोत्रियस्वं च परिहरेत ॥ ६ ॥ तदप्यनुग्रहेण क्रीणीयात् ॥ ७ ॥ तस्याकरणे वा समाहर्तृपुरुषा ग्रीष्मे कर्षकाणामुद्वापं कारयेयुः ॥ ८ ॥ प्रमादावस्कन्नस्यात्ययं द्विगुणमुदाहरन्तो बीजकाले बीजलेख्यं कुर्युः ॥ ९ ॥ निष्पन्ने हरितपक्वादानं वारयेयुः ॥ १० ॥ अन्यत्र शाककट भङ्गमुष्टिभ्यां देवपितृपूजादानार्थं गवार्थं वा ॥ ११ ॥ भिक्षुकग्रामभृतकार्थं च राशिमूलंपरिहरेयुः ॥ १२ ॥

राजा इन किसानों का चतुर्थांश या बीज और खाने योग्य छोड़ कर सारा नक़द सुवर्ण द्वारा खरीद लेवे वन में जो वेद पाठी का धन हो, उसे राजा न छुवे। यदि आवश्यकता हो-तो कुछ ढ़ीले भाव पर ब्राह्मण का अन्न खरीद ले। यदि वेद पाठी खेती न कर सके-तो राजकीय समाहर्ता (कलक्टर) उस भूमि को ग्रीष्म ऋतु में किसानों से जुतवादे जब बीज बोया जावे उस समय अधिकारी उसे लिखले और जो बीज किसान के प्रमाद से व्यर्थ जावे-किसान से उस का दुगुना बीज लिया जावे। जब श्रोत्रिय की खेती हरी भरी लहलहा जावे- तो उसको किसी को उजाड़ने न देवे। देव और पितृ पूजा तथा गौ के लिए साग और कटे हुए अन्न की पूली किसान ले भी सकता है। भिक्षक और गांव के सेवक नाई धोबी के निमित्त अन्त में अवश्य अन्न छोड़े॥५-१२॥

स्वसस्यापहारिणः प्रतिपातोऽष्टगुणः ॥ १३ ॥ परसस्यापहारिणः पञ्चाशद्गुणः सीतात्ययः स्ववर्गस्य ॥ १४ ॥ बाह्यस्य तु वधः ॥ १५ ॥ चतुर्थमंशं धान्यानां षष्ठं वन्यानां तूललाक्षाक्षौमवल्ककार्पासरौमकौशेयकौषधगन्धपुष्पफलशाक पण्यानां काष्ठवेणुमांसवल्लूराणां च गृह्णीयुः ॥१६॥ दन्ताजिनस्यार्धम् ॥१७॥ तदनिसृष्टं विक्रीणानस्य पूर्वः साहसदण्डः ॥ १८ ॥ इति कर्षकेषु प्रणयः ॥ १९ ॥

जो किसान अपने खेत के कुछ अन्न को राज पुरुषों के दिखानेसे पूर्व ही चुरा ले-तो उसे उसका अठगुना देना होगा। जो कोई अन्य के अन्न को चुराले-उससे पचास गुना दण्ड लिया जावे और जो अपने बराबर के किसान का हल आदि का नुकसान हुआ उसको

भी देवे। यदि चोरी करने वाला किसी अन्य राज्य का निवासी हो-तो उसका वध करवा दिया जावे। धान्यों का चतुर्थांश वन के अन्न काप ष्ठांश, रुई, लाख, पाट, वल्कल, कपास, ऊन, रेशम, औषध, गन्ध, पुष्प, फल, शाक, काष्ठ बांस, मांस, सूखे मांस आदि वेचने योग्य वस्तुओं का भी छठा ही भाग लेवे। हाथी दांत और चमड़े आदि का आधा मूल्य राजा मांग ले। जो राजा का भाग विना दिए इन वस्तुओं को वेच डालता है, उसे पूर्व साहस दण्ड दिया जावे। यहां तक किसानों से प्रेम पूर्वक अन्न आदि लेने का वर्णन समाप्त हुआ ॥ १३-१६ ॥

सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ताप्रवालाश्वहस्तिपण्याः पञ्चाशत्कराः ॥ २० ॥ सूत्रवस्त्रताम्रवृत्तकंसगन्धभैषज्यशीधुपण्याश्चत्वारिंशत्कराः ॥ २१ ॥ धान्यरसलोहपण्याः शकटव्यवहारिणश्च त्रिंशत्कराः ॥ २२ ॥ काचव्यवहारिणो महाकारवश्च विंशतिकराः ॥ २३ ॥ क्षुद्रकारवो वर्धकिपोषकाश्च दशकराः ॥ २४॥ काष्ठवेणुपाषाणमृद्भाण्डपक्वान्नहरितपण्याः पञ्चकराः ॥ २५ ॥ कुशीलवा रूपाजीवाश्च वेतनार्धं दद्युः ॥ २६ ॥ हिरण्यकरमकर्मण्यानाहारयेयुः ॥२७॥ न चैषां कंचिदपराधं परिहरेयुः ॥ २७ ॥ ते ह्यपरगृहीतमभिनीय विक्रीणीरन् ॥ २६ ॥ इति व्यवहारिषु प्रणयः ॥ ३० ॥

सोना, चाँदी, हीरा, मणि, मोती, मूङ्गा, घोड़े और हाथी जैसी वेचने की चीजों पर पचासवां भाग सूत, कपड़ा, तांबा, पीतल, कांसी, गन्ध, जड़ी बूटी और सुरा पर चालीसवां भाग, धान्य, रस, (तेल घी आदि) लोहे जैसी चीजों पर और गाड़ी के किरायों पर तीसवां भाग तथा कांच के व्यापारी और बड़े कारीगरों से बीसवां भाग, छोटे कारीगर खाती लुहार आदि से दसवां भाग, काठ, बांस, पत्थर, मिट्टी के वर्तन, पकी रसोई, हरे शाक आदि वेचने वाले से पाँचवां भाग, राजा ग्रहण करे। नट और वेश्या अपनी आमदनी का आधा भाग देवे। सुवर्ण (नक़द रुपया) व्यापार नहीं करने वाले वनियों से लिया जावे और इनको किसी भी दण्ड में न छोड़ा जावे। ये लोग अपनी वस्तु को दूसरे की वता कर भी वेच देते है। यहां तक व्यापारियों से राजा को जो प्रेम पूर्वक लेना है, उसका वर्णन किया गया ॥ २०-३० ॥

कुक्कुटसूकरमर्धं दद्यात् ॥ ३१ ॥ क्षुद्रपशवः षड्भागम् ॥३२॥ गोमहिषाश्वतरखरोष्ट्राश्च दशभागम् ॥ ३३ ॥ बन्धकीपोषका राजप्रेष्याभिः परमरूपयौवनाभिः कोशं संहरेयुः ॥ ३४ ॥ इति योनिपोषकेषु प्रणयः ॥ ३५ ॥

मुर्गे और सूकर वाले से आधा भाग, भेड़ बकरी वाले से छटा भाग, गौ, भैंस, खच्चर,, गधे, ऊंट आदि से दशवां भाग, कोश वृद्धि को लेवे। वेश्याओं के अध्यक्ष, राजा की अत्यन्त सुन्दर दासियों से राज्य कोश को बढ़वावे। यहां तक पशु पालन करने वालों से राज्य कोश बढ़ाने के टैक्स का वर्णन किया गया ॥३१-३५॥

सकृदेव न द्विः प्रयोज्यः ॥ ३६॥ तस्याकरणे वा समाहर्ता कार्यमपदिश्य पौरजानपदान्भिक्षेत ॥ ३७ ॥ योगापुरुषाश्चात्र पूर्वमतिमात्रं दद्युः ॥ ३८ ॥ एतेन प्रदेशेन राजा पौरजानपदान्भिक्षेत ॥ ३६ ॥ कापटिकाश्चैनानल्पं प्रयच्छतः कुत्सयेयुः ॥ ४० ॥ सारतो वा हिरण्यमाढ्यान्याचेत ॥ ४१ ॥ यथोपकारं वा स्ववशा वा यदुपहरेयुः स्थानच्छत्रवेष्टनविभूषाश्चैषां हिरण्येन प्रयच्छेत ॥४२॥

राजा ऐसा कर अपनी आयु में एक वार ही लेवे दुवारा कभी न लेवे। यदि ऐसा न किया जा सके-तो समाहर्ता (कलक्टर) किसी काम के बहाने पर और देश के व्यक्तियों से चन्दा मांगे। जो धनवान सरकारी पुरुष है, वे इस में प्रथम अधिक धन चन्दे में देवे। इस प्रकार के बहाने से राजा, पुर और देश के मनुष्यों से चन्दा मांगे। यदि कोई थोड़ा चन्दा देवे-तो राजकीय गुप्तपुरुष, उसकी निन्दा करें। जो धनी पुरुष हैं, उनकी प्रतिष्ठा के अनुसार उनसे सुवर्ण ग्रहण किया जावे। जिनका उपकार किया या जो राजा के वश में हैं, वह जितना धन दे उतना उनसे लेकर उनको भी प्रतिष्ठा के लिए स्थान, छत्र, पगड़ी, आभूषण आदि उनके सुवर्ण क बदले में प्रदान करे ॥३६-४२॥

पाषण्डसङ्घद्रव्यमश्रोत्रियभोग्यं देवद्रव्यं वा कृत्यकराः प्रेतस्य दग्धहृदयस्य वा हस्ते न्यस्तमित्युपहरेयुः ॥ ४३॥ देवताध्यक्षो दुर्गराष्ट्रदेवतानां यथास्वमेकस्थं कोशं कुर्यात् ॥ ४४ ॥ तथैव चापहरेत् ॥ ४५ ॥

जो धन किसी पन्थाई साधु का है और जिसमें वेदपाठी ब्राह्मण कुछ नहीं भोग पाते, उस देव द्रव्य को काम करने वाले राजकीय पुरुष "यह द्रव्य जले हृदय वाले प्रेत के हाथ में था" ऐसा कहकर धर्म के कार्य में व्यय करदे। देवता ध्यक्ष, दुर्ग, राष्ट्र और देवों के द्रव्य को भिन्न २ एक स्थान पर सुरक्षित रखे और फिर राजा को समर्पित करदे ॥४३-४५॥

दैवतचैत्यं सिद्धपुण्यस्थानमौपपादिकं वा रात्रावुत्थाप्य यात्रासमाजाभ्यामाजीवेत् ॥ ४६ ॥ चैत्योपवनवृक्षेण वा देवताभिगमनमनार्तवपुष्पफलयुक्तेन ख्यापयेत् ॥ ४७॥ मनुष्यकरं वा वृक्षे रक्षोभय रूपयित्वा सिद्धव्यञ्जनाः पौरजानपदानां हिरण्येन प्रतिकुर्युः ॥ ४८ ॥ सुरङ्गायुक्ते वा कूपे नागमनियतशिरस्कं

हिरण्योपहारेण दर्शयेत् नागप्रतिमायामन्तश्छिद्रायाम् ॥ ४९ ॥ चैत्यच्छिद्रे वल्मीकछिद्रे वा सर्पदर्शनमाहारेण प्रतिबन्धसंज्ञं कृत्वा श्रद्धधानानां दर्शयेत् ॥५०॥

एक बगीचे में रात को एक वेदी बनवादी जावे और उसपर देवता स्थापित कर दिया जावे। यह बड़ा पुण्य स्थान है, इसमें देवता भूमि फोड़कर निकला है, इस तरह उस देवता के चैत्य (बगीचे) को प्रसिद्ध करे। फिर उसका मेला लगाकर जनता से धन बटोरे। देवता के चैत्य में किसी वृक्ष में किसी प्रकार उसकी ऋतु के बिना पुष्प फल लगवाकर उसके द्वारा देवता की बहुत प्रसिद्धि करके जनता से धन संग्रह करे और राजा को सौंप दे। किसी वृक्ष में सिद्ध रूपधारी कोई गुप्तचर राक्षस बनकर मनुष्य की भेंट मांगे फिर पुर और देश के लोगों से उसकी शान्ति के निमित्त धन इकट्ठा किया जावे। किसी सुरङ्ग युक्त कूप में कई शिर के सर्प को दिखाकर उसकी भेंट सुवर्ण चढ़वावे। उस नाग प्रतिमा में छेद हो कि जिसमें सारा रुपया भर जावे। देवता के बगीचे के किसी छिद्र में या वल्मीक में सर्प दर्शन कराकर आहार आदि से उसे पकड़कर श्रद्धालु पुरुषों को देवता की महिमा दिखावे और इस तरह धन इकट्ठा कर लिया जावे ॥४६-५०॥

अश्रद्दधाननामाचमनप्रोक्षणेषु रसमुपचार्य देवताभिशापं ब्रूयात् ॥ ५१ ॥ अभित्यक्तं वा दंशयित्वा योगदर्शनप्रतीकारेण वा कोपाभिसंहरणं कुर्यात् ॥ ५२ ॥ वैदेहकव्यञ्जनो वा प्रभूतपण्यान्तेवासी व्यवहरेत ॥ ५३ ॥ स यदा पण्यमूल्ये निक्षेपप्रयोगैरुपचितः स्यात्तदैनं रात्रौ मोषयेत् ॥ ५४ ॥ एतेन रूपदर्शकः सुवर्णकारश्च व्याख्यातौ ॥ ५५ ॥

जो पुरुष इसपर श्रद्धा न रखे, उनको चरणामृत के साथ थोड़ा सा विष देवे, जिससे वे घूमें और सर्प देवता की महिमा प्रकट हो। जो देवता की निन्दा करें, उन्हें सांप से कटवा देवें, फिर औषधियों के योग से उनकी चिकित्सा करके देवता के महत्व की स्थापना करे और राजा के कोष को बढ़ावे। व्यापारी का वेष बनाकर गुप्तचर बहुत सी वस्तु और साथी लेकर व्यापार छेड़ दे। जब वह बेचने की चीजों के मूल्य पेशगी लेकर मालदार हो जावे या धरोहर आदि से उसके पास धन इकट्ठा हो जावे, तब रात को राजा चोरी कराले। इसी प्रकार राजा के सिक्कों का देखने वाला या सुवर्णाध्यक्ष भी राजा को धन सञ्चय करके देवें ॥५१-५५॥

वैदेहकव्यञ्जनो वा प्रख्यातव्यवहारः प्रवहणनिमित्तं याचितकमवक्रीतकं वा रूपसुवर्णभाण्डमनेकं गृह्णीयात् ॥ ५६ ॥ समाजे वा सर्वपण्यसंदोहेन प्रभूतं

मोति ॥ ७० ॥ प्रतिपन्नं चैत्यस्थाने रात्रौ प्रभूतसुरामांसगन्धमुपहारं कारयेत् ॥ ७१ ॥ एकरूपं चात्र हिरण्यं पूर्वनिखातं प्रेताङ्गं प्रेतशिशुर्वा यत्र निहितः स्यात्ततो हिरण्यमस्य दर्शयेदत्यल्पमिति च ब्रूयात् ॥ ७२ ॥ प्रभूतहिरण्यहेतोः पुनरुपहारः कर्तव्य इति स्वयमेवैतेन हिरण्येन श्वोभूते प्रभूतमौपहारिकं क्रीणीहीति ॥ ७३ ॥ तेन हिरण्येनौपहारिकक्रये गृह्येत ॥ ७४ ॥

सिद्ध पुरुष के वेष में रहने वाला कोई गुप्तचर, छलने योग्य पुरुष को सुवर्ण बनाने की विद्या से लोभ युक्त करे और कहे, कि मैं अक्षय सुवर्ण बनाना, राजा को वश में करना, स्त्री के हृदय को खैंचना, शत्रु को रोग ग्रस्त बनाना, आयु बढ़ाना, पुत्र उत्पन्न करना, जानता हूं। जब उस पुरुष को विश्वास हो जावे, तो किसी देव स्थान के बगीचे में रात में उसे बहुत सी शराब, मांस, गन्ध, आदि की भेंट चढ़वावे। वहां से एक मुद्रा सुवर्ण पूर्व से गड़ा हुआ निकाल दे, जहां पर किसी प्रेत का अङ्ग हो या बच्चा गड़ा हो और कहे, कि यह तो बहुत थोथा सुवर्ण मिला, क्योंकि तुमने भेंट भी थोड़ी ही चढ़ाई है यदि तुमको अधिक सुवर्ण लेना है, तो अधिक भेंट चढ़ाओ। लो यह भी सुवर्ण लो और कल बहुत सी भेंट चढ़ाने को लाओ जब वह उस सुवर्ण से बाजार में चीजें खरीदे-तो उसे चोरी का बताकर पकड़ लो और उसका सर्वस्व छीन लो ॥६९-७४॥

मातृव्यञ्जनाया वा पुत्रो मे त्वया हत इत्यवरूपितः स्यात् ॥ ७५ ॥ संसिद्धमेवास्य रात्रियागे वनयागे वनक्रीडायां वा प्रवृत्तायां तीक्ष्णा विशस्याभित्यक्तमतिनयेयुः ॥ ७६ ॥

कोई स्त्री किसी धनिक के पास जावे, कि तूने मेरे पुत्र को मारा है। रात्रियाग, वनयाग या वन क्रीड़ा के प्रवृत्त होने पर घातक पुरुष किसी मारने योग्य व्यक्ति को मारकर वहां डालदे। इस अपराध में उस धनिक को पकड़कर उसका सर्वस्व अपहरण कर लेना चाहिए ॥७५-७६॥

दूष्यस्य वा भृतकव्यञ्जनो वेतनहिरण्ये कूटरूपं प्रक्षिप्य प्ररूपयेत् ॥७७॥ कर्मकारव्यञ्जनो वा गृहे कर्म कुर्वाणस्तेन कूटरूपकारकोपकरणमपनिदध्यात् चिकित्सकव्यञ्जनो वा गरमगापदेशेन ॥ ७८ ॥ प्रत्यासन्नो वा दूष्यस्य सत्त्री प्रणिहितमभिषेकभाण्डममित्रशासनं च कापटिकमुखेन आचक्षीत कारणं च ब्रूयात् ॥ ७९ ॥ एवं दूष्येष्वधार्मिकेषु च वर्तेत ॥ ८० ॥ नेतरेषु ॥ ८१ ॥

दूषित करने योग्य धनिक का नौकर अपने वेतन के रुपयों में जाली सिक्का मिलाकर राजा के यहां सूचना करे। कोई कारीगर जाली सिक्के के औज़ार भी उसके घर में रख देवे, जो कि इस धनिक के यहां पूर्व से काम कर रहा हो। इस प्रकार उसका धन छीन लेवे। वैद्य, विना उसे बताये धनिक को विष प्रदान करदे। उस विष को बरामद करके उसका सारा धन छीन लिया जावे। दूष्य व्यक्ति के पड़ोस में रहने वाला, सत्री नामक गुप्तचर अभिषेक की सामग्री और कपट लेख उसके घर में रखवादे। फिर उसपर यह अपराध लगाया जावे, कि यह शत्रु राजा को अभिषिक्त करना चाहता है। इस तरह सर्वस्व छीन लिया जावे। यह अनुचित उपाय राजा दुष्ट अधार्मिक पुरुषों के साथ ही करे-धार्मिक व्यक्ति के साथ कभी ऐसा आचरण न करे ॥७७-८१॥

पक्वं पक्वमिवारामात्फलं राज्यादवाप्नुयात्।
आमच्छेदभयादामं वर्जयेत्कोपकारकम् ॥ ८२ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे कोशाभिसंहरणं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥
आदितो द्विनवतिः ॥ ९२ ॥

राजा दुष्ट पुरुषों से इस तरह धन को छीन ले, जैसे बगीचे से पके २ फल छीन लिये जाते हैं। और प्रजा के कोप का कारण होने से कच्चे फलों की तरह धार्मिक पुरुषों का धन बिल्कुल छोड़ देवे ॥८२॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत योगवृत्त अधिकरण में कोश वृद्धि का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।



तीसरा अध्याय

९१वां प्रकरण

भृत्या भरणीयम्

इस प्रकरण में भृत्यों के भरण पोषण की विधि का वर्णन होगा।

दुर्गजनपदशक्त्या भृत्यकर्म समुदयपादेन स्थापयेत् ॥१॥ कार्यसाधनसहेन वा भृत्यलाभेन शरीरमवेक्षेत ॥ २ ॥ न धर्मार्थौ पीडयेत् ॥ ३ ॥ ऋत्विगाचार्य-मन्त्रिपुरोहित सेनापतियुवराजराजमातृराजमहिष्यो ऽष्टचत्वारिंशत्साहस्राः ॥४॥ एतावता भरणे नानास्वाद्यत्वमकोपकं चैषां भवति ॥ ५ ॥

राजा दुर्ग और जन पर की शक्ति के अनुसार सेवकों पर धन व्यय करे, जिससे अपनी उन्नति हो सके। कार्य साधन में समर्थ सेवकों के लाभ से अपने राज्य की स्थिति की देख रेख रखे। राजा कोई ऐसा काम न करे, जिससे धर्म और अर्थ की हानि हो। ऋत्विक, आचार्य मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, राजमाता, और राजमहिषी, इन सबके वेतन का अड़तालीस सहस्त्र पण प्रति वर्ष होना चाहिए। इतने वेतन से ये आराम से भोजन कर सकते हैं। और कुपित नहीं हो सकते हैं ॥१-५॥

दौवारिकान्तर्वंशिकप्रशास्तृसमाहर्तृसंनिधातारश्चतुर्विंशतिसाहस्राः ॥ ६ ॥ एतावता कर्मण्या भवन्ति ॥ ७ ॥ कुमारकुमारमातृनायकाः पौरव्यावहारिककार्मान्तिकमन्त्रिपरिषद्राष्ट्रान्तपालाश्च द्वादशसाहस्राः ॥८॥ स्वामिपरिबन्धबलसहाया ह्येतावता भवन्ति ॥ ९ ॥ श्रेणीमुख्या हस्त्यश्वरथमुख्याः प्रदेष्टारश्चाष्टसाहस्राः ॥ १० ॥ स्ववर्गानुकर्षिणो ह्येतावता भवन्ति ॥ ११ ॥

द्वारपाल, अन्तःपुर रक्षक, शास्त्राध्यक्ष, समाहर्ता संनिधाता (भंडाराध्यक्ष) को चौबीस पण सहस्र वार्षिक वेतन दिया जावे। कुमार, कुमारों की माता, सेना नायक नगर रक्षक, व्यापाराध्यक्ष, कृषिकाअध्यक्ष, मन्त्रि परिषद् के बारह सभ्य, राष्ट्र और सीमा पालक, इनको बारह सहस्र सालाना वेतन दिया जावे। इतने वेतन से ये स्वामी के अनुचर और उसके बल के सहायक रहेंगे सजातीय शिल्पियों के मुख्य, हाथी, अश्व, रथों के नायक तथा प्रदेष्टा, इनको आठ सहस्र वार्षिक वेतन दिया जावे। इससे ये अपने साथियों को राजा का अनुचर बनाये रखेंगे ॥९-११॥

पत्त्यश्वरथहस्त्यध्यक्षा द्रव्यहस्तिवनपालाश्चतुःसाहस्राः ॥ १२॥ रथिकानीकचिकित्सकाश्वदमकवर्धकयो योनिपोषकाश्च द्विसाहस्राः ॥ १३ ॥ कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकपौराणिकसूतमागधाःपुरोहितपुरुषाः सर्वाध्यक्षाश्च साहस्राः ॥१४॥ शिल्पवन्तः पादाताः संख्यायकलेखकादिवर्गः पञ्चशताः ॥ १५ ॥

पैदल सेना का अध्यक्ष, अश्वारोही, रथारोही, गजारोही सेना के स्वामी, वन की वस्तु और हाथियों के वन के रक्षकों को चार सहस्र वार्षिक वेतन मिलना चाहिए। रथ सेना के चिकित्सक, अश्व शिक्षक, बढ़ई, पशु पालक, अध्यक्षों को वार्षिक दो सहस्र पण मिलना उचित है। ज्योतिषी शकुन वादी, मुहुर्त बताने वाले पौराणिक, सूत, मागध पुरोहित इनके सेवक और सारे छोटे २ अध्यक्षों को एक सहस्र वार्षिक वेतन दिया जावे। शिल्पी चित्रकार खेलने वाले, हिसाब रखने वाले, लेखक आदि को पांच सौ प्रति वर्ष मिले ॥१२-१५॥

कुशीलवास्त्वर्धतृतीयशताः ॥ १६ ॥ द्विगुणवेतनाश्चैषां तूर्यकराः ॥१७॥ कारुशिल्पिनो विंशतिशतिकाः ॥ १८॥ चतुष्पदद्विपदपरिचारकपारिकर्मिकोपस्थायिकपालकविष्टिबन्धकाः षष्ठिवेतनाः ॥ १६ ॥ कार्ययुक्तारोहकमाणवकशैलखनकाः सर्वोपस्थायिन आचार्या विद्यावन्तश्च पूजावेतनानि यथार्हं लभेरन्पञ्चशतावरं सहस्रपरम् ॥ २० ॥ दशपणिको योजने दूतः मध्यमः ॥२१॥ दशोत्तरे द्विगुणवेतन आयोजनशतादिति ॥ २२ ॥ समानविद्येभ्यस्त्रिगुणवेतनो राजा राजसूयादिषु क्रतुषु राज्ञः सारथिः साहस्रः ॥ २३ ॥ कापटिकोदास्थितगृहपतिकवैदेहकतापसव्यञ्जनाः साहस्राः ॥ २४ ॥ ग्रामभृतकसत्त्रितीक्ष्णरसदभिक्षुक्यः पञ्चशताः ॥ २५ ॥ चारसंचारिणोर्धतृतीयशताः प्रयासवृद्धवेतना वा ॥२६॥

नटों को ढ़ाई सौ पण वार्षिक मिले, इन में बाजे बजाने वाले या बनाने वाले को इस से दुगुना दिया जावे। साधारण कारीगरों को एक सौ बीस सालाना वेतन नियत होवे। पशु और मनुष्यों के परिचारक उनके मुखिया. स्नान आदि कराने वाले गौ आदि के पालक बेगारी प्रत्येक पुरुष को सालभर में साठ पण वेतन मिले। कार्य के समय रथ आदि का चलाने वाला, शिक्षा देने वाला, पत्थर पर नक्काशी करने वाले या सारे गाने आदि के आचार्य अपनी २ योग्यता के अनुसार पांच सौ से लेकर एक सहस्र तक प्रत्येक वेतन पा सकता है। एक योजन चलने वाले मध्यम दूत को दस पण वार्षिक दिया जावे और दस योजन से सौ योजन तक दस २ पर दुगुना वेतन कर दिया जावे। राजा राजसूय आदि यज्ञ करने के समय मन्त्री पुरोहित आदि को तिगुना वेतन देवे। राजा के सारथि को एक सहस्र पण दिया जावे। गांव के सेवक (नाई धोबी आद) सन्त्री (गुप्तचर) घातक विष देने वाले और भिक्षुणियों को पाँच सौ प्रति वर्ष वेतन देता रहे। चरों को इधर उधर भेजने वाले अध्यक्ष को ढ़ाई सौ प्रति वर्ष दिया जावे। यदि इनको कभी अधिक परिश्रम करना पड़े तो सबका अधिक भी वेतन दिया जा सकता है॥ १६-२६॥

शतवर्गसहस्रवर्गाणामध्यक्षा भक्तवेतनलाभमादेशं विक्षेपं च कुर्युः ॥२७॥ अविक्षेपो राजपरिग्रहदुर्गराष्ट्ररक्षावेक्षणेषु च नित्यमुख्याः स्युरनेकमुख्याश्च॥२८॥ कर्मसु मृतानां पुत्रदारा भक्तवेतनं लभेरन्॥२६॥ बालवृद्धव्याधिताश्चैषामनुग्राह्याः ॥ ३० ॥ प्रेतव्याधितसूतिकाकृत्येषु चैषामर्थमानकर्म कुर्यात् ॥ ३१॥ अल्पकोशः कुप्यपशुक्षेत्राणि दद्यात् ॥ ३२ ॥ अल्पं च हिरण्यम् ॥ ३३ ॥

जो इन के सौ पुरुष या सहस्र पुरुषों पर अध्यक्ष हो-उसे भत्ता और वेतन अधिक मिलना चाहिए, इसका काम उनको आज्ञा देना और इधर उधर नौकरी पर लगाना है।

राजा के रनिवास, दुर्ग और दण्ड दशा के निमित्त इनको वखेर कर नियुक्त न करे। इन में कोई न कोई अध्यक्ष अवश्य हो-इस से अनेक अध्यक्ष वनाने चाहिए। जो करम करके मर जावे-तो उसके वेतन और भत्ते को उसकी स्त्री या पुत्र प्राप्त करे। मृत नौकर के वालक वृद्ध और वीमारों पर राजा कृपा करके उनका कुछ वेतन नियत करे, इनके मौत रोगी या वचा उत्पन्न होने पर इनके द्रव्य की सहायता करके इनका राजा मान प्रदर्शित करे। राजा के देश में रुपया न हो तो तांवा आदि धातु के वर्तन, पशु, खेत आदि दे कर राजा उन की सहायता करे। इस समय नकद रुपया थोड़ा देवे ॥ २७-३३ ॥

शून्यं वा निवेशयितुमभ्युत्थितो हिरण्यमेव दद्यात् ॥ ३४ ॥ न ग्रामं ग्रामसजातव्यवहारस्थापनार्थम् ॥ ३५ ॥ एतेन भृतानामभृतानां च विद्याकर्मभ्यां भक्तवेतनविशेषं च कुर्यात् ॥ ३६ ॥ षष्टिवेतनस्याढकं कृत्वा हिरण्यानुरूपं भक्तं कुर्यात् ॥ ३७ ॥ पत्त्यश्वरथद्विपाः सूर्योदये वहिः संधिदिवसवर्जं शिल्पयोग्याः कुर्युः ॥३८॥ तेषु राजा नित्ययुक्तः स्यादभीक्ष्णं चैषां शिल्पदर्शनं कुर्यात् ॥३९॥

यदि राजा शून्य स्थानों को वसाना चाहे-तो नकद सुवर्ण मुद्रा देवे। गांव के वसाने में भूमि आदि देने से उसका मूल्य निश्चित नहीं होता-उसपर कर कितना वाँधा जावे-यह पता नहीं लगता है। इस तरह नौकर और मजदूर पुरुषों के काम और गुण को देख कर उनके वेतन और भत्ते [पेटिया] की कमती वढ़ती राजा व्यवस्था करे। जिसकी साठ पण वेतन हो, उसको एक आठक अन्न दिया जावे। इसी तरह जिसका जितना वेतन हो-उसी हिसाव से भत्ता भी कमती वढ़ती कर दिया जावे। पैदल, अश्व, रथ और हाथियों को सूर्योदय होते ही नगर के वाहर सेना में काम करने के योग्य वनाया जावे अर्थात् कवायद सिखाई जावे। संधिकाल और अमावस्या आदि में कवायद वन्द रहे। राजा सदा इनके साथ रहे और सदा इनकी कवायद आदि देखता रहे॥ ३४-३९ ॥

कृतनरेन्द्राङ्कं शस्त्रावरणमायुधागारं प्रवेशयेत् ॥ ४० ॥अशस्त्राश्चरेयुरन्यत्र मुद्रानुज्ञातात् ॥ ४१ ॥ नष्टं विनष्टं वा द्विगुणं दद्यात् ॥ ४२॥ विध्वस्तगणनां च कुर्यात् ॥४३॥ सार्थिकानां शस्त्रावरणमन्तपाला गृह्णीयुः समुद्रमवचारेयुर्वा ॥ ४४ ॥ यात्रामभ्युत्थितो वा सेनामुद्योजयेत् ॥ ४५ ॥

राजा के अङ्क से अङ्कित, कवच और शस्त्रों को शस्त्रागार में रखवा लिया जावे। राजा की चपरास के विना ये सिपाही विना शस्त्र के घूम सकते हैं। जो शस्त्र खो जाय या प्रमाद से टूट जाय-तो उसका दुगुना मूल्य दिया जावे। जितने हथियार टूट गए-उनकी

भी गणना रखे-व्यापारियों के गिरोह से शस्त्र और कवच अन्तपाल [अधिकारी] जमा करा ले। यदि वे समुद्र में आगे जा रहे हों-तो उन को सशस्त्र चले जाने दे। जब राजा किसी यात्रा को जावे-तो सशस्त्र सेना साथ ले जावे ॥ ४०-४५ ॥

ततो वैदेहकव्यञ्जनाः सर्वपण्यान्यायुधीयेभ्यो यात्राकाले द्विगुणप्रत्यादेयानि दद्युः ॥ ४६ ॥ एवं राजपण्ययोगविक्रयो वेतनप्रत्यादानं च भवति ॥ ४७ ॥ एवमवेक्षितायव्ययः कोशदण्डव्यसनं नावाप्नोति ॥ ४८ ॥ इति भक्तवेतनविकल्पः ॥ ४९ ॥

राजा के गुप्तचर व्यापारी बने हुए राजकीय वस्तुओं को इन शस्त्रधारी सिपाहियों को यात्राकाल में दुगुना दाम पर बेचे। इस से राजा की वस्तु बिककर सेना को वेतन मिल जायगा। इस प्रकार जो अपनी आमदनी और व्यय की देख रेख करता रहता है। उसको कोश और दण्ड का व्यसन [बुराई] प्राप्त नहीं होता ॥ ४६-४९ ॥

सत्त्रिणश्चायुधीयानां वेश्याः कारुकुशीलवाः।
दण्डवृद्धाश्च जानीयुः शौचाशौचमतन्द्रिताः ॥ ५० ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे भृत्यभरणीयं तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥

आदितस्त्रिनवतिः ॥ ९३ ॥

शस्त्रधारी सेना के शुद्ध और अशुद्ध होने को सत्री [गुप्तचर] वेश्या, शिल्पी, नट और दण्डधारी वृद्ध सैनिक सावधानी के साथ जानते रहे ॥ ५० ॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत योग वृत्त अधिकरण में सेवकों के वेतन के निर्णय का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।



चौथा अध्याय

९२ वां प्रकरण

अनुजीवि वृत्तम

इस प्रकरण में राजा के अनुचर मन्त्री आदि का राजा के प्रति व्यवहार करने का वर्णन होगा।

लोकयात्राविद्राजानमात्मद्रव्यप्रकृतिसंपन्नं प्रियहितद्वारेणाश्रयेत ॥ १ ॥ यं वा मन्येत यथाहमाश्रयेप्सुरेवमसौ विनयेप्सुराभिगामिकगुणयुक्त इति ॥ २ ॥

द्रव्यप्रकृतिहीनमप्येनमाश्रयेत ॥ ३ ॥ न त्वेवानात्मसंपन्नम् ॥ ४ ॥ अनात्मवान्हि नीतिशास्त्रद्वेषादानर्थ्यसंयोगाद्वा प्राप्यापि महदैश्वर्यं न भवति ॥ ५ ॥ आत्मवति लब्धावकाशः शास्त्रानुयोगं दद्यात् ॥ ६ ॥ अविसंवादाद्धि स्थानस्थैर्यमवाप्नोति ॥ ७ ॥ मतिकर्मसु पृष्टः तदात्वे चायत्यां च धर्मार्थसंयुक्तं समर्थं प्रवीणवद परिषद्भीरुः कथयेत् ॥ ८ ॥

सांसारिक उन्नति के मार्ग जानने वाला कुशल पुरुष, महाकुलीन, द्रव्य और अमात्यादि प्रकृति से सुसम्पन्न, राजा का-उसके प्रिय पुरुषों के द्वारा आश्रय ग्रहण करे। जिस राजा को विद्वान् यह समझे, कि मैं जैसे आश्रय की अभिलाषा करता हूं वैसा यह है, और जैसे विनयी पुरुष की यह राजा इच्छा करता है, वैसा ही मैं हूं-इस प्रकार आश्रय लेने के गुणों से यह युक्त है-यह सोचकर किसी भी राजा का विद्वान् आश्रय लेवे। यदि राजा उत्तम गुणों से सम्पन्न है और द्रव्य प्रकृति से हीन भी है, तो भी उसका आश्रय ग्रहण कर लेना चाहिए, परन्तु जो आत्मगुण सम्पन्न नहीं है, उसका आश्रय कदापि ग्रहण न करे, क्योंकि अनात्मज्ञ राजा, नीति शास्त्र के ज्ञान के अभाव के कारण अनर्थकारक मृगया आदि दोषों में फंसेगा और एक दिन उसका महान् ऐश्वर्य भी नष्ट हो जावेगा। यदि राजा आत्मगुण सम्पन्न हो तो समय पर उसे नीति शास्त्र की शिक्षा देवे। जब राजा और उस चतुर मन्त्री का एक मत हो जाता है, तो उसका स्थान स्थिर हो जाता है। जब कभी राजा मन्त्रणा के योग्य कार्यों में इस मन्त्री की भी सम्मति लेवे, तो वह वर्तमान या भविष्य में कल्याणकारी, धर्म अर्थ संयुक्त, सुख साधन में समर्थ वाक्य को चतुर पुरुष की भांति सभा में निडर होकर कहे ॥१-८॥

ईप्सितः पणेत ॥ ९ ॥ धर्मार्थानुयोगमविशिष्टेषु बलवत्संयुक्तेषु दण्डधारणं बलवत्संयोगे तदात्वे च दण्डधारणमिति न कुर्याः ॥ १० ॥ पक्षं वृत्तिं गुह्यं च मे नोपहन्याः ॥ ११ ॥ संज्ञया च त्वां कामक्रोधदण्डनेषु वारयेयमिति ॥ १२ ॥ आदिष्टः प्रदिष्टायां भूमावनुज्ञातः प्रविशेत् ॥ १३ ॥ उपविशेच्च पार्श्वतः संनिकृष्टः विप्रकृष्टः परासनम् ॥ १४ ॥ विगृह्य कथनमसभ्यमप्रत्यक्षमश्रद्धेयमनृतं च वाक्यमुच्चैरनर्मणि हासं वातष्ठीवने च शब्दवती न कुर्यात् ॥ १५ ॥ मिथः कथनमन्येन जनवादे द्वन्द्वकथनं राज्ञो वेषमुद्धतकुहकानां च रत्नातिशयप्रकाशाभ्यर्थनमेकाक्ष्योष्ठनिर्भोगं भ्रुकुटीकर्म वाक्यापक्षेपणं च ब्रुवति बलवत्संयुक्तविरोधं स्त्रीभिः स्त्री दर्शिभिः सामन्तदूतैर्द्वेष्यपक्षावक्षिप्तानर्थ्यैश्च प्रतिसंसर्गमेकार्थचर्यां संघातं च वर्जयेत् ॥ १६ ॥

जब यह पुरुष-राजा का अभीष्ट हो जावे, तो राजा से यह निश्चित करले, कि तुम धर्म अर्थ के विषय में अयोग्य पुरुषों से विचार न करना, बलवानों से युद्ध न करना, जिस समय किसी के बलवान् सहायक हों तो उस समय उसपर चढ़ाई न करना-मेरे पक्ष, वृत्ति और गुप्त विचार को कभी नष्ट न करना और काम, क्रोध तथा दण्ड देने के समय मैं तुम्हें संकेतों से रोकूंगा-तो क्रुद्ध न होना-यदि ये सब स्वीकार करो-तो मैं तुम्हारा मन्त्री बन सकता हूं। जब वह स्वीकार करले-तो जिस स्थान पर राजा नियुक्त करे वहीं चला जावे। समयानुसार राजा के इधर उधर आमने सामने उचित आसन पर बैठ जावे। चतुर पुरुष, राज सभा में कभी झगड़ कर बात न करे, असभ्य, नहीं देखे हुए अविश्वनीय, मिथ्या, वाक्य न बोले। उपहास के समय के न होने पर कभी जोर से न हंसे। अधोवायु (पाद) और खकार शब्द के साथ न छोड़े। राजा के स्थित होने पर किसी दूसरे से आपस में बात करना, जनों के विवाद किसी एक पक्ष को सत्य कहने की छाती ठोकना, राजा के वा उद्धत पाखण्डियों के वेश को धारण करना, अच्छे २ रत्नों को सबके सन्मुख राजा से मांग बैठना, एक आंख और ओष्ठ को मोड़कर भौंहे चलाना, राजा के वाक्य में आक्षेप करना बलवान् से सम्बन्ध रखने वाले से विरोध करना, स्त्री, स्त्रियों के सेवक, सामन्तों के दूत, राजा के द्वेषी, तिरस्कृत या अनर्थ करने वालों से संसर्ग बनाना, एक ही बात को करते चले जाना और पार्टी बनाना, ये सब बातें राजदरबार में नहीं करने योग्य हैं ॥६-१६॥

अहीनकालं राजार्थं स्वार्थं प्रियहितैः सह ।
परार्थदेशकाले च ब्रूयाद्धर्मार्थसंहितम् ॥ १७ ॥
पृष्टः प्रियहितं ब्रूयान्न ब्रूयादहितं प्रियम् ।
अप्रियं वा हितं ब्रूयाच्छृण्वतो ऽनुमतो मिथः ॥१८॥

चतुर पुरुष, राजा के हित की बात को समय के ऊपर चटपट करदे, अपने स्वार्थ को राजा के प्रिय और हितकारी द्वारा कहावे तथा यदि दूसरे के हित की बात हो-तो देशकाल देखकर धर्म युक्त और नीति युक्त वचन बोल दे। यदि राजा पूछे-तो प्रिय और हितकारी बात कहदे, अहितकारी प्रिय बात कभी न कहे। यदि हितकारी अप्रिय भी है-तो भी कहदे-परन्तु यह सब बातें, राजा के ध्यान पूर्वक सुनने और अनुमति देने पर ही कहे ॥१७-१८॥

तूष्णीं वा प्रतिवाक्ये स्याद्द्वेष्यादींश्च न वर्जयेत् ।
अप्रिया अपि दक्षाः स्युः तद्भावाद्ये बहिष्कृताः ॥१९॥

अनर्थ्याश्च प्रिया दुष्टाश्चित्तज्ञानानुवर्तिनः ।

अभिहास्येष्वभिहसेद्घोरहासांश्च वर्जयेत् ॥२०॥

विद्वान्, पुरुष राजा को उत्तर देने के समय चुप हो जावे । राजा के द्वेष पुरुषों को उत्तर देने में न हिच किचावे । जो ऐसा नहीं करता-वह दक्ष होकर भी राजा का अप्रिय हो जाता है और इन बातों के कारण तिरस्कृत पुरुष भी आदृत हो जाता है । राजा के चित्त की इच्छा के अनुसार चलने वाले अनर्थकारी दुष्ट भी राजा के प्रिय देखे गए हैं । जब राजा हंसे-तो हंसे, परन्तु तब भी जोर का अट्टहास न करे ॥१९-२०॥

परात्संक्रामयेद्घोरं न च घोरं परे वदेत् ।

तितिक्षेतात्मनश्चैव क्षमावान्पृथिवीसमः ॥२१॥

किसी घोर समाचार को दूसरे के द्वारा राजा तक पहुंचावे, परन्तु दूसरे से भी दक्ष पुरुष, स्वयं न कहे । यदि अपने ऊपर कोई घोर घटना आजावे, तो पृथिवी समान दृढ़ होकर उसका सहन करे ॥२१॥

आत्मरक्षा हि सततं पूर्वं कार्या विजानता ।

अग्नाविव हि संप्रोक्ता वृत्ती राजोपजीविनाम् ॥२२॥

विद्वान् पुरुष, सबसे प्रथम अपनी रक्षा करे, क्योंकि राजा के आश्रय रहने वालों की वृत्ति अग्नि से खेलने के सदृश, कठिन है ॥२२॥

एकदेशं दहेदग्निः शरीरं वा परं गतः ।

सपुत्रदारं राजा तु घातयेदृर्धयेत वा ॥ २३ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे अनुजीविवृत्तं चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥

आदितश्चतुर्नवतिः ॥ ९४ ॥

अग्नि तो शरीर के एक देश या सारे शरीर को जला सकती है, परन्तु राजा पुत्र, स्त्री सहित सबको नष्ट कर देता है और प्रसन्न होने पर सबकी उन्नति भी कर सकता है ॥२३॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत योगवृत्ताधिकरण में मन्त्री आदि नौकर चाकरों के व्यवहार का वर्णन का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ।



पांचवां अध्याय

६३वां प्रकरण

सामयाचारिकम्

इस प्रकरण में राजा के सन्मुख किस प्रकार समयानुकूल वर्ताव किया जावे-इसका वर्णन होगा।

नियुक्तः कर्मसु व्ययविशुद्धमुदयं दर्शयेत् ॥ १ ॥ आभ्यन्तरं बाह्यं गुह्यं प्रकाश्यमात्ययिकमुपेक्षितव्यं वा कार्यमिदमेवमिति विशेषयेच्च ॥ २ ॥ मृगयाद्यूतमद्यस्त्रीषु प्रसक्तं चैवमनुवर्तेत ॥३॥ प्रशंसाभिरासन्नश्चास्य व्यसनोपघाते प्रयतेत ॥ ४ ॥ परोपजापातिसंधानोपाधिभ्यश्च रक्षेत् ॥ ५ ॥ इङ्गिताकारौ चास्य लक्षयेत् ॥ ६ ॥ कामद्वेषहर्षदैन्यव्यवसायभयद्वन्द्वविपर्यासमिङ्गिताकाराभ्यां हि मन्त्रसंवरणार्थमाचरन्ति प्राज्ञाः ॥ ७ ॥

अपने कार्य पर नियुक्त समाहर्ता आदि सरकारी अफसर व्यय काट कर राजा को बचत दिखाते रहे। दुर्ग के भीतर दुर्ग से बाहर राष्ट्र में होने वाले कार्य, गुप्त, अगुप्त, हानिकारक और उपेक्षा योग्य, जैसे हों-उन सबको विशेषता के साथ राजा को बता दे। यदि राजा, मृगया, मद्य, द्यूत, और स्त्रियों में आसक्त हो, तब भी उसके अनुकूल ही वर्ताव करे, परन्तु सदा उसके समीप रहकर उसके व्यसनों के नाश करने की बराबर चेष्टा करता रहे। शत्रुओं द्वारा फूट डालने वाले या पार्टी बनाने वाले लोगों से राजा की सर्वदा रक्षा करे। राजा के सदा मन की चेष्टा और आकार की ओर दृष्टि रखे। काम, द्वेष, हर्ष, दीनता, उद्योग, भय और सुख दुःख के विपर्यास, इङ्गित (चेष्टा, या आकार से ही जाने जा सकते हैं। राजा के मंत्र की रक्षा के निमित्त बुद्धिमान् इनकी ओर विशेषता से दृष्टि रखे ॥१-७॥

दर्शने प्रसीदति ॥ ८ ॥ वाक्यं प्रतिगृह्णाति ॥ ९ ॥ आसनं ददाति ॥ १० ॥ विविक्तो दर्शयते ॥ ११ ॥ शङ्कास्थाने नातिशङ्कते ॥ १२ ॥ कथायां रमते ॥ १३ ॥ परिज्ञाप्येष्ववेक्षते ॥ १४ ॥ पथ्यमुक्तं सहते ॥ १५ ॥ स्मयमानो नियुंक्ते ॥ १६ ॥ हस्तेन स्पृशति ॥ १७ ॥ श्लाघ्ये नोपहसति ॥ १८ ॥ परोक्षं गुणं ब्रवीत ॥ १९ ॥ भक्ष्येषु स्मरति ॥ २० ॥ सह विहारं याति ॥ २१ ॥ व्यसने ऽभ्यवपद्यते ॥ २२ ॥ तद्भक्तीन्पूजयति ॥ २३ ॥ गुह्यमाचष्टे ॥ २४ ॥ मानं वर्धयति ॥ २५ ॥ अर्थं करोति ॥ २६ ॥ अनर्थं प्रतिहन्ति ॥ २७ ॥ इति तुष्टज्ञानम् ॥ २८ ॥

जब राजा देखते ही प्रसन्न हो जावे, बात को ध्यान पूर्वक सुने, आसन देवे, एकान्त में मिले, शङ्का के स्थान में भी शंका न करे, उससे बातचीत में प्रेम दिखावे; जताने योग्य कार्यों में उसकी ओर देखे, हितकारी बात को मान जावे, मुसकुराकर प्रत्येक कार्य में लगावे, हाथ से छूवे, प्रशंसा के साथ हंसता रहे, परोक्ष में गुणों का करे, भोजन के समय याद करे-उसको साथ लेकर घूमने जावे. कठिनाई के समय उसकी सहायता करे, उसके साथियों का आदर करे, उससे गुप्त बात कहदे, मान बढ़ावे, उसके हितकारी कार्य करे अहितकारी कार्यों को नष्ट करदे-तो समझना चाहिए कि इस व्यक्ति पर राजा प्रसन्न है ॥८-२८॥

एतदेव विपरीतमतुष्टस्य ॥२९॥ भूयश्च वक्ष्यामः ॥३०॥ संदर्शने क्रोपः ॥३१॥ वाक्यस्याश्रवणप्रतिषेधौ ॥३२॥ आसनचक्षुषोरदानम् ॥३३॥ वर्ण-स्वरभेदः ॥३४॥ एकाक्षिभ्रुकुट्योष्ठनिर्भेदः ॥३५॥ स्वेदश्वासस्मितानमस्थानोत्पत्तिः ॥३६॥ परिमन्त्रणम् ॥३७॥ अकस्माद्व्रजनम् ॥३८॥ वर्धनमन्यस्य ॥३९॥ भूमिगात्रविलेखनम् ॥४०॥ अन्यस्योपतोदनम् ॥४१॥ विद्यावर्णदेश-कुत्सा ॥४२॥ समदोषनिन्दा ॥४३॥ प्रतिदोषनिन्दा ॥४४॥ प्रतिलोमस्तवः ॥४५॥ सुकृतानपेक्षणम् ॥४६॥ दुष्कृतानुकीर्तनम् ॥४७॥ पृष्ठावधानम् ॥४८॥ अतित्यागः ॥४९॥ मिथ्याभिभाषणम् ॥५०॥ राजदर्शिनां च तद्वृत्ता-न्यत्वम् ॥५१॥

इनके विपरीत कार्य देखने पर समझना चाहिए कि राजा अप्रसन्न है; तो भी कुछ अप्रसन्नता के कार्य बताते हैं। जिसको देखते ही कुपित हो जावे, जब कुछ बात कहते हो सुने-नहीं या रोकदे, आसन न दे और आंख उठाकर भी उस ओर न देखे, बोलने में वर्ण और स्वर बदलले, कभी २ एक आंख और भ्रकुटी मरोड़ ले, इसके देखते ही बिना मौके स्वेद, श्वास या मुसकुराहट होने लगे, दूसरे के साथ बात करने लगे, अचानक चलदे, अन्य की प्रशंसा करे, भूमि या शरीर खुजलाने लगे, दूसरे को फटकारने या मारने लग जावे ! उसकी विद्या वर्ण और देश की निन्दा करे उसके समान दोष रखने वाले की निन्दा या प्रत्येक दोष की निन्दा, करने लगे, इससे उलटा कार्य करने वाले की स्तुति, करे, इसके उत्तम कार्य की ओर भी न देखे, इसके बिगड़े कार्य का बार २ कथन करे, इसकी ओर से पीठ करले, समीप आने पर उसे दूर बैठा दे, उससे मिथ्या बातचीत करे, अन्य राज सेवकों और उसके कामों में भेद बताने लगे-तो समझ लेना चाहिए कि इस व्यक्ति से राजा असन्तुष्ट है ॥२९-५१॥

वृत्तिविकारं चावेक्षेताप्यमानुषाणाम् ॥५२॥ अयमुच्चैः सिञ्चतीति कात्यायनः प्रवव्राज ॥५३॥ क्रौञ्चो ऽपसव्यमिति कणिङ्को भारद्वाजः ॥५४॥ तृणमितिदीर्घश्चारायणः ॥५५॥ शीता शाटीति घोटमुखः ॥५६॥ हस्ती प्रत्यौक्षीदिति किञ्जल्कः ॥५७॥ रथाश्वं प्राशंसीदिति पिशुनः ॥५८॥ प्रतिरवणे शुनः पिशुनपुत्र इति ॥५९॥ अर्थमानावक्षेपे च परित्यागः ॥६०॥ स्वामिशील-मात्मनश्च किल्विषमुपलभ्य वा प्रतिकुर्वीत मित्रमुपकृष्टं वास्य गच्छेत् ॥६१॥

चतुर पुरुष, पशु पक्षियों की वृत्ति (चेष्टाओं) को भी जान लेता है। आज यह सींचने वाला मुझे ऊपर से सींचने लगा, इस से यह राजा के कोप की सूचना दे रहा है, यह समझ कर कात्यायन मन्त्री राजा को छोड़कर चल दिया और राज कोप से अपने को बचा लिया। भरद्वाज पुत्र कनिङ्क ने क्रौञ्चपक्षी के बांयी ओर से निकल जाने से राजा के कोप को जान लिया और उससे अपने को बचा लिया। चारायण गोत्रीय दीर्घ नामक आचार्य राजा द्वारा दिये हुए भोजन में तिनका देख कर उसके कोप को ताड़ गया और वहां से चलता बना। आचार्य घोट मुख भी अपने शिष्य राजकुमार के-शीतल धोती है, मैं नही लेजाता, इस प्रकार राज कोप को जान गया और वहां से जाकर अपने को राज कोप से बचाया। किञ्जल्क नामक राजा शतानन्द के मन्त्री ने हाथी के जल सिञ्चन से राज कोप को ताड़ लिया और भाग निकला राजकुमार द्वारा रथ के घोड़ों की प्रशंसा सुनकर नगर से बाहर चले जाने की सूचना समझकर पिशुन नामक आचार्य नगर छोड़ कर चले गए और इस प्रकार राजकोप से छुटकारा पाया। कुत्ते के भूंकने पर पिशुन पुत्र इसी तरह राजकोप को जानकर वहां से चला गया जब राजा सम्पत्ति और सत्कार का नाश करे तो उसे छोड़ कर चलदे। राजा के शील स्वभाव और अपने अपराध को देखकर अपने अपराध के क्षमा कराने का प्रयत्न करना योग्य है। राजा के प्रिय मित्र या पास रहने वाले पुरुष से राजा को अपने ऊपर प्रसन्न करवाना चाहिए॥५२-६१॥

तत्रस्थो दोषनिर्घातं मित्रैर्भर्तरि चाचरेत्
ततो भर्तरि जीवेद् वा मृते वा पुनराव्रजेत् ॥६२॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे समयाचारिकं पञ्चमो ऽध्यायः ॥५॥

आदितः पञ्चनवतिः ॥९५॥

राजा के नगर में रहता हुआ ही चतुर पुरुष, अपने मित्रों या राज मित्रों द्वारा राजा से अपने अपराध को क्षमा करवावे। जब राजा प्रसन्न हो जावे-तो उसके आश्रय में रहने लगे और यदि प्रसन्न न होवे-तो उसके मरने पर राज सभा में आवे ॥६२॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत योगवृत्त नामक अधिकरण में राजा के साथ समयानुकूल व्यवहार करने के वर्णन का पांचवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



छठा अध्याय

९४-९५ प्रकरण

राज्यका प्रतिसन्धान मेकैश्वर्य।

इस प्रकरण में राजा पर आने वाली विपत्तियों के प्रतिकार और उसके ऐश्वर्य के कारणों का वर्णन किया जावेगा।

राजव्यसनमेवममात्यः प्रतिकुर्वीत ॥ १ ॥ प्रागेव मरणाबाधभयाद्राज्ञः प्रियहितोपग्रहेण मासद्विमासान्तरं दर्शनं स्थापयेत् ॥ २ ॥ देशपीडापहममित्रापहमायुष्यं पुत्रीयं वा कर्म राजा साधयतीत्यपदेशेन राजव्यञ्जनमनुरूपवेलायां प्रकृती दर्शयेत् ॥ ३ ॥ मित्रामित्रदूतानां च ॥४॥ तैश्च यथोचितां संभाषाममात्यमुखो गच्छेत् ॥ ५ ॥ दौवारिकान्तर्वंशिकमुखश्च यथोक्तं राजप्रणिधिमनुवर्तयेत् ॥ ६ ॥ अपकारिषु च हेडं प्रसादं वा प्रकृतिकान्तं दर्शयेत् ॥७॥ प्रसादमेवोपकारिषु ॥८॥

राजा पर जो विपत्ति आवे-उसका प्रतीकार अमात्य को इस तरह करना चाहिए। यदि किसी विरोधी राजा द्वारा के प्रच्छन्न क्रम से मारे जाने के षड़ यन्त्र की सूचना मिले तो पूर्व से हो राजा के प्रिय हितकारी मित्रों की सन्मति से महीने दो महीने में राजा दर्शनों की व्यवस्था करदे। आजकल राजा देश पीड़ा और शत्रु भयनाशक, आयु जनक पुत्रोत्पत्तिकारक किसी भी यज्ञादि कर्म में लगे हुए हैं-इस से उनके दर्शन देर में होते हैं-यह प्रसिद्ध करदे। जब दर्शन का समय आवे, तो किसी पुरुष को राजा के चिन्ह धारण कराकर प्रजा को दर्शन करा दिए जावे। यदि कोई मित्र या शत्रु के दूत आवें-तो उनको भी उसी बनावटी राजा से मिलाकर उनके साथ यथोचित वार्तालाप भी-राजा वेषधारी-किसी अमात्य के द्वारा ही राजा करे। राज्य के प्रतिनिधियों के द्वारपाल और अन्तपुर के रक्षकों के द्वारा आदेश दिलावे। अपकारियों पर कोप या अनुग्रह अमात्यों की सम्मति से दिखावे; परन्तु उपकारियों पर सर्वदा कृपा हो दिखानी उचित है ॥ १-८ ॥

आप्तपुरुषाधिष्ठितौ दुर्गप्रत्यन्तस्थौ वा कोशदण्डावेकस्थौ कारयेत् ॥९॥ कुल्यकुमारमुख्यांश्चान्यापदेशेन ॥ १० ॥ यश्च मुख्यः पक्षवान्दुर्गाटवीस्थो वा वैगुण्यं भजेत तमुपग्राहयेत् ॥ ११ ॥ बह्वाबाधां वा यात्रां प्रेषयेत् ॥ १२ ॥

मित्रकुलं वा ॥ १३ ॥ यस्माच्च सामन्तादाबाधां पश्येत्तमुत्सवविवाहहस्तिबन्धनाश्वपण्यभूमिप्रदानापदेशेनावग्राहयेत् ॥ १४ ॥ स्वमित्रेण वा ततः संधिमदूष्यं कारयेत् ॥ १५ ॥ आटविकामित्रैर्वा वैरं ग्राहयेत् ॥ १६ ॥ तत्कुलीनमवरुद्धं वा भूम्येकदेशेनोपग्राहयेत् ॥ १७ ॥

दुर्ग और सीमा प्रान्त के कोश और सेना को किसी विश्वासी पुरुष की देख रेख में एक स्थान में इकट्ठे करे। किसी बहाने से कुल के मुख्य २ राज कुमारों को भी एकत्र करले। जो मुख्य, बहुत सहायता वाला, दुर्ग या अरण्य निवासी वीर, राजा के विरुद्ध हों-उनको किसी तरह वश में करले। जो वश में न हो, तो उस राजकुमार को बहुत सी बाधा वाले, देश पर चढ़ाई करने भेज दे या किसी मित्र के पास सहायता के बहाने भेज कर अटका देवे। जिस किसी सामन्त से विरोध की आशङ्का हो, उसको उत्सव, विवाह, हस्तिबन्धन, अश्व, अन्य द्रव्य या भूमि प्रदान के बहाने से अपने पास बुलाकर निग्रह अनुग्रह द्वारा वश में करले या अपने मित्र द्वारा वश में कराले। और उस के बाद उस से नहीं टूटने वाली अपने योग्य सन्धि करावे यदि वह सामन्त वश में न आवे, तो किसी वनचर शत्रु के साथ वैर करादे या उसके कुल के किसी पुरुष को कुछ भूमि देकर उसके द्वारा उसे पकड़वावे ॥ ६-१७ ॥

कुल्यकुमारमुख्योपग्रहं कृत्वा वा कुमारमभिषिक्तमेव दर्शयेत् ॥ १८ ॥ दाण्डकर्मिकवद्वा राज्यकण्टकानुद्धृत्य राज्यं कारयेत् ॥ १९ ॥ यदि वा कश्चिन्मुख्यः सामन्तादीनामन्यतमः कोपं भजेत तमेहि राजानं त्वा करिष्यामीत्यावाहयित्वा घातयेत् ॥ २० ॥ आपत्प्रतीकारेण वा साधयेत् ॥ २१ ॥ युवराजे वा क्रमेण राज्यभारमारोप्य राजव्यसनं ख्यापयेत् ॥ २२ ॥ परभूमौ राजव्यसने मित्रेणामित्रव्यञ्जनेन शत्रोः संधिमवस्थाप्यापगच्छेत् ॥२३॥ सामन्तादीनामन्यतमं वास्य दुर्गे स्थापयित्वापगच्छेत् ॥ २४ ॥ कुमारमभिषिच्य वा प्रतिव्यूहेत ॥ २५ ॥ परेणाभियुक्तो वा यथोक्तमापत्प्रतीकारं कुर्यात् ॥२६॥ एवमेकैश्वर्यममात्यः कारयेदिति कौटल्यः ॥ २७ ॥

कुल के मुख्य राजकुमार को वश में करके युवराज पद पर आरूढ़ राजकुमार को ही सब कामों में आगे २ करके प्रजा को दिखाया जावे। दाण्ड कर्मिक प्रकरण में कही हुई विधि के अनुसार राज्य के कांटों को साफ करके राजा को निष्कण्टक बनाकर राज्य का भोग करावे। यदि कोई मुख्य सामन्त, द्वेषी मुख्य राजकुमार के बन्धन में डालने से कुपित हो जावे, तो उसे बुलावे, और कहे, कि अच्छा तुम्हें या तुम कहते हो, जिसे राजा

बना दिया जावेगा-तुम यहां आओ। इस तरह धोखे से उसे बुलाकर मरवा डाले या आपत्प्रतीकार प्रकरण में बताई हुई विधि के द्वारा उसका निराकरण करे। यदि अन्य तरह से राजा के प्राण न बचते दिखाई दें, तो युवराज में राज्य का भार रखकर राजा का कहीं मारा जाना प्रसिद्ध कर दिया जावे। शत्रु भूमि में राजा के मारे जाने की प्रसिद्धि करने पर उसी बनावटी शत्र भूत मित्र से शत्रु राजा की सन्धि करादे और आप चला आवे। उसके दुर्ग में किसी अपने सामन्त को छोड़ दे। किसी राजकुमार को राज्य पर बैठाकर युद्ध छेड़ दे। यदि शत्रु चढ़ाई करे-तो आपत्प्रतीकार प्रकरण की विधि के अनुसार उनका प्रतीकार करे। इस प्रकार शत्रु को मरवाकर राजा को एक मात्र ऐश्वर्य शाली अमात्य बनादे यह कौटल्य आचार्य का कथन है ॥१८-२७॥

नैवमिति भारद्वाजः ॥ २८ ॥प्रम्रियमाणे वा राजन्यमात्यः कुल्यकुमार-मुख्यान्परस्परं मुख्येषु वा विक्रामयेत् ॥२६॥ विक्रान्तं प्रकृतिकोपेन घातयेत् ॥३०॥ कुल्यकुमारमुख्यानुपांशुदण्डेन वा साधयित्वा स्वयं राज्यं गृह्णीयात् ॥३१॥ राज्यकारणाद्धि पिता पुत्रान्पुत्राश्च पितरमभिद्रुह्यन्ति ॥ ३२ ॥ किमङ्ग पुनर-मात्यप्रकृतिर्ह्येकप्रग्रहो राज्यस्य ॥ ३३ ॥तत्स्वयमुपस्थितं नावमन्येत ॥ ३४ ॥ स्वयमारूढा हि स्त्री त्यज्यमानाभिशपतीति लोकप्रवादः ॥ ३५ ॥

भरद्वाज गोत्र अन्य आचार्य इसको नहीं मानते । वे कहते हैं, कि राजा को मरणासन्न प्रसिद्ध करके अमात्य कुल के विरोधी मुख्य कुमारों को अन्य मुख्य कुमारों से लड़ादे। जो विजयी हो, उसपर अन्य सामन्तों का कोप कराकर उसे भी मरवादे। राजाके वंश के मुख्य राजकुमारों को गुप चुप विष आदि के द्वारा मरवाकर राजा स्वयं राज्य को ग्रहण करे! राज्य के कारण पिता पुत्र और पुत्र पिता से द्वेष करने लगते हैं। यदि राज्य की सारी डोरी अमात्य के हाथ में आजावेगी-तो उसका राज्य का लोलुप बन जाना कौन बड़ी बात है। जो (राज्य) स्वयं उपस्थित हो, उसका अपमान नहीं करना चाहिए। ऐसा लोगों का मत है। स्वयं प्राप्त हुई स्त्री का जो अपमान करता है, वह शाप दे देती है-ऐसा लोगों का खयाल है ॥२८-३५॥

कालश्च सकृदभ्येति यं नरं कालकाङ्क्षिणम् ।
दुर्लभः स पुनस्तस्य कालः कर्मचिकीर्षतः ॥ ३६ ॥

जो मनुष्य समय की प्रतीक्षा कर रहा है, उसे समय एक बार प्राप्त होता है। कर्म करने के अभिलाषी पुरुष को फिर उचितकाल का मिलना दुर्लभ ही है ॥३६॥

प्रकृतिकोपकमधर्मिष्ठमनैकान्तिकं चैतदिति कौटल्यः ॥ ३७ ॥ राजपुत्रमा-त्मसंपन्नं राज्ये स्थापयेत् ॥ ३८ ॥ संपन्नाभावे व्यसनिनं कुमारं राजकन्यां

गर्भिणी देवीं वा पुरस्कृत्य महामात्रान्सन्निपात्य ब्रूयात् ॥३६॥ अयं वो निक्षेपः ॥ ४० ॥ पितरमस्यावेक्षध्वं सत्त्वाभिजनमात्मनश्च ॥ ४१ ॥ ध्वजमात्रो ऽयं भवन्त एव स्वामिनः ॥ ४२ ॥ कथं वा क्रियतामिति ॥ ४३ ॥ तथा ब्रुवाणं योगपुरुषा ब्रूयुः ॥ ४४ ॥ को ऽन्यो भवत्पुरोगादस्माद्राज्ञश्चातुर्वर्ण्यमर्हति पालयितुमिति ॥ ४५ ॥

कौटल्याचार्य कहते हैं, कि ऐसा करने से अमात्य आदि कुपित हो सकते हैं और यह धर्म रहित भी है तथा यह सम्भव ही है। यदि राजा की मृत्यु हो गई-तो जो उत्तम गुणों से युक्त राजकुमार हो, उसे ही राज्य पर स्थापित करना चाहिए। यदि अमात्य गुण सम्पन्न राजकुमार न हो, तो व्यसनी राजकुमार, राजकन्या या गर्भिणी देवी को बड़े २ अफसरों के सन्मुख करके उनसे कहे, यह आप लोगों के धरोहर रखी जाती है। तुम लोग इसके पिता और अपने कुल की ओर देखो। अब यह तुम्हारे स्वामी राजा का चिन्हमात्र शेष है। अब तुम लोग बताओ क्या किया जावे। इस प्रकार कहते हुए अमात्य से वे एकत्रित महान् व्यक्ति कथन करें, कि तुम्हारे सन्मुख इस राजकुमार के सिवा अन्य कौन है, जो चातुर्वर्ण्य प्रजा की रक्षा करने का अधिकार रखता हो ॥३७-४५॥

तथेत्यमात्यः कुमारं राजकन्यां गर्भिणीं देवीं वाधिकुर्वीत ॥ ४६ ॥ बन्धुसंबन्धिनां मित्रामित्रदूतानां च दर्शयेत् ॥ ४७ ॥ भक्तवेतनविशेषममात्यानामायुधीयानां च कारयेत् ॥ ४८ ॥ भूयश्चायं वृद्धः करिष्यतीति ब्रूयात् ॥४६॥ एवं दुर्गराष्ट्रमुख्यानाभाषेत ॥ ५० ॥ यथार्हं च मित्रामित्रपक्षम् ॥५१॥ विनयकर्मणि च कुमारस्य प्रयतेत ॥ ५२ ॥

अमात्य उनकी बात स्वीकार करके राजकुमार, राजकन्या या गर्भिणी राजमहिषी को राज्यसिंहासन का कार्य सौंप दे तथा उनके बन्धुबान्धव और अन्य मित्र शत्रु राजाओं के दूतों को भी उसही राजकुमार के दर्शन करवावे। अब अमात्य और सेना के सिपाहियों के कुछ भत्ते और वेतन में वृद्धि करदी जावे और कहा जावे, कि जब यह बड़ा होगा, तब और वेतन बढ़ाया जावेगा। इसी तरह दुर्ग और राष्ट्र के मुख्य २ सामन्तों से भी कहदे तथा जैसा उचित समझा जावे, वैसे ही मित्र या शत्रु पक्ष से कह दिया जावे। इसके अनन्तर राजकुमार के पढ़ाने में पर्याप्त प्रयत्न किया जावे ॥४६-५२॥

कन्यायां समानजातयादपत्यमुत्पाद्य वाभिषिञ्चेत् ॥ ५३ ॥ मातुश्चित्तक्षोभभयात्कुल्यमल्पसत्त्वं छात्रं च लक्षण्यमुपनिदध्यात् ॥ ५४ ॥ ऋतौ चैनां

रक्षेत् ॥ ५५ ॥ न चात्मार्थं कश्चिदुत्कृष्टमुपभोगं कारयेत् ॥ ५६ ॥ राजार्थं तु यानवाहनाभरणवस्त्रस्त्रीवेश्मपरिवापान्कारयेत् ॥ ५७ ॥

यौवनस्थं च याचेत् विश्रमं चित्तकारणात् ।
परित्यजेदतुष्यन्तं तुष्यन्तं चानुपालयेत् ॥ ५८ ॥

यदि राजकुमार न होतो विवाह द्वारा समान जाति के पुरुष से राजकन्या में पुत्र उत्पन्न कराकर उसे राज्य सिंहासन पर बैठा दे। माता के चित्त में क्षोभ न हो, इस से कुलीन, निर्बल, सौम्य वेद पाठी छात्र को उसके पास रख दे और ऋतुकाल में इसकी अच्छी तरह रक्षा की जावे। अमात्य अपने लिए कोई उत्तम उपभोग सामग्री न जुटावे। राजा के लिए-तो यान वाहन, आभरण, वस्त्र, स्त्री, मकान, और बढ़िया शय्यासन तैयार करावे। जब राजकुमार युवा हो जावे, तो अमात्य अपने विश्राम करने की इच्छा प्रकट करे, जिससे कुमार के चित्त का अभिप्राय प्रकट हो। यदि वह असन्तुष्ट होवे, तो उस छोड़ दे और सन्तुष्ट होवे-तो उसके साथ रहकर राज्य कार्य करता रहे ॥५३-५८॥

निवेद्य पुत्ररक्षार्थं गूढसारपरिग्रहान् ।
अरण्यं दीर्घसत्त्रं वा सेवेतारुच्यतां गतः ॥५९॥

यदि अमात्य को ही राज्यकार्य से अरुचि हो जावे, तो उस राजकुमार की रक्षा के निमित्त गूढ़सार पुरुषों को बताकर आप तपस्या के लिए वन में चला जावे या किसी लम्बे यज्ञ को आरम्भ करदे ॥५९॥

मुख्यैरवगृहीतं वा राजानं तत्प्रियाश्रितः ।
इतिहासपुराणाभ्यां बोधयेदर्थशास्त्रवित् ॥६०॥

जब राजा को मुख्य २ पुरुष सम्हाल लें-तो नीति शास्त्र का ज्ञाता, वृद्ध अमात्य, राजा के प्रिय पुरुषों के आश्रित रहकर इतिहास और पुराणों से राजकुमार को तत्व का ज्ञान करावे ॥६०॥

सिद्धव्यञ्जनरूपो वा योगमास्थाय पार्थिवम् ।
लभेत लब्ध्वा दूष्येषु दाण्डकर्मिकमाचरेत् ॥६१॥

यदि आवश्यकता होतो खैरख्वाह वृद्ध अमात्य, कपटी सिद्ध का रूप बनाकर योग धारण करके राजा को मोहित करके उसे वश में करे। जब राजा वश में हो जावे, तो फिर राजा से विरोध रखने वाले पुरुषों को दाण्डकर्मिक प्रकरण की विधि द्वारा सीधा करदे ॥६१॥

इतिश्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत योगवृत्त नामक अधिकरण में राज्य के सम्हालने
के वर्णन का छठा अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर योगवृत्त नामक
पांचवां अधिकरण भी समाप्त हो गया।

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे राज्यप्रतिसंधानम्
एकैश्वर्यं षष्ठो ऽध्यायः ॥६॥

आदितः षण्णवतिः ॥९६॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य
योगवृत्तं पञ्चमऽधिकरणं समाप्तम् ॥५॥



अथ मण्डल योनिः षष्ठमधिकरणम्

प्रथम अध्याय

९६वां प्रकरण

प्रकृतिसम्पदः

इस प्रकरण में राजा के मन्त्री आदि की प्रकृति के गुणों का वर्णन होगा।

स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः ॥१॥ तत्र स्वामिसंपत् ॥२॥ महाकुलीनो दैवबुद्धिः सत्त्वसंपन्नो वृद्धदर्शी धार्मिकः सत्यवागविसंवादकः कृतज्ञः स्थूललक्षो महोत्साहो ऽदीर्घसूत्रः शक्यसामन्तो दृढबुद्धिरक्षुद्रपरिषत्को विनयकाम इत्याभिगामिका गुणाः ॥३॥ शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिवेशाः प्रज्ञागुणाः ॥४॥ शौर्यममर्षः शीघ्रता दाक्ष्यं चोत्साहगुणाः ॥५॥

। स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग कोश, सेना, मित्र-ये सात प्रकृति कहाते हैं। इसमें सर्व प्रथम स्वामी के गुण बताये जाते हैं। उत्तम कुलोत्पन्न, वृद्धों की मानने वाला, धार्मिक, सत्यवादी, सत्य प्रतिज्ञाधारी, कृतज्ञ, ऊंचे उद्देश्यवाला, महोत्साही, कार्य में देर नहीं करने वाला, समर्थ सामन्तों से युक्त, दृढ़ बुद्धि, उत्तम २ मनुष्यों की सभा में बैठने वाला, शास्त्र मर्यादा का अभिलापी-ये राजा के गुण हैं, इन्हीं गुणों के कारण राजा के पास जाने की इच्छा होती हो, (सुनने की इच्छा, उचित बात या शास्त्र का सुन लेना, सुनकर ग्रहण करना, ग्रहण करके धारण कर लेना, धारण के अनन्तर विज्ञान, फिर तर्क वितर्क और तत्व का जानना ये बुद्धि के गुण हैं)। शौर्य, अमर्ष (क्रोध) शीघ्रकारीपन, चतुराई-ये चार राजा के चार उत्साह गुण हैं॥१-५॥

वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमतिबलवानुदग्रः स्ववग्रहः कृतशिल्पोऽव्यसने दण्डनाय्युपकारापकारयोर्दृष्टप्रतीकारी ह्रीमानापत्प्रकृत्योर्विनियोक्ता दीर्घदूरदर्शी देशकालपुरुषकारकार्यप्रधानः संधिविक्रमत्यागसंयमपणपरच्छिद्रविभागी

संवृतोऽदीनाभिहास्यजिह्मभ्रुकुटीक्षणः कामक्रोधलोभस्तम्भचापलोपतापपैशुन्यहीनः शक्लः स्मितोदग्राभिभाषी वृद्धोपदेशाचार इत्यात्मसपत् ॥६॥

अर्थ पूर्ण वचन बोलने में कुशल, प्रतिभा सम्पन्न, भाषण करने में समर्थ, स्मृति, बुद्धि और बल सम्पन्न, उन्नतचित्त, संयमी, हाथी घोड़े आदि के चलाने में कुशल, विपत्ति के समय शत्रु पर चढ़ाई करने वाला, उपकार और अपकार के बदला देने में समर्थ, लज्जाशील, आपत्ति और प्रकृति के ऊपर अधिकार रखने वाला, दीर्घदर्शी परिणामदर्शी, देश, काल, पुरुषार्थ के करने में प्रधान शक्ति युक्त, सन्धिविग्रह के समय का ज्ञाता, त्यागी, नियमानुकूल कोश पण बढ़ाने वाला, शत्रु छिद्र द्रष्टा, अपने आकार को छुपाने वाला, दीन पुरुषों की हंसी न करने वाला, टेढ़ी भ्रकुटी से न देखने वाला, काम क्रोध, लोभ, मोह, चपलता, उपताप, (डाह) चुगली आदि दुर्गुणों से रहित, प्रियभाषी, मुसकुराहट के साथ उत्तम बोलने में समर्थ, वृद्धों के आचार और उपदेश का ज्ञाता राजा श्रेष्ठ है-ये आत्मसंपत् कहाती है ॥६॥

अमात्यसंपदुक्ता पुरस्तात् ॥७॥ मध्ये चान्ते च स्थानवानात्मधारणः परधारणश्चापदि स्वारक्षः स्वाजीवः शत्रुद्वेषी शक्यसामन्तः पङ्कपाषाणोषर-विषमकण्टकश्रेणीव्यालमृगाटवीहीनः कान्तः सीताखनिद्रव्यहस्तिवनवान् गव्यः पौरुषेयो गुप्तगोचरः पशुमानदेवमातृको वारिस्थलपथाभ्यामुपेतः सारचित्र-बहुपण्यो दण्डकरसहः कर्मशीलकर्षको ऽबालिशस्वाम्यवरवर्णप्रायो भक्तशुचि-मनुष्य इति जनपदसंपत् ॥८॥

अमात्य संपत् (गुण) पूर्व में ही कहे जा चुके। अब जन पद संपत् बतायी जाती है। जनपद के मध्य और अन्त में दुर्ग होने चाहिए। जो आपत्काल में अपने और बाहर से आने वाले पुरुषों के भोजन के लिए पर्याप्त धान्य वाला हो। जो पर्वत और नदियां के कारण अपनी रक्षा में समर्थ हो। जिसमें थोड़े परिश्रम से अन्न उत्पन्न हो सके। जिसमें शत्रु के द्वेषी पुरुष हों। जिसमें शक्तिशाली सामन्तों का निवास हो। कीचड़, पत्थर, ऊषर, विषम स्थान, कण्टकश्रेणी, सिंह आदि जन्तु मृग और वन से रहित, नदी सरोवर से सुन्दर हल के जोतने योग्य भूमि, खान, वन की लकड़ी और हाथियों के वन से संयुक्त, जहां का जल वायु गौ और पुरुषों के उपयोगी, सुरक्षित गोचर भूमि से युक्त, पशुओं से भरे हुए, जल की वर्षा के बिना भी अन्न उत्पन्न करने वाला, जल स्थल के मार्ग से सुसम्पन्न सारयुक्त बहुत सी चित्र वस्तुओं से युक्त दण्ड केकर को सह लेने वाला, परिश्रमी किसानों से युक्त, बुद्धिमान् राजा से परिपालित, उत्तम वर्ण के लोगों से भरा हुआ, भक्त और

पवित्र आचार वाले, पुरुषों से व्याप्त जन पद उत्तम माना गया है। उपर्युक्त सामग्री जनपद संपद कहाती है ॥७-८॥

दुर्गसंपदुक्ता पुरस्तात् ॥९॥ धर्माधिगतः पूर्वैः स्वयं वा हेमरूप्यप्रायश्चित्रस्थूलरत्नहिरण्यो दीर्घामप्यापदमनायतिं सहेतेति कोशसंपत् ॥१०॥ पितृपैतामहो नित्यो वश्यस्तुष्टभृतपुत्रदारः प्रवासेष्वपि संपादितः सर्वत्राप्रतिहतो दुःखसहो बहुयुद्धः सर्वयुद्धप्रहरणविद्याविशारदः सहवृद्धिक्षयिकत्वादद्वैध्यः क्षत्रप्राय इति दण्डसंपत् ॥११॥

दुर्ग की सम्पत् भी पूर्व दुर्ग विधान प्रकरण में बता दी गई है। अब कोश सम्पत् बताते हैं पूर्वज या अपने आप धर्म से इकट्ठे किये हुए धन से सम्पन्न सुवर्ण, चांदी, से भरा हुआ, विचित्र और स्थूल अमूल्य रत्नों से युक्त, चिरकाल तक चलने वाली दुर्भिक्ष आदि आपत्ति और आमदनी के अभाव को सहने में समर्थ होना-कोश सम्पत् है। पिता और पितामह के आगे से चले आते हुए, सदा वश में रहने वाले सैनिक होने चाहिए। जिसके सेवक पुत्र और स्त्री वृत्ति से सन्तुष्ट हो, प्रवास (चढ़ाई) में जाने पर भी जिसके कुटुम्ब को धन दिया जाता रहा हो। सब जगह अप्रतिहत गति से बढ़ा चला जाता हो, जो दुःख सहने में समर्थ हो। जिसने बहुत से युद्ध कर रखे हों-जो सारी शस्त्र विद्या और युद्ध के ज्ञान में विशारद हो। राजा की वृद्धि और हानि में अपनी वृद्धि हानि मानने वाला हो ऐसे क्षत्रियों से भरी सेना होना ही दण्ड संपत् कहाती है ॥९-११॥

पितृपैतामहं नित्यं वश्यमद्वैध्यं महल्लघुसमुत्थमिति मित्रसंपत् ॥१२॥ अराजबीजी लुब्धः क्षुद्रपरिषत्को विरक्तप्रकृतिरन्यायवृत्तिरयुक्तो व्यसनी निरुत्साहो दैवप्रमाणो यत्किंचनकार्यगतिरननुबन्धः क्लीबो नित्यापकारी चेत्यमित्रसंपत् ॥१३॥ एवंभूतो हि शत्रुः सुखः समुच्छेत्तुं भवति ॥१४॥

पितृ पितामह क्रम से चले आता हुआ, नित्य वश में रहने वाला, किसी प्रकार का भेद नही मानने वाला, छोटे बड़े सारे कामों में सहायक मित्र होना-मित्र सम्पत् कहाती है। जो शुद्ध राजवंश का न हो, जो लोभी और क्षुद्र विचार वाले मनुष्यों की सभा में बैठने वाला हो, जिसके मन्त्री और प्रजा जिससे विरक्त रहते हों। जो अन्याय परायण, व्यसनी निरुत्साह, दैव को मानने वाला (आलसी) हो। जो कुछ होना होगा-वह हो जावेगा-ऐसे विचार रखने वाला, सहायता से हीन, वीरता रहित, नित्य अपकार में तत्पर हो वह शत्रु शीघ्र वश में होता है यह शत्रु संपत् कहाती है ॥१२-१४॥

अरिवर्जाः प्रकृतयः सप्तैताः स्वगुणोदयाः ।
उक्ताः प्रत्यङ्गभूतास्ताः प्रकृता राजसंपदः ॥१५॥

शत्रु को छोड़कर शेष सारी सात प्रकृति अपने २ गुणों के साथ गिना दी गई है। ये एक दूसरे की सहायक होकर सारी राज सम्पत्ति कहाती हैं ॥१५॥

संपादयत्यसंपन्नाः प्रकृतीरात्मवान्नृपः
विवृद्धाश्चानुरक्ताश्च प्रकृतीर्हन्त्यनात्मवान् ॥१६॥
ततः स दुष्टप्रकृतिश्चातुरन्तो ऽप्यनात्मवान् ।
हन्यते वा प्रकृतिभिर्याति वा द्विषतां वशम् ॥१७॥

आत्मगुण सम्पन्न राजा, अयोग्य प्रकृति (मन्त्री आदि) को भी योग्य बना लेता है और जो राजा स्वयं अयोग्य है, वह वृद्धिशाली और अनुरक्त प्रजा को भी अयोग्य बना या विरुद्ध बना देता है। आत्मोचित गुणों से रहित राजा की प्रकृति (प्रजा) बिगड़ जाती है, वह चारों समुद्र का अधिपति होकर भी प्रजा से मार दिया जाता है या वह शत्रु के वश में चला जाता है ॥१६-१७॥

आत्मवांस्त्वल्पदेशो ऽपि युक्तः प्रकृतिसंपदा ।
नयज्ञः पृथिवीं कृत्स्नां जयत्येव न हीयते ॥१८॥

इति मण्डलयोनौ षष्ठेऽधिकरणे प्रकृतिसंपदः प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥
आदितः सप्तनवातः ॥ ९७ ॥

आत्म गुण से युक्त, थोड़े देश से सम्पन्न राजा भी प्रकृति (मन्त्री) के गुणों से युक्त हो जाता है। यह नीतिमान् सारी पृथिवी को जीत लेता है और कभी पराजित नहीं होता ॥१८॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत मण्डलयोनि अधिकरण में मन्त्री आदि प्रकृति के गुणों के वर्णनों का पहिला अध्याय समाप्त हुआ।

दूसरा अध्याय

९७वां प्रकरण

शमव्यायामिकम्

इस प्रकरण में शान्ति और उद्योग की विधि का वर्णन होगा।

शमव्यायामौ योगक्षेमयोर्योनिः ॥ १ ॥ कर्मारम्भाणां योगाराधनो व्यायामः ॥ २ ॥ कर्मफलोपभोगानां क्षेमाराधनः शमः ॥ ३ ॥ शमव्यायाम-

योर्योनिः षाड्गुण्यम् ॥ ४ ॥ क्षयस्स्थानं वृद्धिरित्युदयास्तस्य ॥ ५ ॥ मानुषं नयापनयो दैवमयानयौ ॥ ६ ॥

शम और व्यायाम-योग और कल्याण के साधन हैं। किसी भी कार्य के आरम्भ कर देने पर उसको साङ्गोपाङ्ग पूर्ण करने के ढङ्ग को व्यायाम कहते हैं। सन्धि आदि कर्म और उनके फलों के उपभोगों के विघ्नों के नाशक ढंग को शम कहते हैं। शम और व्यायाम का कारण सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधी भाव हैं। इस षड्गुण्य के क्षय स्थान (स्थिति) और वृद्धि-ये तीन गुण हैं। इन फलों के प्राप्त करने वाले मानुष और दैव ये दो कर्म हैं। मानुष कर्म नय और अपनय तथा दैव कर्म अय और अनय है ॥ १-६ ॥

दैवमानुषं हि कर्म लोकं यापयति ॥७॥ अदृष्टकारितं दैवम् ॥८॥ तस्मिन्निष्टेन फलेन योगो ऽयः ॥९॥ अनिष्टेनानयः ॥१०॥ दृष्टकारितं मानुषम् ॥११॥ तस्मिन्योगक्षेमनिष्पत्तिर्नयः ॥१२॥ विपत्तिरपनयः ॥१३॥ तच्चिन्त्यम् ॥१४॥ अचिन्त्यं दैवमिति ॥१५॥ राजात्मद्रव्यप्रकृतिसंपन्नो नयस्याधिष्ठानं विजिगीषुः ॥१६॥ तस्य समन्ततो मण्डलीभूता भूम्यनन्तरा अरिप्रकृतिः ॥१७॥ तथैव भूम्येकान्तरा मित्रप्रकृतिः ॥१८॥ अरिसंपद्युक्तः सामन्तः शत्रुः ॥१९॥

ये दैव और मानुष कर्म ही लोक यात्रा के कराने वाले हैं। धर्म अधर्म (अदृष्ट) से जन्य कर्म दैव हैं। जब दैव के द्वारा कार्य की सिद्धि हो-तो वह कर्म अय कहाता है और जब अनिष्ट की प्राप्ति हो-तो अनय कहाता है। प्रभु, मन्त्र और उत्साह से होने वाले कर्म मानुष कहाते हैं। इसमें योग क्षेम के सिद्ध होने पर कर्म नय कहाता है और कार्य के भ्रष्ट हो जाने पर वही मानुष कर्म अपनय कहाता है। मानुष कर्म के विषय में विचार किया जा सकता है। दैव कर्म तो अविचारणीय विषय है। आत्म, द्रव्य, प्रकृति आदि की सम्पत्ति से सम्पन्न नय का स्थान राजा विजयी होता है। राजा के चारों ओर बसे हुए समीप की भूमि वाले राजा शत्रुभूत होते हैं। बीच में एक राज्य पड़ने पर जो राज्य हो-उसके राजा मित्र होते हैं। अरि सम्पत्ति से युक्त सामन्त शत्रु कहाता है ॥ ७-१९ ॥

व्यसनी यातव्य अनपाश्रयो दुर्बलाश्रयो वोच्छेदनीयः ॥२०॥ विपर्यये पीडनीयः कर्शनीयो वा ॥२१॥ इत्यरिविशेषाः ॥२२॥ तस्मान्मित्रमरिमित्रं मित्रमित्रमरिमित्रमित्रं चानन्तर्येण भूमीनां प्रसज्यते पुरस्तात् ॥२३॥ पश्चात्पार्ष्णिग्राह आक्रन्दः पार्ष्णिग्राहासार आक्रन्दासार इति ॥२४॥ भूम्यनन्तरः प्रकृत्यमित्रः तुल्याभिजन सहजः ॥२५॥ विरुद्धो विरोधयिता वा कृत्रिमः ॥२६॥

जो राजा विपत्ति में फंसा हो, उस पर चढ़ाई कर देनी चाहिए। जिसका कोई आश्रन न हो या दुर्वल आश्रय हो-उस शत्रु को उखाड़ देना सरल है। यदि शत्रु आश्रय हीन या दुर्वल आश्रय वाला न हो, तो उसे पीड़ित करके यथाशक्य दुर्वल वनादे। ये शत्रुओं के भेद हैं। इसी तरह मित्र, अरिमित्र, मित्र का मित्र-आदि राजा राज्य की भूमि के समीप होने से प्रथम इनसे ही भिड़न्त होती है। राजा के पीछे के चार राजा पार्ष्णिग्राह आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार, आक्रन्दासार कहाते हैं। अपनी भूमि के समीप का राजा स्वभाव से ही शत्र होता है। अपने ही वंश में उत्पन्न दाय भागी सहजशत्रु कहाते हैं। स्वयं विरुद्ध होनें या विरोध करने पर जो शत्रु हो-वह कृत्रिम शत्रु कहाता है ॥ २०-२६ ॥

भूम्येकान्तरं प्रकृतिमित्रं मातातितृसंवद्धं सहजम् ॥२७॥ धनजीवितहेतोराश्रितं कृत्रिममिति ॥२८॥ अरिविजिगीष्वोभू र्म्यनन्तरः संहतासंहतयोरनुग्रहसमर्थो निग्रहे चासंहतयोर्मध्यमः ॥ २६ ॥ अरिविजिगीषुमध्यानां बहिः प्रकृतिभ्यो बलवत्तरः संहतासंहतानामरिविजिगीषुमध्यमानामनुग्रहे समर्थो निग्रहे चासंहतानामुदासीनः ॥ ३० ॥ इति प्रकृतयः ॥ ३१ ॥

वीच के राज्य से आगे का राज्य प्रकृति मित्र होता है। माता और पिता से सम्वन्ध रखने वाला ममेरा फुफेरा भाई सहज मित्र होता है। धन और जीविका के ध्यान से आश्रय लेने वाला पुरुष कृत्रिम मित्र कहाता है। शत्र और विजयी राजा की भूमि के समीपवर्ती संगठित असंगठित शत्रु मित्र की सहायता देने में समथ और असंगठितके निग्रहमें समर्थ मध्यम राजा कहाता है। शत्र विजयी राजा और मध्यम राजा में इनकी प्रकृति (मन्त्री आदि) से वाहर तथा मध्यम से भी शक्तिशाली संहत और असंहत; शत्र विजयी और मध्यम राजा की सहायता में समर्थ, असंगठित [पृथक् २] के निग्रह में समर्थ राजा उदासीन होना है। इस प्रकार वारह राज प्रकृतियों का वर्णन किया गया॥ २७-३१ ॥

विजिगीषुर्मित्रं मित्रमित्रं वास्य प्रकृतयस्तिस्रः ॥ ३२ ॥ ताः पञ्चभिरमात्यजनपददुर्गकोशदण्डप्रकृतिभिरेकैकशः संयुक्ता मण्डलमष्टादशकं भवति ॥ ३३ ॥ अनेन मण्डलपृथक्त्वं व्याख्यातमरिमध्यमोदासीनानाम् ॥ ३४ ॥ एवं चतुर्मण्डलसङ्क्षेपः ॥ ३५ ॥ द्वादश राजप्रकृतयः ॥ ३६ ॥ षष्टिर्द्रव्यप्रकृतयः ॥ ३७ ॥ संक्षेपेण द्विसप्तति ॥ ३८ ॥

विजयाभिलाषी नृप उसके मित्र और मित्र के मित्र-ये तीन प्रकृति कहाती हैं। ये तीनों छः अमात्य जनपद, दुर्ग, कोश; दण्ड प्रकृतियों से युक्त होकर अठारह भेद से एक मंडल वन जाता है। इसी प्रकार अरिमंडल, मध्यम मंडल और उदासीन मंडल वन जाता

है। ये चारों मंडलों का संक्षेप में वर्णन किया गया। राजप्रकृति बारह, द्रव्य प्रकृति साठ-ये सब मिलकर बहत्तर प्रकृति कहाती हैं॥ ३२-३८॥

तासां यथास्वं संपदः शक्तिः सिद्धिश्च ॥ ३९ ॥ बलं शक्तिः ॥ ४० ॥ सुखं सिद्धिः ॥ ४१ ॥ शक्तिस्त्रिविधा ॥ ४२ ॥ ज्ञानबलं मन्त्रशक्तिः ॥ ४३ ॥ कोशदण्डबलं प्रभुशक्तिः ॥४४॥ विक्रमबलमुत्साहशक्तिः ॥४५॥ एवं सिद्धिस्त्रिविधैव ॥ ४६ ॥ मन्त्रशक्तिसाध्या मन्त्रसिद्धिः ॥ ४७ ॥ प्रभुशक्तिसाध्या प्रभुसिद्धिः ॥४८॥ उत्साहशक्तिसाध्या उत्साहसिद्धिरिति ॥४९॥ ताभिरभ्युच्चितो ज्यायान्भवति ॥ ५० ॥ अपचितो हीनः ॥ ५१ ॥ तुल्यशक्तिः समः ॥ ५२ ॥ तस्माच्छक्तिं सिद्धिं च घटेतात्मन्यावेशयितुम् ॥ ५३ ॥

इनकी सम्पदायें यथायोग्य पूर्व में कही जा चुकी। अब शक्ति और सिद्धि कहते हैं बल का नाम शक्ति है। सुख नाम सिद्धि है। शक्ति तीन प्रकार की है। ज्ञान बल मन्त्र,शक्ति कोश दण्ड बल, प्रभुशक्ति और विक्रमबल उत्साह शक्ति कहाती है। इसी प्रकार सिद्धि भी तीन तरह की है। मन्त्र शक्ति से सिद्ध होने वाली सिद्धि मन्त्र सिद्धि, प्रभुशक्ति से सिद्ध होने वाली प्रभुसिद्धि और उत्साह शक्ति से सिद्धि होने वाली उत्साह सिद्धि कहाती है। इन शक्तियों से युक्त राजा श्रेष्ठ होता है। इनसे हीन दुर्बल माना गया है। इनकी तुल्य शक्ति हो, तो वह साधारण शक्ति होता है। इससे राजा अपने भीतर शक्ति और सिद्धि को धारण करने का प्रयत्न करे॥३९-५३॥

साधारणा वा द्रव्यप्रकृतिष्वानन्तर्येण शौचवशेन वा दूष्यामित्राभ्यां वापक्रष्टुं यतेत ॥ ५४ ॥ यदि वा पश्येत् ॥ ५५ ॥ अमित्रो मे शक्तियुक्तो वाग्दण्डपारुष्यार्थदूषणैः प्रकृतीरुपहनिष्यति ॥५६॥ सिद्धियुक्तो वा मृगयाद्यूतमद्यस्त्रीभिः प्रमादं गमिष्यति ॥ ५७ ॥ स विरक्तप्रकृतिरुपक्षीणः प्रमत्तो वा साध्यो मे भविष्यति ॥ ५८ ॥ विग्रहाभियुक्तो वा सर्वसंदोहेनैकस्थो दुर्गस्थो वा स्थास्यति ॥ ५९ ॥ स संहितसैन्यो मित्रदुर्गवियुक्तः साध्यो मे भविष्यति ॥ ६० ॥ बलवान्वा राजा परतः शत्रुमुच्छेत्तुकामस्तमुच्छिद्यमानमुच्छिन्द्यादिति बलवता प्रार्थितस्य मे विपन्नकर्मारम्भस्य वा साहाय्यं दास्यति॥ ६१ ॥ मध्यमलिप्सायां चेति ॥ ६२ एवमानिषु कारणेष्वमित्रस्यापि शक्तिं सिद्धिं चेच्छेत् ॥ ६३ ॥

जो राजा स्वयं साधारण शक्ति प्राप्त कर सकता हो, वह द्रव्य प्रकृति सम्पत्ति की अपने शुद्ध आचारण द्वारा वृद्धि करे तथा दुष्ट मनुष्य और शत्रु की शक्तिके ह्रास का सर्वदा प्रयत्न करता रहे। यदि राजा यह देखे, कि मेरा शत्रु शक्ति युक्त है, वह वाणी की कठोरता या

दण्ड की कठोरता या धन से हमारी प्रकृति को नष्ट कर देगा या सिद्धि से युक्त होकर मृगया, द्यूत, मद्य और स्त्रियों से प्रमाद में डाल देगा; जब राजा के मन्त्री आदि विरक्त हो जावेंगे-तो राजा क्षीण बल होगा या प्रमाद में पड़ जावेगा-तब मेरा साध्य हो सकेगा, अथवा जब मैं चढ़ाई करूंगा-तो वह सारी सेना को लेकर एक स्थान या दुर्ग में स्थित होगा, उस समय मित्र के दुर्ग से या सहायता से वञ्चित यह शत्रु राजा, सेना सहित मेरे वश में हो जावेगा। यदि राजा यह समझे कि यह बलवान् राजा, दूसरे शत्रु का उच्छेद करेगा, उस उच्छेद करने योग्य का यह उच्छेद करले। जब यह बलवान् से लड़ लेगा-तो क्षीण बल होकर मुझ बिगड़े कार्य वाले के सहायता मांगने पर यह अवश्य सहायता देगा, क्योंकि वह स्वयं किसी मध्यम शक्ति से मिलने की इच्छा रखेगा। इस प्रकार के कारणों से शत्रु की शक्ति को वश में लाने की भी विजयाभिलाषी इच्छा करता रहे ॥५४-६३॥

नेमिमेकान्तरान् राज्ञः कृत्वा चानन्तरानरान् ।
नाभिमात्मानमायच्छेन्नेता प्रकृतिमण्डले ॥ ६४ ॥
मध्ये ऽभ्युपहितः शत्रुर्नेतुर्मित्रस्य चोभयोः ।
उच्छेद्यः पीडनीयो वा बलवानपि जायते ॥ ६५ ॥

इति मण्डलयोनौ षष्ठेऽधिकरणे शमव्यायामिकं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥
आदितो ऽष्टनवतिः ॥ ९८ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य मण्डलयोनिः
षष्ठमधिकरणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

विजयाभिलाषी राजा, राज मण्डल रूपी चक्र में एक राज्य से आगे रहने वाले मित्र राजाओं को नेमि, समीप के राजाओं को अरे और अपने आपको नाभि के तुल्य समझे। विजयी राजा और उसके मित्र के बीच में फंसा हुआ शत्रु, यदि बलवान् भी हो तो भी वह उखाड़ा या पीडित किया जा सकता है ॥६४-६५॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत मण्डलयोनि अधिकरण में शम और व्यायाम के वर्णन का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर मण्डलयोनि अधिकरण भी समाप्त हो गया।



षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणम्

प्रथम अध्याय

९८-९९ वां प्रकरण

षाड् गुण्यसमुद्देशः क्षयस्थान् वृद्धिनिश्चयः

इस प्रकरण में छः गुण और क्षय स्थान तथा वृद्धि के निश्चय का वर्णन होगा।

षाड्गुण्यस्य प्रकृतिमण्डलं योनिः ॥ १ ॥ संधिविग्रहासनयानसंश्रयद्वैधीभावाः षाड्गुण्यमित्याचार्याः ॥ २ ॥ द्वैगुण्यमिति वातव्याधिः ॥ ३ ॥ संधिविग्रहाभ्यां हि षाड्गुण्यं संपद्यत इति ॥ ४ ॥ षाड्गुण्यमेवैतदवस्थाभेदादिति कौटल्यः ॥ ५ ॥ तत्र पणबन्धः संधिः ॥ ६ ॥ अपकारो विग्रहः ॥ ७ ॥ उपेक्षणमासनम् ॥ ८ ॥ अभ्युच्चयो यानम् ॥ ९ ॥ परार्पणं संश्रयः ॥ १० ॥ संधिविग्रहोपादानं द्वैधीभाव इति षड्गुणाः ॥ ११ ॥

सन्धि आदि छः गुणों के स्वामी आदि सात प्रकृति और बारह राज मण्डल कारण हैं। सन्धि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय और द्वैधी भाव-ये छः गुण कहाते हैं। वातव्याधि (उद्धव) आचार्य का मत है, कि गुण दो ही है। सन्धि और विग्रह में शेष चार गुणों का अन्तर्भाव है। आसन आदि गुणों का सन्धि और विग्रह में ही अन्तर्भाव नहीं हो सकता, क्योंकि उनकी अवस्था (लक्षणों) में भेद है, इससे छः ही गुण मानने चाहिए। कुछ पण—(शर्तों) के आधार पर जो दो राजाओं का परस्पर मेल हो जाता है, इसे सन्धि कहते हैं। परस्पर एक दूसरे के अपकार में लग जाना, विग्रह होता है। किसी समय की प्रतीक्षा में चुपचाप बैठे रहना आसन कहाता है। चढ़ाई करने का नाम यान है। शत्रु या अन्य बलवान राजा को अपने आपको सौंप देना-संश्रय होता है। एक से सन्धि और दूसरे से विग्रह का उपयोग करना द्वैधी भाव है। ये छः गुण हैं ॥१-११॥

परस्माद्धीयमानः संदधीत ॥ १२ ॥ अभ्युचीयमानोतिगृह्णीयात् ॥१३॥ न मां परो नाहं परमुपहन्तुं शक्त इत्यासीत ॥ १४ ॥ गुणातिशययुक्तो यायात् ॥ १५ ॥ शक्तिहीनः संश्रयेत ॥१६॥ सहायसाध्ये कार्ये द्वैधीभावं गच्छेत् ॥१७॥ इति गुणावस्थापनम् ॥ १८ ॥

यदि शत्रु से अपने को दुर्बल समझे-तो सन्धि कर लेनी चाहिए। यदि वलवान् माने-तो विग्रह (युद्ध) छेड़ दे। न तो मुझे शत्र मार सकता है और न मैं ही शत्रु पर आक्रमण कर सकता हूं-यह सोच कर आसन का व्यवहार करे। अपने भीतर शक्ति देश, कालकी उचितता देखकर चढ़ाई करे। यदि राजा शक्तिहीन हो-तो अपने को शत्रु या अन्य राजा के अर्पण करदे। सहायता से साध्य कार्य में द्वैधीभाव का उपयोग करे। इस प्रकार गुणों के व्यवहार का समय माना गया है॥ १२-१८॥

तेषां यस्मिन्वा गुणे स्थितः पश्येत् ॥ १६ ॥ इहस्थः शक्ष्यामि दुर्गसेतु-कर्मवणिक्पथशून्यनिवेशखनिद्रव्यहस्तिवनकर्माण्यात्मनः प्रवर्तयितुं परस्य चैतानि कर्माण्युपहन्तुमिति तमातिष्ठेत् ॥ २० ॥ सा वृद्धिराशुतरा ॥ २१ ॥ मे वृद्धिर्भूयस्तरा वृद्ध्युदयतरा वा भविष्यति विपरीता परस्येति ज्ञात्वा परवृद्धिमुपेक्षेत ॥२२॥

इन गुणों में जिस किसी भी गुण में स्थित होने पर यदि राजा देखे, कि इस गुण के अवलम्बन से मैं दुर्ग, सेतुकर्म [नहर आदि] सड़क, नई वस्ती वसाने, खान, लकड़ी तथा हाथियों के वन की वृद्धि कर्म कर सकूंगा और शत्रु के इन कार्यों के हानि पहुंचाने में समर्थ होऊंगा-तो उसी गुण का आश्रय लेवे, इससे वहुत शीघ्र अत्यन्त वृद्धि होती है। यदि शत्र की वृद्धि हो रही हो-परन्तु उससे यह देखे, कि इसतरह तो मेरी वृद्धि अधिक और उत्कट होगी और आगे चलकर शत्रु की वृद्धि रुक जावेगी, तो शत्र वृद्धि की उपेक्षा कर देवे॥ १६-२२॥

तुल्यकालफलोदयायां वा वृद्धौ संधिमुपेयात् ॥ २३ ॥ यस्मिन्वा गुणे स्थितः स्वकर्मणामुपघातं पश्येन्नेतरस्य तस्मिन्न तिष्ठेत् ॥२४॥ एष क्षयः ॥२५॥ चिरतरेणाल्पतरं वृद्ध्युदयतरं वा क्षेष्ये विपरीतं परं इति ज्ञात्वा क्षयमुपेक्षेत ॥ २६ ॥ तुल्यकालफलोदये वा क्षये संधिमुपेयात् ॥ २७ ॥ यस्मिन्वा गुणे स्थितः स्वकर्मवृद्धिं क्षयं वा नाभिपश्येदेतत्स्थानम् ॥२८॥ ह्रस्वतरं वृद्ध्युदयतरं वा स्थास्यामि विपरीतं पर इति ज्ञात्वा स्थानमुपेक्षेत ॥ २६ ॥ तुल्यकालफलोदये वा स्थाने संधिमुपेयादित्याचार्याः ॥ ३० ॥

यदि अपने तुल्य शत्रु की भी भविष्य में वृद्धि होती दिखाई दे-तो उससे सन्धि कर ले। जिस गुण में स्थित होने पर अपनी हानि और शत्रु के कामों की उन्नति देखे-उस गुण का कदापि अवलम्बन न करे। इस प्रकार से गुण का अवलम्बन करना क्षय का हेतु होता है। मेरी हानि वहुत थोड़ी वहुत देर में होगी तथा मेरा यह क्षय वृद्धि का कराने वाला है एवं इस ढङ्ग से शत्रु की वहुत शीघ्र अधिक सर्वदा के लिए हानि होने की सम्भावना हो,

तो अपने क्षय की भी परवाह न करे। यदि शत्रु का क्षय और वृद्धि समान ही दिखाई दे-तो ऐसे शत्रु से सन्धि करले। जिस गुण में स्थित होने पर अपने स्वार्थ की वृद्धि या हानि कुछ भी न देखे-तो वहां आसन का अवलम्बन श्रेष्ठ है। मेरा इस प्रकार चुप बैठना बहुत थोड़े के लिए है और इससे परिणाम में उन्नति होगी तथा इससे शत्रु के उदय की सम्भावना नहीं है, तो ऐसे आसन की चिन्ता न करे। यदि आसन करने से भी कोई फल दिखाई न दे और शत्रु तथा अपनी एक सी वृद्धि दिखाई दे-तो राज सन्धि करले॥२३-३०॥

नैतद्विभाषितमिति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ यदि वा पश्येत् ॥ ३२ ॥ संधौ स्थितो महाफलैः स्वकर्मभिः परकर्माण्युपहनिष्यामि ॥ ३३ ॥ महाफलानि वा स्वकर्माण्युपभोक्ष्ये परकर्माणि वा ॥ ३४ ॥ संधिविश्वासेन वा योगोपनिषत्प्रणिधिभिः परकर्माण्युपहनिष्यामि ॥ ३५ ॥ सुखं वा सानुग्रहपरिहारसौकर्यं फललाभभूयस्त्वेन स्वकर्मणा परकर्मयोगावहजनमास्रावयिष्यामि ॥ ३६ ॥ बलिनातिमात्रेण वा संहितः परः स्वकर्मोपघातं प्राप्स्यति ॥ ३७ ॥ येन वा विगृहीतो मया संधत्ते तेनास्य विग्रहं दीर्घं करिष्यामि ॥३८॥ मया वा संहितस्य मद्द्वेषिणो जनपदं पीडयिष्यति ॥ ३९ ॥ परोपहतो वास्य जनपदो मामागमिष्यति ॥४०॥ ततः कर्मसु वृद्धिं प्राप्स्यामि ॥ ४१ ॥ विपन्नकर्मारम्भो वा विषमस्थः परः कर्मसु न मे विक्रमेत ॥ ४२ ॥ परतः प्रवृत्तकर्मारम्भो वा ताभ्यां संहितः कर्मसु वृद्धिं प्राप्स्यामि ॥४३॥ शत्रुप्रतिबद्धं वा शत्रुणा संधिं कृत्वा मण्डलं भेत्स्यामि ॥४४॥ भिन्नमवाप्स्यामि ॥ ४५ ॥ दण्डानुग्रहेण वा शत्रुमुपगृह्य मण्डललिप्सायां विद्वेषं ग्राहयिष्यामि ॥४६॥ विद्विष्टं तेनैव घातयिष्यामीति संधिना वृद्धिमातिष्ठेत् ॥४७॥

कौटल्याचार्य कहते हैं, कि यह कोई बहुत नीतिपूर्ण बात नहीं है। यदि राजा देखे, कि सन्धि करने पर मैं बड़े २ उत्तम कर्म करके शत्रु के कामों को हानि पहुंचा दूंगा या अपने उत्तम २ कर्मों के फलों के साथ शत्रु के महान् कर्मों का भी लाभ उठाऊंगा, सन्धि के धोखे में विष प्रयोग आदि के द्वारा शत्रु का नाश कर सकूंगा, तो सन्धि कर ले। इसी तरह शत्रु के उत्तम २ मनुष्यों को कृपा दिखाकर और उनके कष्टों के नाश का वचन देकर तथा उनको अधिक फल या लाभ दिखाकर अपनी कार्य कुशलता से अपनी ओर खींचलाऊंगा। अत्यन्त बलवान् के साथ सन्धि करने से शत्रु अपने कामों को हानि पहुंचा लेगा या जिससे विग्रह करने के लिए मुझसे मिलना चाहता है, उससे ही लम्बा युद्ध करवा दूंगा; यदि इसकी मुझसे सन्धि होगी-तो यह मेरे शत्रु के देश को जा पीड़ित करेगा। शत्रु से क्षीण बल हो जाने पर इसका यह देश मेरे अधिकार में हो सकेगा। इसके

बाद में अपने दुर्ग आदि की उन्नति कर सकूंगा। जब शत्रु, विपत्ति आने के काम करने से विपद्ग्रस्त हो जावेगा-तो यह मेरे राष्ट्र पर आक्रमण नहीं कर सकेगा, यदि दूसरे की सहायता से उसने कार्य आरम्भ किया और उन दोनों से सन्धि कर लेने पर मेरे कामों में भी वृद्धि होगी। शत्रु से सन्धि करने पर शत्रु के मंडल के तोड़ने फोड़ने में समर्थ हो सकूंगा और जब उनमें फूट पड़ जावेगी-तो मैं शत्रु को वश में कर लूंगा। मैं इस समय सेना की सहायता देकर जब शत्रु का उपकार करदूंगा-तो यह शत्रु राजा यदि अपने मंडल से मिलना चाहेगा-तो नहीं मिलने दूंगा और जब इनका परस्पर द्वेष हो जावेगा-तो इसको उनसे ही मरवा दूंगा। जब राजा इस प्रकार की परिस्थिति देखे-तो शत्रु से सन्धि करे ॥ ३१-४७॥

यदि वा पश्येत् ॥ ४८ ॥ आयुधीयप्रायः श्रेणीप्रायो वा मे जनपदः शैलवननदीदुर्गैकद्वारारक्षो वा शक्ष्यति पराभियोगं प्रतिहन्तुमिति ॥ ४९ ॥ विषयान्ते दुर्गमविषह्यमपाश्रितो वा शक्ष्यामि परकर्माण्युपहन्तुमिति ॥ ५० ॥ व्यसनपीडोपहतोत्साहो वा परः संप्राप्तकर्मोपघातकाल इति ॥ ५१ ॥ विगृहीतस्यान्यतो वा शक्ष्यामि जनपदमपवाहयितुमिति विग्रहे स्थितो वृद्धिमातिष्ठेत् ॥५२

यदि विजयाकांक्षी राजा देखें कि मेरे देश में प्रायः लोग शस्त्र चलाने में समर्थ और संगठित हैं तथा पर्वत, वन, नदी, दुर्ग से मेरा देश भरा पड़ा है। इसमें घुसने का एक ही द्वार है। यह शत्रु के आक्रमण का उत्तर दे देगा-मैं अपने देश की सीमा के दृढ़ दुर्ग में स्थित होकर शत्रु के कार्यों का नाश कर सकता हूं। व्यसन और कष्टों से शत्रु का सारा उत्साह नष्ट हो रहा है, इस समय उसको वश में किया जा सकता है। यदि युद्ध हो गया-तो मैं शत्रु के कुछ देश दवा लूंगा, तो ऐसी स्थिति में राजा को युद्ध छेड़ देना चाहिए ॥४८-५२॥

यदि वा मन्येत ॥ ५३ ॥ न मे शक्तः परः कर्माण्युपहन्तुम् ॥ ५४ ॥ नाहं तस्य कर्मोपघाती वा ॥ ५५ ॥ व्यसनमस्य श्ववराहयोरिव कलहे वा ॥५६॥ स्वकर्मानुष्ठानपरो वा वर्धिष्य इत्यासनेन वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ५७ ॥

यदि राजा के विचार में यह बात आवे, कि शत्रु इतना समर्थ नहीं है, कि मेरे कामों को हानि पहुंचा सके और न मैं उसके कामों को विगाड़ सकता हूं। यद्यपि शत्रु राजा पर व्यसन है, परन्तु कलह में कुत्ते और शूकर की लड़ाई के तुल्य कोई फल नहीं निकलेगा। यदि मैं अपना काम करता रहा-तो बढ़ जाऊंगा। इस परिस्थिति में राजा चुपचाप बैठा हुआ आसन का अवलम्बन करे ॥५३-५७॥

यदि वा मन्येत ॥ ५८ ॥ यानसाध्यः कर्मोपघातः शत्रोः प्रतिविहितस्व-कर्मारक्षश्चास्मीति यानेन वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ५६ ॥

शत्रु के कर्मों का नाश चढ़ाई से ही हो सकता है। मैंने अपने दुर्ग आदि की रक्षा का प्रबन्ध कर दिया है। यदि राजा यह समझे-तो चढ़ाई के द्वारा अपनी उन्नति कर सकता है ॥५८-५६॥

यदि वा मन्येत ॥ ६० ॥ नास्मि शक्तः परकर्माण्युपहन्तुं स्वकर्मोपघातं वा त्रातुमिति बलवन्तमाश्रितः स्वकर्मानुष्ठानेन क्षयात्स्थानं स्थानाद्वृद्धिं चाकाङ्क्षेत ॥ ६१ ॥

मैं शत्रु के कामों में हानि नहीं पहुंचा सकता और न अपने कामों की ही रक्षा कर सकता हूं। इस दशा में बलवान् का आश्रय लेवे। फिर अपने काम करता हुआ इस क्षणिक क्षय से स्थान की प्राप्ति करे और उसके अनन्तर अपनी वृद्धि कर ले ॥६०-६१॥

यदि वा मन्येत ॥ ६२ ॥ संधिनैकतः स्वकर्माणि प्रवर्तयिष्यामि विग्रहेणैकतः परकर्माण्युपहनिष्यामीति द्वैधिभावने वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ६३ ॥

एक के साथ सन्धि और दूसरे के साथ विग्रह करके मैं अपने कार्यों को बना सकूंगा और शत्रु के कार्यों को नष्ट कर दूंगा-तो राजा द्वैधी भाव का अवलम्बन करके अपनी वृद्धि करे ॥६२-६३॥

एवं षड्भिर्गुणैरेतैः स्थितः प्रकृतिमण्डले ।
पर्येषेत क्षयात्स्थान स्थानाद्वृद्धिं च कर्मसु ॥ ६४ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे षाड्गुण्यसमुद्देशः क्षयस्थानवृद्धिनिश्चयश्च प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ आदितो नवनवतिः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार राजा अमात्य आदि प्रकृति मण्डल में इन छः गुणों से व्यवहार करता हुआ, स्थित होकर क्षय से अपने स्थान और स्थान से फिर अपनी ज्यों की त्यों उन्नति की अभिलाषा करे ॥६४॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य नामक अधिकरण में क्षय, स्थान और वृद्धि के निर्णय का पहिला अध्याय समाप्त हुआ।



दूसरा अध्याय

१००वां प्रकरण

संश्रय वृत्ति

इस प्रकरण में दो गुणों के आश्रय के समय की उपस्थिति में कौन से गुण का अवलम्बन करे-इस विषय का निर्णय किया जावेगा।

संधिविग्रहयोस्तुल्यायां वृद्धौ संधिमुपेयात् ॥ विग्रहे हि क्षयव्ययप्रवासप्रत्यवाया भवन्ति ॥ २ ॥ तेनासनयानयोरासनं व्याख्यातम् ॥ ३ ॥ द्वैधीभावसंश्रययोर्द्वैधीभावं गच्छेत् ॥ ४ ॥ द्वैधीभूतो हि स्वकर्मप्रधान आत्मन एवोपकरोति ॥ ५ ॥ संश्रितस्तु परस्योपकरोति नात्मनः ॥ ६ ॥

यदि सन्धि और विग्रह दोनों में एक सा लाभ दिखाई दे-तो सन्धि का ही आश्रय करे. क्योंकि विग्रह में तो जननाश, धन व्यय, प्रवास और कष्टों का सामना करना पड़ता है। इसी तरह आसन और यान के सम्बन्ध में आसन का अवलम्बन समझ लेना चाहिए। द्वैधीभाव और संश्रय में द्वैधीभाव उत्तम है, क्योंकि द्वैधीभाव में अपना काम प्रधान होता है, इससे राजा अपना उपकार कर लेता है, संश्रय में तो दूसरे का काम बनता है, अपना नहीं बन सकता है ॥१-६॥

यद्बलः सामन्तस्तद्विशिष्टबलमाश्रयेत ॥ ७ ॥ तद्विशिष्टबलाभावे तमेवाश्रितः कोशदण्डभूमीनामन्यतमेनास्योपकर्तुमदृष्टः प्रयतेत ॥ ८ ॥ महादोषो हि विशिष्टबलसमागमो राज्ञामन्यत्रारिविगृहीतात् ॥ ९ ॥ अशक्यो दण्डोपनतवद्वर्तेत ॥ १० ॥ यदा चास्य प्राणहरं व्याधिमन्तःकोपं शत्रुवृद्धिं मित्रव्यसनमुपस्थितं वा तन्निमित्तमात्मनश्च वृद्धिं पश्येत्तदा संभाव्य व्याधिधर्मकार्यापदेशेनापयायात् ॥ ११ ॥ स्वविषयस्थो वा नोपगच्छेत् ॥१२॥ आसन्नो वास्य च्छिद्रेषु प्रहरेत् ॥ १३ ॥

यदि संश्रय करना हो-तो शत्रु जितना बलशाली हो-उससे भी बलवान् राजा का संश्रय स्वीकार करे। यदि शत्रु राजा से कोई बलवान् राजा न हो, तो शत्रु का ही आश्रय ले लेवे। कोश, सेना या भूमि में से किसी वस्तु को देकर उसे संतुष्ट करे-परन्तु इसके सन्मुख न जावे। अधिक बलशाली राजा के साथ मिलने पर कभी बड़ी बुराई उत्पन्न हो जाती है। यदि बलवान् शत्रु का अन्य शत्रु से विग्रह हो रहा हो-तो मिलने में बुराई उत्पन्न नहीं हो सकती है। जब राजा शक्ति हीन हो, तो दण्डोपनत व्यवहार की भांति

नम्रता से दिन निकाले। जब शत्रु राजा के कोई प्राणनाशक व्याधि पुरोहित आदि अन्त: प्रकृति का कोप, शत्रु की वृद्धि, मित्र का व्यसन उपस्थित हो और उससे राजा यदि अपनी वृद्धि समझे, तो किसी सम्भव व्याधि या धर्म कार्य का बहाना करके वहां से खसक आवे। यदि राजा अपने देश में पहिले से ही आ चुका हो-तो बुलाने पर भी शत्रु देश में न जावे। यदि पास ही रहना पड़ जावे, तो मौके पर उस पर आघात कर दे ॥७-१३॥

'बलीयसोर्वा मध्यगतस्त्राणसमर्थमाश्रयेत ॥ १४ ॥ यस्य वान्तर्धिः स्यात् ॥ १५ ॥ उभौ वा कपालसंश्रयस्तिष्ठेत् ॥ १६ ॥ मूलहरमितरस्येतरमपदिशेत् ॥१७॥ भेदमुभयोर्वा परस्परापदेशं प्रयुञ्जीत॥१८॥ भिन्नयोरुपांशुदण्डम्॥ १९ ॥

दो बलवान् राजाओं की खटकने पर जो अपनी रक्षा में समर्थ दिखाई दे. विजयेच्छुक राजा उसका ही आश्रय लेवे अथवा जो अपने देश या सम्बन्ध में समीप हो-उसका आश्रय लेवे। यदि दोनों का ही आश्रय लेना पड़े-तो दोनों से इधर उधर की बातें बनाकर कपाल संश्रय करले। दो कपालों से जैसे घड़ा बनता है, ऐसे दोनों से अपना काम निकालना कपाल संश्रय कहाता है। जब इन राजाओं से मिले, तो एक दूसरे के राज्य का अपहरण करना चहता है-ऐसा सुझावे। इस प्रकार परस्पर की झूंठी सच्ची लगाकर छल से दोनों में झगड़ा करावे। यदि उनमें फूट पड़ जावे-तो विष प्रयोग आदि से उनको मरवा दे ॥१४-१६॥

पार्श्वस्थो वा बलस्थयोरासन्नभयात्प्रतिकुर्वीत ॥ २० ॥ दुर्गापाश्रयो वा द्वैधीभूतस्तिष्ठेत् ॥ २१ ॥ संधिविग्रहक्रमहेतुभिर्वा चेष्टेत ॥ २२ ॥ दूष्यमित्राटविकानुभयोरुपगृह्णीयात् ॥ २३ ॥ एतयोरन्यतरं गच्छंस्तैरेवान्यतरस्य व्यसने प्रहरेत् ॥ २४ ॥ द्वाभ्यामुपहितो वा मण्डलापाश्रयस्तिष्ठेत् ॥ २५ ॥ मध्यममुदासीनं वा संश्रयेत ॥ २६ ॥ तेन सहैकमुपगृह्येतरमुच्छिन्द्यादुभौ वा ॥ २७ ॥ द्वाभ्यामुच्छिन्नो वा मध्यमोदासीनयोस्तत्पक्षीयाणां वा राज्ञां न्यायवृत्तिमाश्रयेत ॥२८॥

इन दोनों बलवान् राजाओं में जिससे भय की आशङ्का निकट आ रही है, उसके पास रहकर अपने बचाव का उपाय करे या अपने दुर्ग में स्थित होकर एक से सन्धि और दूसरे से विग्रह छेड़ दे अथवा सन्धि और विग्रह के उपयोगी जैसा समय आवे वैसा कर ले। इन दोनों में जिसका मित्र बिगड़ रहा हो-उस मित्र से या वनचर वीरों से मेल कर ले, फिर इनमें से एक पर चढ़ाई करके इन दूष्य मित्र या वनचरों से उनपर कठिनाई में आघात करवावे। यदि दोनों राजा इस पर चढ़ाई करदें, तो वह मण्डल बनाकर दुर्ग में स्थित रहे या मध्यम तथा उदासीन राजा का आश्रय लेवे। उनके साथ एक से मिलकर

दूसरे का नाश करदे या दोनों को नष्ट करे। यदि इन दोनों ने राजा को अधिक पीड़ित कर दिया-तो मध्यम और उदासीन तथा उनके पक्ष के अन्य राजा का न्यायानुकूल आश्रय लेवे ॥२०-२८॥

तुल्यानां वा यस्य प्रकृतयः सुख्येयुरेनं यत्रस्थो वा शक्नुयादात्मानमुद्धर्तुं यत्र पूर्वपुरुषोचिता गतिरासन्नः संबन्धो वा मित्राणि भूयांसीति शक्तिमन्ति वा भवेयुः ॥ २९ ॥

यदि कई राजा सहायता देने को तय्यार हों-तो जिसके मन्त्री आदि प्रकृति सुखकारी प्रतीत हों, जिसके साथ रहकर अपना उद्धार हो सकता हो-जिनके साथ से अपने पूर्वजों की प्रतिष्ठा रहतो हो अथवा जिनसे कुछ समीप का सम्बन्ध हो और जिसके वहुत से शक्तिशाली मित्र हों-उसी राजा का आश्रय लेवे ॥२९॥

प्रियो यस्य भवेद्यो वा प्रियो ऽस्य कतरस्तयोः ॥ ।
प्रियो यस्य स तं गच्छेदित्याश्रयगतिः परा ॥३० ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे संश्रयवृत्तिः द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
आदितः शततमः ॥१००॥

जो जिसका प्रिय होता है, उनमें दूसरा उसका अप्रिय कैसे हो सकता है, इसलिए जो जिसका प्रिय हो, राजा उसी का आश्रय ग्रहण करे ॥३०॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत षड्गुण्य अधिकरण में संश्रयवृत्ति के वर्णन का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ।



तीसरा अध्याय

१०१-१०२वां प्रकरण

समहीनज्यायसां गुणाभिनिवेशः हीनसंधयश्च ।

इस प्रकरण में सम, हीन और अधिक के गुणों की स्थापना और हीन के साथ सन्धि का वर्णन किया जावेगा ।

विजिगीषुः शक्त्यपेक्षः षाड्गुण्यमुपयुञ्जीत ॥ १ ॥ समज्यायोभ्यां संधीयेत ॥ २ ॥ हीनेन विगृह्णीयात् ॥ ३ ॥ विगृहीतो हि ज्यायसा हस्तिना पादयुद्धमिवाभ्युपैति ॥ ४ ॥ समेन चामं पात्रमामेनाहतमिवोभयतः क्षयं करोति ॥ ५ ॥ कुम्भेनेवाश्मा हीनेनैकान्तसिद्धिमवाप्नोति ॥ ६ ॥

विजयेच्छुक राजा अपनी शक्ति को देखकर सन्धि आदि छःओं गुणों का प्रयोग करे , जो अपने बराबर की शक्ति रखने वाला या अधिक शक्तिशाली हो-उससे सन्धि करे और शक्तिहीन के साथ युद्ध छेड़ दे। बलवान् के साथ युद्ध छेड़ने में हाथी के साथ पैदल का युद्ध समझना चाहिए। सम के साथ युद्ध होने पर कच्चे घड़े से कच्चे घड़े के टकराने के तुल्य दोनों का नाश होता है। पत्थर से घड़े के भिड़ने की भांति हीन बल के साथ युद्ध होने पर अवश्य सिद्धि होती है ॥ १-६ ॥

ज्यायांश्चेन्न संधिमिच्छेद्दण्डोपनतवृत्तमावलीयसं वा योगमातिष्ठेत् ॥ ७ ॥ समश्चेन्न संधिमिच्छेद्यावन्मात्रमपकुर्यात्तावन्मात्रमस्य प्रत्यपकुर्यात् ॥८॥ तेजो हि संधानकारणम् ॥९॥ नातप्तं लोहं लोहेन संधत्त इति ॥१०॥ हीनश्चेत्सर्वत्रानुप्रणतस्तिष्ठेत्संधिमुपेयात् ॥११॥ आरण्योऽग्निरिव हि दुःखामर्षजं तेजो विक्रमयति मण्डलस्य चानुग्राह्यो भवति ॥१२॥

यदि बलवान् सन्धि न करे-तो उससे दंडोपनत और आवलीयस प्रकरणोक्त नियमों का व्यवहार करे। यदि बराबर का राजा सन्धि न करे-तो यह जितना नुकसान पहुंचावे, उतनी ही उसकी भी हानि करदे। सन्धि तो तेज के अधीन है। यदि लोहा तप्त नहीं होगा, तो दूसरे लोहे से नहीं मुड़ेगा। यदि हीन बल वाला राजा सब कामों में झुका ही रहे, तो उससे सन्धि कर ले। वन की आग की भांति दुःख और क्रोध से तेज चमक उठता है, इस समय हीन बल वाला भी कभी २ राजमंडल का अनुग्रह पात्र बनकर हानि पहुंचा देता है ॥ ७-१२ ॥

संहितश्चेत्प्रकृतयो लुब्धक्षीणापचारिताः प्रत्यादानभयाद्वा नोपगच्छन्तीति पश्येद्धीनोऽपि विगृह्णीयात् ॥ १३ ॥ विगृहीतश्चेत्प्रकृतयो लुब्धक्षीणापचारिता विग्रहोद्विग्ना वा मां नोपगच्छन्तीति पश्येज्ज्यायानपि संधीयेत् ॥१४॥ विग्रहोद्वेगं वा शमयेत् ॥ १५ ॥ व्यसनयौगपद्येऽपि गुरुव्यसनोऽस्मि लघुव्यसनः परः सुखेन प्रतिकृत्य व्यसनमात्मनोऽभियुञ्ज्यादिति पश्येज्ज्यायानपि संधीयेत् ॥ १६ ॥

सन्धि कर लेने पर भी शत्रु के मन्त्री आदि लोभ, नीचता आदि दोषों के कारण अपने बदले लेने के भय से मुझसे मेल नहीं करते हैं-यदि बलहीन राजा यह देखे-तो युद्ध कर डाले। जब युद्ध छिड़ जावे और फिर भी मन्त्री आदि लोभ,नीचता आदि के वशीभूत हुए या विग्रह से उद्विग्न हुए मुझसे नहीं मिलते-यदि राजा यह देखे-तो बलवान् होने पर भी राजा सन्धि करले अथवा विग्रह उत्पन्न उद्वेग को शान्त कर दे। यद्यपि अपने ऊपर

और शत्रु के ऊपर एक साथ किसी विपत्ति ने आक्रमण किया, परन्तु नीतिमान् राजा जब यह समझे, कि मुझपर भारी व्यसन है, शत्रु पर इस विपत्ति का थोड़ा प्रभाव पड़ेगा। शत्रु सुखपूर्वक अपनी विपत्ति का प्रतिकार करके मुझसे युद्ध छेड़ देगा-तो ऐसी दशा में शक्तिशाली होता हुआ भी छोटे से सन्धि कर ले॥ १३-१६॥

संधिविग्रहयोश्चेत्परकर्शनमात्मोपचयं वा नाभिपश्येज्ज्यायानप्यासीत ॥ १७ ॥ परव्यसनमप्रतिकार्यं चेत्पश्येद्धीनोऽप्यभियायात् ॥ १८ ॥ अप्रतिकार्यासन्नव्यसनो वा ज्यायानपि संश्रयेत ॥ १९ ॥ संधिनैकतो विग्रहेणैकतश्चेत्कार्यसिद्धिं पश्येज्ज्यायानपि द्वैधीभूतस्तिष्ठेदिति ॥ २० ॥ एवं समस्य षाड्गुण्योपयोगः ॥ २१ ॥ तत्र तु प्रतिविशेषः ॥ २२ ॥

सन्धि या विग्रह करने पर भी शत्रु की कोई हानि और अपनी कोई वृद्धि नहीं दिखाई दे, तो शक्तिशाली राजा चुपचाप बैठा आसन का संश्रयण करे। यदि शत्रु पर कोई ऐसा व्यसन आ पड़ा है, जिसका वह प्रतीकार नहीं कर सकता, तो थोड़ा शक्तिशाली राजा भी बड़े राजा पर चढ़ाई कर दे। यदि अपने ऊपर कोई ऐसा व्यसन समीप में ही आता दिखाई दे, कि जिसका उपाय नहीं हो सकेगा, तो बलवान् होकर भी किसी अन्य का आश्रय ग्रहण करे। यदि एक से सन्धि और दूसरे से विग्रह करने पर अपने कार्य की सिद्धि देखे-तो शक्तिशाली राजा द्वैधी भाव का आश्रय ग्रहण करे। इसी तरह समान शक्तिशाली के साथ भी इन छःओं गुणों का व्यवहार किया जा सकता है॥ १७-२२॥

प्रवृत्तचक्रेणाक्रान्तो राज्ञा बलवताबलः ।
संधिनोपनमेत्तूर्णं कोशदण्डात्मभूमिभिः ॥ २३ ॥

यदि चलते हुए चक्र वाले बलवान् राजा ने हीन बल पर आक्रमण कर दिया, तो हीन बल राजा कोश, सेना, भूमि और अपने आपको भी यथायोग्य समर्पित करके सन्धि कर ले॥ २३॥

स्वयं संख्यातदण्डेन दण्डस्य विभवेन वा ।
उपस्थातव्यमित्येष संधिरात्मामिषो मतः ॥ २४ ॥

सन्धि के नियमों के अनुसार नियत सेना और दंड के धन को लेकर राजा जब स्वयं शत्रु राजा की सेवा में उपस्थित हो, तो यह आत्मामिष सन्धि कहाती है॥२४॥

सेनापतिकुमाराभ्यामुपस्थातव्यमित्ययम् ।
पुरुषान्तरसंधिः स्यान्नात्मनेत्यात्मरक्षणः ॥ २५ ॥

यदि राजा अपने राजकुमार या सेनापति को नियत सेना और धन लेकर शत्रु के दरबार में भेजे, तो यह पुरुषान्तर सन्धि कहाती है। इसमें राजा की आत्म रक्षा हो जाती है, इससे इसे आत्मरक्षण सन्धि भी कह देते हैं॥ २५॥

एकेनान्यत्र यातव्यं स्वयं दण्डेन वेत्ययम्।
अदृष्टपुरुषः संधिर्दण्डमुख्यात्मरक्षणः॥ २६॥

जिस सन्धि में स्वयं अकेला राजा या उसकी सेना शत्रु के कार्य करने के निमित्त शत्रु के देश से भिन्न किसी अन्य देश में जावे-तो यह दंड मुख्यात्मरक्षण सन्धि कहाती है, क्योंकि इसमें राजा या उसके मुख्य सेनापति को भी नहीं जाना पड़ा॥ २६॥

मुख्यस्त्रीबन्धनं कुर्यात्पूर्वयोः पश्चिमे त्वरिम्।
साधयेद्गूढमित्येते दण्डोपनतसंधयः॥ २७॥

यदि शक्तिशाली राजा ने पूर्व की दो संधि आत्माभिष और आत्मरक्षण के स्थान में किसी मुख्य राज दरबारी की कन्या आदि लेना स्वीकार किया या तीसरी अदृष्ट पुरुष सन्धि के अनुसार गुपचुप धन ले लिया, तो यह दंडोपनत सन्धि कहावेगी॥ २७॥

कोशदानेन शेषाणां प्रकृतीनां विमोक्षणम्।
परिक्रयो भवेत्संधिः स एव च यथासुखम्॥ २८॥
स्कन्धोपनेयो बहुधा ज्ञेयः संधिरुपग्रहः।
निरुद्धो देशकालाभ्यां अत्ययः स्यादपग्रहः॥ २९॥

यदि युद्ध में पकड़े हुए मन्त्री आदि किसी मुख्य व्यक्ति का धन देकर मोक्ष किया जावे, तो उसे परिक्रय सन्धि कहते हैं। यदि इसी सन्धि में कई बार में थोड़ा २ करके किश्त वार बहुत धन दिया जावे, तो यह उपग्राह सन्धि होती है। किसी भी देश काल के अनुसार यह देने योग्य धन कुछ दिन के अनन्तर चुका देने की प्रतिज्ञा करके जो सन्धि की जाती है, यह अपग्रह सन्धि होती है॥ २८-२९॥

विषह्यदानादायत्यां क्षमः स्त्रीबन्धनादपि।
सुवर्णसंधिर्विश्वासादेकीभावगतो भवेत्॥ ३०॥

ठहरे हुए धन का नियत समय में दान और कन्या आदि के दान से भविष्य में सुखकारी सन्धि सुवर्ण सन्धि कहाती है, क्योंकि इसमें विश्वास उत्पन्न होकर दोनों में एकता स्थापित हो जाती है॥ ३०॥

विपरीतः कपालः स्यादत्यादानाभिभाषितः।
पूर्वयोः प्रणयेत्कुप्यं हस्त्यश्वं वागुरान्वितम्॥ ३१॥

वहुत अधिक हाथी आदि मांगने पर जो सन्धि हों-वह ऊपर की सन्धि के विरुद्ध है और कपाल सन्धि कहाती है। इससे पूर्व की दो सन्धियों में जो सन्धि का द्रव्य देना है, तावां आदि की वस्तु, हाथी और अश्व उनके परिच्छद के साथ दे देवे या देर में मार देने योग्य विष खिलाकर हाथी आदि देवे ॥३१॥

तृतीये प्रणयेदर्धं कथयन्कर्मणां क्षयम्।
तिष्ठेच्चतुर्थ इत्येते कोशोपनतसंधयः॥ ३२ ॥

तीसरी सन्धि में आधा सा धन देवे और कहदे, कि अभी हमारे जमा या कारखानों से धन नहीं आया है। चौथी सन्धि में जहां तक हो वहाना वनाकर ठहरा रहे, दे कुछ भी नहीं-ये चारों सन्धि धन देने के कारण कोशोपनत सन्धि कहाती है ॥३२॥

भूम्येकदेशत्यागेन शेषप्रकृतिरक्षणम्।
आदिष्टसंधिस्तत्रेष्टो गूढस्तेनोपघातिनः॥ ३३ ॥

भूमि का एक भाग देकर शेष प्रजा और देश की जो रक्षा करनी है, वह आदिष्ट सन्धि कहाती है। इसमें अपने गूढ़ पुरुष, उस शत्रु के नाश के लिए रखे जा सकते हैं ॥३३॥

भूमीनामात्तसाराणां मूलवर्जं प्रणामनम्।
उच्छिन्नसंधिस्तत्रेष्टः परव्यसनकाङ्क्षिणः॥ ३४ ॥

सार भाग अपहरण करके मूल वस्तु उत्पन्न होने वाली भूमि से भिन्न भूमि का प्रदान करना—उच्छिन्न सन्धि कहाती है। शत्रु पर व्यसन की प्रतीक्षा करने वाले राजा के लिए यह सन्धि वड़ी उत्तम है। व्यसन के समय आक्रमण करके वह भूमि वापिस ली जा सकती है ॥३४॥

फलदानेन भूमीनां मोक्षणं स्यादवक्रयः।
फलातिभुक्तो भूमिभ्यः संधिः स परिदूषणः॥ ३५ ॥

भूमि का मूल्य या उससे उत्पन्न वस्तु देते रहकर भूमि के छुड़ा लेने का नाम अवक्रय सन्धि है। जव भूमि में उत्पन्न वस्तु और कुछ अधिक धन देना पड़े-तो यह परिदूषण सन्धि कहाती है ॥३५॥

कुर्यादवेक्षणं पूर्वौ पश्चिमौ त्वावलीयसम्।
आदाय फलमित्येते देशोपनतसंधयः॥ ३६ ॥

इन चारों सन्धियों में पूर्व की दो आदिष्ट और उच्छिन्न सन्धि में शत्रु की विपत्ति की राजा प्रतीक्षा करे और पिछली दो सन्धि उच्छिन्न और अवक्रय सन्धि में आवलीयस

प्रकरण के उपायों द्वारा शत्रु का प्रतीकार करे। भूमि लेकर ये सन्धि होती हैं। इससे इनको देशोपनत सन्धि भी कहते हैं ॥ ३६॥

स्वकार्याणां वशेनैते देशे काले च भाषिताः।
आवलीयसिकाः कार्यास्त्रिविधा हीनसंधयः ॥ ३७ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे समहीनज्यायसां गुणाभिनिवेशो हीनसंधयः तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदित एकशतः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार से निरूपण की हुई इन तीन प्रकार की दण्डोपनत, कोशोपनत और देशोपनत सन्धियों को देश, काल और आवलीयस प्रकरण के अनुसार उपयोग में लावे। ये तीनों सन्धियां हीन सन्धि होती हैं ॥३७॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में शत्रु के साथ सन्धि करने के उपायों के वर्णन का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।



चौथा अध्याय

१०३-१०७वां प्रकरण

विगृह्यासनं सन्धायासनं विगृह्ययानं, सन्धाययानं सम्भूयप्रमाणम्।

इस प्रकरण में युद्ध करके चुप बैठना, सन्धि करके चुप बैठना, युद्ध करना और फिर चढ़ाई कर देना, सन्धि के अनन्तर फिर चढ़ाई करना, इकट्ठे होकर चढ़ दौड़ना आदि विषयों का दिग्दर्शन कराया जावेगा।

संधिविग्रहयोरासनं यानं च व्याख्यातम् ॥ १ ॥ स्थानमासनमुपेक्षणं चेत्यासनपर्यायाः ॥ २ ॥ विशेषस्तु ॥ ३ ॥ गुणैकदेशे स्थानम् ॥४॥ स्ववृद्धिप्राप्त्यर्थमासनम् ॥ ५ ॥ उपायानामप्रयोग उपेक्षणमिति ॥ ६ ॥ संधानकामयोररिविजिगीष्वोरुपहन्तुमशक्तयोर्विगृह्यासनं संधाय वा ॥ ७ ॥

सन्धि और युद्ध के समय किस प्रकार आसन (चुप बैठे रहना) और किस प्रकार यान (चढ़ाई) करना चाहिए-यह बताया जा चुका। स्थान, आसन और उपेक्षण ये तीनों आसन के पर्यायवाची (दूसरे) नाम हैं। परन्तु इनमें कुछ विशेषता (फर्क) भी है-किसी भाग में चुप बैठे रहना और किसी विषय में उपाय करते रहना स्थान कहाता है। अपनी वृद्धि की प्राप्ति के लिए चुपचाप बैठे रहना आसन है। किसी भी उपाय का अवलम्बन न करना-उपेक्षण कहाता है। जब शत्रु और विजयेच्छुक राजा, दोनों ही सन्धि करने की

इच्छा रखते हों और वे परस्पर एक दूसरे के नष्ट कर देने की शक्ति न रखते हों-तो कुछ लड़कर जब चुप बैठ जाते हैं, उसे विगृह्य आसन कहते हैं और जब वे सन्धि करके चुप बैठते हैं, तब सन्धाय आसन कहाता है ॥१-७॥

यदा वा पश्येत्स्वदण्डैर्मित्राटवीदण्डैर्वा समं ज्यायांसं वा कर्शयितुमुत्सह इति तदा कृतबाह्याभ्यन्तरकृत्यो विगृह्यासीत ॥८॥ यदा वा पश्येदुत्साहयुक्ता मे प्रकृतयः संहता विवृद्धाः स्वकर्माण्यव्याहताश्चरिष्यन्ति परस्य वा कर्माण्युपहनिष्यन्तीति तदा विगृह्यासीत ॥ ६ ॥

जब राजा यह समझले, कि मैं अपनी सेना और मित्र तथा वनवासी वीरों की सेना को लेकर बराबर शक्ति वाले या अधिक शक्तिशाली को कुछ हानि पहुंचा सकता हूं-तो दुर्ग और राष्ट्र का प्रबन्ध करके प्रथम युद्ध करे और फिर सन्धि कर ले। जब राजा को निश्चय रहे, कि मेरे मन्त्री अमात्य आदि उत्साह युक्त और संगठित तथा सब तरह चढ़े बढ़े हैं, वे अपने कामों को बराबर ठीक करते रहेंगे और शत्रु के कामों को हानि पहुंचा देंगे-तब प्रथम युद्ध करे और पीछे सन्धि कर ले ॥८-६॥

यदा वा पश्येत्परस्यापचरिताः क्षीणा लुब्धाः स्वचक्रस्तेनाटवीव्यथिता वा प्रकृतयः स्वयमुपजापेन वा मामेष्यन्तीति ॥ १० ॥ संपन्ना मे वार्ता विपन्ना परस्य तस्य प्रकृतयो दुर्भिक्षोपहता मामेष्यन्ति ॥ ११ ॥ विपन्ना मे वार्ता संपन्ना परस्य ॥ १२ ॥ तं मे प्रकृतयो न गमिष्यन्ति विगृह्य चास्य धान्यपशुहिरण्यान्याहरिष्यामि ॥१३॥ स्वपण्योपघातीनि वा परपण्यानि निवर्तयिष्यामि ॥ १४ ॥ परवणिक्पथाद्वा सारवन्ति मामेष्यन्ति विगृहीते नेतरम् ॥ १५ ॥ दूष्यामित्राटवीनिग्रहं वा विगृहीतो न करिष्यति ॥ १६ ॥ तैरेव वा विग्रहं प्राप्स्यति ॥ १७ ॥ मित्रं मे मित्रभाव्यभिप्रयातो बह्वल्पकालं तनुक्षयव्ययमर्थं प्राप्स्यति ॥ १८ ॥ गुणवतीमादेयां वा भूमिं सर्वसंदोहेन वा मामनादृत्य प्रयातुकामः कथं न यायात् ॥१६ ॥ इति परवृद्धिप्रतिघातार्थं प्रतापार्थं च विगृह्यासीत ॥ २० ॥ तमेव हि प्रत्यावृत्तो ग्रसत इत्याचार्याः ॥२१॥

जब राजा को ऐसी परिस्थिति दिखाई दे, कि शत्रु के मन्त्री अमात्य आदि, अपने राजा के दुर्व्यवहार से असन्तुष्ट हैं। वे सब तरह से क्षीण और लालची हैं तथा अपने देश के चोर और वन के भील आदि लोगों से दबाये हुए हैं, यदि उनमें तोड़ फोड़ लगायी गई-तो वे हमारी ओर हो जावेंगे। हमारी खेती वाणिज्य चल रहे हैं और शत्रु के नष्ट

हो चुके। अब उसके मन्त्री आदि दुर्भिक्ष से पीड़ित होकर हमारे अनुकूल हो सकेंगे। यद्यपि शत्रु के कृषि व्यापार आदि बने हैं और हमारे दुर्भिक्ष से बिगड़ गए-तो भी हमारे गुणों में अनुरक्त हमारे मन्त्री आदि प्रकृति, शत्रु से जाकर नहीं मिलेगी और युद्ध का आरम्भ करते ही मैं बहुत कुछ धान्य, पशु और सुवर्ण छीन लाऊंगा। मेरे व्यापार को नष्ट कर देने वाले दूसरे के व्यापार को मैं इस युद्ध से निवृत्त कर दूंगा। शत्रु के राजमार्ग से सार वाली हाथी घोड़े-हाथीदांत आदि वस्तु युद्ध करने पर ही मुझे मिल सकेगी अन्यथा मिलने का कोई उपाय नहीं है। जब मैं युद्ध छेड़ दूंगा-तो इससे बिगड़े हुए शत्रु या वनचर भील आदि का विग्रह न कर सकेगा और उनसे भी युद्ध छिड़ जावेगा। मेरा मित्र या मित्रभावी (सर्वोत्तम मित्र) चढ़ाई करके बहुत ही थोड़े समय में और बहुत ही थोड़े सेना के विनाश और थोड़े से व्यय से अपने काम को बना लेगा-मेरी गुणवती भूमि के लेने की अभिलाषा से सारी तय्यारी के साथ मेरा अनादर करके मुझ पर आक्रमण करने का अभिलाषी शत्रु राजा आक्रमण न कर सके-इत्यादि शत्रु वृद्धि के नाश और अपने प्रताप के निमित्त युद्ध करके ही चुप बैठे। यदि इस पर इस तरह दुबारा फिर चढ़ाई कर दी जावेगी, तो उसको निगला जा सकेगा-ऐसा आचार्यों का मत है ॥१०-२१॥

नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ कर्शनमात्रमस्य कुर्यादव्यसनिनः ॥२३॥ परवृद्ध्या तु वृद्धः समुच्छेदनम् ॥ २४ ॥ एवं परस्य यातव्योऽस्मै साहाय्यमविनष्टः प्रयच्छेत् ॥ २५ ॥ तस्मात्सर्वसंदोहप्रकृतो विगृह्यासीत ॥ २६ ॥ विगृह्यासनहेतु प्रातिलोम्ये संधायासीत ॥ २७ ॥ विगृह्यासनहेतुभिरभ्युच्चितः सर्वसंदोहवर्जं विगृह्य यायात् ॥ २८ ॥

कौटल्याचार्य ऐसा नहीं मानते। वे कहते हैं, कि जो शत्रु राजा किसी व्यसन में नहीं फंसा-उसको किसी प्रकार से कुछ हानि पहुंचा देनी चाहिए और यदि अपने किसी मित्र द्वारा सहायता प्राप्त हो गई-तो वृद्धि पाकर उसका समुच्छेद कर देना उचित है। इस प्रकार शत्रु द्वारा आक्रमणीय दूसरा राजा भी नष्ट न होकर विजयाभिलाषी राजा को अवश्य सहायता पहुंचावेगा, इसलिए सारे ढंग से अपनी प्रकृति (मन्त्री आदि) को ठीक रखकर युद्ध करे और फिर चुप हो जावे। यदि युद्ध करके चुप बैठने के कारणों के विपरीत कारण हों, तो सन्धि करके चुप हो जावे। युद्ध के अनन्तर चुप बैठकर उस समय के उपयोगी कार्यों से अपनी शक्ति बढ़ाकर युद्ध के अनन्तर दुबारा फिर चढ़ाई करदे, परन्तु यह देख ले, कि शत्रु अपने मन्त्री आदि सारे साधनों से सुसम्पन्न तो नहीं है। यदि शत्रु में कोई छिद्र दिखाई न दे-तो चढ़ाई न करे ॥२२-२८॥

यदा वा पश्येद्व्यसनी परः प्रकृतिव्यसनं वास्य शेषप्रकृतिभिरप्रतिकार्यं स्वचक्रपीडिता विरक्ता वास्य प्रकृतयः कर्शिता निरुत्साहाः परस्पराद्वा भिन्नाः शक्या लोभयितुमग्न्युदकव्याधिमरकदुर्भिक्षनिमित्तं क्षीणयुग्यपुरुषनिचयरक्षाविधानः पर इति तदा विगृह्य यायात् ॥ २६ ॥

जब राजा यह देखे, कि शत्रु विपत्ति में उलझ रहा है या इसको इसके मन्त्री आदि से विपत्ति की सम्भावना हो रही है। आने वाले व्यसन को शेष मन्त्री नहीं हटा सकते हैं। अपने राष्ट्र से पीड़ित होने के कारण इस राजा की प्रकृति (मन्त्री आदि प्रजा) इससे विरक्त होकर क्षीण हो रही है। वह निरुत्साह होकर आपस में झगड़ते हैं। अब उनको लोभ के द्वारा वश में किया जा सकता है, अग्नि, जल, व्याधि, महामारी, दुर्भिक्ष से इसके वाहन, वीर आदि के नष्ट हो जाने से यह अपनी रक्षा में असमर्थ है-तो ऐसी दशा में युद्ध के अनन्तर फिर दुबारा भी चढ़ाई कर देनी चाहिए ॥२६॥

यदा वा पश्येन्मित्रमाक्रन्दश्च मे शूरवृद्धानुरक्तप्रकृतिर्विपरीतप्रकृतिः परः ॥ ३० ॥ पार्ष्णिग्राहश्चासारश्च ॥ ३१ ॥ शक्ष्यामि मित्रेणासारमाक्रन्देन पार्ष्णिग्राहं वा विगृह्य यातुमिति तदा विगृह्य यायात् ॥ ३२ ॥

मेरे आगे पीछे के मित्र राजा शूर, वृद्ध और अनुरक्त मन्त्री आदि से युक्त हैं और शत्रु राजा के मन्त्री आदि उससे भीतर ही भीतर असन्तुष्ट हैं और इसी तरह पार्ष्णिग्राह ओर आसार (आसपास के राजा) भी हैं। मैं मित्र से आसार और आक्रन्द से पार्ष्णिग्राह को लड़ाकर चढ़ाई कर सकता हूं। जब राजा यह देखे-तो युद्धके पीछे चढ़ाई करदे ॥३०-३२॥

यदा वा फलमेकहार्यमल्पकालं पश्येत्तदा पार्ष्णिग्राहासाराभ्यां विगृह्य यायात् ॥ ३३ ॥ विपर्यये संधाय यायात् ॥ ३४ ॥ यदा वा पश्येन्न शक्यमेकेन यातुमवश्यं च यातव्यमिति तदा समहीनज्यायोभिः सामवायिकैः संभूय यायादेकत्र निर्दिष्टेनांशेनानेकत्रानिर्दिष्टेनांशेन ॥ ३५ ॥ तेषामसमवाये दण्डमन्यतमस्मिन्निविष्टांशेन याचेत ॥ ३६ ॥ संभूयाभिगमनेन वा निर्विशेत ॥ ३७ ॥ ध्रुवे लाभे निर्दिष्टेनांशेनाध्रुवे लाभांशेन ॥३८॥

जब विजय रूपी फल थोड़े ही समय में अकेले द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता हो-तो उस समय पार्ष्णिग्राह और आसार से भी स्वयं युद्ध करके शत्रु राजा पर चढ़ाई करे। यदि अकेला ऐसा करने में असमर्थ हो, तो इनसे सन्धि करके फिर शत्रु पर चढ़ाई करे। जब राजा देखे, कि मैं अकेला चढ़ाई नहीं कर सकता और चढ़ाई अवश्य करनी है, तब समान, हीन, अधिक बल या सबके साथ मिलकर चढ़ाई करदे, एक स्थान पर चढ़ाई करनी

हो-तो परस्पर के अंश का निश्चय करले या अनेक स्थानों पर चढ़ाई करनी हो-तो अंश नहीं भी निश्चित किया जा सकता है, फिर अन्त में बटवारा कर लिया जावेगा। यदि वे सारे इकट्ठे होकर स्वयं न चलें, तो उनको कुछ भाग देने की कहकर उनसे सेना ही मांगले। यदि मिलकर साथ चले-तो उनका अंश निश्चित करदे। जिस वस्तु का अवश्य लाभ दिखाई दे-उसका अंश पहिले ठहरा लिया जावे और जिसके लाभ का निश्चय न हो, उसमें लाभ के अंश नियत कर लिये जावेगा। मेरे दो भाग होंगे-तुम्हारा एक २ होगा इत्यादि प्रकार से भाग का निश्चय करे ॥३३-३८॥

अंशो दण्डसमः पूर्वः प्रयाससम उत्तमः।
विलोपो वा यथालाभं प्रक्षेपसम एव वा ॥ ३६ ॥

इति पाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे विगृह्यासनं संधायासनं विगृह्ययानं संधाययानं संभूयप्रयाणं चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितो द्विशतः ॥१०२॥

अंश का विधान भी सेना के ऊपर होना चाहिए अथवा जिसने जितना श्रम किया है, उसको उतना ही अंश मिलना चाहिए-यह उत्तम पक्ष है। जिसको जितना लूट में मिले वह उसका होगा-जिसका आक्रमण में जितना व्यय हो-उसके अनुसार धन का बटवारा होगा-इस ढंग से अनेक प्रकार से धन के विभाग का निश्चय होता है ॥ ३६ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत पाड्गुण्य अधिकरण में चढ़ाई करने के प्रकारों के वर्णन का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।



पांचवां अध्याय

१०८-११०वां प्रकरण

यातव्यामित्र योरभिग्रह चिन्ता क्षयलोभ, विरागहेतवः प्रकृतीनां सामवायिकाविपरिमर्शः

इस प्रकरण में चढ़ाई करने योग्य दूसरे राजा और शत्रु में प्रथम किस पर चढ़ाई की जावे तथा मन्त्री आदि प्रकृतियों के क्षय, लोभ और विराग के हेतु और इनके अनुगामियों के विषय में वर्णन किया जावेगा।

तुल्यसामन्तव्यसने यातव्यममित्रं वेत्यमित्रमभियायात् ॥ १ ॥ तत्सिद्धौ यातव्यम् ॥ २ ॥ अमित्रसिद्धौ हि यातव्यः साहाय्यं दद्यान्नामित्रो यातव्यसिद्धौ ॥ ३ ॥ गुरुव्यसनं यातव्यं लघुव्यसनममित्रं वेति ॥ ४ ॥ गुरुव्यसनं सौकर्यतो यायादित्याचार्याः ॥ ५ ॥

जब अपने सामन्तों द्वारा शत्रु या अन्य चढ़ाई करने योग्य राजा पर समान रूप से विपत्ति आई हुई हो-तो प्रथम शत्रु पर चढ़ाई करें। जब शत्रु जीत लिया जावे, तब उसके साथी चढ़ाई करने योग्य दूसरे राजा पर चढ़ाई करे। यदि शत्रु को जीत लिया और यातव्य (उसके साथी) पर चढ़ाई की तो सम्भव है, वह सहायता देदे, परन्तु साथी के जीतने पर शत्रु सहायक नहीं बन सकता है। यदि चढ़ाई करने योग्य, शत्रु का साथी अधिक विपत्ति में फंसा है और शत्रु पर थोड़ी विपत्ति आई हो-तो प्रथम भारी विपत्ति में फंसे हुए साथी पर चढ़ाई करे, क्योंकि भारी विपत्ति में फंसा हुआ राजा शीघ्र पराजित किया जा सकता है, ऐसा आचार्यों का मत है ॥ १-५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६ ॥ लघुव्यसनमभित्रं यायात् ॥ ७ ॥ लघ्वपि हि व्यसनमभियुक्तस्य कृच्छ्रं भवति ॥ ८ ॥ सत्यं गुर्वपि गुरुतरं भवति ॥ ६ ॥ अनभियुक्तस्तु लघुव्यसनः सुखेन व्यसनं प्रतिकृत्यामित्रो यातव्यमभिसरेत् ॥१०॥ पार्ष्णिं गृह्णीयात् ॥ ११ ॥

कौटल्याचार्य यह बात नहीं मानते हैं। वे तो यही कहते हैं, कि यदि शत्रु पर थोड़ी भी विपत्ति हो-तो प्रथम शत्रु पर ही चढ़ाई करनी चाहिए, क्योंकि छोटी सी भी विपत्ति, चढ़ाई करने के अनन्तर बहुत बड़ी बन जाती है। यह ठीक है, कि भारी विपत्ति तो बहुत ही भारी हो जावेगी, परन्तु शत्रु राजा अपनी छोटी विपत्ति का उपाय करके अपने साथी राजा की सहायता को पहुंच जावेगा और पीछे से आक्रमण कर देगा ॥ ६-११ ॥

यातव्ययौगपद्ये गुरुव्यसनं न्यायवृत्तिं लघुव्यसनमान्यायवृत्तिं विरक्तप्रकृतिं वेति ॥ १२ ॥ विरक्तप्रकृतिं यायात् ॥ १३ ॥ गुरुव्यसनं न्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयोऽनुगृह्णन्ति ॥ १४ ॥ लघुव्यसनमन्यायवृत्तिमुपेक्षन्ते ॥ १५ ॥ विरक्ता बलवन्तमप्युच्छिन्दन्ति ॥ १६ ॥ तस्माद्विरक्तप्रकृतिमेव यायात् ॥ १७ ॥

चढ़ाई करने योग्य तीन तरह के शत्रु होते हैं। एक तो भारी विपत्ति में फंसे हुए होने पर भी न्याय वृत्ति से चलने वाला, दूसरे थोड़ी विपत्ति में फंसा हुआ अन्याय वृत्ति से चलने वाला और तीसरे विरक्त मन्त्री अमात्यों से युक्त राजा होता है। इनमें सब से प्रथम जिसके मन्त्री आदि विरक्त हों-उसी पर चढ़ाई करे। यदि राजा भारी विपत्ति में फंसा है, परन्तु न्याय वृत्ति से चलता है, तो उसके मन्त्री आदि उसकी अवश्य सहायता करते हैं और अन्याय वृत्ति से चलने वाले थोड़ी विपत्ति में फंसे हुए राजा की भी ये लोग उपेक्षा कर देते हैं! विरक्त मन्त्री, बलवान् राजा का भी उच्छेद कर देते हैं, इसलिए जिस राजा के मन्त्री विरक्त हों-उस पर अवश्य चढ़ाई करनी चाहिए ॥१२-१७॥

क्षीणलुब्धप्रकृतिमपचरितप्रकृतिं वेति ॥ १८ ॥ क्षीणलुब्धप्रकृतिं यायात् ॥ १९ ॥ क्षीणलुब्धा हि प्रकृतयः सुखेनोपजापं पीडां वोपगच्छन्ति ॥ २० ॥ नापचरिताः प्रधानावग्रहसाध्या इत्याचार्याः ॥ २१ ॥

जिस राजा के मन्त्री दुर्भिक्ष आदि से पीड़ित हों, उस राजा पर प्रथम चढ़ाई करे या जिसने अपने मन्त्री अमात्य आदि का तिरस्कार कर दिया है, उस पर प्रथम चढ़ाई करनी चाहिए। इस विषय में यही सिद्धांत है, कि प्रथम दुर्भिक्ष आदि से दुर्बल या लालची मन्त्री अमात्य आदि से युक्त राजा पर ही प्रथम चढ़ाई करनी उचित है। जो मन्त्री अमात्य दुर्बल और लालची होते हैं, वे सुखपूर्वक तोड़े फोड़ जा सकते हैं या उनको पीड़ा पहुंचाई जा सकती है, परन्तु तिरस्कार पाये हुए मन्त्री आदि किसी विशेष युक्ति से शीघ्र वश में नहीं आ सकते हैं-ऐसा आचार्यों का मत है ॥ १८-२१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ क्षीणलुब्धा हि प्रकृतयो भर्तरि स्निग्धा भर्तृहिते तिष्ठन्ति ॥ २३ ॥ उपजापं वा विसंवादयन्ति ॥ २४ ॥ अनुरागे सार्वगुण्यमिति ॥ २५ ॥ तस्मादपचरितप्रकृतिमेव यायात् ॥ २६ ॥

कौटल्याचार्य यह भी नहीं मानते हैं। यदि मन्त्री आदि क्षीण और लालची भी हैं, तो भी वे अपने स्वामी के भक्त हो सकते हैं और अपने स्वामी का हित सम्पादन कर सकते हैं। वे तोड़ फोड़ में भी नहीं आ सकेंगे, क्योंकि वे अपने स्वामी के अनुराग में सब गुण मान सकते हैं, इसलिए जिसने अपने मन्त्री आदि प्रकृति का अपमान कर दिया हो, उस पर ही प्रथम चढ़ाई करनी चाहिए ॥ २२-२६ ॥

बलवन्तमन्यायवृत्तिं दुर्बलं वा न्यायवृत्तिमिति ॥ २७ ॥ बलवन्तमन्यायवृत्तिं यायात् ॥ २८॥ बलवन्तमन्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयो नानुगृह्णन्ति निष्पातयन्त्यमित्रं वास्य भजन्ते ॥ २९ ॥ दुर्लभं तु न्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयः परिगृह्णन्त्यनुनिष्पतन्ति वा ॥३०॥

यदि राजा अन्याय वृत्ति से चलता है, तो वह कितना भी बलवान् हो-उस पर चढ़ाई कर देनी चाहिए। जो न्याय वृत्ति से चलता हो और उसमें अन्य दुर्बलताएं हों-तो उस पर भी चढ़ाई की जा सकती है। अन्याय वृत्ति से रहने वाले बलवान् राजा पर चढ़ाई कर देने पर उसके मन्त्री आदि उसकी सहायता नहीं करते हैं और दुर्ग आदि से निकाल तक देते हैं। यदि निकालने में असमर्थ हों-तो शत्रु से जा मिलते हैं। न्याय वृत्ति राजा पर चढ़ाई करके उसका जीत लेना दुर्लभ ही है, क्योंकि उसके मन्त्री अमात्य, उसका

साथ देते रहते हैं और जब वह निकल भागता है, तो उसके साथ निकल कर उसको बचाते रहते हैं ॥ २७-३० ॥

अवक्षेपेण हि सतामसतां प्रग्रहेण च ।
अभूतानां च हिंसानामधर्म्याणां प्रवर्तनैः ॥ ३१ ॥

उचितानां चरित्राणां धर्मिष्ठानां निवर्तनैः ।
अधर्मस्य प्रसङ्गेन धर्मस्यावग्रहेण च ॥ ३२ ॥

अकार्याणां च करणैः कार्याणां च प्रणाशनैः ।
अप्रदानैश्च देयानामदेयानां च साधनैः ॥ ३३ ॥

अदण्डनैश्च दण्ड्यानामदण्ड्यानां च दण्डनैः ।
अग्राह्याणामुपग्राहैर्ग्राह्याणां चानभिग्रहैः ॥ ३४ ॥

अनर्थ्यानां च करणैरर्थ्यानां च विघातनैः ।
अरक्षणैश्च चोरेभ्यः स्वयं च परिमोषणैः ॥ ३५ ॥

पातैः पुरुषकाराणां कर्मणां गुणदूषणैः ।
उपघातैः प्रधानानां मान्यानां चावमाननैः ॥ ३६ ॥

विरोधनैश्च वृद्धानां वैषम्येणानृतेन च ।
कृतस्याप्रतिकारेण स्थितस्याकरणेन च ॥ ३७ ॥

राज्ञः प्रमादालस्याभ्यां योगक्षेमवधेन च ।
प्रकृतीनां क्षयो लोभो वैराग्यं चोपजायते ॥ ३८ ॥

सज्जनों का तिरस्कार, दुर्जनों का संग्रह, अनुचित धर्म हीन हिंसा की प्रवृत्ति, धर्मात्माओं के से उचित आचरणों का परित्याग, अधर्म में प्रवृत्ति, धर्म का त्याग, अकार्यों का करना, कार्यों का नाश कर देना, देने योग्य पात्रों को नहीं देना, नहीं देने योग्य पात्रों को देना, दण्डनीयों को दण्ड नहीं देना, अदंडनीयों को दंड देना, पास नहीं रखने योग्य मनुष्यों को पास रखना, पास रखने योग्य पुरुषों को पास नहीं रखना, अनर्थ कारी बातों का करना, फल उत्पन्न करने वाली बातों का नाश कर देना, चोर आदि से प्रजा की रक्षा तक न करना, स्वयं प्रजा को लूटना, पुरुपार्थ करने वाले वीरों को गिराना, सन्धि आदि गुणों के दोपों से कामों को बिगाड़ लेना, प्रधान पुरुपों पर दोप लगाना और मान्यों का अपमान करना, वृद्ध पुरुषों का ऊंची नीची झूंठी सच्ची बात बनाकर विरोध करना, किसी के उपकार को न मानना, करने योग्य कार्य का न करना इन कार्यों तथा राजा के प्रमाद,

आलस्य और योग क्षेम (कल्याण) की हानि द्वारा मन्त्री आदि का क्षय हो जाता है। वे लालची बन जाते हैं और उनको राजा से विरक्ति हो जाती है ॥३१-३८॥

क्षीणाः प्रकृतयो लोभं लुब्धा यान्ति विरागताम् ।
विरक्ता यान्त्यमित्रं वा भर्तारं घ्नन्ति वा स्वयम् ॥ ३९ ॥

क्षीण हुए अमात्य आदि प्रकृतिजन, लोभ करने लगते हैं। जब वे लालची हो जाते हैं, तब उनको राजा से विराग होने लगता है। जब विरक्त हो जाते हैं, तब वे या तो शत्रु से जा मिलते हैं या स्वयं अपने स्वामी को मार बैठते हैं ॥३९॥

तस्मात्प्रकृतीनां क्षयलोभविरागकारणानि नोत्पादयेत्॥ ४० ॥ उत्पन्नानि वा सद्यः प्रतिकुर्वीत ॥ ४१ ॥ क्षीणा लुब्धा विरक्ता वा प्रकृतय इति ॥ ४२ ॥ क्षीणाः पीडनोच्छेदनभयात्सद्यः संधिं युद्धं निष्पतनं वा रोचयन्ते ॥ ४३ ॥ लुब्धा लोभेनासंतुष्टाः परोपजापं लिप्सन्ते ॥ ४४ ॥ विरक्ताः पराभियोगमभ्युत्तिष्ठन्ते ॥ ४५ ॥

इन सब बातों पर ध्यान देकर मन्त्री आदि प्रकृति को कभी क्षीण, लोभ युक्त या विरक्त न होने दे। यदि किसी मन्त्री में विकार उत्पन्न हो भी जावे-तो शीघ्र उनका प्रतीकार करना चाहिए। क्षीण, लुब्ध और विरक्त तीन प्रकार की प्रकृति होती हैं। दुर्भिक्ष आदि क्षीण हुए मन्त्री अमात्य आदि पीड़ा या विनाश के भय से शीघ्र सन्धि, युद्ध और भाग जाना स्वीकार कर लेते हैं। लोभी अमात्य लोभ के कारण अपने स्वामी से सन्तुष्ट नहीं रहते और वे सदा दूसरे राजा से मिल जाना चाहते रहते हैं। विरक्त मन्त्री, शत्रु की चढ़ाई में सम्मिलित हो जाते हैं ॥४०-४५॥

तासां हिरण्यधान्यक्षयः सर्वोपघाती कृच्छ्रप्रतीकारश्च ॥ ४६ ॥ युग्यपुरुषक्षयो हिरण्यधान्यसाध्यः ॥ ४७ ॥ लोभ ऐकदेशिको मुख्यायत्तः परार्थेषु शक्यः प्रतिहन्तुमादातुं वा ॥ ४८ ॥ विरागः प्रधानावग्रहसाध्यः ॥ ४९ ॥ निष्प्रधानाहि प्रकृतयो भोग्या भवन्त्यनुपजाप्याश्चान्येषामनापत्सहास्तु प्रकृतिमुख्यप्रग्रहैस्तु बहुधा भिन्ना गुप्ता भवन्त्यापत्सहाश्च ॥ ५० ॥

यदि मन्त्री आदि का धान्य और सुवर्ण क्षय हो जावेगा, तो उनके अश्व आदि सारी वस्तुओं का क्षय समझो। इसका प्रतीकार भी बड़ा कठिन है। यदि वाहन और वीरों का क्षय भी हो जावे, तो भी वह सुवर्ण और धान्य से फिर पूरा किया जा सकता है। लोभ किसी २ मन्त्री में हो सकता है। मुख्य अमात्य उसको दूर कर सकता है। शत्रु के ऊपर चढ़ाई करने पर वह रोका जा सकता है या उसे पूरा किया जा

सकता है, परन्तु प्रकृति का विरक्त हो जाना, प्रधान नेता के वश में किये बिना दूर नहीं हो सकता है। यदि विरक्त प्रकृति का कोई नेता न हो-तो वह अपने राजा के वश में हो जाती है। वे किसी दूसरे राजा से बहकायी भी नहीं जा सकती। जो मन्त्री, आपत्ति को नहीं सह सकते, वे भी मुख्य मन्त्री के आग्रह से असंगठित न होकर सुरक्षित बने रहते हैं और आपत्ति के सह लेने को उद्यत हो जाते हैं ॥४६-५०॥

समावायिकानामपि संधिविग्रहकारणान्यवेक्ष्य शक्तिशौचयुक्तौ संभूय यायात् ॥ ५१ ॥ शक्तिमान्हि पार्ष्णिग्रहणे यात्रासाहाय्यदाने वा शक्तः ॥ ५२ ॥ शुचिः सिद्धौ चासिद्धौ च यथास्थितकारीति ॥ ५३ ॥ तेषां ज्यायसैकेन द्वाभ्यां समाभ्यां वा संभूय यातव्यमिति ॥५४॥ द्वाभ्यां समाभ्यां श्रेयः ॥५५॥

इसी तरह अपने साथियों के सन्धि और विग्रह के कारणों और उनकी शक्ति और पवित्रता को देखकर इकट्ठे ही आक्रमण करें। जो शक्तिशाली होता है, वही पीछे से आक्रमण करने के योग्य और चढ़ाई में सहायता देने के योग्य हो सकता है। जो साथी पवित्र आचरण वाला होता है, वह कार्य के सिद्ध होने या असिद्ध होने पर भी अपना ठीक २ कार्य करता रहता है। इनमें अत्यन्त शक्तिशाली एक या समान बल वाले दो को साथ लेकर चढ़ाई कर देनी चाहिए। बराबर शक्ति वाले दो के साथ चढ़ाई करना उत्तम है ॥५१-५५॥

ज्यायसा ह्यवगृहीतश्चरति समाभ्यामतिसंधानाधिक्ये वा ॥ ५६ ॥ तौ हि सुखौ भेदयितुम् ॥ ५७ ॥ दुष्टश्चैको द्वाभ्यां नियन्तुं भेदोपग्रहं चोपगन्तुमिति ॥ ५८ ॥ समेनैकेन द्वाभ्यां हीनाभ्यां वेति ॥५९॥ द्वाभ्यां हीनाभ्यां श्रेयः ॥ ६० ॥ तौ हि द्विकार्यसाधकौ वश्यौ च भवतः ॥ ६१ ॥

अपने से बड़े के साथ चढ़ाई करने पर विजयेच्छुक राजा दबकर चलता है, परन्तु समान शक्तिशाली के साथ अत्यन्त मेल जोल रहता है। यदि मौका पड़े-तो उन दोनों में फूट भी डलवाई जा सकती है। यदि उनमें एक बिगड़ भी उठे-तो दोनों मिलकर उसे दबा सकते हैं या उसे डरा धमका कर वश में कर सकते हैं। एक समान शक्ति वाले और दो हीन बलवालों को लेकर चढ़ाई करे-ऐसा भी बहुतों का मत है। यदि दोनों ही हीन बल हों और सम बल वाला न हो-तो दो हीन बल वालों के साथ चढ़ाई कर देना तो और भी उत्तम है। वे दोनों पृथक् २ दो कार्य कर सकते हैं और वश में भी बने रह सकते हैं ॥५६-६१॥

कार्यसिद्धौ तु ॥ ६२ ॥

कृतार्थाज्ज्यायसो गूढः सापदेशमपस्रवेत् ।
अशुचेः शुचिवृत्तात्तु प्रतीक्षेताविसर्जनात् ॥ ६३ ॥

जब कार्य की सिद्धि हो जावे और दैवात् कृतार्थ शक्तिशाली राजा के चित्त में विकार उत्पन्न हो जावे, तो वहां से बहाना बनाकर चला आवे, परन्तु शक्तिशाली का चित्त एक सा शुद्ध रहे, तो वह जब तक विदा न करे-तब तक उसके विचार जानने की प्रतीक्षा करता रहे ॥६२-६३॥

सत्रादपसरेद्यत्तः कलत्रमपनीय वा ।
समादपि हि लब्धार्थाद्विश्वस्तस्तस्य भयं भवेत् ॥ ६४ ॥

अपने स्त्री आदि परिवार को हटाकर राजा स्वयं भी अपने दुर्ग से सावधानी के साथ दूर चला जावे। यदि किसी समान शक्ति वाले की सहायता कर दी गई और वह भी कृतघ्न बन गया-तो बड़ी सावधानी से अपनी स्त्री आदि को अपने दुर्ग से हटाकर आप भी उस दुर्ग से खसक जावे, क्योंकि विश्वास में चुप रहने से भय खड़ा होता देखा गया है ॥६४॥

ज्यायस्त्वे चापि लब्धार्थः समो विपरिकल्पते ।
अभ्युच्चितश्चाविश्वास्यो वृद्धिश्चित्तविकारिणी ॥ ६५ ॥

बड़े शक्तिशाली की तो चर्चा ही क्या है, समान शक्ति वाला भी अपने कार्य के सिद्ध हो जाने पर बिगड़ जाता है। जिसकी वृद्धि हो जाती है, उसका विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि वृद्धि चित्त को बिगाड़ ही देती है ॥६५॥

विशिष्टादल्पमप्यंशं लब्ध्वा तुष्टमुखो व्रजेत् ।
अनंशो वा ततोऽस्याङ्के प्रहृत्य द्विगुणं हरेत् ॥ ६६ ॥

अधिक शक्तिशाली से थोड़ा अंश मिलने पर भी प्रसन्नता सा चला जावे। यदि वह कुछ भी न देवे-तो भी प्रसन्नता दिखावे। जब इस पर कोई विपत्ति आवे-तब प्रहार करके इससे दुगुना अंश वसूल करे ॥६६॥

कृतार्थस्तु स्वयं नेता विसृजेत्सामवायिकान् ।
अपि जीयेत न जयेन्मण्डलेष्टस्तथा भवेत् ॥ ६७ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे यातव्यामित्रयोरभिग्रहचिन्ता क्षयलोभविराग-
हेतवः प्रकृतीनां सामवायिकविपरिमर्शः पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
आदितस्त्रिशतः ॥ १०३ ॥

जब राजा का काम सिद्ध हो जावे, तो वह अपने साथी राजाओं को मान से विदा करे, इसमें चाहे-उसे कुछ जीत रहे या न रहे अर्थात् धन का अंश मिले या न मिले। ऐसा करने से ही वह राजा अपने राजमण्डल का प्रिय हो सकता है ॥६७॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में "मन्त्री आदि के साथ कैसे व्यवहार पर चढ़ाई करनी चाहिए" इस वर्णन का पांचवां अध्याय समाप्त हुआ।



छठा अध्याय

१११-११२वां प्रकरण

संहित प्रमाणिकं परिपणितापरिपणितापसृताश्च सन्धयः

इस प्रकरण में एक साथ मिलकर चढ़ाई करने और परिपणित, अपरिपणित और अपसृत सन्धि का वर्णन किया जावेगा।

विजिगीषुर्द्वितीयां प्रकृतिमेवमतिसंदध्यात् ॥ १ ॥ सामन्तं संहितप्रयाणे योजयेत् ॥ २ ॥ त्वमितो याहि ॥ ३ ॥ अहमितो यास्यामि ॥ ४ ॥ समानो लाभ इति ॥ ५ ॥ लाभसाम्ये संधिः ॥ ६ ॥ वैषम्ये विक्रमः ॥ ७ ॥

जो राजा अपना विजय चाहे, वह अपने साथी राजा से यह ढंग व्यवहार में लावे। युद्ध करने वाले साथी राजा को एकदम चढ़ाई के लिए नियुक्त करे-उससे कहे, कि तुम इधर से जाओ-मैं इधर होकर आता हूं-जो लाभ होगा, उसमें बराबर का हिस्सा रहेगा। यदि दोनों को समान लाभ हो, तो परस्पर सन्धि रखे और लाभ में कुछ अधिकता न्यूनता रहे अर्थात् एक को अधिक लाभ और दूसरे को न्यून लाभ हो, तो उससे भी लड़ाई ठान बैठे ॥१-७॥

संधिः परिपणितश्चापरिपणितश्च ॥ ८ ॥ त्वमेतं देशं याह्यहमिमं देशं यास्यामीति परिपणितदेशः ॥ ९ ॥ त्वमेतावन्तं कालं चेष्टस्वाहमेतावन्तं कालं चेष्टिष्य इति परिपणितकालः ॥ १० ॥ त्वमेतावत्कार्यं साधयाहमिदं कार्यं साधयिष्यामीति परिपणितार्थः ॥ ११ ॥

परिपणित और अपरिपणित-इस प्रकार सन्धि दो प्रकार की मानी गई है। तुम इस देश पर चढ़ाई करो-मैं इस देश की ओर जाता हूं, इस सन्धि को परिपणित देश सन्धि कहते हैं। तुम इतने समय तक विजय की चेष्टा करो, मैं इतने समय तक चेष्टा

करूंगा-यह परिपणित काल सन्धि कहाती है। जिसमें देश की शर्त हो-वह परिपणित देश और जिसमें काल का नियम हो-वह परिपणित काल सन्धि हुई। तुम इतना कार्य करो-मैं इस काम को पूरा कये देता हूं, इसमें कार्य (अर्थ) सम्बन्धी पण (शर्त) है, इससे इसे परिपणितार्थ सन्धि कहते हैं ॥८-११॥

यदि वा मन्येत शैलवननदीदुर्गमटवीव्यवहितं छिन्नधान्यपुरुषवीवधासारमयवसेन्धनोदकमविज्ञातं प्रकृष्टमन्यभावदेशीयं वा सैन्यव्यायामानामलब्धभौमं वा देशं परो यास्यति विपरीतमहमित्येतस्मिन्विशेषे परिपणितदेशं संधिमुपेयात् ॥ १२ ॥

जब राजा यह देखे, कि मेरा साथी सामन्त, पर्वत, वन, नदी दुर्ग और वनों से व्याप्त, धान्य, सैनिक वीर पुरुष, तैल घृत आदि वस्तु समूह से रहित अन्न, दाना-घास से विहीन, अपरिचित, लम्बी यात्रा वाले, अन्य भाषा भाव से युक्त, सेना के व्यायाम (कवायद) के योग्य भूमि के अभाव वाले देश पर चढ़ाई कर लेगा और मुझे तो इससे विपरीत सुगम देश पर आक्रमण करना पड़ेगा, तो ऐसे समय न परिपणित देश सन्धि कर लेनी चाहिए ॥१२॥

यदि वा मन्येत प्रवर्षोष्णशीतमतिव्याधिप्रायमुपक्षीणाहारोपभोगं सैन्यव्यायामानां चौपरोधिकं कार्यसाधनानामूनमतिरिक्तं वा कालं परश्चेष्टिष्यते विपरीतमहमित्येतस्मिन्विशेषे परिपणितकालं संधिमुपेयात् ॥ १३ ॥

वर्षा, गरमी और सरदी के कारण क्लेशजनक रोग प्रकोप से युक्त, आहार की प्राप्ति से रहित, सेना के व्यायाम (कवायद) की रुकावट करने वाले, कार्य साधन में दुर्बल, अधिक समय तक मेरे साथी सामन्त को काम करना होगा और मुझे तो इन सबसे अड़चनों से विहीन थोड़े समय तक ही लड़ना है, जब राजा यह देखे-तो अपने सामन्त के साथ परिपणित काल सन्धि कर ले ॥१३॥

यदि वा मन्येत प्रत्यादेयं प्रकृतिकोपकं दीर्घकालं महाक्षयव्ययमल्पमनर्थानुबन्धमकल्यमधर्म्यं मध्यमोदासीनविरुद्धं मित्रोपघातकं वा कार्यं परः साधयिष्यति विपरीतमहमित्येतस्मिन्विशेषे परिपणितार्थं संधिमुपेयात् ॥ १४ ॥

इस कार्य में शत्रु के मन्त्री आदि कुपित करने पड़ेंगे। बहुत धन के व्यय और मनुष्यों के नाश से बहुत काल में यह कार्य सिद्ध होगा, इसका फल थोड़ा और इसमें अनर्थ अधिक है। यह बहुत ही क्लेशदायक और अधर्म युक्त कार्य है। मध्यम और उदासीन राजाओं के यह विरुद्ध होगा। मित्रों को भी इसमें हानि पहुंच जाने की सम्भावना

है, परन्तु इन सब कामों को मेरा साथी सामन्त करने को उद्यत है-जब राजा ऐसी परिस्थिति देखे-तो परिपणितार्थ नामक सन्धि को बड़े आनन्द के साथ करे ॥१४॥

एवं देशकालयोः कालकार्ययोर्देशकार्ययोर्देशकालकार्याणां चावस्थापनात्सप्तविधः परिपणितः ॥ १५ ॥ तस्मिन्प्रागेवारभ्य प्रतिष्ठाप्य च स्वकर्माणि परकर्मसु विक्रमेत ॥ १६ ॥

जब इन परिपणितार्थ सन्धियों में दोनों का मेल हो जावे-तो देशकाल, कालकार्य, देश-कार्य और देशकाल कार्य-ये इनके चार भेद और हो जाते हैं। तीन पहिली और चार ये-सब मिलकर परिपणित सन्धि सात प्रकार की मानी गई हैं ॥१५-१६॥

व्यसनत्वरावमानालस्ययुक्तमज्ञं वा शत्रुमतिसंधातुकामो देशकालकार्याणामनवस्थापनात्संहितौ स्व इति संधिविश्वासेन परच्छिद्रमासाद्य प्रहरेदित्यपरिपणितः ॥ १७ ॥

मद्य, द्यूत, स्त्री आदि के व्यसन में फंसे हुए, झटपट घबरा जाने वाले, मन्त्री आदि से तिरस्कृत, आलसी, मूर्ख, शत्रु का विजय करने वाला राजा, देश काल कार्य की कुछ भी शर्त न लगाकर दूसरे सामन्त से जो सन्धि करता है और इसी सन्धि के आधार पर शत्रु के व्यसन युक्त होने पर उस पर आक्रमण कर देता है-यह अपरिपणित सन्धि कहाती है, क्योंकि इसमें किसी प्रकार का पण [शर्त] नहीं है ॥१७॥

तत्रैतद्भवति—॥ १८ ॥

सामन्तेनैव सामन्तं विद्वानायोज्य विग्रहे।
ततोऽन्यस्य हरेद्भूमिं छित्वा पक्षं समन्ततः ॥ १९ ॥

इस विषय में केवल इतना समझना है, कि बुद्धिमान राजा अपने सामन्त से शत्रु को युद्ध में फंसा देवे और आप दूसरी ओर इनमें शत्रु पक्ष के सारे अन्य राजाओं को मारकाट कर उसकी भूमि पर अधिकार कर ले ॥१८-१९॥

संधेरकृतचिकीर्षा कृतश्लेषणं कृतविदूषणमवशीर्णक्रिया च ॥ २० ॥ विक्रमस्य प्रकाशयुद्धं कूटयुद्धं तूष्णींयुद्धमिति संधिविक्रमौ ॥ २१ ॥

अकृत चिकीर्षा, कृतश्लेषण, कृतविदूषण और अवशीर्ण क्रिया-ये सन्धि के चार प्रकार [धर्म] माने गए हैं। प्रकाश युद्ध, कूट युद्ध, तूष्णीं युद्ध-ये तीन युद्ध के प्रकार या धर्म हैं ॥२०-२१॥

अपूर्वस्य संधेः सानुबन्धैः सामादिभिः पर्येषणं समहीनज्यायसां च यथाबलमवस्थापनमकृतचिकीर्षा ॥ २२ ॥ कृतस्य प्रियहिताभ्यामुभयतः परिपालनं

यथासंभाषितस्य च निबन्धनस्यानुवर्तनं रक्षणं च कथं परस्मान्न भिद्येत इति कृतश्लेषणम् ॥२३॥ परस्यापसंधेयतां दूष्यातिसंधानेन स्थापयित्वा व्यतिक्रमः कृतविदूषणम् ॥२४॥ भृत्येन मित्रेण वा दोषापसृतेन प्रतिसंधानमवशीर्णक्रियां ॥२५॥

जिस राजा से कभी पहिले सन्धि नहीं हुई हो, उससे अनुबन्धों (अङ्गों) के सहित साम आदि उपायों द्वारा सन्धि करके समबल, हीनबल और अधिक बलशाली राजाओं की यथायोग्य अवस्थापना करना अकृत-चिकीर्षा नामक सन्धि कहाती है अर्थात् प्रथम न की हुई सन्धि के करने की इच्छा वाली सन्धि कहाती है। जो सन्धि की गई है, उसको प्रिय और हितकारी कार्यों द्वारा दोनों ओर से ठीक २ पालने की जो प्रतिज्ञा की हैं, उनका यथा नियम पूरा करना और उनकी रक्षा करना, शत्रुसे किसी प्रकार भेद को न प्राप्त होना, यह कृत-श्लेषण सन्धि है अर्थात् इस में की हुई सन्धि का श्लेषण (चिपटाव) रहता है-इससे इसे कृतश्लेषण कहा गया है। दूसरे सामन्त ने दुष्ट, शत्रु राजा से सन्धि कर ली है, इससे इसने संधि के नियम तोड़ दिए-ऐसा स्थापित करके जो सन्धि का तोड़ देना है, यह कृत-विदूषण कहाता है, क्योंकि इसमें सन्धि को दूषित करके तोड़ दिया गया है। किसी दोष के आधार पर किसी राजा के मित्र या भृत्य (मन्त्री) से जो सन्धि की जाती है, वह अवशीर्ण क्रिया कहाती है ॥२२-२५॥

तस्यां गतागतश्चतुर्विधः—॥ २६ ॥ कारणाद्गतागतो विपरीतः कारणाद्गतो ऽकारणादागतो विपरीतश्चेति ॥ २७ ॥ स्वामिनो दोषेण गतो गुणेनागतः परस्य गुणेन गतो दोषेणागत इति कारणाद्गतागतः संधेयः ॥ २८ ॥ स्वदोषेण गतागतो गुणमुभयोः परित्यज्याकारणाद्गतागतश्चलबुद्धिरसंधेयः ॥ २९ ॥

इस अवशीर्ण क्रिया में जाना आना चार प्रकार से होता है। [१] किसी कारण विशेष से जाना और किसी कारण विशेष से ही आ जाना [२] विना आकर पृथक् हो जाना और विना ही कारण आ मिलना [३] किसी कारण से पृथक् होने पर भी विना कारण आ मिलना [४] और विना कारण पृथक् होकर कारण से आ मिलना-ये चार प्रकार हैं। स्वामी के दोष से जाना और उसके गुण से आ जाना तथा शत्रु के गुण से जाना और शत्रु के दोष से लौट आना-इन कारणों से जो आना जाना हुआ-यह सन्धि के योग्य हैं। अपने ही दोष से जाना और अपने ही दोष से लौट आना, स्वामी या शत्रु के गुण दोषों से कुछ भी प्रयोजन नहीं रखना-इस प्रकार विना कारण आना जाना चञ्चल बुद्धि का कार्य है। ऐसे चञ्चल मनुष्य से सन्धि नहीं करनी चाहिए ॥२६-२९॥

स्वामिनो दोषेण गतः परस्मात्स्वदोषेणागत इति कारणाद्गतो ऽकारणादागतस्तर्कयितव्यः ॥ ३० ॥ परप्रयुक्तः स्वेन वा दोषेणापकर्तुकामः परस्योच्छेत्तारममित्रं मे ज्ञात्वा प्रतिघातभयादागतः परं वा मामुच्छेत्तुकामं परित्यज्यानृशंस्यादागत इति ज्ञात्वा कल्याणबुद्धिं पूजयेदन्यथाबुद्धिमपकृष्टं वासयेत् ॥ ३१ ॥

स्वामी के दोष से जाना और अपने दोष से लौट आना, इसे कारण से जाना और विना कारण लौट आना समझना चाहिए। इसकी इस प्रकार परीक्षण करे। क्या यह शत्रु की प्रेरणा से मेरे अपकार के निमित्त आया है या अपना ही वदला चुकाने के निमित्त मेरा अपकार करना चाहता है। शत्रु के उच्छेद में परायण मेरे शत्रु को देखकर अपने वध की आशङ्का से आ गया है या शत्रु के नाश में तत्पर मेरे शत्र को छोड़ कर मेरे पुराने स्नेह से मेरे पास आया है ? इन सब बातों पर विचार करके यदि इसकी शुभ वासना हो-तो इसको अपने पास रख ले अन्यथा अपने समीप से दूर रखे ॥ ३०-३१ ॥

स्वदोषेण गतः परदोषेणागत इत्यकारणाद्गतः कारणादागतस्तर्कयितव्यः ॥३२॥ छिद्रं मे पूरयिष्यत्युचितो ऽयमस्य वासः परत्रास्य जनो न रमते ॥३३॥ मित्रैर्मे संहितः शत्रुभिर्विगृहीतो लुब्धक्रूरादाविग्नः शत्रुसंहिताद्वा परस्मादिति ज्ञात्वा यथाबुद्ध्यवस्थापयितव्यः ॥ ३४ ॥

अपने दोष से जाना और शत्र के दोष से आना-इसे अकारण जाना और कारण से आना कहते हैं : इसके विषय में यह सोचना चाहिए, कि क्या यह यहां आकर मेरे छिद्रों को रोक देगा ? क्या इसका यहां रहना ठीक होगा ? क्या अन्य देश में इसके परिवार का मन नहीं लगा ? क्या इसकी मेरे मित्रों से सन्धि और मेरे शत्रुओं से इसका विग्रह है ? क्या यह लोभी क्रूर इकट्ठे या अकेले शत्र से घबरा गया है ? यह सब कुछ जान कर उसके ठहरने की व्यवस्था करे ॥ ३२-३४ ॥

कृतप्रणाशः शक्तिहानिर्विद्यापण्यत्वमाशानिर्वेदो देशलौल्यमविश्वासो बलवद्विग्रहो वा परित्यागस्थानमित्याचार्याः ॥ ३५ ॥ भयमवृत्तिरमर्ष इति कौटल्यः ॥ ३६ ॥ इहापकारी त्याज्यः परापकारी संधेयः ॥ ३७ ॥ उभयापकारी तर्कयितव्य इति समानम् ॥ ३८ ॥ असंधेयत्वेन त्ववश्यं संधातव्ये यतः प्रभावस्ततः प्रतिविदध्यात् ॥ ३९ ॥

कृतघ्न, शक्तिहीन, विद्याविक्रयी, आशा भंग करने वाला, उपद्रवी देश से युक्त, बलवान् का शत्रु, राजा या सामन्त परित्याग के योग्य है-ऐसा आचार्यों का मत है, परन्तु कौटल्याचार्य कहते हैं, कि जिसमें भय हो, जो कार्य का आरम्भ न करता हो और जिस

में क्रोध भरा रहता हो, ऐसे स्वामी या सेवक को त्याग देना चाहिए। जो अपना अपकारी हो, उसे त्यागे और जो शत्रु का अपकार करके आवे-उसे रख ले। जो दोनों का अपकार करने वाला हो, उस पर उचित विचार करे अर्थात् उसका भाव शुद्ध हो गया हो-तो उसे रख लेवे। जिससे सन्धि नहीं करनी चाहिए और फिर उससे किन्हीं कारणों से सन्धि करनी पड़े-तो उस पर जो शत्रु का प्रभाव है, प्रथम उसे दूर करना चाहिए॥३८-३९॥

सोपकारं व्यवहितं गुप्तमायुः च्चयादिति।
वासयेदरिपक्षीयमवशीर्णक्रियाविधौ ॥ ४० ॥

यदि अवशीर्ण क्रिया नामक सन्धि द्वारा शत्रु पक्ष के किसी व्यक्ति से सन्धि की जावे, तो उसको एक स्थान पर आयु भर गुप्त रीति से किसी विश्वासी भृत्य की देख-रेख में रख देवे, परन्तु यह व्यक्ति उपकारी प्रमाणित होना चाहिए॥ ४०॥

विक्रामयेद्भर्तरि वा सिद्धं वा दण्डचारिणम्।
कुर्यादमित्राटवीषु प्रत्यन्ते वान्यतः क्षिपेत्॥ ४१ ॥

यदि इसका शुद्ध भाव प्रतीत हो जावे, तो उसे स्वामी के सन्मुख लाया जावे और फिर इसकी परीक्षा करके राजा इसे सेना में नियुक्त करे। इसको शत्रु, जँगली जाति, सीमा-प्रान्त या अन्य ऐसे ही स्थानों का अधिपति भी बनाया जा सकता है ॥ ४१॥

पण्यं कुर्यादसिद्धं वा सिद्धं वा तेन संवृतम्।
तस्यैव दोषेणादूष्य परसंधेयकारणात् ॥ ४२ ॥

अथ वा शमयेदेनमायत्यर्थमुपांशुना।
आयत्यां च वधप्रेप्सुं दृष्ट्वा हन्याद्गतागतम् ॥ ४३ ॥

यदि वह कार्य करने में कपट रखता हो, तो उसको शत्रु के देश में वस्तु बेचने के बहाने से भेज दिया जावे। फिर वहां शत्रु से मिल जाने के दोष से दूषित कर उसे निकाल दें या अपने भविष्य के उज्ज्वल बनाने के निमित्त उसे गुपचुप छल से मरवा देवे। जो आगे चलकर प्राण ले सकता है, ऐसे शत्रु के पास से आये हुए व्यक्ति को तो देखते ही मरवा डालना चाहिए॥ ४२-४३॥

अरितो ऽभ्यागतो दोषः शत्रुसंवासकारितः।
सर्पसवासधर्मित्वान्नित्योद्वेगेन दूषितः॥ ४४ ॥

जो व्यक्ति शत्रु के देश से आता है, उसमें शत्रु के संग के कारण दोष आते ही हैं। शत्रु का वास तो सर्प वास के तुल्य नित्य भयकारी जानना चाहिए॥ ४४॥

जायते प्लक्षबीजाशात्कपोतादिव शाल्मलेः ।
उद्वेगजननो नित्यं पश्चादपि भयावह ॥ ४५ ॥

पिलखन के बीज खाने वाले कबूतर से जैसे सेमल के फल को उद्वेग होता है अर्थात् वह उसमें चोंच मारकर उसकी रुई निकाल देता है, इसी प्रकार शत्रु पक्ष के व्यक्ति से सदा भय ही उत्पन्न होता है और परिणाम में भय निकल भी पड़ता है ॥४५॥

प्रकाशयुद्धं निर्दिष्टो देशे काले च विक्रमः ।
विभीषणमवस्कन्दः प्रमादव्यसनार्दनम् ॥ ४६ ॥
एकत्र त्यागघातौ च कूटयुद्धस्य मातृका ।
योगगूढोपजापार्थं तूष्णींयुद्धस्य लक्षणम् ।

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे संहितप्रयाणिकं परिपणितापरिपणितापसृताश्च संधयः षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ आदितश्चतुःशतः ॥ १०४ ॥

इस समय इस देश में हमारा तुम्हारा युद्ध होगा, यह प्रकाशित करके जो युद्ध किया जावे, वह प्रकाश युद्ध कहाता है। थोड़ा धोखा देकर भय खड़ा करना, दुर्गों को घेरना, लूटना, आग लगाकर भय खड़ा करना, प्रमाद और व्यसन के समय शत्रु पर आक्रमण करना, एक जगह युद्ध को बन्द करके दूसरी ओर धोखे से मार काट जा मचाना, ये कूट युद्ध के लक्षण हैं। विष, औषध प्रयोग या गुप्तचरों के द्वारा वध या भेद कर देना-तूष्णी युद्ध कहाता है ॥ ४६-४७॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में संधियों के विषय के वर्णन का छठा अध्याय समाप्त हुआ ।



सातवां अध्याय

११३वां प्रकरण

द्वैधीभावकाः सन्धि विग्रहाः

इस प्रकरण में द्वैधी भाव से सम्बन्ध रखने वाले सन्धि और विग्रह की विवेचना की जावेगी।

विजिगीषुर्द्वितीयां प्रकृतिमेवमुपगृह्णीयात् ॥ १ ॥ सामन्तं सामन्तेन संभूय यायात् ॥ २ ॥ यदि वा मन्येत-पार्ष्णिं मे न ग्रहीष्यति ॥ ३ ॥ पार्ष्णिग्राहं वारयिष्यति ॥ ४ ॥ यातव्यं नाभिसरिष्यति ॥ ५ ॥ बलवद्द्वैगुण्यं

मे भविष्यति ॥ ६ ॥ जीवधासारौ मे प्रवर्तयिष्यति ॥ ७ ॥ परस्य वारयिष्यति ॥ ८ ॥ वह्वावाधे मे पथि कण्टकान्मर्दयिष्यति ॥ ९ ॥ दुर्गाटव्यपसारेषु दण्डेन चरिष्यति ॥ १० ॥ यातव्यमविषह्ये दोषे संधौ वा स्थापयिष्यति ॥ ११ ॥ लब्धलाभांशो वा शत्रूनन्यान्मे विश्वासयिष्यतीति ॥ १२ ॥

विजयाभिलाषी राजा दूसरे राजा से इस प्रकार मेल जोल बढ़ावे। एक सामन्त से मिलकर दूसरे सामन्त पर चढ़ाई करनी चाहिए। जब राजा को यह निश्चय हो जावे, कि यह सामन्त मेरे पीछे ।आक्रमण नहीं करेगा, प्रत्युत जो आक्रमण करेगा, उसे ही रोकेगा। जिस पर मैं चढ़ाई कर रहा हूं। उसका साथ नहीं देगा, मेरा बल बहुत बढ़ जावेगा। इसके साथ होने से धान्य और मित्र सेना की मेरे देश में आमद होती रहेगी तथा शत्रु के देश में ये वस्तु जाने से रोक देगा। जब मेरे मार्ग में बहुत सी बाधा खड़ी होगी-तो उन सारे कण्टकों को यह दूर कर देगा। दुर्गाध्यक्ष, वनचर जाति तथा अन्य के आक्रमण के समय सेना द्वारा सहायता करेगा। किसी बहुत बड़ी बुराई के खड़े हो जाने पर आक्रमण किये हुए राजा से सन्धि कराने में प्रवृत्त होगा। जब इसको अपना बँटवारा मिल जावेगा, तब यह अन्य शत्रुओं में भी मेरा विश्वास स्थापन कर देगा, तो उससे सन्धि कर लेनी चाहिए ॥१-१२॥

द्वैधीभूतो वा कोशेन दण्डं दण्डेन कोशं सामन्तानामन्यतमाल्लिप्सेत ॥ १३ ॥ तेषां ज्यायसो ऽधिकेनांशेन समात्समेन हीनाद्धीनेनेति समसंधिः ॥ १४ ॥ विपर्यये विषमसंधिः ॥ १५ ॥ तयोर्विशेषलाभादतिसंधिः ॥ १६ ॥

जब राजा एक से सन्धि और दूसरे से विग्रह छेड़ देवे-तो कोश से सेना और सेना से कोश किसी दूसरे सामन्त से ग्रहण कर ले। इनमें जो अधिक शक्तिशाली हो; उसको अधिक अंश, जिसमें समान शक्ति हो, उसको समभाग और जिसमें हीन शक्ति हो-उसको हीन भाग देकर सन्धि करे। ये तीनों सन्धियां-सम सन्धि कहाती हैं। अधिक शक्तिशाली को न्यून अंश, हीन शक्ति वाले को अधिक भाग, सम शक्तिशाली को हीन या अधिक भाग दे देना-विषम सन्धि कहाती है। इन दोनों सन्धियों में जब ठहरे हुए अंश से अधिक लाभ प्राप्ति हो-तो उसे अति सन्धि कहना चाहिए। ये सारी सन्धियां मिलकर अट्ठारह प्रकार की मानी गई हैं ॥१३-१६॥

व्यसनिनमपायस्थाने सक्तमनर्थिनं वा ज्यायांसं हीनो बलसमेन लाभेन पणेत ॥ १७ ॥ पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ १८ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ १९ ॥ एवं भूतो हीनशक्तिप्रतापपूरणार्थं संभाव्यार्थाभिसारी मूलपार्ष्णित्रा-

णार्थं वा ज्यायांसं हीनो बलसमाद्विशिष्टेन लाभेन पणेत ॥ २० ॥ पणितः कल्याणबुद्धिमनुगृह्णीयादन्यथा विक्रमेत ॥ २१ ॥

व्यसन में फंसे हुए, नाशकारी कार्यों में आसक्त, अनर्थ में लिपटे हुए, अधिक शक्तिशाली सामन्त से हीन शक्ति राजा, सेना के समान लाभ से ही सन्धि करे। जब सन्धि हो जावे और अधिक शक्तिशाली के साथ युद्ध करने की शक्ति हो जावे-तो उससे युद्ध छेड़ दे अन्यथा सन्धि करके चुपचाप बैठा रहे। इसी तरह अपनी शक्ति की हीनता को पूरी करने के लिए प्रतिष्ठा के उत्पन्न करने का अभिलाषी, हीन शक्ति धारी राजा अपने मूल दुर्ग या पीछे से रक्षा के निमित्त अधिक शक्तिशाली से सेना की अपेक्षा अधिक लाभ देकर भी सन्धि कर ले। जब सन्धि करने पर अपनी शक्ति बढ़ जावे और द्वितीय सामन्त की शुद्ध बुद्धि देखे-तो उससे मेल बनाये रखे अन्यथा उस पर चढ़ाई कर दे ॥१७-२१॥

ज्ञातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमुपस्थितानर्थं वा ज्यायांसं हीनो दुर्गमित्रप्रतिस्तब्धो वा ह्रस्वमध्वानं यातुकामः शत्रुमयुद्धमेकान्तसिद्धिं वा लाभमादातुकामो बलसमाद्धीनेन लाभेन पणेत पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ २२ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ २३ ॥

जिस राजा के मन्त्री आदि प्रकृतिजन, मृगया आदि व्यसनों में फंसे हुए हों, जिसके सन्मुख कोई विपत्ति खड़ी हो रही हो, ऐसे अधिक शक्तिशाली सामन्त पर भी हीन शक्ति धारी राजा, अपने दृढ़ दुर्ग और मित्रों के कारण मदोन्मत्त हुआ युद्ध नहीं करने वाले शत्रु पर थोड़ी दूर चढ़ाई करके अवश्यम्भावी लाभ के ग्रहण करने के लिए सेना की अपेक्षा हीन लाभ से ही सन्धि कर ले। जब सन्धि हो जावे और आगे चलकर आप शत्रु के अपकार में समर्थ हो जावे; तो उस पर चढ़ाई कर देवे अन्यथा चुपचाप सन्धि बनाये बैठा रहे ॥२२-२३॥

अरन्ध्रव्यसनो वा ज्यायान्दुरारब्धकर्माणं भूयः क्षयव्ययाभ्यां योक्तुकामो दूष्यदण्डं प्रवासयितुकामो दूष्यदण्डमावाहयितुकामो वा पीडनीयमुच्छेदनीयं वा हीनेन व्यथयितुकामः संधिप्रधानो वा कल्याणबुद्धिर्हीनं लाभं प्रतिगृह्णीयात् ॥ २४ ॥

जिस राजा को किसी विपत्ति या दोष ने नहीं घेर रखा है, ऐसा अधिक शक्तिशाली राजा, दुष्ट कार्य आरम्भ करने की इच्छा वाले शत्रु को फिर सेना के क्षय और धन के व्यय से युक्त करने के लिए तथा दूषित सेना के वीर पुरुष को निकालने के निमित्त, दूषित

सेना को फिर बुलाने के लिए एवं पीड़ा पहुंचाने योग्य या उच्छेद करने के योग्य, शत्रु को हीन बल वाले से क्लेशित करवाने को बुद्धिमान् राजा सन्धि को प्रधान माने और इस समय थोड़े लाभ को भी स्वीकार कर ले ॥२४॥

कल्याणबुद्धिना संभूयार्थं लिप्सेत ॥ २५ ॥ अन्यथा विक्रमेत॥ २६ ॥ एवं समः सममतिसंदध्यादनुगृह्णीयाद्वा ॥ २७ ॥ परानीकस्य प्रत्यनीकं मित्राटवीनां वा शत्रोर्विभूमीनां देशिकं मूलपार्ष्णित्राणार्थं वा समः समबलेन लाभेन पणेत ॥२८॥ पणितः कल्याणबुद्धिमनुगृह्णीयात् ॥२९॥ अन्यथा विक्रमेत ॥३०॥

थोड़ी शक्ति वाला सामन्त, उत्तम बुद्धि वाले राजा के साथ मिलकर अपने कार्य की सिद्धि की प्रतीक्षा करे। यदि विरोधी सामन्त की बुद्धि शुद्ध नहीं हुई हो-तो उससे युद्ध छेड़ देवे। इस प्रकार समशक्ति वाला सामन्त, सम शक्तिशाली सामन्त की कल्याण बुद्धि देखकर सन्धि या अनुग्रह करे। शत्रु की सेना तथा शत्रु के मित्र या आटविक लोगों की सेना के सांमुख्य (मुकाविले) में समर्थ, शत्रु की भूमि को नक्शों से जान लेने वाला, अपने मूल देश की पार्ष्णिग्राहों द्वारा रक्षा का अभिलाषी होकर समान सेना धारी राजा समान लाभ के साथ सन्धि कर ले। यदि सन्धि के अनन्तर उत्तम व्यवहार देखे-तो उस पर अनुग्रह रखे अन्यथा चढ़ाई कर दे ॥२५-३०॥

जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमनेकविरुद्धमन्यतो लभमानो वा समःसमबलाद्धीनेन लाभेन पणेत ॥ ३१ ॥ पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ ३२ ॥ अन्यथा संध्यात् ॥ ३३ ॥

मन्त्री आदि प्रकृति के कोप या व्यसन में फंसे हुए, अनेक राजाओं के विरोधी समान व्यक्ति से किसी अन्य कारण से सिद्धि प्राप्त हुए, समान बलधारी राजा थोड़े से लाभ से भी सन्धि कर ले। जब सन्धि हो जावे और स्वयं शक्तिशाली होकर विरोधी राजा के अपकार में समर्थ हो सके-तो उस पर चढ़ाई करदे। यदि शक्तिशाली न हो सका हो, तो चुपचाप सन्धि करके बैठा रहे ॥३१-३३॥

एवंभूतो वा समः सामन्तायत्तकार्यः कर्तव्यबलो वा बलसमाद्विशिष्टेन लाभेन पणेत ॥३४॥ पणितः कल्याणबुद्धिमनुगृह्णीयात् ॥ ३५ ॥ अन्यथा विक्रमेत ॥ ३६ ॥

इसी प्रकार की विपत्ति से युक्त समान शक्तिशाली, राजा अपने सामन्त के अधीन कार्य करके और अपने कर्तव्य में सेना को लगाकर समान बल वाले से अधिक की शर्त करके सन्धि करे। जब सन्धि हो चुकी और स्वयं अधिक बलशाली हो गया हो तथा

अपने विरोधी को शुद्ध वृद्धि देख रहा हो-तो उससे मेल रखे अन्यथा उससे युद्ध कर बैठे ॥३४-३६॥

जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमभिहन्तुकामः स्वारब्धमेकान्तसिद्धिं वास्य कर्मोपहन्तुकामो मूले यात्रायां वा प्रहर्तुकामो यातव्याद्भूयो लभमानो वा ज्यायांसं हीनं समं वा भूयो याचेत ॥ ३७ ॥

जिस राजा के मन्त्री आदि कुपित हो रहे हों या व्यसन में फंसे हो, उसको नष्ट करने के अभिलाषी तथा अच्छी तरह आरम्भ किये हुए कार्यों को अवश्य फलदायी देखकर उनके विगाड़ने के इच्छुक, चढ़ाई करने पर राजा पर पीछे से आक्रमण करने के अभिलाषी, जिस पर चढ़ाई की हो, उससे अधिक धन के पाने की आशा वाला राजा, अधिक बलशाली, हीनवल या समान वल वाले के साथ अधिक लाभ की शर्त से सन्धि करे ॥३७॥

भूयो वा याचितः स्वबलरक्षार्थं दुर्धर्षमन्यदुर्गमासारमटवीं वा परदण्डेन मर्दितुकामः प्रकृष्टेऽध्वनि काले वा परदण्डं क्षयव्ययाभ्यां योक्तुकामः परदण्डेन वा विवृद्धस्तमेवोच्छेत्तुकामः परदण्डमादातुकामो वा भूयो दद्यात् ॥ ३८ ॥

अपनी सेना की रक्षा के लिए अथवा दुर्गम शत्रु के दुर्ग, मित्र वल और वनवासी जाति को सामन्त के वल पर कुचल देने का अभिलाषी, दूरगामी मार्ग या लम्बे समय में दूसरे सामन्त की सेना को क्षय और भय से युक्त करने का इच्छुक दूसरे की सेना से वढ़ा हुआ, उसी के नष्ट करने की चाह वाला अथवा दूसरे सामन्त की सेना को अपनी ओर करने के दावपेंच में लगा हुआ राजा, अधिक लाभ देने की शर्त भी मान कर सन्धि कर ले ॥३८॥

ज्यायान् वा हीनं यातव्यापदेशेन हस्ते कर्तुकामः परमुच्छिद्य वा यमेवोच्छेत्तुकामस्त्यागं वा कृत्वा प्रत्यादातुकामो बलसमाद्विशिष्टेन लाभेन पणेत ॥ ३९ ॥ पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ ४०॥ अन्यथा संदध्यात् ॥४१॥

हीन शक्तिशाली को चढ़ाई करने योग्य राजा पर भेजने के वहाने अपने वश में लाने का इच्छुक, उसी हीन वल के द्वारा शत्रु का उच्छेद करके फिर उसके भी उच्छेद में तत्पर तथा दिये हुए अंश के वापिस लेने को यत्नशील हुआ अधिक शक्तिशाली राजा समान शक्तिशाली से भी अधिक लाभ देने की प्रतिज्ञा करके सन्धि कर ले। जब सन्धि हो चुकी और अपना वल वढ़ गया-तो उस पर चढ़ाई कर दे अन्यथा चुपचाप सन्धि की शर्तों को निभाता रहे ॥३९-४१॥

यातव्यसंहितो वा तिष्ठेत् ॥ ४२ ॥ दूष्यामित्राटवीदण्डं वास्मै दद्यात् ॥ ४३ ॥ जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रो वा ज्यायान्हीनं बलसमेन लाभेन पणेत ॥४४॥ पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ ४५ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ ४६ ॥

यदि चढ़ाई किये हुए राजा से सन्धि करने में कल्याण हो, तो उससे सन्धि करके स्थित हो जावे। यदि सेना देनी हो-तो अपने से बिगड़े हुए शत्रु या वनवासी भीलों की सेना उसे सौंप दे। यदि अधिक शक्तिशाली राजा के मंत्री आदि प्रकृति जन कुपित हों और उसे किसी तरह का व्यसनउपस्थित हो गया हो-तो वह हीन बल वाले राजा से भी समान बल वाले के समान लाभ से सन्धि कर ले। जब सन्धि हो गई और अपनी विपत्ति टल गई-तो उस पर आक्रमण करे अन्यथा चुपचाप बैठा रहे ॥४२-४६॥

एवंभूतं वा हीनं ज्यायान्बलसमाद्धीनेन लाभेन पणेत ॥ ४७॥ पणितस्तस्यापकरणसमर्थो विक्रमेत ॥ ४८ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ ४९ ॥

प्रकृति के कोप से संयुक्त तथा व्यसन वाले हीन शक्ति राजा से शक्तिशाली राजा उसकी सेना से न्यून लाभ देकर सन्धि करे। जब सन्धि हो गई और वह ठीक २ रहा-तो रहने दे-नहीं तो अपनी शक्ति देखकर उसपर चढ़ाई कर दे। यदि शक्ति अधिक न हो-तो चुप बैठा रहे ॥४७-४९॥

आदौ बुद्ध्येत पणितः पणमानश्च कारणम् ।
ततो वितर्क्योभयतो यतः श्रेयस्ततो व्रजेत् ॥ ५० ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे संहित प्रयाणिकं द्वैधीभावकाः सधिविक्रमाः सप्तमो ऽध्यायः ॥ ७ ॥ आदितः पञ्चशतः ॥ १०५ ॥

जो सन्धि कर चुका और जो सन्धि करने वाला है, ये प्रथम संधि के कारणों पर विचार करें। इन दोनों के कारणों पर अच्छी तरह तर्क वितर्क करके जिसमें कल्याण दिखाई दे-उसी प्राचीन या नवीन संधि का आश्रय लेवे ॥५०॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में एक साथ चढ़ाई करने तथा द्वैधी भाव और संधि विग्रह के नियमों के वर्णन का सातवां अध्याय समाप्त हुआ



आठवां अध्याय

११४-११५वां प्रकरण

यातव्य वृत्तिः अनुग्राह्य मित्रविशेषाः

इस प्रकरण में चढ़ाई की जाने वाले राजा के व्यवहार तथा अनुग्रह योग्य मित्रों के साथ विशेष व्यवहारों का वर्णन किया जावेगा।

यातव्योऽभियास्यमानः संधिकारणमादातुकामो विहन्तुकामो वा सामवायिकानामन्यतमं लाभद्वैगुण्येन पणेत ॥ १ ॥ प्रपणितः क्षयव्ययप्रवासप्रत्यवायपरोपकारशरीराबाधांश्चास्य वर्णयेत् ॥ २ ॥ प्रतिपन्नमर्थेन योजयेत् ॥ ३ ॥ वैरं वा परैर्ग्राहयित्वा विसंवादयेत् ॥ ४ ॥

जिस राजा पर कोई चढ़ाई करना चाहता है, वह राजा ही यदि चढ़ाई करे और सन्धि के कारणों को चाहे वह स्वीकार करना चाहे या भीतर से अस्वीकार करता हो, कुछ भी हो, परन्तु वह प्रथम इकट्ठे हुए विरोधी राजाओं में से किसी एक को दुगुना लाभ देने की प्रतिज्ञा करके सन्धि कर ले। जब सन्धि हो जावे, तो राजा उस सामन्त के सन्मुख सेना का नाश, धन का व्यय, प्रवास, मार्ग के विघ्न, परोपकार और शरीर की बाधा तक रख दे। जब वह सब कुछ स्वीकार करले-तो उसको स्वीकार किया हुआ धन दे देवे। यदि वह सन्धि करना स्वीकार न करें-तो अन्यों के साथ उसका झगड़ा कराकर उसे झंझट में डाल देवे ॥ १-४ ॥

दुरारब्धकर्मणां भूयः क्षयव्ययाभ्यां योक्तुकामः स्वारब्धां वा यात्रासिद्धं विघातयितुकामो मूले यात्रायां वा प्रतिहन्तुकामो यातव्यसंहितः पुनर्याचितुकामः प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छ्रस्तस्मिन्नविश्वस्तो वा तदात्वे लाभमल्पमिच्छेत् ॥ ५ ॥

दुष्ट कामों के आरम्भ करने वाले सामन्त को सेना नाश और अधिक व्यय की झंझट में डालने का अभिलाषी राजा, इस समय थोड़े से लाभ पर भी सन्धि कर सकता है। विरोधी ने अच्छे प्रकार से अपने काम को आरम्भ किया है, इस से अवश्य सिद्धि होगी, परन्तु जो राजा विरोधी की इस युद्ध यात्रा सिद्धि को नष्ट करना चाहता है, वह थोड़े लाभ से ही दूसरे सामन्त से सन्धि करने को तय्यार हो जावे। जब विरोधी ने युद्ध यात्रा कर दी और इसी समय उसके प्रधान दुर्ग पर राजा आक्रमण करना चाहता है, तो वह थोड़े लाभ पर ही सन्धि कर लेवे। जो आक्रमण करने के लक्ष्मी भूत राजा से बार २ धन मांगना चाहता है, वह प्रथम थोड़े

ही लाभ पर उससे सन्धि करे। जिस राजा को अर्थ कष्ट उपस्थित हो, वह भी थोड़े से लाभ पर सन्धि कर सकता है, परन्तु सर्वदा विरोधी का विश्वास न करके आगे चले ॥५॥

आयत्यां प्रभूतं मित्रोपकारममित्रोपघातमर्थानुबन्धमवेक्षमाणः पूर्वोपकारकं कारयितुकामो भूयस्तदात्वे महान्तं लाभमुत्सृज्यायत्यामल्पमिच्छेत् ॥६॥

भविष्य में किसी विशेष फल की सम्भावना, मित्र का उपकार, शत्रु का नाश, स्वार्थ सिद्धि का अनुबन्ध, पूर्व में उपकार करने वाले को अधिक लाभ कराने की इच्छा को रखने वाला राजा, वर्तमान काल के अधिक लाभ को छोड़ कर भविष्य के थोड़े लाभ को भी स्वीकार कर ले ॥ ६ ॥

दूष्यामित्राभ्यां मूलहरेण वा ज्यायसा विगृहीतं त्रातुकामस्तथाविधमुपकारं कारयितुकामः संबन्धावेक्षी वा तदात्वे चायत्यां च लाभं न प्रतिगृह्णीयात् ॥ ७ ॥ कृतसंधिरतिक्रमितुकामः परस्य प्रकृतिकर्शनं मित्रामित्रसंधिविश्लेषणं वा कर्तुकामः पराभियोगाच्छङ्कमानो लाभमप्राप्तमधिकं वा याचेत ॥ ८ ॥ तमितरस्तदात्वे चायत्यां च क्रममपेक्षेत ॥ ९ ॥ तेन पूर्वे व्याख्याताः ॥ १० ॥

अपने से विगड़े हुए, सामन्त शत्रु और दुर्ग छीनने वाले बलवान् व्यक्ति से भिड़े हुए, अपने साथी की रक्षा का इच्छुक और इस प्रकार के उपकार से उपकृत करने का अभिलाषी राजा, अपने सम्बन्ध को विचार कर वर्तमान या भविष्य में कुछ भी लाभ की इच्छा न करके भी सन्धि कर ले। जब सन्धि हो जावे और शत्रु पर आक्रमण की इच्छा शेष हो, शत्रु के मन्त्री आदि प्रकृति जनों को क्षीण करने और विरोधी की मित्र या शत्रु से हुई सन्धि के नष्ट करने की इच्छा हो, अपने ऊपर शत्रु के आक्रमण की आशङ्का उठाता हुआ अपने उस पूर्व सम्बन्धी से नहीं लिए हुए लाभ या उससे भी अधिक लाभ की मांग उपस्थित कर दे। इस बात के वर्तमान या भविष्य में अपने हितकारी होने की वह सम्बन्धी भी सोच ले। इसी तरह पूर्व के पक्षों में भी समझ लेना चाहिए ॥ ७-१० ॥

अरिविजिगीष्वोस्तु स्वं स्वं मित्रमनुगृह्णतोः शक्यकल्यभव्यारम्भिस्थिरकर्मानुरक्तप्रकृतिभ्यो विशेषः ॥ ११ ॥ शक्यारम्भी विषह्यं कर्मारभेत ॥ १२ ॥ कल्यारम्भी निर्दोषम् ॥ १३ ॥ भव्यारम्भी कल्याणोदयम् ॥ १४ ॥ स्थिरकर्मा नासमाप्य कर्मोपरमते ॥ १५ ॥ अनुरक्तप्रकृतिः सुसहायत्वादल्पेनाप्यनुग्रहेण कार्यं साधयति ॥ १६ ॥ त एते कृतार्थाः सुखेन प्रभूतं चोपकुर्वन्ति ॥ १७ ॥ अतः प्रतिलोमे नानुग्राह्यः ॥ १८ ॥

योद्धा प्रति योद्धा राजा, अपने २ मित्रों पर विशेष अनुग्रह करते रहें। उनमें शक्यारम्भी, कल्यारम्भी, भव्यारम्भी, स्थिरकर्मा और अनुरक्त प्रकृति पर विशेष तौर पर अनुग्रह करे। जो मित्र अपने कर सकने योग्य कार्य का मित्र के निमित्त आरम्भ कर देता है, वह शक्यारम्भी कहाता है। जो दोषहीन कार्य का आरम्भ कर दे, वह कल्यारम्भी, जो भविष्य में कल्याणकारी कार्य का आरम्भ करदे, वह भव्यारम्भी, मित्र के उपकार के कार्य को आरम्भ करके पूरा करने वाला, स्थिरकर्मा और अच्छी सहायता वाला होने से थोड़े भी परिचयसे अधिक काम कर देने वाला अनुरक्त प्रकृति मित्र कहाता है। यदि इनका कुछ भी उपकार कर दिया जावे, तो ये शक्यारम्भी आदि मित्र उसके बदले में बहुत बड़ा उपकार कर सकते हैं। इनसे विपरीत स्वभाव वाले पुरुषों पर कोई अनुग्रह नहीं करना चाहिए ॥ ११-१८ ॥

तयोरेकपुरुषानुग्रहे यो मित्रं मित्रतरं वानुगृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥१९॥ मित्रादात्मवृद्धिं हि प्राप्नोति ॥ २० ॥ क्षयव्ययप्रवासपरोपकारानितरः॥ २१ ॥ कृतार्थश्च शत्रुर्वैगुण्यमेति ॥ २२ ॥ मध्यमं त्वनुगृह्णतोर्यो मध्यमं मित्रं मित्रतरं वानुगृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ २३ ॥ मित्रादात्मवृद्धिं हि प्राप्नोति क्षयव्ययप्रवास परोपकारानितरः ॥ २४ ॥

शत्रु और मित्र में किसी एक पर अनुग्रह करना हो-तो मित्र या अधिक मित्र पर ही करना चाहिए-इसी से अपने कार्य की सिद्धि होती है, क्योंकि मित्र से ही अपनी वृद्धि हो सकती है। यदि शत्रु पर उपकार किया जावेगा, तो उसमें व्यर्थ जन नाश, धन व्यय, प्रवास कष्ट और शत्र का उपकार होगा। जब उसका स्वार्थ सिद्ध हो जावेगा, तो वह फिर विगड़ जावेगा। यदि मध्यम राजा पर अनुग्रह करना है, तो भी जो अपना मित्र या गाढ़ा मित्र हो, उसी पर अनुग्रह किया जावे, इसी से कार्य की सिद्धि है। मित्रसे अपनी वृद्धि और शत्रु से जन नाश, धन व्यय, प्रवास और शत्रु के उपकार के सिवाय कुछ भी लाभ नहीं है॥ १९-२४ ॥

मध्यमश्चेदनुगृहीतो विगुणः स्यादमित्रो ऽतिसंधत्ते ॥ २५ ॥ कृतप्रयासं हि मध्यमामित्रमपसृतमेकार्थोपगतं प्राप्नोति ॥ २६ ॥ तेनोदासीनानुग्रहो व्याख्यातः ॥ २७ ॥ मध्यमोदासीनयोर्बलांशदाने यः शूरं कृतास्त्रं दुःखसहमनुरक्तं वा दण्डं ददाति सो ऽतिसंधीयते ॥ २८ ॥ विपरीतो ऽतिसंधत्ते ॥ २९ ॥

यदि मध्यम पर अनुग्रह किया और वह बिगड़ गया-तो शत्रु से जा मिलेगा, क्योंकि मध्यम शत्रु सदा से उससे मिलने की चेष्टा कर रहा होता है। जब इनका एक स्वार्थ हो गया-तो ये दोनों मिलने ही ठहरे। इसी प्रकार उदासीन पर किये हुए अनुग्रह की दशा समझो। मध्यम और उदासीन राजाओं को जो सेना देने के समय शूर वीर अस्त्र विद्या में निपुण, दुःख सह लेने वाले, अनुरक्त वीरों को दे देता है, वह धोखा खाता है। जो इस प्रकार अपनी सेना नहीं देता, वही अपना कार्य बनाने में समर्थ होता है ॥ २५-२६ ॥

यत्र तु दण्डः प्रतिहतस्तं वा चार्थमन्यांश्च साधयति तत्र मौलभृतश्रेणी-मित्राटवीबलानामन्यतममुपलब्धदेशकालं दण्डं दद्यात् ॥ ३० ॥ अमित्राटवीबलं वा व्यवहितदेशकालम् ॥ ३१ ॥ यं तु मन्येत कृतार्थो मे दण्डं गृह्णीयाद-मित्राटव्यभूम्यनृतुषु वा वासयेदफलं वा कुर्यादिति दण्डव्यासङ्गापदेशेनैनमनु-गृह्णीयात् ॥ ३२ ॥

जिस कार्य की सिद्धि के लिए सेना भेजी गई और वह मारी गई और अभी वही कार्य अवश्य सिद्ध करना है, तो उसके निमित्त, मौलबल, भृतबल, श्रेणीबल, मित्रबल, और अटवीबल में से देशकाल के अनुसार किसी बल (सेना) को भेज देवे। यदि देश काल की दूरी हो अर्थात् दूर जाना हो और विलम्ब में कार्य होता दिखाई दे-तो वहां शत्रुबल या जंगली जाति के बल को भेजे। जब राजा देखे, कि यह सहायता चाहने वाला सामन्त अपने कार्य के सिद्ध होने पर मेरी सेना को भी हड़प कर जावेगा या शत्रु, जंगल, दुर्गम प्रदेश या दुःखदायी स्थानों में रखेगा अथवा अन्त में उसको कुछ भी धन आदि न देकर निष्फल लौटावेगा, तो ऐसे मनुष्य से सेना के विषय में कोई बहाना बनाकर प्रतिषेध (इनकार) कर देना चाहिए ॥३०-३२॥

एवमवश्यं त्वनुगृहीतव्ये तत्कालसहमस्मै दण्डं दद्यात् ॥ ३३ ॥ आसमाप्तेश्चैनं वासयेद्योधयेच्च बलव्यसनेभ्यश्च रक्षेत् ॥ ३४ ॥ कृतार्थाच्च सापदेशमपस्रावयेत् ॥ ३५ ॥ दूष्यामित्राटवीदण्डं वास्मै दद्यात् ॥ ३६ ॥ यातव्येन वा संधायैनमतिसंदध्यात् ॥ ३८ ॥

यदि ऐसे राजा को भी किसी कारण से अवश्य सहायता देनी पड़े, तो उस समय पर काम दे देने वाली साधारण सेना उसको दे देवे। जब तक उनका कार्य न हो लेवे-उसके अच्छे स्थान में रहने तथा लड़ने और सेना के कष्टों से बचाता रहे। जब उसका काम पूरा हो जावे, तो झटपट कुछ बहाना बनाकर अपनी सेना को लेकर चला आवे।

यदि हो सके-तो जिस पर आप असन्तुष्ट हो, उस राजा या शत्रु अथवा जंगली मनुष्यों की सेना उसे देवे। आक्रमण किये जाने वाले राजा से गुपचुप सन्धि करके फिर इससे सन्धि कर ले अर्थात् इस तरह उस यातव्य राजा से अपनी सेना बचाये रखे ॥३३-३७॥

समे हि लाभे संधिः स्याद्विषमे विक्रमो मतः।
समहीनविशिष्टानामित्युक्तः संधिविक्रमः ॥ ३८ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे यातव्यवृत्तिरनुग्राह्यमित्रविशेषा अष्टमो ऽध्यायः ॥ ८॥ आदितः षट्छतः ॥ १०६ ॥

यदि दोनों का समान लाभ होता दिखाई देवे-तो सन्धि होनी चाहिए और अपना कम लाभ हो-तो युद्ध करना चाहिए। समहीन और अधिक बल वाले सबका सन्धि के विषय में यही नियम है ॥३८॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में चढ़ाई करने योग्य राजा के साथ व्यवहार और अनुग्रह करने योग्य मित्रों के वर्णन का आठवां अध्याय समाप्त हुआ।

नवां अध्याय

११६वां प्रकरण

मित्र हिरण्य भूमि कर्म सन्धयः।

इस प्रकरण में मित्र, हिरण्य, भूमि और कर्मो के द्वारा की गई सन्धियों का वर्णन किया जावेगा।

संहितप्रयाणे मित्रहिरण्यभूमिलाभानामुत्तरोत्तरो लाभः श्रेयान् ॥ १ ॥ मित्रहिरण्ये हि भूमिलाभाद्भवतो मित्रं हिरण्यलाभात् ॥ २ ॥ यो वा लाभः सिद्धः शेषयोरन्यतरं साधयति स श्रेयान् ॥ ३ ॥ त्वं चाहं च मित्रं लभावह इत्येवमादिभिः समसंधिः ॥ ४ ॥ त्वं मित्रमित्येवमादिभिर्विषमसंधिः ॥ ५ ॥ तयोर्विशेषलाभादतिसंधिः ॥ ६ ॥ समसधौ तु यः संपन्नं मित्रं मित्रकृच्छ्रे वा मित्रमवाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ७ ॥ आपद्धि सौहृदस्थैर्यमुत्पादयति ॥ ८ ॥

मिलकर चढ़ाई करने पर मित्र, सुवर्ण और भूमि का जो लाभ होता है, उनमें मित्र की अपेक्षा सुवर्ण और सुवर्ण की अपेक्षा भूमि का लाभ श्रेष्ठ है, क्योंकि भूमि लाभ से मित्र (राजा) और सुवर्ण का स्वयं लाभ हो जाता है और सुवर्ण से मित्र प्राप्ति हो

जाती है। इनमें जो लाभ हो जाय और यदि वह अन्य दो की सिद्धि का कारण बन जावे-तो वह लाभ सर्व श्रेष्ठ है। तुम और मैं दोनों को मित्र (सहायक राजा) का लाभ समान रूप से होगा-इस विचार से जो सन्धि की जावेगी-वह सम सन्धि कहाती है। तुम मित्र को प्राप्त करना और हम सुवर्ण और भूमि ले लेंगे-इस प्रकार ठहरा कर जो संधि की गई हो-वह विषमसन्धि होती है। इन समसन्धि और विषमसन्धि में निश्चित किये हुए अपने २ लाभ से जब दोनों को विशेष लाभ हो जावे, तो वह सन्धि अति सन्धि हो जाती है। जब समसन्धि में कोई राजा अपने मित्र को पा लेता है या विपत्तिग्रस्त मित्र की सहायता को पहुंच जाता है, तो वह अधिक लाभ प्राप्त करता है, क्योंकि आपत्ति मित्रता को दृढ़ बना देती है ॥१-८॥

मित्रकृच्छ्रेऽपि नित्यमवश्यमनित्यं वश्यं वेति ॥ ९ ॥ नित्यमवश्यं श्रेयः ॥ १० ॥ तद्ध्यनुपकुर्वदपि नापकरोतीत्याचार्याः ॥ ११ ॥ नेति कौटल्यः ॥ १२ ॥ वश्यमनित्यं श्रेयः ॥ १३ ॥ यावदुपकरोति तावन्मित्रं भवत्युपकार-लक्षणं मित्रमिति ॥ १४ ॥

मित्र की विपत्ति में जब उसकी सहायता की जाती है, तो उस समय कोई तो सदा को मित्र बन जाता है, पर वह रहता स्वतन्त्र है और कोई सदा को मित्रता की पाश में नहीं बँधता, परन्तु वश में हो जाता है। इनमें जो सदा को मित्र बन जाता है, चाहे वह अधीन नहीं होता-वही अच्छा है। वह यदि उपकार नहीं कर सकेगा, तो अपकार भी नहीं करेगा-ऐसा आचार्यों का मत है, परन्तु कौटल्याचार्य इस सिद्धान्त को नहीं मानते हैं, वे तो अपने अधीन रहने वाले राजा को उत्तम समझते हैं, चाहे वह सदा की मित्रता की डोरी में न बधें। जब तक उपकार करेगा-तब तक ही मित्र है। मित्र तो कहते ही उसे हैं-जो उपकार करता है ॥९-१४॥

वश्ययोरपि महाभोगमनित्यमल्पभोगं वा नित्यमिति ॥ १५ ॥ महाभोग-मनित्यं श्रेयः ॥ १६ ॥ महाभोगमनित्यमल्पकालेन महदुपकुर्वन्महान्ति व्ययस्था-नानि प्रतिकरोतीत्याचार्याः ॥ १७ ॥ नेति कौटल्यः ॥ १८ ॥ नित्यमल्पभोगं श्रेयः ॥ १९ ॥ महाभोगमनित्यमुपकारभयादपक्रामति ॥ २० ॥ उपकृत्य वा प्रत्यादातुमीहते ॥ २१ ॥ नित्यमल्पभोगं सातत्यादल्पमुपकुर्वन्महता कालेन महदुपकरोति ॥ २२॥

जब इस ढंग के दो राजा अपने अधीन होने लगे, जिनमें एक तो बहुत सा कर देने को तय्यार हो, परन्तु वह कर थोड़े ही देने की प्रतिज्ञा करे तथा दूसरा थोड़ी

कर सामग्री देवे-परन्तु वह सदा के लिए देना स्वीकार करे-तो इसमें किससे मिलना चाहिए-इसमें वहुत आचार्य कहते हैं, कि जो अधिक कर देवे-चाहे थोड़े दिन देवे-तो उससे ही सन्धि करनी चाहिए, क्योंकि अधिक लाभ महान् उपकार कर देता है और जो वड़े २ व्यय के स्थान हैं-उनको निवटा देता है, परन्तु कौटल्याचार्य इस मत को नहीं मानते हैं-वे तो सदा के लिए थोड़ा कर लेना ही उत्तम मानते हैं। जो अधिक द्रव्य देता है, वह अधिक धन देने के भय से शीघ्र मित्रता छोड़ देता है या देकर शीघ्र ही उसका वदला चुकना चाहता है। सदा किये जाने वाला थोड़ा उपकार भी वहुत दिन चलने के कारण थोड़ा २ उपकार पाता हुआ भी अधिक समय में जाकर महान् उपकार का कारण वन जाता है ॥१५-२२॥

गुरुसमुत्थं महन्मित्रं लघुसमुत्थमल्पं वेति ॥ २३ ॥ गुरुसमुत्थं महन्मित्रं प्रतापकरं भवति ॥ २४ ॥ यदा चोत्तिष्ठते तदा कार्यं साधयतीत्याचार्याः॥२५॥ नेति कौटल्यः ॥ २६ ॥ लघुसमुत्थमल्पं श्रेयः ॥ २७ ॥ लघुसमुत्थमल्पं मित्रं कार्यकालं नातिपातयति दौर्वल्याच्च यथेष्टभोग्यं भवति नेतरत्प्रकृष्टभौमम् ॥२८॥

वड़े प्रयत्न से सहायता करने वाला महान् मित्र अच्छा है या थोड़े से प्रयत्न से तय्यार होने वाला छोटा मित्र उत्तम है। इस विषय में आचार्यों का मत है, कि चाहे वड़े प्रयत्न से सहायक वने, परन्तु महाशक्ति मित्र ही प्रताप करने वाला होता है। ज्योंही यह उठता है, त्योंही कार्य वन जाता है, परन्तु कौटल्याचार्य का मत यह नहीं है। वे तो थोड़े प्रयत्न से सहायक वन जाने वाले छोटे मित्र को ही उत्तम मानते हैं। थोड़े प्रयत्न से उठने वाला छोटा मित्र कार्य के समय को नहीं खो देता है। वह दुर्वल होता है, इससे जहां इच्छा हो, वहां लगाया जा सकता है, परन्तु महाशक्ति मित्र ऐसा नहीं कर सकता है, यदि वह दूर रहता हो, तो विल्कुल ही कार्य में नहीं आ सकता है ॥२३-२८॥

विक्षिप्तसैन्यमवश्यसैन्यं वेति ॥ २९ ॥ विक्षिप्तं सैन्यं शक्यं प्रतिसंहर्तुं वश्यत्वादित्याचार्याः ॥ ३० ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ अवश्यसैन्यं श्रेयः ॥ ३२ ॥ अवश्यं हि शक्यं सामादिभिर्वश्यं कर्तुम् ॥ ३३ ॥ नेतरत्कार्यव्यासक्तं प्रतिसंहर्तुम् ॥ ३४ ॥

जिस मित्र राजा की सेना वश में हो, परन्तु वह भिन्न २ स्थानों में विखरी हो, वह मित्र अच्छा या जिसकी थोड़ी सेना चाहे वश में नहीं है, परन्तु पास में ही है, वह मित्र अच्छा है ? इसमें आचार्य उसी मित्र को अच्छा वताते हैं, जिसकी सेना वश में रहती है, चाहे वह भिन्न २ स्थानों में विखरी हुई क्यों न हो, क्योंकि वह सेना वश में होने से

शीघ्र इकट्ठी की जा सकती है, परन्तु कौटल्याचार्य इस मत को नहीं मानते हैं। वे तो अपने पास होने वाली सेना के अधिपति मित्र राजा को ही उत्तम समझते हैं, चाहे उसकी सेना वश में न होवे। जब आवश्यकता पड़ेगी, साम आदि उपायों से उसको अपने वश में कर लिया जावेगा, परन्तु बिखरी हुई सेना का इकट्ठा होना कठिन है, क्योंकि वह अन्य कार्य में लगी हुई है ॥२६-३४॥

पुरुषभोगं हिरण्यभोगं वा मित्रमिति ॥ ३५ ॥ पुरुषभोगं मित्रं श्रेयः ॥ ३६ ॥ पुरुषभोगं मित्रं प्रतापकरं भवति ॥ ३७ ॥ यदा चोत्तिष्ठते तदा कार्यं साधयतीत्याचार्याः ॥ ३८ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३६ ॥ हिरण्यभोगं मित्रं श्रेयः ॥४०॥ नित्यो हि हिरण्येन योगः कदाचिद्दण्डेन दण्डश्च हिरण्येनान्ये च कामाः प्राप्यन्त इति ॥ ४१ ॥

सेना द्वारा सहायता देने वाला मित्र या सुवर्ण द्वारा सहायता देने वाला मित्र अच्छा है ? तो आचार्य कहते हैं, कि सेना द्वारा सहायता करने वाला मित्र अच्छा है, जो सेना देकर सहायता करता है, वही प्रताप बढ़ाने वाला होता है। वह ज्योंही काम करने खड़ा होता है, त्योंही कार्य सिद्ध कर देता है, परन्तु कौटल्याचार्य इस मत के विरुद्ध हैं, वे तो सुवर्ण द्वारा सहायता करने वाले मित्र को उत्तम समझते हैं, क्योंकि सुवर्ण की सदा आवश्यकता रहती है। सेना की सहायता की तो कभी २ आवश्यकता होती है। सुवर्ण से तो सेना भी इकट्ठी की जा सकती है और अन्य काम भी निकाले जा सकते हैं ॥३५-४१॥

हिरण्यभोगं भूमिभोगं वा मित्रमिति ॥ ४२ ॥ हिरण्यभोगं गतिमत्त्वात्सर्वव्ययप्रतीकारकरमित्याचार्याः ॥ ४३ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ४४ ॥ मित्रहिरण्ये हि भूमिलाभाद्भवत इत्युक्तं पुरस्तात् ॥ ४५ ॥ तस्माद्भूमिभोगं मित्रं श्रेय इति ॥ ४६ ॥

सुवर्ण अर्पण करने वाला मित्र अच्छा या भूमि अर्पण करने वाला मित्र अच्छा मानना चाहिए। इस विषय में आचार्य, सुवर्ण द्वारा सहायता करने वाले मित्र को ही अच्छा बताते हैं, क्योंकि धन सब जगह पहुंच कर सहायता कर सकता है और सारे व्ययों के भार का हलका बना देता है, परन्तु कौटल्याचार्य इस मत को नहीं मानते। वे तो भूमि द्वारा सहायता करने वाले मित्र को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, क्योंकि सुवर्ण और मित्र दोनों भूमि से प्राप्त हो जाते हैं; यह प्रथम ही कही जा चुकी है। इससे भूमि की सहायता देने वाला मित्र उत्तम है ॥४२-४६॥

तुल्ये पुरुषभोगे विक्रमः क्लेशसहत्वमनुरागः सर्वबललाभो वा मित्रकुलाद्विशेषः ॥ ४७॥ तुल्ये हिरण्यभोगे प्रार्थितार्थता प्राभृत्यमल्पप्रयासता सातत्याच्च विशेषः ॥ ४८ ॥ तत्रैतद्भवति ॥ ४६ ॥

जब दो मित्र सेना से सहायता करने वाले हों-तो उनमें पराक्रमशाली, क्लेश सह लेने वाला, अनुरक्त, सारी सेना-देने में उत्साही, मित्र ही साधारण मित्र से श्रेष्ठ है। जब दो मित्र सुवर्ण से सहायता कर रहे हों-तो उनमें मांगते ही बहुत अधिक द्रव्य देने वाला थोड़ा, प्रयास कराने वाला और बहुत दिन तक सहायता देने वाला मित्र ही उत्तम है। इस विषय में यह सिद्धान्त है:— ॥ ४७-४६ ॥

नित्यं वश्यं लघूत्थानं पितृपैतामहं महत् ।
अद्वैध्यं चेति संपन्नं मित्रं षड्गुणमुच्यते ॥ ५० ॥

नित्य, वश्य, लघूत्थान, पितृ पैतामह, महत् और अद्वैध्य-ये छः प्रकार के मित्र अपने गुणों के भेद से पृथक् २ होते हैं ॥ ५० ॥

ऋते यदर्थं प्रणयाद्रक्ष्यते यच्च रक्षति ।
पूर्वोपचितसंबन्धं तन्मित्रं नित्यमुच्यते ॥ ५१ ॥

जो बिना-किसी धन के लालच से अपने पूर्व के बढ़े हुए सम्बन्धी की रक्षा करता है और समय पर मित्र की रक्षा में तत्पर होता है, वही नित्य मित्र कहाता है ॥ ५१ ॥

सर्वचित्रमहाभोगं त्रिविधं वश्यमुच्यते ।
एकतोभोग्युभयतः सर्वतोभोगि चापरम् ॥ ५२ ॥

सर्व भोग, चित्र भोग और महा भोग-ये तीन प्रकार का वश्य मित्र होता है। जो भूमि हिरण्य आदि समस्त वस्तुओं से सहायता करता है, वह सर्व भोग, जो केवल सेना या धन से ही उपकार करता है, वह महा भोग और जो तांबा, लोहा आदि से मित्र की सहायता करता है, वह मित्र भोग कहाता है। जो केवल शत्रु का प्रतिकार करे, वह एकतो भोगी, जो शत्रु और शत्रु के मित्र का प्रतीकार करे, वह उभय, भोगी और जो शत्रु उसके मित्र तथा आटविक आदि सब से रक्षा करता है, वह सर्वतो भोगी वश्य मित्र कहाता है ॥ ५२ ॥

आदातृ वा दातृपि वा जीवत्यरिषु हिंस्रया ।
मित्रं नित्यमवश्यं तद्दुर्गाटव्यपसारि च ॥ ५ ॥

जो राजा। से कुछ लेवे या न लेवे, परन्तु शत्रु राजा में मार काट करके अपना निर्वाह करता हो, वह दुर्ग या वन में घूमने वाला वीर पुरुष, नित्य मित्र होता है, यद्यपि वह वश्य नहीं है ॥ ५३ ॥

अन्यतो विगृहीतं वा लघुव्यसनमेव वा ।
संधत्ते चोपकाराय तन्मित्रं वश्यमध्रुवम् ॥ ५४ ॥

जब किसी का अन्य से युद्ध छिड़ जावे या अन्य कोई छोटी मोटी विपत्ति आ पड़े-तो अपने उपकार के निमित्त जो सन्धि करता है वह वश्य मित्र होता है, परन्तु यह अनित्य होता है। विना ही प्रयत्न के सेना से सहायता करने-वाला लवूत्यान, जो कुल क्रमागत मित्र हो, वह पितृ पैतामह, जो अत्यन्त सेना युक्त हो-वह महत् मित्र कहाता है ॥५४॥

एकार्थेनार्थसंबन्धमुपकार्यविकारि च ।
मित्रभावि भवत्येतन्मित्रमद्वैध्यमापदि ॥ ५५ ॥

जिनका परस्पर एक ही स्वार्थ सम्बन्ध हो, जो उपकारी और विकारहीन हो, आपत्ति में भी दूर नहीं होने वाला हो, यह अद्वैध्य मित्र कहाता है ॥ ५५ ॥

मित्रभावाद्ध्रुवं मित्रं शत्रुसाधारणाचलम् ।
न कस्यचिदुदासीनं द्वयोरुभयभावि तत् ॥ ५६ ॥

जो अपना मित्र होने से ध्रुव और शत्रु का मित्र होने से चल तथा किसी का भी मित्र न होने से उदासीन होता है, वह उभय भावी मित्र कहाता है ॥ ५६ ॥

विजिगीषोरमित्रं यन्मित्रमन्तर्धितां गतम् ।
उपकारे निविष्टं वा शक्तं वानुपकारि तत् ॥ ५७ ॥

जो विजय के लिए चढ़ाई करने वाले का शत्रु है और इसी राजा के शत्रुओं में फंसा होने से मित्र भी वनता है, जो शक्तिशाली होकर उपकार कर देता है या उपकार नहीं भी करता है, इस प्रकार यह दूसरे ढंग का उभय भावी मित्र माना गया है ॥५७॥

प्रियं परस्य वा रक्ष्यं पूज्यं संबन्धमेव वा ।
अनुगृह्णाति यन्मित्रं शत्रुसाधारणं हि तत् ॥ ५८ ॥

जो शत्रु का प्रिय, रक्षा के योग्य, पूज्य तथा सम्बन्धी है और अपना भी उपकार कर देता है, वह मित्र शत्रु में समान भाव रखने वाला शत्रु साधारण कहाता है ॥ ५८ ॥

प्रकृष्टभौमं संतुष्टं बलवच्चालसं च यत् ।
उदासीनं भवत्येतद्व्यसनादवमानितम् ॥ ५९ ॥

दूर देश में रहने वाला, सन्तोषी, वलवान् परन्तु आलसी और द्यूत आदि व्यसनों में फंसा हुआ मित्र समय पर सहायता नहीं कर सकता है ॥ ५९ ॥

अरेर्नेतुश्च यद्वृद्धिं दौर्बल्यादनुवर्तते ।
उभयस्याप्यविद्विष्टं विद्यादुभयभावि तत् ॥ ६० ॥

जो मित्र दुर्वल होने के कारण शत्रु और चढ़ाई करने वाले राजा दोनों की सहायता में तत्पर होता रहता है, और दोनों से द्वेष नहीं रखता, उसे तीसरा उभय भावी मित्र कहते हैं ॥ ६० ॥

कारणाकरण ध्वस्तं कारणाकरणागतम् ।
यो मित्रं समपेक्षेत स मृत्युमुपगूहति ॥ ६१ ॥

विना कारण छोड़कर गए हुए और विना कारण ही फिर आकर मिल जाने वाले मित्र को जो अपने यहां रख लेता है, वह मृत्यु से आलिङ्गन करता है ॥ ६१ ॥

क्षिप्रमल्पो लाभश्चिरान्महानिति वा ॥ ६२ ॥ क्षिप्रमल्पो लाभः कार्यदेश-कालसंवादकः श्रेयानित्याचार्याः ॥ ६३ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ६४ ॥ चिराद-विनिपाती बीजसधर्मा महांल्लाभः श्रेयान्विपर्यये पूर्वः ॥ ६५ ॥

शीघ्र होने वाला थोड़ा लाभ अच्छा या चिर काल में होने वाला महान् लाभ उत्तम है। आचार्य कहते हैं, कि शीघ्र होने वाला थोड़ा लाभ भी अच्छा है, जिससे प्रत्येक देश काल के कार्य के करने में सुभीता उत्पन्न हो जाता है, परन्तु कौटल्याचार्य इसको भी नहीं मानते, वह तो चिरकाल में होने वाला, स्थायी, महान् लाभ उत्तम है, क्योंकि वह बीज की तरह फलदायी होता है। यदि महान् लाभ में कोई आशङ्का हो तो पूर्वाचार्यों का मत ही उपादेय है ॥६२-६५॥

एवं दृष्ट्वा ध्रुवे लाभे लाभांशे च गुणोदयम् ।
स्वार्थसिद्धिपरो यायात्संहितः सामवायिकैः ॥ ६६ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मित्रहिरण्य भूमिकर्मसंधौ मित्रसंधिः हिरण्यसंधिः नवमो ऽध्यायः ॥ ९ ॥
आदितः सप्तशतः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार विजयेच्छुक राजा, निश्चित लाभ देखकर तथा थोड़े लाभ में गुणों का उदय विचार कर अन्य राजाओं के साथ सन्धि करता हुआ अपने स्वार्थ की सिद्धि करे ॥६६॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में मित्र और हिरण्य सन्धि के विचार का नौवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

दसवां अध्याय

११६वां प्रकरण

भूमिसन्धिः

इस अध्याय में भूमि सन्धि के विषय में वर्णन होगा।

त्वं चाहं च भूमिं लभावहे इति भूमिसंधिः॥ १ ॥ तयोर्यः प्रत्युपस्थितार्थः संपन्नां भूमिमवाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥ २ ॥ तुल्ये संपन्नालाभे यो बलवन्तमाक्रम्य भूमिमवाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ३ ॥ भूमिलाभं शत्रुकर्शनं प्रतापं च हि प्राप्नोति ॥ ४ ॥ दुर्बलाद्भूमिलाभे सत्यं सौकर्यं भवति ॥ ५ ॥ दुर्बल एव च भूमिलाभः तत्सामन्तश्च मित्रममित्रभावं गच्छति ॥ ६ ॥

तुम और हम विजय के अनन्तर इस प्रकार भूमि प्राप्त करेंगे इस शर्त से जो सन्धि की जाती है, वह भूमिसन्धि कहाती है। इन दोनों में जो अपना मतलब गांठ कर उत्तम २ भूमि ले लेता है, वह अपना काम ठीक बना लेता है। जब दोनों सन्धि कर्ताओं को उत्तम भूमि मिल जावे, तो इनमें जिसने बलवान् शत्रु पर आक्रमण करके भूमि प्राप्त की है उसका कार्य अधिक उचित रीति पर सिद्ध हुआ जानो, क्योंकि बलवान शत्रु के जीत लेने से भूमि लाभ, शत्रु पराजय और प्रताप वृद्धि ये तीन लाभ प्राप्त होते हैं। दुर्बल से भूमि छीनना यद्यपि सीधी बात है, परन्तु यह भूमि लाभ उत्तम नहीं माना जा सकता है, क्योंकि इस अनुचित आक्रमण से आक्रान्ता का सामन्त या मित्र ही शत्रु बनकर उस दुर्बल का सहायक बन जाता है ॥१-६॥

तुल्ये बलीयस्त्वे यः स्थितशत्रुमुत्पाट्य भूमिमवाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ७ ॥ दुर्गावाप्तिर्हि स्वभूमिरक्षणं मित्राटवीप्रतिषेधं च करोति ॥ ८ ॥ चलामित्राद्भूमिलाभे शक्यसामन्ततो विशेषः ॥९॥ दुर्बलसामन्ता हि क्षिप्राप्यायनयोगक्षेमा भवन्ति ॥१०॥ विपरीता बलवत्सामन्ता कोशदण्डावच्छेदिनी च भूमिर्भवति ॥ ११ ॥

जब दोनों युद्ध कर्ताओं की समान शक्ति या बल होता है, तो उस दृढ़ शत्रु को उखाड़ कर जो भूमि प्राप्त करता है यह एक उत्कृष्ट बात मानी जाती है, क्योंकि जब अधिक

दुर्ग प्राप्ति हो जाती है, तो अपनी भूमि की रक्षा और शत्रु के मित्र तथा वनचर भीलों के आक्रमण से अपनी रक्षा होना सुलभ हो जाता है। यदि इधर उधर घूमने वाले दुर्ग हीन अस्थिर शत्रु से भूमि प्राप्त करली तो तभी उत्तम होगा, जब शत्रु के पास शक्तिशाली सामन्त नहीं होंगे। दुर्बल सामन्त होने पर प्राप्त की हुई भूमि, शीघ्र ही योग क्षेमकरी हो जाती है। जब चल शत्रु के पास भी बलवान् सामन्त हों, तो बलवान् सामन्तों के रहने पर छीनी हुई भूमि, अपने कोश और सेना का नाश करने वाली सिद्ध होगी ॥७-११॥

संपन्ना नित्यामित्रा मन्दगुणा वा भूमिरनित्यामित्रेति ॥ १२ ॥ संपन्ना नित्यामित्रा श्रेयसी भूमिः ॥ १३ ॥ संपन्ना हि कोशदण्डौ संपादयति ॥ १४ ॥ तौ चामित्रप्रतिघातकावित्याचार्याः ॥ १५ ॥

विजिगीषुके लिये अत्यन्त समृद्धिशाली पर नित्य शत्रु से युक्त भूमि लेनी श्रेयस्कर है, अथवा अत्यल्प समृद्धिशाली अनित्य शत्रु से युक्त भूमि श्रेयस्कर है। इस विषय में प्राचीन आचार्यों का सिद्धान्त है कि अत्यन्त समृद्धिशाली नित्यशत्रुयुक्त भूमि ही श्रेयस्कर है। क्योंकि सम्पन्न भूमि के द्वारा कोश और सेना दोनों का संग्रह किया जा सकता है। तथा ये दोनों शत्रुओं का उच्छेद किया जा सकता है॥१५॥

नेति कौटल्यः ॥ १६ ॥ नित्यामित्रलाभे भूयांश्छत्रुलाभो भवति ॥ १७ ॥ नित्यश्च शत्रुरुपकृते चापकृते च शत्रुरेव भवति ॥ १८ ॥ अनित्यस्तु शत्रुरुपकारादनपकाराद्वा शाम्यति ॥१९॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता। वह कहता है कि नित्यशत्रुयुक्त भूमि के प्राप्त होने पर अत्यधिक शत्रु का विरोध हो जाता है। अर्थात् शत्रुता बढ़ती जाती है। क्योंकि जो नित्य शत्रु है, उसका चाहे उपकार किया जाय, या अपकार, वह शत्रु ही रहता है। अपनी सहज शत्रुता को कभी छोड़ नहीं सकता। परन्तु अनित्य शत्रु में यह बात नहीं देखी जाती, उसके साथ उपकार या अपकार करने से वह अवश्य ही शान्त हो जाता है। वह विजिगीषु का फिर अपकार नहीं कर सकता ॥१६-१९॥

यस्या हि भूमेर्बहुदुर्गाश्चोरगणैर्म्लेच्छाटवीभिर्वा नित्याविरहिताः प्रत्यन्ता सा नित्यामित्रा विपर्यये त्वनित्यामित्रेति ॥२०॥

जिस भूमि के सीमा प्रान्तों में होने वाले बहुत से दुर्ग, चोरों म्लेच्छों तथा आटविकों से सदा घिरे हुए रहते हों, वह भूमि 'नित्यामित्रा' कहाती है। और इससे विपरीत भूमि, अर्थात् जिसके सीमा प्रान्त के दुर्गों में चोर आदि न रहते हों, वह 'अनित्यामित्रा' कही जाती है ॥२०॥

अल्पा प्रत्यासन्ना महती व्यवहिता वा भूमिरिति ॥ २१ ॥ अल्पा प्रत्यासन्ना श्रेयसि ॥ २२ ॥ सुखा हि प्राप्तुं पालयितुमभिसारयितुं च भवति ॥२३॥ विपरीता व्यवहिता ॥ २४ ॥

प्राप्त होने वाली भूमियों में समीप की थोड़ी भूमि अच्छी होती है, या दूर की बहुत सी भूमि ? समीप की थोड़ी भी भूमि श्रेयस्कर होती है। क्योंकि सुकरता से उसकी प्राप्ति और रक्षा की जा सकती है तथा विपत्ति काल में उसका सहारा भी लिया जा सकता है। परन्तु बहुत दूर की भूमि इससे विपरीत ही होती है ॥२१-२४॥

व्यवहिताव्यवहितयोरपि दण्डधारणात्मधारणा वा भूमिरिति ॥ २५ ॥ आत्मधारणा श्रेयसी ॥ २६ ॥ सा हि स्वसमुत्थाभ्यां कोशदण्डाभ्यां धार्यते ॥ २७ ॥ विपरीता दण्डधारणा दण्डस्थानमिति ॥ २८ ॥

दूर और समीप की भूमि में भी, लेने के लिये पररक्षित भूमि अच्छी होती है, या स्वयं सुरक्षित भूमि अच्छी होती है ? स्वयं सुरक्षित भूमि ही अच्छी होती है। क्योंकि स्वयं स्थापित किये हुए कोश और सेना के द्वारा उसकी सुव्यवस्था की जा सकती है। परन्तु पररक्षित भूमि इसके विपरीत होती है। दूसरे से स्थापित किये हुए कोश और सना के द्वारा उसकी व्यवस्था की जाती है। वह केवल अपनी रक्षा के लिए दूसरे से स्थापित की हुई सेना के निवास का एक स्थान मात्र होती है ॥२५-२८॥

बालिशात्प्राज्ञाद्वा भूमिलाभ इति ॥ २९ ॥ बालिशाद्भूमिलाभः श्रेयान् ॥ ३० ॥ सुप्राप्यानुपाल्या हि भवत्यप्रत्यादेया च ॥ ३१ ॥ विपरीता प्राज्ञादनुरक्तेति ॥ ३२ ॥

मूर्ख शत्रु से भूमि का लाभ होना अच्छा है या बुद्धिमान् से ? मूर्ख शत्रु राजा से भूमि का मिलना श्रेयस्कर है। क्योंकि वह बड़ी सरलता से प्राप्त हो जाती है। और उसकी रक्षा भी सुखपूर्वक की जा सकती है। तथा उसके फिर वापस लौटने की भी शङ्का नहीं रहती परन्तु बुद्धिमान् से प्राप्त हुई भूमि सर्वथा इसके विपरीत होती है। क्योंकि उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन, तथा अन्य प्रजावर्ग, उसमें सदा अनुराग रखने वाले होते हैं। ऐसी अवस्था में यदि वह भूमि किसी तरह कठिनता से ले भी लीजाय फिर भी उसके वापस होने की शङ्का बनी ही रहती है ॥२९-३२॥

पीडनीयोच्छेदनीययोरुच्छेदनीयाद्भूमिलाभः श्रेयान् ॥ ३३ ॥ उच्छेदनीयो ह्यनपाश्रयो दुर्बलापाश्रयो वाभियुक्तः कोशदण्डावादायापसर्तुकामः प्रकृतिभिः त्यज्यते ॥ ३४ ॥ न पीडनीयो दुर्गमित्रप्रतिस्तब्ध इति ॥ ३५ ॥

पीडनीय (शत्रु आदि के द्वारा पीड़ित किया जाने वाला) और उच्छेदनीय (सर्वथा उच्छिन्न किया जाने वाला) इन दोनों में से उच्छेदनीय से भूमि का लाभ होना श्रेयस्कर है। क्योंकि निराश्रय या दुर्बल का आश्रय प्राप्त किये हुए उच्छेदनीय के ऊपर जब आक्रमण किया जाता है, तो वह कोश और सेना लेकर अपने स्थान से भाग जाने की इच्छा करता है। ऐसी अवस्था में प्रकृति जन उसकी सहायता नहीं करते, उसे छोड़ देते हैं। परन्तु पीडनीय, दुर्ग और मित्रों की सहायता प्राप्त करके, अपने स्थान पर ही स्थित रहता है, इसी लिये प्रकृतिजन उसका त्याग नहीं करते ॥३३-३५॥

दुर्गप्रतिस्तब्धयोरपि स्थलनदीदुर्गीयाभ्यां स्थलदुर्गीयाद्भूमिलाभः श्रेयान् ॥ ३६ ॥ स्थलीयं हि सुरोधावमर्दास्कन्दमनिस्राविशत्रु च ॥ ३७ ॥ नदीदुर्गं तु द्विगुणक्लेशकरमुदकं च पातव्यं वृत्तिकरं चामित्रस्य ॥ ३८ ॥

स्थल दुर्गधारी या नदी दुर्गधारी इन दो शत्रुओं में जो भूमि स्थल दुर्गधारी की प्राप्त हो जाती है, वह उत्तम मानी गई है, क्योंकि स्थल के दुर्ग को अच्छी तरह घेरा जा सकता है। उसका उच्छेद कर देना भी सुलभ है और न वहां से शत्रु राजा भाग ही सकता है, परन्तु नदी दुर्ग तो दुगुना क्लेशदायी होता है। वहां पीने योग्य जल और निर्वाह करने योग्य फल आदि, घेरा डालने पर भी शत्रु को मिलते ही रहेंगे ॥३६-३८॥

नदीपर्वतदुर्गीयाभ्यां नदीदुर्गीयाद्भूमिलाभः श्रेयान् ॥ ३९ ॥ नदीदुर्गं हि हस्तिस्तम्भसंक्रमसेतुबन्धनौभिः साध्यमनित्यगाम्भीर्यमपस्राव्युदकं च ॥ ४० ॥ पार्वतं तु स्वारक्षं दुरवरोधि कृच्छ्रारोहणं भग्ने चैकस्मिन्न सर्ववधः ॥४१॥ शिलावृक्षप्रमोक्षश्च महापकारिणाम् ॥ ४२ ॥

यदि नदी दुर्ग और पर्वत दुर्ग से टक्कर आ पड़े-तो पर्वत दुर्ग की अपेक्षा नदी दुर्ग से भूमि लाभ कर लेना श्रेयस्कर है। क्योंकि नदी दुर्ग, हाथी, लकड़ी के स्तम्भ, बेड़े, पुल और नौकाओं से जीता जा सकता है। नदी के दुर्गों में स्थायी गंभीरता नहीं होती वहां नदी के किनारे तोड़कर जल बहाकर कम भी किया जा सकता है, परन्तु पर्वत का दुर्ग बड़ा सुदृढ़ होता है। उसको घेरा नहीं जा सकता और न उसपर चढ़ा जा सकता है। यदि एक दो के मारे जाने पर भी इसमें सबका वध नहीं हो सकता है तथा आक्रमण कारियों पर पत्थर और वृक्ष गिराकर उनका नाश किया जा सकता है ॥३९-४२॥

निम्नस्थलयोधिभ्यो निम्नयोधिभ्यो भूमिलाभः श्रेयान् ॥ ४३ ॥ निम्न-योधिनो ह्युपरुद्धदेशकालाः ॥ ४४ ॥ स्थलयोधिनस्तु सर्वदेशकालयोधिनः ॥४५॥

खनकाकाशयोधिभ्यः खनकेभ्यो भूमिलाभः श्रेयान् ॥ ४६ ॥ खनका हि खातेन शस्त्रेण चोभयथा युध्यन्ते ॥ ४७ ॥ शस्त्रेणैवाकाशयोधिनः ॥४८ ॥

निम्न स्थान से युद्ध करने वाले या स्थल योधी वीरों में निम्न योधी वीरों से भूमि लाभ कर लेना कल्याण कारी हैं, क्योंकि निम्न (नौका आदि में बैठकर) स्थान से युद्ध करने वाले, देश काल के बन्धन में होते हैं, परन्तु स्थल योधी किसी देश काल की रुकावट से नहीं रुकते वे सर्वत्र सदा युद्ध करने में समर्थ होते हैं। गड्ढे खोदकर युद्ध करने वाले आकाश योधी वीरों में खाई खोदकर लड़ने वालों से भूमि लाभ उत्तम माना गया है, क्योंकि वे युद्ध के लिए खाई और शस्त्र दो वस्तुओं की अपेक्षा रखते हैं, परन्तु आकाश योधी तो केवल शस्त्रों से युद्ध करने में समर्थ होते हैं ॥४३-४८॥

एवंविधेभ्यः पृथिवीं लभमानो ऽर्थशास्त्रवित् ।
संहितेभ्यः परेभ्यश्च विशेषमधिगच्छति ॥ ४६ ॥

इति पाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधौ भूमिसंधिः दशमो ऽध्यायः ॥ १० ॥ आदितो ऽष्टशतः ॥ १०८ ॥

नीतिमान् राजा सन्धि किए हुए या अन्य शत्रुओं से जब भूमि लाभ कर लेता है, तो उसको बहुत विशेपता प्राप्त हो जाती है ॥ ४६ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत पाड्गुण्य अधिकरण में भूमि लाभ के वर्णन का दसवां अध्याय समाप्त हुआ।



ग्यारहवां अध्याय

११६वां प्रकरण

अनवसित सन्धिः

इस अध्याय में भी भूमि के सम्बन्ध में ही कुछ लिखा जावेगा।

त्वं चाहं च शून्यं निवेशयावह इत्यनवसितसंधिः ॥ १ ॥ तयोर्यः प्रत्युपस्थितार्थो यथोक्तगुणां भूमिं निवेशयति सो ऽतिसंधत्ते ॥ २ ॥ तत्रापि स्थलमौदकं वेति ॥ ३ ॥ महतः स्थलादल्पमौदकं श्रेय सातत्यादवस्थितत्वाच्च फलानाम् ॥ ४ ॥ स्थलयोरपि प्रभूतपूर्वापरसस्यमल्पवर्षपाकमसक्तारम्भं श्रेयः ॥ ५ ॥ औदकयोरपि धान्यवापमधान्यवापाच्छ्रेयः ॥ ६ ॥

तुम और हम किसी शून्य स्थान पर अधिकार करलें-इस बात को सन्मुख रख कर जो सन्धि की जाती है, वह अनवसित सन्धि कहाती है। उनमें जो अपने स्वार्थ को दृष्टि रखकर गुणवती भूमि पर अधिकार कर लेता है, वह अपने काम को सुचारु रीति से बनाने में समर्थ होता है। इसमें भी भूमि, स्थल और जल प्राय-दो तरह की होती है। इस में बिल्कुल खुश्क भूमि से थोड़े जल वाली भूमि उत्तम मानी गई है, क्योंकि वहां सर्वदा निश्चित रूप से फलादि की उत्पत्ति सम्भव है। दो प्रकार की स्थल भूमि में भी जिस में कार्तिकी और वैसाखी दोनों फसल होती हों, थोड़ी सी वर्षा से अच्छी खेती पक जावे तथा जिस में उत्तम रीति से जोत आदि की जा सके-वही स्थल भूमि उत्तम है। जलप्राय भूमि में भी धान्य आदि बोने में समर्थ भी धान्य आदि अन्न की उत्पत्ति नहीं करने वाली भूमि से श्रेष्ठ है॥ १-६॥

तयोरल्पबहुत्वे धान्यकान्तादल्पान्महदधान्यकान्तं श्रेयः॥ ७॥ महत्यवकाशे हि स्थाल्याश्चानूप्याश्चौषधयो भवन्ति॥ ८॥ दुर्गादीनि च कर्माणि प्राभूत्येन क्रियन्ते॥ ६॥ कृत्रिमा हि भूमिगुणाः॥ १०॥

जब थोड़ी अधिक भूमि का प्रश्न आवे-तो धान्य उत्पन्न करने वाली थोड़ी भूमि से धान्य नहीं उत्पन्न करने वाली भी अधिक भूमि अच्छी होती है। जब भूमि का अधिक विस्तार होगा, तो उसमें समय पर स्थल और जल की वस्तु उत्पन्न की जा सकेगी तथा अधिक भूमि में दुर्ग आदि सेनोपयोगी कर्म भी अच्छी तरह किये जा सकते हैं। भूमि तो अपने परिश्रम से गुण उत्पन्न कर लिए जाते हैं-यही भूमि का गुण है॥ ७-१०॥

खनिधान्यभोगयोः खनिभोगः कोशकरः॥ ११॥ धान्यभोगः कोशकोष्ठागारकरः॥ १२॥ धान्यमूलो हि दुर्गादीनां कर्मणामारम्भः॥ १३॥ महाविषयविक्रमो वा खनिभोगः श्रेयान्॥ १४॥

खान और धान्य उत्पन्न करने वाली भूमि में खान की भूमि कोश बढ़ाने वाली होती है, परन्तु धान्य उत्पन्न करने वाली भूमि, कोश और भण्डार दोनों को भरदेती है। धान्य के अधीन दुर्ग आदि की रचना सम्भव है। खान की वस्तु भी उत्तम मानी गई हैं, उनसे भी अनेक देशों में अपना वैभव फैलाया जा सकता है॥११-१४॥

द्रव्यहस्तिवनभोगयोर्द्रव्यवनभोगः सर्वकर्मणां योनिः प्रभूतनिधानक्षमश्च॥ १५॥ विपरीतो हस्तिवनभोग इत्याचार्याः॥ १६॥ नेति कौटल्यः॥ १७॥

शक्यं द्रव्यवनमनेकमनेकस्यां भूमौ वापयितुं न हस्तिवनम् ॥ १८ ॥ हस्तिप्रधानो हि परानीकवध इति ॥ १९ ॥

उत्तम चन्दन आदि की लकड़ी और हाथियों के वन में कौन सा श्रेष्ठ है ? इनमें द्रव्य (वस्तुओं) का वन सब कामों से आरम्भ करने का कारण और बहुत से कोश का उत्पन्न करने वाला होता है। हाथी के वनों से ये वस्तुएं नहीं मिल पाती हैं ऐसा आचार्यों का मत है परन्तु कौटल्याचार्य इस बात को नहीं मानते हैं। वे कहते हैं, कि लकड़ी आदि के द्रव्य वन अनेक लगाये जा सकते हैं, परन्तु हाथियों का वन तय्यार नहीं किया जा सकता। हाथियों से यह एक बड़ा लाभ है, कि इस से शत्रु सेना का नाश किया जा सकता है ॥ १५-१९ ॥

वारिस्थलपथभोगयोरनित्यो वारिपथभोगो नित्यः स्थलपथभोग इति ॥२०॥ भिन्नमनुष्या श्रेणीमनुष्या वा भूमिरीति ॥ २१ ॥ भिन्नमनुष्या श्रेयसी ॥ २२ ॥ भिन्नमनुष्या भोग्या भवत्यनुपजाप्या चान्येषामनापत्सहा तु ॥ २३ ॥ विपरीता श्रेणीमनुष्या कोपे महादोषा ॥ २४ ॥

जल मार्ग और स्थल मार्ग में सदा नहीं रहने वाला जल मार्ग और सदा रहने वाला स्थल मार्ग होता है। जिस भूमि के मनुष्य संगठित नहीं हैं, वह भूमि उत्तम है या संगठित मनुष्यों से भरी हुई भूमि श्रेष्ठ है ? इस में असंगठित मनुष्यों से बसी हुई भूमि ही राजा को सुखदायी होती है, क्योंकि अन्य राजा उन्हें तोड़ फोड़ नहीं सकता अर्थात् एक तोड़ने से सब नहीं टूटते और न ये असंगठित पुरुष आपत्ति के सहने को तय्यार हो सकते हैं। इनसे विपरीत संगठित मनुष्यों की भूमि दुःखदायी है। जब वे लोग कुपित हो उठते हैं-तो राजा को मुश्किल खड़ी हो जाती है ॥२०-२४॥

तस्यां चातुर्वर्ण्याभिनिवेशं सर्वभोगसहत्वादवरवर्णप्राया श्रेयसी ॥ २५ ॥ बाहुल्याद्ध्रुवत्वाच्च कृष्याः कर्षणवतीः ॥ २६ ॥ कृष्या चान्येषां चारम्भाणां प्रयोजकत्वात् गोरक्षकवती ॥ २७ ॥ पण्यनिचयर्णानुग्रहादाढ्यवणिग्वती ॥२८॥ भूमिगुणानामपाश्रयः श्रेयान् ॥ २९ ॥

इस भूमि में चारों वर्णों में से किस वर्ण के निवास वाली भूमि उत्तम है ? तो यही कहना चाहिए सब कुछ देने में समर्थ शूद्र ग्वाले जैसी छोटी जाति से भरी हुई भूमि ही राजा के ऐश्वर्य के बढ़ाने वाली है। बहुत अधिक और निश्चित फल देने वाली होने से खेती के योग्य भूमि ही कल्याण कारी है। खेतो के योग्य भूमि ही अनेक कार्यों के सम्पन्न करने के योग्य होने से गोकुल के बढ़ाने वाली होती है। तात्पर्य यह है, कि जो भूमि राजा को सब तरह से आश्रय देने वाली हो-वही उत्तम है ॥२५-२९॥

दुर्गापाश्रया पुरुषापाश्रया वा भूमिरिति ॥ ३० ॥ पुरुषापाश्रया श्रेयसी ॥ ३१ ॥ पुरुषवद्धि राज्यम् ॥ ३२ ॥ अपुरुषा गौर्वन्ध्येव किं दुहीत ॥ ३३ ॥

आश्रय भी दो प्रकार का है, एक तो दुर्गों का आश्रय है, दूसरा पुरुषों का आश्रय है। इन में जिस भूमि में पुरुषों का आश्रय प्राप्त हो वही भूमि श्रेष्ठ माननी चाहिए, क्योंकि राज्य की भित्ति तो पुरुषों (सैनिकों) के ऊपर ही अवलम्बित है। पुरुष हीन भूमि वन्ध्या गौ की भांति कुछ फल नहीं दे सकती है ॥ ३०-३३ ॥

महाक्षयव्ययनिवेशात्तु भूमिमवाप्तुकामः पूर्वमेव क्रेतारं पणेत ॥ ३४ ॥ दुर्बलमराजबीजिनं निरुत्साहमपक्षमन्यायवृत्तिं व्यसनिनं दैवप्रमाणं यत्किंचनकारिणं वा ॥ ३५ ॥ महाक्षयव्ययनिवेशायां हि भूमौ दुर्बलो राजबीजी निविष्टः सगन्धाभिः प्रकृतिभिः सह क्षयव्ययेनावसीदति ॥ ३६ ॥ बलवानराजबीजी क्षयभयादसगन्धाभिः प्रकृतिभिस्त्यज्यते ॥ ३७ ॥ निरुत्साहस्तु दण्डवानपि दण्डस्याप्रणेता सदण्डः क्षयव्ययेनावभज्यते ॥ ३८ ॥

बहुत से पुरुषों के क्षय और धन के व्यय से किसी भूमि को प्राप्त किया जावे-तो प्रथम उसके खरीददार किसी राजा से शर्त निश्चित करले। इस भूमि का खरीददार ऐसा राजा टटोलना चाहिए, जो दुर्बल, राजकुल में अनुत्पन्न. निरुत्साही, पक्षहीन, अन्यायाचरण करने वाला, व्यसनों में लिप्त, भाग्य के भरोसे पर निर्भर तथा जो कुछ सनक सवार हुई उसीके अनुसार कार्य कर डालने वाला हो। जब बहुत से जनों का क्षय और धन का व्यय करके उस भूमि में दुर्बल, राजकुलहीन, राजा वास करने लगता है, तो आप जैसे मन्त्री अमात्य आदि के साथ वह दुर्बल राजा बहुत ही शीघ्र. जन क्षय और धन व्यय से पीड़ित होने लगता है। राजकुल में अनुत्पन्न राजा यदि बलवान् हो, तो भी जनक्षय के भय से कुलोत्पन्न मन्त्री आदि उसे छोड़ देते हैं। निरुत्साही राजा, सेना सम्पन्न होने पर भी सेना का प्रयोग करना नहीं जानता, इससे सेना होने पर भी जनक्षय और धन व्यय के कारण नष्ट हो जाता है ॥३४-३८॥

कोशवानप्यपक्षः क्षयव्ययानुग्रहहीनत्वान्न कुतश्चित्प्राप्नोति ॥३९॥ अन्यायवृत्तिं निविष्टमप्युत्थापयेत् ॥४०॥ स कथमनिविष्टं निवेशयेत ॥४१॥ तेन व्यसनी व्याख्यातः ॥४२॥ दैवप्रमाणो मानुषहीनो निरारम्भो विपन्नकर्मारम्भो वावसीदति ॥४३॥ यत्किंचनकारी न किंचिदासादयति ॥४४॥ स चैषां पापिष्ठतमो भवति ॥४५॥ यत्किंचिदारभमाणो हि विजिगीषोः कदाचिच्छिद्रमासादयेदित्याचार्याः ॥ ४६॥ यथा छिद्रं तथा विनाशमप्यासादयेदिति कौटल्यः ॥ ४७ ॥

यद्यपि राजा कोश आदि से सुसम्पन्न भी है, तो भी यदि उसके कोई सहायक नहीं है, तो वह जनक्षय और धनव्यय तथा सहायता हीन होने से कुछ भी सिद्धि नहीं पा सकता है। अन्याय से चलने वाले जमे हुए राजा को भी प्रजा उखाड़ देती है, फिर वह कैसे नये बसाये हुए प्रदेश पर शासन करने में समर्थ हो सकता है। यही दुर्व्यसनों में फंसे हुए राजा की होती है। जो राजा केवल भाग्य के आश्रय पर ही निर्भर है, वह पुरुषार्थ नहीं करेगा, इससे किसी भी कार्य का आरम्भ उससे नहीं होगा। जब उसके सारे कार्य नष्ट हो जावेंगे-तो वह फिर स्वयं भी नष्ट ही हुआ जानो। जो अपनी सनक के अनुसार कार्य कर बैठता है, वह कभी कुछ नहीं प्राप्त कर सकता है। इन सब में यह सनकी सब से अधिक बेकार है। यह मन में आवेगा, वही आरम्भ कर देगा, इससे कभी न कभी विजयाभिलाषी राजा के चंगुल में फंस ही जावेगा ऐसा आचार्य मानते हैं, कौटल्याचार्य कहते हैं, कि ज्योंही वह किसी खराबी में फंसा, कि उसी समय उसका नाश भी समझ लेना चाहिए ॥३९-४७॥

तेषामलाभे यथा पार्ष्णिग्राहोपग्रहे वक्ष्यामस्तथा भूमिमवस्थापयेदित्यभिहितसंधिः ॥ ४८ ॥ गुणवतीमादेयां वा भूमिं बलवता क्रयेण याचितः संधिमवस्थाप्य दद्यादित्यनिभृतसंधिः ॥ ४९ ॥ समेन वा याचितः कारणमवेक्ष्य दद्यात् ॥ ५० ॥ प्रत्यादेयो मे भूमिर्वश्या वानया प्रतिबद्धः परो मे वश्यो भविष्यति भूमिविक्रयाद्वा मित्रहिरण्यलाभः कार्यसामर्थ्यकरो मे भविष्यतीति ॥ ५१ ॥ तेन हीनः क्रेता व्याख्यातः ॥ ५२ ॥

यदि इन दुर्गुणों से युक्त कोई राजा न मिले, तो पार्ष्णिग्राह प्रकरण में कहे हुए उपायों के द्वारा भूमि को बसा लेवे यह अभिहित सन्धि कहाती है। गुणवती लेने योग्य भूमि को बलवान् सामन्त यदि मूल्य द्वारा ग्रहण करना चाहे, तो उनसे सन्धि की शर्तें निश्चित करके दे देवे, यह अनिभृत सन्धि कहाती है। यदि बराबर की शक्तिवाला, राजा, उस भूमि को ग्रहण करना चाहे, तो निम्नलिखित कारणों को विचार कर वह भूमि उसे दे देवे, कि यह भूमि कालान्तर में मेरे पास आकर वश में हो जावेगी या इसके चक्कर में पड़ा हुआ शत्रु भी मेरे वश में हो जावेगा, तथा भूमि के विक्रय से मित्र और सुवर्ण लाभ होकर मेरी कार्य करने की शक्ति बढ़ जावेगी बराबर वाले के तुल्य ही हीन शक्ति वाले को भूमि देने में लाभ है ॥४८-५२॥

एवं मित्रं हिरण्यं च सजनामजनां च गाम् ।
लभमानोऽतिसंधत्ते शास्त्रवित्सामवायिकान् ॥ ५३ ॥

इति पाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधौ अनवसितसंधिः एकादशो ऽध्यायः ॥ ११ ॥ आदितो नवशतः ॥ १०६ ॥

नीति शास्त्र को जानने वाला राजा, इस प्रकार मित्र, सुवर्ण, तथा जन सम्पन्न या जनहीन, भूमि को प्राप्त करके अपने साथी राजाओं में उन्नति लाभ कर सकता है ॥४३॥

इति श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में मित्र हिरण्य आदि प्राप्ति के वर्णन का ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ ।



बारहवां अध्याय

११६वां प्रकरण

कर्म सन्धिः

इस अध्याय में किसी कार्य करने के विषय में नियम निश्चित करके जो संधि की जाती है, उसका वर्णन होगा। इस संधि को कर्म संधि कहते हैं।

त्वं चाहं च दुर्गं कारयावह इति कर्मसंधिः ॥ १ ॥ तयोर्यो दैवकृतमविपह्यमल्पव्ययारम्भं दुर्गं कारयति सो ऽतिसंधत्ते ॥ २ ॥ तत्रापि स्थलनदीपर्वतदुर्गाणामुत्तरोत्तरं श्रेयः ॥ ३ ॥ सेतुबन्धयोरप्याहार्योदकात्सहोदकः श्रेयान् ॥ ४ ॥ सहोदकयोरपि प्रभूतवापस्थानः श्रेयान् ॥ ५ ॥

पृथक् २ स्थानों में तुम और हम मिलकर दुर्ग रचना करवावें, इस प्रकार दो राजाओं का मिलकर नियमों द्वारा संधि करना कर्म-संधि कहाता है। इनमें जो दुर्गम स्थान में असह्य, थोड़े व्यय से दुर्ग बनवाता-वह अपना कार्य अधिक सिद्ध कर पाता है। इनमें भी स्थल, नदी और पर्वत दुर्गों में क्रम से एक दूसरे स्थान के दुर्ग उत्तम माने गये हैं-अर्थात् स्थल से नदी और नदी से पर्वत दुर्ग श्रेष्ठ है। सेतु बन्धों (तालाबों) में भी वर्षा के जल से भरने वाले सेतुबन्ध से स्वयं जल स्रोत वाला सेतुबन्ध उत्तम होता है। स्वयं जल स्रोतों से भर जाने वाले तालाबों में भी वह उत्तम है, जिसके साथ बोने की भूमि लगी हुई है ॥१-५॥

द्रव्यवनयोरपि यो महत्सारवद्द्रव्याटवीकं विषयान्ते नदीमातृकं द्रव्यवनं छेदयति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ६ ॥ नदीमातृकं हि स्वाजीवमपाश्रयश्चापदि भवति ॥७॥ हस्तिमृगवनयोरपि यो बहुशूरमृगं दुर्बलप्रतिवेशमनन्तावक्लेशि विषयान्ते हस्तिवनं

बध्नाति सोऽतिसंधत्ते ॥ ८ ॥ तत्रापि बहुकुण्ठाल्पशूरयोरल्पशूरं श्रेयः ॥ ९ ॥ शूरेषु हि युद्धम् ॥ १० ॥ अल्पाः शूरा बहूनशूरान्भञ्जन्ति ते भग्नाः स्वसैन्यावघातिनो भवन्तीत्याचार्याः ॥ ११ ॥

लकड़ी आदि के वनों में भी जो राजा अच्छी २ वस्तु उत्पन्न करने वाले अपने देश के अन्तभाग में स्थित निर्जन वन को सींचने योग्य बना लेता है, और उसके झाड़ झंखाड़ कटवा देता है, वह अपना कार्य बनाने में समर्थ होता है। नदी से सींचा जाने योग्य वन, जीविका के लिए उत्तम और आपत्ति में आश्रय देने वाला हो जाता है। जो राजा हाथियों के वन और अन्य जन्तुओं से परिपूर्ण वन में अत्यन्त शक्तिशाली जन्तु, हाथियों के वन को अपनी सीमा प्रान्त में बसाते हैं, वही अपना कार्य बनाने में समर्थ होता है। इस हस्ती वन के पास में अन्य दुर्बल जन्तुओं के लिए भी वन होना चाहिए। जो बहुत ही गहन और आने जाने के मार्गों से सम्पन्न होना चाहिए। इनमें भी बहुत से दुर्बल हाथियों से थोड़े शूर हाथियों से युक्त वन कल्याणकारी है, क्योंकि शूर हाथियों से ही युद्ध हो सकता है। थोड़े शक्तिशाली हाथी, बहुत से अशक्त हाथियों को भगा देते हैं, वे भागते हुए हाथी, अपनी ही सेना को कुचल देते हैं ऐसा आचार्यों का मत है ॥९-११॥

नेति कौटल्यः ॥ १२ ॥ कुण्ठा बहवः श्रेयांसः स्कन्धविनियोगादनेकं कर्म कुर्वाणाः स्वेषामपाश्रयो युद्धे ॥ १३ ॥ परेषां दुर्धर्षा विभीषणाश्च ॥ १४ ॥ बहुषु हि कुण्ठेषु विनयकर्मणा शक्यं शौर्यमाधातुम् ॥ १५ ॥ न त्वेवाल्पेषु शूरेषु बहुत्वमिति ॥ १६ ॥

कौटल्याचार्य इससे प्रथक् मत रखते हैं, वे कहते हैं, कि अशक्त भी बहुत से हाथी राजा के कल्याण में समर्थ हो सकते हैं। क्योंकि वे अपने स्कन्ध पर बहुत से कार्यों का भार ले लेते हैं और अनेक युद्धोपयोगी कार्य करके अपने पक्ष के वीरों के आश्रय बन जाते हैं। हाथियों की अधिक संख्या देखकर शत्रु भयभीत हो जाते हैं, और वे उनपर आक्रमण करने में असमर्थ रहते हैं। यदि बहुत से अशिक्षित हाथी भी हों तो उनको सिखा पढ़ाकर शूरवीर भी बनाया जा सकता है, परन्तु थोड़े हाथियों को संख्या में बहुत नहीं बनाया जा सकता है ॥१२-१६॥

खन्योरपि यः प्रभूतसारामदुर्गमार्गामल्पव्ययारम्भां खनिं खानयति सोऽतिसंधत्ते ॥ १७ ॥ तत्रापि महासारमल्पमल्पसारं वा प्रभूतमिति ॥ १८ ॥ महासारमल्पं श्रेयः ॥ १९ ॥ वज्रमणिमुक्ताप्रवालहेमरूप्यधातुर्हि प्रभूतमल्पसारमत्यर्घेण ग्रसत इत्याचार्याः ॥ २० ॥ नेति कौटल्यः ॥२१॥ चिरादल्पो महा-

सारस्य क्रेता विद्यते ॥ २२ ॥ प्रभूतः सातत्यादल्पसारस्य ॥ २३ ॥ एतेन वणिक्पथो व्याख्यातः ॥ २४ ॥

खानों में भी जो बहुत सा बढ़िया माल देने वाली, सरल मार्गों से सम्पन्न, तथा थोड़े से व्यय से बनने वाली खान को बनवाता है, वह अपने कार्य को सुचारु रीति से कर सकता है। इन खानों में अधिक मूल्य की वस्तु उत्पन्न करने वाली खान उत्तम है या स्वल्प मूल्य की बहुत सी वस्तु उत्पन्न करने वाली उत्तम मानी जाती है। इस विषय में आचार्यों का मत है, कि अधिक मूल्य की थोड़ी वस्तु उत्पन्न करने वाली खान ही उत्तम समझनी चाहिए, क्योंकि हीरा, मणि, मुक्ता, प्रवाल (मूंगा) सुवर्ण चांदी आदि धातु, थोड़े मूल्य की बहुत सी वस्तुओं को अपने अधिक मूल्य से अपने भीतर ग्रस लेते हैं अर्थात् उनसे अनेक वस्तु लायी जा सकती हैं। कौटल्याचार्य इस बात को भी नहीं मानते हैं। वे कहते हैं, कि बहुमूल्य वस्तु के खरीदने वाले, बहुत थोड़े हैं, जो कभी २ आते हैं। थोड़े मूल्य की वस्तु के खरीदने वाले सदा बहुत मिलते हैं। इसी प्रकार अधिक मूल्य की वस्तु ले जाने वाले व्यापारियों के मार्ग की अपेक्षा थोड़े मूल्य की वस्तु बेचने वाले व्यापारियों के मार्ग बनाना अधिक लाभकारी है ॥१७-२४॥

तत्रापि वारिस्थलपथयोर्वारिपथः श्रेयान् ॥ २५ ॥ अल्पव्ययव्यायामः प्रभूतपण्योदयश्चेत्याचार्याः ॥ २६ ॥ नेति कौटल्यः ॥ २७ ॥ संरुद्धगतिरसार्वकालिकः प्रकृष्टभययोनिर्निष्प्रतिकारश्च वारिपथः विपरीतः स्थलपथः ॥ २८ ॥

जल और स्थल मार्गों में जल मार्ग उत्तम है, क्योंकि वह थोड़े से व्यय और परिश्रम से बन जाता है और उससे बहुत सी बेचने की चीजें भी आसानी से ले जायी जा सकती हैं। यही आचार्य मानते हैं। कौटल्याचार्य इस बात को नहीं मानते है, क्योंकि जल का मार्ग रुक जाता है, और सब काल में नहीं चल पाता है। वह स्थल मार्ग की अपेक्षा भय जनक भी अधिक है। इसमें जब कोई भय खड़ा हो जाता है, तो उसका प्रतीकार भी नहीं हो सकता है। स्थल मार्ग इससे विपरीत अर्थात् कल्याणकारी है॥२५-२८॥

वारिपथे तु कूलसंयानपथयोः कूलपथः पण्यपट्टणबाहुल्याच्छ्रेयान्नदीपथो वा सातत्याद्विषह्याबाधत्वाच्च ॥ २९ ॥ स्थलपथेऽपि हैमवतो दक्षिणापथाच्छ्रेयान् ॥ ३० ॥ हस्त्यश्वगन्धदन्ताजिनरूप्यसुवर्णपण्याः सारवत्तरा इत्याचार्याः ॥ ३१ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ कम्बलाजिनाश्वपण्यवर्जाः शङ्खवज्रमणिमुक्ताः सुवर्णपण्याश्च प्रभूततरा दक्षिणापथे ॥ ३३ ॥ दक्षिणापथेऽपि बहुखनिः

सारपण्यः प्रसिद्धगतिरल्पव्यायामो वा वणिक्पथः श्रेयान् ॥ ३४ ॥ प्रभूतविषयो वा फल्गुपण्यः ॥ ३५ ॥ तेन पूर्वः पश्चिमश्च वणिक्पथो व्याख्यातः ॥ ३६ ॥ तत्रापि चक्रपादपथयोश्चक्रपथो विपुलारम्भत्वाच्छ्रेयान् ॥ ३७ ॥ देशकालसंभावनो वा खरोष्ट्रपथः ॥ ३८ ॥ अभ्यामंसपथो व्याख्यातः ॥ ३९ ॥

जलीयमार्ग भी दो प्रकार का है, एक तो तटवर्ती दूसरा प्रवाहवर्ती। इनमें जो तटवर्ती मार्ग है, वह अधिक उत्तम माना गया है, क्योंकि उनमें वेचने योग्य वस्तु के वेचने के लिए बहुत से नगर आ जाते हैं। नदी का प्रवाहमार्ग भी ठीक सा है, क्योंकि इसमें सदा आना जाना रहता है और असह्य बाधा से हीन होता है। स्थल मार्ग में भी दक्षिणमार्ग से हिमालय की ओर का उत्तर मार्ग उत्तम है, क्योंकि इधर हाथी, अश्व, कस्तूरी, हाथीदांत, चर्म, चांदी और सोना आदि बहुमूल्य की बहुत सी वस्तुएं मिल जाती हैं। यह पूर्वाचार्यों का मत है, परन्तु कौटल्याचार्य इसके सहमत नहीं हैं, वे कहते हैं, कि कम्बल के लिए ऊन, मृगचर्म, अश्वादि वेचने योग्य वस्तुओं को छोड़कर हाथी आदि वस्तु और शंख, हीरा, मणि, मुक्ता तथा सुवर्ण आदि अमूल्य वस्तुएँ दक्षिण मार्ग में भी बहुत मिलती है। दक्षिणीय मार्ग में भी बहुत खानों और सार वस्तुओं से युक्त, प्रसिद्ध रीति से गमन योग्य, थोड़े परिश्रम से साध्य, बनाया हुआ व्यापारी मार्ग श्रेष्ठ है। वह मार्ग भी अच्छा ही है, जिसमें थोड़ी कीमत की अधिक वस्तुएँ होती हैं। इसी से पूर्व और पश्चिम के मार्ग भी समझे जा सकते हैं। इन मार्गों में भी गाड़ी का मार्ग और पैदल मार्गों में गाड़ी का मार्ग श्रेष्ठ है, क्योंकि इस मार्ग से अधिक वस्तु लायी जा सकती है। देश काल की सम्भावना से गदहे और ऊंटों का मार्ग भी अच्छा है। इसी तरह कंधे पर माल ढोने वाले बैल आदि के मार्गों की व्याख्या समझो ॥२९-३९॥

परकर्मोदयो नेतुः क्षयो वृद्धिर्विपर्यये।
तुल्ये कर्मपथे स्थानं ज्ञेयं स्वं विजिगीषुणा ॥ ४० ॥

जिस काम से शत्रु के कामों की उन्नति हो, इससे विजयेच्छुक राजा का क्षय होता है और जिस से शत्रु की हानि हो-उससे राजा की वृद्धि है यदि दोनों को एक कर्म का समान फल है-तो दोनों एक स्थान पर स्थित हैं-यही समझना चाहिए ॥४०॥

अल्पागमातिव्ययता क्षयो वृद्धिर्विपर्यये।
समायव्ययता स्थानं कर्मसु ज्ञेयमात्मनः ॥ ४१ ॥
तस्मादल्पव्ययारम्भं दुर्गादिषु महोदयम्।
कर्म लब्ध्वा विशिष्टः स्यादित्युक्ताः कर्मसंधयः ॥ ४२ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधौ कर्मसंधिर्द्वादशो ऽध्यायः ॥ १२ ॥ आदितो दशशतः ॥ ११० ॥

जिस कार्य से थोड़ी आमदनी और अधिक व्यय हो-उससे हानि और जिस से अधिक आमदनी और थोड़ा व्यय हो उससे वृद्धि होती है। तथा जिन कर्मों में समान आय व्यय रहे, उसमें एक स्थान पर स्थिति समझो। इन सब बातों पर विचार करके विजयाभिलाषी राजा दुर्ग आदि में थोड़ा व्यय करे और उससे बहुत बड़ा कार्य निकाले। यदि अपने कार्य को सफल बना लिया, तो विजयेच्छुक राजा सब में श्रेष्ठ हो जाता है-यहां तक कई सन्धियों का वर्णन किया गया ॥ ४१-४२ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में कर्म सन्धि के वर्णन का बारहवां अध्याय समाप्त हुआ।



तेरहवां अध्याय

११७वां प्रकरण

पार्ष्णिग्राह चिन्ता

इस अध्याय में आक्रमण करने वाले राजा को किस के पीछे चलना चाहिए-इस विषय का विचार होगा।

संहत्यारिविजिगीष्वोरमित्रयोः पराभियोगिनोः पार्ष्णिं गृह्णतोर्यः शक्तिसंपन्नस्य पार्ष्णिं गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १ ॥ शक्तिसंपन्नो ह्यमित्रमुच्छिद्य पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात् ॥ २ ॥ न हीनशक्तिर्लब्धलाभ इति ॥ ३ ॥ शक्तिसाम्ये यो विपुलारम्भस्य पार्ष्णिं गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ४ ॥ विपुलारम्भो ह्यमित्रमुच्छिद्य पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यान्नाल्पारम्भः सक्तचक्र इति ॥५॥

आक्रमणकर्ता राजा और उसके शत्रु दोनों किसी प्रकार मिलकर यदि अपने शत्रु पर आक्रमण करें। शत्रु पर आक्रमण करने वाले तथा एक दूसरे की सहायता से चलने वाले इन दोनों में जो शक्ति सम्पन्न के साथ हो लेता है, वही अपना काम बनाता है, क्योंकि शक्ति सम्पन्न प्रथम अपने शत्रु का नाश करके-फिर अपने साथी राजा का भी पराभव कर सकता है। हीन शक्ति राजा कुछ भी लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है। जिन दोनों समान शक्ति शाली राजाओं ने मिलकर आक्रमण किया हो

तो उनमें जिसने विशाल कार्य का आरम्भ किया है, उसका साथ देना चाहिए, इसीमें स्वार्थ सिद्धि है। विशाल कार्य का आरम्भ करने वाला ही शत्रु का नाश करके अपने साथी शत्रुभूत प्रथम राजा का नाश कर सकेगा। जिसके छोटे २ कार्य भी बिखरे पड़े हैं, वह शत्रु को नहीं उखाड़ सकता है। वह तो अभी अपनी सेना के संग्रह में लगा है॥ १-५॥

आरम्भसाम्ये यः सर्वसंदोहेन प्रयातस्य पार्ष्णिं गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ६ ॥ शून्यमूलो ह्यस्य सुकरो भवति नैकदेशबलप्रयातः कृतपार्ष्णिप्रतिविधान इति ॥ ७ ॥ बलोपादानसाम्ये यश्चलामित्रं प्रयातस्य पार्ष्णिं गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ८ ॥ चलामित्रं प्रयातो हि सुखेनावाप्तसिद्धिः पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यान्न स्थितामित्रं प्रयातः ॥ ९ ॥ असौ हि दुर्गप्रतिहतः पार्ष्णिग्राहे च प्रतिनिवृत्तस्थितेनामित्रेणावगृह्यते ॥ १० ॥ तेन पूर्वे व्याख्याताः ॥ ११ ॥

यदि तुल्य सामग्री के साथ दोनों ने आक्रमण किया है, तो जिस की सेना अधिक है, उसी की सहायता करनी चाहिए- इसी में अपना कार्य बन सकता है, क्योंकि इसकी राजधानी में सेना रहेगी ही नहीं, तो उसका वश में करना सुगम हो जावेगा, परन्तु जो अपनी थोड़ी सेना लेकर दूसरे के साथ आक्रमण में सम्मिलित हुआ है, वह अपने पार्ष्णि ग्राह (सहायता करके आक्रमण करने वाले) का प्रतीकार कर सकता है। जब दोनों आक्रमणकर्ता समान सेना लेकर शत्रु पर झपटे हों तो उनमें उसी की पार्ष्णि (पीठ) ग्रहण करनी चाहिए अर्थात् उसी की सहायता करनी चाहिए, जिसका शत्रु चञ्चल (कायर) हो। इसी में अपना काम बनेगा। जो कायर शत्रु पर आक्रमण करता है, उसको शीघ्र सिद्धि मिलती है-वह फिर अपने पूर्व के साथी राजा के भी उच्छेद करने में समर्थ हो सकेगा, परन्तु जो दृढ़ शत्रु पर आक्रमण करेगा, वह अपनी स्वार्थ-सिद्धि नहीं कर सकेगा। यह दुर्गों के सन्मुख लौट पड़ेगा। वहां से लौटा हुआ अपने पार्ष्णि ग्राह (साथी) के साथ पीछे से आक्रमण करने वाले शत्रु द्वारा पकड़ा जावेगा। इसी प्रकार हीन शक्ति या कुछ सेना लेकर आक्रमण करने वाले राजा के पार्ष्णि ग्राहियों की दशा समझ लेनी चाहिए॥ ६-११॥

शत्रुसाम्ये यो धार्मिकाभियोगिनः पार्ष्णिं गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥१२॥ धार्मिकाभियोगी हि स्वेषां च द्वेष्यो भवति ॥ १३ ॥ अधार्मिकाभियोगी संप्रियः ॥१४॥ तेन मूलहरतादात्विककदर्याभियोगिनां पार्ष्णिग्रहणं व्याख्यातम् ॥१५॥

जिन्होंने अपने समान शक्ति शत्रु पर आक्रमण किया, उनमें उसी की सहायता करनी उचित है. जिसने धार्मिक शत्रु पर आक्रमण किया है धार्मिक राजा पर आक्रमण करने वाला अपने ही मित्र मन्त्री आदि का अप्रिय हो जाता है। जो अधार्मिक राजा पर आक्रमण करता है, अपने पक्ष का अप्रिय नहीं हो सकता है। जो शत्रु अपने पक्ष का अप्रिय होकर नष्ट होता है, तो उसका पार्ष्णिग्राही (पीछा करने वाला या सहायता देने वाला) अपना काम बना लेता है। अधार्मिक पर आक्रमण करने वाला जब नष्ट ही नहीं होता-तो उसके पार्ष्णिग्राह को क्या लाभ हो सकता है। इसीसे कुल क्रमागत सम्पत्ति को अन्याय से भोगने वाला मूलहर, समय पर प्राप्त सम्पत्ति को व्यर्थ व्यय करने वाला तादात्विक, भृत्य या अपने को कष्ट पहुंचाकर कंजूसी द्वारा प्राप्त सम्पत्ति को इकट्ठे करने वाले कदर्य पर आक्रमण करने वाले राजा के पार्ष्णिग्राह (साथी या पीछेसे आक्रमणकारी) को कुछ भी लाभ नहीं हो सकता है, क्योंकि इसके साथी मूलहर आदिपर आक्रमण से से असन्तुष्ट न होंगे फिर इसका नाश नहीं-तो पार्ष्णिग्राह को लाभ कैसे हो सकता है ॥१२-१५॥

मित्राभियोगिनोः पार्ष्णिग्रहणे त एव हेतवः ॥ १६ ॥ मित्रममित्रं चाभियुञ्जानयोर्योऽमित्राभियोगिनः पार्ष्णिं गृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥ १७ ॥ मित्राभियोगी हि सुखेनावाप्तसंधिः पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात् ॥ १८ ॥ सुकरो हि मित्रेण संधिर्नामित्रेणेति ॥ १६ ॥

मित्र के ऊपर आक्रमण करने वाले राजा के पार्ष्णिग्राह को वेही लाभ होंगे जो धार्मिक पर आक्रमण करने वाले के पार्ष्णिग्राह को होते हैं। मित्र और अमित्र पर आक्रमण करने वालों में जो अमित्र (शत्रु) पर आक्रमण करता है, उसकी जो पृष्ठ पर चलता है, वह अपना काम बनाता है मित्र के ऊपर चढ़ाई करने वाला तो शीघ्र संधि करके अपने पार्ष्णिग्राह को भी दबा सकता है, क्योंकि अमित्र (शत्रु) से शीघ्र संधि नहीं हो सकती है, मित्र से शीघ्र हो जाना-सम्भव है ॥१६-१६॥

मित्रममित्रं चोद्धरतोर्योऽमित्रोद्धारिणः पार्ष्णिं गृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥२०॥ वृद्धमित्रो ह्यमित्रोद्धारी पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यान्नेतरः स्वपक्षोपघाती ॥२१॥ तयोरलब्धलाभापगमने यस्यामित्रो महतो लाभाद्वियुक्तः क्षयव्ययाधिको वा स पार्ष्णिग्राहोऽतिसंधत्ते ॥ २२ ॥

मित्र और शत्रु-इन दोनों में से जो शत्रु के उच्छेद में प्रवृत्त हुआ है, उसीकी पार्ष्णिग्रहण करनी उचित है। इसी में अपना स्वार्थ बनता है। जिसके मित्र बढ़े हुए हैं,

वह शत्रु का उच्छेद करके भी पार्ष्णिग्राह का भी उच्छेद कर देगा, परन्तु जो अपने पक्ष से बिगाड़ बैठता है, वह पार्ष्णिग्राह का उच्छेद नहीं कर सकेगा। मित्र या शत्रु के उच्छेद में प्रवृत्त राजाओं के विना कार्य सिद्ध हुए लौटने पर जिसका शत्रु, महान् लाभ से वञ्चित हुआ और जिसका जनक्षय और धन व्यय हो गया है, उसका पीछा करने वाला राजा अपना काम बना लेता है ॥२०-२२॥

लब्धलाभापगमने यस्यामित्रो लाभेन शक्त्या हीनः स पार्ष्णिग्राहो ऽतिसंधत्ते ॥ २३ ॥ यस्य वा यातव्यः शत्रुर्विग्रहापकारसमर्थः स्यात् ॥ २४ ॥ पार्ष्णिग्राहयोरपि यः शक्यारम्भबलोपादानाधिकः स्थितशत्रुः पार्श्वस्थायी वा सो ऽतिसंधत्ते ॥ २५ ॥ पार्श्वस्थायी हि यातव्याभिसारो मूलाबाधकश्च भवति, मूलाबाधक एव पश्चात्स्थायी ॥ २६ ॥

लाभ प्राप्त करके लौटने पर भी जिसका शत्रु लाभ से और शक्ति से हीन हो गया-उसका भी पार्ष्णिग्राह अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेता है। जिसका आक्रमण करने योग्य राजा या शत्रु अपकार करने में समर्थ है, उसका पार्ष्णिग्राह पर [पीछा तकने वाला] राजा भी अपना काम बना सकता है। यदि दो पार्ष्णिग्राह राजा हों-तो उनमें जो ठीक २ कार्य का आरम्भ करना जानता है। जिसकी सेना अधिक है। जिसके शत्रु चुप हैं और जो अपने आक्रमण करने योग्य व्यक्ति के पास में ही रहता है, वही पार्ष्णिग्राह अपना कार्य सिद्ध करता है। जो पास में रहता है, वह चढ़ाई करने योग्य राजा पर ठीक समय पर चढ़ाई कर सकता है और राजधानी पर बाधा पहुंचा सकता है। जो दूर रहता है, वह मूलस्थान [राजधानी] को बाधा नहीं पहुंचा सकता है ॥२३-२६॥

पार्ष्णिग्राहास्त्रयो ज्ञेयाः शत्रोश्चेष्टानिरोधकाः ।
समन्तात्पृष्ठतो वर्गः प्रतिवेशौ च पार्श्वयोः ॥ २७ ॥

पार्ष्णिग्राह तीन प्रकार के होते हैं, (१) जो शत्रु की चेष्टा को सब ओर से रोकने वाला हो (२) जो पीछे से आक्रमण करने वाला हो, तथा (३) जो इधर उधर पड़ोस में लगा हो ॥२७॥

अरेर्नेतुश्च मध्यस्थो दुर्बलो ऽन्तर्धिरुच्यते ।
प्रतिघातो बलवतो दुर्गाटव्यपसारवान् ॥ २८ ॥

शत्रु और विजयाभिलाषी राजा के मध्य में जो दुर्बल राजा हो-वह अन्तर्धि कहाता है। जब बलवान् इसपर आक्रमण करता है, तो यह दुर्ग या वन में आश्रय लेता है ॥२८॥

मध्यमं त्वरिविजिगीष्वोर्लिप्समानयोर्मध्यमस्य पार्ष्णिं गृह्णतोर्लब्धलाभापगमने यो मध्यमं मित्राद्वियोजयत्यमित्रं च मित्रमाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥ २९॥ संधेयश्च शत्रुरुपकुर्वाणो न मित्रं मित्रभावादुत्क्रान्तम् ॥ ३०॥ तेनोदासीनलिप्सा व्याख्याता ॥ ३१ ॥

जब मध्यम [अन्तर्धि] राजा को विजयी राजा या शत्रु-ये दोनों दावना चाहते हो, उस समय मध्यम का साथ देकर कुछ लाभ प्राप्त करे और उस मध्यम को उसके मित्र से हटाकर आप अपने शत्रुभूत इस मध्यम से मित्रता गांठ ले-तो इस तरह बहुत कुछ स्वार्थ बन सकता है, क्योंकि यदि शत्रु उपकार करता दिखाई दे-तो उससे संधि कर लेनी चाहिए, परन्तु मित्र भाव छोड़कर अपकार करने वाले मित्र से संधि रखना ठीक नहीं है। इसी प्रकार उदासीन राजा जो मध्यम से भिन्न है, उसपर शत्रु या दूसरी ओर रहने वाला विजिगीषु राजा आक्रमण करे-तो आप उदासीन की सहायता करके अपने लाभ निकाले ॥२९-३१॥

पार्ष्णिग्रहणाभियानयोस्तु मन्त्रयुद्धादभ्युच्चयः ॥ ३२ ॥ व्यायामयुद्धे हि क्षयव्ययाभ्यामुभयोरवृद्धिः ॥ ३३ ॥ जित्वापि हि क्षीणदण्डकोशः पराजितो भवतीत्याचार्याः ॥ ३४ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३५ ॥ सुमहतापि क्षयव्ययेन शत्रुविनाशो ऽभ्युपगन्तव्यः ॥ ३६ ॥

पार्ष्णि ग्राह और चढ़ाई करने वाले में वही विजयी होता है, जो मन्त्र युद्ध करता है। व्यायाम युद्ध में तो जन क्षय और धन व्यय होकर दोनों का नाश हो जाता है। युद्ध भूमि में शस्त्रास्त्र द्वारा शत्रु वध व्यायाम युद्ध होता है और गुप्त रीति विष आदि द्वारा शत्रु का मरवा देना मन्त्र युद्ध कहाता है। यदि विजय हो भी जावे तो भी सेना और कोश के क्षीण हो जाने के कारण राजा पराजित हो जाता है ऐसा आचार्यों का मत है, परन्तु कौटल्याचार्य इसके विरुद्ध कहते हैं, कि चाहे कितनी भी सेना का नाश या धन का व्यय हो जावे, परन्तु शत्रु का नाश कर देना चाहिए ॥ ३२-३६ ॥

तुल्ये क्षयव्यये यः पुरस्ताद्दूष्यबलं घातयित्वा निःशल्यः पश्चाद्वश्यबलो युध्येत सो ऽतिसंधत्ते ॥ ३७ ॥ द्वयोरपि पुरस्ताद्दूष्यबलघातिनोर्यो बहुलतरं शक्तिमत्तरमत्यन्तदूष्यं च घातयेत्सो ऽतिसंधत्ते ॥ ३८ ॥ तेनामित्राटवीबलघातो व्याख्यातः ॥ ३९ ॥

जब दोनों की सेनाओं का समान नाश हुआ और धन व्यय भी समान ही हुआ-तो भी इस समय राजा से बिगड़ी हुई सेना हो तो उसे मरवा कर निष्कण्टक हो जाना चाहिए। जब अपने वशवर्ती सेना रह जाती है, तभी अपनी विजय होती है, यदि बिगड़ी हुई दो सेनाओं को दो राजा समान रीति से नष्ट करके युद्ध करें तो उनमें जो अत्यन्त शक्तिशाली दुष्ट सेना का घात करके युद्ध करता है, वही विजयी होता है। इसी तरह शत्रु सेना और जंगली सेना को मरवा कर निष्कण्टक युद्ध करना चाहिए॥ ३७-३९॥

पार्ष्णिग्राहो ऽभियोक्ता वा यातव्यो वा यदा भवेत्।
विजिगीषुस्तदा तत्र नैत्रमेतत्समाचरेत्॥ ४०॥

जब विजयाभिलाषी राजा, पार्ष्णि ग्राह (पीछे से आक्रमण करने वाला) अभियोक्ता (चढ़ाई करने वाला) या यातव्या चढ़ाई किया जाने वाला हो तो उस दशा में उसको इस प्रकार नेतृत्व करना चाहिए॥४०॥

पार्ष्णिग्राहो भवेन्नेता शत्रोर्मित्राभियोगिनः।
विग्राह्य पूर्वमाक्रन्दं पार्ष्णिग्राहाभिसारिणा॥ ४१॥

जब शत्रु मित्र पर चढ़ाई करे-तोआप पार्ष्णिग्राह नेता बने और पार्ष्णि ग्राह के ढंग पर चलकर प्रथम शत्रु को अपने आक्रमण संज्ञक राजा के साथ लड़ा दे॥ ४१॥

आक्रन्देनाभियुञ्जानः पार्ष्णिग्राहं निवारयेत्।
तथाक्रन्दाभिसारेण पार्ष्णिग्राहाभिसारिणम्॥ ४२॥

यदि आक्रन्द संज्ञक राजा स्वयं चढ़ाई कर दे, तो आप उस आक्रन्द से भिड़ जावे और उसके पार्ष्णि ग्राह को अपने पार्ष्णि ग्राह से लड़ा देवे॥ ४२॥

अरिमित्रेण मित्रं च पुरस्तादवघट्टयेत्।
मित्रमित्रमरेश्चापि मित्रमित्रेण वारयेत्॥ ४३॥

शत्रु के मित्र से प्रथम अपने मित्र को भिड़ावे तथा शत्रु के मित्र के मित्र से अपने मित्र के मित्र को लड़ावे॥ ४३॥

मित्रेण ग्राहयेत्पार्ष्णिमभियुक्तो ऽभियोगिनः।
मित्रमित्रेण चाक्रन्दं पार्ष्णिग्राहं निवारयेत्॥ ४४॥

यदि कोई विजयाभिलाषी राजा पर चढ़ आवे तो वह अपने मित्र द्वारा उसका पीछा करवा के तथा आक्रन्द और पार्ष्णि ग्राह को अपने मित्र के मित्र द्वारा पीछे हटवावे॥४४॥

एवं मण्डलमात्मार्थं विजिगीषुर्निवेशयेत् ।
पृष्ठतश्च पुरस्ताच्च मित्रप्रकृतिसंपदा ॥ ४५ ॥

इस प्रकार विजयेच्छुक राजा अपने राजमंडल को समुचित रीति से आगे पीछे ठीक रखे। इसमें मित्र संज्ञक प्रकृति की सम्पत्ति का प्राधान्य रहता है ॥ ४५ ॥

कृत्स्ने च मण्डले नित्यं दूतान्गूढांश्च वासयेत् ।
मित्रभूतः सपत्नानां हत्वा हत्वा च संवृतः ॥ ४६ ॥

इस सारे राजमंडल में नित्य-गुप्त दूतों का प्रवेश रखे। शत्रुओं का ऊपर से बनावटी मित्र बना रहकर एक २ को चुनकर मरवा दे और आप अपने आकार को उदासीन बनाए रखे ॥ ४६ ॥

असंवृतस्य कार्याणि प्राप्तान्यपि विशेषतः ।
निःसंशयं विपद्यन्ते भिन्नः प्लव इवोदधौ ॥ ४७ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे पार्ष्णिग्राहचिन्ता त्रयोदशो ऽध्यायः ॥१३॥
आदितं ऽकादशशतः ॥ १११ ॥

जो अपने आकार या मन्त्र को छुपाकर नहीं रख सकता, उसके काम बनते २ भी समुद्र में टूटी नौका की तरह निश्चय नष्ट हो जाते हैं ॥ ४७ ॥

इति श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य नामक अधिकरण में पार्ष्णि ग्राह के विषय में विचार करने का तेरहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



चौदहवां अध्याय

११८वां प्रकरण

हीनशक्ति-पूरणम्

इस प्रकरण में अपनी हीन शक्ति के पूर्ण करने का वर्णन किया जावेगा।

सामवायिकैरेवमभियुक्तो विजिगीषुर्यस्तेषां प्रधानस्तं ब्रूयात् ॥ १ ॥ त्वया मे संधिः ॥ २ ॥ इदं हिरण्यम् ॥ ३ ॥ अहं च मित्रम् ॥ ४ ॥ द्विगुणा ते वृद्धिः ॥ ५ ॥ नार्हस्यात्मक्षयेण मित्रमुखानमित्रान्वर्धयितुम् ॥ ६ ॥ एते हि वृद्धास्त्वामेव परिभविष्यन्तीति ॥ ७ ॥

यदि किसी राजा पर बहुत से इकट्ठे हुए राजाओं ने आक्रमण कर दिया-तो विजयाभिलाषी राजा, उन में जिस राजा को प्रधान समझे-उससे इस प्रकार कहे, कि मैं तुम से सन्धि करना चाहता हूँ। यह तो मैं तुम्हें सुवर्ण देता हूं। और मैं तुम्हारा मित्र रहूंगा-इस प्रकार तुम्हारा दुगुना बल बढ़ जावेगा। तुमको अपना क्षय करके आदर से मित्र बने हुए अपने साथी शत्रुओं को नहीं बढ़ाना चाहिए। ये जब बहुत बढ़ जावेंगे तो आगे चल कर तुम्हें ही पराजित करेंगे ॥१-७॥

भेदं वा ब्रूयात् ॥ ८ ॥ अनपकारो यथाहमेतैः संभूयाभियुक्तस्तथा त्वामप्येते संहितबलाः स्वस्था व्यसने वाभियोक्ष्यन्ते ॥ ९ ॥ बलं हि चित्तं विकरोति ॥ १० ॥ तदेषां विघातयेति ॥ ११ ॥ भिन्नेषु प्रधानमुपगृह्य हीनेषु विक्रमयेत् ॥ १२ ॥ हीनाननुग्राह्य वा प्रधाने ॥ १३ ॥ यथा वा श्रेयो ऽभिमन्यते तथा, वैरं वा परैर्ग्राहयित्वा विसंवादयेत् ॥ १४ ॥

इसके सिवा उनमें फूट डलवाने वाली ये बातें भी करे, कि देखो मैंने इन का क्या अपकार किया था, परन्तु इन्हों ने मिलकर व्यर्थ मुझपर चढ़ाई कर दी, इसी तरह जब इनमें अधिक बल आ जावेगा और तुम पर कोई विपत्ति होगी-तो फौरन ये तुम पर भी चढ़ दौड़ेंगे। जब बल बढ़ जाता है, तब चित्त ठिकाने नहीं रहता है। तुमको इन्हें नष्ट कर देना चाहिए। यदि उन में कुछ फूट पड़ जावे, तो प्रधान राजाओं को साथ लेकर हीन बल वालों से लड़ जावे। यदि प्रधान फोड़ तोड़ में न आवे-तो हीन बल वालों को मिलाकर प्रधानों पर आक्रमण कर दे। सारांश यह है, कि जिस तरह अपना कल्याण समझे-उसी तरह उन शत्रुओं को परस्पर लड़ाकर अपना वैर पूरा करे ॥ ८-१४ ॥

फलभूयस्त्वेन वा प्रधानमुपजाप्य संधिं कारयेत् ॥ १५ ॥ अथोभयवेतनाः फलभूयस्त्वं दर्शयन्तः सामवायिकानतिसंहिताः स्थ इत्युद्दूषयेयुः ॥ १६ ॥ दुष्टेषु संधिं दूषयेत् ॥१७॥ अथोभयवेतना भूयो भेदमेषां कुर्युरेवं तद्यदस्माभिर्दर्शितमिति ॥ १८ ॥ भिन्नेष्वन्यतमोपग्रहेण वा चेष्टेत ॥ १९ ॥

बहुत सा धन भूमि आदि देकर प्रधान को तोड़ ले और उसके द्वारा ही उनसे भी सन्धि करले अथवा दोनों ओर से वेतन लेने वाले गुप्तचर प्रधान राजा का बहुत सा धन लेना प्रमाणित करके उन सारे संगठित राजाओं से कहे, कि प्रधान राजा ने तुम सबको इस प्रकार धोखे में डाल कर अपना काम बना लिया है। इस प्रकार इनके चित्त में खटाई डलवावे। जब झगड़ पड़े-तो अपनी सन्धि भी तोड़ देवे। इसी तरह फिर वे ही उभयवेतन गुप्तचर उन राजाओं से कहें, कि देखो, अब इसने सन्धि

तोड़ दी-वही बात निकली जो हम प्रथम कह रहे थे। जब ये भिन्न २ हो जावे, तो इनमें एक का साथ देकर दूसरे से युद्ध कर लेना चाहिए ॥ १५-१६ ॥

प्रधानाभावे सामवायिकानामुत्साहयितारं स्थिरकर्माणमनुरक्तप्रकृतिं लोभाद्भयाद्वा संघातमुपागतं विजिगीषोर्भीतं राज्यप्रतिसंबन्धं मित्रं चलामित्रं वा पूर्वानुत्तराभावे साधयेत् ॥ २० ॥

यदि इन चढ़ाई करने वाला राजाओं में कोई खास प्रधान राजा न हो-तो इन सबको उत्तेजित करने वाले, दृढ़ता के साथ में अपने काम में लगे हुए, मन्त्री आदि प्रकृति का प्रेमी, किसी लाभ या भय से इस समूह में सम्मिलित हुआ, चढ़ाई किये हुए राजा के आक्रमण से प्रथम भयभीत हुआ, राज्य से सम्बन्ध रखने वाला मित्र या दुर्ग आदि रहित शत्रु को जहां तक हो तोड़ लेवे। जैसा २ इनमें मिले, उसी के अनुसार कार्य करे ॥२०॥

उत्साहयितारमात्मनिसर्गेण स्थिरकर्माणं सान्त्वप्रणिपातेनानुरक्तप्रकृतिं कन्यादानयापनाभ्यां लुब्धमंशद्वैगुण्येन भीतमेभ्यः कोशदण्डानुग्रहेण स्वतो भीतं विश्वासयेत् प्रतिभूप्रदानेन राज्यप्रतिसंबन्धमेकीभावोपगमनेन मित्रमुभयतः प्रियहिताभ्यामुपकारत्यागेन वा चलामित्रमवधृतमनपकारोपकाराभ्याम् ॥ २१ ॥

सबको भड़काने वाले से राजा कहे "मैं पुत्र अमात्य सहित तुम्हारे अधीन हूं"। दृढ़ता के साथ कार्य में संलग्न राजा से अपना पीछा छुड़ाने वाला राजा नम्रता के साथ प्रणाम करके अनुरक्त प्रकृति वाले राजा को कन्या का सम्बन्ध करके लोभी को दुगुना भाग देकर भयभीत को कोश और सेना देकर, अपने से भयभीत को प्रतिभू द्वारा विश्वास दिलाकर राज्य से सम्बन्ध रखने वाले से एकता स्थापित करके, प्रिय और हितकारी बातों से मित्र और उपकार करके दुर्ग रहित शत्रु को और स्थिर शत्रु को अपकार नहीं करने तथा उपकार करने की प्रतिज्ञा करके वश में करे ॥२१॥

यो वा यथायोगं भजेत तं तथा साधयेत् ॥ २२ ॥ सामदानभेददण्डैर्वा यथापत्सु व्याख्यास्यामः ॥ २३ ॥ व्यसनोपघातत्वरितो वा कोशदण्डाभ्यां देशे काले कार्ये वावधृतं संधिमुपेयात ॥ २४ ॥ कृतसंधिहीनमात्मानं प्रतिकुर्वीत ॥ २५ ॥ पक्षे हीनो बन्धुमित्रपक्षं कुर्वीत ॥ २६ ॥ दुर्गमविषह्यं वा ॥ २७ ॥ दुर्गमित्रप्रतिस्तब्धो हि स्वेषां परेषां च पूज्यो भवति ॥ २८ ॥

इन समूह से आक्रमण करने वाले राजाओं में जो जिस तरह वश में होवे, उसको वैसे ही वश में कर लेवे। साम, दान, दण्ड, भेद इन चार उपायों द्वारा जिसके प्रयोग का

समय ही उसका प्रयोग करे। इन सबके प्रयोग करने की व्यवस्था हम आपत्प्रकरण में करेंगे। विजयाभिलाषुक राजा, अपने कष्ट को शीघ्र नाश करने के निमित्त अपने कोश या सेना से देशकालोपयोगी कार्य करके जिससे सन्धि हो सके उससे निश्चित प्रतिज्ञाओं के साथ सन्धि करले। सन्धि करने के अनन्तर जो अपने में न्यूनता हो उसके पूर्ण करने की चेष्टा करता रहे। यदि अपना पक्ष खण्डित हो रहा हो तो राजा अपने बन्धु और मित्रों के पक्ष को प्रथम संगठित करे। इसी तरह अभेद्य दुर्गों की रचना की चेष्टा में लग जावे। जिसके पास मित्र और दुर्गों का समूह विद्यमान होता है, वह अपने और दूसरों का पूज्य होता है ॥२१-२८॥

मन्त्रशक्तिहीनः प्राज्ञपुरुषोपचयं विद्यावृद्धसंयोगं वा कुर्वीत ॥ २९ ॥ तथा हि सद्यःश्रेयः प्राप्नोति ॥ ३० ॥ प्रभावहीनः प्रकृतियोगक्षेमसिद्धौ यतेत ॥ ३१ ॥ जनपदः सर्वकर्मणां योनिः ॥ ३२ ॥ ततः प्रभावः ॥ ३३ ॥ तस्य स्थानमात्मनश्च आपदि दुर्गम् ॥ ३४ ॥ सेतुबन्धः सस्यानां योनिः ॥ ३५ ॥ नित्यानुषक्तो हि वर्षगुणलाभः सेतुवापेषु ॥ ३६ ॥

मन्त्र शक्ति से हीन राजा, बुद्धिमान् विद्वान् पुरुषों का संग्रह और विद्या वृद्ध अनुभवी पुरुषों की सङ्गति करता रहे। इस प्रकार उसे बहुत शीघ्र कल्याण की प्राप्ति होती है। प्रभाव से हीन राजा, अपने अमात्य आदि प्रकृतियों तथा प्रजा के योग क्षेम [कल्याण] का प्रयत्न करे, क्योंकि जनपद (राष्ट्र) सारे कामों का कारण है। इसीसे दुर्ग और सेना की प्राप्ति और प्रभाव (रोआब) की उत्पत्ति होती है। इस प्रभाव का मूलस्थान दुर्ग है और दुर्ग से ही आपत्काल में अपनी भी रक्षा हो सकती है। सेतुबन्ध (जलाशय) अन्न-उत्पत्ति के हेतु हैं। सेतुबन्धों के समीप अन्न नित्य उत्पन्न हो सकता है। वर्षा से अन्न तो कभी २ समय पर ही उत्पन्न होता है ॥२९-३६॥

वणिक्पथः परातिसंधानस्य योनिः ॥ ३७ ॥ वणिक्पथेन हि दण्डगूढपुरुषातिनयनं शस्त्रावरणयानवाहनक्रयश्च क्रियते ॥ ३८ ॥ प्रवेशो निर्णयनं च ॥ ३९ ॥ खनिः संग्रामोपकरणानां योनिः ॥ ४० ॥ द्रव्यवनं दुर्गकर्मणाम् ॥ ४१ ॥ यानरथयोश्च ॥ ४२ ॥ हस्तिवनं हस्तिनाम् ॥ ४३ ॥ गवाश्वखरोष्ट्राणां च व्रजः ॥ ४४ ॥ तेषामलाभे बन्धुमित्रकुलेभ्यः समार्जनम् ॥ ४५ ॥

व्यापारियों के मार्ग (सड़क) आदि शत्रु को चकमा देने का कारण माने गए हैं। वणिक्पथ से सेना, गुप्तचर पुरुषों का ले जाना और शस्त्र, कवच, सवारी आदि वस्तुओं

का विक्रय किया जा सकता है। दूसरे देश की वस्तुओं का लाना और अपनी ले जाना भी इन्हीं मार्गों से हो सकता है। खान, युद्ध की वस्तुओं के उत्पन्न करने का कारण है। दुर्ग की वस्तुओं की उत्पत्ति का स्थान द्रव्यवन है। इसी द्रव्यवन में यान और रथ आदि के बनाने के साधनों की उत्पत्ति होती है। हस्तिवन हाथियों की उत्पत्ति का केन्द्र है। गाय बैल, अश्व-रथ और ऊंटों की उत्पत्ति व्रज (गोष्ठ) में होती है। यदि पशु और पक्षियों की उत्तम नसल यहां न हो-तो अपने बन्धु या मित्रों के पास से मंगवा लेवे ॥३७-४५॥

उत्साहहीनः श्रेणीप्रवीरपुरुषाणां चोरगणाटविकम्लेच्छजातीनां परापकारिणां गूढपुरुषाणां च यथालाभमुपचयं कुर्वीत ॥४६॥ परमित्रप्रतीकारमाबलीयसं वा परेषु प्रयुञ्जीत ॥ ४७ ॥

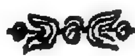
उत्साह (वीरता) से हीन राजा, श्रेणी पुरुष, वीर पुरुष, चोर, गण, वनवासी भील म्लेच्छ जाति के पुरुष या शत्रु के अपकार में समर्थ गूढ पुरुषों का यथा योग्य संग्रह करे। शत्रु और उसके मित्रों का प्रतीकार या आबलीयस प्रकरण में कहे उपायों का शत्रुओं में प्रयोग करता रहे ॥४६-४७॥

एवं पक्षेण मन्त्रेण द्रव्येण च बलेन च।
संपन्नः प्रतिनिर्गच्छेत्परावग्रहमात्मनः ॥ ४८ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे हीनशक्तिपूरणं चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥
आदितो द्वादशशतः ॥ ११२ ॥

इस प्रकार बन्धु और मित्रों के पक्ष, विद्या वृद्ध पुरुषों के मन्त्रबल, द्रव्य और सेना से युक्त होकर राजा, शत्रु के निग्रह में तत्पर होवे ॥४८॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य नामक अधिकरण में अपनी हीन शक्ति के पूर्ण करने के उपाय वर्णन करने का चौदहवां अध्याय समाप्त हुआ।



पन्द्रहवां अध्याय

११६-१२०वां प्रकरण

बलवता विगृह्योपरोध हेतवो दण्डोपनतवृत्तम्

इस अध्याय में प्रबल शत्रु के साथ विरोध करके दुर्ग प्रवेश के कारण और विजित शत्रु के व्यवहार का वर्णन किया जावेगा।

दुर्बलो राजा बलवताभियुक्तः तद्विशिष्टबलमाश्रयेत यमितरो मन्त्रशक्तया नातिसंदध्यात् ॥१॥ तुल्यमन्त्रशक्तीनामायत्तसंपदो वृद्धसंयोगाद्वा विशेषः ॥२॥ विशिष्टबलाभावे समबलैस्तुल्यबलसङ्घैर्वा बलवतः संभूय तिष्ठेद्यावन्न मन्त्रप्रभावशक्तिभ्यामतिसंदध्यात् ॥ ३ ॥

जब कोई बलवान् राजा दुर्बल राजा पर आक्रमण करदे-तो वह दुर्बल राजा, उस आक्रमणकारी बलवान् राजा से भी अधिक बलशाली राजा का आश्रय लेवे, जो किसी भी तोड़ फोड़ से आक्रमणकारी के वश में न आ सके। यदि अनेक राजा मन्त्र और सेना शक्ति समान रखते हों-तो उनमें जिस पर अधिक सम्पत्ति या जिसके वृद्ध मन्त्री हों-उसका आश्रय लेवे यदि आक्रान्ता से अधिक शक्तिशाली कोई राजा न मिले-तो अपने समानकुल धन वाले या समान सेना वालों का ही आश्रय ले लेवे। इस प्रकार बलवान् का आश्रय लेकर तब तक उसका आश्रय लिये रहे-जब तक मन्त्र और प्रभाव शक्ति द्वारा अपने शत्रु पर अधिकार न प्राप्त हो जावे ॥१-३॥

तुल्यमन्त्रप्रभावशक्तिनां विपुलारम्भतो विशेषः ॥ ४ ॥ समबलाभावे हीनबलैः शुचिभिरुत्साहिभिः प्रत्यनीकभूतैर्बलवतः संभूय तिष्ठेद्यावन्न मन्त्रप्रभावोत्साहशक्तिभिरतिसंदध्यात् ॥ ५ ॥ तुल्योत्साहशक्तीनां स्वयुद्धभूमिलाभाद्विशेषः ॥ ६ ॥ तुल्यभूमीनां स्वयुद्धकाललाभाद्विशेषः ॥ ७ ॥ तुल्यदेशकालानां युग्यशस्त्रावरणतो विशेषः ॥ ८ ॥

यदि तुल्य मन्त्र और प्रभाव वाले अनेक राजा हों-तो उनमें जिसने अधिक विशाल कार्य का आरम्भ कर रखा हो या जिसके पास बहुत अधिक सेना आदि हो उसका आश्रय लेना ही उत्तम है। यदि समान शक्ति वाला राजा भी आश्रय के निमित्त न मिल सके-तो हीन बल वाले, पवित्रात्मा, उत्साही, शत्रुभूत अनेक राजाओं का आश्रय लेकर बलवान् हो जावे, और तब तक शत्रु से भिड़ा रहे-जब तक मन्त्र (तोड़ फोड़) प्रभाव और उत्साह शक्ति से शत्रु को जीत न लिया जावे। इस प्रकार की शक्ति रखने

वाले वही राजा मिलते हों-तो उनमें उसका ही आश्रय लेवे जिस के पास युद्धोपयोगी भूमि हो। यदि अनेक राजाओं के पास ऐसी भूमि भी हो-तो भी जिसके पास युद्ध के निमित्त समय हो-उसका ही आश्रय ग्रहण करे और जो देश काल और शक्ति धारी भी अनेक राजा हों-तो जिस के पास वाहन, शस्त्र और कवच अधिक हों-उसका ही आश्रय ग्रहण करे ॥ ४-८ ॥

सहायाभावे दुर्गमाश्रयेत यत्रामित्रः प्रभूतसैन्योऽपि भक्तयवसेन्धनोदकोपरोधं न कुर्यात् ॥ ९ ॥ स्वयं च क्षयव्ययाभ्यां युज्येत ॥ १० ॥ तुल्यदुर्गाणां निचयापसारतो विशेषः ॥ ११ ॥ निचयापसारसंपन्नं हि मनुष्यदुर्गमिच्छेदिति कौटल्यः ॥ १२ ॥

यदि इन उपर्युक्त राजाओं में कोई भी सहायता देने वाला न मिल सके-तो दुर्ग का आश्रय लेवे। दुर्ग भी ऐसा होना चाहिए, जिसका बहुत सी सेना धारी शत्रु भी घेरा न डाल सके और अन्न भोजन, घास, लकड़ी जल आदि की रुकावट न डाल सके। यदि वहां शत्रु आक्रमण करे-तो उसके जन धन का अधिक नाश होने की सम्भावना होनी चाहिए। यदि आश्रय करने योग्य अनेक दुर्ग हों तो भी उसी दुर्ग में आश्रय करना चाहिए, जिसमें तेल, नमक आदि वस्तुओं का संग्रह तथा सुरङ्ग से निकल जाने का मार्ग हो। कौटल्याचार्य ऐसे ही दुर्ग को आश्रय के योग्य मानते हैं, जिसमें नित्य की उपयोग की सामग्री का संग्रह और निकल जाने की सुरंग हो॥९-१२॥

तदेभिः कारणैराश्रयेत ॥ १३ ॥ पार्ष्णिग्राहमासारं मध्यममुदासीनं वा प्रतिपादयिष्यामि ॥१४॥ सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमेनास्य राज्यं हारयिष्यामि घातयिष्यामि वा ॥ १५ ॥ कृत्यपक्षोपग्रहेण वास्य दुर्गे राष्ट्रे स्कन्धावारे वा कोपं समुत्थापयिष्यामि ॥ १६ ॥ शस्त्राग्निरसप्रणिधानैरौपनिषदिकैर्वा यथेष्टमासन्नं हनिष्यामि ॥ १७ ॥ स्वयमधिष्ठितेन वा योगप्रणिधानेन क्षयव्ययमेनमुपनेष्यामि ॥ १८॥

अधोलिखित कारणों के उपस्थित होने पर दुर्ग का आश्रय ग्रहण करना चाहिए जब राजा यह समझे कि मैं दुर्ग का आश्रय लेने पर पार्ष्णि ग्राह, आसार, मध्यम और उदासीन राजाओं को शत्रु के विरुद्ध खड़ा करदूंगा। किसी सामन्त, वनचर आक्रान्त के विरोधी या बांधवों द्वारा इसका राज्य हरण करदूंगा या इसको मरवा डालूंगा। शत्रु पक्ष के अमात्य आदि कर्मचारी वर्ग को अपने पक्ष में मिलाकर उसके दुर्ग, राष्ट्र, स्कन्धावार [छावनी] में विद्रोह खड़ा करवा दूंगा। शस्त्र, अग्नि, रस और गुप्तचरों या औपनिषदिक

प्रकरण में कहे हुए उपायों द्वारा अपने पास में आते ही आक्रान्ता को मरवा दूंगा। अपने द्वारा प्रयुक्त किये हुए उपायों द्वारा शत्रु को जन और धन की हानि पहुंचा दूंगा तो वह दुर्ग का आश्रय लेलेवे ॥ १३-१८ ॥

क्षयव्ययप्रवासोपतप्ते वास्य मित्रवर्गे सैन्ये वा क्रमेणोपजापं प्राप्स्यामि ॥ १९ ॥ वीवधासारप्रसारवधेन वास्य स्कन्धावारावग्रहं करिष्यामि ॥ २० ॥ दण्डोपनयेन वास्य रन्ध्रमुत्थाप्य सर्वसंदोहेन प्रहरिष्यामि ॥२१॥ प्रतिहतोत्साहेन वा यथेष्टं संधिमवाप्स्यामि, मयि प्रतिबन्धस्य वा सर्वतः कोपाः समुत्थास्यन्ति ॥ २२ ॥ निरासारं वास्य मूलं मित्राटवीदण्डैरुद्घातयिष्यामि ॥ २३ ॥ महतो वा देशस्य योगक्षेममिहस्थः पालयिष्यामि ॥ २४ ॥

यदि राजा की यह समझ में आ जावे, कि मैं इसकी सेना के नाश और धन के व्यय तथा प्रवास के क्लेशों से दुःखी इसके मित्र वर्ग या सेना में फूट डलवा दूंगा। शत्रु तक पहुंचने वाले खाद्य पदार्थ, मित्र सेना, घास, भूसा लकड़ी आदि का विनाश करके इसकी सेना को घेरा डालकर पीड़ित कर दूंगा। किसी प्रकार अपनी थोड़ी सेना इसकी सेना में पहुंचाकर और शत्रु सेना में हल चल उत्पन्न कराकर फिर अधिक सेना से आक्रमण करादूंगा। किसी भी तरह आक्रमण करने वाले शत्रु का उत्साह नष्ट करके अपनी इच्छानुसार सन्धि करा सकूंगा या मुझ पर आक्रमण करने के कारण सब ओर से राजा इसपर टूट पड़ेंगे। इसके मित्र बल को मार्ग में ही रोक कर इसकी राजधानी को अपने मित्र बल या वनचरवासी भीलों से नष्ट भ्रष्ट करवादूंगा। मैं यहां से अपने विशाल देश की देख-रेख करने में समर्थ हो सकूंगा-तो वह दुर्ग का आश्रय कर सकता है ॥ १९-२४ ॥

स्वविक्षिप्तं मित्रविक्षिप्तं वा मे सैन्यामिहस्थस्यैकस्थमविषह्यं भविष्यति ॥ २५ ॥ निम्नखातरात्रियुद्धविशारदं वा मे सैन्यं पथ्याबाधमुक्तमासन्ने कर्माणि करिष्यति ॥ २६ ॥ विरुद्धदेशकालमिहागतो वा स्वयमेव क्षयव्ययाभ्यां न भविष्यति ॥ २७ ॥ महाक्षयव्ययाभिगम्यो ऽयं देशो दुर्गाटव्यपसारबाहुल्यात् ॥२८॥ परेषां व्याधिप्रायः सैन्यव्यायामानामलब्धभौमश्च तमापतद्गतः प्रवेक्ष्यति ॥२९॥ प्रविष्टो वा न निर्गमिष्यतीति ॥ ३० ॥

यदि राजा यह उचित समझे कि मेरी भेजी या मित्र द्वारा भेजी हुई सेना, मेरे यहां स्थित होने पर भी संगठित होकर शत्रु का सामना करती रहेगी। नीचे गढ्ढे, और रात्रि युद्ध में कुशल मेरी सेना, मार्ग की थकान को उतारकर अपने सामने आये हुए

कार्य को अच्छी तरह पूरा कर देगी। शत्रु विरुद्ध देश काल में यहां आकर स्वयं जन धन नाश से युक्त हो जावेगा और हमारे ऊपर आक्रमण करने के योग्य नहीं रह सकेगा। इस प्रदेश में दुर्ग, वन और निकल जाने के बहुत मार्ग हैं, इससे शत्रु आक्रमण करेगा तो उसकी सेना का बड़ा नाश और धन का महान् व्यय होगा। शत्रु के आने पर उसको यहां व्याधियां घेर लेंगी, और यहां उसे सेना सञ्चार को कोई स्थान नहीं मिलेगा, इससे वह स्वयं आपत्ति में फँस जावेगा और आपत्ति में फंसकर उसका निकलना कठिन होगा तो वह दुर्ग का आश्रय ग्रहण कर लेवे ॥२५-३०॥

कारणाभावे बलसमुच्छ्रये वा परस्य दुर्गमुन्मुच्यापगच्छेत् ॥ ३१ ॥ अग्निपतङ्गवदमित्रे वा प्रविशेत् ॥ ३२ ॥ अन्यतरसिद्धिर्हि त्यक्तात्मनो भवतीत्याचार्याः ॥ ३३ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३४ ॥ संधेयतामात्मनः परस्य चोपलभ्य संदधीत ॥३५॥ विपर्यये विक्रमेण सिद्धिमपसारं वा लिप्सेत ॥ ३६ ॥

यदि उपर्युक्त कारण दिखाई न देवे-और शत्रु की सेना बलवती हो तो-राजा दुर्ग छोड़कर निकल जावे। यदि निकल जाना असम्भव हो तो दीपक पर पतङ्ग की तरह शत्रु पर टूट पड़े। कभी २ दुर्बल राजा भी वीरता से आक्रमण करके विजयी हो जाता है। ऐसा आचार्यों का मत है, परन्तु कौटल्याचार्य इस बात को नहीं मानते हैं। वे तो दोनों की सन्धि की योग्यता को देखकर सन्धि करने का प्रथम उपदेश देते हैं। यदि सन्धि होना असम्भव हो जावे-तो पराक्रम द्वारा आक्रमण करे या निकलकर भाग जावे ॥३१-३६॥

संधेयस्य वा दूतं प्रेषयेत् ॥ ३७ ॥ तेन वा प्रेषितमर्थमानाभ्यां सत्कृत्य ब्रूयात् ॥ ३८ ॥ इदं राज्ञः पण्यागारमिदं देवीकुमाराणां देवीकुमारवचनादिदं राज्यमहं च त्वदर्पण इति ॥ ३९ ॥ लब्धसंश्रयः समयाचारिकवद्भर्तरि वर्तेत ॥ ४० ॥ दुर्गादीनि च कर्माण्यावाहविवाहपुत्राभिषेकाश्वपण्यहस्तिग्रहणसत्त्रयात्राविहारगमनानि चानुज्ञातः कुर्वीत ॥ ४१ ॥ स्वभूम्यवस्थितप्रकृतिसंधिमुपघातमपसृतेषु वा सर्वमनुज्ञातः कुर्वीत ॥ ४२ ॥ दुष्टपौरजानपदो वा न्यायवृत्तिरन्यां भूमिं याचेत ॥ ४३ ॥

यदि सन्धि होना सम्भव हो-तो सन्धि करने योग्य राजा के पास दूत भेजा जावे। यदि दूसरे राजा ने सन्धि के निमित्त दूत भेजा है, तो धन और मान से सत्कार करके उससे कहे, कि यह राजा के निमित्त भेंट दे और यह देवी और कुमारों द्वारा देवी और कुमारों को उपहार दी जा रही है। यह सारा राज्य और मैं तुम्हारे अधीन हूं। जब दूत के कथन से विजेता का आश्रय मिल जावे, तो उस विजेता राजा के साथ सेवक

की तरह बर्ताव करे। दुर्ग आदि बनवाना, कन्या लेना या देना, पौत्र राज्याभिषेक, अश्वों का खरीदना, हाथियों का पकड़वाना, यज्ञ, यात्रा, उद्यान आदि की क्रीड़ा करना ये सब उसकी आज्ञा से करे। अपने देश में स्थित अमात्य आदि प्रकृति से मेल, तथा भागे हुए अमात्यों पर दण्ड व्यवस्था, सब अपने स्वामी विजेता राजा की आज्ञा के मिलने पर ही करे। यदि पुर या राष्ट्र के लोग, क्रान्ति करें-तो आप न्याय से रहकर अन्य भूमि में चले जाने की विजेता से आज्ञा मांगे ॥३७-४३॥

दूष्यवदुपांशुदण्डेन वा प्रतिकुर्वीत ॥ ४४ ॥ उचितां वा मित्राद्भूमिं दीयमानां न प्रतिगृह्णीयात् ॥ ४५ ॥ मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजानामन्यतममदृश्यमाने भर्तरि पश्येत् ॥ ४६ ॥ यथाशक्ति चोपकुर्यात् ॥ ४७ ॥ दैवतस्वस्तिवाचनेषु तत्परा आशिषो वाचयेत् ॥ ४८ ॥ सर्वत्रात्मनिसर्गं गुणं ब्रूयात् ॥ ४९ ॥

यदि हो सके-तो दुष्ट शत्रु की तरह उन अन्याय वृत्ति क्रान्तिकारी पुरुषों को गुपचुप मरवा देवे। यदि विजेता किसी मित्र से छीनकर उत्तम भूमि भी प्रदान करे-तो उसे ग्रहण न करे। मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, कोई भी जब न होवें-तब अपने स्वामी विजेता राजा के पास जावे और यथाशक्ति उसका उपकार या सेवा करे। जब देवताओं के आराधन में स्वस्तिवाचन आदि हों-तो आप भी आशीर्वाद आदि में सम्मिलित होवें। सब जगह अपने आपको स्वामी के अधीन न होने की घोषणा कर दे ॥४४-४९॥

संयुक्तबलवत्सेवी विरुद्धः शङ्किताादिभिः।
वर्तेत् दण्डोपनतो भर्तर्येवमवस्थितः ॥ ५० ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे बलवता विगृह्योपरोधहेतवः दण्डोपनतवृत्तं पञ्चदशो ऽध्यायः ॥ १५ ॥ आदितस्त्रयोदशशतः ॥ ११३ ॥

इस प्रकार स्थित होकर पराजित राजा विजेता के सन्मुख व्यवहार करे और विजेता के बलशाली अमात्यों से अनुकूल और विरुद्ध रहने वाले लोगों से प्रतिकूल रहे ॥५०॥

इति श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में बलवान् के साथ व्यवहार करने के वर्णन का पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।



सोलहवां अध्याय

१२१वां प्रकरण

दण्डोपनायि वृतम्

इस प्रकरण में पराजित राजा के साथ व्यवहार करने का वर्णन होगा।

अनुज्ञातस्तद्धिरण्योद्वेगकरं बलवान्विजिगीषुमाणो यतः सुभूमिः स्वर्तुवृत्तिश्च स्वसैन्यानामदुर्गापसारः शत्रुरपार्ष्णिरनपसारश्च ततो यायात् ॥ १ ॥ विपर्यये कृतप्रतीकारो यायात् ॥ २ ॥ सामदानाभ्यां दुर्बलानुपनमयेत् ॥ ३ ॥ भेददण्डाभ्यां बलवतः ॥ ४ ॥

पूर्व में प्रतिज्ञा किये हुए सुवर्ण आदि को नहीं देने वाले राजा पर बलवान विजयाभिलाषी राजा, अपने स्वामी की आज्ञानुसार उसपर चढ़ाई करदे। चढ़ाई का मार्ग बड़ा सुन्दर और सेना को उस ऋतु के अनुसार खाद्य पदार्थ आदि मिल जाते की सम्भावना होनी चाहिए। जिस राजा पर चढ़ाई की जावे वह दुर्ग हीन या अपसार (सुरङ्ग मार्ग) हीन हो तो बड़ी अच्छी बात है। शत्रु पार्ष्णिग्राह और मित्र बल से रहित होना चाहिए। इस दशा में चढ़ाई करने से अवश्य सिद्धि हो सकेगी। यदि शत्रु के ऊपर चढ़ाई करने के समय उपर्युक्त कोई भी सुभीते न हों-तो इन सब का उपाय करके चढ़ाई करे अर्थात् मार्ग सुचारु बनवाकर शत्रु के निकल भागने आदि का उपाय करके चढ़ाई करे। दुर्बल राजाओं को तो साम दान आदि से ही अपने वश में कर लेना चाहिए। जो बलवान् हों, उनको भेद और दण्ड से वश में लावे ॥१-४॥

नियोगविकल्पसमुच्चयैश्चोपायानामनन्तरैकान्तराः प्रकृतीः साधयेत् ॥ ५ ॥ ग्रामारण्योपजीविव्रजवणिक्पथानुपालनमुज्झितापसृतापकारिणां चार्पणमिति सान्त्वमाचरेत् ॥ ६ ॥ भूमिद्रव्यकन्यादानमभयस्य चेति दानमाचरेत् ॥ ७ ॥ सामन्craटविकतत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमोपग्रहेण कोशदण्डभूमिदाययाचनमिति भेदमाचरेत् ॥ ८ ॥ प्रकाशकूटतूष्णींयुद्धदुर्गलम्भोपायैरमित्रप्रग्रहणमिति दण्डमाचरेत् ॥ ९ ॥

साम आदि उपायों में किसी एक निश्चित उपाय को प्रयोग करना नियोग कहाता है। किसी उपाय के प्रयोग का अनिश्चय विकल्प और कई उपायों का एक साथ प्रयोग कर देना समुच्चय है। इन नियोग आदि के द्वारा विजयाभिलाषी राजा, शत्रु और मित्र राजा या अमात्य आदि को अपने वश में करता रहे। गांव और जंगल के जीव गाय भैंस आदि

तथा व्यापारोपयोगी जल स्थल मार्गों की रक्षा करना, छोड़कर चले गए या भागे हुए अपकारी मनुष्यों को खोज कर अर्पण कर देना आदि साम उपाय का प्रयोग कहाता है। भूमि, द्रव्य, कन्या और अभयदान ये-दान कहाते हैं। दुर्बल राजा के साथ इनका प्रयोग माना गया है। शत्रु राजा के सामन्त, या वनचर भील आदि तथा किसी पकड़े हुए उसके बान्धु-बान्धव को अपने अनुकूल बनाकर उसके द्वारा कोश, सेना, भूमि या अपने दायभाग की याचना करवा देवे और इस प्रकार शत्रु पक्ष में फूट डलवावे। इसी प्रकार देशकाल की सूचना देकर प्रकाश युद्ध, कूट युद्ध, और गुप्त पुरुषों से शत्रु का मरवा देना रूप तूष्णीं युद्ध, एवं दुर्गलम्भोपाय में बताये हुए विष प्रयोग आदि उपायों द्वारा शत्रु के साथ दण्ड का प्रयोग करे।।५-६।।

एवमुत्साहवतो दण्डोपकारिणः स्थापयेत् ॥ १० ॥ स्वप्रभाववतः कोशोपकारिणः प्रज्ञावतो भूम्युपकारिणः ॥ ११ ॥ तेषां पण्यपत्तनग्रामखनिसंजातेन रत्नसारफल्गुकुप्येन द्रव्यहस्तिवनव्रजसमुत्थेन यानवाहनेन वा यद्बहुश उपकरोति तच्चित्रभोगम् ॥ १२ ॥ यद्दण्डेन कोशेन वा महदुपकरोति तन्महाभोगम् ॥१३॥ यद्दण्डकोशभूमीरुपकरोति तत्सर्वभोगम् ॥ १४ ॥

राजा, जो वीरता आदि गुणों से युक्त हों-उन को सेनापति आदि पद पर नियुक्त करे। जिनका प्रभाव अधिक हो, उनको कोश सञ्चय पर और बुद्धिमान पुरुषों को भूमि के कार्य पर नियुक्त करे। इन साम आदि उपायों से वश में किये हुए राजाओं में जो बड़े २ बाजार नगर गांव, या खान से उत्पन्न रत्न (मणि आदि) सार (चन्दन आदि) कुप्य (शंख वस्त्र आदि) तथा द्रव्य वन, हस्तिवन या बैल आदि द्वारा बने हुए रथ, सवारी से बहुत सा उपकार करता है, वह चित्र भोग कहाता है। जो अधिकृत राजा सेना या कोश द्वारा बड़ा उपकार करता है, वह महाभोग और जो सेना, कोश और भूमि आदि सब कुछ अर्पण कर देता है, वह सर्व भोग कहाता है ।।१०-१४।।

यदमित्रमेकतः प्रतिकरोति तदेकतोभोगि ॥ १५ ॥ यदमित्रमासारं चोपकरोति तदुभयतोभोगि ॥ १६ ॥ यदमित्रासारप्रतिवेशाटविकान्सर्वतः प्रतिकरोति तत्सर्वतोभोगि ॥ १७ ॥ पार्ष्णिग्राहश्चाटविकः शत्रुमुख्यः शत्रुर्वा भूमिदानसाध्यः कश्चिदासाद्येत ॥ १८ ॥ निर्गुणया भूम्यैनमुपग्राहयेत् ॥ १६ ॥ अप्रतिसंबद्धया दुर्गस्थम् ॥ २० ॥ निरुपजीव्ययाटविकम् ॥ २१ ॥ प्रत्यादेयया तत्कुलीनम् ॥ २२ ॥ शत्रोरुपच्छिन्नया शत्रोरुपरुद्धम् ॥ २३ ॥ नित्यामित्रया श्रेणीबलम् ॥ २४ ॥ बलवत्सामन्तया संहतबलम् ॥ २५ ॥ उभाभ्यां युद्धे

प्रतिलोमम् ॥ २६ ॥ अलब्धव्यायामयोत्साहिनम् ॥ २७ ॥ शून्ययारिपक्षीयम् ॥ २८ ॥ कर्शितयोपवाहितम् ॥ २९ ॥ महाक्षयव्ययनिवेशया गतप्रत्यागतम् ॥ ३० ॥ अनपाश्रयया प्रत्यपसृतम् ॥ ३१ ॥ परेणानधिवास्यया स्वयमेव भर्तारमुपग्राहयेत् ॥ ३२ ॥

जो मित्र राजा एक शत्रु का प्रतीकार करता है, वह एकतो भोगी होता है। जो शत्रु और आसार (उसके मित्र) दोनों का प्रतीकार कर देता है, वह उभयतो भोगी कहाता है। जो शत्रु आसार उसके पड़ोसी, वनचर भील सबका प्रतीकार कर देता है, वह सर्वतो भोगी होता है। पार्ष्णिग्राह वनचर शत्रु के मुख्य अमात्य या स्वयं शत्रु कुछ भूमि लेकर वश में आना चाहे, तो उनको गुणहीन साधारण भूमि देकर वश में करले। यदि ये दुर्ग में स्थित हों तो इनको अच्छी भूमि देदे, परन्तु वह भूमि अपने राज्य के मध्य में न होवे। जिस में अन्न आदि उत्पन्न न हो सके-ऐसी भूमि वनचरों को देकर टरका देवे। शत्रु राजा के कुलीन पुरुषों को ऐसी भूमि देवे-जो फिर लौटायी जा सके। शत्रु के पकड़े हुए राजकुमार को शत्र से छीनी हुई भूमि दे देवे। किसी समूह के साथ मेल करना हो-तो उसको ऐसी भूमि देवे, जिसमें नित्य शत्रु खड़े होते हों। नेता वाले सेना के समूह को ऐसी भूमि देवे, जिस के समीप कोई अन्य बलवान राजा रहता हो। कूट युद्ध करके रहने वाले, राजा को शत्रु के नित्य उपद्रव से युक्त और बलवान् सामन्त वाली भूमि देवे। बल वीरतादि युक्त शत्रु को ऐसी भूमि देवे, जिसमें सेना व्यायाम (कवायद) आदि न कर सके। शत्रु पक्ष के अमात्य आदि को शून्य स्थान प्रदान करे। जो प्रतिज्ञा तोड़ कर युद्ध में प्रवृत्त हो गया हो, उसे अन्न उत्पन्न करने में निर्बल भूमि का प्रदान करे। जो शत्रु से मिलकर अपने से फिर मिलना चाहता हो, उसे बड़े जन और धन के नाश से बसने वाली भूमि देवे। शत्रु से डर कर भागे हुए सामन्त को फिर दुर्ग आदि से रहित भूमि देवे। जिस भूमि पर शत्रु का अधिकार होना असम्भवसा हो, उस भूमि को स्वयं अपने सच्चे स्वामी को समर्पित करे ॥ १५-३२ ॥

तेषां महोपकारं निर्विकारं चानुवर्तयेत् ॥ ३३ ॥ प्रतिलोममुपांशुना साधयेत् ॥ ३४ ॥ उपकारिणमुपकारशक्त्या तोषयेत् ॥ ३५ ॥ प्रयासतश्चार्थमानौ कुर्यात् ॥ ३६ ॥ व्यसनेषु चानुग्रहं स्वयमागतानां यथेष्टदर्शनं प्रतिविधानं च कुर्यात् ॥ ३७ ॥ परिभवापघातकुत्सातिवादांश्चैषु न प्रयुञ्जीत ॥ ३८ ॥ दत्त्वाचाभयं पितेवानुगृह्णीयात् ॥ ३९ ॥ यश्चास्यापकुर्यात्तद्दोषमभिविख्याप्य प्रकाशमेनं घातयेत् ॥ ४० ॥

इन में सच्चे हृदय से उपकार करने वाले राजा के साथ विजेता, शुद्ध हृदय से व्यवहार करे। जो छल के साथ व्यवहार करता हो, उसे गुप्त रीति से मरवा डाले। जो उपकार करने वाला है, उसे उपकार से वश में लावे और उनके परिश्रम के अनुसार उन्हें धन और मान प्रदान करे। जब उन पर कोई विपत्ति आवे-अनुग्रह दिखावे। आये हुए सामन्तों से स्वयं मिले और उनके कष्टों का प्रतिविधान (इलाज) भी कर देवे। इन जीते हुए राजाओं की पराजय के गीत, कटु वाक्य, निन्दा या इनकी किसी बात को बहुत बढ़ा कर न कहे, परन्तु जो विजयी राजा का अपकार करे, उसके उस दोष को प्रमाणित करके उसे प्रकाश रूप में मरवा देवे॥ ३३-४०॥

परोद्वेगकारणाद्वा दाण्डकर्मिकवच्चेष्टेत ॥ ४१ ॥ न च हतस्य भूमि द्रव्यपुत्रदारानभिमन्येत ॥ ४२ ॥ कुल्यानप्यस्य स्वेषु पात्रेषु स्थापयेत् ॥ ४३ ॥ कर्मणि मृतस्य पुत्रं राज्ये स्थापयेत् ॥ ४४ ॥ एवमस्य दण्डोपनताः पुत्रपौत्राननुवर्तन्ते ॥ ४५ ॥ यस्तूपनतान्हत्वा बध्वा वा भूमिद्रव्यपुत्रदारानभिमन्येत तस्योद्विग्नं मण्डलमभावायोत्तिष्ठते ॥४६॥ ये चास्यामात्याः स्वभूमिष्वायत्तास्ते चास्योद्विग्ना मण्डलमाश्रयन्ते ॥४७॥ स्वयं राज्यं प्राणान्वास्याभिमन्यन्ते ॥४८॥

यदि प्रकाश में वध करवाने से अन्य राजाओं में हलचल खड़ी हो जावेगी-तो दाण्ड कर्मिक प्रकरण में कहे हुए ढंग से उन्हें गुपचुप मरवा देवे। मरवाए हुए राजा को भूमि, द्रव्य पुत्र और स्त्रियों पर कभी आप अधिकार न करे, किन्तु उसके वंशजो को उनकी योग्यता के अनुसार ठिकानों पर नियुक्त करे। यदि किसी युद्ध कर्म आदि में कोई सामन्त राजा या शत्रु राजा मारा जावे, तो उसके पुत्र को ही उसके राज्य पर बैठा दिया जावे। यदि वश में किये हुए राजाओं के साथ इस प्रकार वर्ताव किया जावेगा तो उनके पुत्रों पौत्र भी अपने पुत्र पौत्र के अनुगामी चले जावेंगे। जो राजा, अपने जीते हुए सामन्तों को मरवा देता या बन्धन में डाल देता है, तथा उसकी भूमि, द्रव्य, पुत्र और स्त्रियों को छीनता है, उससे अनेक राजा बिगड़ बैठते हैं, और वे उसके नाश का प्रयत्न करने लगते हैं। इस राजा के अपनी २ भूमि के स्वामी अमात्य भी घबरा जाते हैं, और उस विद्रोही राज मण्डल से मिल जाते हैं जो इस राजा के राज्य या प्राणों के गाहक बन जाते हैं॥ ४१-४८॥

स्वभूमिषु च राजानः तस्मात्साम्नानुपालिताः।
भवन्त्यनुगुणा राज्ञः पुत्रपौत्रानुवर्तिनः ॥४९॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे दण्डोपनायिवृत्तं षोडशो ऽध्यायः ॥१६॥
आदितश्चतुर्दशशतः ॥ ११४ ॥

उपर्युक्त साम आदि उपायों द्वारा जीते हुए शत्रुओं को उनकी भूमि प्रदान करके जो अपने अनुकूल बना लेता है, उनके पुत्र पौत्र भी राजा के अनुगामी बन जाते हैं ॥४६॥

इति श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में पराजित राजा के साथ किये जाने वाले व्यवहार के वर्णन का सोलहवां अध्याय समाप्त हुआ।



सत्रहवां अध्याय

१२२-१२३वां प्रकरण

सन्धि-कर्म सन्धि मोक्षः

इस प्रकरण में संधि विषयक वर्णन किया जावेगा।

शमः संधिः समाधिरित्येकोऽर्थः ॥ १ ॥ राज्ञां विश्वासोपगमः शमः संधिः समाधिरिति ॥ २ ॥ सत्यं शपथो वा चलः संधि ॥ ३ ॥ प्रतिभूः प्रतिग्रहो वा स्थावरः इत्याचार्याः ॥ ४ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ५ ॥ सत्यं वा शपथो वा परत्रेह च स्थावरः संधिः ॥ ६ ॥ इहार्थ एव प्रतिभूः प्रतिग्रहो वा बलापेक्षः ॥ ७ ॥ संहिताः स्म इति सत्यसंधाः पूर्वे राजानः सत्येन संदधिरे ॥ ८ ॥

शम, संधि और समाधि-ये पर्यायवाची शब्द हैं। इस शम, संधि-या समाधि से ही राजाओं में परस्पर विश्वास की नींव पड़ती है। जो संधि सत्य का विश्वास दिलाकर या शपथ के आधार पर होती है, वह स्थिर नहीं होती, परन्तु जो प्रतिभू (जामिन) या राजकुमार को रखकर संधि की जाती है, वह दृढ़ होती है ऐसा आचार्यों का मत है, परन्तु कौटल्याचार्य-सत्य की शपथ खाकर जो संधि की जाती है, उसे स्थायी मानते हैं। उनका ख्याल है, कि इस लोक और परलोक के बिगड़ने के डर से योग्य मनुष्य इस संधि को नहीं तोड़ सकते हैं। प्रतिभू और राजकुमार आदि को प्रतिग्रह के रूप में रखकर जो संधि की जाती है, वह इस लोक के यश अपयश पर ही निर्भर है या जब तक बल नहीं है, तभी तक चलती है। हम तुम संधि करके एक रहेंगे-इस तरह बहुत से पूर्वज सत्य प्रतिज्ञ राजाओं ने अपने कथन को अन्त तक निभाया है ॥१-८॥

तस्यातिक्रमे शपथेन अग्न्युदकसीताप्राकारलोष्टहस्तिस्कन्धाश्वपृष्ठरथोपस्थशस्त्ररत्नबीजगन्धरससुवर्णहिरण्यान्यालेभिरे ॥ ९ ॥ हन्युरेतानि त्यजेयुश्चैनं यः शपथमतिक्रामेदिति ॥ १० ॥ शपथातिक्रमे महतां तपस्विनां मुख्यानां वा प्रातिभाव्यबन्धः प्रतिभूः ॥ ११ ॥ तस्मिन्यः परावग्रहसमर्थान्प्रतिभुवो गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १२ ॥ विपरीतोऽतिसंधीयते ॥ १३ ॥

जो इस प्रकार की प्रतिज्ञा का अतिक्रमण करता है, उसे शपथ पूर्वक अग्नि, जल, हल, प्राकार (दीवार) लोष्ठ (मिट्टी का ढेला) हाथी का स्कन्ध, अश्वपृष्ठ, रथ की बैठक, शस्त्र, रत्न, बीज, गन्ध, घृतादिरस, सुवर्ण और तपाये हुए हिरण्य को छूना पड़ता है : जो शपथ का अतिक्रमण करता है, उसको ये वस्तु त्याग देती हैं, या मार डालती हैं। यदि कोई शपथ का अतिक्रमण करदे-तो बड़े २ तपस्वी या मुख्य पुरुषों को बीच में डालकर प्रतिभू बनाले। उनमें जो शत्रु के रोकने में समर्थ हो-उसीको प्रतिभू बनावे। ऐसा प्रतिभू बनाने वाला ही अपना कार्य बना सकता है। जो इसके विपरीत करता है, वह धोखा खाता है ॥९-१३॥

बन्धुमुख्यप्रग्रहः प्रतिग्रहः ॥ १४ ॥ तस्मिन्यो दूष्यादूष्यामात्यं दूष्यापत्यं वा ददाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १५ ॥ विपरीतो ऽतिसंधीयते ॥ १६ ॥ प्रतिग्रहग्रहणविश्वस्तस्य हि परः छिद्रेषु निरपेक्षः प्रहरति ॥ १७ ॥ अपत्यसमाधौ तु कन्यापुत्रदाने ददत्तु कन्यामतिसंधत्ते ॥ १८ ॥ कन्या ह्यदायादा परेषामेवार्थाय क्लेशाय च विपरीतः पुत्रः ॥ १९ ॥

शत्रु राजा के बन्धु या मुख्य पुरुषों को रख लेना, प्रतिग्रह होता है। इसमें जो राजा दुष्ट अमात्य तथा दुष्ट पुत्रादि को प्रदान करता है, वह अपना कार्य बना लेता है और जो सचाई से अपने पुत्र आदि को उस राजा के अधीन कर देता है, वह अपना कार्य बिगाड़ लेता है। प्रतिगृहीत राजकुमार आदि के कारण शत्रु राजा को तो विश्वास रहता है, परन्तु विजयाभिलाषी राजा, अपने शत्रु राजा की त्रुटि देखकर बिना संकोच प्रहार कर देता है। सन्मान के प्रतिग्रह की शर्त में जो कन्या को प्रतिग्रह रूप में रख देता है, वह जीतता है, क्योंकि कन्या राज्य की अधिकारिणी स्वयं नहीं है। वह तो दूसरों की धरोहर और पिता के कष्ट का कारण ही है। पुत्र को प्रतिग्रह रूप में रखने से स्वार्थ की हानि हो जाती है ॥१४-१९॥

पुत्रयोरपि जात्यं शूरं प्राज्ञं कृतास्त्रमेकपुत्रं वा ददाति सो ऽतिसंधीयते ॥ २० ॥ विपरीतो ऽतिसंधत्ते ॥ २१ ॥ जात्यादजात्यो हि लुप्तदायादसंतान-

त्वादाधातुं श्रेयान् ॥ २२ ॥ प्राज्ञादप्राज्ञो मन्त्रशक्तिलोपात् ॥ २३ ॥ शूरादशूर उत्साहशक्तिलोपात् ॥ २४ ॥ कृतास्त्रादकृतास्त्रः प्रहर्तव्यसंपल्लोपात् ॥ २५ ॥ एकपुत्रादनेकपुत्रो निरपेक्षत्वात् ॥ २६ ॥

दो पुत्रों में से जो अपने कुलीन, शूरवीर बुद्धिमान, विद्या में कुशल, एक मात्र पुत्र को उसे सौंप देता है, वह भी अपना कार्य नष्ट कर लेता है। मूर्ख कायर पुत्र को प्रतिग्रह रूप में भी रख देने से अपने स्वार्थ की सिद्धि ही होती है। जो अपनी जाति की स्त्री में उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसे पुत्र को शत्रु राजा को सौंप देने पर कोई हानि नहीं है। उसे राज्य में कोई अधिकार नहीं है और न वह सत्य अर्थ में सन्तान ही है। बुद्धिमान् की अपेक्षा बुद्धिहीन को शत्रु राजा के पास भेज देना उत्तम है, क्योंकि उससे कठिनाई के समय कोई मन्त्रणा आदि का लाभ नहीं है। शूरवीर की अपेक्षा कायर पुत्र शत्रु राजा को सौंपा जावे, क्योंकि उससे कोई वीरता का कार्य होने की आशा नहीं है। अस्त्र विद्या में कुशल पुत्र की अपेक्षा अस्त्र विद्या में अकुशल पुत्र का प्रतिग्राह करना उचित है, क्योंकि उससे कोई युद्ध में प्रहार की आशा नहीं है। इकलौते पुत्र की अपेक्षा अनेक पुत्रों वाला पुत्र को प्रतिग्रह रूप में रखे, क्योंकि अनेक पुत्र होने पर एक पुत्र के कारण उससे उलझ रहना नहीं पड़ेगा ॥२०-२६॥

जात्यप्राज्ञयोर्जात्यमप्राज्ञमैश्वर्यप्रकृतिरनुवर्त्तते ॥२७॥ प्राज्ञमजात्यं मन्त्राधिकारः ॥२८॥ मन्त्राधिकारेऽपि वृद्धसंयोगाज्जात्यः प्राज्ञमतिसंधत्ते ॥२९॥ प्राज्ञशूरयो प्राज्ञमशूरं मतिकर्मणां योगो ऽनुवर्तते ॥३०॥ शूरमप्राज्ञं विक्रमाधिकारः ॥३१॥ विक्रमाधिकारेऽपि हस्तिनमिव लुब्धकः प्राज्ञः शूरमतिसंधत्ते ॥३२॥

कुलीन और बुद्धिमान् पुत्र में जो कुलीन और मूर्ख भी पुत्र होता है, तो भी राज्य का अधिकार मूर्ख पुत्र को मिलता है कुल विहीन बुद्धिमान् पुत्र तो मन्त्रणा का अधिकारी है। मन्त्र के अधिकारी होने पर भी कुलीन पुत्र ही बुद्धिमान् से अधिक श्रेष्ठ माना गया है। बुद्धिमान् और शूरवीर पुत्र में बुद्धिमान् कायर पुत्र में भी बुद्धि के कार्यों का भोग मिलता है। बुद्धि विहीन शूरवीर में पराक्रम होता है। यद्यपि मूर्ख पराक्रमी पराक्रम कर सकता है, परन्तु जैसे लुब्धक, हाथी को पकड़ लेता है, वैसे ही बुद्धिमान्, पराक्रमी को वश में कर सकता है ॥२७-३२॥

शूरकृतास्त्रयोः शूरमकृतास्त्रं विक्रमव्यवसायोऽनुवर्तते ॥ ३३ ॥ कृतास्त्रमशूरं लक्ष्यलम्भाधिकारः ॥ ३४ ॥ लक्ष्यलम्भाधिकारेऽपि स्थैर्यप्रतिपत्त्यसंमोहैः

शूरः कृतास्त्रमतिसंधत्ते ॥ ३५ ॥ बह्वैकपुत्रयोर्बहुपुत्र एकं दत्त्वा शेषवृत्तिस्तब्ध संधिमतिक्रामति नेतरः ॥ ३६ ॥ पुत्रसर्वस्वदाने संधिश्चेत्पुत्रफलतो विशेषः ॥ ३७ ॥ समफलयोः शक्तप्रजननतो विशेषः ॥ ३८ ॥ शक्तप्रजननयोरप्युपस्थितप्रजननतो विशेषः ॥ ३९ ॥ शक्तिमत्येकपुत्रे तु लुप्तपुत्रोत्पत्तिरात्मानमादध्यान्नचैकपुत्रमिति ॥ ४० ॥

पराक्रमी और अस्त्र विद्या में कुशल पुत्र में शूर, अस्त्र विद्या में अकुशल पुत्र में पराक्रम रहता है। पराक्रम हीन अस्त्र विद्या में कुशल पुत्र में लक्ष्य बेंधने की चतुराई होती है। यद्यदि कृतास्त्र लक्ष्य बेंध लेता है तोभी धीरता, ज्ञान और असंमोह के कारण शूरवीर कृतास्त्र से श्रेष्ठ माना गया है। एक पुत्र और बहुत से पुत्रों में बहुत पुत्र होना श्रेष्ठ है, क्योंकि एक पुत्र को देकर शेष पुत्रों पर राजा अभिमान् करके सन्धि का अतिक्रमण कर सकता है। एक पुत्र वाला ऐसा नहीं कर सकता है। पुत्र और सर्वस्वदान करने पर संधि होतो पुत्र के पुत्र उत्पन्न होने पर पुत्र को भेज दिया जावे-तो अधिक हानि नहीं है। यदि दो पुत्र, होंतो जो सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ हो-उसकी अपेक्षा दूसरे को भेज देवे। दो सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ पुत्रों के होने पर जो शीघ्र सन्तान उत्पन्न करने वाला हो-उसे बचा रखना चाहिए। यदि सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ एक ही पुत्र हो और आप सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति से हीन हो गया हो-तो अपने कोही शत्रु को सौंप देवे, परन्तु अपने एकलोते पुत्र को कभी न सौंपे ॥३३-४०॥

अभ्युच्चीयमानः समाधिमोक्षं कारयेत् ॥ ४१ ॥ कुमारासन्नाः सत्त्रिणः कारुशिल्पिव्यञ्जनाः कर्माणि कुर्वाणाः सुरङ्गया रात्रावुपखानयित्वा कुमारमपहरेयुः ॥ ४२ ॥ नटनर्तकगायकवादकवाग्जीवनकुशीलवप्लवकसौभिका वा पूर्वप्रणिहिताः परमुपतिष्ठेरन् ॥ ४३ ॥ ते कुमारं परम्परयोपतिष्ठेरन् ॥ ४४ ॥ तेषामनियतकालप्रवेशस्थाननिर्गमनानि स्थापयेत् ॥ ४५ ॥ ततस्तद्व्यञ्जनो वा रात्रौ प्रतिष्ठेत ॥ ४६ ॥ तेन रूपाजीवा भार्याव्यञ्जनाश्च व्याख्याताः ॥ ४७ ॥

जब अपने भीतर अधिक शक्ति हो जावे, तो सन्धि को तोड़ देवे। राजकुमार के समीपवर्ती कारीगर, शिल्पी आदि के वेष में रहने वाले सन्त्री आदि गुप्तचर अपने २ काम करते हुए सुरंग खोद कर रात में राजकुमार को ले उड़े। नट, नर्तक, गायक, वादक वाग्जीवन, स्तुति पाठक, तलवार आदि के खेल दिखाने वाले तथा आकाश में उड़ने वालों का वेष धारण किये हुए गुप्तचर शत्रु राजा तक पहुंचे। इसी परम्परा के अनुसार ये

राजकुमार तक भी पहुंच जावें। वह राजकुमार भी उन नटादि का हर समय आना जाना रहना मन्जूर करा लेवे, फिर उनका ही वेष बनाकर रात में निकल जावे। इसी तरह वेश्या या भार्या के रूप में पहुंचे हुए गुप्तचर राजकुमार को छुड़ा लेवें ॥ ४१-४ ॥

तेषां वा तूर्यभाण्डफेलां गृहीत्वा निर्गच्छेत् ॥ ४८ ॥ सूदारालिकस्नापकसंवाहकास्तरककल्पकप्रसाधकोदकपरिचारकैर्वा द्रव्यवस्त्रभाण्डफेलाशयनासनसंभोगैर्निह्रियेत् ॥ ४९ ॥ परिचारकच्छद्मना वा किंचिद्रूपवेलायामादाय निर्गच्छेत् ॥ ५० ॥ सुरङ्गमुखेन वा निशोपहारेण ॥ ५१ ॥ तोयाशये वा वारुणं यौगमातिष्ठेत् ॥ ५२ ॥

जब नट नर्तक आदि गाने बजाने को घर में आने जाने लगें-तो मौका पाकर उनके बाजे बर्तन पेटी आदि उठाकर सेवक के रूप में चलता बने। इसी तरह रसोइये, हलवाई, स्नान कराने, शरीर दबाने बिस्तर बिछाने वाले, नाई, शृङ्गार कर्ता, जल पिलाने वाले, सेवकों का वेष बनाकर किसी वस्तु वस्त्र बर्तन, पेटी, शय्या, आसन आदि भोग विलास की सामग्री को लेकर राजकुमार निकल सकता है। राजकुमार जब चाहे-तब नौकर का वेष बनाकर अंधेरी रात में जो कुछ भी चीज हाथ लगे-लेकर चल देवे। या सुरङ्ग के मार्ग से निकल सकता है या रात में भूतबलि का बहाना बनाकर जा सकता है जलाशय पर वारुण नामक भोग का अनुष्ठान न करके शत्रु राजा के बन्धन से राजकुमार छुटकारा पा सकता है ॥ ४८-५२ ॥

वैदेहकव्यञ्जना वा पक्वान्नफलव्यवहारेणारक्षिषु समवचारयेयुः ॥ ५३ ॥ दैवतोपहारश्राद्धप्रहवणनिमित्तमारक्षिषु मदनयोगयुक्तमन्नपानं रसं वा प्रयुज्यापगच्छेत् ॥ ५४ ॥ आरक्षकप्रोत्साहनेन वा ॥ ५५ ॥ नागरककुशीलवचिकित्सकापूपिकव्यञ्जना वा रात्रौ समृद्धगृहाण्यादीपयेयुः ॥ ५६ ॥ आरक्षिणो वैदेहकव्यञ्जना वा पण्यसंस्थामादीपयेयुः ॥ ५७ ॥ अन्यद्वा शरीरं निक्षिप्य स्वगृहमादीपयेदनुपातभयाच्चतः संधिच्छेदखातसुरङ्गाभिरपगच्छेत् ॥ ५८ ॥

व्यापारी के वेष में घूमने वाले गुप्तचर पक्वान या फलों के व्यवहार से पहरेदारों को विष देदेवे अथवा देवता के प्रसाद श्राद्ध या प्रीति भोजन के बहाने से पहरेदारों को धतूरे आदि से मिले हुए अन्नपान या विष दे करके राजकुमार निकल जावे। अपने रक्षक पहरेदारों को बहुत से धन देने का लोभ देकर भी शत्रु राजा के प्रति ग्रह से छुटकारा पाया जा सकता है। नगर रक्षक, नट, वैद्य, मिठाई के खोमचे बेचने

वालों का रूप बनाकर रात में मालदारों के घर में आग लगा देवें और फिर आप निकल जावें। ये पहरेदार या व्यापारी के वेप में घूमने वाले गुप्तचर बाजार की दुकानों में आग लगावें। किसी मृतक का शरीर अपने घर में डालकर राजकुमार ही स्वयं आग लगाकर अपने मकान की खिड़की, छेक, गडढे, सुरङ्ग आदि से चलता बने। इस कार खोज करने का भी भय नहीं रहेगा ॥ ५३-५८ ॥

काचकुम्भभाण्डभारव्यञ्जनो वा रात्रौ प्रतिष्ठेत ॥ ५६ ॥ मुण्डजटिलानां प्रवासनान्यनुप्रविष्टो वा रात्रौ तद्व्यञ्जनः प्रतिष्ठेत ॥ ६० ॥ विरूपव्याधिकरणारण्यचरच्छद्मनामन्यतमेन वा ॥ ६१ ॥ प्रेतव्यञ्जनो वा गूढैर्निर्ह्रियेत ॥ ६२ ॥ प्रेतं वा स्त्रीवेषेणानुगच्छेत् ॥ ६३ ॥ वनचरव्यञ्जनाश्चैनमन्यतो यान्तमन्यतोऽपदिशेयुः ॥ ६४ ॥ ततोऽन्यतो गच्छेत् ॥ ६५ ॥ चक्रचराणां वा शकटवाटैरपगच्छेत् ॥ ६६ ॥

लकड़हारा, कहार या अश्व के सामान के ले जाने वाले सेवक के रूप में राजकुमार रात में प्रस्थान कर देवे। जब मुंड मुड़ाये हुए या जटाधारी साधु नगर से बाहर जावें-तो उनका सा वेष बनाकर राजकुमार भी रात में चल देवे। इसी तरह अपना रूप बिगाड़े या रोगी का सा आकार बनाकर या वनचर भीलों का वेप धारण करके राजकुमार वहां से निकले या गुप्तचर मृतक की तरह राजकुमार को अर्थी में डालकर ले जावें अथवा किसी मुर्दे के साथ जाने वाली स्त्रियों में स्त्री का वेप बनाकर-मिलकर राजकुमार चल देवे। जब राज-पुरुष राजकुमार की खोज में निकलें-तो वनचर के वेप में घूमने वाले गुप्तचर अन्य ओर गये हुए राजकुमार से विपरीत दिशा में उन अन्वेषकों को भेज देवे। राजकुमार तो अन्य मार्ग से ही निकाल जावे या गाड़ी चलाने वालों के साथ गाड़ी के मार्ग से निकल जावे ॥ ५६-६६ ॥

आसन्नं चानुपाते सत्त्रं वा गृह्णीयात् ॥ ६७ ॥ सत्त्राभावे हिरण्यं रसविद्धं वा भक्ष्यजातमुभयतः पन्थानमुत्सृजेत् ॥ ६८ ॥ ततोऽन्यतोऽपगच्छेत् ॥ ६६ ॥ गृहीतो वा सामादिभिरनुपातमतिसंदध्यात् ॥ ७० ॥ रसविद्धेन वा पथ्य (पाथेय) दानेन ॥ ७१ ॥ वारुणयोगाग्निदाहेषु वा शरीरमन्यदाधाय शत्रुमभियुञ्जीत पुत्रो मे त्वया हत इति ॥ ७२ ॥

यदि खोजने वाले समीप आ पहुंचे-तो राजकुमार किसी निर्जन स्थान में छुप जावे। यदि छुपने की जगह न होवे-तो मार्ग में सुवर्ण बखेर देवे और विष मिश्रित मिठाई रख देवे-जब खोजने वाले सुवर्ण चुनने लगे या मिठाई खा जावें-तो आप अन्य

मार्ग से खसक जावे। यदि किसी तरह वे पकड़ ही लेवे-तो साम आदि उपायों से उन के पास से चल देवे या विष मिले हुए अन्न को देकर उन्हें मार देवे या वेहोश करके चल देवे। वारुण योग या अग्नि दाह में अन्य शरीर को डालकर शत्रु पर राजा दोष लगावे, कि तुमने हमारा राजकुमार मरवा दिया-इस झंझट में शत्रु राजा उसकी खोज नहीं करावेगा ॥ ५७-७२ ॥

उपात्तच्छन्नशस्त्रो वा रात्रौ विक्रम्य रक्षिषु।
शीघ्रपातैरपसरेद्गूढप्रणिहितैः सह ॥ ७३ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे संधिकर्मसंधिमोक्षः सप्तदशो ऽध्यायः ॥१७॥
आदितः पञ्चदशशतः ॥ ११५ ॥

राजकुमार शस्त्र लेकर और पहरेदारों को रात में मारकर अपने गुप्तचरों के साथ शीघ्रगामी सवारी द्वारा शत्रु के देश से भाग निकले ॥ ७३ ॥

इतिश्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में सन्धि कर्म और राजकुमार के छुड़ाने के उपायों के वर्णन का सत्रहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



अठारहवां अध्याय

१२४-१२६वां प्रकरण

मध्यम चरितमुदासीन चरितं मण्डल चरितम्

इस प्रकरण में मध्यम उदासीन और अन्य राजमण्डल के व्यवहार का वर्णन किया जावेगा।

मध्यमस्यात्मतृतीया पञ्चमी च प्रकृती प्रकृतयः ॥ १ ॥ द्वितीया च चतुर्थी षष्ठी च विकृतयः ॥ २ ॥ तच्चेदुभयं मध्यमो ऽनुगृह्णीयाद्विजिगीषुर्मध्यमानुलोमःस्यात् ॥ ३ ॥ न चेदनुगृह्णीयात्प्रकृत्यनुलोमः स्यात् ॥ ४ ॥

आप और अपने मित्र तथा मित्र के मित्र ये मध्यम राजा के प्रकृति और शत्रु, शत्रु के मित्र तथा शत्रु के मित्र के मित्र-ये विकृति कहाते हैं। मध्यम राजा अपने इन दोनों प्रकृति और विकृति को अनुग्रह पूर्वक अनुकूल बनाके रखे और विजयाभिलाषी राजा अपने मध्यम राजा को प्रसन्न रखे। यदि मध्यम अपने विकृति राजाओं को अनुकूल न रख सके-तो उसे अपने प्रकृति राजाओं को तो अनुकूल बनाये ही रखना चाहिए ॥ १-४ ॥

मध्यम श्चेद्विजिगीषोर्मित्रं मित्र भावि लिप्सेत मित्रस्यात्मनश्च मित्राण्युत्थाप्य मध्यमाच्च मित्राणि भेदयित्वा मित्रं त्रायेत ॥ ५ ॥ मण्डलं वा प्रोत्साहयेत् ॥ ६ ॥ अतिप्रवृद्धोऽयं मध्यमः सर्वेषां नो विनाशायाभ्युत्थितः संभूयास्य यात्रां विहनाम इति ॥ ७ ॥ तच्चेन्मण्डलमनुगृह्णीयान्मध्यमावग्रहेणात्मानमुपबृंहयेत् ॥ ८ ॥

यदि मध्यम विजेता राजा के दृढ़ मित्र को अपने अधीन करना चाहे, तो राजा अपने मित्र या अपने ही मित्रों को उत्तेजित करके और मध्यम के मित्रों में फूट डलवाकर अपने मित्र की रक्षा करे। यदि हो सके तो मध्यम राजा के विरुद्ध राजमण्डल को भड़का देवे। यह मध्यम राजा बहुत बढ़ गया है। यह हमारे और तुम्हारे विनाश की चेष्टा में संलग्न है। अब हम तुम मिलकर इसकी चढ़ाई का मुकाबला करें। यदि राजमण्डल भड़क कर सहायता देने को तय्यार हो जावे-तो मध्यम राजा का अवग्रह करके विजयाभिलाषी राजा अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेवे ॥ ५-८ ॥

नचेदनुगृह्णीयात्कोशदण्डाभ्यां मित्रमनुगृह्य ये मध्यमद्वेषिणो राजानः परस्परानुगृहीता वा बहवस्तिष्ठेयुरेकसिद्धौ वा बहवः सिद्ध्येयुः परस्पराद्वा शङ्किता नोत्तिष्ठेरंस्तेषां प्रधानमेकमासन्नं वा सामदानाभ्यां लभेत ॥ ९ ॥ द्विगुणो द्वितीयं त्रिगुणस्तृतीयम् ॥ १० ॥ एवमभ्युच्चितो मध्यममवगृह्णीयात् ॥ ११ ॥

यदि सारा राजमण्डल, मध्यम राजा के विरुद्ध न भड़के-तो राजा कोश और सेना द्वारा अपने मित्र की सहायता करके जो परस्पर सहायता के वचन में बद्ध मध्यम राजा के बहुत से शत्रु हों-उनको मिला ले या एक प्रधान के मिलने से सब मिल जावें-तो उसे अपनी ओर कर लेवे। यदि परस्पर शङ्का रहने से वे न बिगड़ते हों-तो उनमें समीप वर्ती किसी प्रधान राजा को साम दान से अपनी ओर मिलाने की चेष्टा करे इस प्रकार दूसरे की सहायता मिलते ही विजेता दुगुने और तीसरे की सहायता प्राप्त होते ही तिगुने बल वाला हो जाता है। इस प्रकार उन्नत होकर मध्यम राजा को पकड़ लेवे ॥९-११॥

देशकालातिपत्तौ वा संधाय मध्यमेतरमित्रस्य साचिव्यं कुर्यात् दूष्येषु वा कर्मसंधिम् ॥ १२ ॥ कर्शनीयं वास्य मित्रं मध्यमो लिप्सेत प्रतिस्तम्भयेदेनमहं त्वा त्रायेय इत्याकर्शनात् ॥ १३ ॥ कर्शितमेनं त्रायेत ॥ १४ ॥

यदि देश काल अनुकूल न हो-तो मध्यम राजा और अपने मित्र की सन्धि करा देने में आप प्रधान बन जावे। यदि इतने पर भी मध्यम राजा न माने-तो उस

से विगड़े हुए अमात्य आदि से गुपचुप सन्धि करके उपद्रव खड़ा कर देवे। यदि किसी उद्धत मित्र को दुर्बल बनाना है और उसपर मध्यम राजा चढ़ाई करता है, तो उस मित्र को वचन देकर युद्ध के लिए तय्यार कर देवे, कि मैं तेरी रक्षा करूंगा। जब मध्यम राजा उसको दुर्बल करदे-तब उसकी रक्षा में तत्पर हो जावे॥ ११-१४॥

उच्छेदनीयं वास्य मित्रं मध्यमो लिप्सेत कर्शितमेतं त्रायेत मध्यमवृद्धिभयात् ॥ १५ ॥ उच्छिन्नं वा भूम्यनुग्रहेण हस्ते कुर्यादन्यत्रापसारभयात् ॥१६॥ कर्शनीयोच्छेदनीययोश्चेन्मित्राणि मध्यमस्य साचिव्यकराणि स्युः पुरुषान्तरेण संधीयेत ॥ १७ ॥ विजिगीष्वोस्तयोर्मित्राण्यवग्रहसमर्थानि स्युः संधिमुपेयात् ॥ १८ ॥

किसी उच्छेद के योग्य उद्दण्ड मित्र पर यदि मध्यम राजा चढ़ाई करदे-तो इस मित्र के क्षीण हो जाने पर इसकी अवश्य सहायता करे-अन्यथा मध्यम राजा बलवान् हो जावेगा। यदि उसका राज्य छीन लिया गया है, तो अपने पास से भूमि देकर उसे अपनी ओर मिलाए रखे-कि वह दूसरे के अधीन न हो जावे। यदि क्षीण बनाने योग्य या उखाड़ने योग्य राजाओं के साथ मित्र विजेता पर आक्रमण करना चाहें, तो किसी पुरुष को बीच में डालकर राजा मध्यम से भी सन्धि कर लेवे। यदि विजेता के क्षीण करने योग्य और उखाड़ने योग्य मित्रों के मित्र अपने पकड़ लेने में समर्थ हों-तो इनसे ही सन्धि कर लेवे॥ १५-१८॥

अमित्रं वास्य मध्यमो लिप्सेत संधिमुपेयात् ॥ १९ ॥ एवं स्वार्थश्च कृतो भवति मध्यमस्य प्रियं च ॥ २० ॥ मध्यमश्चेत्स्वमित्रं मित्रभावि लिप्सेत पुरुषान्तरेण संदध्यात् ॥ २१ ॥ सापेक्षं वा नार्हसि मित्रमुच्छेत्तुमिति वारयेदुपेक्षेत वा मण्डलमस्य कुप्यतु स्वपक्षवधादिति ॥ २२ ॥

यदि मध्यम राजा किसी शत्रु पर चढ़ाई करे-तो राजा को चाहिए कि वह मध्यम राजा से संधि कर लेवे। इस प्रकार अपनी स्वार्थ सिद्धि और मध्यम से प्रीति हो जाती है। यदि मध्यम अपने ही किसी मित्र भावि संज्ञक मित्र को अधीन करना चाहे-तो अन्य पुरुष [सेनापति आदि] द्वारा विजयाभिलाषी राजा-मध्यम राजा से संधि कर लेवे। यदि उस मित्र से अपना स्वार्थ बनता हो-तो मध्यम राजा को यह कहकर अनुत्साहित कर देवे, कि मित्र पर चढ़ाई करना उचित नहीं है। यदि मित्र पर आक्रमण करने से मध्यम राजा का मन्त्रि मण्डल कुपित होता हो-तो आप इस झगड़े का दूर से ही तमाशा

देखे। अपने पक्ष पर आक्रमण करने से अपने मन्त्रि मण्डल का कुपित होना बहुत कुछ सम्भव है ॥१९-२२॥

अमित्रमात्मनो वा मध्यमो लिप्सेत ॥ २३ ॥ कोशदण्डाभ्यामेनमदृश्यमानो ऽनुगृह्णीयात् ॥ २४ ॥ उदासीनं वा मध्यमो लिप्सेत ॥ २५ ॥ उदासीनाद्भिद्यतामिति ॥ २६ ॥ मध्यमोदासीयोर्यो मण्डलस्याभिप्रेतस्तमाश्रयेत ॥२७॥ मध्यमचरितेनोदासीनचरितं व्याख्यातम् ॥२८॥ उदासीनश्चेन्मध्यमं लिप्सेत यतः शत्रुमतिसंदध्यान्मित्रस्योपकारं कुर्यादुदासीनं वा दण्डोपकारिणं लभेत ततः परिणमेत ॥ २९ ॥ एवमुपबृह्यात्मानमरिप्रकृतिं कर्शयेन्मित्रप्रकृतिं चोपगृह्णीयात् ॥ ३० ॥

यदि मध्यम राजा अपने किसी शत्रु पर आक्रमण कर रहा हो-तो छुपे २ उसकी धन और सेना से सहायता करे। यदि मध्यम राजा किसी उदासीन राजा पर चढ़ाई करे-तो मध्यम उदासीन से बिल्कुल लड़ जावे-इसलिए उपेक्षा से देखता रहे और फिर युद्ध छिड़ने पर मध्यम और उदासीन राजा में जो अपने मण्डल को अभीष्ट हो-उसकी सहायता कर देवे। मध्यम के विषय में जो कुछ कहा गया है-वही उदासीन भी ऐसा करने लगे-तो उसके साथ भी मध्यम का सा ही आचरण किया जावे। यदि उदासीन राजा मध्यम को दबाना चाहे, तो जिसकी सहायता करने से शत्रु का अपकार और मित्र का उपकार हो सके-उसकी सहायता करे। जहां तक हो-उदासीन को अपनी सेना की सहायता दे देवे और होने वाले परिणाम को देखे। इस प्रकार अपनी वृद्धि करके शत्रु का अपकार और मित्र के उपकार में समर्थ हो जावे ॥२३-३०॥

सत्यप्यमित्रभावे तस्यानात्मवान्नित्यापकारी शत्रुः शत्रुसहितः पार्ष्णिग्राहो वा व्यसनी यातव्यो व्यसने वा नेतुरभियोक्तेत्यरिभाविनः ॥ ३१ ॥ एकार्थाभिप्रयातः पृथगर्थाभिप्रयातः संभूययात्रिकः संहितप्रयाणिकः स्वार्थाभिप्रयातः सामुत्थायिकः कोशदण्डयोरन्यतरस्य क्रेता विक्रेता द्वैधीभाविक इति मित्रभाविनः ॥ ३२ ॥ सामन्तो बलवतः प्रतिघातोऽन्तर्धिः प्रतिवेशो वा बलवतः पार्ष्णिग्राहो वा स्वयमुपनतः प्रतापोपनतो वा दण्डोपनत इति भृत्यभाविनः सामन्ताः ॥ ३३ ॥ तैर्भूम्येकान्तरा व्याख्याताः ॥ ३४ ॥

जब शत्रु भाव उत्पन्न होता है, तो आत्मगुण से रहित नित्य अपकार करने वाला द्वेषी, शत्रु खड़ा हो जाता है। उसी शत्रु की सहायता से उसका पार्ष्णिग्राह

(पीछे से उपद्रव करने वाला) शत्रु बन जाता हैं। किसी संकट में फंसे हुए चढ़ाई करने योग्य राजा पर जो चढ़ाई करने को किसी अन्य को उत्साहित कर देता है-ये शत्रु भावी सामन्त कहाते हैं। विजेता के साथ एक स्वार्थ रखकर कर चलने वाला, अथवा दूसरे अभिप्राय से विजेता की सहायता में तत्पर, विजेता के साथ २ उसीके अभिप्राय के अनुकूल चलने वाला, विजेता संधि नियमों के अनुसार साथ देने वाला, विजेता के स्वार्थ के निमित्त चढ़ दौड़ना, विजेता के अभिप्रायानुसार शून्य स्थानों का बसाने वाला कोश या सेना को परस्पर बेचना या खरीदना, तथा द्वैधी भाव से अपना काम निकालने वाला, सामन्त मित्र भावी होता हैं। बलवान् से दबाया हुआ, बीच में पड़ा हुआ, पड़ोसी, बलवान् का पार्ष्णि ग्राह स्वयं आया हुआ, अपने प्रताप से दबाया हुआ, या सेना द्वारा वश में किया हुआ, सामन्त भृत्यभावी कहाते हैं। एक देश के अन्तर से राज्य करने वाले राजाओं की भी यही व्यवस्था है, अर्थात् वे भी शत्रुभावी, मित्रभावी और भृत्यभावी बन जाते हैं ॥ ३१-३४ ॥

तेषां शत्रुविरोधे यन्मित्रमेकार्थतां व्रजेत्।
शक्त्या तदनुगृह्णीयाद्विषहेत यया परम् ॥ ३५ ॥

यदि इन उपर्युक्त राजाओं में किसी से मित्रता और उनका शत्रु से विरोध होने पर उनकी अपनी शक्ति से सहायता करे-जिसके द्वारा वह अपने शत्रु के आक्रमण को सह सके ॥ ३५ ॥

प्रसाध्य शत्रुं यन्मित्रं वृद्धं गच्छेदवश्यताम् ।
सामन्तैकान्तराभ्यां तत्प्रकृतिभ्यां विरोधयेत् ॥ ३६ ॥

जो मित्र, शत्रु को जीतकर अपने को भी आंख दिखाने लगे और प्रेम भाव न रखे-तो उसके सामन्त या एकान्तरवासी पड़ोसी राजाओं तथा उसके अमात्य आदि से उसका विरोध करा देवे ॥३६॥

तत्कुलीनावरुद्धाभ्यां भूमिं वा तस्य हारयेत् ।
यथावानुग्रहापेक्षं वश्यं तिष्ठेत्तथा चरेत् ॥ ३७ ॥

अपने वश में नहीं रहने वाले मित्र के बन्धु-बान्धव या पकड़े हुए अमात्य आदि को भड़काकर उसकी भूमि का अपहरण करवा देवे। सारांश यह है, कि जिस तरह हो सके-उसे इतना अनुरोधित किया जावे, कि वह अपने अनुग्रह की इच्छा करके सदा वश में रहता चला जावे ॥३७॥

नोपकुर्यादमित्रं वा गच्छेद्यदतिकर्शितम् ।
तदहीनमवृद्धं च स्थापयेन्मित्रमर्थवित् ॥ ३८ ॥

जो मित्र दुर्बल होकर उपकार करने में असमर्थ सा होगया या शत्रु से मिल जाने की जिसकी आशङ्का होगई-उस मित्र को नीतिमान् राजा शक्ति हीन और ऐश्वर्य क्षीण ही बना रहने देवे ॥३८॥

अर्थयुक्त्या चलं मित्रं संधिं यदुपगच्छति ।
तस्यापगमने हेतुं विहन्यान्न चलेद्यथा ॥ ३९ ॥

जो चञ्चल प्रकृति मित्र, धन के लालच से सन्धि करता है, उसके दूसरे से मिलने की शंका को अपने पास से धन देकर विजेता नष्ट कर देवे जिससे वह शत्रु से न मिल सके ॥३९॥

अरिसाधारणं यद्वा तिष्ठेत्तदरितः शठम् ।
भेदयेद्भिन्नमुच्छिन्द्यात्ततः शत्रुमनन्तरम् ॥ ४० ॥

जो मित्र शत्रु से मिल जावे, प्रथम उसका शत्रु से भेद करावे और जब उनमें फूट पड़ जावे-तब उस मित्र को नष्ट कर देवे और उसके अनन्तर अपने शत्रु का भी उच्छेद कर देवे ॥४०॥

उदासीनं च यत्तिष्ठेत्सामन्तस्तद्विरोधयेत् ।
ततो विग्रहसंतप्तमुपकारे निवेशयेत् ॥ ४१ ॥

जब कोई राजा अपने से उदासीन हो जावे-तो उसका उसके सामन्तों से झगड़ा करा देवे। जब वह विग्रह में उलझ जावे-तो फिर उसको अपने उपकार की ओर प्रवृत्त कर लेवे ॥४१॥

अमित्रं विजिगीषुं च यत्संचरति दुर्बलम् ।
तद्बलेनानुगृह्णीयाद्यथा स्यान्न पराङ्मुखम् ॥ ४२ ॥
अपनीय ततोऽन्यस्यां भूमौ वा संनिवेशयेत् ।
निवेश्य पूर्वं तत्रान्यद्दण्डानुग्रहहेतुना ॥ ४३ ॥

जो राजा अपनी दुर्बलता के कारण विजेता के शत्रु से या विजेता से मिलना चाहता है, तो विजयाभिलाषी राजा, उसको सेना की अवश्य सहायता देवे-जिससे, वह विरोध को न प्राप्त होवे अथवा उसको उस स्थान से हटा कर दूसरे स्थान पर रख देवे जहां शत्रु से मिलने की सम्भावना न हो और उसकी भूमि में दण्ड और अनुग्रह समर्थ किसी अधिकारी को भेज देवे ॥४२-४३॥

अपकुर्यात्समर्थं वा नोपकुर्याद्यदापदि।
उच्छिन्द्यादेव तन्मित्रं विश्वस्याङ्कमुपस्थितम् ॥ ४४ ॥

जो मित्र समर्थ होकर अपकार करे और संकट के समय सहायता न करे तो उस मित्र को विश्वास देकर अपनी मुट्ठी में ले लेवे और फिर उसे उखाड़ देवे ॥४४॥

मित्रव्यसनतो वारिरुत्तिष्ठेद्यो ऽनवग्रहः।
मित्रेणैव भवेत्साध्यः छादितव्यसनेन सः ॥ ४५ ॥

यदि कोई उद्धत शत्रु, अपने मित्र की विपत्ति का लाभ उठाकर अपनी स्वार्थ सिद्धि में तत्पर हो जावे, तो उसके व्यसन को छुपाकर अपने मित्र द्वारा ही अपने शत्रु को पराजित करा देवे ॥४५॥

अमित्रव्यसनान्मित्रमुत्थितं यद्विरज्यति।
अरिव्यसनसिद्ध्या तच्छत्रुणैव प्रसिद्ध्यति ॥ ४६ ॥

जो मित्र अपने शत्रु पर विपत्ति आनेके कारण उन्नत हुआ है, वह मित्र भी यदि अपने से विरक्त हो जावे, तो शत्रु की विपत्ति हट जाने पर उसे शत्रु द्वारा ही पराजित करा देवे ॥४६॥

वृद्धिं क्षयं च स्थानं च कर्शनोच्छेदनं तथा।
सर्वोपायान्समादध्यादेतान्यश्चार्थशास्त्रवित् ॥ ४७ ॥

जो नीति शास्त्र का जानने वाला राजा है, वह अपनी वृद्धि, शत्रु का क्षय, यथावस्था में स्थित, शत्रु या उद्धत मित्र की क्षीणता या उच्छेदता आदि सारे उपायों को समयानुकूल करता रहे ॥४७॥

एवमन्योन्यसंचारं षाड्गुण्यं यो ऽनुपश्यति।
स बुद्धिनिगडैर्बद्धैरिष्टं क्रीडति पार्थिवैः ॥ ४८ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मध्यमचरितमुदासीनचरितं मण्डलचरितमष्टादशोऽध्यायः आदितः षोडशशतः ॥ ११६ ॥

इस प्रकार जो राजा एक दूसरे से अनुबद्ध इन छः सन्धि विग्रह आदि उपायों का ठीक २ प्रयोग करता है, वह अपनी बुद्धि रूपी सांकल से बँधे हुए राजाओं से अपने अभीष्ठ को सिद्ध करता रहता है ॥४८॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में मध्यम आदि के चरित का अठारहवां अध्याय समाप्त हुआ।



व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरणम्

प्रथम अध्याय

१२७वां प्रकरण

प्रकृतिव्यसनवर्गः

इस प्रकरण में राजाओं पर आने वाली विपत्तियों के चक्रों का वर्णन किया जावेगा।

व्यसनयौगपद्ये सौकर्यतो यातव्यं रक्षितव्यं चेति व्यसनचिन्ता ॥ १ ॥ दैवं मानुषं वा प्रकृतिव्यसनमनयापनयाभ्यां संभवति ॥ २ ॥

जब शत्रु और विजयाभिलाषी राजा पर एक साथ विपत्ति आवे तो उस समय अपनी रक्षा करनी चाहिए या शत्रु पर आक्रमण करना उचित है इस विचार को व्यसन चिन्ता कहते हैं। दैव और मानुष जो प्रकृतियों के संकट हैं वे सन्धि आदि की उचित व्यवस्था न करने रूप अनय तथा शत्रुओं से पीड़ित होते रहने रूप अपनय से होते हैं ॥१-२॥

गुणप्रातिलोम्यमभावः प्रदोषः प्रसङ्गः पीडा वा व्यसनम् ॥ ३ ॥ व्यस्यत्येनं श्रेयस इति व्यसनम् ॥ ४ ॥ स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्रव्यसनानां पूर्वं पूर्वं गरीय इत्याचार्याः ॥ ५ ॥ नेति भारद्वाजः ॥ ६ ॥ स्वाम्यमात्यव्यसनयोरमात्यव्यसनं गरीय इति ॥ ७ ॥ मन्त्रो मन्त्रफलावाप्तिः कर्मानुष्ठानमायव्ययकर्म दण्डप्रणयनममित्राटवीप्रतिषेधो राज्यरक्षणं व्यसनप्रतीकारः कुमाररक्षणमभिषेकश्च कुमाराणामायत्तममात्येषु ॥ ८ ॥ तेषामभावे तदभावश्छिन्नपक्षस्येव राज्ञश्चेष्टानाशो व्यसनेषु चासन्नाः परोपजापाः ॥ ९ ॥ वैगुण्ये च प्राणबाधः प्राणान्तिकचरत्वाद्राज्ञ इति ॥ १० ॥

सन्धि विग्रह आदि गुणों का विरोध, उनका अभाव, या उनका अनुचित प्रयोग, कोप आदि से उनकी व्यवस्था, विषयों में आसक्ति और शत्रुओं द्वारा पीड़ित होना ये पांच व्यसन कहाते हैं। उपर्युक्त परिस्थिति राजा को उसके सुख से वञ्चित कर देती हैं इससे ये व्यसन कहाती है यही व्यसन शब्द का शब्दार्थ है। स्वामी (राजा) अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र पर आई हुई विपत्तिओं में पीछे की अपेक्षा पहली अधिक भयावह मानी जाती हैं, परन्तु इस बात को भारद्वाज आचार्य नहीं मानते हैं। वे तो स्वामी और अमात्य के व्यसन में स्वामी की अपेक्षा अमात्य पर आये हुए संकट को अधिकदुःख दायी मानते हैं, क्योंकि मन्त्र, मन्त्र फल की प्राप्ति, कामों का अनुष्ठान, आयव्यय, सेना की रक्षा, शत्रु और वनचरों का प्रतीकार, राज्य रक्षा, व्यसन की रुकावट करना, कुमार रक्षण और कुमारों के अभिषेक-ये सारी बातें अमात्यों के अधीन होती हैं। यदि अमात्यों को कोई हानि पहुंचेगी तो इन सारे कार्यों का विनाश होगा। अमात्य के बिना पर कटे पक्षी की सी दशा राजा की हो जाती है। वह व्यसन के उपस्थित होने पर कुछ भी चेष्टा नहीं कर पाता है। ये अमात्य आदि राजा के समीप रहने से शत्रु द्वारा तोड़ फोड़ लिए जाते हैं। यदि ये बिगड़ उठे तो राजा के प्राणों की बाधा खड़ी हो जाती हैं, क्योंकि ये राजा के प्राणों के साथ रहते हैं ॥३-१०॥

नेति कौटल्यः ॥ ११ ॥ मन्त्रिपुरोहितादिभृत्यवर्गमध्यक्षप्रचारं पुरुषद्रव्यप्रकृतिव्यसनप्रतीकारमेधनं च राजैव करोति ॥ १२ ॥ व्यसनिषु वामात्येष्वन्यानव्यसनिनः करोति ॥१३॥ पूज्यपूजने दूष्यावग्रहे च नित्ययुक्तस्तिष्ठति ॥१४॥ स्वामी च संपन्नः स्वसंपद्भिः प्रकृतीः संपादयति ॥ १५ ॥ स्वयं यच्छीलस्तच्छीलाः प्रकृतयो भवन्ति ॥ १६ ॥ उत्थाने प्रमादे च तदायत्तत्वात् ॥ १७ ॥ तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति ॥ १८ ॥

कौटल्याचार्य इस मत को नहीं मानते। वे कहते है, कि मन्त्री, पुरोहित आदि पूज्यवर्ग, भृत्य वर्ग, अध्यक्ष नियुक्ति, अमात्य और सेना तथा जनपद और दुर्ग आदि पर आई हुई विपत्तियों का प्रतीकार तथा इनकी उन्नति का कारण राजा ही है। यदि अमात्य व्यसन में फंस गए-तो उनके स्थान पर अन्य व्यसनहीन अमात्यों को राजा नियुक्त कर सकता है। पूज्य के पूजन और दुष्ट के निग्रह में राजा ही तत्पर होता है। यदि राजा योग्य हो, तो वह अपनी प्रकृति से अमात्य आदि को सम्पत्ति युक्त बना सकता है। राजा जिस आचरण का होता है, उसके अमात्य आदि भी उसी आदत के हो जाते हैं। इनकी

उन्नति और अवनति राजा के ही अधीन है। इन सातों प्रकृतियों में मुख्य प्रकृति, राजा ही माना गया है ॥११-१८॥

अमात्यजनपद्व्यसनयोर्जनपद्व्यसनं गरीय इति विशालाक्षः॥१९॥ कोशो दण्डः कुप्यं विष्टिर्वाहनं निचयाश्च जनपदादुत्तिष्ठन्ते ॥ २० ॥ तेषामभावो जनपदाभावे स्वाम्यमात्ययोश्चानन्तर इति ॥ २१ ॥ नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ अमात्यमूलाः सर्वारम्भाः ॥ २३ ॥ जनपदस्य कर्मसिद्धयः स्वतः परतश्च योगक्षेमसाधनं व्यसनप्रतीकारः शून्यनिवेशोपचयौ दण्डकरानुग्रहश्चेति ॥ २४ ॥

अमात्य और जनपद में संकट उपस्थित होने पर जनपद व्यसन भारी माना जाता है-यह विशालाक्ष आचार्य का मत है। कोश, सेना, वस्त्र, लोहा, तांबा आदि भृत्य वर्ग, घोड़े, ऊंट आदि की सवारी, घृत तथा अन्नादि सारे जनपद से ही प्राप्त होते हैं। यदि जनपद की क्षति होगी-तो इनकी स्वयं क्षति हो जावेगी। कुछ दिन इन उपर्युक्त वस्तुओं के न मिलने से राजा और अमात्य का भी नाश ही समझना चाहिए, परन्तु कौटल्याचार्य इस मत के विरुद्ध हैं। वे तो जनपद के सारे कार्यों को अमात्य के अधीन ही मानते हैं। जनपद के दुर्ग कृषि आदि कार्यों की सिद्धि, राजकीय परिवार और अन्तपाल आदि द्वारा क्षेम साधन, विपत्तियों का प्रतीकार, निर्जन स्थानों का बसाना, उनकी वृद्धि करना, दंड देना और राज्य कर का संग्रह आदि सारे कार्य अमात्यों के बिना नहीं हो सकते हैं ॥ १०-२४ ॥

जनपददुर्गव्यसनयोर्दुर्गव्यसनमिति पाराशराः ॥ २५ ॥ दुर्गे हि कोशदण्डोत्पत्तिरापदि स्थानं च जनपदस्य शक्तिमत्तराश्च पौरजानपदेभ्यो नित्याश्चापदि सहाया राज्ञो जानपदास्त्वमित्रसाधारणा इति ॥ २६ ॥ नेति कौटल्यः ॥ २७ ॥ जनपदमूला दुर्गकोशदण्डसेतुवार्तारम्भाः शौर्यं स्थैर्यं दाक्ष्यं बाहुल्यं च जानपदेषु ॥ २८ ॥ पर्वतान्तर्द्वीपाश्च दुर्गा नाध्युष्यन्ते जनपदाभावत् ॥२९॥ कर्षकप्राये तु दुर्गव्यसनमायुधीयप्राये तु जनपदे जनपदव्यसनमिति ॥ ३० ॥

जनपद (राष्ट्र) और दुर्ग व्यसन-में दुर्ग व्यसन अधिक महत्व शाली है-यह पाराशर का मत है। दुर्ग के अधीन ही कोश और सेना होती है। शत्रु द्वारा आपत्ति खड़ी करने पर दुर्ग में ही रक्षा मिलती है। नगर और जनपदवासियों को जनपद की अपेक्षा दुर्ग अधिक शक्तिशाली प्रतीत होते हैं। राजा को विपत्ति में दुर्ग ही सहायक होते हैं। जनपद वासी तो एक अमित्र के तुल्य व्यक्ति माने जाते हैं। परन्तु कौट-

ल्याचार्य इस मत को भी नहीं मानते। वे तो दुर्ग, कोश, सेना, सेतुबन्धन, कृषिव्यापार शूरता, धैर्य, चतुराई, और संख्या का बाहुल्य भी जनपद के अधीन ही मानते हैं। यदि नगर या राष्ट्र न हो-तो पर्वत तथा द्वीपों के दुर्ग भी सूने पड़े रहते हैं। जिस प्रदेश में किसानों का प्राधान्य हो वहां दुर्ग व्यसन और आयुध प्रधान जनपद में जनपद व्यसन बलवान् है ॥ २५-३० ॥

दुर्गकोशव्यसनयोः कोशव्यसनमिति पिशुनः ॥ ३१ ॥ कोशमूलो हि दुर्गसंस्कारो दुर्गरक्षणं च ॥ ३२ ॥ दुर्गः कोशादुपजाप्यः परेषाम् ॥ ३३ ॥ जनपदमित्रामित्रनिग्रहो देशान्तरितानामुत्साहनं दण्डबलव्यवहारः ॥ ३४ ॥ कोशमादाय च व्यसने शक्यमपयातुं न दुर्गमिति ॥३५॥ नेति कौटल्यः ॥३६॥ दुर्गार्पणः कोशो दण्डस्तूष्णींयुद्धं स्वपक्षनिग्रहो दण्डबलव्यवहार आसारप्रतिग्रहः परचक्राटवीप्रतिषेधश्च ॥ ३७ ॥ दुर्गाभावे च कोशः परेषाम् ॥ ३८ ॥ दृश्यते हि दुर्गवतामनुच्छित्तिरिति ॥ ३९ ॥

दुर्ग और कोश के व्यसन-में कोश व्यसन को पिशुन (नारद) आचार्य अधिक महत्व देते हैं। दुर्गों की मरम्मत और दुर्ग रक्षा कोश के ही अधीन है। कोश से ही दुर्ग की स्थिति है और कोश से ही शत्रु के वीरों को तोड़कर शत्रु का दुर्ग जीता जा सकता है। कोश के द्वारा ही जनपद. मित्र, शत्रु पर आतङ्क जमायाजा सकता है। इसी के बल पर दूर देशों के राजाओं को भी अपनी सहायता के लिए उभारा जा सकता है तथा सैनिक शक्ति का संग्रह भी कोश पर ही निर्भर है। कोश के आश्रय से ही व्यसन से छुटकारा पाया जा सकता है, केवल दुर्ग के आश्रय कुछ नहीं बन सकता है! कौटल्याचार्य इस मत को ठीक नहीं मानते हैं। वे तो कोश और सेना की रक्षा भी दुर्ग के अधीन मानते हैं। तूष्णीं युद्ध (गुपचुप मरवा देना) अपने पक्ष का दबाना, सेना की शक्ति का सञ्चार, आसार संज्ञक राजा का निग्रह, शत्रु समूह और बनवासी भीलों का निराकरण ये सब कुछ दुर्ग के आश्रय से ही होते हैं। यदि दुर्ग न हो,तो कोश ही दूसरों के पंजे में चला जावेगा। जिनके पास दृढ़ दुर्ग होते हैं, उनका उच्छेद नहीं हो सकता है ॥ ३१-३९ ॥

कोशदण्डव्यसनयोर्दण्डव्यसनमिति कौणपदन्तः ॥ ४० ॥ दण्डमूलो हि मित्रामित्रनिग्रहः परदण्डोत्साहनं स्वदण्डप्रतिग्रहश्च ॥ ४१ ॥ दण्डाभावे च ध्रुवः कोशविनाशः ॥ ४२ ॥ कोशभावे च शक्यः कुप्येन भूम्या परभूमि-स्वयंग्रहेण वा दण्डः पिण्डयितुम् ॥ ४३ ॥ दण्डवता च कोशः ॥ ४४ ॥

स्वामिनश्चासन्नवृत्तित्वादमात्यसधर्मा दण्ड इति ॥ ४५ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ४६ ॥ कोशमूलो हि दण्डः ॥ ४७ ॥ कोशाभावे दण्डः परं गच्छति ॥ ४८ ॥ स्वामिनं वा हन्ति ॥ ४९ ॥ सर्वाभियोगकरश्च ॥ ५० ॥ कोशो धर्मकामहेतुः ॥ ५१ ॥ देशकालकार्यवशेन तु कोशदण्डयोरन्यतरः प्रमाणीभवति ॥ ५२ ॥ लब्धपालनो हि दण्डः कोशस्य ॥ ५३ ॥ कोशः कोशस्य दण्डस्य च भवति ॥ ५४ ॥ सर्वद्रव्यप्रयोजकत्वात्कोशव्यसनं गरीय इति ॥५५॥

कोश और सेना के संकट उपस्थित होने पर सेना का व्यसन अधिक क्लेश दायी है ऐसा कौणपदन्त आचार्य मानते हैं। सेना के होने से ही मित्र और शत्रु का निग्रह होता है, दूसरे की सेना को साथ मिलाया जा सकता है तथा अपनी सेना की वृद्धि भी सेना के अधीन ही है। यदि सेना न हो-तो निश्चय कोश का विनाश होकर रहेगा। कोश न भी होवे-तो कुप्य (वस्त्राभरण) तथा भूमि द्वारा या शत्रु की भूमि के ग्रहण से सेना इकट्ठी की जा सकती है। जिस के पास सेना है, उसी के पास कोश रह सकता है। स्वामी के साथ सर्वदा रहने से जैसे अमात्य राजा की उन्नति के कारण हैं वैसे ही सेना को समझना चाहिए, कौटल्याचार्य इस बात को स्वीकार नहीं करते हैं। वे तो कोश के अधीन सेना को मानते हैं। यदि कोश न हो-तो सेना शत्रु के पास चली जाती है या स्वामी को ही मार डालती है। कोश के अभाव में सेना सारे झगड़े खड़े कर देती है। कोश धर्म और काम का हेतु माना गया है। देश और काल के अनुसार कभी सेना और कभी कोश की प्रधानता मानी गई है। कोश की उपलब्धि और उसका पालन सेना के अधीन है, परन्तु कोश तो सेना और कोश दोनों का रक्षक है। सारी वस्तुओं की प्राप्ति का साधन कोश होनेसे कोश का व्यसन अधिक क्लेश कर मानना चाहिए ॥४०-५५॥

दण्डमित्रव्यसनयोर्मित्रव्यसनमिति वातव्याधिः ॥ ५६ ॥ मित्रमभृतं व्यवहितं च कर्म करोति ॥ ५७ ॥ पार्ष्णिग्राहमासारममित्रमाटविकं च प्रतिकरोति ॥ ५८ ॥ कोशदण्डभूमिश्चोपकरोति व्यसनावस्थायोगमिति ॥ ५९ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ६० ॥ दण्डवतो मित्रं मित्रभावे तिष्ठत्यमित्रो वा मित्रभावे ॥ ६१ ॥ दण्डमित्रयोस्तु साधारणे कार्ये सारतः स्वयुद्धदेशकाललाभाद्विशेषः ॥६२॥ शीघ्राभियाने त्वमित्राटविकाभ्यन्तरकोपे च न मित्रं विद्यते ॥६३॥ व्यसनयौगपद्ये परवृद्धौ च मित्रमर्थयुक्तौ तिष्ठति ॥ ६४ ॥ प्रकृतिव्यसनसंप्रधारणमुक्तमिति ॥ ६५ ॥

सेना और मित्र के व्यसन में मित्र व्यसन भारी माना जाता है, ऐसा वात व्याधि (उद्धव) आचार्य का मत है, क्योंकि मित्र, विना द्रव्य लिए आपत्ति के कर्मों का प्रतीकार कर देता है। वह पार्ष्णिग्राह, (चढ़ाई के अनन्तर पीछे से उपद्रव करने वाला) आसार, शत्रु, और वनचर भीलों के प्रतीकार करने में भी समर्थ होता है। कोश, सेना, और भूमि द्वारा अपने मित्र के संकट को हटा देने की चेष्टा करता है। कौटल्याचार्य इस मत के विरुद्ध है। सेना की शक्ति रखने वाले राजा के मित्र तो मित्र रहते ही हैं, परन्तु उसके तो शत्रु भी मित्र वन जाते हैं। दण्ड और मित्र दोनों की समान उपयोगिता समान है, परन्तु युद्ध देश और काल की योग्यता के अनुसार उनकी उत्तमता या लघुता का विचारकर लेना चाहिए। शीघ्र चढ़ाई करने तथा शत्रु वनचर राजा, या अपने अमात्य आदि के कुपित होने पर मित्र का अधिक उपयोग नहीं है। यदि दोनों पर एक साथ विपत्ति आवे तथा शत्रु के बढ़ जाने पर मित्र ही अर्थ सिद्धि में सहायक होता है। यहां तक प्रकृति व्यसन का निर्णय किया गया ॥५६-६५॥

प्रकृत्यवयवानां तु व्यसनस्य विशेषतः ।
बहुभावोऽनुरागो वा सारो वा कार्यसाधकः ॥ ६६ ॥

स्वामी, अमात्य आदि प्रकृतियों के युवराज मन्त्र परिषद आदि अवयवों तथा प्रकृतियों पर यदि एक साथ संकट उपस्थित हो और उस समय उन अवयवों का यदि अपनी २ प्रकृति पर अधिक भक्ति या प्रीति हो-तो कार्य की शीघ्र सिद्धि हो जाती है ॥६६॥

द्वयोस्तु व्यसने तुल्ये विशेषो गुणतः क्षयात् ।
शेषप्रकृतिसाद्गुण्यं यदि स्यान्नाभिधेयकम् ॥ ६७ ॥

यदि विजयाभिलाषी राजा और उसके शत्रु में समान व्यसन आ गया हो-तो उनके गुण की अधिकता और न्यूनता पर व्यसन की हानि और वृद्धि हो सकती है। यदि उनकी अमात्य आदि प्रकृति की श्रेष्ठता रहेगी-तो उसकी कार्य सिद्धि होगी ऐसी अवस्था में चढ़ाई करना श्रेष्ठ नहीं है ॥६७॥

शेषप्रकृतिनाशस्तु यत्रैकव्यसनाद्भवेत् ।
व्यसनं तद्गरीयः स्यात्प्रधानस्येतरस्य वा ॥ ६८ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे प्रकृतिव्यसनवर्गः प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

आदितः सप्तदशशतः ॥ ११७ ॥

यदि एक ओर से एक प्रकृति पर व्यसन आने पर शेष प्रकृति का भी नाश हो जावे-तो वह व्यसन चाहे, प्रधान प्रकृति पर या अप्रधान प्रकृति पर हो- उसे भारी ही समझना चाहिए ॥६८॥

इति श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत व्यसनाधिकारिक अधिकरण में प्रकृतियों के व्यसन की व्याख्या का पहला अध्याय समाप्त हुआ।



दूसरा अध्याय

१२८वां प्रकरण

राजराज्ययोर्व्यसन चिन्ता

इस प्रकरण में राजा और उसके राज्य पर आने वाले संकट के विषय में वर्णन होगा ।

राजा राज्यमिति प्रकृतिसंक्षेपः ॥ १ ॥ राज्ञो ऽभ्यन्तरो बाह्यो वा कोप इति ॥ २ ॥ अहिभयादभ्यन्तरः कोपो बाह्यकोपात्पापीयान् ॥ ३ ॥ अन्तरमात्य-कोपश्चान्तःकोपात् ॥ ४ ॥ तस्मात्कोशदण्डशक्तिमात्मसंस्थां कुर्वीत् ॥ ५ ॥

स्वामी आदि सात प्रकृतियों को संक्षेप में राजा और राज्य इन भागों में विभक्त किया जा सकता है। राजा और राजा का मित्र राजा प्रकृति और शेष अमात्य आदि राज्य प्रकृति में सम्मिलित हैं। राजा के ऊपर आभ्यन्तर और बाह्य दो प्रकार का कोप होता है। घर में रहने वाले सर्प की तरह अमात्य आदि का भीतरी कोप अधिक भया वह है, उतना शत्रु का बाहरी कोप हानि कारक नहीं है। इस आभ्यन्तर कोप में भी समीप के अमात्यों का कोप अधिक दुःखदायी है, उतना दूर के अमात्यों का कोप नहीं है, इसलिए विजयाभिलाषी राजा कोश और सेना शक्ति को सर्वदा अपने अधीन रखे ॥१-५॥

द्वैराज्यवैराज्ययोर्द्वैराज्यमन्योन्यपक्षद्वेषानुरागाभ्यां परस्परसंघर्षेण वा वि-नश्यति ॥ ६ ॥ वैराज्यं तु प्रकृतिचित्तग्रहणापेक्षियथास्थितमन्यैर्भुज्यत इत्या-चार्याः ॥ ७ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ८ ॥ पितापुत्रयोर्भ्रात्रोर्वा द्वैराज्यं तुल्ययोग-क्षेमममात्यावग्रहं वर्तयेतेति ॥ ६ ॥ वैराज्ये तु जीवतः परस्याच्छिद्य नैतन्ममेति मन्यमानः कर्शयत्यपवाहयति ॥ १० ॥ पण्यं वा करोति ॥ ११ ॥ विरक्तं वा परित्यज्यापगच्छतीति ॥ १२ ॥

दो राजाओं से अधिकृत राज्य और राजा से हीन राज्य से हीन राज्य में द्वै राज्य शीघ्र नष्ट होता है, क्योंकि उन दोनों पक्ष में परस्पर के राग द्वेष से या परस्पर के संघर्ष द्वै राज्य में अधिक विघ्न रहता है, परन्तु राजा से हीन राज्य तो प्रजा के चित्त के

अनुकूल चलता हुआ, सबके उपभोग का साधन वन जाता है ऐसा आचार्य लोग मानते हैं। इस मत को कौटल्याचार्य नहीं मानते हैं। वे तो द्वै राज्य का झगड़ा पिता पुत्र या दो भाईयों में होता है-ऐसा कहते हैं। यह झगड़ा एक कुल का होने से इनका एकसा स्वार्थ होता है-इससे मन्त्रियों द्वारा यह शीघ्र निवटाया जा सकता है। राजाहीन राज्य को तो समग्र रूप में छीनकर विजेता, अपना न मान कर क्षीण कर देता है और अपने में मिला लेता है या वेच देता है। यदि इस राष्ट्र की प्रजा विरक्त हुई तो उसे छोड़कर चल देता है ॥६-१२॥

अन्धश्चलितशास्त्रो वा राजेति ॥ १३ ॥ अशास्त्रचक्षुरन्धो यत्किंचनकारी दृढाभिनिवेशी परप्रणेयो वा राज्यमन्यायेनोप हन्ति ॥ १४ ॥ चलितशास्त्रस्तु यत्र शास्त्राच्चलितमतिर्भवति शक्यानुनयो भवतीत्याचार्याः ॥ १५ ॥ नेति कौटल्यः ॥ १६ ॥ अन्धो राजा शक्यते सहायसंपदा यत्र तत्र वा पर्यवस्थापयितुमिति ॥ १७ ॥ चलितशास्त्रस्तु शास्त्रादन्यथाभिनिविष्टबुद्धिरन्यायेन राज्यमात्मानं चोपहन्तीति ॥ १८ ॥

शास्त्र हीन अन्धे और शास्त्र का आचरण नहीं करने वाले राजा में कौन सा राज्य श्रेष्ठ है-तो जो शास्त्र हीन है, वह अन्धा है। वह जो कुछ करता है—बड़े हठ और दुराग्रह से करता है। दूसरे के कथन पर चल देता है और राज्य को अन्याय से नष्ट कर डालता है, परन्तु जो शास्त्र के अनुसार नहीं करता है, और शास्त्र जानता है, वह जब शास्त्र से डिगता है, तब अमात्य आदि समझा कर उसे फिर अपने स्थान पर ला सकते हैं। ऐसा आचार्य कहते हैं, परन्तु कौटल्याचार्य कहते हैं कि यह बात मान्य नहीं है। उनका मत है, कि शास्त्र हीन अन्धे राजा को मन्त्रि आदि अपनी बुद्धि के अनुसार ले चल सकते हैं, परन्तु जो स्वल्प शास्त्र केज्ञान से दग्ध है, वह अभिमान वश अन्याय से अपने राज्य और अपने आपको नष्ट कर लेता है ॥१३-१८॥

व्याधितो नवो वा राजेति ॥ १९ ॥ व्याधितो राजा राज्योपघातममात्यमूलं प्राणाबाधं वा राज्यमूलमवाप्नोति ॥ २० ॥ नवस्तु राजा स्वधर्मानुग्रहपरिहारदानमानकर्मभिः प्रकृतिरञ्जनोपकारैश्चरतीत्याचार्याः ॥ २१ ॥ नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ व्याधितो राजा यथाप्रवृत्तं राजप्रणिधिमनुवर्तयति ॥ २३ ॥ नवस्तु राजा बलावर्जितं ममेदं राज्यमिति यथेष्टमनवग्रहश्चरति ॥ २४ ॥ सामुत्थायिकैरवगृहीतो वो राज्योपघातं मर्षयति ॥ २५ ॥ प्रकृतिष्वरूढः सुखः समुच्छेत्तुं भवति ॥ २६ ॥

रोग से व्याप्त और नवीन राजा में कौन श्रेष्ठ है। इस विषय में आचार्य कहते हैं, कि व्याधि ग्रस्त राजा, अमात्यों द्वारा राज्य का नाश करता है, या राष्ट्र की जनता द्वारा प्राण खो बैठता है, किन्तु नया राजा, अपने धर्म, अनुग्रह, दान, मान आदि कर्मों से प्रजा को प्रसन्न करता रहता है। इस बात को भी कौटल्याचार्य नहीं मानते हैं। वे कहते हैं कि रोगी राजा प्राचीन रीति के अनुसार राज्य कार्य चलाता रहता है, परन्तु नवीन राजा, बल से जीते हुए राज्य को "यह मेरा जीता हुआ है" ऐसा समझकर निरंकुश रूप से व्यवहार करता है। जब नवीन राजा को इकट्ठे होकर अन्य राजा घेर लेते हैं तो वह राज्य के विनाश को सह लेता है। उसका प्रजा पर अधिकार न होने से उसे शत्रु शीघ्र उखाड़ भी देते हैं ॥१६-२६॥

व्याधिते विशेषः पापरोग्यपापरोगी च ॥ २७ ॥ नवे ऽप्यभिजातो ऽनभिजात इति ॥ २८ ॥ दुर्बलोऽभिजातो बलवाननभिजातो राजेति ॥ २६ ॥ दुर्बलस्याभिजातस्योपजापं दौर्बल्यापेक्षाः प्रकृतयः कृच्छ्रेणोपगच्छन्ति ॥ ३० ॥ बलवतश्चानभिजातस्य बलापेक्षाः सुखेनेत्याचार्याः ॥ ३१ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ दुर्बलमभिजातं प्रकृतयः स्वयमुपनमन्ति, जात्यमैश्वर्यप्रकृतिरनुवर्तत इति ॥ ३३ ॥ बलवतश्चानभिजातस्योपजापं विसंवादयन्ति अनुरागे सार्वगुण्यमिति ॥ ३४ ॥ प्रयासवधात्सस्यवधो मुष्टिवधात्पापीयान् ॥ ३५ ॥ निराजीवत्वादवृष्टिरतिवृष्टित इति ॥ ३६ ॥

रोगी राजा भी दो प्रकार का होता है, एक पाप रोगी दूसरा अपाप रोगी। नया राजा भी कुलीन और अकुलीन दो प्रकार का माना गया है। इनमें भी दुर्बल कुलीन अच्छा होता है या बलवान् अकुलीन राजा श्रेष्ठ माना जाता है। यदि राजा कुलीन और दुर्बल है, तो उसकी प्रजा उसकी दुर्बलता को देख कर कुलीनता के कारण भी कठिनाई से उसके अनुकूल होती है। यदि राजा बलवान् है, परन्तु वह अकुलीन है, तो भी उसकी अकुलीनता के कारण उसके बल को देख कर प्रजा सुख से उसके अनुकूल हो सकती है ऐसा आचार्य मानते हैं। परन्तु कौटल्याचार्य इस मत के विरुद्ध हैं, वे कहते हैं, कि यदि राजा कुलीन और दुर्बल है, तो भी उसकी कुलीनता के कारण प्रजा उससे स्वयं झुक जावेगी, क्योंकि जो कुलीन है, उसके साथ ही अमात्य आदि प्रकृति रहती है। बलवान् और अकुलीन राजा की प्रजा फूट जाती है, क्योंकि उस में अनुराग नहीं है, और अनुराग में सारे गुण हैं। बीज न बोने पर अन्न की अप्राप्ति की

अपेक्षा उत्पन्न अन्न का विनाश अधिक बुरा होता है। अतिवृष्टि की अपेक्षा अनावृष्टि अधिक हानिकारी है; क्योंकि अवृष्टि में कुछ भी जीविका नहीं हो सकती है। अति वृष्टि में कहीं २ घास तो हो ही जाता है॥ २७-३६॥

द्वयोर्द्वयोर्व्यसनयोः प्रकृतीनां बलाबलम्।
पारम्पर्यक्रमेणोक्तं याने स्थाने च कारणम्॥ ३७॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमेऽधिकरणे राजराज्ययोर्व्यसनचिन्ता द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥ आदितोऽष्टादशशतः॥ ११८॥

जब दोनों राजा और शत्रु में व्यसन उत्पन्न हो-तो उनकी प्रकृति का बलाबल देखना चाहिए। व्यसन की न्यूनता में मान और अधिकता में चुपचाप बैठे रहना ही, शास्त्रानुसार माना गया है॥ ३७॥

इतिश्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत व्यसनाधिकारिक अधिकरण में राजा और राज्य रूप प्रकृति के व्यसन की चिन्ता का दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



तीसरा अध्याय

१२६वां प्रकरण

पुरुषव्यसनवर्गः

इस प्रकरण में पुरुषों में होने वाले व्यसनों के विषय में वर्णन किया जावेगा।

अविद्याविनयः पुरुषव्यसनहेतुः॥ १॥ अविनीतो हि व्यसनदोषान्न पश्यति॥ २॥ तानुपदेक्ष्यामः॥ ३॥ कोपजस्त्रिवर्गः॥ ४॥ कामजश्चतुर्वर्गः॥ ५॥ तयोः कोपो गरीयान्॥ ६॥ सर्वत्र हि कोपश्चरति॥ ७॥ प्रायशश्च कोपवशा राजानः प्रकृतिकोपैर्हताः श्रूयन्ते॥ ८॥ कामवशाः क्षयव्यसननिमित्तमतिव्याधिभिरिति॥ ९॥

अविद्या युक्त और अशिक्षित होना-पुरुष पर विपत्ति आने का हेतु है। जो अशिक्षित होता है, वह व्यसन के दोषों को नहीं पहचान सकते हैं। हम उनको यहां गिना देते हैं। कोप से उत्पन्न तीन दोष और काम से उत्पन्न चार दोष माने गये हैं। इनमें कोप अधिक दूषित माना गया है, क्योंकि कोप सब जगह अधिकार रखता है। अक्सर कोप में भरे हुए राजा प्रकृति के कोप से नष्ट हुए सुने गए हैं। काम के वशीभूत

राजा क्षय और विपत्ति में उलझ कर अत्यन्त व्याधियों से युक्त होकर नष्ट होते देखे गए हैं ॥ १-९ ॥

नेति भारद्वाजः ॥ १० ॥ सत्पुरुषाचारः कोपो वैरायतनमवज्ञातवधो भीतमनुष्यता च ॥ ११ ॥ नित्यश्च कोपेन संबन्धः -पापप्रतिषेधार्थः ॥ १२ ॥ कामः सिद्धिलाभः, सान्त्वं त्यागशीलता संप्रियभावश्च ॥ १३ ॥ नित्यश्च कामेन संबन्धः कृतकर्मणः फलोपभोगार्थं इति ॥ १४ ॥

भारद्वाज (द्रोण) इस मत को नहीं मानते हैं, क्योंकि तिरस्कारके समय कोप करना सत्पुरुषों का व्यवहार है। कोप से ही शत्रु वध करके घेर लिता जाता है। तिरस्कार करने वाले का वध किया जा सकता है और सारे दुष्ट जन डरते रहते हैं। कोप के साथ नित्य सम्बन्ध हो-तो सदा पाप का क्षय होता रहेगा। सिद्धि लाभ का नाम काम है। इसी के कारण शक्ति, त्याग शीलता और मनुष्यों में प्रेम भाव जागृत होता है। काम का नित्य सम्बन्ध अपने किये उद्योग का फल देने वाला है॥ १०-१४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १५ ॥ द्वेष्यता शत्रुवेदनं दुःखासङ्गश्च कोपः ॥ १६ ॥ परिभवो द्रव्यनाशः पाटच्चरद्यूतकारलुब्धकगायकवादकैश्चानर्थ्यैः संयोगः कामः ॥ १७ ॥ तयोःपरिभवाद्द्वेष्यता गरीयसी ॥ १८ ॥ परिभूतः स्वैः परैश्चाप-गृह्यते, द्वेष्यः समुच्छिद्यत इति ॥ १९ ॥ द्रव्यनाशाच्छत्रुवेदनं गरीयः ॥ २० ॥ द्रव्यनाशः कोशाबाधकः ॥ २१ ॥ शत्रुवेदनं प्राणाबाधकमिति ॥ २२ ॥ अनर्थ्यसंयोगाद्दुःखसंयोगो गरीयान् ॥ २३ ॥ अनर्थसंयोगो मुहूर्तप्रीतिकरो-दीर्घक्लेशकरो दुःखानामासङ्ग इति ॥ २४ ॥ तस्मात्कोपो गरीयान् ॥ २५ ॥

कौटल्याचार्य इस मत को नहीं मानते हैं। वे कहते हैं, कि कोप से सदा द्वेष, शत्रु उत्पत्ति और दुःखों की प्राप्ति होने लगती है। काम पराजय और द्रव्य नाश कर देता है, तथा चोर, जुआरी, शिकारी, गायक, वादक, आदि अनर्थकारी वस्तुओं के साथ काम का सम्बन्ध है। इनमें परिभव की अपेक्षा द्वेष अधिक दुःखदायी है। जिसका तिरस्कार हो जाता है, उसका अपना पर या अपमान करते हैं, परन्तु जिस से सब का द्वेष हो जाता है: उसे सब उखाड़ देते हैं द्रव्य नाश की अपेक्षा शत्रु उत्पन्न होना अधिक क्लेश कर है। द्रव्य का नाश होना कोश का घातक है। परन्तु शत्रु की उत्पत्ति, प्राण नाशक हो जाती है। अनर्थ वस्तुओं के संयोग से दुःख का संयोग अधिक दुःख प्रद है। अनर्थकारी वस्तुओं का संयोग तो थोड़ी देर प्रीति भी उत्पन्न कर देता है, परन्तु दुःखों का संयोग दीर्घ

काल तक क्लेश करने वाला है, इस से कोप को काम की अपेक्षा अधिक दुःखदायी माना है॥ १५-२५॥

वाक्पारुष्यमर्थदूषणं दण्डपारुष्यमिति॥ २६॥ वाक्पारुष्यअर्थदूषणयोर्वाक्पारुष्यं गरीय इति विशालाक्षः॥ २७॥ पुरुषमुक्तो हि तेजस्वी तेजसा प्रत्यारोहति॥ २८॥ दुरुक्तशल्यंहृदि निखातं तेजःसंदीपनमिन्द्रियोपतापि चेति॥ २९॥ नेति कौटल्यः॥ ३०॥ अर्थपूजावाक्छल्यमपहन्ति, वृत्तिविलोपस्त्वर्थदूषणम्॥ ३१॥ अदानमादानं विनाशः परित्यागो वार्थस्येत्यर्थदूषणम्॥ ३२॥

वाक्य रूष्य, अर्थ दूषण और दण्ड पारुष्य ते तीनों कोप का त्रिवर्गकहाता है। वाक्यारुष्य और अर्थ दूषण में वाक्पारुष्य अधिक बुरा है यह विशालाक्ष आचार्य कहते हैं। जिस पुरुष पर कठोर वचनों से आक्रमण किया जावेगा, वह तेजस्वी भी अपने तेज के कारण उसपर विगड़ उठेगा। कटु वचन वाण, हृदय में गड़ जाता है। उससे तेज चमक उठता है, और इन्द्रियां व्याकुल हो उठती हैं। कौटल्याचार्य इस मत का खण्डन करते हैं, वे कहते हैं, कि धन के द्वारा पूजा कर देने पर वाणी का वाण भी निकल जाता है। किसी की वृत्ति का नाश कर देना ही अर्थ दूषण कहाता है। किसी को कुछ न देना, दंड आदि के द्वारा धन खींचना, धन का विनाश और रक्षा करने योग्य धन की रक्षा न करना इस तरह चार प्रकार का अर्थ दूषण होता है॥ २६-३२॥

अर्थदूषणदण्डपारुष्ययोरर्थदूषणं गरीय इति पाराशराः॥ ३३॥ अर्थमूलौ धर्मकामौ॥ ३४॥ अर्थप्रतिबन्धश्च लोको वर्तते॥ ३५॥ तस्योपघातो गरीयानिति॥ ३६॥ नेति कौटल्यः॥ ३७॥ सुमहताप्यर्थेन न कश्चन शरीरविनाशमिच्छेत्॥ ३८॥ दण्डपारुष्याच्च तमेव दोषमन्येभ्यः प्राप्नोति॥ ३९॥ इति कोपजस्त्रिवर्गः॥ ४०॥

अर्थ दूषण और दंड पारुष्य में अर्थ दूषण को पाराशराचार्य अधिक महत्व देते हैं, क्योंकि धर्म और काम दोनों अर्थ के अधीन हैं। यह सारा संसार ही धन की डोरी से बंधा हुआ घूमता है, इस लिए अर्थ का दूषण दंडपारुष्य से अधिक क्लेशकर है, परन्तु कौटल्याचार्य ऐसा स्वीकार नहीं करते हैं. वे कहते हैं, कि कितना भी धन मिले कोई धनके कारण अपने शरीर का नाश नहीं होने देता है, किन्तु दंड के भय से उसी धन को अन्य को समर्पित कर देता है और प्रसन्नता के साथ अर्थ दोष को स्वीकार करता है। यह कोप से उत्पन्न त्रि वर्ग का विवेचन हुआ॥ ३३-४०॥

कामजस्तु ॥ ४१ ॥ मृगया द्यूतं स्त्रियः पानमिति चतुर्वर्गः ॥ ४२ ॥ तस्य मृगयाद्यूतयोर्मृगया गरीयसीति पिशुनः ॥ ४३ ॥ स्तेनामित्रव्यालदावप्रस्खलनभयदिङ्मोहाः क्षुत्पिपासे च प्राणाबाधस्तस्याम् ॥ ४४ ॥ द्यूते तु जितमेवाक्षविदुषा यथा जयत्सेनदुर्योधनाभ्यामिति ॥ ४५ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ४६ ॥ तयोरप्यन्यतरपराजयो ऽस्तीति नलयुधिष्ठिराभ्यां व्याख्यातम् ॥ ४७ ॥ तदेव विजितद्रव्यमामिषं वैरबन्धश्च ॥ ४८ ॥ सतो ऽर्थस्य विप्रतिपत्तिरसतश्चार्जनमप्रतिभुक्तनाशो मूत्रपुरीषधारणबुभुक्षादिभिश्च व्याधिलाभ इति द्यूतदोषाः ॥ ४९ ॥ मृगयायां तु व्यायामः श्लेष्मपित्तमेदःस्वेदनाशश्चले च काये लक्षपरिचयः कोपभयस्थानेहितेषु च मृगाणां चित्तज्ञानमनित्ययानं चेति ॥५०॥

मृगया (शिकार) द्यूत (जुआ) स्त्री प्रसंग और सुरापान-यह कामज चतुर्वर्ग माना गया है। इस मृगया और द्यूत में मृगया अधिक व्यसन है, ऐसा पिशुनाचार्य कहते हैं, क्योंकि मृगया में चोर, शत्रु, हिंसक जन्तु, दावानल, पर्वत आदि से गिरने, मार्ग भूल जाने तथा भूख-प्यास का बड़ा ही भय रहता है-यहां तक कि कभी २ प्राणों पर भी आ बनती है द्यूत में तो पांसों का खिलाड़ी जीत ही लेता है, जैसे जयत्सेन और दुर्योधन ने जुआ के द्वारा विजयी होकर राज्य प्राप्त किया। कौटल्याचार्य, इसे नहीं मानते। वे कहते हैं, कि जुआ की जीत अन्त में पराजय करा देती है। नल और युधिष्ठिर की इसी तरह तो विजय हुई है। दूसरी बात यह है, कि जुए में जीता हुआ धन मनुष्य के मांस के तुल्य होता है और उसमें वैर का सिलसिला चल पड़ता है। धर्म पूर्वक कमाए हुए धन का दुरुपयोग, अधर्म से उपार्जन, विना भोग नाश, मूत्र पुरीष रोकने और भूखे मरने से जुआरी प्रायः बीमार हो जाते हैं-ये सारे द्यूत के ही तो दोष हैं। मृगया में व्यायाम, कफ, पित्त, मेद और स्वेद (पसीना) का नाश, चञ्चल और स्थिर शरीर पर लक्ष्य बैधने का अभ्यास कोप और भय से स्थानों पर होने वाली चेष्टाओं के द्वारा प्राणियों के चित्तों की दशा का परिचय और पैदल चलनेका अभ्यास-ये मृगया में गुण भी हैं ॥४१-५०॥

द्यूतस्त्रीव्यसनयोः कैतवव्यसनमिति कौणपदन्तः ॥ ५१ ॥ सातत्येन हि निशि प्रदीपे मातरि च मृतायां दीव्यत्येव कितवः ॥ ५२ ॥ कृच्छ्रे च प्रतिपृष्टः कुप्यति ॥ ५३ ॥ स्त्रीव्यसनेषु तु स्नानप्रतिकर्मभोजनभूमिषु भवत्येव धर्मार्थपरिप्रश्नः ॥ ५४ ॥ शक्या च स्त्री राजहिते नियोक्तुम् ॥ ५५ ॥ उपांशुदण्डेन व्याधिना वा व्यावर्तयितुमवस्रावयितुं वेति ॥ ५६ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ५७ ॥

सप्रत्यादेयं द्यूतं निष्प्रत्यादेयं स्त्रीव्यसनमदर्शनं कार्यनिर्वेदः कालातिपातनाद्-नर्थधर्मलोपश्च तन्त्रदौर्बल्यं पानानुबन्धश्चेति ॥ ५८ ॥

द्यूत और स्त्री व्यसन में द्यूत को कौणपदन्त अधिक बुरा बताते हैं, क्योंकि लगातार रात दिन, यहां तक कि माता के मरी पड़ी रहने पर भी जुआरी जुआ खेलता देखा गया है। जब उस पर संकट आ पड़ता है, और कोई कुछ पूछता है, तो वह उलटा उसपर भड़क उठता है। स्त्री व्यसनी से तो-स्नान, वस्त्र आदि धारण या भोजनशाला में धर्म अर्थ सम्बन्धी प्रश्नोत्तरों की चर्चा चलाई जा सकती है। कामी राजा को फंसाने वाली स्त्री ही राजा को उसके हित में लगाने में प्रवृत्त की जा सकती है। जिस स्त्री में राजा फंसा है, उसे गुपचुप मरवा कर या औषध द्वारा रोगी बनाकर अलग किया जा सकता या राजा को उससे हटा कर सम्हाला जा सकता है। परन्तु कौटल्याचार्य इसे भी नहीं स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं, कि द्यूत में गई हुई वस्तु फिर जीत ली जाती है, परन्तु स्त्रियों को सौंपी हुई वस्तु फिर नहीं आती, स्त्री व्यसनी राजा तो कभी दर्शन ही नहीं देता। उसे काम करने से ग्लानि सी हो जाती है। प्रत्येक कार्य में विलम्ब कर देने से कार्य और धर्म की हानि होती रहती है। इससे राज्य शासन व्यवस्था ढीली पड़ जाती है। स्त्री व्यसनी राजा को सुरापान की चाट भी अवश्य लगकर रहती है ॥५१-५८॥

स्त्रीपानव्यसनयोः स्त्रीव्यसनमिति वातव्याधिः ॥ ५९ ॥ स्त्रीषु हि बालिश्यमनेकविधं निशान्तप्रणिधौ व्याख्यातम् ॥ ६० ॥ पाने तु शब्दादीनामिन्द्रियार्थानामुपभोगः प्रीतिदानं परिजनपूजनं कर्मश्रमवधश्चेति ॥ ६१ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ६२ ॥ स्त्रीव्यसने भवत्यपत्योत्पत्तिरात्मरक्षणं चान्तर्दारेषु विपर्ययो वा बाह्येष्वगम्येषु सर्वोच्छित्तिः ॥ ६३ ॥ तदुभयं पानव्यसने ॥ ६४ ॥ पानसंपत् संज्ञानाशो ऽनुन्मत्तस्योन्मत्तत्वमप्रेतस्य प्रेतत्वं कौपीनदर्शनं श्रुतप्रज्ञाप्राणवित्त-मित्रहानिः सद्भिर्वियोगो ऽनर्थ्यसंयोगस्तन्त्रीगीतनैपुण्येषु चार्थघ्नेषु प्रसङ्ग इति ॥ ६५ ॥

स्त्री व्यसन और सुरापान में वात व्याधि आचार्य, स्त्री व्यसन को अधिक दुःखदायी मानते हैं, क्योंकि स्त्रियों में अनेक प्रकार की मूर्खताएँ होती हैं। ये पति के मारने तक के षड्यन्त्र में सम्मिलित देखी गई हैं, जिसका वर्णन निशान्तप्रणिधि नामक प्रकरण में किया जा चुका है। मद्यपान से तो शब्दादि इन्द्रियों के भोगों में अधिक आनन्द बढ़ जाता है। इसमें प्रीति पूर्वक दान, परिजन का आदर और काम करने की थकावट दूर होने के गुण भी विद्यमान हैं। कौटल्याचार्य इस मत को ठीक नहीं समझते हैं। वे

कहते हैं, कि स्त्री व्यसन में पुत्रोत्पत्ति और अपनी रक्षा हो सकती है, परन्तु यह तभी होना सम्भव है, जब यह व्यसन अपनी विवाहित स्त्रियों में हो। गणिका आदि बाह्य अगम्य स्त्रियों से तो सर्वनाश ही होता है, परन्तु सुरापान में सब प्रकार से नाश होता है, और पुत्र आदि की प्राप्ति की तरह कुछ नहीं प्राप्त होता। सुरापान में संज्ञाका नाश तथा पागल नहीं होने पर भी पागल हो जाता है। इसमें बिना मरे ही मनुष्य मृतक की तरह पड़ा रहता है। उसकी सारी लंगोटी खुल जाती है अर्थात् सारे पाप खुल जाते हैं। शास्त्रज्ञान, बुद्धि, प्राण, धन और मित्र की हानि, होती है। सज्जनों का वियोग, अनर्थ कार्यों का संयोग, गाने बजाने में कुशल नट-नर्तक आदि धन नाश करने वाले लोगों की सङ्गति के सिवा और कुछ नहीं मिलता ॥५६-६५॥

द्यूतमद्ययोः द्यूतमेकेषाम् ॥ ६६ ॥ पणनिमित्तो जय पराजयो वा प्राणिषु निश्चेतनेषु वा पक्षद्वैधेन प्रकृतिकोपं करोति ॥६७॥ विशेषतश्च सङ्घानां सङ्घधर्मिणां च राजकुलानां द्यूतनिमित्तो भेदः, तन्निमित्तो विनाश इति ॥ ६८ ॥ असत्प्रग्रहः पापिष्ठतमो व्यसनानां तन्त्रदौर्बल्यादिति ॥ ६९ ॥

द्यूत और मद्य के व्यसन में द्यूत को कोई २ आचार्य अधिक हानिकर बताते हैं। द्यूत में जो दाव लगता है, उससे जय और पराजय होता है। प्राणी या अप्राणी दोनों प्रकार के दावों में क्रोध का आविर्भाव होता है। समूह बनाकर रहने वाले या सेना के साथ अपनी जीवन यात्रा चलाने वाले राजकुलों में जुआ से फूट पड़ती देखी गई है। इस फूट से उनका नाश हो गया है। इस सुरापान में असत्पुरुषों का संग्रह होता है, इससे द्यूत का व्यसन बहुत ही बुरा है। इसके बढ़ने से सारा राज्य-चक्र दुर्बल हो जाता है ॥६६-६९॥

असतां प्रग्रहः कामः कोपश्चावग्रहः सताम्।
व्यसनं दोषबाहुल्यादत्यन्तमुभयं मतम् ॥ ७० ॥

तस्मात्कोपं च कामं च व्यसनारम्भमात्मवान्।
परित्यजेन्मूलहरं वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ॥ ७१ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे पुरुषव्यसनवर्गस्तृतीयो ऽध्यायः ॥३॥
आदित एकोनविंशतो ऽध्यायः ॥ ११९ ॥

काम और क्रोध-इन दोनों में असत्पुरुषों का आदर और सत्पुरुषों का तिरस्कार होता है, इस कारण से ये दोनों काम और क्रोध बड़े ही व्यसन माने जाते हैं।

आत्माभिमानी वृद्धसेवी जितेन्द्रिय, पुरुष, सर्वनाश करने वाले सब व्यसनों के मूल इन काम और क्रोध का अच्छी तरह परित्याग कर देवे ॥७०-७१॥

इतिश्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत व्यसनाधिकारिक अधिकरण में पुरुष व्यसन के वर्णन का तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



चौथा अध्याय

१३०-१३२वां प्रकरण

पीडनवर्गः स्तम्भवर्ग, कोशसङ्गवर्गः

इस प्रकरण में राष्ट्र की पीड़ा, राजकीय धन की रुकावट, तथा कोश के द्रव्य के कोश तक न पहुंचने का वर्णन किया जावेगा।

दैवंपीडनमग्निरुदकं व्याधिर्दुर्भिक्षं मरक इति ॥ १ ॥ अग्न्युदकयोरग्निपीडनमप्रतिकार्यं सर्वदाहि च ॥२॥ शक्योपगमनं तार्याबाधमुदकपीडनमित्याचार्याः ॥ ३ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ४ ॥ अग्निर्ग्राममर्धग्रामं वा दहति ॥ ५ ॥ उदकवेगस्तु ग्रामशतप्रवाहीति ॥ ६ ॥

अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष, और महामारी ये पांच राष्ट्र पर आने वाली दैवी आपत्ति होती है। अग्नि और जल बाधा में अग्नि बाधा अत्यन्त पीड़ा जनक है। एक दम इसका कोई प्रतीकार नहीं किया जा सकता है। और यह सबको जला डालती है। जल पीड़ा में नौका आदि से उसका उपाय किया जा सकता है। ऐसा अनेक आचार्य कहते है, परन्तु कौटिल्याचार्य इसे भी नहीं मानते हैं। वे कहते हैं, कि अग्नि एक गांव आधा गांव को जलाकर शान्त हो जाती है, परन्तु जल प्रवाह सैंकड़ों गांवों को ठण्डा कर देता है ॥१-६॥

व्याधिदुर्भिक्षयोर्व्याधिः प्रेतव्याधितापसृष्टपरिचारकव्यायामोपरोधेन कर्माण्युपहन्ति ॥ ७ ॥ दुर्भिक्षं पुनरकर्मोपघाति हिरण्यपशुकरदायि चेत्याचार्याः ॥ ८ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ६ ॥ एकदेशपीडनो व्याधिः शक्यप्रतीकारश्च ॥१०॥ सर्वदेशपीडनं दुर्भिक्षं प्राणिनामजीवनायेति ॥ ११ ॥ तेन मरको व्याख्यातः ॥ १२ ॥

व्याधि और दुर्भिक्ष में व्याधि, अधिक कष्टकारी होती है। व्याधि द्वारा मृत्यु तो हो ही जाती है, परन्तु रोगी की सेवा में लग जाने से कृषि व्यापार आदि सारे काम भी

चापट हो जाते हैं। दुर्भिक्ष में काम धन्धे बन्द नहीं होते और सुवर्ण तथा पशु के रूप में कर भी चुकाया जा सकता है। ऐसा आचार्य मानते हैं। कौटल्याचार्य इसे नहीं मानते। क्योंकि व्याधि एक देश में पीड़ा पहुंचाती है, और इसका प्रतीकार भी किया जा सकता है, परन्तु दुर्भिक्ष, सब देश को पीड़ा पहुंचाता है और प्राणियों के नाश के लिए होता है। यही बात महामारी के सम्बन्ध में समझनी चाहिए॥८-१२॥

क्षुद्रकमुख्यक्षययोः क्षुद्रकक्षयः कर्मणामयोगक्षेमं करोति॥ १३॥ मुख्यक्षयः कर्मानुष्ठानपराधधर्मेत्याचार्याः॥ १४॥ नेति कौटल्यः॥ १५॥ शक्यः क्षुद्रक्षयः प्रति सधातुं बाहुल्यात्क्षुद्रकाणान्न मुख्यक्षयः॥१६॥ सहस्रेषु हि मुख्यो भवत्यको न वा सत्त्वप्रज्ञाधिक्यात्तदाश्रयत्वात्क्षुद्रकाणामिति॥ १७॥

छोटे २ कर्मचारी और मुख्य कर्मचारी गण में छोटे कर्मचारी गण का विनाश कार्य की हानि करने वाला है। मुख्य कार्य कर्ता तो केवल देख रेख करते हैं, इससे उनके क्षय में देख रेख की कमी हो जाती है पर काम तो होता ही रहता है यह पूर्वाचार्यों का मत है। कौटल्य इस मत को श्रेष्ठ नहीं कहते वे तो क्षुद्र कर्मचारियों के क्षय की अपेक्षा मुख्य कर्मचारियों के क्षय को अधिक दुःखदायी मानते हैं। छोटे २ मनुष्य बहुत मिल सकते हैं, इससे उनका काम करवाया जा सकता है, पर मुख्य कर्मचारी का मिलना कठिन है। सहस्रों में कोई एक मुख्य पुरुष उत्पन्न होता है। किसी २ में ही मानसिक बल और बुद्धि की श्रेष्ठता होती है। क्षुद्र लोग तो मुख्य मनुष्य के आश्रय पर रहते हैं॥१३-१७॥

स्वचक्रपरचक्रयोः स्वचक्रमतिमात्राभ्यां दण्डकराभ्यां पीडयत्यशक्यं च वारयितुम्॥ १८॥ परचक्रं तु शक्यं प्रतियोद्धुमपसारेण संधिना वा मोक्षयितुमित्याचार्याः॥ १९॥ नेति कौटल्यः॥ २०॥ स्वचक्रपीडनं प्रकृतिपुरुषमुख्योपग्रहविघाताभ्यां शक्यते वारयितुमेकदेशं वा पीडयति॥ २१॥ सर्वदेशपीडनं तु परचक्रं विलोपघातदाहविध्वंसनोपवाहनैः पीडयतीति॥ २२॥

अपनी राजशक्ति और परकीय राजशक्ति में अपनी राजशक्ति दुःखदायिनी कहनी चाहिए। यह बहुत कर और दण्ड से मनुष्यों को आतुर कर देती है। और इसका प्रतीकार करना भी कठिन है। दूसरी राजशक्ति से युद्ध किया जा सकता है या उससे बचकर निकला जा सकता है अथवा सन्धि द्वारा भी छुटकारा हो जाता है कौटल्याचार्य इसके विरोध में कहते हैं-कि अपने राज्य में होने वाले कष्टों का निराकरण अमात्य आदि पीड़ा पहुंचाने वाले मुख्य पुरुषों के अनुकूल करने या नाश कर देने से हो सकता है। यदि वे पीड़ा भी पहुंचावें-तो किसी एक अङ्ग को पहुंचा सकते हैं, परन्तु पराया राजा तो

धनापहरण- मारकाट, अग्निदाह, विध्वंस और देश निकाले आदि से भारी पीड़ा पहुंचाने का कारण बन सकता है ॥१८-२२॥

प्रकृतिराजविवादयोः प्रकृतिविवादः प्रकृतीनां भेदकः पराभियोगानावहति ॥ २३ ॥ राजविवादस्तु प्रकृतीनां द्विगुणभक्तवेतनपरिहारकरो भवतीत्याचार्याः ॥ २४ ॥ नेति कौटल्यः ॥ २५ ॥ शक्यः प्रकृतिविवादः प्रकृतिमुख्योपग्रहेण कलहस्थानापनयनेन वा वारयितुम् ॥ २६ ॥ विवदमानास्तु प्रकृतयः परस्परसङ्घर्षेणोपकुर्वन्ति ॥ २७ ॥ राजविवादस्तु पीडनोच्छेदनाय प्रकृतीनां द्विगुणव्यायामसाध्य इति ॥ २८ ॥

अमात्य आदि प्रकृति और राजाओं के विवाद में अमात्य आदि प्रकृतियों का विवाद अधिक बुरा है। इसमें अमात्यों में परस्पर फूट पड़ जाती है, जिससे शत्रु को अपना कार्य बनाने में बड़ी मदद मिलती है । राजाओं का झगड़ा तो भृत्यों के भत्ते और वेतन को दुगुना कर देता है तथा प्रजा के बहुत से कर मुआफ करवा देता है। यह आचार्यों का मत है-इसपर कौटल्याचार्य कहते हैं, ऐसी बात नहीं है। अमात्यों का झगड़ा, मुख्य झगड़ालू के दण्ड देने या कलह स्थान से दूर हटा देने से रोका जा सकता है। यदि अमात्य आदि प्रकृति परस्पर झगड़ बैठें तो एक दूसरे के संघर्ष में वे राजा का उपकार कर देती है । परन्तु राजाओं का झगड़ा प्रजा के पीड़ा और नाश के लिए होता है। इसके शान्त करने में अमात्यों के झगड़े की अपेक्षा दुगुना बल लगाना पड़ता है ॥२३-२८॥

देशराजविहारयोः देशविहारस्त्रैकाल्येन कर्मफलोपघातं करोति ॥ २९ ॥ राजविहारस्तु कारुशिल्पिकुशीलववाग्जीवन वैदेहकोपकारं करोतीत्याचार्याः ॥ ३० ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ देशविहारः कर्मश्रमवधार्थमल्पं भक्षयति ॥ ३२ ॥ भक्षयित्वा च भूयः कर्मसु योगं गच्छति ॥ ३३ ॥ राजविहारस्तु स्वयं वल्लभैश्च स्वयंग्राहप्रणयपण्यागारकार्योपग्रहैः पीडयतीति ॥ ३४ ॥

अमात्य आदि प्रजा का खेल कूद में लग जाना या राजा के खेल कूद में लग जाने में अमात्य आदि प्रजा का खेल कूद में लग जाना अधिक हानिकारी है, क्योंकि इससे तीनों कालों में होने वाले कृषि आदि आवश्यक कार्यों का नाश हो जाता है। राजा के खेल कूद में लग जाने से तो कभी २ कारीगर मिस्त्री, नट-नर्तक, कथा कहानी कहने वाले भाट और व्यापारियों का उपकार हो जाता है। ऐसा पूर्वाचार्य मानते हैं। कौटल्याचार्य कहते हैं, कि प्रजाजन या अमात्य आदि का खेल-कूद, थकावट को दूर करने वाला

होता है और उसमें थोड़ा सा खाना पीना भी हो जाता है। प्रजाजन खा पीकर फिर काम में लग जाते हैं। राजा के खेल कूद, में तो राजा या उसके प्रिय पुरुष, कर आदि के द्वारा अधिक धन छीनकर प्रजा के पण्यागार आदि के कार्यों को हानि पहुंचाकर प्रजा को पीड़ित कर डालते हैं ॥२९-३४॥

सुभगाकुमारयोः कुमारः स्वयं वल्लभैश्च स्वयंग्राहप्रणयपण्यागारकार्योपग्रहैः पीडयतीति ॥ ३५ ॥ सुभगा विलासोपभोगेनेत्याचार्याः ॥ ३६ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३७ ॥ शक्यः कुमारो मन्त्रिपुरोहिताभ्यां वारयितुं न सुभगा बालिश्यादनर्थ्यजनसंयोगाच्चेति ॥ ३८ ॥

राजरानी और राजकुमार के खेल कूद में राजकुमार का खेल कूद अधिक हानिकारी है। यह स्वयं या अपने प्रिय पुरुषों के द्वारा कर प्रेम, पण्यशाला तथा अन्य कार्यों को रोककर धन इकट्ठा करके प्रजा को पीड़ा पहुंचाता है। रानी तो केवल विलास की सामग्री पुष्प आदि में थोड़ा ही व्यय कर सकती है। कौटल्याचार्य कहते हैं, कि राजकुमार को मन्त्री और पुरोहित रोक सकते हैं, परन्तु राज रानियां नहीं रोकी जा सकती। वे बहुत मूर्खता या घमण्ड में भरा होती हैं और नटनर्तक जैसे अनुचित पुरुषों से घिरी होती हैं ॥३५-३८॥

श्रेणीमुख्ययोः श्रेणी बाहुल्यादनवग्रहा स्तेयसाहसाभ्यां पीडयति ॥३९॥ मुख्यः कार्यानुग्रहविघाताभ्यामित्याचार्याः ॥ ४० ॥ नेति कौटल्यः ॥ ४१ ॥ सुव्यावर्त्या श्रेणी समानशीलव्यसनत्वात्, श्रेणीमुख्यैकदेशोपग्रहेण वा ॥४२॥ स्तम्भयुक्तो मुख्यः परप्राणद्रव्योपघाताभ्यां पीडयतीति ॥ ४३ ॥

श्रेणी (पार्टी) बनाकर रहने वाले गिरोह और मुख्य कर्मचारी में डाके आदि डालने वाली श्रेणी ही अधिक दुःखदायिनी मानी जाती है। इनकी संख्या बहुत होती है, इससे यह वश में नहीं आती और चोरी तथा डाके के द्वारा प्रजा को पीड़ा पहुंचाती है। मुख्य पुरुष तो कार्य करने में रिश्वत या काम के बिगाड़ने से ही थोड़ी हानि पहुंचा सकता है ऐसा अन्य आचार्यों ने कहा है। इसपर कौटल्याचार्य कहते हैं, कि डाका आदि डालने वालों के गिरोह को थोड़े ही परिश्रम से रोका जा सकता है, क्योंकि ग्रामीण जनता भी उनकी तरह बलवती और उनसे लड़ने में समर्थ होती है। श्रेणी (गिरोह) के किसी मुख्य पुरुष को अपनी ओर मिला लेने से भी उनका प्रतीकार किया जा सकता है। इसके विपरीत राजकीय मुख्य पुरुष राज्य का स्तम्भ होता है। वह प्रजा के प्राण और द्रव्य दोनों छीनकर बड़ी हानि पहुंचा देता है ॥३९-४३॥

संनिधातृसमाहर्त्रोस्संनिधाता कृतविदूषणात्ययाभ्यां पीडयति ॥ ४४ ॥ समाहर्ता करणाधिष्ठितः प्रदिष्टफलोपभोगी भवतीत्याचार्याः ॥ ४५ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ४६ ॥ संनिधाता कृतावस्थमन्यैः कोशप्रवेश्यं प्रतिगृह्णाति ॥४७॥ समाहर्ता पूर्वमर्थमात्मनः कृत्वा पश्चाद्राजार्थं करोति, प्रणाशयति वा, परस्वादाने च स्वप्रत्ययश्चरतीति ॥ ४८ ॥

कोष या भण्डार में वस्तु रखने वाला अधिकारी से सन्निधाता और कर संग्रह करने वाला समाहर्ता में सन्निधाता (धन को कोष में रखने वाला) वस्तुओं में दोष निकालकर तथा जुरमाना आदि करके प्रजा को अधिक दुःखी कर सकता है। समाहर्ता तो अपने काम पर लगा हुआ अपने वेतन मात्र का भोगी होता है। ऐसा ही पूर्वाचार्य मानते आये हैं। कौटल्याचार्य कहते हैं, कि सन्निधाता अधिकारी तो अन्य राजकीय कर्मचारी द्वारा रखी हुई वस्तुओं को अपने कोष में रखता है, परन्तु समाहर्ता तो धन को प्रथम अपने अधीन करता है और पीछे राजा को सौंपता है। यह चाहे-तो प्रजा के धन का नाश कर सकता है। यह कर ग्रहण करने के समय अपनी इच्छानुसार चलता है। इससे समाहर्ता ही अधिक क्लेश पहुंचा सकता है ॥४४-४८॥

अन्तपालवैदेहकयोरन्तपालश्चोरप्रसङ्गदेयात्यादानाभ्यां वणिक्पथं पीडयति ॥ ४९ ॥ वैदेहकास्तु पण्यप्रतिपण्यानुग्रहैः प्रसाधयन्तीत्याचार्याः ॥ ५० ॥ नेति कौटल्यः ॥ ५१ ॥ अन्तपालः पण्यसंपातानुग्रहेण वर्तयति ॥ ५२ ॥ वैदेहकास्तु संभूय पण्यानामुत्कर्षापकर्षं कुर्वाणाः पणे पणशतं कुम्भे कुम्भशतमित्याजीवन्ति ॥ ५३ ॥

सीमापालक और व्यापारी के मध्य में कौन प्रजा का अधिक क्लेश का कारण है-इस प्रश्न के उत्तर में सीमापालक को ही अधिक कष्टदायी मानना चाहिए। यह चोरों के द्वारा व्यापारियों को लुटवाकर या अधिक कर ग्रहण करके प्रजा को पीड़ा पहुंचाता है। व्यापारी लोग तो वेचने की या खरीदने की वस्तु इधर उधर पहुंचा कर प्रजा का सुख सम्पादन करते हैं। ऐसा आचार्य मानते हैं। कौटल्याचार्य कहते हैं, कि अन्तपाल (सीमापालक) वेचने की चीजों के आने जाने की व्यवस्था करने से सबकी वृत्ति चलाने का कारण है। व्यापारी लोग मिलकर वस्तुओं का भाव बढ़ा देते हैं और एक २ रुपये की वस्तु के सौ २ रुपये छीन लेते हैं। एक कुम्भ के सौ कुम्भ लेते हैं। इनका तो यह आजीवन करने का ढंग ही है ॥४९-५३॥

अभिजातोपरुद्धा भूमिः पशुव्रजोपरुद्धा वेति ॥ ५४ ॥ अभिजातोपरुद्धा भूमिः महाफलाप्यायुधीयोपकारिणी न क्षमा मोचयितुं व्यसनाबाधभयात् ॥ ५५ ॥ पशुव्रजोपरुद्धा तु कृषियोग्या क्षमा मोचयितुम्, विवीतं हि क्षेत्रेण बाध्यत इत्याचार्याः ॥ ५६ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ५७ ॥ अभिजातोपरुद्धा भूमिरत्यन्तमहोपकारापि क्षमा मोचयितुम् व्यसनाबाधभयात् ॥ ५८ ॥ पशुव्रजोपरुद्धा तु कोशवाहनोपकारिणी न क्षमा मोचयितुमन्यत्र सस्यवापोपरोधादिति ॥ ५९ ॥

राज्य में दो तरह की भूमि छोड़ने योग्य होती है। एक तो वंशजों से घेरी हुई दूसरी गोवंश द्वारा घेरी हुई होती है । अपने ही कुल में उत्पन्न हुए पुरुषों द्वारा घेरी हुई भूमि बहुत कुछ फल देती है-तो भी उसे उनको नहीं चाहिए, यदि उससे सेना के सञ्चय का काम होता हो, क्योंकि सेना से विपत्ति को दूर हटाया जा सकता है । पशु समूह से घिरी हुई भूमि को दिया जा सकता है और उसमें कृषि करायी जा सकती है। क्योंकि पशुओं की भूमि से क्षेत्र होना अच्छा है । कौटल्याचार्य-पूर्वाचार्यों के इस मत को न मानकर कहते हैं, कि अपने कुल वाली से घेरी हुई भूमि अत्यन्त उपकार करने वाली होने पर भी जागीर में दे देनी चाहिए, क्योंकि विपत्ति तो अपने परिवार के पुरुषों से ही आती है । पशुओं के चरने के योग्य भूमि किसी को इनाम में नहीं देनी चाहिए, क्योंकि वह कोश और वाहन के योग्य होती है। यदि चरागाह से खेतों में नुकसान होता हो-तो चरागाह को भी खेती के योग्य बनाकर जागीर आदि इनाम में दिया जा सकता है ॥५४-५९॥

प्रतिरोधकाटविकयोः प्रतिरोधकाः रात्रिसत्त्वपराः शरीराक्रमिणो नित्याः शतसहस्रापहारिणः प्रधानकोपकाश्च ॥ ६० ॥ व्यवहिताः प्रत्यन्तारण्यचराश्चाटविकाः प्रकाशा दृश्याश्चरन्त्येकदेशघातकाश्चेत्याचार्याः ॥ ६१ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ६२ ॥ प्रतिरोधकाः प्रमत्तस्यापहरन्ति ॥ ६३ ॥ अल्पाः कुण्ठाः सुखा ज्ञातुं ग्रहीतुं च ॥ ६४ ॥ स्वदेशस्थाः प्रभूता विक्रान्ताश्चाटविकाः ॥ ६५ ॥ प्रकाशयोधिनोऽपहर्तारो हन्तारश्च देशानां राजसधर्माण इति ॥ ६६ ॥

प्रतिरोधक (लुटेरे) और आटविक में प्रतिरोधक अधिक भयकारी है। ये रात में खुल्लम खुल्ला घूमने वाले, शरीर पर आघातकारी, नित्य सैंकड़ों हजारों छीन ले जाने वाले और राष्ट्र के प्रधान २ पुरुषों को कुपित कर देने वाले होते हैं। आटविक, अपने देश

के जंगलों में खुले घूमते हुए भी दूर रहते हैं। ये देश के किसी छोटे मोटे २ प्रान्त को कभी २ पीड़ा पहुंचा देते हैं। ऐसा अन्य आचार्यों का मत है। कौटल्याचार्य कहते हैं, कि प्रतिरोधका प्रमादी पुरुष के यहां डाका डालते हैं। ये संख्या में थोड़े और मूर्ख से होते हैं। इनको सुख पूर्वक जाना या पकड़ा जा सकता है। आटविक लोग, खुले लड़ते हैं। ये धन छीन लेते हैं और देशों के देश का नाश कर देते हैं। इनको तो आक्रमण करने वाले दूसरे राजा ही समझना चाहिए ॥६०-६६॥

मृगहस्तिवनयोः मृगाः प्रभूताः प्रभूतमांसचर्मोपकारिणो मन्दग्रासाव-क्लेशिनः सुनियम्याश्च ॥ ६७ ॥ विपरीता हस्तिनो गृह्यमाणा दुष्टाश्च देशविनाशायेति ॥ ६८ ॥ स्वपरस्थानीयोपकारयोः स्वस्थानीयोपकारो धान्य-पशुहिरण्यकुप्योपकारो जानपदानामापद्यात्मधारणः ॥ ६९ ॥ विपरीतः परस्था-नीयोपकारः, इति पीडनानि ॥ ७० ॥

मृग और हस्तिवन में हस्तिवन दुःखदायी है। मृग बहुत होते हैं और बहुत से मांस और चर्म के द्वारा उपकार कर देते हैं। ये थोड़ा खाते हैं और थोड़ा क्लेश देते हैं। इनको सरलता से बांधा जा सकता है। हाथी इनसे विपरीत थोड़े और क्लेश का है। जब इन्हें पकड़ते हैं, तो ये बहुतों को मार बैठते हैं। अपने नगर और दूसरे राजा के नगर में वस्तु बेचकर कौन से नगर को उपकार पहुंचाना चाहिए। धान्य, पशु, सुवर्ण, वस्त्र, बर्तन आदि पदार्थों का अपने देश में बेचने से अपने देश के मनुष्यों का उपकार होकर आपत्ति में रक्षा होती है। दूसरे देश के नगर का उपकार उलटी हानि करने वाला है। यहां तक प्रजा पीड़न का वर्णन किया गया ॥६७-७०॥

आभ्यन्तरो मुख्यस्तम्भो बाह्यो मित्राटवीस्तम्भ इति स्तम्भवर्गः ॥७१॥

अपने ही मुख्य पुरुषों द्वारा धन का रोका जाना आभ्यन्तर और मित्र तथा आटविक द्वारा धन का रोका जाना बाह्य, मुख्य स्तम्भ कहाता है। स्तम्भ वर्ग इतना ही है ॥७१॥

ताभ्यां पीडनैर्यथोक्तैश्च पीडितः सक्तो मुख्येषु परिहारोपहतः।
प्रकीर्णो मिथ्यासंभृतः सामन्ताटवीभृत इति कोशसङ्गः ॥ ७२ ॥

आभ्यन्तर और बाह्य इन दोनों प्रकार के स्तम्भों से स्तम्भित, पूर्वोक्त पीड़न द्वारा पीड़ित (घटाया हुआ) मुख्य पुरुषों के व्यवहार में आया हुआ, मुआफी के कारण न्यून हुआ, इधर उधर बिखरा हुआ, अन्याय से एकत्रित यथा सामन्त और आटविक पुरुषों से छीना हुआ, धन, कोश में नहीं पहुंच सकता है। यह कोश सङ्ग कहाता है ॥७२॥

पीडनानामनुत्पत्तावुत्पन्नानां च वारणे।
यतेत देशवृद्ध्यर्थं नाशे च स्तम्भसङ्गयोः ॥ ७३ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे पीडनवर्गः स्तम्भवर्गः कोशसङ्गवर्ग चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितो विंशतिशतोऽध्यायः ॥ १२० ॥

पूर्वोक्त पीड़न के उत्पन्न न होने देने और उत्पन्नों के रोकने तथा स्तम्भ वर्ग और कोश सङ्ग वर्ग के नाश का अपने देश की वृद्धि निमित्त राजा सर्वदा प्रयत्न करता रहे ॥७३॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत व्यसनाधिकारिक अधिकरण में पीडनवर्ग आदि के वर्णन का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।



पांचवां अध्याय

१-३-१३४वां प्रकरण

बलव्यसनावर्गा मित्रव्यसनवर्गोश्च।

इस प्रकरण में अपनी सेना और मित्रपर आने वाले संकटों का वर्णन किया जावेगा

बलव्यसनानि ॥ १ ॥ अमानितं विमानितमभृतं व्याधितं नवागतं दूरयातं परिश्रान्तं परिक्षीणंप्रतिहतं हताग्रवेगमनृतुप्राप्तमभूमिप्राप्तमाशानिर्वेदि परिसृप्तं कलत्रगर्ह्यन्तःशल्यं कुपितमूलं भिन्नगर्भमपसृतमतिक्षिप्तमुपनिविष्टं समाप्तमुपरुद्धमुपक्षिप्तं छिन्नधान्यपुरुषवीवधं स्वविक्षिप्तं मित्रविक्षिप्तं दूष्ययुक्तं दुष्टपार्ष्णिग्राहं शून्यमूलमस्वामिसंहतं भिन्नकूटमन्धमिति ॥ २ ॥

अमानित, विमानित, अभृत, व्याधित, नवागत, दूरयात, परिश्रान्त, परिक्षीण, प्रतिहत, हताग्रवेग, अनृतुप्राप्त, अभूमिप्राप्त, आशानिर्वेदि, परिसृप्त, कलत्रगर्हि, अन्तः शल्य, कुपितमूल, भिन्नगर्भ, अपसृत, अतिक्षिप्त, उपनिविष्ट, समाप्त, उपरुद्ध, उपक्षिप्त, छिन्नधान्य, छिन्न पुरुष वीवध, स्वविक्षिप्त, मित्रविक्षिप्त, दूष्ययुक्त, दुष्ट पार्ष्णिग्राह, शून्यमूल, अस्वामिसंहत, भिन्नकूट, और अन्ध ये चौंतीस प्रकार के सेना के व्यसन होते हैं ॥१-२॥

तेषाममानितविमानितयोरमानितं कृतार्थमानं युध्येत न विमानितमन्तःकोपम् ॥ ३ ॥ अभृतव्याधितयोरभृतं तदात्वकृतवेतनं युध्यते न व्याधित-

मकर्मण्यम् ॥ ४ ॥ नवागतदूरायातयोर्नवागतमन्यत उपलब्धदेशमनवमिश्रं युध्येत न दूरायातमायतगतपरिक्लेशम् ॥ ५ ॥

इनमें अमानित और विमानित सेना में अमानित सेना आदर कर देने पर लड़ जाती है, परन्तु विमानित, समय पर युद्ध नहीं कर सकेगी, क्योंकि उसके भीतर क्रोध भरा हुआ रहता है। जिसका आदर नहीं किया गया वह अमानित और जिसका तिरस्कार कर दिया गया हो-उसे विमानित कहा जाता है। अभृत और व्याधित सेना में अभृत सेना वेतन चुका देने पर लड़ सकती है, पर रोगी सेना अकर्मण्य होने से नहीं लड़ सकती। जिसका वेतन नहीं दिया जाता हो, उसे अभृत और रोगिणी सेना को व्याधित कहते हैं। नवागत और दूरायात सेना में नवागत सेना अन्य से इस प्रदेश का वृत्तान्त जानकर युद्ध करने खड़ी हो सकती है, परन्तु दूरायात सेना थकी रहने के कारण युद्ध करने में समर्थ नहीं होती। नई आई हुई नवायात और दूर से आई हुई दूरायात सेना होती हैं ॥३-५॥

परिश्रान्तपरिक्षीणयोः परिश्रान्तं स्नानभोजनस्वप्नलब्धविश्रामं युध्येत न परिक्षीणमन्यत्राहवे क्षीणयुग्यपुरुषम् ॥ ६ ॥ प्रतिहतहताग्रवेगयोः प्रतिहतमग्रपातभग्नं प्रवीरपुरुषसंहतं युध्येत न हताग्रवेगमग्रपातहतप्रवीरम् ॥ ७ ॥ अनृत्वभूमिप्राप्तयोरनृतुप्राप्तं यथर्तुयोग्यशस्त्रावरणं युध्येत नाभूमिप्राप्तमवरुद्धप्रसारव्यायामम् ॥ ८ ॥

परिश्रान्त और परिक्षीण सेना में परिश्रान्त सेना, स्नान, भोजन, शयन आदि द्वारा विश्राम करके युद्ध कर सकती है, परन्तु परिक्षीण नहीं कर सकती, क्योंकि उसके किसी दूसरे युद्ध में योग्य सैनिक मर चुके हैं। थकी हुई सेना का नाम परिश्रान्त और न्यून हुई सेना का नाम परिक्षीण है। प्रतिहत और हताग्रवेग सेना में प्रतिहत सेना अपने प्रथम आक्रमण में भागे हुए वीर सैनिकों की परवा न करके वीर पुरुषों के द्वारा लड़ सकती है, परन्तु जिसके अग्र भाग के वीर मारे गए वह हताग्रवेग सेना नहीं लड़ सकती है। आक्रमण के समय जिसके वीर भागे वह प्रतिहत और जिसके वीर मारे जावें वह हताग्रवेग सेना कहाती है। अनृत प्राप्त, और अभूमि प्राप्त सेना में ऋतु के अनुकूल शस्त्र कवच आदि प्राप्त होने पर अनृत प्राप्त सेना लड़ सकती है, पर अभूमि प्राप्त नहीं लड़ सकती, क्योंकि उसके निकलने या पराक्रम दिखाने का स्थान ही नहीं होता है। जिसके लड़ने की ऋतु योग्य नहीं है, वह ऋतु प्राप्त और जिसके योग्य भूमि नहीं है। वह अभूमि प्राप्त सेना कहाती है ॥६-८॥

आशानिर्वेदिपरिसृप्तयोराशानिर्वेदि लब्धाभिप्रायं युध्येत न परिसृप्तमपसृतमुख्यम् ॥ ९ ॥ कलत्रगर्ह्यन्तःशल्ययोः कलत्रगर्ह्युन्मुच्य कलत्रं युध्येत नान्तःशल्यमन्तरमित्रम् ॥ १० ॥ कुपितमूलभिन्नगर्भयोः कुपितमूलं प्रशमितकोपं सामादिभिर्युध्येत न भिन्नगर्भमन्योन्यस्माद्भिन्नम् ॥ ११ ॥

आशानिर्वेदी और परिसृप्त सेना में आशा-निर्वेदी सेना अपनी आशा पूर्ण होने पर लड़ सकती है, परन्तु परिसृप्त सेना नहीं लड़ सकती, क्योंकि उसका नेता नष्ट हो रहा है। जिसकी इच्छा पूर्ण न की गई हो, वह आशा निर्वेदी और जिसका मुख्य नेता नहीं रहा वह अपसृप्त सेना कहाती है। कलत्रगर्ही और अन्तः शल्य सेना में कलत्रगर्ही सेना अपने कलत्रों (स्त्रियों) का मोह छोड़कर लड़ सकती है, परन्तु अन्तःशल्य नहीं लड़ सकती क्योंकि वह भीतरी कांटा मानती है। जो अपनी स्त्रियों को युद्ध में विघ्न माने, वह कलत्रगर्ही और जो भीतर द्वेष माने, वह अन्तः शल्य होती है। कुपित मूल और भिन्न गर्भ सेना में कोप शान्त हो जाने पर कुपित मूल समझाने पर लड़ सकती है, परन्तु एक दूसरे से वैर मानने वाली नहीं लड़ सकता क्योंकि वे तो परस्पर फूट में लिप्त होती है। किसी कारण से कुपित सेना कुपित मूल और आपस में शत्रुता रखने वाले भिन्न गर्भ होती है ॥९-११॥

अपसृतातिक्षिप्तयोरपसृतमेकराज्यातिक्रान्तममन्त्रव्यायामाभ्यां सत्रिमित्रापाश्रयं युध्येत नातिक्षिप्तमनेकराज्यातिक्रान्तं बह्वाबाधत्वात् ॥ १२ ॥ उपनिविष्टसमाप्तयोरुपनिविष्टं पृथग्यानस्थानमतिसन्धातारं युध्येत न समाप्तं परिणैकस्थानयानम् ॥ १३ ॥ उपरुद्धपरिक्षिप्तयोरुपरुद्धमन्यतो निष्क्रम्योपरोद्धारं प्रतियुध्येत न परिक्षिप्तं सर्वतः प्रतिरुद्धम् ॥ १४ ॥

अपसृत और अतिक्षिप्त सेना में अपसृत सेना, एक राज्य से दबायी होने के कारण तथा मन्त्र और कवायद के अभाव से युद्ध नहीं कर सकती है, परन्तु यदि उसे साथी और मित्रों का सहारा मिल जावे, तो वह युद्ध कर सकती है पर अतिक्षिप्त नहीं कर सकती, क्योंकि उसे अनेक राज्यों ने दबा रखा है तथा वह बहुत बाधाओं से युक्त है। एक राज्य से दबायी अपसृत और अनेक राज्यों से व्याकुल की हुई सेना अतिक्षिप्त कहाती है। उपनिविष्ट और समाप्त सेना में उपनिविष्ट सेना पृथक् २ यान और स्थान होने से अपने सन्मुख के शत्रु से लड़ भी सकती है, परन्तु समाप्त सेना नहीं लड़ सकती, क्योंकि उसकी शत्रु के साथ २ रहन सहन होती है। शत्रु से सम्बन्ध रख कर साथ साथ चलने वाली

उपनिविष्ट और पृथक् २ चलने वाली समाप्त सेना कहाती है। उपरुद्ध और परिक्षिप्त सेना में उपरुद्ध, अन्य के द्वारा छुटकरा पाकर रोकने वाले से लड़ जाती है, परन्तु परिक्षिप्त नहीं लड़ सकती, क्योंकि वह सब ओर से घिर जाती है। एक ओर से घिरी हुई उपरुद्ध और सब ओर से घिरी हुई परिक्षिप्त होती है। ॥१२-१४॥

छिन्नधान्यपुरुषवीवधयोः छिन्नधान्यमन्यतो धान्यमानीय जङ्गमस्थावराहारं वा युध्येत न छिन्नपुरुषवीवधमनभिसारम् ॥ १५ ॥ स्वविक्षिप्तमित्रविक्षिप्तयोः स्वविक्षिप्तं स्वभूमौ विक्षिप्तं सैन्यमापदि शक्यमवस्रावयितुं न मित्रविक्षिप्तं विप्रकृष्टदेशकालत्वात् ॥ १६ ॥

छिन्नधान्य और पुरुषवीवध सेना में छिन्नधान्य सेना अन्य स्थान से धान्य लाकर या मृगादि का मांस और फल खाकर भी लड़ सकती है, परन्तु पुरुषवीवध सेना नहीं लड़ सकती, क्योंकि वह सब तरह के सामान के लाने लिवाने में असमर्थ होती है। जिसके पास धान्य न रहा हो, वह छिन्नधान्य और जिसका अन्न घास मंगाने का ही सम्बन्ध न हो उसे छिन्नपुरुषवीवध सेना कहते हैं। स्वविक्षिप्त और मित्र विक्षिप्त सेना में स्वविक्षिप्त सेना अपनी ही भूमि में बिखरी होने से आपत्काल में बुलाई जा सकती है और वह युद्ध कर सकती है, परन्तु मित्रविक्षिप्त युद्ध नहीं कर सकती, क्योंकि वह दूर देश में गई होती है। जो अपने देश में कहीं तैनात हो-वह स्वविक्षिप्त और जो मित्र के कार्य के लिए कहीं दूर भेजी गई-वह मित्रविक्षिप्त सेना होती है ॥१५-१६॥

दूष्ययुक्तदुष्टपार्ष्णिग्राहयोर्दूष्ययुक्तमाप्तपुरुषाधिष्ठितमसंहतं युध्येत न दुष्टपार्ष्णिग्राहं पृष्ठाभिघातत्रस्तम् ॥ १७ ॥ शून्यमूलास्वामिसंहतयोः शून्यमूलं कृतपौरजानपदारक्षं सर्वसंदोहेन युध्येत नास्वामिसंहतं राजसेनापतिहीनम् ॥१८॥ भिन्नकूटान्धयोर्भिन्नकूटमन्याधिष्ठितं युध्येत नान्धमदेशिकमिति ॥ १९ ॥

दूष्य युक्त और दुष्ट पार्ष्णिग्राह में दूष्य युक्त सेना अपने आप्त पुरुषों के योग से असंगठित हो जाने से लड़ सकती है, परन्तु दुष्ट पार्ष्णिग्राह वाली सेना नहीं लड़ सकती क्योंकि दुष्ट पार्ष्णिग्राह तो पीछे से घात के लिए आतुर होता है। दुष्ट अमात्य आदि से युक्त, दूष्य युक्त और बिगड़े हुए पार्ष्णिग्राह (पीछे के राजा) से युक्त होने से दुष्ट पार्ष्णिग्राह सेना कहाती है। शून्यमूल और अस्वामी संहत सेना में शून्यमूल, पुरवासी और जनपद के पुरुषों की सहायता से सम्पूर्ण शक्ति लगाकर लड़ सकती है, परन्तु अस्वामि संहत नहीं लड़ सकती, क्योंकि उसका राजा या अन्य वीर कोई सेनापति नहीं होता है। राजधानी में बहुत थोड़ी बची सेना शून्यमूल, और जिसका कोई सेनापति न हो, उसे अस्वामि

संहत सेना कहते हैं। भिन्नकूट और अन्ध सेना में अन्य अध्यक्ष का सहारा लेकर भिन्न कूट सेना युद्ध कर सकती है, परन्तु अन्ध सेना नही लड़ सकती है, क्योंकि वह शत्रु के व्यवहार को कुछ नहीं जानती है। जिसका अध्यक्ष दूसरी ओर मिल गया वह भिन्नकूट और जो शत्रु के विषय में बिल्कुल अज्ञान रखती हो-वह अन्ध सेना कहाती है ॥१७-१६॥

दोषशुद्धिर्बलावापः सत्रस्थानातिसंहितम् ।
संधिश्चोत्तरपक्षस्य बलव्यसनसाधनम् ॥ २० ॥

सेना के साथ किये गए दुर्व्यवहारों का लोप करना, दूसरी सेना से अपनी सेना को बलोत्साह सहित कर देना, दुर्ग वन आदि में सेना की स्थिति करना तथा बलवान् पक्ष से सन्धि करना-ये सेना के दोषों के नाश करने के साधन हैं ॥ २० ॥

रक्षेत्स्वदण्डं व्यसने शत्रुभ्यो नित्यमुत्थितः ।
प्रहरेद्दण्डरन्ध्रेषु शत्रूणां नित्यमुत्थितः ॥ २१ ॥

विजयाभिलाषी राजा, संकट के समय शत्रुओं से अपनी सेना की बड़ी सावधानी से रक्षा करे। तथा सावधानी के साथ ही जब शत्रुओं में कहीं छिद्र देखे-तो फौरन उनपर प्रहार करदे, यहां तक बल व्यसन वर्ग का विवेचन किया गया ॥ २१ ॥

अभियातं स्वयं मित्रं संभूयान्यवशेन वा ।
परित्यक्तमशक्त्या वा लोभेन प्रणयेन वा ॥ २२ ॥

अपने स्वार्थ या अन्य किसी कारण से अपनी सेना सजाकर शत्रु पर चढ़ाई करने पर जो राजा, अपनी अशक्ति, लोभ, प्राणों के मोह से अपने उस मित्र की सहायता नहीं करता-तो वह मित्र बिगड़ जाता है, वह फिर वश में कठिनता से आता है ॥ २२ ॥

विक्रीतमभियुञ्जाने संग्रामे वापवर्तिना ।
द्वैधीभावेन वा मित्रं यास्यता वान्यमन्यतः ॥ २३ ॥

युद्ध के छिड़जाने पर धन आदि से अपने को बेच कर जो राजा लौट आता है, या द्वैधी भाव के ढ़ंग पर मित्र के साथ चलता है, या अन्य ओर चल देता है-उसका मित्र फिर कठिनाई से प्रेमी बनता है। राजा और शत्रु से मिलना और दूसरी ओर मित्र से मिलना द्वैधी भाव कहाता है ॥ २३ ॥

पृथग्वा सह याने वा विश्वासेनातिसंहितम् ।
भयावमानालस्यैर्वा व्यासनान्न प्रमोचितम् ॥ २४ ।

-पृथक् २ आक्रमण करने या साथ २ आक्रमण करने पर अत्यन्त विश्वास में आया हुआ मित्र, जब शत्रु के भय या मित्र विषयक अपमान या आलस्य से विजयाभिलाषी राजा द्वारा नहीं छुड़ाया जाता, तो वह मित्र विगड़ जाता है-और उस धोखे के कारण वह फिर कष्ट से मित्र बनता है ॥ २४ ॥

अवरुद्धं स्वभूमिभ्यः समीपाद्वा भयाद्गतम् ।
आच्छेदनाददानाद्वा दत्वा वाप्यवमानितम् ॥ २५ ॥

अपनी ही भूमि में धोखे या अपने ही मनुष्यों से वध तथा बन्धन का भय प्राप्त होने या कुछ छीन लेने तथा देने योग्य न देने से एवं देकर अपमानित करने से मित्र रुष्ट हो जाता है-और वह फिर कठिनता से प्रसन्न हो सकेगा ॥ २५ ॥

अत्याहारितमर्थं वा स्वयं परमुखेन वा ।
अतिभारे नियुक्तं वा भङ्क्त्वा परमवस्थितम् ॥ २६ ॥

अपने आप या किसी दूसरे के द्वारा धन के छीन लेने पर या अत्यन्त कठिन कार्य में उलझा देने पर शत्रु को जीत कर आया हुआ मित्र विगड़ उठता है और वह फिर प्रसन्न नहीं हो सकता है ॥ २६ ॥

उपेक्षितमशक्त्या वा प्रार्थयित्वा विरोधितम् ।
कृच्छ्रेण साध्यते मित्रं सिद्धं चाशु विरज्यति ॥ २७ ॥

अपनी अशक्ति के कारण उपेक्षित (परवाह न किया हुआ) प्रार्थना करके विगाड़ा हुआ, मित्र फिर वश में नहीं आता और कुछ प्रसन्न हो भी जाता है, तो फिर शीघ्र विगड़ जाता है ॥ २७ ॥

कृतप्रयासं मान्यं वा मोहान्मित्रममानितम् ।
मानितं वा न सदृशं शक्तितो वा निवारितम् ॥ २८ ॥

विजयाभिलाषी राजा के लिए महान उपकार करने वाले मान्य, मोह से मित्र का अपमान कर्ता ठीक २ आदर न पाया हुआ, शत्रु से शक्ति द्वारा निकाला हुआ मित्र फिर मिल जाता है ॥ २८ ॥

मित्रोपघातत्रस्तं वा शङ्कितं वारिसंहितात् ।
दूष्यैर्वा भेदितं मित्रं साध्यं सिद्धं च तिष्ठति ॥ २९ ॥

विजेता के आघात से भयभीत, शत्रु के साथ सन्धि करने से शङ्कित, दुष्ट पुरुषों से भेदित, मित्र भी फौरन प्रेमी बन जाता है ॥ २९ ॥

तस्मान्नोत्पादयेदेनान्दोषान्मित्रोपघातकान् ।
उत्पन्नान्वा प्रशमयेद्गुणैर्दोषोपघातिभिः ॥ ३० ॥

नीतिमान राजा को चाहिए कि वह मित्रता नाशक इन दोषों को न उत्पन्न होने देवे। यदि ये दोष किसी कारण से उत्पन्न भी हो जावें तो उनको दोषों के नाशक गुणों से नष्ट कर देना चाहिए। ३० ॥

यतोनिमित्तं व्यसनं प्रकृतीनामवाप्नुयात् ।
प्रागेव प्रतिकुर्वीत तन्निमित्तमतन्द्रितः ॥ ३१ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे बलव्यसनवर्गः, मित्रव्यसनवर्गः पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥ आदित एकविंशतिशतो ऽध्यायः ॥ १२१ ।

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य व्यसनाधिकारिके अष्टममधिकरणम् समाप्तम् ॥ ८ ॥

राजा जिन कारणों से अपने अमात्य आदि का व्यसन प्राप्त करे-उन कारणों का बड़ी सावधानी से वह प्रथम ही निराकरण कर देवे ॥ ३१ ॥

इतिश्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत व्यसनाधिकारिक अधिकरण में बलव्यसन और मित्र व्यसन के वर्णन का पांचवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥



अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरण

प्रथम अध्याय

१३५-१३६वां प्रकरण

शक्ति देश-काल बलाबल ज्ञानम् यात्रा-कालः ।

उत्साह आदि शक्ति, देशकाल, इनकी अनुकूलता का बल और प्रतिकूलता की निर्बलता का इस प्रकरण में वर्णन किया जावेगा।

विजिगीषुरात्मनः परस्य च बलाबलं शक्तिदेशकालयात्राकालबलसमुत्थानकालपश्चात्कोपक्षयव्ययलाभापदां ज्ञात्वा विशिष्टबलो यायात् ॥ १ ॥ अन्यथासीत ॥ २ ॥

विजय की इच्छा रखने वाला राजा, अपने और शत्रु के बलाबल, शक्ति, देशकाल, यात्राकाल, सेना की उन्नति का समय, पीछे के राजाओं का आक्रमण, जनक्षय, धन व्यय, फल सिद्धि, बाहरी और भीतरी आपत्ति को जानकर अधिक सेना लेकर शत्रु पर चढ़ाई करे। यदि अपना बल अधिक न हो-तो चुपका बैठा रहे ॥१-२॥

उत्साहप्रभावयोरुत्साहः श्रेयान् ॥ ३ ॥ स्वयं हि राजा शूरो बलवानरोगः कृतास्त्रो दण्डद्वितीयोऽपि शक्तः प्रभाववन्तं राजानं जेतुम्, अल्पोऽपि चास्य दण्डस्तेजसा कृत्यकरो भवति ॥ ४ ॥ निरुत्साहस्तु प्रभाववान्राजा विक्रमाभिपन्नो नश्यतीत्याचार्याः ॥ ५ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ६ ॥ प्रभाववानुत्साहवन्तं राजानं प्रभावेनातिसंधत्ते ॥ ७ ॥ तद्विशिष्टमन्यं राजानमावाह्य हृत्वा क्रीत्वा प्रवीरपुरुषान्प्रभूतप्रभावहयहस्तिरथोपकरणसंपन्नश्चास्य दण्डःसर्वत्राप्रतिहतश्चरति ॥ ८ ॥ उत्साहवतश्च प्रभाववन्तो जित्वा क्रीत्वा च स्त्रियो बालाः पङ्गवोऽन्धाश्च पृथिवीं जिग्युरिति ॥ ९ ॥

उत्साह शक्ति और प्रभाव शक्ति में उत्साह शक्ति ही अधिक उत्तम है। जब राजा स्वयं शूरवीर, बलवान् रोग रहित, अस्त्र विद्या में कुशल, और अपनी सेना के भरोसे पर रहने वाला- होगा-तो वह प्रभावशील राजा के जीतने में भी समर्थ हो जावेगा। इसके तेज के कारण थोड़ी सेना भी अपना काम कर जाती है। यदि वीरता आदि गुणों से रहित होकर राजा आक्रमण करता है, तो प्रभावशाली होकर भी पराजित हो जाता है। वीरतादि गुण सम्पण होना, उत्साह शक्ति सम्पन्न और ऐश्वर्यशाली होना, प्रभुशक्ति सम्पन्न राजा कहाता है। कौटल्याचार्य इस बात के न मानते हुए कहते हैं कि जो राजा प्रभावशाली होता है, वह अपने प्रभाव के कारण उत्साही (पराक्रमी) राजा को भी जीत लेता है। वह अपने प्रभाव के कारण वीरता के गुण से युक्त अन्य राजा को अपनी ओर बुला कर तथा वीर पुरुषों से धन धान्य इकट्ठा करके और अपने अधीन बनाकर अपना कार्य सम्पादन कर लेता है। अपने ऐश्वर्य के प्रभाव से बहुत से अश्व, हाथी, रथ आदि युद्ध की सामग्री से सम्पन्न इसकी सेना, बे रोक टोक सब स्थानों में घूम सकती है। प्रभावशाली स्त्री, बालक, लंगड़े लूले और अन्धे राजाओं ने पूर्वकाल में अनेक उत्साही राजाओं को जीतकर अपने वश में कर लिया था, ऐसा सुना है ॥३-९॥

प्रभावमन्त्रयोः प्रभावः श्रेयान् ॥ १० ॥ मन्त्रशक्तिसंपन्नो हि वन्ध्यबुद्धिरप्रभावो भवति ॥ ११ ॥ मन्त्रकर्म चास्य निश्चितमप्रभावो गर्भधान्यमवृष्टिरिवोपहन्तीत्याचार्याः ॥ १२ ॥ नेति कौटल्यः ॥ १३ ॥ मन्त्रशक्तिः श्रेयसी ॥ १४ ॥ प्रज्ञाशास्त्रचक्षुर्हि राजाल्पेनापि प्रयत्नेन मन्त्रमाधातुं शक्तः परानुत्साहप्रभाववतश्च सामादिभिर्योगोपनिषद्भ्यां चातिसन्धातुम् ॥ १५ ॥ एवमुत्साहप्रभावमन्त्रशक्तीनामुत्तरोत्तराधिको ऽतिसंधत्ते ॥ १६ ॥

प्रभावशाली शक्ति और मन्त्र शक्ति में प्रभावशक्ति अधिक उत्तम है। यदि मन्त्र शक्ति से सम्पन्न भी राजा है और उसके पास ऐश्वर्य नहीं है, तो उसकी सारी बुद्धि ज्यों की त्यों कुण्ठित रह जाती है। इसके मन्त्र का बल-बिना प्रभाव के इस प्रकार नष्ट हो जाता है, जैसे,-बोया हुआ धान्य बिना वृष्टि नष्ट हो जाता है ऐसा प्राचीन आचार्य मानते आये हैं। कौटल्याचार्य कहते हैं, कि प्रभाव शक्ति की अपेक्षा मन्त्र शक्ति ही अधिक उत्तम है। जिस राजा की बुद्धि और शास्त्र आंखें हैं, वह थोड़े भी प्रयत्न से अपने मन्त्र को सफल बना सकता है तथा उत्साही और प्रभावशाली राजाओं को समादि उपाय या विष आदि प्रयोगों के द्वारा वश में कर सकता है। इस प्रकार उत्साह शक्ति से प्रभाव और प्रभाव शक्ति से मन्त्र शक्ति को बलवान मानना चाहिए ॥१०-१६॥

देशः पृथिवी ॥ १७ ॥ तस्यां हिमवत्समुद्रान्तरमुदीचीनं योजनसहस्र-परिमाणं तिर्यक्चक्रवर्तिक्षेत्रम् ॥ १७ ॥ तत्रारण्यो ग्राम्यः पार्वत औदको भौमः समो विषम इति विशेषाः ॥ १९ ॥ तेषु यथास्वबलवृद्धिकरं कर्म प्रयुञ्जीत ॥ २० ॥ यत्रात्मनः सैन्यव्यायामानां भूमिरभूमिः परस्य स उत्तमो देशः, विपरीतो ऽधमः, साधारणो मध्यमः ॥ २१ ॥

पृथिवी का नाम ही देश है । इस पृथ्वी पर हिमालय से लेकर समुद्र तक उत्तर दक्षिण तथा एक सहस्र योजन परिमित पूर्व पश्चिम, तिरछा क्षेत्र चक्रवर्ती (भारतवर्ष) क्षेत्र कहाता है । इसमें वन, गांव, पर्वत, जलप्रदेश, भूमि, सम और विषम प्रदेशों का भेद है। इस भूमि पर जिस प्रकार अपनी सेना की वृद्धि हो-उसी प्रकार का कर्म स्वीकार करे। जिस प्रदेश में अपनी सेना के व्यायाम (कवायद) की उत्तम भूमि हो और शत्रु का प्रवेश न होसके-वह उत्तम, इससे विपरीत अधम और साधारण प्रदेश मध्यम होता है ॥१७-२१॥

कालः शीतोष्णवर्षात्मा ॥ २२ ॥ तस्य रात्रिरहः पक्षो मास ऋतुरयनं संवत्सरो युगमिति विशेषाः ॥ २३ ॥ तेषुयथास्वबलवृद्धिकरं कर्म प्रयुञ्जीत ॥२४॥ यत्रात्मनः सैन्यव्यायामानामृतुरनृतुः परस्य स उत्तमः कालो, विपरीतोऽधमः साधारणो मध्यमः ॥ २५ ॥

शीत, उष्ण, वर्षा रूपधारी काल होता है । रात, दिन पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर इसके विशेष भेद है । इनमें राजा अपनी सेना के बल की वृद्धि के करने वाले कार्यों का आरम्भ करे। जिसमें अपनी सेना के व्यायाम (कवायद) के लिए उत्तम ऋतु हो और शत्रु को विपरीत पड़ती हो-वह उत्तमकाल माना गया है। जिस में शत्रु को अनुकूलता-वह अधम और जिसमें दोनों को साधारण ऋतु हो-वह मध्यमकाल होता है ॥२२-२५॥

शक्तिदेशकालानां तु शक्तिः श्रेयसीत्याचार्याः ॥ २६ ॥ शक्तिमान्हि निम्नस्थलवतो देशस्य शीतोष्णवर्षवतश्च कालस्य शक्तः प्रतीकारे भवति ॥२७॥ देशः श्रेयानित्येके ॥ २८ ॥ स्थलगतो हि श्वा नक्रं विकर्षति निम्नगतो नक्रः श्वानमिति ॥ २९ ॥ कालः श्रेयानित्येके ॥ ३० ॥ दिवा काकः कौशिकं हन्ति रात्रौ कौशिकः काकमिति ॥ ३१ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ परस्पर-साधका हि शक्तिदेशकालाः ॥ ३३ ॥

शक्ति, देश और काल में शक्ति अधिक उत्तम है ऐसा आचार्य मानते आरहे हैं। जो शक्तिमान् है, वह नीचे ऊंचे प्रदेश और शीत, उष्ण या वर्षा वाले काल को अपने अनुकूल बनाकर उसका प्रतीकार कर लेता है। कोई २ देश को अधिक अच्छा बताने लगते हैं। पृथ्वी पर कुत्ता भी मकर को खींच लेता है और जल में मकर कुत्ते को खेंच ले जाता है-यह देश की ही विशेषता है। किसी ने काल की महिमा गाई है। दिन में कौवे उल्लू को मार लेते हैं और रात में उल्लू कौवों को मार देते हैं। यह काल का भेद है। परन्तु कौटल्याचार्य कहते हैं, कि इनमें किसी एक की विशेषता नहीं है-ये शक्ति, देश और काल तो परस्पर एक दूसरे के पोषक हैं॥२६-३३॥

तैरभ्युच्चितस्तृतीयं चतुर्थं वा दण्डस्यांशमूले पार्ष्ण्यां प्रत्यन्तादवीषु च रक्षा विधाय कार्यसाधनसहं कोशदण्डं चादाय क्षीणपुराणभक्तमगृहीतनवभक्तमसंस्कृतदुर्गममित्रं वार्षिकं चास्य सस्यं, हैमनं च मुष्टिमुपहन्तु मार्गशीर्षीं यात्रां यायात् ॥ ३४ ॥

अब युद्ध यात्रा (चढ़ाई) का काल बताते हैं। विजयेच्छुक राजा, शक्ति, देश और काल से समन्वित होकर सेना के तिहाई या चौथाई भाग को राजधानी, पृष्ठ भाग और सरहदों पर नियुक्त करके, अपने विजय के कार्य को सिद्ध करने योग्य कोश और सेना लेकर मंगशिर महीने में चढ़ाई करे। इस समय शत्रु की पुरानी खाद्य सामग्री व्यतीत हो जाती है और नवीन संगृहीत नहीं हो पाती है अभी तक दुर्गों की मरम्मत भी नहीं हो पाती है; न कोई नया मित्र बन पाता है। इसका हरा भरा अन्न अभी तक ज्यों का त्यों खड़ा होता है। हेमन्त की अन्नोत्पत्ति के नाश के लिए भी यह चढ़ाई उत्तम है॥३४॥

हैमनं चास्य सस्यं वासन्तिकं च मुष्टिमुपहन्तुं चैत्रीं यात्रां यायात् ॥ ३५ ॥ क्षीणतृणकाष्ठोदकमसंस्कृतदुर्गममित्रं वासन्तिकं चास्य सस्यं वार्षिकीं वा मुष्टिमुपहन्तुं ज्येष्ठामूलीयां यात्रां यायात् ॥ ३६ ॥

हेमन्त में हरे भरे अन्न और वसन्त में उत्पन्न होने वाले अन्न के नष्ट करने को चैत्र की चढ़ाई उत्तम है। इस समय शत्रु, तृण, काष्ठ जल से हीन, दुर्गों की मरम्मत से रहित, होता है। इससे वसन्त में खड़े हुए हरे अन्न और वर्षा में उत्पन्न होने वाले अन्न के नाश को ज्येष्ठ काल की चढ़ाई बड़ी ठीक है ॥३५-३६॥

अत्युष्णमल्पयवसेन्धनोदकं वा देशं हेमन्ते यायात् ॥ ३७ ॥ तुषारदुर्दिनमगाधनिम्नप्रायं गहनतृणवृक्षं वा देशं ग्रीष्मे यायात् ॥ ३८ ॥ स्वसैन्य-

व्यायामयोग्यं परस्या योग्यं वर्षति यायात् ॥ ३६ ॥ मार्गशीर्षीं तैषीं चान्तरेण दीर्घकालां यात्रां यायात् ॥ ४० ॥ चैत्रीं वैशाखीं चान्तरेण मध्यम-कालां, ज्येष्ठामूलीयामाषाढीं चान्तरेण ह्रस्वकालामुपोषिष्यन् ॥ ४१ ॥

अत्यन्त गर्म और थोड़े घास, इन्धन और जल वाले प्रदेश पर हेमन्त ऋतु में चढ़ाई करे। वर्फीले और नित्य वर्षा वाले, अगाध जल से भरे रहने वाले, घास और वृक्ष के वन से गहन, देश में ग्रीष्म ऋतु में चढ़ाई करे। अपनी सेना के पराक्रम दिखाने के योग्य और शत्रु सेना के अनुपयोगी काल हो-तो वर्षा काल में भी चढ़ाई कर लेनी चाहिए यदि चढ़ाई दीर्घकाल में पूरी होने वाली हो-तो उसका मगशिर और पौष के बीच में आरम्भ करना चाहिए। मध्यम काल में पूरी होने वाली चढ़ाई को चैत्र वैसाख के मध्य में तथा जिसके थोड़े काल में ही पूरी हो जाने की सम्भावना है, उसको ज्येष्ठ और आषाढ़ के बीच में भी कर देवे ॥३७-४१॥

व्यसने चतुर्थीम् ॥ ४२ ॥ व्यसनाभियानं विगृह्ययाने व्याख्यातम् ॥ ४३ ॥ प्रायशश्चाचार्याः परव्यसने यातव्यमित्युपदिशन्ति ॥ ४४ ॥ शक्त्युदये यातव्यमनैकान्तिकत्वाद्व्यसनानामिति कौटल्यः ॥ ४५ ॥ यदा वा प्रयातः कर्शयितुमुच्छेत्तुं वा शक्नुयादमित्रं तदा यायात् ॥ ४६ ॥

जब कभी भी शत्रु पर विपत्ति हो-तभी चढ़ाई कर देवे-यह चतुर्थ यात्रा काल होता है। शत्रु पर व्यसन आने पर किस प्रकार चढ़ाई करे-इसका निरूपण विगृह्ययान प्रकरण किया जा चुका। प्राचीन आचार्य, इस बात को एक मत से कह रहे हैं, कि जब शत्रु पर संकट हो-तब चढ़ दौड़ना चाहिए, परन्तु कौटल्याचार्य कहते हैं, कि जब विजेता में शक्ति बढ़ी चढ़ी होवे-तब ही शत्रु पर आक्रमण कर देना चाहिए। विपत्ति तो कभी रहती है और कभी फौरन ही हट जाती है। जब शक्तिशाली राजा यह देखे, कि मैं चढ़ाई करके शत्रु की शक्ति को घटा दूंगा-या उसका उच्छेद कर डालूंगा-तभी उसपर चढ़ाई कर देवे ॥४२-४६॥

अत्युष्णोपक्षीणे काले ऽहस्तिबलप्रायो यायात् ॥ ४७ ॥ हस्तिनो ह्यन्तः स्वेदाः कुष्ठिनो भवन्ति ॥ ४८ ॥ अनवगाहमानास्तोयमपिबन्तश्चान्तरवक्षारा-च्चान्धीभवन्ति ॥ ४६ ॥ तस्मात्प्रभूतोदके देशे वर्षति च हस्तिबलप्रायो यायात् ॥ ५० ॥ विपर्यये खरोष्ट्राश्वबलप्रायः ॥ ५१ ॥ देशमल्पवर्षपङ्कं वर्षति

मरुप्रायं चतुरङ्गबलो यायात् ॥ ५२ ॥ समविषमनिम्न स्थलह्रस्वदीर्घवशेन वाध्वनो यात्रां विभजेत् ॥ ५३ ॥

(अत्यन्त उष्णता से युक्त काल में हाथियों की सेना को छोड़कर ऊंट आदि वाहनों की सेना लेकर चढ़ाई करे। जब हाथी के पसीने भीतर ही मर जाते हैं, तब वे कुष्ठी हो जाते हैं। पानी में स्नान न होने और जल पीने को न मिलने पर भीतर खार बढ़कर हाथी अन्धे भी हो जाते हैं, इसलिए जहां जल बहुत हो, और वर्षा हो रही हो-तब हाथी की अधिक सेना लेकर चढ़ाई करनी चाहिए।) जब ऐसा समय न हो तो खर (गुजराती अश्व) ऊंट, घोड़ों की सेना लेकर चढ़ाई करे। जिस देश में थोड़ी वर्षा होने से कीच गारा थोड़ा होता हो, अथवा वर्षा होने पर भी जो देश सूखा का सूखा मरुस्थल सा ही रहे, उसमें हाथी, अश्व, रथ और पैदल, चारों प्रकार की चतुरङ्गिणी सेना लेकर चढ़ाई करनी उचित है। देश के ऊंचे-नीचे समतल, जलप्राय, स्थलप्राय, ह्रस्वकाल, दीर्घकाल में पूरे होने वाले मार्ग आदि के कारण भः मात्रा में भेद किया जा सकता है। अर्थात् अश्व आदि वाहन, समय का हेर फेर कर लिया जा सकता है ॥ ४७-५३॥

सर्वा वा ह्रस्वकालाः स्युर्यातव्याः कार्यलाघवात् ।
दीर्घाः कार्यगुरुत्वाद्वा वर्षावासः परत्र च ॥ ५४ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमेऽधिकरणे शक्तिदेशकालबलाबलज्ञानं यात्राकालाः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥ आदितो द्वाविंशशतो ऽध्यायः ॥ १२२ ॥

जिन यात्राओं में काम थोड़ा करना है, वे सारी थोड़े काल में पूरी कर देनी चाहिए और जब कार्य की अधिकता हो-तो उसमें दीर्घकाल भी व्यतीत किया जा सकता है। कार्य गौरव से कभी २ तो वर्षा ऋतु में भी परदेश में ही वास करना पड़ जाता है ॥५४॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अभियास्यत्कर्म नामक अधिकरण में शक्ति देशकाल आदि के वर्णन का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।



दूसरा अध्याय

१३७-१३९वां प्रकरण

बलोपादन कालाः संनाद गुणाः प्रतिबलकर्म ।

इस प्रकरण में सेना की तय्यारी, सेना के उद्योग, और शत्रु सेना के योग्य सेना बनाने का वर्णन किया जावेगा ।

मौलभृतकश्रेणीमित्रामित्राटवीबलानां समुद्दानकालाः ॥ १ ॥ मूलरक्षणादतिरिक्तं मौलबलम् ॥ २२ ॥ अत्यावापयुक्ता वा मौला मूले विकुर्वीरन्निति बहुलानुरक्तमौलबलः सारबलो वा प्रतियोद्धा व्यायामेन योद्धाव्यमिति ॥ ४ ॥ प्रकृष्टे ऽध्वनि काले वा क्षयव्ययसहत्वान्मोलानामिति ॥ ५ ॥ बहुलानुरक्तसंपाते च यातव्यस्योपजापभयादन्यसैन्यानां भृतानामविश्वासे ॥ ६ ॥ बलक्षये वा सर्वसैन्यानामिति मौलबलकालः ॥ ७ ॥

राजधानी की रक्षा करने वाली मौल सेना, वेतन भोगी भृतक सेना, अपना गिरोह बनाकर कार्य करने वाली श्रेणी सेना, मित्र सेना शत्रुसेना, और बनचरवासी वीरों की सेना के युद्ध के लिए तय्यार करने के कालों का वर्णन करना है। जितनी सेना राजधानी की रक्षा से अधिक हो-उसे मौलबल के युद्ध के लिए भेजा जा सकता है। अत्यन्त द्रोहयुक्त हुए मूलसेना के वीर, राजधानी में उपद्रव खड़ा कर देंगे यह दशा हो-तो उस सारी सेना को ही युद्ध में साथ ले जानी चाहिए। जब मौल सेना के वीर अत्यन्त अनुरक्त हो, और दृढ़वीर हों-तथा शत्रु का बड़ी वीरता के साथ मुकाबिला करना है, ऐसी परिस्थिति में भो मौलबल को साथ ही ले जाना चाहिए। जब युद्ध यात्रा का बहुत लम्बा काल दिखाई देवे और जन नाश तथा धन व्यय को मौल सेना ही सह सकती हो जब शत्रु के अनुरक्त बहुत से दूतों द्वारा सेना में फूट डलवा देने की आशङ्का हो, या अन्य भृतक बल आदि पर विश्वास न हो, तथा अन्य सारी सेना नष्ट प्राय हो चुकी हो-तो ऐसी परिस्थिति में मौल सेना को भी युद्ध क्षेत्र (लाम) में भेज देना चाहिए ॥१-७॥

प्रभूतं मे भृतबलमल्पं च मौलबलमिति ॥ ८ ॥ परस्याल्पं विरक्तं वा मौलबलं फल्गुप्रायमसारं वा भृतसैन्यमिति ॥ ९ ॥ मन्त्रेण योद्धव्यमल्पव्यायामेनेति ॥ १० ॥ ह्रस्वो देशः कालो वा तनुक्षयव्यय इति ॥ ११ ॥ अल्पसम्पातं शान्तोपजापं विश्वस्तं वा मे सैन्यमिति ॥ १२ ॥ परस्याल्पः प्रसारो हन्तव्य इति भृतबलकालः ॥ १३ ॥

मेरी वेतन भोगी सेना बहुत अधिक है और राजधानी की रक्षा करने वाली मौल थोड़ी है। शत्रु की बहुत थोड़ी और उस से विरक्त मौल सेना है तथा शत्रु की भृत सेना शक्तिहीन, बेकार और निर्बल है। थोड़े से परिश्रम से ही मन्त्रणा के बल पर ही युद्ध जीत लिया जावेगा। वहां जाने में थोड़ी दूर सफर करना है और उसमें थोड़ा ही समय लगेगा एवं बहुत थोड़ा जन-धन-क्षय है। शत्रु के अनुरक्त पुरुष बहुत कम आ सकते हैं, और वे मेरी सेना को तोड़ फोड़ नहीं सकते हैं, मेरी सेना बड़ी विश्वास योग्य है। शत्रु के थोड़े से विस्तार को रोकना है-अधिक बल की क्या आवश्यकता है-ऐसी परिस्थिति में राजा अपनी भृतक सेना को युद्धक्षेत्र में लेजावे ॥ ८-१३ ॥

प्रभूतं मे श्रेणीबलं शक्यं मूले यात्रायां चाधातुमिति ॥१४॥ ह्रस्वः प्रवासः श्रेणीबलप्रायः प्रतियोद्धा मन्त्रव्यायामाभ्यां प्रतियोद्धकामो दण्डबलव्यवहार इति श्रेणीबलकालः ॥ १५ ॥

जब राजा यह समझे कि मेरे पास श्रेणी बल बहुत अधिक है, उसे राजधानी की रक्षा में भी रखा जा सकता है और साथ ही चढ़ाई पर भी ले जाया सकता है, जब प्रवास काल थोड़ा दिखाई देवे अपने पास श्रेणी बल की अधिकता हो, शत्रु भी मन्त्र और पराक्रम से युद्ध में संलग्न हो अथवा अपनी सेना अन्य राजा की कमान सौंपकर शत्रु लड़ने की चेष्टा कर रह हो-ऐसी परिस्थिति में विजयाभिलापी राजा अपने श्रेणी बलका ही प्रयोग करे ॥ १४-१५ ॥

प्रभूतं मे मित्रबलं शक्यं मूले यात्रायां चाधातुमल्पः प्रवासो मन्त्रयुद्धाच्च भूयो व्यायामयुद्धमिति ॥ १६ ॥ मित्रबलेन वा पूर्वमटवीनगरस्थानमासारं वा योधयित्वा पश्चात्स्वबलेन योधयिष्यामि ॥ १७ ॥ मित्रसाधारणं वा मे कार्यम्, मित्रायत्ता वा मे कार्यसिद्धिः ॥१८॥ आसन्नमनुग्राह्यं वा मे मित्रमत्यावापं वास्य साधयिष्यामीति मित्रबलकालः ॥ १९ ॥

जब राजा को प्रतीत हो, कि मेरा मित्र बल बहुत अधिक है, उसे राजधानी की रक्षा और चढ़ाई दोनों में नियुक्त किया जा सकता है। थोड़े दिन विदेश में रहना है। राजनैतिक कांट छांट की अपेक्षा शत्रु युद्ध अधिक होगा। अपने मित्र बल के साथ प्रथम आटविक [वनचर] लोगों की सेना या नगर की सेना तथा आसार [पार्ष्णिग्राह या आक्रन्द] से लड़ाकर फिर अपनी सेना से लड़ाऊंगा। इस युद्ध में जितना मित्र का स्वार्थ सिद्ध होगा, उतना ही मेरा भी होता दिखाई दे रहा है अथवा मेरे कार्य की सिद्धि ही मित्र के

अधीन है। मुझे समीप काल में ही मित्र का उपकार करना है। अपने मित्र के दूष्य बल को शत्रु से भिड़ा कर मरवा डालूंगा-ऐसी परिस्थिति में राजा मित्र बल का उपयोग करे॥ १६-१६॥

प्रभूतं मे शत्रुबलं शत्रुबलेन योधयिष्यामि नगरस्थानमटवीं वा॥ २०॥ तत्र मे श्ववराहयोः कलहे चण्डालस्येवान्यतरसिद्धिर्भविष्यति ॥ २१॥ आसाराणामटवीनां वा कण्टकमर्दनमेतत्करिष्यामि॥ २२॥ अत्युपचितं वा कोपभयान्नित्यमासन्नमरिबलं वासयेदन्यत्राभ्यन्तरकोपशङ्कायाः शत्रुयुद्धावरयुद्धकालश्चेत्यमित्रबलकालः॥ २३॥

मेरे वश में बहुत सी शत्रुओं की सेना है। मैं दूसरे शत्रु की नगर सेना या आटविक सेना से उसे लड़ा दूंगा। उस समय कुत्ते सूअर की लड़ाई में चण्डाल की दोनों तरह सिद्धि है इसी तरह दो शत्रुओं के कलह में मेरी सिद्धि होगी। अपने आसार [पार्ष्णि ग्राह] आदि या वनचरों के मध्य में जो कण्टक हैं, उनका भी इस समय इस तरह शोधन (सफाया) करादूंगा। अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त शत्रु सेना कभी कुपित न हो जावे, इस लिए सदा अपनी देख-रेख में उसे रखे। यदि शत्रु सेना के रखने से अपनी सेना में फूट पड़े-तो उसे न बसावे। यदि शत्रु से युद्ध करने पर फिर युद्ध का समय आवे, तो अपने शत्रु को सेना को ही रण में भेजे। यह सारी परिस्थिति शत्रु सेना के युद्ध में प्रयोग करने के काल की सूचक है॥ २०-२३॥

तेनाटवीबलकालो व्याख्यातः॥ २४॥ मार्गदेशिकं परभूमियोग्यमरियुद्धप्रतिलोममटवीबलप्रायः शत्रुर्वा बिल्वं बिल्वेन हन्यताम्। अल्पः प्रसारो हन्तव्य इत्यटवीबलकालः॥ २५॥

इसी तरह आटविक [जङ्गली] सेना के युद्धमें में भेजने का समय समझना चाहिए। आटविक सेना शत्रु देश पर जाने के समय मार्ग बताने में बड़ी काम आती है। यह शत्रु से युद्ध करने योग्य शस्त्रों का अच्छा प्रयोग जानती है। शत्रु भी वनचर भीलों की ही सेना अधिक लाया है। इस समय एक बिल्व को दूसरे बिल्व से फोड़ देनें के तुल्य दोनों आटविक सेनाओं को भिड़ा देना चाहिए। शत्रु के तृण, घास आदि वस्तुओं को यदि नष्ट भ्रष्ट कर देना है, तो इस दशा में राजा आटविक सेना का प्रयोग करे-यही समय इस सेना के प्रयोग का है॥२४-२५॥

सैन्यमनेकमनेकजातीयस्थमुक्तमनुक्तं वा विलोपार्थं यदुत्तिष्ठति तदौत्साहिकम्॥ २६॥ भक्तवेतनविलोपाविष्टिप्रतापकरं भेद्यं परेषामभेद्यं तुल्यदेशजाति-

शिल्पप्रायं संहतं महदिति बलोपादानकालाः ॥ २७ ॥ तेषां कुप्यभृतममित्राटवीबलं विलोपभृतं वा कुर्यात् ॥ २८ ॥

जो सेना एक नेता से रहित, अनेक जाति के वीर पुरुषों से युक्त, राजा की इज़ाजत से बनी या स्वतन्त्र बनी हुई, लूट पाटने का काम करने वाली सेना औत्साहिक सेना होती है। भत्ता, वेतन, लूट, बेगार करके अपना प्रताप दिखाने वाली औत्साहित सेना को भेद्य और एक देश की एक जाति की एक सा व्यवसाय करने वाली सेना अभेद्य होती है अर्थात् भिन्न जाति ही तोड़ी जा सकती है और अभिन्न जाति की अपनी और नहीं मिलायी जा सकती है। यह औत्साहिक सेना बहुत बड़े आकार में संगठित होती है। यहां तक सेनाओं के आक्रमण के काल का निरूपण किया गया है। इन सेनाओं में शत्रु सेना और आटविक सेना को वस्त्र आभरण आदि के रूप में वेतन देने या लूट का माल ही इतना वेतन समझा जावे ॥२६-२८॥

अमित्रस्य वा बलकाले प्रत्युत्पन्ने शत्रुमवगृह्णीयात् ॥ २९ ॥ अन्यत्र वा प्रेषयेत ॥ ३० ॥ अफलं वा कुर्यात् ॥ ३१ ॥ विक्षिप्तं वा वासयेत् ॥३२॥ काले वातिक्रान्ते विसृजेत् ॥ ३३ ॥ परस्य चैतद्बलसमुद्दानं विघातयेत्, आत्मनः संपादयेत् ॥ ३४ ॥

जब शत्रु से मुक़ाबिला करने का समय आ पड़े तो प्रथम शत्रु की सेना को घेरे रहे या दूर देश में कहीं अन्यत्र भेज देवे। अथवा उसे शस्त्र आदि से हीन करके असफल बना देवे। या उसके खण्ड २ करके इधर उधर रख देवे। जब संकट काल व्यतीत हो जावे-तब उसे जाने की आज्ञा देवे। यह जो सेना की तय्यारी बताई गई, राजा शत्रु की सेना की तय्यारी न होने देवे और उसमें किसी न किसी तरह विघ्न कर देवे और शत्रु को चकमा देकर अपनी सेना तय्यार करले ॥२९-३४॥

पूर्वं पूर्वं चैषां श्रेयः संनाहयितुम् ॥ ३५ ॥ तद्भावभावित्वान्नित्यसत्कारानुगमाच्च मौलबलं भृतबलाच्छ्रेयः ॥ ३६ ॥ नित्यानन्तरं क्षिप्रोत्थायि वश्यं च भृतबलं श्रेणीबलाच्छ्रेयः ॥ ३७ ॥ जानपदमेकार्थोपगतं तुल्यसङ्घर्षामर्षसिद्धिलाभं च श्रेणीबलं मित्रबलाच्छ्रेयः ॥ ३८ ॥ अपरिमितदेशकालमेकार्थोपगमाच्च मित्रबलममित्रबलाच्छ्रेयः ॥ ३९ ॥ आर्याधिष्ठितममित्रबलमटवीबलाच्छ्रेयः ॥ ४० ॥ तदुभयं विलोपार्थम् ॥ ४१ ॥ अविलोपे व्यसने च ताभ्यामहिभयं स्यात् ॥ ४२ ॥

इन सात प्रकार की सेनाओं में उत्तर की अपेक्षा पूर्व सेना का संग्रह अधिक श्रेयस्कर है। अपने स्वामी के भाव में भाव मिलाने और नित्य सत्कार करने से भृत बल से मौलबल श्रेष्ठ है। नित्य समीप रहने और शीघ्र युद्ध के लिए तय्यार कर देने के कारण श्रेणी बल की अपेक्षा भृतबल श्रेष्ठ है। अपने देश का होने तथा एक स्वार्थ होने के कारण मित्रबल की अपेक्षा श्रेणीबल उत्तम है। अपने राजा को जिससे संघर्ष और अमर्ष हो उसी से देश का होनेसे श्रेणीबल को भी संघर्ष, और अमर्ष होता है। दोनों को एक सेसुख की सिद्धि होती है। प्रत्येक समय में मित्रबल सहायता प्राप्त करने और दोनों का एकसा स्वार्थ होने से शत्रुबल की अपेक्षा मित्रबल सहायता करने में उत्तम माना गया है। आर्यपुरुषों से युक्त शत्रुबल भी अटवीबल से श्रेष्ठ है। ये दोनों सेना तो लूट मार करने के काम आती हैं। यदि लूट का माल उन्हें न मिले और कभी कोई राजा पर संकट आ जाय-तो ये दोनों सेना सर्प का सा भय खड़ा कर देती है ॥३५-४२॥

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रसैन्यानां तेजःप्राधान्यात्पूर्वं पूर्वं श्रेयः। संनाहयितुमित्याचार्याः ॥ ४३ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ४४ ॥ प्रणिपातेन ब्राह्मणबलं परोऽभिहारयेत् ॥ ४५ ॥ प्रहरणविद्याविनीतं तु क्षत्रियबलं श्रेयः ॥ ४६ ॥ बहुलसारं वा वैश्यशूद्रबलमिति ॥ ४७ ॥ तस्मादेवंबलः परस्तस्यैतत्प्रतिबलमिति बलसमुद्दानं कुर्यात् ॥ ४८ ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सेनाओं में तेज की प्रधानता के कारण पूर्व की सेना संग्रह करने को उत्तम मानी जानी चाहिए-ऐसा पूर्वाचार्यों का मत है। कौटल्याचार्य कहते हैं, कि ऐसा नहीं हैं। ब्राह्मणबल, नमस्कार आदि से शत्रु को क्षमा कर देता है। शस्त्र चलाने में कुशल क्षत्रिय सेना ही सर्वश्रेष्ठ मानी जानी चाहिए। बहुत से वीर पुरुषों से युक्त वैश्य या शूद्रों की सेना हो-तो उसे भी उत्तम ही समझना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक सेना के तत्व को जानकर शत्रु किस प्रकार की सेना के बल से सम्पन्न हैं। ऐसा ज्ञान प्राप्त करे और फिर उसके योग्य ही सेना संग्रह करे ॥४३-४८॥

हस्तियन्त्रशकटगर्भकुन्तप्रासहाटकवेणुशल्यवद्धास्तिबलस्य प्रतिबलम् ॥ ४९ ॥ तदेव पाषाणलगुडावरणाङ्कुशकचग्रहणीप्रायं रथबलस्य प्रतिबलम् ॥ ५० ॥ तदेवाश्वानां प्रतिबलम् ॥ ५१ ॥ वर्मिणो वा हस्तिनो ऽश्वा वा वर्मिणः कवचिनो रथा आवरणिनः पत्त्यश्चतुरङ्गबलस्य प्रतिबलम् ॥ ५२ ॥

हाथी सेना के मुक़ाबिले में हाथी, यन्त्र, शकटगर्भ, कुन्त, प्रास, हाटक, वेणु, और शल्यधारी सेना ही समुचित पड़ेगी। यदि यही सेना, पत्थर, लट्ठ, कवच, अंकुश, कच

ग्रहणी (कौंचा) आदि शस्त्रों से युक्त सेना, रथ बल के प्रतिबल (मुकाबिले) में उचित है। यदि सेना अश्व सेना से लड़ने में काम आ सकती है। कवच धारी हाथी घोड़े, रथ, पैदल, सामुख्य में इसी तरह की चतुरङ्गिणी सेना चाहिए ॥४६-५२॥

एवं बलसमुद्दानं परसैन्यनिवारणम् ।
विभवेन स्वसैन्यानां कुर्यादङ्गविकल्पशः ॥ ५३ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे बलोपादानकालाः संनाहगुणाः प्रतिबलकर्म द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥ आदितस्त्रयोविंशशततो ऽध्यायः ॥ १२३ ॥

इस प्रकार सेना की तय्यारी शत्रु सेना के रोकने में समर्थ होती है। राजा अपनी सेना के प्रत्येक अङ्ग को पुष्ट करे और शत्रु की पुष्टि में विघ्न करता रहे ॥५३॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अभियास्यत्कर्म नामक अधिकरण में सेना संग्रह के काल के वर्णन का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।



तीसरा अध्याय

१४०-१४१वां प्रकरण

पश्चात्कोपचिन्ता, बाह्याभ्यन्तर प्रकृति कोप प्रतीकारः ।

इस प्रकरण में विजय यात्रा के निमित्त चढ़ाई कर देने, दुष्ट अन्य राजाओं द्वारा पीछे से राजधानी पर आक्रमण और बाह्य तथा आभ्यन्तर प्रकृतियों के कोप के प्रतीकार का वर्णन होगा।

अल्पः पश्चात्कोपो महान्पुरस्ताल्लाभ इति ॥ १ ॥ अल्पः पश्चात्कोपो गरीयान् ॥ २ ॥ अल्पं पश्चात्कोपं प्रयातस्य दूष्यामित्राटविका हि सर्वतः समेधयन्ति प्रकृतिकोपो वा ॥ ३ ॥ लब्धमपि च महान्तं पुरस्ताल्लाभम् एवंभूते भृत्यमित्रक्षय व्यया ग्रसन्ते ॥ ४ ॥ तस्मात्सहस्रैकीयः पुरस्ताल्लाभस्यायोगः शतैकीयो वा पश्चात्कोप इति न यायात् ॥ ५ ॥ सूचीमुखाह्यनर्था इति लोकप्रवादः ॥ ६ ॥

यदि पीछे के राजाओं के राजधानी पर आक्रमण करने से यदि थोड़ी हानि हो और चढ़ाई से अधिक लाभ हो-तो थोड़ा सा पीछे से हो जाने वाली हानि, अधिक लाभ की अपेक्षा भारी मानी गई है अर्थात् विजय लाभ के अधिक होने की सम्भावना होने पर भी पीछे से हो जाने वाले थोड़े नुकसान की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। पार्ष्णिग्राहादि के

कोप से उत्पन्न पीछे से होने वाले छोटे से आक्रमण को राजा के न होने पर राजा से द्वेष करने वाले व्यक्ति, शत्रु या वनचर भील आदि वहुत वढ़ा देते हैं। कभी तो अपने अमात्य आदि ही विगड़ कर उसमें सम्मिलित देखे गए हैं। यदि शत्रु पर किये गये आक्रमण से अधिक भी लाभ हो गया हो-तो भी जब पश्चात्कोप का शमन करना होगा, तब फिर वहुत से वीर, मित्र, सेना का नाश और धन का व्यय हो जावेगा। इन सब कारणों से आगे होने वाला लाभ सहस्रांश और पीछे के राजाओं का किया हुआ नुकसान शतांश समझना चाहिए, अतएव इस दशा में कभी चढ़ाई न करे। लोक में कहावत है, कि उपद्रव सूई की नोक की वरावर मार्ग वनाकर आते हैं, और फिर उसमें मुसल प्रवेश तक का मार्ग हो जाता है अर्थात् थोड़े २ उपद्रव पीछे वहुत वढ़ जाते हैं ॥ १-६॥

पश्चात्कोपे सामदानभेददण्डान्प्रयुञ्जीत् ॥ ७ ॥ पुरस्ताल्लाभे सेनापतिं कुमारं वा दण्डचारिणं कुर्वीत ॥ ८ ॥ बलवान्वा राजा पश्चात्कोपावग्रहसमर्थः पुरस्ताल्लाभमादातुं यायात् ॥ ९ ॥ अभ्यन्तरकोपशङ्कायां शङ्कितानादाय यायात् ॥ १० ॥ वाह्यकोपशङ्कायां वा पुत्रदारमेषामभ्यन्तरावग्रहं कृत्वा शून्यपालमनेकवलवर्गमनेकमुख्यं च स्थापयित्वा यायान्न यायाद्वा ॥ ११ ॥ अभ्यन्तरकोपो वाह्यकोपात्पापीयानित्युक्तं पुरस्तात् ॥ १२ ॥

यदि पीछे से उपद्रव खड़ा हो गया हो, तो राजा स्वयं उसके प्रतीकार के लिए पहुंचकर साम, दान, भेद और दण्ड का यथा योग्य प्रयोग कर तथा आक्रमण में अधिक लाभ दृष्टिगोचर हो-तो वहां सेनापति, या राजकुमार कोई उनका शासक वनाकर भेज देवे। यदि आक्रमण करने वाला राजा अपने को वहुत वलवान् समझे और पीछे से होने वाले उपद्रव को शान्त करने की शक्ति रखता हो-तो आक्रमण के लाभ को ध्यान में रख कर चढ़ाई करदे। यदि अपने ही अमात्य आदि के उपद्रव करने की आशङ्का हो-तो उनको साथ लेकर चढ़ाई करे। यदि वाहरी आटविक आदि के आक्रमण की शङ्का हो-तो इन आटविक अन्तपाल आदि वाहरी शक्तियों के वाल बच्चों को अपने अमात्यों के अधीन करके तथा अनेक प्रकार की सेना से युक्त शून्यपाल को करके या अनेक मुख्य वीरों को राजधानी पर नियुक्त करके आप चढ़ाई में जाना चाहे तो चला जावे और अधिक आशङ्का हो-तो आप विल्कुल साथ न जावे। अपने अमात्य आदि द्वारा उत्पन्न किया हुआ आभ्यन्तर कोप वाह्य आक्रमण की अपेक्षा अधिक चिन्ता जनक है ॥७-१२॥

मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजानामन्यतरकोपो ऽभ्यन्तरकोपः ॥ १३ ॥ तमात्मदोषत्यागेन परशक्त्यपराधवशेन वा साधयेत् ॥ १४ ॥ महापराधेऽपि

पुरोहिते संरोधनमपस्रावणं वा सिद्धिः ॥ १५ ॥ युवराजे संरोधनं निग्रहो वा गुणवत्यन्यस्मिन्सति पुत्रे ॥ १६ ॥ ताभ्यां मन्त्रिसेनापती व्याख्यातौ ॥ १७ ॥

मन्त्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज का खड़ा किया हुआ कोप (उपद्रव) आभ्यन्तर कोप कहाता है। यदि यह आभ्यन्तर कोप राजा के किसी दोष से उत्पन्न हुआ हो-तो राजा उस दोष का परित्याग करे और यदि उनका अपराध हो तो उन्हें दण्ड द्वारा वश में लावे। यदि पुरोहित ने बहुत भी बड़ा अपराध किया है, तो भी उसे वध दण्ड न देकर कैद करले या देश से बाहर निकाल देवे। युवराज ने यदि बहुत बड़ा अपराध किया हो-तो उसे बन्धन में डाल दिया जावे या दूसरा गुणवान पुत्र हो तो उसका वध करवा दिया जावे इसी तरह मन्त्री और सेनापति को भी दण्ड देवे ॥१३-१७॥

पुत्रं भ्रातरमन्यं वा कुल्यं राज्यग्राहिणमुत्साहेन साधयेत् ॥ १८ ॥ उत्साहाभावे गृहीतानुवर्तनसंधिकर्मभ्यामरिसंधानभयात् ॥ १९ ॥ अन्येभ्यस्तद्विधेभ्यो वा भूमिदानैर्विश्वासयेदेनम् ॥ २० ॥ तद्विशिष्टं स्वयंग्राहं दण्डं वा प्रेषयेत् ॥२१ ॥ सामन्ताटविकान्वा तैर्विगृहीतमतिसंदध्यात् ॥ २१ ॥ अवरुद्धादानं पारग्रामिकं वा योगमातिष्ठेत् ॥ २३ ॥ एतेन मन्त्रिसेनापती व्याख्यातौ ॥२४॥ मन्त्र्यादिवर्जानामन्तरमात्यानामन्यतमकोपो ऽन्तरमात्यकोपः ॥ २५ ॥ तत्रापि यथार्हमुपायान्प्रयुञ्जीत ॥ २६ ॥

अपना कोई दूसरा पुत्र, भाई या अन्य बन्धु बान्धव राज्य का लोलुप होवे-तो उस को किसी पद पर नियुक्त करके शान्त कर देवे। यदि किसी पद के देने में झंझट दिखाई देवे-तो उनकी जागीर को जारी रखकर तथा अन्य किसी प्रकार से सन्धि करके उनको वश में कर लेवे। यदि उनकी उपेक्षा की जावेगी-तो उनके शत्रु से मिल जाने का भय लगा रहेगा। जो इसी तरह के अन्य कुटुम्बी हों-उनको भी कुछ भूमि दान में देकर उनमें विश्वास उत्पन्न करदे। यदि फिर भी उनकी आशङ्का हो-तो उनको साथ करके स्वयंग्राह (लूट का माल ही वेतन लेने वाली) सेना के साथ कहीं भेज दे। या अपने पड़ोसी सामन्त और आटविक लोगों से उनको लड़ाकर अपना कार्य सिद्ध करे। जब उपद्रव कर्ता मुख्य वीर, बन्धन में कर लिया जावे-तो उसे अपने बन्धन में लेलेवे या पार ग्रामिक प्रकरण में कहे हुए उपायों द्वारा उसको वश में करे। यही उपाय मन्त्री और सेना पति के वश में करने के लिए पर्याप्त समझना चाहिए। मन्त्री पुरोहित युवराज और सेना पति के अतिरिक्त किसी अपने अमात्य द्वारा उपद्रव खड़ा कर देना-अन्तरमात्य कोप

कहाता है। उसके दबाने के लिए भी पूर्वोक्त उपायों में से यथा योग्य उपायों का अवलम्बन करे॥ १८-२६॥

राष्ट्रमुख्यान्तपालाटविकदण्डोपनतानामन्यतमकोपो बाह्यकोपः॥ २७॥ तमन्योन्येनावग्राहयेत्॥ २८॥ अतिदुर्गप्रतिस्तब्धं वा सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमेनावग्राहयेत्॥ २९॥ मित्रेणोपग्राहयेद्वा, यथा नामित्रं गच्छेत्॥ ३०॥ अमित्रात्सत्त्री भेदयेदेनम्॥ ३१॥ अयं त्वां योगपुरुषं मन्यमानो भर्तर्येव विक्रमयिष्यति॥ ३२॥ अवाप्तार्थो दण्डचारिणममित्राटविकेषु कृच्छ्रे वा प्रवासे योक्ष्यति॥ ३३॥ विपुत्रदारमन्ते वा वासयिष्यति॥ ३४॥

राष्ट्र के प्रधान व्यक्ति अन्तपाल, आटविक (जंगली) दण्डद्वारा से वश में किया हुआ राजा-इन के द्वारा खड़ा किया हुआ उपद्रव बाह्य कोप कहाता है। इनके उपद्रव के शान्त करने का यह बड़ा सरल उपाय है, कि उनको परस्पर लड़ा देवे। अपने किसी दृढ़ दुर्ग के अभिमान से अकड़े हुए अन्तपाल आदि को किसी सामन्त आटविक या उसके वंशज या अपने बन्धन में लिए हुए उनके किसी प्रेमी के द्वारा उसे पकड़वा लेवे। यदि इस तरह वश में न आ सका हो-तो उसको अपने किसी मित्र से मिला देवे-जिस से वह अपने शत्रु से न मिल सके। सत्री नामक गुप्तचर अपनी कांट छांट द्वारा इस उद्धत अधिकारी को शत्रु से न मिलने देवे। सत्री गुप्तचर इस तरह के चक्कर डाले, कि यदि तुम अमुक शत्रु से मिले-तो वह तुम को अपने राजा का योग पुरुष (गुप्तचर) समझेगा-तो फिर इसी अपने स्वामी पर चढ़ाई करने को तुम्हें भेज कर तुम्हारी परीक्षा करना चाहेगा। जब तुम्हारे विजयी होने पर उसका काम बन जावेगा, तो शासक बने हुए तुम्हें शत्रु या आटविकों से घिरे हुए किसी दुर्गम दूर देश में भेज देगा। यदि इतना करने में संकोच भी किया-तो तुम्हें पुत्र स्त्रियों से वियुक्त करके अपने पास रखेगा॥ २७-३४॥

प्रतिहतविक्रमं त्वां भर्तरि पण्यं करिष्यति॥ ३५॥ त्वया वा संधिं कृत्वा भर्तारमेव प्रसादयिष्यति॥ ३६॥ मित्रमुपकृष्टं वास्य गच्छेदिति॥३७॥ प्रतिपन्नमिष्टाभिप्रायैः पूजयेत्॥ ३८॥ अप्रतिपन्नस्य संश्रयं भेदयेदसौ ते योगपुरुषः प्रणिहित इति॥ ३९॥

यदि तुम अपने स्वामी से हार गए-तो तुम्हें इसी स्वामी के हाथ बेच देगा अथवा तुम्हें सौंप कर सन्धि द्वारा तुम्हारे स्वामी को प्रसन्न करने की चेष्टा करेगा। क्या आश्चर्य है, कि उसका कोई मित्र ही तुम्हारे भर्ता से मिल जावे। यदि इस उतार चढ़ाव से वह चक्कर में फंस जावे-तो उसके अभीष्ट को पूरा करके उसे सन्तुष्ट कर लेवे। यदि इतना चक्कर देने पर भी वह न चमके-तो वह जिस से मिलने चला है, उस के पास पहुंचकर उसे यह जतलाने की चेष्टा करे, कि यह जो पुरुष आया है: यह उस राजा का योग पुरुष (गुप्तचर) है। ॥ ३५-३६ ॥

सत्री चैनमभित्यक्तशासनैर्घातयेत् गूढपुरुषैर्वा ॥ ४० ॥ सहप्रस्थायिनो वास्य प्रवीरपुरुषान्यथाभिप्रायकरणेनावाहयेत् ॥ ४१ ॥ तेन प्रणिहितान्सत्री ब्रूयादिति सिद्धिः ॥ ४२ ॥ परस्य चैनान्कोपानुत्थापयेत् ॥ ४३ ॥ आत्मनश्च शमयेत् ॥ ४४ ॥ यः कोपं कर्तुं शमयितुं वा शक्तस्तत्रोपजापः कार्यः ॥ ४५ ॥ यः सत्यसंधः शक्तः कर्मणि फलावाप्तौ चानुग्रहीतुं विनिपाते च त्रातुं तत्र प्रतिजापः कार्यः ॥ ४६ ॥ तर्कयितव्यश्च कल्याणबुद्धिरुताहो शठ इति ॥ ४७ ॥

यदि इन उपायों से वश में न आवे, तो सत्री गुप्तचर कोई बनावटी चिट्ठी बनवाकर उसी राजा से इस उपद्रवी शासकको मरवा देवे या अपने गूढ़ पुरुषों द्वारा विष आदि से मरवावे। जो उत्तम २ वीर उसके साथ जाने को तय्यार हुए हों-उन की अभिलाषा पूरी करके उनको ही बहकाकर अपनी ही ओर मिला लेवे। यदि वे न माने-तो जिस राजा के पास ये जा रहे हैं, उसे सत्री सुझा देवे-कि ये पुरुष ही तेरे वध के निमित्त आ रहे हैं। इतना कहते ही सिद्धि होने की सम्भावना है। जहां तक हो सके राजा, शत्रु के देश में आभ्यन्तर बाह्य व्यक्तियों द्वारा उपद्रव करावे और अपने देश में होने वाले उपद्रवों को उठने न देवे। जो उपद्रव उठाने या उपद्रव के शांत करने में समर्थ है, वहां अपनी तोड़ फोड़ लगानी उचित है। जो सच्ची प्रतिज्ञा वाला हो, जो काम करने की शक्ति रखता हो। फल की प्राप्ति कराने में अनुग्रह कर सकता हो, विपत्ति के समय रक्षा करने में समर्थ हो,उसी व्यक्ति से मेल जोल बढ़ाना चाहिए। मेल जोल या तोड़ फोड़ लगाने से पूर्व उस व्यक्ति के सज्जन या दुर्जन होने पर विचार कर लेना चाहिए ॥ ४०-४७ ॥

शठो हि बाह्योऽभ्यन्तरमेवमुपजपति—॥ ४८ ॥ भर्तारं चेद्धत्वा मां प्रतिपादयिष्यति शत्रुवधो भूमिलाभश्च मे द्विविधो लाभो भविष्यति ॥ ४९ ॥

अथ वा शत्रुरेनमाहनिष्यतीति हतवन्धुपक्षस्तुल्यदोषदण्डेन वोद्विग्नश्च॥ ५० ॥ मे भूयान् कृत्यपक्षो भविष्यति ॥ ५१ ॥ तद्विधे वान्यस्मिन्नपि शङ्कितो भविष्यति ॥ ५२ ॥ अन्यमन्यं चास्य मुख्यमभिव्यक्तशासनेन घातयिष्यामीति ॥ ५३ ॥

जो दुष्ट बुद्धि बाह्य प्रकृति (बाहरी अधिकारी) है, वह भीतरी अमात्य आदि को इसलिए तोड़ता फोड़ता है। यदि यह अपने स्वामी को मार कर मुझे राजा बना देंगे, तो शत्रु वध और भूमि का लाभ-ये दो लाभ मुझे हो जावेंगे। यदि शत्रु ने मन्त्री को मार लिया-तो इस मृतक के बन्धु-बान्धव, तथा राजा से बिगड़े हुए अन्य पुरुष, उद्विग्न हो उठेंगे। इस तरह मेरा बहुत सा पक्ष तय्यार हो जावेगा। जब यह दशा हो जावेगी तो वह राजा अन्य कर्मचारियों पर भी विश्वास नहीं करेगा। इस प्रकार पृथक् २ इसके मुख्य व्यक्तियों को झूंठे लेखों द्वारा मैं मरवा डालूंगा ॥४८-५३॥

अभ्यन्तरो वा शठो बाह्यमेवमुपजपति—॥ ५४ ॥ कोशमस्य हरिष्यामि ॥ ५५ ॥ दण्डं वास्य हनिष्यामि ॥ ५६ ॥ दुष्टं वा भर्तारमनेन घातयिष्यामि ॥ ५७ ॥ प्रतिपन्नं बाह्यममित्राटविकेषु विक्रमयिष्यामि ॥ ५८ ॥ चक्रमस्य सज्यताम् ॥ ५९ ॥ वैरमस्य प्रसज्यताम् ॥ ६० ॥ ततः स्वाधीनो मे भविष्यति ॥ ६१ ॥ ततो भर्तारमेव प्रसादयिष्यामि ॥ ६२ ॥ स्वयं वा राज्यं ग्रहीष्यामि ॥ ६३ ॥ बद्ध्वा वा बाह्यभूमिं भर्तृभूमिं चोभयमवाप्स्यामि ॥ ६४ ॥ विरुद्धं वावाहयित्वा बाह्यं विश्वस्तं घातयिष्यामि ॥६५ ॥ शून्यं वास्य मूलं हरिष्यामीति ॥ ६६ ॥

मन्त्री आदि भीतरी अधिकारी, यदि दुष्ट होंगे-तो वे बाहरी अन्तपाल आदि को यह सोचकर विरुद्ध करेंगे। कि यदि मौका लगा-तो मैं इसका खजाना छीनकर इसकी सेना को मार डालूंगा। अपना दुष्ट राजा भी इसके द्वारा मारा जा सकेगा। यदि इस अन्तपाल ने मेरी बात मानली तो मैं अपने शत्रु और वनचरों से इसका युद्ध करवा दूंगा। जब इसकी सेना शत्रु के साथ युद्ध में फंस जावेगी और इसका वैर बढ़ जावेगा तब यह मेरे अधीन हो जावेगा। इस तरह में अपने असन्तुष्ट राजा को प्रसन्न करलूंगा। मेरा चक्कर बैठ गया-तो स्वयं राज्य पर अधिकार करलूंगा। इनको बचन में डालकर बाह्य अधिकारी अन्तपाल या आटविक तथा अपने स्वामी इन दोनों की भूमि का मैं ही अधिकारी बन जाऊंगा। यदि समय आया तो किसी इसके विरोधी को बुलाकर इस

विश्वासी बाह्य अधिकारी को ही मरवा डालूंगा । जब कोई नहीं रहेगा-तो इस की राजधानी पर अधिकार करलूंगा ॥५५-६६॥

कल्याणवुद्धिस्तु सहजीव्यर्थमुपजपति ॥ ६७ ॥ कल्याणवुद्धिना संदधीत ॥ ६८ ॥ शठं तथेति प्रतिगृह्यातिसंदध्यात् इति ॥ ६९ ॥

उत्तम बुद्धि पुरुष तो साथ २ उन्नति की इच्छा करके जोड़ तोड़ लगाता है। वह अपने स्वामी या उपकारी का वध-बन्धन नहीं करता । ऐसे उत्तम पुरुष के साथ सन्धि कर लेनी उचित है। और जो शठ होवे-उसके साथ प्रतिज्ञा करके भी उसे धोखा देवे ॥६७-६९॥

एवमुपलभ्यः— ॥ ७० ॥

परे परेभ्यः स्वे स्वेभ्यः स्वे परेभ्यः स्वतः परे ।
रक्ष्याः स्वेभ्यः परेभ्यश्च नित्यमात्मा विपश्चिता ॥ ७१ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे पश्चात्कोपचिन्ता, बाह्याभ्यन्तरप्रकृतिकोपप्रतीकारश्च तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदितश्चतुर्विंशतो ऽध्यायः ॥१२४॥

इस प्रकार शास्त्र व्यवस्था को समझकर विद्वान् राजा, बाह्यों को शत्रु से अपनों को अपनों से, अपनों को शत्रु से, अपने से परायों को बचाता रहे । इसी तरह अपने आपको भी अपने और परायों से नीतिमान् राजा सदा सुरक्षित रखे ॥७०-७१॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अभियास्यत्कर्म नामक अधिकरण में पीछे से उपद्रव या बाहरी भीतरी लोगों के उपद्रव के शान्त करने के उपाय वर्णन का तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



चौथा अध्याय

१४२वां प्रकरण

क्षय व्यय तथा लाभका विचार।

इस प्रकरण में वाहन सेना का नाश, धन धान्य की हानि, और भूमि की प्राप्ति का वर्णन किया जावेगा।

युग्यपुरुषापचयः क्षयः ॥ १ ॥ हिरण्यधान्यापचयो व्ययः ॥ २ ॥ ताभ्यां बहुगुणविशिष्टे लाभे यायात् ॥ ३ ॥ आदेयः प्रत्यादेयः प्रसादकः प्रकोपको ह्रस्वकालस्तनुक्षयो ऽल्पव्ययो महान्वृद्ध्युदयः कल्यो धर्म्यः पुरोगश्चेति लाभसंपत् ॥ ४ ॥

ब्राह्मन और वीर पुरुषों के विनाश को क्षय और हिरण्य तथा धान्य की हानि को व्यय कहते हैं। यदि जनक्षय और धन व्यय होने पर भी बहुत अधिक लाभ की आशा हो-तो चढ़ाई कर दे। आदेय, प्रत्यादेय, प्रसादक, प्रकोपद, ह्रस्वकाल, तनुक्षय, अल्पव्यय, महान्, वृद्ध्युदय, कल्य, धर्म्य पुरोग-ये बारह लाभ के भेद माने गए हैं ॥१-४॥

सुप्राप्यानुपाल्यः परेषामप्रत्यादेय इत्यादेयः ॥ ५ ॥ विपर्यये: प्रत्यादेयः ॥ ६ ॥ तमाददानस्तत्रस्थो वा विनाशं प्राप्नोति ॥ ७ ॥ यदि वा पश्येत्— ॥ ८ ॥ प्रत्यादेयमादाय कोशदण्डनिचयरक्षानिधानान्यवस्रावयिष्यामि ॥ ६ ॥ खनिद्रव्यहस्तिवनसेतुबन्धवणिक्पथानुद्धृतसारान्करिष्यामि ॥ १० ॥ प्रकृतीरस्य कर्शयिष्यामि ॥ ११ ॥ आवाहयिष्याम्यायोगेनाराधयिष्यामि वा ॥ १२ ॥ ताः परः प्रयोगेण कोपयिष्यति ॥ १३ ॥ प्रतिपक्षे वास्य पण्यमेनं करिष्यामि ॥१४॥ मित्रमवरुद्धं वास्य प्रतिपादयिष्यामि ॥ १५ ॥ मित्रस्य स्वस्य वा देशस्य पीडामत्रस्थस्तस्करेभ्यः परेभ्यश्च प्रतिकरिष्यामि ॥ १६ ॥ मित्रमाश्रयं वास्य वैगुण्यं ग्राहयिष्यामि ॥ १७ ॥ तदस्यामित्रं विरक्तं तत्कुलीनं प्रतिपत्स्यपे, सत्कृत्य वास्मै भूमिं दास्यामीति संहितसमुत्थितं मित्रं मे चिराय भविष्यतीति प्रत्यादेयमपि लाभमाददीत ॥ १८ ॥ इत्यादेयप्रत्यादेयौ व्याख्यातौ ॥ १६ ॥

जो सरलता से प्राप्त हो जावे, और सरलता से ही जिसकी रक्षा की जा सके एवं शत्रु जिसे लौटा कर ले सके, उसे आदेय लाभ कहते हैं। जिसकी प्राप्ति और रक्षा में अत्यन्त कठिनाई आ जावे और शत्रु, जिसे लौटा कर ले जा सके-उसे प्रत्यादेय लाभ कहते हैं। इस प्रकार के लाभ को प्राप्त करके लौट आने वाला या वहीं रहकर प्रबन्ध में लग जाने वाला राजा कभी २ विनाश को भी प्राप्त हो जाता है। यदि विजयाभिलाषी राजा यह देखे, कि मैं प्रत्यादेय लाभ प्राप्त करके भी शत्रु के कोश, सेना, धान्य आदि के सञ्चय, रक्षा के स्थान दुर्ग आदि को नष्ट कर दूंगा तथा खान, द्रव्यवन, हस्तिवन, सेतुबन्ध, वणिक्पथों को छिन्न भिन्न कर दूंगा, एवं शत्रुओं के अमात्य आदि प्रकृतियों को दुर्बल कर दूंगा। अपनी प्रक्रिया से उन सारे अमात्य आदि को वहीं बुला लूंगा या उस भूमि के द्वारा प्रसन्न कर लूंगा। उन अपनी प्रकृति अमात्य आदि को शत्रु इस कारण से कुपित कर देगा। इस भूमि के लाभ को मैं उसके शत्रु के हाथ बेच डालूंगा। यदि मेरा दाव लगा-तो शत्रु के मित्र को अवरुद्ध (बन्धन में) कर लूंगा वहां स्थित होकर मैं अपने या अपने मित्र के देश में उपद्रव करने वाले चोर या शत्रु

के मनुष्यों से अपने देश की पीड़ा का प्रतिविधान करदूंगा। इस के मित्र या आश्रय में रहने वाले राजाओं को इस से विरुद्ध कर दूंगा। इन सब बातों से विरक्त हुआ शत्रु का मित्र, शत्रु के किसी कुलीन को राज्य पर बैठाने को प्रसन्न हो जावेगा। मैं इस छीनी हुइ भूमि को सत्कार पूर्वक शत्रु को ही सौंप दूंगा, इस से सन्धि के नियमों में बंध कर वह मेरा सदा के लिए मित्र बन जावेगा-इस प्रकार के लाभ देख कर राजा, प्रत्यादेय भूमि लाभ को भी ग्रहण करले। यहांतक आदेय प्रत्यादेय की व्यक्ति व्याख्या हुई ॥५-१६॥

अधार्मिकाद्धार्मिकस्य लाभो लभ्यमानः स्वेषां परेषां च प्रसादको भवति ॥ २० ॥ विपरीतः प्रकोपक इति ॥ २१ ॥ मन्त्रिणामुपदेशाल्लाभो ऽलभ्यमानः कोपको भवति ॥ २२ ॥ अयमस्माभिः त्वयव्ययौ ग्राहित इति ॥ २३ ॥ दूष्यमन्त्रिणामनादराल्लाभो लभ्यमानः कोपको भवति, सिद्धार्थो ऽयमस्मान्विनाशयिष्यतीति ॥ २४ ॥ विपरीतः प्रसादकः ॥ २५ ॥ इति प्रसादककोपकौ व्याख्यातौ ॥ २६ ॥

अधार्मिक राजा से धार्मिक राजा के पास भूमि आदि के आजाने को प्रसादक लाभ कहते हैं, क्योंकि इससे अपने और पराए सब को प्रसन्नता होती है। यदि धामिक को लाभ हो-तो इस से अपने पराये सब अप्रसन्न हो जाते हैं, इस लिए इसे प्रकोपक कहते हैं। मन्त्रियों की बताथी रीति के अनुसार भी जब लाभ न हो-तो यह भी राजा के कोप का कारण होता है, राजा समझता है-कि मन्त्री की मूर्खता से ही हमारे द्वारा इस व्यक्ति का यह जन-धन का नाश हुआ है। इसी तरह अन्तरात्मा से बिगड़े हुए मन्त्रियों द्वारा अनादर के साथ कोई लाभ हो जावे-तो वह भी कोप का कारण बन जाता है। यदि मन्त्री की इसी तरह सिद्धि होती चली गई-तो वह हमारा नाश करदेगा, इसके विपरीत प्रसादक होता है अर्थात् प्रिय मन्त्रियों के द्वारा हुआ लाभ प्रति जनक होता है। यहां तक प्रसादक और प्रकोपक दोनों लाभों का वर्णन हुआ ॥ २०-२६ ॥

गमनमात्रसाध्यत्वाद्ध्रस्वकालः ॥ २७ ॥ मन्त्रसाध्यत्वात्तनुत्वयः ॥ २८ ॥ भक्तमात्रव्ययत्वादल्पव्ययः ॥ २९ ॥ तदात्ववैपुल्यान्महान् ॥ ३० ॥ अर्थानुबन्धकत्वाद्वृद्ध्युदयः ॥ ३१ ॥ निराबाधकत्वात्कल्यः ॥ ३२ ॥ प्रशस्तोपादानाद्धर्म्यः ॥ ३३ ॥ सामवायिकानामनिर्बन्धगामित्वात्पुरोग इति ॥ ३४ ॥

चढ़ाई करते ही जो लाभ हो जावे, उसे ह्रस्व काल मन्त्रणा के द्वारा तोड़ फोड़ करने से ही जो लाभ हो-उसे तनुदय, भत्ते (भोजन) आदि थोड़े से व्यय से ही जो

अधिक लाभ हो जावे-उसे महान्, आगे भी लाभ का अनुबन्ध जिसमें हो-उसे वृद्धमुदय, जिस में किसी तरह की बाधा न हो, उसे कल्य, जो प्रकाश युद्धादि धर्मानुसार प्राप्त किया जावे, उसे धर्म्य और मिलकर आक्रमण करने पर अपने २ लाभ को पुरोग लाभ कहते हैं ॥ २७-३४ ॥

तुल्ये लाभे देशकालौ शक्त्युपायौ प्रियाप्रियौ जवाजवौ सामीप्यविप्रकर्षौ तदात्वानुबन्धौ सारत्वसातत्ये बाहुल्यबाहुगुण्ये च विमृश्य बहुगुणयुक्तं लाभमाददीत ॥ ३५ ॥

जब कोई लाभ समान रीति से प्राप्त हो रहे हों-तो देशकाल, मन्त्र आदि शक्ति, समादि उपायों, का विचार करना चाहिए। किस देश और काल में कौनसा लाभ हितकर है। किस शक्ति से लाभ उठाना चाहिए। इस समय किस उपाय के प्रयोग की आवश्यकता है। सुवर्ण आदि प्रिय लाभ तथा अन्य लकड़ी आदि का अप्रिय लाभ भी सोचना है, कि कौनसा लाभ करना चाहिए कोई लाभ शीघ्र हो जाता है और किसी में देर लगती है। कोई अपने देश के समीप होता है और कोई बहुत दूरी पर मिलता है। कोई तत्काल फलदायी है और कोई भविष्य में फल देगा। कोई ठोस और कोई थोथा होता है। कोई लाभ अधिक और थोड़े होने पर भी अधिक महत्व रखता है। इस प्रकार लाभों पर दृष्टि डालकर जो अनेक गुणों से युक्त लाभ हो-उसे ही स्वीकार करे ॥३५॥

लाभविघ्नाः-कामः कोपः साध्वसं कारुण्यं ह्रीरनार्यभावो मानः सानुक्रोशता परलोकापेक्षा दाम्भिकत्वमत्याशित्वं दैन्यमसूया हस्तगतावमानो दौरात्मिकमविश्वासो भयमनिकारः शीतोष्णवर्षाणामाक्षम्यं मङ्गलतिथिनक्षत्रेष्टित्वमिति ॥ ३६ ॥

स्त्री सहवास, क्रोध, घबराहट, दया, लज्जा, अनार्यभाव (विश्वास घात आदि) अहंकार, ढीलापन, परलोक का ध्यान, अपने पर विश्वास करने वालों को ठगना, अन्याय से अधिक निगल जाना, दीनता, अमात्य आदि में वृथा दोषारोपण, प्राप्त हुए पुरुषों का अपमान, दुरात्मापन (सबको पीड़ा पहुंचाने का भाव) किसी का विश्वास न करना भय, अपमान के योग्य पुरुष का भी अपमान न करना, शीत, ग्रीष्म और वर्षा के सहन की शक्ति न होना, कार्यों के आरम्भ में माङ्गलिक तिथि नक्षत्रों की चर्चा करना-ये सब बातें लाभ में विघ्न उत्पन्न करने वाली समझनी चाहिए ॥३६॥

नक्षत्रमतिपृच्छन्तं बालमर्थोऽतिवर्तते ।
अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः ॥ ३७ ॥

नाधनाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्नरा यत्नशतैरपि ।
अर्थैरर्थाः प्रबध्यन्ते गजाः प्रतिगजैरिव ॥ ३८ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे क्षयव्ययलाभविपरिमर्शः चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितः पञ्चविंशशतः ॥ १२५ ॥

जो मूर्ख राजा कार्य साधन के समय नक्षत्रों के शुभाशुभ का विचार करता है, उसके स्वार्थ नष्ट हो जाते हैं। धन के कमाने का नक्षत्र (साधन तो धन ही है-ये विचारे नक्षत्र क्या कर सकते हैं। निर्धन लोग धन नहीं प्राप्त कर सकते हैं, चाहे वे सैंकड़ों प्रयत्न क्यों न करें। धन तो हाथी से हाथी की भांति धन से ही बंधे हुए हैं अर्थात् हाथी निकालने में जैसे हाथी साधन है, वैसे धन की प्राप्ति में तो धन ही साधन है ॥३७-३८॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अभियास्यत्कर्म नामक अधिकरण में क्षय व्यय और लाभ के विचार का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।



पांचवां अध्याय

१४३वां प्रकरण

वाह्य तथा अभ्यन्तर आपत्तियां।

इस प्रकरण में वाहरी और भीतरी आपत्तियों के विषय में विचार होगा।

संध्यादीनामयथोद्देशावस्थापनमपनयः ॥ १ ॥ तस्मादापदः संभवन्ति ॥ २ ॥ वाह्योत्पत्तिरभ्यन्तरप्रतिजापा, अभ्यन्तरोत्पत्तिर्वाह्यप्रतिजापा, वाह्योत्पत्तिर्वाह्यप्रतिजापा, अभ्यन्तरोत्पत्तिरभ्यन्तरप्रतीजापा, इत्यापदः ॥ ३ ॥

सन्धि आदि छःओं गुणों का ठीक २ प्रयोग नहीं करने को अपनय कहते हैं। इसी कारण से तो आपत्तियां खड़ी होती हैं । जिस आपत्ति में वाहर के अन्पाल, राष्ट्र मुख्य आदि व्यक्ति, भेद डालते हैं, और आभ्यन्तर मन्त्री पुरोहित आदि उनसे मिल जाते हैं, इस आपत्ति को वाह्योत्पत्ति रभ्यन्तर प्रतिजाय कहते हैं । जिसमें अभ्यन्तर मन्त्री आदि तोड़ फोड़ लगाते हैं और वाहर के अन्तपाल आदि भड़क उठते हैं, इसे अभ्यन्तरोत्पत्तिर्वाह्य प्रतिजाय आपत्ति कहते हैं । जिसमें वाहर के ही अन्तपाल आदि भड़काने वाले और वाहर के ही राष्ट्र मुख्य आदि भड़कने वाले हो-उसे वाह्योत्पत्तिर्वाह्यप्रतिजाय आपत्ति कहते हैं तथा भीतरी मन्त्री आदि भड़काने वाले और पुरोहित आदि भड़काने वालेहों-उसे

अभ्यन्तरोत्पत्ति रभ्यन्तर प्रतिजाय आपत्ति कहते हैं-इस प्रकार चार तरह की वाह्य और अभ्यन्तर आपत्तियां होती हैं ॥१-३॥

यत्र वाह्या अभ्यन्तरानुपजपन्त्यभ्यन्तरा वा वाह्यांस्तत्रोभययोगे प्रतिजपतः सिद्धिर्विशेषवती ॥ ४ ॥ सुव्याजा हि प्रतिजपितारो भवन्ति नोपजपितारः ॥५॥ तेषु प्रशान्तेषु नान्य श्शक्नुयुरुपजपितुमुपजपितारः ॥ ६ ॥ कृच्छ्रोपजापा हि वाह्यानामभ्यन्तरास्तेषामितरे वा, महतश्च प्रयत्नस्य वधः परेषामर्थानुवन्धश्चात्मनोऽन्य इति ॥ ७ ॥

जव वाहर के लोग फूट डाल रहे हों और भीतर के भड़कते हो-तथा भीतर के भड़का रहे हों और वाहर के अन्तपाल आदि उपद्रव करने पर उतारू होंतो इस दशा में भड़काने वाले वाहरी भीतरी व्यक्तियों को छोड़कर भड़कने वाले व्यक्तियों की शान्ति की जावे-तो शीघ्र सिद्धि हो सकेगी, क्योंकि तोड़े-फोड़े जाने वाले व्यक्तियों का स्वार्थ ऊपरी होता है, इससे वे शान्त हो जाते हैं परन्तु फूट का मूल कारण उपजायक शान्त नहीं हो सकते हैं। यदि ये लोग शान्त हो गए-तो फिर दूसरे लोगों के भड़काने की भड़काने वाले चेष्टा ही नहीं करेंगे वाह्य अन्तपाल आदि से मन्त्री आदि भीतरी पुरुषों को वहका देना कठिन है और इसो तरह मन्त्री आदि का वाहरी अन्तपाल आदि का भड़काना कठिन है। यदि उन्होंने प्रयत्न भी किया-तो महान् प्रयत्न करना पड़ेगा और वह थोड़े ही प्रयत्न करना पड़ेगा और वह थोड़े ही प्रयत्न से नष्ट किया जा सकेगा। इस तरह तो अपने विरोधी की ही मनोरथ सिद्धि होगी और अपनी तो हानि ही होना सम्भव है ॥४-७॥

अभ्यन्तरेषु प्रतिजपत्सु सामदाने प्रयुञ्जीत ॥ ८ ॥ स्थानमानकर्म सान्त्वम् ॥ ९ ॥ अनुग्रहपरिहारौ कर्मस्वायोगो वा दानम् ॥ १० ॥ वाह्येषु प्रतिजपत्सु भेददण्डौ प्रयुञ्जीत ॥ ११ ॥ सत्त्रिणो मित्रव्यञ्जना वा वाह्यानां चारमेषां ब्रूयुः ॥ १२ ॥ अयं वो राजा दूष्यव्यञ्जनैरतिसंधातुकामो बुध्यध्वमिति ॥ १३ ॥ दूष्येषु दूष्यव्यञ्जनाः प्रणिहिता दूष्यान्वाह्यैर्भेदयेयुर्वाह्यान्वा दूष्यैः ॥ १४ ॥ दूष्याननुप्रविष्टा वा तीक्ष्णः शस्त्ररसाभ्यां हन्युः ॥ १५ ॥ आहूय वा वाह्यान्घातयेयुरिति ॥ १६ ॥

यदि अभ्यन्तर मन्त्री पुरोहित, राजकुमार या सेनापति-को कोई वाहरी व्यक्ति तोड़ फोड़ कर भड़काना चाहता है, तो राजा अपने अभ्यन्तर व्यक्ति को सामदान से (समझाकर या कुछ देकर) वश में कर लेवे। किसी प्रतिष्ठित स्थान पर नियुक्त करना और छत्र

चामरादि से आदर करना साम उपाय समझना चाहिए। धन का दान या लेने योग्य धन का अग्रहण एवं उत्तम कामों पर लगाकर प्राप्ति कराना, दान उपाय माना जाता है। यदि अभ्यन्तर लोग बाहरी अन्तपाल आदि को उपद्रव के लिए उकसा रहे हों-तो बाहरी लोगों को भेद या दण्ड का प्रयोग करके शान्त करे अथवा सन्त्री आदि गुप्तचर, मित्र बने हुए उन अन्तपाल आदि पर राजा के अभिप्राय को इस प्रकार प्रकट करें-कि यह तुम्हारा राजा, अपने मन्त्री आदि को मिथ्या दुष्ट भाव वाला बनाकर तुम्हारी परीक्षा करना चाहता है या तुम लोगों के अपराध से तुमको हटाकर अपना स्वार्थ बना चाहता है-तुम इन मन्त्री आदि के फेर में न पड़ो। राजा से बिगड़े हुए अभ्यन्तर लोगों के पास में राजा से बिगड़े बने हुए गुप्तचर दुष्ट अभ्यन्तरों को बाहर के अन्तपाल आदि से और अन्तपाल आदि को अभ्यन्तर मन्त्री आदि से तोड़-फोड़ देवें। इस तरह काम न बने तो विष आदि के प्रयोग से मार देने वाले तीक्ष्ण पुरुष, दुष्ट अभ्यन्तर पुरुषों के पास पहुंच का उनको शस्त्र या विष से मार देवे तथा बाहर के लोगों को बुलाकर मरवा देवे॥ ८-१६॥

यत्र बाह्या बाह्यानुपजपन्त्यभ्यन्तरानभ्यन्तरा वा, तत्रैकान्तयोगमुपजपितुः सिद्धिर्विशेषवती ॥ १७ ॥ दोषशुद्धौ हि दूष्या न विद्यन्ते ॥ १८ ॥ दूष्यशुद्धौ हि दोषः पुनरन्यान्दूषयति ॥ १९ ॥ तस्माद्बाह्येषूपजपत्सु भेददण्डौ प्रयुञ्जीत ॥ २० ॥ सत्त्रिणो मित्रव्यञ्जना वा ब्रूयुः ॥ २१ ॥ अयं वो राजा स्वयमादातुकामो विगृहीताः स्थानेन राज्ञा बुध्यध्वमिति ॥ २२ ॥ प्रतिजपितुर्वा ततो दूतदण्डाननुप्रविष्टास्तीक्ष्णाः शस्त्ररसादिभिरेषां छिद्रेषु प्रहरेयुः ॥ २३ ॥ ततः सत्त्रिणः प्रतिजपितारमभिशंसेयुः ॥ २४ ॥

यदि बाहर के लोग बाहरकों को तोड़-फोड़ कर राजा के विरुद्ध भड़का रहे हों और भीतरी मन्त्री आदि भीतरी लोगों को भड़काते हों-तो उनमें भड़काने वाले को वश में करने से शीघ्र सिद्धि मिल सकती है। यदि भड़काने वाले ही न होंगे-तो भड़कने वाले कहां से आवेंगे। यदि भड़कने वाले दुष्ट व्यक्तियों का प्रतीकार किया-तो भड़काने वालों के रहने से दोष ज्यों का त्यों बना रहेगा और वह फिर अनेक दूषित पुरुषों को बनादेगा। इन सब बातों पर विचार करके बाहर के लोगों पर तो भेद (फूट) और दण्ड (वध या बन्धन) का ही प्रयोग करे। सन्त्री नामक गुप्तचर मित्र बने हुए उनसे कहें, कि यह तुम्हारा राजा अब तुम्हारे अधिकार को छीनना चाहता है। इस से तुमने युद्ध किया कि इसने तुम्हारा राज्य छीना बस यही समझलो। इस प्रकार से सिद्धि न हो-तो जब ये

बाहर के उपजायक भड़काने के लिए बाहरी किसी व्यक्ति के पास जारहे हों-तो दूत का रूप बनाकर उनके समूह में मिलकर तीक्ष्ण पुरुष, शस्त्र या विष आदि के प्रयोग से समय पर इन पर प्रहार कर देवें। फिर सत्री लोग, इस हत्या को प्रति जपिता के ऊपर डालने का प्रयत्न करें॥ १८-२४॥

अभ्यन्तरानभ्यन्तरेषूपजपत्सु यथार्हमुपायं प्रयुञ्जीत ॥ २५ ॥ तुष्टलिङ्गमतुष्टं विपरीतं वा साम प्रयुञ्जीत ॥ २६ ॥ शौचसामर्थ्यापदेशेन व्यसनाभ्युदयावेक्षणेन वा प्रतिपूजनमिति दानम् ॥ २७ ॥ मित्रव्यञ्जनो वा ब्रूयादेतान् ॥२८॥ चित्तज्ञानार्थमुपधास्यति वो राजा ॥ २९ ॥ तदस्याख्यातव्यमिति ॥ ३० ॥ परस्पराद्वा भेदयेदेनान् ॥ ३१ ॥ असौ च वो राजन्येवमुपजपतीति भेदः ॥ ३२ ॥ दाण्डकर्मिकवच्च दण्डः ॥ ३३ ॥ एतासां चतसृणामापदामभ्यन्तरामेव पूर्वं साधयेत् ॥ ३४ ॥ अहिभयादभ्यन्तरकोपो बाह्यकोपात्पापीयानित्युक्त पुरस्तात् ॥ ३५ ॥

यदि भीतर के मन्त्री पुरोहित आदि भीतर के इन्हीं लोगों को भड़कावे तो समयानुकूल इनपर सामादि उपायों का प्रयोग करें। ऊपर से प्रसन्नता भीतर से अप्रसन्नता या सचाई के साथ साम उपाय का प्रयोग करना ही श्रेयस्कर है। पवित्रता या सामर्थ्य के बहाने बन्धु वियोग जैसे व्यसन और पुत्रोत्सव जैसे अभ्युदय की अपेक्षा से जो वस्त्र आभूषण आदि का प्रदान किया जाता है, इसे दान कहते हैं। इसका प्रयोग भी उत्तम ही है। इसके अतिरिक्त सत्री गुप्तचर मित्र बनकर इन से कहे, कि राजा तुम्हारे अभिप्राय जानने को यह सारे षड्यन्त्र कर रहा है। तुमको इस समय अपने हृदय की परीक्षा देनी है। इसके सिवा गुप्तचर इन अभ्यन्तर पुरुषों में परस्पर फूट भी डलवा देवे। यह अमुक व्यक्ति राजा के समीप तुम्हारे बड़े दोष कहा करता है। इत्यादि ढंग करने को भेद उपाय कहते हैं। दाण्डकर्मिक प्रकरण में कहे हुए उपायों को दण्ड कहा जाता है। इन चारों आपत्तियों में प्रथम भीतरी आपत्ति का प्रतीकार करे। बाह्य कोप की अपेक्षा अभ्यन्तर कोप सर्प के भीतर घुसे हुए कोप के समान भयंकर होता है यह बात पहले ही समझादी गई है ॥२५-३५॥

पूर्वं पूर्वं विजानीयाल्लघ्वीमापदमापदाम्।
उत्थितां बलवद्भयो वा गुर्वीं लघ्वीं विपर्यये ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे बाह्य भ्यन्तराश्चापदः पञ्चमोऽध्यायः
॥ ५ ॥ आदितः षड्विंशशतः ॥ १२६ ॥

इन चारों आपत्तियों में पूर्व की आपत्ति को उत्तर आपत्ति की अपेक्षा हलकी समझनी चाहिए अथवा जो किसी बलवान् से उठाई गई हो वह हलकी होने पर भी भारी है और जो निर्बल व्यक्ति द्वारा उठाई गई है वह भारी होने पर हलकी ही समझनः चाहिए ॥३६॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अभियास्यत्कर्म नामक अधिकरण में बाहरी भीतरी आपत्तियों के वर्णन का पाचवां अध्याय समाप्त हुआ।



छठा अध्याय

१४४वां प्रकरण

दूष्य शत्रु संयुक्ताश्चापदः

इस प्रकरण में दुष्ट प्रजाजन आदि और शत्रु से उत्पन्न होने वाली आपत्ति और उनके प्रतीकार का वर्णन किया जावेगा।

दूष्येभ्यः शत्रुभ्यश्च द्विविधाः शुद्धाः ॥ १ ॥ दूष्यशुद्धायां पौरेषु जानपदेषु वा दण्डवर्जानुपायान्प्रयुञ्जीत ॥ २ ॥ दण्डो हि महाजने क्षेप्तुमशक्यः ॥ ३ ॥ क्षिप्तो वा तं चार्थं न कुर्यात् ॥ ४ ॥ अन्यं चानर्थमुत्पादयेत् ॥ ५ ॥ मुख्येषु त्वेषां दाण्डकर्मिकवच्चेष्टेतेति ॥ ६ ॥

आपत्ति दुष्ट [बिगड़े हुए] पुरुष और शत्र से उत्पन्न होती हैं। जो दूष्य पुरुषों से उठे उन्हें दूष्य शुद्ध और जो शत्र द्वारा उठे उसे शत्रु शुद्ध आपत्ति कहा जाता है। इस तरह आपत्ति दो प्रकार की हुई। जब अपने ही प्रजाजन द्वारा आपत्ति उठाई गई हो-तो उसमें नगर निवासी या जनपद [देश] निवासी पुरुषों पर दंड का प्रयोग न करे-तो उन्हें सामदान भेद आदि किसी एक उपाय से वश में करलेना चाहिये, क्योंकि बड़े आदमी या जन समूह पर दण्ड का प्रयोग करना बहुत ही कठिन है। यदि इनपर दण्ड का प्रयोग कर भी दिया-तो स्वार्थ की सिद्धि नहीं हो सकती है, किन्तु अन्य अनर्थ [बुराइयों] के उठने की सम्भावना है। यदि किसी प्रकार भी शान्ति स्थापना न हो सके-तो इन में जो मुख्य हों-उन में दाण्ड कर्मिक प्रकरण में कहे हुए गुपचुप वध आदि दण्ड का प्रयोग किया जाता है ॥ १-६ ॥

शत्रुशुद्धायां यतः शत्रुः प्रधानः कार्यो वा, ततः सामादिभिः सिद्धिं लिप्सेत॥७॥ स्वामिः यायत्ता प्रधानसिद्धिः ॥८॥ मन्त्रिण्यायत्तमयत्तसिद्धिः ॥९॥ उभयायत्ता प्रधानायत्तसिद्धिः ॥ १० ॥ दूष्यादूष्याणामामिश्रितत्वादामिश्रा ॥ ११ ॥ आमिश्रायामदूष्यतः सिद्धिः ॥ १२ ॥ आलम्बनाभावे ह्यालम्बिता न विद्यते ॥ १३ ॥

यदि शत्रु द्वारा आपत्ति खड़ी की गई हो तो उसमें शत्रु प्रधान मन्त्री या अमात्य आदि कोई एक प्रधान होगा। जिसे प्रधान देखे-उसे ही सामादि उपायों से वश में करे। प्रधान मन्त्री को वश में करना हो तो उसके स्वामी राजा को समझावे और अमात्यका रोकना हो-तो मन्त्री को शान्त करे-इनके अधीन ही इनका उपाय है। यदि मन्त्री और अमात्य दोनों झगड़ा खड़ा कर रहे हों-तो समझाने पर स्वामी और मन्त्री इस झगड़े को शान्त कर सकते हैं। दूष्य मन्त्री आदि और अदूष्य राजा (शत्रु) इन दोनों ने यदि मिल कर आपत्ति खड़ी की है, तो वह आमिश्रा आपत्ति कहाती है। आमिश्रा आपत्ति में अदूष्य अर्थात् राजा के समझाने पर सिद्धि होगी। जब मन्त्री आदि का आश्रय राजा ही शांत हो जावेगा तो मन्त्री आदि तो स्वयं शान्त हो जायेगा क्योंकि आधार के विना आधेय नहीं रहा करता ॥ ७-१३ ॥

मित्रामित्राणामेकीभावात्परामिश्रा, परामिश्रायां मित्रतः सिद्धिः ॥ १४ सुकरो हि मित्रेण सन्धिर्नामित्रेणेति ॥ १५ ॥ मित्रं चेन्न संधिमिच्छेदभीक्ष्णमु जपेत् ॥ १६ ॥ ततः सत्त्रिभिरमित्राद्भेदयित्वा मित्रं लभेत ॥ १७ ॥ मित्रामित्रसंघस्य वा योऽन्तःस्थायी तं लभेत ॥ १८ ॥ अन्तःस्थायिनि लब्धे मध्यस्थायिनो भिद्यन्ते ॥१९॥ मध्यस्थायिनं वा लभेत ॥ २० ॥ मध्यस्थायिनि वा लब्धे नान्तःस्थायिनः संहन्यन्ते ॥ २१ ॥ यथा चैषामाश्रयभेदस्तानुपायान्प्रयुञ्जीत ॥ २२ ॥

मित्र औ शत्रु दोनों ने मिलकर यदि कोई आपत्ति खड़ी की हो-तो वह परमिश्रा आपत्ति में मित्र के शान्त करने पर आपत्ति शान्त होती है। मित्र के साथ सन्धि सीधी तरह हो जाती है, शत्र से सन्धि होना कठिन होता है। यदि मित्र भी संधि के लिए तय्यार न हो रहा हो-तो उसे बार २ शत्र से तोड़ने की चेष्टा की चेष्टा करे अर्थात् उनमें फूट डलवावे। इस तरह सत्री आदि गुप्तचरों द्वारा मित्र का शत्रु से भेद करवा अपने अनुकूल बनावे। जो मित्र और शत्र के समीप वर्ती सामन्त (राजा)

हो उसे अपने वश में करे। जब अन्त स्वामी वश में हो जावेगा-तो मध्य स्वामी तो आप ही फूट निकलेंगे। अन्तःस्थायी वश में न आवे, तो मध्य स्थायी को ही वश में करे। यदि मध्य स्थायी अपने से मिल गया हो अन्तः स्थायी राजा भी परस्पर नहीं संगठित हो सकते हैं। जिस प्रकार इन सब के आश्रयभूत राजा का इन से भेद हो जावे-उन ही उपायों का बड़ी योग्यता से प्रयोग करना चाहिए॥ १४-२२ ॥

धार्मिकं जातिकुलश्रुतवृत्तस्तवेन संबन्धेन पूर्वेषां त्रैकाल्योपकारानपकाराभ्यां वा सान्त्वयेत् ॥ २३ ॥ निवृत्तोत्साहं विग्रहश्रान्तं प्रतिहतोपायं क्षयव्ययाभ्यां प्रवासनेनचोपतप्तं शौचेनान्यं लिप्समानमन्यस्माद्वा शङ्कमानं मैत्री प्रधानं वा कल्याणबुद्धिं साम्ना साधयेत् ॥ २४ ॥ लुब्धं क्षीणं वा तपस्विमुख्यावस्थापनापूर्वं दानेन साधयेत् ॥ २५ ॥ तत्पञ्चविधम्— ॥ २६ ॥ देयविसर्गो गृहीतानुवर्तनमात्तप्रतिदानं स्वद्रव्यदानमपूर्वं परस्वेषु स्वयंग्राहदानं चेति दानकर्म ॥ २७ ॥

जो राजा धार्मिक हो-उसकी जाति, कुल, विद्या की स्तुति करके उसे वश में करे। तथा अपने और उनके पूर्वजों के सम्बन्ध उपकार तथा शत्रु द्वारा किये हुए अपकारों का भी वर्णन करके उसे समझावे। उत्साहहीन, लड़ाई से थके हुए, सामादि उपायों में असफल, जनक्षय, धन व्यय और लम्बे प्रवास से तंग हुए, पवित्रता के साथ किसी अन्य से मित्रता करने के अभिलाषी, किसी अपने शत्रु से भयभीत, मित्रता में आनन्द मानने वाले उत्तम बुद्धि राजा के साथ साम उपाय का प्रयोग करे। लोभी लालची, निर्बल, विरोधी राजा को तपस्वी और मुख्य पुरुषों के सन्मुख दान देकर अपनी ओर मिला लेवे। यह दान पांच प्रकार को होता है। देयविसर्ग दान उसे कहते हैं, जिसमें देने योग्य भूमि को वापिस दे दिया जावे। गृहीतानुवर्तन वह दान है, कि जो भूमि प्रथम लेली हो, परन्तु अब उनको उसके भोग की फिर अनुमति दी जा रही हो। ली हुई भूमि का फिर बिल्कुल प्रदान कर देना-आत्त प्रदान कहते हैं। पूर्व में नहीं दिए हुए अपने द्रव्य का प्रदान-स्वद्रव्यदान कहाता है, शत्रु के लूट में मिला हुआ धन उसको दे देना-स्वयंग्राहदान कहाता है।२३-२७॥

परस्परद्वेषवैरभूमिहरणशङ्कितमतोऽन्यतमेन भेदयेत् ॥ २८ ॥ भीरुं वा प्रतिघातेन ॥ २९ ॥ कृतसंधिरेष त्वयि कर्म करिष्यति मित्रमस्य निसृष्टम् ॥३०॥ संधौ वा नाभ्यन्तर इति ॥ ३१ ॥

परस्पर के द्वेष, वैर, भूमि हरण की शङ्का उत्पन्न कराके एक दूसरा को विरोधी बना देवे-यही भेद है। जो डरपोक हो-उसे कुछ मारने पीटने का भय दिखाकर तोड़ लेवे। किसीसे यों कहे कि यह यद्यपि तुमसे सन्धि कर चुका-परन्तु तुम पर चढ़ाई करेगा-क्योंकि तुम्हारे शत्रु ने इसके पास अपना मित्र सन्धि के लिए भेजा दिया है। अपने परस्पर के सन्धि करने में तुम्हें पूछा तक नहीं है। ये सब बातें भेद डालने की मानी जाती है ॥२८-३१॥

यस्य वा स्वदेशादन्यदेशाद्वा पण्यानि पण्यागारतया गच्छेयुस्तान्यस्य यातव्याल्लब्धानीति सत्त्रिणश्चारयेयुः ॥ ३२ ॥ बहुलीभूते शासनमभिव्यक्तेन प्रेषयेत् ॥ ३३ ॥ एतत्ते पण्यं पण्यागारं वा मया ते प्रेषितम् ॥ ३४ ॥ सामवायिकेषु विक्रमस्वापगच्छ वा ॥ ३५ ॥ ततः पणशेषमवाप्स्यसीति ॥३६॥ ततः सत्त्रिणः परेषु ग्राहयेयुः ॥ ३७ ॥ एतदरिप्रदत्तमिति ॥ ३८ ॥

जिस राजा के स्वदेश या अन्य देश से विकने की वस्तुएँ पण्यागार (बाजार) में रखने को आवें, उन्हें, गुप्तचर यह प्रसिद्ध करदें, कि यह उसी राजा ने भेजी हैं, जिस पर हमारा राजा चढ़ाई करना चाहता था। जब यह प्रवाह बहुत फैल जावे, तो किसी प्रकट पुरुष के द्वारा यह एक लेख भी गुप्तचर भिजवावें कि हे महाभाग! यह बहुत सी वेचने योग्य वस्तुएँ मैंने आपके पास भेजी है। अब तुम इन गिरोह बनाने वाले राजाओं पर आक्रमण करो या तुम उन्हें छोड़कर अलग हो जावो। इतना होने पर तुम्हारी बाकी शर्त का धन भेज दिया जावेगा। इस पत्र को बीच में किसी प्रकार पकड़वाकर सत्री गुप्तचर शत्रु राजाओं को उस होने वाले मित्र के इस दुव्यर्यवहार का निश्चय करा देवे कि यह तुम्हारे शत्रु का दिया हुआ पत्र है ॥३२-३८॥

शत्रुप्रख्यातं वा पण्यमविज्ञातं विजिगीषुं गच्छेत् ॥ ३९ ॥ तदस्य वैदेहकव्यञ्जनाः शत्रुमुख्येषु विक्रीणीरन् ॥ ४० ॥ ततः सत्त्रिणः परेषु ग्राहयेयुः एतत्पण्यमरिप्रदत्तमिति ॥ ४१ ॥

जिन वस्तुओं को शत्रु को यह जानता हो उनको गुप्तचर, छुपे २ विजयाभिलाषी राजा के पास भिजवा देवे। फिर इस राजा के व्यापारी बने हुए गुप्तचर उस सामान को मुख्य शत्रुओं के बाजारों में विकने को भेजे और गुप्तचर, उन सामवायिक राजाओं म मुख्य राजा को निश्चय करादे, कि यह सामान तुम्हारे मित्र बनने वाले शत्रु राजा ने तुम्हारे समुदायविरोधी राजा के पास भेजा है ॥३९-४१॥

महापराधानर्थमानाभ्यामुपगृह्य वा शस्त्ररसाग्निभिरमित्रे प्रणिदध्यात् ॥ ४२ ॥ अथैकममात्यं निष्पातयेत् ॥ ४३ ॥ तस्य पुत्रदारमुपगृह्य रात्रौ हतमिति ख्यापयेत् ॥ ४४ ॥ अथामात्यः शत्रोस्तानेकैकशः प्ररूपयेत् ॥ ४५ ॥ ते चेद्यथोक्तं कुर्युर्न चैनान्ग्राहयेत् ॥ ४६ ॥ अशक्तिमतो वा ग्राहयेत् ॥ ४७ ॥

बड़े अपराध करने वाले किसी व्यक्ति को धन और मान से सन्तुष्ट करके उसे शस्त्र या विष प्रयोग के लिए शत्रु के पीछे लगावे अथवा किसी एक अमात्य को प्रथम भेजे। उसके पुत्र भार्या आदि को कहीं सुरक्षित स्थान पर भेजकर रात में मरवा डाले ऐसा प्रसिद्ध करे। जब उस अमात्य में शत्रु राजा का विश्वास हो जावे, तो अमात्यों को भी उस राजा के द्वेषी बताकर मिला देवे। यदि वे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उस राजा को मरवा डाले-तो इन्हें कुछ न कहें, और जो उसके मरवाने की अशक्ति प्रकट करें-तो राजा उन्हें पकड़वा देवे ॥४२-४७॥

आप्तभावोपगतो मुख्यादस्यात्मानं रक्षणीयं कथयेत् ॥ ४८ ॥ अथामित्रशासनंमुख्यायोपघाताय प्रेषितमुभयवेतनो ग्राहयेत् ॥ ४९ ॥

जब राजा को इन गुप्तचरों पर विश्वास हो जावे, तो वह इन संगठित राजाओं में जो मुख्य हो, उससे अपने आपको सुरक्षित रखने का शत्रु राजा को उपदेश करें। इसके अनन्तर शत्रु राजा के शत्रु झूंठा पत्र बनवाकर उस मुख्य राजा के पास गुप्तचरों द्वारा भिजवावे और उस राजा को पकड़वा देवे ॥४८-४९॥

उत्साहशक्तिमतो वा प्रेषयेत् ॥ ५० ॥ अमुष्य राज्यं गृहाण यथास्थितो न संधिरिति ॥ ५१ ॥ ततः सत्त्रिणः परेषु ग्राहयेयुः ॥ ५२ ॥ एकस्य स्कन्धावारं विवधमासारं वा घातयेयुः ॥ ५३ ॥ इतरेषु मैत्रीं ब्रुवाणाः ॥ ५४ ॥ तं सत्त्रिणः—त्वमेतेषां घातयितव्य इत्युपजपेयुः ॥ ५५ ॥

किसी वीरता और शक्ति सम्पन्न इन संगठित राजाओं में कोई कूटपत्र भिजवाया जावे, कि तुम अमुक राजा (जिसको फोड़ना है)उस राजा के राज्य पर कब्जा करलो-अब वह पुरानी सन्धि नहीं रखनी चाहिए। इस पत्र को भी राजा उसी राजा को पकड़वा देवें, जिसको शङ्कित बनाना है। किसी एक संगठित राजा के सेना निवेश, धान्य के प्रबन्ध या उसके पीछे के मित्र बल को गुप्तचर नष्ट करदें। अन्य राजाओं से अपनी मित्रता गांठे रहे। फिर सत्री गुप्तचर उसे ये सुझा दे, कि इन्होंने ही तुम्हारे इस सेना निवेश आदि को

नष्ट किया और अब ये तुम्हें भी मारना चाहते हैं इस तरह कहकर उनमें फूट डलवावे ॥५०-५५॥

यस्य वा प्रवीरपुरुषो हस्ती हयो वा म्रियेत गूढपुरुषैर्हन्येत ह्रियेत वा तं सत्त्रिणः परस्परोपहतं ब्रूयुः ॥ ५६ ॥ ततः शासनमभिशस्तस्य प्रेषयेत् ॥ ५७ ॥ भूयः कुरु ततः पणशेषमवाप्स्यसीति ॥ ५८ ॥ तदुभयवेतना ग्राहयेयुः ॥ ५९ ॥ भिन्नेष्वन्यतमं लभेत ॥ ६० ॥ तेन सेनापतिकुमारदण्डचारिणो व्याख्याताः ॥ ६१ ॥ साङ्घिकं च भेदं प्रयुञ्जीतेति भेदकर्म ॥ ६२ ॥

जिस संगठित राजा का कोई वीर पुरुष, हाथी या घोड़ा मारा जावे, या गुप्त पुरुषों द्वारा मरवा दिया जावे या अपहृत करवा लिया जावे-तो भी सत्री गुप्तचर उसे एक दूसरे के द्वारा मारा जाना प्रसिद्ध करे। फिर एक पत्र उस राजा के नाम बनवटी बनवाकर भिजवावे, जिसका नाम मारने मरवाने में प्रसिद्ध किया है, कि तुमने बड़ा अच्छा किया। अब शेष कार्य और पूरा करो जो तुम्हारा निश्चित धन है, वह भिजवा दिया जावेगा। इस पत्र को भी गुप्तचर उस राजा को पकड़वा देवे। इस प्रकार जब एक दूसरे में फूट पड़ जावे-तो एक से विजयेच्छुक राजा मिल जावे। भेद डालने के जो उपाय राजाओं के विषय में बताये गए, वे ही सेनापति कुमार और दण्डचारी (शासकों) जनों के विषय में समज लेने चाहिए। सङ्घवृत्त अधिकरण में जो भेद (फूट) डालने के उपाय बताए गए हैं-उनका प्रयोग करना भेद कर्म कहाता है। ॥५६-६२॥

तीक्ष्णमुत्साहिनं व्यसनिनं स्थितशत्रुं वा गूढपुरुषाः शस्त्राग्निरसादिभिः साधयेयुः ॥ ६३ ॥ सौकर्यतो वा तेषामन्यतमः ॥ ६४ ॥ तीक्ष्णो ह्येकः शस्त्ररसाग्निभिः साधयेत् ॥ ६५ ॥ अयं सर्वसंदोहकर्म विशिष्टं वा करोतीत्युपायचतुर्वर्गः ॥ ६६ ॥

तीक्ष्ण प्रकृति, वीरतादि गुणों से युक्त व्यसन में फंसे हुए शक्तिशाली शत्रु को गुप्तचर शस्त्र अग्नि और विष आदि के प्रयोग से मरवा डाले। इन उपायों में जिस किसी विष आदि के देने में सुभीता हो सके-उसी का प्रयोग करे। एक ही तीक्ष्ण पुरुष, शस्त्र, विष और अग्नि का प्रयोग कर सकता है। अकेला ही कोई गूढ़ पुरुष सारे इकट्ठे कर्म ता उन से अन्य कोई खास मारने के उपाय कर सकता है, यहां तक सामादि चारों उपायों का वर्णन किया गया ॥ ६३-६६ ॥

पूर्वः पूर्वश्चास्य लघिष्ठः ॥ ६७ ॥ सान्त्वमेकगुणम् ॥ ६८ ॥ दानं द्विगुणं सान्त्वपूर्वम् ॥ ६९ ॥ भेदस्त्रिगुणः सान्त्वदानपूर्वः ॥ ७० ॥ दण्डश्चतुर्गुणः सान्त्वदानभेदपूर्वः ॥ ७१ ॥ इत्यभियुञ्जानेपूक्तम् ॥ ७२ ॥ स्वभूमिष्ठेषु तु त एवोपायाः ॥ ७३ ॥ विशेषस्तु—॥ ७४ ॥ स्वभूमिष्ठानामन्यतमस्य पण्यागारैरभिज्ञातान्दूतमुख्यानभीक्ष्णं प्रेषयेत् ॥ ७५ ॥

इन सामादि उपायों में उत्तर की अपेक्षा पूर्व का हलका होता है। साम उपाय में एक ही गुण माना गया है। दान दो गुण वाला है, क्योंकि उस में साम भी सम्मिलित है। भेद में तीन गुण हैं, साम दान भी इस में होते हैं। दंड में चार गुण होते हैं। इसमें साम, दान और भेद भी सम्मिलित हैं। इस प्रकार इन उपायों का प्रयोग उनहीं राजाओं पर किया जा सकता है, जो चढ़ाई करने योग्य राजा से मिल कर उसके पास पड़े हों जब ये अपनी भूमि में स्थित हों तभी उन उपायों के प्रयोगों का समय होता है। जब ये अपनी २ भूमि में पड़े हों तो इनसे किसी एक के पास उत्तम २ वस्तु परिचित दूतों के द्वारा लगातार भेजता रहे॥ ६७-७५॥

त एनं संधौ परहिंसायां वा योजयेयुः ॥ ७६ ॥ अप्रतिपद्यमानं कृतो नः संधिरित्यावेदयेयुः ॥ ७७ ॥ तमितरेषामुभयवेतनाः संक्रामयेयुः ॥ ७८ ॥ अयं वो राजा दुष्ट इति ॥ ७९ ॥ यस्य वा यस्माद्भयं वैरं द्वेषो वा तं तस्माद्भेदयेयुः ॥ ८० ॥ अयं ते शत्रुणा संधत्ते ॥ ८१ ॥ पुरा त्वामतिसंधत्ते क्षिप्रतरं संधीयस्व ॥ ८२ ॥ निग्रहे चास्य प्रयतस्वेति ॥ ८३ ॥

ये इस राजा को सन्धि करने या अन्य विरोधी राजा के वध के लिए उत्तेजित करें। यदि इसने सन्धि करना स्वीकार न भी किया हो-तो भी ये दूत सन्धि हो जाना प्रसिद्ध करदें। अन्य गुप्तचर इस समाचार को अन्य राजाओं के पास ले जावें और उन्हें जतावे, कि यह राजा तो तुम से विरुद्ध हो गया है। जिस राजा का जिस राजा को भय, द्वेष और वैर हो, उनका परस्पर भेद कराया जावे, कि यह तुम्हारे शत्रु से सन्धि कर रहा है। यदि इनकी सन्धि हो गई-तो यह तुमको दबा देगा, इस से तुम शीघ्र उससे [विजेता] से सन्धि करो और इस दुष्ट राजा के निग्रह में सावधान हो जाओ ॥ ७५-८२ ॥

आवाहविवाहाभ्यां वा कृष्वा संयोगमसंयुक्तान्भेदयेत् ॥ ८४ ॥ सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धैश्चैषां राज्यान्निर्घातयेत् ॥ ८५ ॥ सार्थव्रजाटवीर्वा, दण्डं

वाभिसृतं, परस्परापाश्रयाश्चैषां जातिसङ्घाश्छिद्रेषु प्रहरेयुः ॥ ८६ ॥ गूढाश्चाग्निरस-शस्त्रेण ॥ ८७ ॥

इसी तरह उसकी कन्या लेकर या अपनी कन्या देकर उससे सम्बन्ध गांठ लेवे और जिनका सम्बन्ध नहीं हुआ है, उनमें फूट डलवा देवे। इसी तरह पड़ोसी सामन्त, वनचर भील राजाओं के कुल में उत्पन्न और अपने पास रोके हुए वंश घरों से इनके राज्यों को हानि पहुंचावे। व्यापार के बोझे ढोहने वाले पशु, अन्य गाय भैंस, द्रव्यवन हस्तीवन और रक्षक सेना को भी नष्ट कराके। इन लोगों के जाति वंशज, एक दूसरे के शत्रु होकर परस्पर प्रहार करते रहें, यह ढंग स्वीकार करे। गुप्तचर, अग्नि विष और शस्त्र से मारने के दाव में लगे रहें ॥८४-८७॥

वितंसगिलवच्चारीन्योगैराचरितैः शठः।
घातयेत्परमिश्रायां विश्वासेनामिषेण च ॥ ८८ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे दूष्यशत्रुसंयुक्ताः षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥
आदितः सप्तविंशशतः ॥ १२७ ॥

परमिश्र अर्थात् मित्र और शत्रु द्वारा मिल कर खड़ी की हुई आपत्ति में गुप्त प्रयोग करने वाला विजेता, पक्षियों के विश्वास के जाल या मांस के खण्ड के समान प्रयोग किये हुए प्रच्छन्न उपायों द्वारा इन विरोधी राजाओं को भी विश्वास देकर या मांस की तरह कुछ भेंट देकर वश में करे। (शिकारी पक्षी को पकड़ने को मांस के टुकड़े रखे होते हैं।) ॥८८॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अभियास्यत्कर्म अधिकरण में दुष्ट शत्रु और दुष्ट प्रजाजन के प्रतीकार के उपायों के वर्णन का छठा अध्याय समाप्त हुआ।



सातवां अध्याय

१४५-१४६वां प्रकरण

अर्थानर्थ संशययुक्ताः तासामुपाय विकल्पजाः सिद्धयः

हिरण्य (सुवर्ण के सिक्के) भूमि आदि अर्थ, शरीर आदि का नाश अनर्थ, इन दोनों के विषय में संदेह को संशय कहते हैं। इनसे युक्त आपत्तियों तथा उनके प्रतीकार का इस प्रकरण में वर्णन किया जावेगा।

कामादिरुत्सेकः स्वाः प्रकृतीः कोपयति ॥ १ ॥ अपनयो बाह्याः ॥ २ ॥ तदुभयमासुरी वृत्तिः ॥ ३ ॥ स्वजनविकारः कोपः परवृद्धिहेतुष्वापदर्थो ऽनर्थः संशय इति ॥ ४ ॥ यो ऽर्थः शत्रुवृद्धिमप्राप्तः करोति, प्राप्तः प्रत्यादेयः परेषां भवति, प्राप्यमाणो वा क्षयव्ययोदयो भवति, भवत्यापदर्थः ॥ ५ ॥

राजा में जब काम क्रोध का अधिक आविर्भाव हो जाता है, तब अपने अमात्य आदि अभ्यन्तर प्रकृतिजन कुपित हो उठते हैं। नीति विरुद्ध चलने से बाह्य प्रकृति अन्त-पाल आदि कुपित हो जाते हैं, इसलिए, काम आदि दोष और अपनय इन दोनों को आसुरी वृत्ति कहते हैं। अपने स्वजनों के भाव बदलने को कोप कहते हैं, जिससे शत्रु की वृद्धि होने से अपने लिए आपत्ति खड़ी हो जाती है। यह आपत्ति अर्थ, अनर्थ और संशय रूप से तीन प्रकार की होती है। जो स्वार्थ, प्राप्त न होने पर शत्रु की वृद्धि करता है या प्राप्त होने पर शत्र द्वारा लौटा लिया जाता है। तथा जो प्राप्त होकर भी जन क्षय और धन व्यय का कारण बन जाता है, वह आपत्ति का कारण होता है ॥१-५॥

यथा—सामन्तानामामिषभूतः, सामन्तव्यसनजो लाभः, शत्रुप्रार्थितो वा स्वभावाधिगम्यो लाभः, पश्चात्कोपेन पार्ष्णिग्राहेण विगृहीतः पुरस्ताल्लाभो, मित्रोच्छेदेन संधिव्यतिक्रमेण 'वा मण्डलविरुद्धो लाभ इत्यापदर्थः ॥ ६ ॥ स्वतः परतो वा भयोत्पत्तिरित्यनर्थः ॥ ७ ॥ तयोरर्थो न वेति, अनर्थो न वेति, अर्थोऽनर्थ इति, अनर्थोऽर्थ इति संशयः ॥ ८ ॥

अनेक सामन्तों के प्राप्त करने योग्य, लाभ तथा सामन्तों के व्यसन से प्राप्त किया हुआ लाभ, अपने अधिकारानुसार प्राप्त हुआ परन्तु शत्रु द्वारा चाहा हुआ लाभ, पीछे पार्ष्णि ग्राह के उपद्रव करने पर भी चढ़ाई किए हुए राजा से प्राप्त लाभ, मित्र को उखाड़ कर या सन्धि तोड़कर राज मंडल के विरुद्ध प्राप्त किया हुआ लाभ विपत्ति का कारण बन जाता है। इसी लाभ को अर्थशास्त्र में अर्थ कहते हैं। अपने या परायों से जो विपत्ति की आशङ्का खड़ी हो जावे, इसे अनर्थ कहते हैं। इन अर्थ और अनर्थ में कोई लाभ होगा या नहीं। कोई अनर्थ [बुराई] होगा या नहीं। यह अर्थ है या अनर्थ है या अनर्थ है या अर्थ है-इस प्रकार के संदेह को संशय कहते हैं ॥ ६-८ ॥

शत्रुमित्रमुत्साहयितुमर्थो न वेति संशयः ॥ ६ ॥ शत्रुबलमर्थमानाभ्या-मावाहयितुमनर्थो न वेति संशयः ॥ १० ॥ बलवत्सामन्तां भूमिमादातुमर्थो-

ऽनर्थ इति संशयः ॥ ११ ॥ ज्यायसा सम्भूययानमनर्थोऽर्थ इति संशयः ॥ १२ ॥ तेषामर्थसंशयमुपगच्छेत् ॥ १३ ॥

शत्रु के मित्र के उत्तेजित करने में हमको लाभ होगा या नहीं यह एक संशय है। शत्रु की सेना को धन और मान से अपनी ओर मिलाने में अनर्थ होगा या नहीं यह दूसरा संशय है। बलवान् सामन्त की भूमि लेने में स्वार्थ सिद्धि होगी या अनर्थ होगा-यह तीसरा संशय है-बलवान् राजा के साथ मिल अमुक राजा पर चढ़ाई करने से अनर्थ होगा या लाभ -इस प्रकार चौथा संशय होता है। इन में जो स्वार्थ सिद्धि का संशय हो और अनर्थ की जिसमें सम्भावना भी न हो-उस संशय को स्वीकार करना चाहिए ॥ ९-१३ ॥

अर्थो ऽर्थानुबन्धः ॥ १४ ॥ अर्थो निरनुबन्धः ॥ १५ ॥ अर्थो ऽनर्थानुबन्धः ॥ १६ ॥ अनर्थो ऽर्थानुबन्धः ॥ १७ ॥ अनर्थो निरनुबन्धः ॥ १८ ॥ अनर्थो ऽनर्थानुबन्ध इत्यनुबन्धषड्वर्गः ॥ १९ ॥

अर्थ का अर्थ के साथ अनुबन्ध होना अर्थात् एक स्वार्थ का दूसरे स्वार्थ से गुथ जाना अर्थ का अर्थानुबन्ध होता है। अर्थ का किसी भी अन्य स्वार्थ के साथ सम्पर्क न होना दूसरा निरनुबन्ध अर्थ होता है। अर्थ का अनर्थ (बुराई) से भी संयोग होता है-इसे अनर्थानुबन्ध कहते हैं, कोई २ अनर्थ भी अर्थ के साथ बंधा होता है-इसे अर्थानुबन्ध अनर्थ कहते हैं। कोई अनर्थ, अर्थ से बिल्कुल रहित होता है, इसे निरनुबन्ध अनर्थ माना है। कोई अनर्थ अन्य अनर्थ से जुड़ा होता है-यह अनर्थानुबन्धी अनर्थ कहाता है। इस प्रकार अर्थ अनर्थ के छः वर्ग होते में ॥ १४-१९ ॥

शत्रुमुत्पाट्य पार्ष्णिग्राहादानमर्थो ऽर्थानुबन्धः ॥ २० ॥ उदासीनस्य दण्डानुग्रहः फलेन अर्थो निरनुबन्धः ॥२१॥ परस्यान्तरुच्छेदनर्थो ऽनर्थानुबन्धः ॥२२॥ शत्रुप्रतिवेशस्यानुग्रहः कोशदण्डाभ्यामनर्थो निरनुबन्धः ॥२३॥ हीनशक्तिमुत्साह्य निवृत्तिरनर्थो निरनुबन्धः ॥ २४ ॥ ज्यायांसमुत्थाप्य निवृत्तिरनर्थो ऽनर्थानुबन्धः ॥ २५ ॥ तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयानुपसंप्राप्तुम् ॥ २६ ॥ इति कार्यावस्थापनम् ॥ २७ ॥

शत्रु को उखाड़ कर पीछे उपद्रव करने वाले पार्ष्णि ग्राह को भी जा दबोचना अर्थानुबन्धी अर्थ होता है। उदासीन राजा से धन लेकर उसकी सहायता करना निरनु

बन्ध अर्थ है-इसमें प्रथम धन का लाभ हो गया-पीछे कोई फल या अनर्थ नहीं होता। शत्रु के अन्तर्धि (बीच के राज) का उच्छेद कर देना अनर्थानुबन्धी अर्थ है-क्योंकि इस में मूल शत्रु के अधिक भड़क जाने रूप अनर्थ की सम्भावना है। शत्रु के पड़ोसी राजा की सेना और कोश से सहायता करना अर्थानुबन्धी अनर्थ है, क्योंकि पीछे कार्य सिद्ध होता है, प्रथम कोश सेना का व्यय अनर्थ है। हीन शक्ति राजा को शत्रु से भिड़ाकर आप का अलग हो जाना-केवल अनर्थ का उत्पादक है इस में कोई फल नहीं है। इसे निरनुबन्ध अनर्थ माना है। बलवान् राजा को शत्रु से लड़ने को भड़का कर अपने आप का अलग हो जाना-अनर्थानुबन्धी अनर्थ का उदाहरण है। इस अनुबन्ध षड्वर्ग में स्वीकार करने के लिए उत्तर की अपेक्षा पूर्व का श्रेष्ठ है। यहां तक अर्थ अनर्थ रूप कामों के स्वरूप का वर्णन किया गया॥ २०-२७॥

समन्ततो युगपदर्थोत्पत्तिः समन्ततोऽर्थापद्भवति ॥ २८ ॥ सैव पार्ष्णिग्राहविगृहीता समन्ततो ऽर्थसंशयापद्भवति ॥ २९ ॥ तयोर्मित्राक्रन्दोपग्रहात्सिद्धिः ॥ ३० ॥ समन्ततः शत्रुभ्यो भयोत्पत्तिः समन्ततो ऽनर्थापद्भवति ॥ ३१ ॥ सैव मित्रविगृहीता समन्ततोऽनर्थसंशयापद्भवति ॥ ३२ ॥ तयोश्चलामित्राक्रन्दोपग्रहात्सिद्धिः ॥ ३३ ॥ परमिश्राप्रतीकारो वा ॥ ३४ ॥

सब ओर से एक दम कार्य सिद्धि होने लगे तो उसे समन्ततो ऽर्थापत् कहते हैं। यदि इसी समन्ततो ऽर्थापत् में पार्ष्णिग्राह उपद्रव खड़ा करदे-तो समन्ततोऽर्थ संशयापत् कहते हैं। इन दोनों अर्थापत में आगे के मित्र और पीछे के मित्र आक्रन्द की सहायता से सिद्धि होती है। सब ओर से शत्रु से भय की उत्पत्ति होना-समन्ततोऽनर्थापत् होती है। यदि इसी में मित्र झगड़ बैठे-तो समन्ततोऽनर्थ संशयापत् हो जाता है। पूर्व में अनर्थ का निश्चय और इसमें अनर्थ का संशय होता है, इस में चल शत्रु और आक्रन्द की सहायता से सिद्धि होती है तथा परमिश्रापत्ति का जो प्रतीकार है, वह यहां भी समझ लेना चाहिए ॥ २८-३४॥

इतो लाभ इतरतो लाभ इत्युभयतो ऽर्थापद्भवति ॥ ३५ ॥ तस्यां समन्ततो ऽर्थायां च लाभगुणयुक्तमर्थमादातुं यायात् ॥ ३६ ॥ तुल्ये लाभगुणे प्रधानमासन्नमनतिपातिनमूनो वा येन भवेत्तमादातुं यायात् ॥ ३७ ॥ इतो ऽनर्थ इतरतो ऽनर्थ इत्युभयतो ऽनर्थापत् ॥ ३८ ॥ तस्यां समन्ततो ऽनर्थायां च मित्रेभ्यः सिद्धिं लिप्सेत ॥ ३९ ॥ मित्राभावे प्रकृतीनां लघीयस्यकतोऽनर्थो

साधयेत् ॥ ४० ॥ उभयतोऽनर्थाञ्ज्यायस्या, समन्ततो ऽनर्थां मूलेन प्रतिकुर्यात् ॥ ४१ ॥ अशक्ये सर्वमुत्सृज्यापगच्छेत् ॥ ४२ ॥ दृष्टा हि जीवतः पुनरावृत्ति र्यथा सुयात्रोदयनाभ्याम् ॥ ४३ ॥

इधर से भी लाभ और उधर से भी लाभ-इसे उभयतोऽर्थापत् कहते हैं। इस प्रकार जब चारों ओर से लाभ ही लाभ दिखाई दे, तो लाभ से युक्त अपने स्वार्थ की सिद्धि के निमित्त विजेता चढ़ाई करदे। यदि दो ओर समान लाभ की सम्भावना हो-तो प्रधान, समीपवर्ती, नहीं नष्ट होने वाला और अपनी न्यूनता को पूर्ण करने वला हो-उसे ग्रहण करने को विजयेच्छुक राजा आक्रमण करदे। इधर भी अनर्थ उधर भी अनर्थ इस प्रकार सब ओर से अनर्थ की सम्भावना होने पर अनर्थापत् कहाती है। जब सब ओर से अनर्थ की सम्भावना हो-तो अपने मित्रों की सहायता से इन आपत्तियों का प्रतीकार करे। यदि मित्र सहायता न दे सके-तो अपने छोटे २ मोटे अमात्य आदि प्रकृति को सौंपकर एक अनर्थ की निवृत्ति करे। यदि दो ओर अनर्थ उठ रहे हों-तो मन्त्री आदि ज्येष्ठ प्रकृति को उनकी धरोहर में रख देवे। यदि सब ओर से अनर्थ गिर रहे हों-तो अपनी राजधानी का सब कुछ सौंप देवे। इतने पर भी यदि आपत्ति न टले तो राजधानी छोड़कर चल देवे। यदि जीवन रहेगा-तो फिर भी सुयात्रा (नल) और उदयन की भांति भी राज्य की प्राप्ति हो सकेगी ॥३५-४३॥

इतो लाभ इतरतो राज्याभिमर्श इत्युभयतो ऽर्थानर्थापद्भवति ॥ ४४ ॥ तस्यामनर्थसाधको योऽर्थस्तमादातुं यायात् ॥ ४५ ॥ अन्यथा हि राज्यभिमर्शं वारयेत् ॥ ४६॥ एतया समन्ततो ऽर्थानर्थापद्व्याख्याता ॥ ४७ ॥ इतो ऽनर्थ इतरतो ऽर्थसंशय इत्युभयतो ऽनर्थार्थसंशया ॥ ४८ ॥ तस्यां पूर्वमनर्थं साधयेत् तत्सिद्धावर्थसंशयम् ॥ ४९ ॥ एतया समन्ततोऽनर्थार्थसंशया व्याख्याता ॥५०॥ इतोऽर्थ इतरतो ऽनर्थसंशय इत्युभयतो ऽनर्थार्थसंशयापत् ॥ ५१ ॥ एतया समन्ततो ऽर्थानर्थसंशया व्याख्याता ॥ ५२ ॥ तस्यां पूर्वां पूर्वां प्रकृतीनामनर्थसंशयान्मोचयितुं यतेत ॥ ५३ ॥

एक ओर से भूमि लाभ और दूसरी ओर से राज्य पर आक्रमण होना, अर्थानर्थात् होती है। इसमें अनर्थ को हटाने वाला जो अर्थ हो उसका ग्रहण करे। यदि ऐसा अर्थ न होवे-तो राज्य पर होने वाले आक्रमण का प्रतीकार करे। इसी प्रकार सब ओर होने वाली समन्तोऽर्थानर्थापत का स्वरूप भी समझ लेना चाहिए। एक ओर से अनर्थ

और दूसरी ओर से अर्थ (मतलब) सिद्धि का संक्षेप होना दो ओर से अनर्थार्थसंशयापत् कहाता है। इसमें प्रथम अनर्थ का प्रतीकार करे-इस प्रतीकार होने पर अर्थ संशय की ओर चले। इसी प्रकार समन्तोऽनर्थार्थसंशयापन् की व्याख्या जान लेनी उचित है। इधर से अर्थ की सिद्धि और दूसरी ओर से अनर्थ का संशय यह दो ओर से अनर्थार्थसंशयापत् कहाता है-इसी तरह सब ओर से अर्थ और दूसरी ओर से अनर्थ की आंशङ्का समन्तोऽनर्थार्थसंशयापत् होती है । इनमें पूर्व पूर्व की प्रकृति, के अनर्थ से छुटकारा पाने का प्रयत्न करे । (स्वामी, मन्त्री, जनपद आदि प्रकृति होती हैं) ॥४४-५३॥

श्रेयो हि मित्रमनर्थसंशये तिष्ठन्न दण्डः ॥ ५४ ॥ दण्डो वा न कोश इति ॥ ५५ ॥ समग्रमोक्षणाभावे प्रकृतीनामवयवान्मोक्षयितुं यतेत ॥ ५६ ॥ तत्र पुरुषप्रकृतीनां च बहुलमनुरक्तं वा तीक्ष्णलुब्धवर्जम् ॥ ५७ ॥ द्रव्यप्रकृतीनां सारं महोपकारं वा ॥ ५८ ॥ संधिनासनेन द्वैधीभावेन वा लघूनि विपर्ययैः गुरूणि ॥ ५९ ॥

यदि मित्र की ओर से अनर्थ संशय हो तो प्रतीक्षा की जा सकती है. परन्तु सेना का अनर्थ संशय ठीक नहीं है। दण्ड की हां तरह कोश का अनर्थ भी उपेक्षा के योग्य नहीं है। यदि समस्त प्रकृतियों के अनर्थों के एकदम हटाना अशक्य हो तो उनको क्रम से दूर करे। इनमें जो पुरुष प्रकृति से अनर्थ हो रहा हो उसमें तीक्ष्ण और लालची पुरुषों को छोड़कर अपने बहुत से अनुरक्त पुरुषों द्वारा अनर्थ के नाश का उपाय करे। द्रव्य प्रकृतियों में जो अधिक मूल्यवान् और आवश्यक हों-उनको नष्ट होने से बचावे। सन्धि, आसन और द्वैधी भाव द्वारा छोटे २ मोटे पदार्थों की रक्षा करे और महत्वशाली पदार्थों की विग्रह यान द्वारा रक्षा करे ॥५४-५९॥

क्षयस्थानवृद्धीनां चोत्तरोत्तरं लिप्सेत ॥६०॥ प्रातिलोम्येन वा क्षयादीनामायत्यां विशेषं पश्येत् ॥ ६१ ॥ इति देशावस्थापनम् ॥ ६२ ॥ एतेन यात्रादिमध्यान्तेष्वर्थानर्थसंशयानामुपसंप्राप्तिर्व्याख्याता ॥ ६३ ॥ निरन्तरयोगित्वाच्चार्थानर्थसंशयानां यात्रादावर्थः श्रेयानुपसंप्राप्तुं पार्ष्णिग्राहासारप्रतिघातक्षयव्ययप्रवासप्रत्यादेयमूलरक्षणेषु च भवति ॥ ६४ ॥

शक्ति और सिद्धि का अपचय रूप क्षय, उनका उसी रूप में ठहरना स्थान, और उनके उपचय को वृद्धि कहते हैं। क्षय से स्थिति और स्थिति से वृद्धि श्रेष्ठ मानी गई है। यदि भविष्य में कोई विशेष आशा हो-तो वृद्धि की अपेक्षा क्षय भी स्वीकार

किया जा सकता है। यहां तक देश निमित्तक आपत्तियों का विवेचन दिया गया। इसी तरह यात्रा (चढ़ाई) के आदि मध्य अन्त में होने वाली अर्थ, अनर्थ और संशय की प्राप्ति की व्यख्या समझ लेनी चाहिए। यदि यात्रा के आदि अर्थ, अनर्थ और इनके संशय की एक साथ सम्भावना हो तो इनमें अर्थ का प्रथम प्राप्त करना ही श्रेयस्कर है। पृष्ठस्थित शत्रु और चढ़ाई करने योग्य राजा की मित्र सेना का नाशक होने से अर्थ की प्राप्ति उत्तम है। इसमें शत्रु के जन क्षय, धन व्यय अपने प्रवास से बचना, प्रत्यादेय लाभ और राजधानी की रक्षा का प्राधान्य होता है। अर्थात् अर्थ में सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥६०-६४॥

तथानर्थः संशयो वा स्वभूमिष्ठस्य विषह्यो भवति ॥ ६५ ॥ एतेन यात्रामध्येऽर्थानर्थसंशयानामुपसंप्राप्तिर्व्याख्याता ॥ ६६ ॥ यात्रान्ते तु कर्शनीयमुच्छेदनीयं वा कर्शयित्वोच्छिद्य वार्थः श्रेयानुपसंप्राप्तुं नानर्थः संशयो वा परावाधभयात् ॥६७॥ सामवायिकानामपुरोगस्य तु यात्रामध्यान्तगो ऽनर्थः संशयो वा श्रेयानुपसंप्राप्तुमनुवन्धगामित्वात् ॥ ६८ ॥

यदि यात्रा के आदि में अनर्थ या इसका संशय खड़ा हो जावे-तो अपनी भूमि में स्थित राजा इनका सहन कर सकता है। इसी तरह यात्रा (चढ़ाई) के मध्य और अन्त में होने वाले अर्थ अनर्थ और संशयों के प्राप्ति और प्रतीकार की चेष्टा करनी चाहिए। यात्रादि अन्त में दुर्बल बनाने योग्य या उच्छेद करने योग्य शत्रु को दुर्बल बनाकर या उसका उच्छेद करके अर्थ प्राप्ति कर लेना श्रेयस्कर है, शत्रु की बाधा के भय से अनर्थ या संशय में कभी न पड़े। यहां तक इकट्ठे हुए राजाओं के ध्यान से विवेचन किया गया है, परन्तु यदि इन में अप्रधान राजा पर आक्रमण किया गया हो-तो यात्रा (चढ़ाई) के मध्य और अन्त में होने वाले अनर्थ और संशय की प्राप्ति भी की जा सकती है, क्योंकि उसमें अर्थ का अनुबंध रहता है ॥ ६५-६८ ॥

अर्थो धर्मः काम इत्यर्थत्रिवर्गः ॥ ६९ ॥ तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयानुपसंप्राप्तुम् ॥ ७० ॥ अनर्थो ऽधर्मः शोक इत्यनर्थत्रिवर्गः ॥ ७१ ॥ तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयान्प्रतिकर्तुम् ॥ ७२ ॥ अर्थो ऽनर्थ इति धर्मो ऽधर्म इति कामः शोक इति संशयत्रिवर्गः ॥ ७३ ॥ तस्योत्तरपक्षसिद्धौ पूर्वपक्षः श्रेयानुपसंप्राप्तुम् ॥ ७४ ॥ इति कालावस्थापनम् ॥ ७५ ॥ इत्यापदः ॥ ७६ ॥

अर्थ, धर्म और काम-ये तीन त्रिवर्ग कहाते हैं। इस में कान से धर्म और अर्थ की प्राप्ति करना उत्तम है। अनर्थ-अधर्म और शोक-ये थीन अनर्थ त्रिवर्ग कहाता है। इन में पूर्व २ का प्रतीकार श्रेयस्कर है। यह अर्थ है या अनर्थ, यह धर्म है या अधर्म या यह काम है या शोक-इस प्रकार के त्रिवर्ग को संशय त्रिवर्ग कहते हैं। इस में अनर्थ, अधर्म और शोक की अपेक्षा अर्थ, धर्म और काम का प्राप्त करना उत्तम है। यात्रा के आदि मध्य और मना में होने से ये आपत्तियों का कालावस्थापन कहाता है। यहां तक सारी आपत्तियों का वर्णन हो चुका॥ ६६-७६॥

तासां सिद्धिः—पुत्रभ्रातृबन्धुषु सामदानाभ्यां सिद्धिरनुरूपा, पौरजानपद-दण्डमुख्येषु दानभेदाभ्यां सामन्ताटविकेषु भेददण्डाभ्याम् ॥७७॥ एषानुलोमा विपर्यये प्रतिलोमा ॥ ७८ ॥ मित्रामित्रेषु व्यामिश्रा सिद्धिः ॥ ७६ ॥ परस्पर-साधका ह्युपायाः ॥ ८० ॥ शत्रोः शङ्कितामात्येषु सान्त्वं प्रयुक्तं शेषप्रयोगं निवर्तयति ॥ ८१ ॥ दूष्यामात्येषु दानं, सङ्घातेषु भेदः, शक्तिमत्सु दण्ड इति ॥ ८२ ॥

अब आपत्तियों के प्रतीकार के उपायों का निरूपण किया जाता है। पुत्र भाई और बन्धुओं में सामदान के प्रयोग से अनुकूल सिद्धि होती है। पुरवासी, जनपद पाती, और सेना के मुख्य पुरुषों में दान और भेद से सिद्धि होती है। सामन्त और आटविक [शत्रु और वन के राजा] के विषय में वेद और दंड का प्रयोग करना उचित है। नियमानुसार होने वाला इनका प्रयोग अनुलोभ और विपरीत प्रतिलोभ कहाता है। मित्र और शत्रु के विषय में मिले हुए उपायों का प्रयोग करना उचित है। उपाय तो एक दूसरे के साधक हैं, इससे इनका मिला हुआ ही प्रयोग होना चाहिए। शत्रु के शङ्कित अमात्यों में साम का प्रयोग अन्य उपायों के प्रयोग की अपेक्षा नहीं रखता है अर्थात् इस समय साम से ही सिद्धि हो जाती है। जो अमात्य शत्रु राजा पर विगड़ रहे हों-उन या दान, संगठित विरोधी राजाओं में भेद और शक्ति शाली राजाओं में [युद्ध] दंड का प्रयोग करे॥ ७५-८२॥

गुरुलाघवयोगाच्चापदां नियोगविकल्पसमुच्चया भवन्ति ॥ ८३ ॥ अनेनैवोपायेन नान्येनेति नियोगः ॥ ८४ ॥ अनेन वान्येन वेति विकल्पः ॥ ८५ ॥ अनेनान्येन चेति समुच्चयः ॥ ८६ ॥ तेषामेकयोगाश्चत्वारस्त्रियोगाश्च ॥ ८७ ॥ द्वियोगाः षट् ॥ ८८ ॥ एकश्चतुर्योग इति पञ्चदशोपायाः ॥ ८६ ॥

तावन्तः प्रतिलोमाः ॥ ९० ॥ तेषामेकेनोपायेन सिद्धिरेकसिद्धिः ॥ ९१ ॥ द्वाभ्यां द्विसिद्धिः ॥ ९२ ॥ त्रिभिस्त्रिसिद्धिः ॥९३॥ चतुर्भिश्चतुःसिद्धिरिति ॥९४॥ धर्ममूलत्वात्कामफलत्वाच्चार्थस्य धर्मार्थकामानुबन्धा यार्थस्य सिद्धिः सा सर्वार्थसिद्धिः ॥ ९५ ॥ इति सिद्धिः ॥ ९६ ॥

आपत्ति के गुरु (भारी) लघु (हलकी) योग से आपत्तियों के भी नियोग, विकल्प और समुच्चय भेद हो जाते हैं। इसी उपाय से सिद्धि होगी अन्य से नहीं इस निश्चय को नियोग कहते हैं। इससे होगी या अन्य से हो सकेगी इस विमर्श को विकल्प और इस उपाय और इसके साथ दूसरे उपाय के प्रयोग से सिद्धि होगी इसको समुच्चय कहते हैं। इन साम आदि उपायों को अकेले, दो मिलाकर तीन मिलाकर या चारों का इकट्ठा ही प्रयोग किया जा सकता है। साम, दान भेद और दण्ड का पृथक् २ प्रयोग करना, और तीनों का मिलाकर प्रयोग करना चार तरह का होता है। इस तरह इनका प्रयोग आठ तरह का हुआ। दो २ को मिलाकर छः प्रकार से प्रयोग हो जाता है-इस तरह चौदह हुए और चारों का एक दम प्रयोग एक होता है-इस तरह सब मिलाकर पन्द्रह तरह से इन का प्रयोग होता है। उतने अनुलोम हुए और इतने ही, अर्थात पन्द्रह प्रतिलोम प्रयोग होंगे। इनमें एक के प्रयोग से जो सिद्धि हो-वह एक सिद्ध दो के प्रयोग से द्विसिद्धि, तीन के प्रयोग से त्रिसिद्धि और चारों के प्रयोग से चतुःसिद्धि कहाती है। धर्म और काम की साधक होने से अर्थ सिद्धि तथा अर्थ में धर्म और काम के अनुबन्धित होने से अर्थ सिद्धि ही सर्वार्थ सिद्धि कहाती है। यहां तक सारे उपायों की सिद्धि का वर्णन किया गया है ॥८३-९६॥

दैवादग्निरुदकं व्याधिः प्रमारो विद्रवो दुर्भिक्षमासुरी सृष्टिरित्यापदः ॥ ९७ ॥ तासां दैवतब्राह्मणप्रणिपाततः सिद्धिः ॥ ९८ ॥

पूर्व कर्मानुसार होने वाली आपत्तियां भी अनेक हैं। अग्नि, जल, व्याधि, महामारी, राष्ट्रविप्लव, दुर्भिक्ष और आसुरी वृष्टि-ये दैवी आपत्तियां होती हैं। इनमें देवता और ब्राह्मण आदि की पूजा से शान्ति होती है ॥९७-९८॥

अवृष्टिरतिवृष्टिर्वा सृष्टिर्वा यासुरी भवेत्।
तस्यामाथर्वणं कर्म सिद्धारम्भाश्च सिद्धयः ॥ ९९ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमेऽधिकरणे अर्थानर्थसंशययुक्तास्तासामुपायविकल्पजाः सिद्धयश्च सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ आदितोऽष्टाविंशशतः ॥१२८॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य अभियास्यत्कर्म
नवममधिकरणं समाप्तम् ॥ ९ ॥

अवृष्टि, अतिवृष्टि और आसुरीसृष्टि (चूहे आदि) की उत्पत्ति की शान्ति के लिए अथर्व वेद में कही हुई विधि का प्रयोग करना चाहिए तथा सिद्धि पुरुषों के द्वारा अन्य तन्त्रक्रिया भी इसकी शान्ति कर सकती हैं ॥६६॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अभियास्यत्कर्म अधिकरण में अर्थ अनर्थ और संशय और उनके प्रतीकार के उपायों के वर्णन का सांतवां अध्याय समाप्त हुआ।



सांग्रामिकं दशमधिकरणम्



प्रथम अध्याय

१४७वां प्रकरण

स्कन्धावारनिवेशः

इस प्रकरण में स्कन्धावार (सेना के पड़ाव या छावनी) को किस तरह डालना चाहिए-इस विषय का वर्णन किया जावेगा।

वास्तुकप्रशस्ते वास्तुनि नायकवर्धकिमौहूर्तिकाः स्कन्धावारं वृत्तं दीर्घं चतुरश्रं वा भूमिवशेन वा चतुर्द्वारं षट्पथं नवसंस्थानं मापयेयुः ॥ १ ॥ खातवप्रसालद्वाराट्टालकसंपन्नं भये स्थाने च ॥ २ ॥ मध्यमस्योत्तरे नवभागे राजवास्तुकं धनुःशतायाममर्धविस्तारं, पश्चिमार्धे तस्यान्तःपुरमन्तर्वंशिकसैन्यं चान्ते निविशेत ॥ ३ ॥

गृह निर्माण की विद्या में कुशल पुरुषों द्वारा प्रशंसित प्रदेश में सेनापति, कारीगर और मुहूर्त देखने वाला ज्योतिषी मिलकर गोल, लम्बा या चोकोर जैसा जिस भूमि में बन सके चार द्वार वाला, छः मार्गों से युक्त, नौ सुन्दर स्थानों से सुशोभित, स्कन्धावार (सेना निवास) के स्थान को नापे। खाई, परकोटा, शाला विशालद्वार, अट्टालिका से युक्त, स्कन्धावार जब बनाया जावे, जब शत्रु का भय खड़ा हो गया हो स्कन्धावार के मध्य के उत्तर में राजमहल सौ धनुप लम्बा और पचास धनुप चौड़ा बनाया जावे, जिसके पश्चिम की ओर रनिवास की रचना करावे, इसके अन्त में सेना के पड़े रहने का सुन्दर स्थान होवे ॥१-३॥

पुरस्तादुपस्थानं दक्षिणतः कोशशासनकार्यकरणानि वामतो राजोपवाह्यानां हस्त्यश्वरथानां स्थानम् ॥ ४ ॥ अतो धनुःशतान्तराश्चत्वारः शकटमेथीप्रततिस्तम्भसालपरिक्षेपाः ॥ ५ ॥ प्रथमे पुरस्तान्मन्त्रिपुरोहितौ, दक्षिणतः कोष्ठागारं महानसं च, वामतः कुप्यायुधागारम् ॥६॥ द्वितीये मौलभृतानां स्थानमश्वरथानां

सेनापतेश्च ॥ ७ ॥ तृतीये हस्तिनः श्रेण्यः प्रशास्ता च ॥ ८ ॥ चतुर्थे विष्टिर्नायको मित्रामित्राटवीवलं स्वपुरुषाधिष्ठितम् ॥ ६ ॥ वणिजो रूपाजीवाश्चानुमहापथम् ॥ १० ॥ बाह्यतो लुब्धकश्वगणिनः सतूर्याग्नयः गूढाश्चारक्षाः॥ ११ ॥

राजगृह के सन्मुख ही राजा के मिलने का सभा भवन हो और दक्षिण की ओर कोश, शासन करण (दरवार) और कार्यकरण (कचहरी) बनानी चाहिए। बांयी ओर राज की सवारी के हाथी अश्व और रथों की शालाएं बनवायी जावें इससे सौ २ धनुष की दूरी पर चार वाढ़ें सी बनवाना उचित हैं, जिसमें पहली वाढ़ गाड़ियों के अनुकूल होने से शकट, दूसरी बड़ी २ गांठेदार टहनियों की मेथी प्रतति, तीसरी लकड़ी के साम्य और चौथी दृढ़ परकोटे के ढङ्ग की होनी चाहिए. ये सौ २ धनुष के फासलेपर बनी हुई चहार दीवार राजमहल की रक्षा के निमित्त मानी गई हैं। प्रथम वाढ़ में सामने की ओर मन्त्री और पुरोहित का स्थान होना चाहिए। दक्षिण की ओर भण्डार और रसोई, तथा वांयी ओर तांवा लकड़ी आदि का सामान और शस्त्रागार होना चाहिए। दूसरी परिधि में मौल भृत आदि सेना का स्थान तथा अश्व, रथ और सेनापति का भवन होना चाहिए। तीसरी परिधि में हाथी, श्रेणीवल और प्रशास्ता [कण्टक शोधनाध्यक्ष] का भवन होना उचित है तथा चौथी पंक्ति में ठेकेपर काम करने वाले कारीगर, सेनापति, तथा अपने ही किसी वीर पुरुष के नेतृत्व में चलने वाली शत्रु या मित्र की सेना का निवास होना चाहिए। व्यापारी और वेश्याओं के बड़ी सड़क के साथ ही निवासगृह होने चाहिए। शिकारी कुत्तों के रखने वाले तथा अग्नि और तुरी वाजे के संकेत से शत्रु के आने की सूचना के देने वाले गूढ़ रक्षक पुरुषों को वाहर की परिधि में वसाना चाहिए ॥ ४-११ ॥

शत्रूणामापाते कूपकूटावपातकण्टकिनीश्च स्थापयेत् ॥ १२ ॥ अष्टादशवर्गाणामारक्षविपर्यासं कारयेत् ॥ १३ ॥ दिवायामं च कारयेदपसर्पज्ञानार्थम् ॥ १४ ॥ विवादसौरिकसमाजद्यूतवारणं च कारयेत् ॥ १५ ॥ मुद्रारक्षणं च ॥ १६ ॥ सेनानिवृत्तमायुधीयमशासनं शून्यपालो ऽनुवध्नीयात् ॥ १७ ॥

जिस मार्ग से शत्रु के आने की सम्भावना हो उधर बनावटी कुवे खुदवाकर उन में कांटे लगे तख्ते डलवा देवे । वहां मौल भृत आदि छः प्रकार की सेना और तीन २ अधिकारी त्वर्दिक, नायक और सेनापति इस प्रकार अट्ठारह वर्ग के पुरुषों के पहरे बदलते रहने चाहिए। इससे शत्रु का भय नहीं रहता। यह पहरा रात दिन होना चाहिए,

जिससे शत्रु के गुप्तचरों का भी ज्ञान होता रहे। इन पहरे देने वालों को परस्पर लड़ने, सुरापीने, गोष्ठी करने और जुआ खेलने की बिल्कुल मनाही करदी जावे। भीतर आने और बाहर जाने को राजकीय मुहर लगाने की बड़ी पाबन्दी होवे। जो सैनिक अपनी सेना को छोड़कर इधर उधर व्यर्थ घूम रहा हो और उसके पास कोई राजशासन न हो-तो उसे शून्यपाल सूनी राजधानी का अध्यक्ष बन्धन में डाल देवे ॥१२-१७॥

पुरस्तादध्वनः सम्यक्प्रशास्ता रक्षणानि च ।
यायाद्वर्धकिविष्टिभ्यामुदकानि च कारयेत् ॥ १८ ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे स्कन्धावारनिवेशः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥
आदित एकोनत्रिंशच्छतः ॥ १२९ ॥

कण्टक शोधनाध्यक्ष (प्रशास्ता) अपनी सेना लेकर राजा के गमन से पूर्व ही कारीगर और मजदूरों को लेकर चला जावे और मार्ग साफ करके उसमें जल का छिड़काव करवा दिया करे ॥१८॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत सांग्रामिक अधिकरण में स्कन्धावार के बसाने की विधि के वर्णन का पहला अध्याय समाप्त हुआ।



दूसरा अध्याय

१४८-१४९वां प्रकरण

स्कन्धावारप्रमाणं तथा बलव्यसनावस्कन्दकाल रक्षणम् ।

इस प्रकरण में समस्त सेना के सहित राजा का प्रयाण और अमान, अपमान तथा मार्ग के कष्टों से सेना के बचाने के उपायों का वर्णन किया जावेगा।

ग्रामारण्यानामध्वनि निवेशान् यवसेन्धनोदकवशेन परिसंख्याय स्थानासनगमनकालं च यात्रां यायात् ॥ १ ॥ तत्प्रतीकारद्विगुणं भक्तोपकरणं वाहयेत् ॥२॥ अशक्तो वा सैन्येष्वेव प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥ अन्तरेषु वा निचिनुयात् ॥ ४ ॥

गांव और वन के मार्गों में ठहरने के स्थानों पर घास इन्धन और जल के प्रबन्ध को विचारकर अधिक थोड़े दिन ठहरने या चले जाने का काल निश्चित करके यात्रा करे। उस यात्रा (चढ़ाई) में जितना खाने पीने और वस्त्र आदि की आवश्यकता हो, उससे दुगुनी खाने की सामग्री लेकर चले। यदि अधिक समान ले जानेको गाड़ी न हों-तो थोड़ा २ समान सैनिकों को ही सौंप देवे या बीच में ठहरने के स्थानों पर संग्रह करा देवे ॥१-४॥

पुरस्तान्नायकः ॥ ५ ॥ मध्ये कलत्रं स्वामी च ॥ ६ ॥ पार्श्वयोरश्वा वाहूत्सारः ॥ ७ ॥ चक्रान्तेषु हस्तिनः ॥ ८ ॥ प्रसारवृद्धिर्वा सर्वतः ॥ ६ ॥ वनाजीवः प्रसारः ॥ १० ॥ स्वदेशादन्वायतिर्वीवधः ॥ ११ ॥ मित्रवलमासारः ॥ १२ ॥ कलत्रस्थानमपसारः ॥१३॥ पश्चात् सेनापतिः पर्यायान्निविशेत ॥१४॥

जब राजा यात्रा करे-उसमें सबसे आगे दश सेनापतियों का अधिकारी नायक चले, उस सेना के मध्य में रनिवास और राजा को रहना चाहिए। इधर उधर राजा के पार्श्व में घुड़सवार सेना चले, जो अपनी भुजा के बल से शत्रु के छक्के छुड़ा देने वाली हो। सेना के पीछे के भाग में हाथियों की सेना होनी चाहिए। सब ओर से सेना का सामान घास भूसा आदि लेजाया जावे। वन में उत्पन्न होने वाली वस्तु, प्रसार कहाती हैं। अपने ही देश से लगातार अन्नादि वस्तुओं के आगमन को वीवध कहते हैं। मित्र बल आसार कहाता है। अन्तपुर (रनिवास) के ठहरने के स्थान को अपसार हैं। कहते हैं। सबसे पीछे अपनी २ सेना के साथ अपना २ सेनापति चले ॥५-१४॥

पुरस्तात् अभ्याघाते मकरेण यायात्पश्चाच्छकटेन पार्श्वयोर्वज्रेण समन्ततः सर्वतोभद्रेणैकायने सूच्या ॥ १५ ॥ पथि द्वैधीभावे स्वभूमितो यायात् ॥ १६ ॥ अभूमिष्ठानां हि स्वभूमिष्ठा युद्धे प्रतिलोमा भवन्ति ॥ १७ ॥ योजनमधमा अध्यर्धं मध्यमा द्वियोजनमुत्तमा संभाव्या वा गतिः ॥ १८ ॥

यदि शत्रु के सामने से आने की सम्भावना हो तो अपनी सेना का मकरव्यूह, यदि शत्रु पीछे से आवे-तो शकटव्यूह, इधर उधर पार्श्व से आवे, तो वज्रव्यूह जो चारों ओर से आक्रमण करे-तो सर्वतोभद्र और किसी एक ओर या संकुचित मार्ग से आवे, तो सूचिव्यूह की रचना करनी चाहिए। यदि सेना के ले जाने के दोनों मार्ग हों, अर्थात अपनी भूमि और शत्रुकी भूमि हो तो सेना को अपनी भूमि से ही आगे वढ़ावे। जो अपनी भूमि में नहीं है, उनको अपनी भूमि में स्थित होने से राजा को बड़ा विपरीत पड़ता है। सेना का एक योजन चलना अधम, डेढ़ योजन चलना मध्यम और दो योजन चलना उत्तम कहाता है ॥१५-१८॥

आश्रयकारी संपन्नघाती पार्ष्णिग्राहसारो मध्यम उदासीनो वा प्रतिकर्तव्यः ॥ १६ ॥ सङ्कटो मार्गः शोधयितव्यः ॥ २० ॥ कोशो दण्डो मित्रामित्राटवीबलं विष्टिरृतुर्वा प्रतीक्ष्याः ॥ २१ ॥ कृतदुर्गकर्मनिचयरक्षाचयः क्रीतबल-

निर्वेदो मित्रवलनिर्वेदश्चागमिष्यति, उपजापितारो वा नातित्वरयन्ति, शत्रुर-भिप्रायं वा पूरयिष्यतीति शनैर्यायात् ॥ २२ ॥ विपर्यये शीघ्रम् ॥ २३ ॥

यदि विजेता, अपनी विजय के लिए किसी का आश्रय लेना चाहे, ऐश्वर्यशाली शत्रु को नष्ट करने की इच्छा करे. अथवा पार्ष्णिग्राह, आसार (मित्र वल) मध्यम और उदासीन को दण्ड देना चाहे-तो सिकुड़े हुए मार्ग से गुपचुप यात्रा करनी चाहिए। इस समय कोश, सेना, मित्र, शत्रु और आटविक सेना, सेना में काम करने वाले तथा चढ़ाई के योग्य ऋतु का अच्छी तरह निरीक्षण करे। जो शत्रु के वनाये हुए दुर्ग, धान्य घास आदि का संग्रह, और रक्षक के नाश की सम्भावना हो, धन के द्वारा अधीन की दुर्ग सेना के विरुद्ध हो जाने का निश्चय हो, मित्र की सेना के विरक्त हो जाने की पूर्ण आशङ्का हो, शत्रु के तोड़ने फोड़ने वाले पुरुष कोई शीघ्रता से कार्य न कर रहे हों, अथवा शत्रु के द्वारा ही शीघ्र अभिप्राय सिद्ध होने वाला हो-तो राजा धीरे २ यात्रा करे। यदि शत्रु सावधानी से चल रहा हो, और इनमें से कोई वात न हो-तो शीघ्रता से गमन कर देवे ॥१६-२३॥

हस्तिस्तम्भसंक्रमसेतुवन्धनौकाष्ठवेणुसङ्घातैरलावुचर्मकरण्डदृतिप्लवगण्डिकावेणिकाभिश्चोदकानि तारयेत् ॥ २४ ॥ तीर्थाभिग्रहे हस्त्यश्वैरन्यतो रात्रावुत्तार्य सत्त्रं गृह्णीयात् ॥ २५ ॥ अनुदके चक्रिचतुष्पदं चाध्वप्रमाणेन शक्त्योदकं वाहयेत् ॥ २६ ॥

हाथी, खम्भे, सेतुवन्ध (पुल) नौका, वांस और काष्ठ के वेड़े, तूम्वे, चमड़े से मँढी हुई पिटारी, दृति (मशक) मोमजामे का वना हुआ नौका समान साधन, काग की लकड़ी के तैरने के साधन, तथा मजवूत रस्सियों से सेना-नदियों को पार करके शत्रु के देश में प्रवेश करे। यदि पार उतरने के घाटों को शत्रु ने रोक दिया हो-तो हाथी और अश्वों से अन्य मार्ग से रात में सेना को पार उतारकर सत्र स्थानों में कूट युद्ध को करे। जल रहित प्रदेश में यात्रा के समय गाड़ी या चौपायों पर मार्ग की आवश्यकता के अनुसार जल को भी साथ ले जावे।.२४-२६॥

दीर्घकान्तारमनुदकं यवसेन्धनोदकहीनं वा कृच्छ्राध्वानमभियोगप्रस्कन्नं क्षुत्पिपासाध्वक्लान्तं पङ्कतोयगम्भीराणां वा नदीदरीशैलानामुद्यानापयाने व्यासक्तमेकायनमार्गे शैलविषमे सङ्कटे वा वहुलीभूतं निवेशे प्रस्थिते विसंनाहं भोजनव्यासक्तमायतगतपरिश्रान्तमवसुप्तं व्याधिमरकदुर्भिक्षपीडितं व्याधित-

पत्त्यश्वद्विपमभूमिष्ठं वा बलव्यसनेषु वा स्वसैन्यं रक्षेत् ॥ २७ ॥ परसैन्यं चाभिहन्यात् ॥ २८ ॥

जब सेना चल रही हो और मार्ग में लम्बे २ वन आ रहे हों जल न मिलता हो, घास इन्धन और जल से रहित मार्ग हों, मार्ग बड़ी कठिनाई से काटना पड़ रहा हो, बार २ की चढ़ाई से थकी हुई, भूख, प्यास और मार्ग की थकान से युक्त, भारी कीचड़, गहरे जल, नहरें, गुफा पर्वत और वन के वृक्षों को पार करना पड़ रहा हो, सिकुड़े मार्ग से चलना हो, ऊंचे नीचे पर्वत या सकड़े स्थान पर इकट्ठी हुई हो. ठहरने या यात्रा के समय कवच हीन रहना पड़ रहा हो, भोजन में सेना लगी हो, लम्बी चली आने से थकान में भरी हो, सोती हो, रोग महामारी, दुर्भिक्ष से सेना पीड़ित हो, पैदल अश्व, और हाथी जिसके बीमार हो रहे हों, जो अयोग्य भूमि में स्थित हों,-इन सेना के कष्टों के समय में राजा अपनी सेना की ध्यान से रक्षा करे। जब शत्रु सेना इस झंझट मे फँसी हो, तब उसपर आघात करे ॥२७-२८॥

एकायनमार्गप्रयातस्य सेनानिश्चारग्रासाहारशय्याप्रस्ताराग्निनिधानध्वजायुधसंख्यानेन परबलज्ञानं, तदात्मनो गूहयेत् ॥ २९ ॥

जब शत्रु, तंग मार्ग से गमन कर रहा हो, उस समय सेना के पुरुष, वाहन, भोजन सामग्री शय्या, चूल्हे, ध्वजा और शस्त्रों की गणना से शत्रु की सेना के बल का पता लगावें और अपनी सेना की गणना कराने वाले इन्हीं साधनों को यथा शक्ति छुपाता रहे ॥ २९ ॥

पार्वतं वा नदीदुर्गं सापसारप्रतिग्रहम् ।
स्वभूमौ पृष्ठतः कृत्वा युध्येत् निविशेत च ॥ ३० ॥

इति सांग्रामिके दशमेऽधिकरणे स्कन्धावारप्रयाणं, बलव्यसनावस्कन्दकालरक्षणं च द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥ आदितस्त्रिंशच्छतः ॥ १३० ॥

शत्रु के आक्रमण से निकल जाने या शत्रु को पकड़ लेने के स्थानों से युक्त पर्वत या नदी दुर्ग को अच्छी तरह अपनी भूमि में तय्यार करके विजेता राजा युद्ध करे और उसमें निवास करता रहे ॥ ३० ॥

इतिश्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत व्यसनाधिकारिक अधिकरण में स्कन्धावार पयाण और सेना की विपत्तियों से रक्षा करने करने का दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



तीसरा अध्याय

१५०-१५२ वां प्रकरण

कूट युद्ध विकल्पाः

इस प्रकरण में कूट युद्ध के विकल्प और सेना के प्रोत्साहन आदि का वर्णन होगा।

वलविशिष्टः कृतोपजापः प्रतिविहितर्तुः स्वभूम्यां प्रकाशयुद्धमुपेयात् ॥ १ ॥ विपर्यये कूटयुद्धम् ॥ २ ॥ वलव्यसनावस्कन्दकालेषु परमभिहन्यात् ॥ ३ ॥ अभूमिष्ठं वा स्वभूमिष्ठः ॥ ४ ॥ प्रकृतिप्रग्रहो वा स्वभूमिष्ठं दूष्यामित्राटवीवलैर्वा भङ्गं दत्त्वा विभूमिप्राप्तं हन्यात् ॥ ५ ॥ संहतानीकं हस्तिभिर्भेदयेत् ॥ ६ ॥

विजेता राजा जव उत्तम सेना से युक्त हो, शत्रु पक्ष के अमात्य आदि को अपनी ओर मिला चुका हो, तो सन्मुख युद्ध के उपस्थित शत्रु से अपनी भूमि में प्रकाश युद्ध करे। यदि सेना ठीक न हो या तोड़ फोड़ न की जा सकी हो-तो कूट युद्ध करना चाहिए। जब शत्रु की सेना में कोई व्यसन हों अर्थात् उनके स्वामी द्वारा उनका तिरस्कार आदि कुछ हुआ हो या लम्बी यात्रा से थकी हुई या गीरी हुई हो, तो उस समय विजेता को आक्रमण कर देना चाहिए। परन्तु यह ध्यान रहे, कि जहां तक हो सके, शत्रु अयोग्य भूमि में आ चुका हो और आप अपनी उचित स्थित में हो-तो आक्रमण कर दे। यदि राज के मन्त्री आदि प्रकृति में से कोई अपनी ओर मिल गया हो-तो अपनी भूमि में स्थित शत्रु पर भी आक्रमण किया जा सकता है। कैसी भी अच्छी या बुरी भूमि में शत्रु स्थित हो अपने से अप्रसन्न दुष्ट सैनिक शत्रु या आटविक पुरुषों की सेना से उसकी टक्कर कराकर राजा उस शत्रु को मार लेवे। यदि उसकी सेना बहुत ही संगठित हो-तो उसके गोल को हाथियों से छिन्न भिन्न कर देवे ॥ १-६ ॥

पूर्वं भङ्गप्रदानेनानुप्रलीनं भिन्नमभिन्नं प्रतिनिवृत्य हन्यात् ॥ ७ ॥ पुरस्तादभिहत्य प्रचलं विमुखं वा पृष्ठतो हस्त्यश्वेनाभिहन्यात् ॥ ८ ॥ पृष्ठतोऽभिहत्य प्रचलं विमुखं वा पुरस्तात्सारबलेनाभिहन्यात् ॥ ९ ॥ ताभ्यां पार्श्वाभिघातौ व्याख्यातौ ॥ १० ॥ यतो वा दूष्यफल्गुबलं ततोऽभिहन्यात् ॥ ११ ॥

पुरस्ताद्विषमायां पृष्ठतो ऽभिहन्यात् ॥ १२ ॥ पृष्ठतो विषमायां पुरस्तादभिहन्यात् ॥ १३ ॥ पार्श्वतो विषमायामितरतोऽभिहन्यात् ॥ १४ ॥

प्रथम भङ्ग (शिकस्त) देने से भागी हुई, छिन्न-भिन्न सेना पर अपनी संगठित सेना द्वारा आक्रमण किया जावे । जब सामने से आक्रमण हुआ और शत्रु सेना विचलित या भाग निकली-तो उसपर पीछे से आक्रमण करके हाथी और अश्वों से कुचलवा डाले। जब पीछे से भारी आक्रमण कर दिया गया हो और सेना तितर बितर हो गई हो-तो आगे से भी बड़ी वीर सेना के द्वारा उनपर आक्रमण कर देवे। जिस तरह आगे और पीछे से आक्रमण किया गया, इसी तरह अगल बगल से भी आक्रमण कर देने चाहिए। जिस ओर शत्रु के सैनिक अपने स्वामी से अप्रसन्न हों-या जहां निर्बल सेना हो, विजेता प्रथम उसी स्थान पर आक्रमण करे। यदि सामने से आक्रमण करना टेढ़ी खीर हो-तो पीछे से ही प्रहार करे। यदि पीछे से आक्रमण करने में कठिनाई उपस्थित हो-तो आगे आकर शत्रु सेना पर छापा मारे। जो एक पार्श्व से आक्रमण में सन्देह हो-तो दूसरी ओर से आक्रमण कर देवे ॥७-१४॥

दूष्यामित्राटवीबलैर्वा पूर्वं योधयित्वा श्रान्तमश्रान्तः परमभिहन्यात् ॥१५॥ दूष्यबलेन वा स्वयं भङ्गं दत्त्वा जितमिति विश्वस्तमविश्वस्तः सत्रापाश्रयो ऽभिहन्यात् ॥ १६ ॥ सार्थव्रजस्कन्धावारसंवाहविलोपप्रमत्तमप्रमत्तो ऽभिहन्यात् ॥ १७ ॥ फल्गुबलावच्छन्नः सारबलो वा परवीराननुप्रविश्य हन्यात् ॥ १८ ॥ गोग्रहणेन श्वापदवधेन वा परवीरानाकृष्य सत्रच्छन्नो ऽभिहन्यात् ॥ १९ ॥

अपने से छुपे २ बिगड़े हुए राजा, दबे हुए शत्रु और आटविक (भील) लोगों की प्रबलता से प्रथम शत्रु को थकाकर आप अश्रान्त हुआ शत्रु पर आघात करे। अपने दुष्ट राजाओं की सेना को स्वयं किसी प्रकार पराजित करा देवे, जिससे शत्रु अपने विजयी होने से निश्चिन्त हो जावे, फिर आप सावधानी से सत्र स्थान के कूट युद्ध का अवलम्बन करके शत्रु सेना को मार गिरावे। अपने व्याघ्रादि, गो समूह, सेना की छावनी के नाश होने से बचाने की रक्षा में तत्पर शत्रु पर विजेता अप्रमत्त होकर आक्रमण करे। बाहर की ओर कमजोर सी सेना लगाकर उसके मध्य में दृढ़ वीरों को लेकर शत्रु सेना के वीरों में मार काट मचा देवे। शत्रु के गो समूह को छीन कर या जंगली जन्तुओं के शिकार का बहाना बना कर शत्रु वीरों को अपनी ओर बहका कर ले आवे और फिर वही सत्र स्थान युद्ध से उनको मार गिरावे ॥ १५-१९ ॥

रात्राववस्कन्देन जागरयित्वाऽनिद्राक्लान्तानवसुप्तान्वा दिवा हन्यात् ॥ २० ॥ सपादचर्मकोशैर्वा हस्तिभिः सौप्तिकं दद्यात् ॥ २१ ॥ अहःसेनाहपरिश्रान्तानपराह्णे ऽभिहन्यात् ॥ २२ ॥ शुष्कचर्मवृत्तशर्कराकोशकैर्गोमहिषोष्ट्रयूथैर्वा त्रस्नुभिरकृतहस्त्यश्वं भिन्नमभिन्नः प्रतिनिवृत्तं हन्यात् ॥ २३ ॥ प्रतिसूर्यवातं वा सर्वमभिहन्यात् ॥ २४ ॥

विजेता राजा रात भर मार काट या लूट मार करता रहे, इस प्रकार शत्रु के सैनिकों को निद्रा से व्याकुल होने या दिन में सोने पर मार देवे। हाथियों के पैरों में चर्म पहनाकर उनसे उन सोते हुए शत्रु सैनिकों को कुचलवा देवे। दिन के पूर्वार्द्ध में कवायद आदि से थके हुए शत्रु सैनिकों को दोपहर के बाद के युद्ध में मार लेवे। शुष्क चर्म में लिपटे हुए मिट्टी के गोले, या पत्थर के टुकड़ों तथा डरे हुए बैल भैंसे और ऊंटों से उस लौटती हुई शत्रु सेना को मरवावे। सेना बिल्कुल संगठित रहनी चाहिए। इस आक्रमण हाथी और अश्वों से शत्र सेना को छिन्न भिन्न नहीं किया जाता। यदि शत्रु सेना सूर्य और वायु के सामने होने से कुछ घबरा रही हो-तो उस समय भी उसपर प्रहार किया जा सकता है ॥२०-२४॥

धान्वनवनसङ्कटपङ्कशैलनिम्नविषमनावो गावः शकटव्यूहो नीहारो रात्रिरिति सत्राणि ॥ २५ ॥ पूर्वे च प्रहरणकालाः कूटयुद्धहेतवः ॥ २६ ॥ संग्रामस्तु निर्दिष्टदेशकालो धर्मिष्ठः ॥ २७ ॥

मरु स्थल, वन, सिकुड़े स्थान, कीचड़, पर्वत, नीचे ऊंचे स्थान, नावें गौ के झुण्ड शकट व्यूह, हिम (वर्फ) पात और रात ये सत्र कहाते हैं। अब तक जो प्रकरण के काल और स्थान बताए गए वे सब कूट युद्ध के हेतु हैं। देश और काल का प्रथम से ही निश्चित कर लेना धर्म युद्ध कहाता है ॥२५-२७॥

संहत्य दण्डं ब्रूयात्—॥ २८ ॥ तुल्यवेतनोऽस्मि ॥ २९ ॥ भवद्भिः सह भोग्यमिदं राज्यम् ॥ ३० ॥ मयाभिहितः परो ऽभिहन्तव्य इति ॥ ३१ ॥ वेदेष्वप्यनुश्रूयते समाप्तदक्षिणानां यज्ञानामवभृथेषु –॥ ३२ ॥ "सा ते गतिर्या शूराणाम् इति" ॥ ३३ ॥ अपीह श्लोकौ भवतः–॥ ३४ ॥

राजा अपनी सेना को उत्साहित करने को कहे, कि मैं राजा नहीं हूं, मैं तो तुम्हारी तरह एक वेतन भोगी व्यक्ति हूं। मुझे तो आपको साथ लेकर और बांटकर इस राज्य का शासन करना या इसे भोगना है। मैं जिस शत्रु पर आक्रमण करूंगा तुम्हें उसपर फौरन

प्रहार करना चाहिए। वेदो में भी यज्ञों की दक्षिणा के समय जब यज्ञ समाप्ति का स्नान होता है, तब यजमान को आशीर्वाद देते सुना गया है, कि तुम्हें वही गति प्राप्त हो-जो रण में शूरवीरों को प्राप्त होती है। इस विषय में दो श्लोक भी सुने जाते हैं ॥२८-३४॥

यान्यज्ञसङ्घैस्तपसा च विप्राः स्वर्गैषिणः पात्रचयैश्च यान्ति ।
क्षणेन तानप्यतियान्ति शूराः प्राणान्सुयुद्धेषु परित्यजन्तः ॥ ३५ ॥

जिन लोकों को यज्ञ समूह, तप तथा अनेक यज्ञियपात्रों का चयन करके स्वर्ग के अभिलाषी ब्राह्मण जाते हैं, उन ही लोकों को युद्ध में प्राण छोड़ने वाले, शूरवीर क्षण भर में प्राप्त कर लेते हैं ॥३५॥

नवं शरावं सलिलस्य पूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम् ।
तत्तस्य माभून्नरकं च गच्छेद्यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ॥३६॥

जो पुरुष अपने स्वामी के अन्न के उऋण करने के निमित्त युद्ध नहीं करता, उसको यज्ञ में जल से भरे हुए, मन्त्रों से सुसंस्कृत, दर्भ से ढ़के हुए, नये सकोरे का आचमन प्राप्त नहीं होना चाहिए अर्थात् उसको इस पवित्र कर्म में सम्मिलित नहीं करना चाहिए। इस पुरुष को मृत्यु के अनन्तर नरक की ही प्राप्ति होती है ॥३६॥

इति मन्त्रिपुरोहिताभ्यामुत्साहयेद्योधान् ॥ ३७ ॥

इस प्रकार के उत्साहपूर्ण व्याख्यान मन्त्री और पुरोहितों द्वारा योद्धाओं को देने चाहिए ॥३७॥

व्यूहसंपदा कार्तान्तिकादिश्चास्य वर्गः सर्वज्ञदैवसंयोगख्यापनाभ्यां स्वपक्षमुद्धर्षयेत् ॥ ३८ ॥ परपक्षं चोद्वेजयेत् ॥ ३९ ॥ श्वो युद्धमिति कृतोपवासः शस्त्रवाहनं चाधिशयीत ॥ ४० ॥ अथर्वभिश्च जुहुयात् ॥ ४१ ॥ विजययुक्ताः स्वर्गीयाश्चाशिषो वाचयेत् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणेभ्यश्चात्मानमतिसृजेत् ॥ ४३ ॥

विजयाभिलाषी राजा के ज्योतिषी या मुहूर्त देखने वाले पुरुष उत्तम २ दुर्ग बनवावे इन ज्योतिषियों की सर्वज्ञता और भविष्यज्ञान की प्रसिद्धि से राजा अपने पक्ष को उत्साहित करदे अर्थात् इन ज्योतिषियों के बताए समय में दुर्ग रचनाएँ की गई हैं इससे कभी पराजय नहीं होगी-इस तरह प्रसिद्ध करके अपने पक्ष को हर्षित और शत्रु पक्ष को बेचैन करदे। कल युद्ध है इस प्रकार जब राजा को निश्चय हो जावे, तो वह पूर्व दिन उपवास कर शस्त्र और हाथी घोड़े आदि सवारियों के पास ही शयन और अथर्ववेद के

मन्त्रों से हवन करे। विजय कराने वाली और शत्रुओं को स्वर्ग पहुंचाने वाली आशिषों को ब्राह्मणों से वचवावे और अपने आपको ब्राह्मणों की रक्षा में छोड़ दे ॥३८-४३॥

शौर्यशिल्पाभिजनानुरागयुक्तमर्थमानाभ्यामविसंवादितमनीकगर्भं कुर्वीत ॥ ४४ ॥ पितृपुत्रभ्रातृकाणामायुधीयानामध्वजं मुण्डानीकं राजस्थानम् ॥४५॥ हस्ती रथो वा राजवाहनमश्वानुबन्धे ॥ ४६ ॥ यत्प्रायः सैन्यो यत्र वा विनीतः स्यात्तदधिरोहयेत् ॥ ४७ ॥ राजव्यञ्जनो व्यूहानुष्ठानमायोज्यः ॥ ४८ ॥

शूरवीरता, कारीगरी, कुलीनता और प्रीति से युक्त तथा धन और मान से अनुकूल बनाई हुई सेना को रक्षा के लिए नियुक्त करे। शस्त्रधारी पिता पुत्र और भाइयों की ध्वजा हीन सेना को राजा के समीप ही रक्खे। हाथी, रथ, राजा के वाहन होने चाहिए और राजा के इधर उधर अश्वारोही सेना चले। जिस सवारी पर सेना चल रही हो, उसी के द्वारा राजा भी यात्रा करे अथवा राजा को जिस सवारी का अभ्यास हो, उसी पर चढ़ कर चले। सेना और दुर्ग के प्रबन्ध में किसी वीर को राजा के समान वस्त्र भूषण धारण कराकर लगाया जावे, जिससे शत्रु असली राजा पर आक्रमण करने में सफल न हो सके ॥ ४४-४८ ॥

सूतमागधाः शूराणां स्वर्गमस्वर्गं भीरूणां जातिसंघकुलकर्मवृत्तस्तवं च योधानां वर्णयेयुः ॥ ४९ ॥ पुरोहितपुरुषाः कृत्याभिचारं ब्रूयुः ॥ ५० ॥ सत्त्रिवर्धकिमौहूर्तिकाः स्वकर्मसिद्धिमसिद्धिं परेषाम् ॥ ५१ ॥

सूत, मागध, वन्दी जन शूरवीरों को स्वर्ग का लालच और दुखों को नरक का भय दिखावे, तथा योद्धाओं के जाति समूह कुल और काम आचरण आदि का वर्णन करते रहें। पुरोहित जन कृत्या नामक देवता द्वारा शत्रु की मारण क्रिया का प्रयोग करे। सत्री नामक गुप्तचर कारीगर और मूहूर्त देखने वाले ज्योतिषी अपने कर्म की सिद्धि और शत्रु की असिद्धि की प्रसिद्धि करते रहें ॥ ४९-५१ ॥

सेनापतिरर्थमानाभ्यामभिसंस्कृतमनीकमाभाषेत ॥ ५२ ॥ शतसाहस्रो राजवधः ॥ ५३ ॥ पञ्चाशत्साहस्रः सेनापतिकुमारवधः ॥ ५४ ॥ दशसाहस्रः प्रवीरमुख्यवधः ॥ ५५ ॥ पञ्चसाहस्रो हस्तिरथवधः ॥ ५६ ॥ साहस्रोऽश्ववधः ॥ ५७ ॥ शत्यः पत्तिमुख्यवधः ॥ ५८ ॥ शिरो विंशतिकम् ॥ ५९ ॥ भोगद्वैगुण्यं स्वयंग्राहश्चेति ॥ ६० ॥ तदेषां दशवर्गाधिपतयो विद्युः ॥ ६१ ॥

राजा का सेनापति धन और मान से संयुक्त अपनी सेना से इस प्रकार कहे, कि जो तुम शत्रु राजा का वध कर लोगे, तो तुम्हें लाखों रुपया इनाम मिलेगा। शत्रु के सेनापति या राजकुमार के मारने पर पचास हजार, अमुक मुख्य वीर के मारने पर दस हजार हाथी और रथ के नष्ट कर देने पर पांच हजार, अश्वों के मारने पर एक हजार किसी मुख्य सैनिक के मारने पर सौ रुपये और साधारण सैनिक के मारने पर बीस रुपये मिलेंगे। तुम लोगों का भत्ता और वेतन दुगुना कर दिया जावेगा और लूटमें जो माल मिलेगा, वह भी तुम्हारा ही होगा। यह सूचना सेनापति, नायक, पदिक आदि अधिकारियों को दे देनी चाहिए ॥ ५२-६१ ॥

चिकित्सकाः शस्त्रयन्त्रागदस्नेहवस्त्रहस्ताः स्त्रियश्चान्नपानरक्षिण्यः पुरुषाणामुद्धर्षणीयाः पृष्ठतस्तिष्ठेयुः ॥६२॥ अदक्षिणामुखं पृष्ठतः सूर्यमनुलोमवातमनीकं स्वभूमौ व्यूहेत ॥ ६३ ॥ परभूमिव्यूहे चाश्वांश्चारयेयुः ॥ ६४ ॥ यत्र स्थानं प्रजवश्चाभूमिव्यूहस्य तत्र स्थितः प्रजवितश्चोभयथा जीयेत ॥ ६५ ॥ विपर्यये जयति उभयथा स्थाने प्रजवे च ॥ ६६ ॥

शस्त्र, चिमटी आदि यन्त्र, औषधि, घृत, तेल, वस्त्र, आदि को लिए हुए शिल्प शास्त्र के ज्ञाता वैद्य और अन्न पानी की रक्षा करने वाली तथा हास्य विनोद से वीरों को प्रसन्न रखने वाली स्त्रियों को सेना के पिछले हिस्से में रक्खें, विजेता राजा अपनी सेना को दक्षिण की ओर मुख करके खड़ा न करे। सूर्य की ओर से पीठ करके वायु के अनुकूल अपनी भूमि में राजा अपनी सेना का व्यूह बनावे। यदि शत्रु की भूमि में व्यूह बनाना पड़े, तो उस स्थान में अश्वों का चक्करदार व्यूह बनाना चाहिए। विजेता राजा जो अयोग्य भूमि में व्यूह बनावे, तो चाहे अधिक दिन ठहर कर युद्ध करना हो या शीघ्र लौटना हो, तो वहां ठहरने और जल्दी ही लौटने में दोनों ही तरह पराजय होता है, यदि सुयोग्य भूमि में व्यूह बनाया गया है, तो अधिक दिन ठहर कर युद्ध करने या जल्दी ही लौटने-दोनों ही तरह विजय हो जाती है ॥ ६२-६६ ॥

समा विषमा व्यामिश्रा वा भूमिरिति पुरस्तात्पार्श्वाभ्यां पश्चाच्च ज्ञेया ॥ ६७ ॥ समायां दण्डमण्डलव्यूहाः ॥६८॥ विषमायां भोगसंहतव्यूहाः ॥६९॥ व्यामिश्रायां विषमव्यूहाः ॥ ७० ॥ विशिष्टबलं भङ्क्त्वा संधिं याचेत ॥७१॥ समबलेन याचितः संदधीत ॥ ७२ ॥ हीनमनुहन्यात् ॥ ७३ ॥ न त्वेव स्वभूमिप्राप्तं त्यक्तात्मानं वा ॥ ७४ ॥

आगे, व इधर उधर और पीछे की ओर सम, विषम और व्यामिश्र संज्ञक तीन तरह की भूमि होती है। सम भूमि में दण्डाकार और मण्डलाकार व्यूह बनाए जाते है। विषम भूमि में भोग व्यूह और संहत व्यूह बनाने चाहिए। व्यामिश्र भूमि में विषम व्यूह की रचना उचित है। विजेता शक्तिशाली सेना से युक्त शत्रु को पराजित करके स्वयं सन्धि की याचना करे और समान बलवाले से सन्धि की याचना करने पर सन्धि करले और जो बलहीन शत्रु होवे-उसे नष्ट कर देवे, परन्तु यदि हीनबल शत्रु ही अपनी भूमि में पहुंच गया या प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध के लिए तय्यार हो गया, तो उससे भी सन्धि ही कर लेनी चाहिए ॥६७-७४॥

पुनरावर्तमानस्य निराशस्य च जीविते।
अधार्यो जायते वेगस्तस्माद्भग्नं न पीडयेत् ॥ ७५ ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे कूटयुद्धविकल्पाः स्वसैन्योत्साहनं स्वबलान्यबलव्यायोगश्च तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदित एकत्रिंशच्छतः ॥१३१॥

जब शत्रु जीवन की आशा छोड़कर युद्ध के लिए लौट पड़ता है, तो इसका भी वेग सभांला नहीं जा सकता। इन सब बातों को सोचकर पराजित शत्रु को भी आवश्यकता से अधिक नहीं दबाना चाहिए ॥७५॥

इति श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत सांग्रामिक अधिकरण में कूटयुद्ध के भेद आदि के वर्णन का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।



चौथा अध्याय

१५३-१५४वां प्रकरण

युद्ध भूमियः पत्त्यश्वरथ हस्तिकर्माणि

इस प्रकरण में युद्ध के योग्य भूमि तथा पदाति अश्व, रथ और हाथियों के कार्यों का वर्णन किया जावेगा।

स्वभूमिः पत्त्यश्वरथद्विपानामिष्टा युद्धे निवेशे च ॥ १ ॥ धान्वनवननिम्नस्थलयोधिनां खनकाकाशदिवारात्रियोधिनां च पुरुषाणां नादेयपार्वतानूपसारसानां च हस्तिनामश्वानां च यथास्वमिष्टा युद्धभूमयः कालाश्च ॥ २ ॥ समा स्थिराभिकाशा निरुत्खातिन्यचक्रखुरानक्षग्राहिण्यवृक्षगुल्मप्रतिस्तम्भकेदारश्वभ्रवल्मीकसिकताभङ्गभङ्गुरा दरणहीना च रथ भूमिः ॥ ३ ॥

पदैल, घुड़सवार, रथी और हाथी के सवारों के युद्ध के समय अपने अनुकूल भूमि का होना अत्यन्त आवश्यक है और इसी तरह सेना के पड़ाव के लिए भी अपनी ही भूमि अधिक उपयोगी होती है । मरुस्थल और वन के दुर्ग, तथा नीचे ऊंचे स्थल, खाई, आकाश, दिन रात, नदी, पहाड़ जलमय प्रदेश, हाथी और अश्वों के द्वारा युद्ध करने वाले वीरों को यथायोग्य युद्ध के उपयोगी अपनी भूमि श्रेष्ठ होती है और इसी तरह युद्धोपयोगी काल की भी आवश्यकता है । ऊंचाई निचाई से हीन, मिट्टी धूल से रहित, खाई और खड़े से हीन, रथ के चक्र, घोड़ों के खुर, रथ के धुरों को नहीं पकड़ने वाली, वृक्ष, भाड़ी, लता, ठूठ, क्यारी, खड्डे, बमई, मिट्टी, कीचड़ और तिरछेपन से रहित भूमिमें रथ चलने के योग्य होती है। इस भूमि में दरार आदि कुछ नहीं होने चाहिए॥१-३॥

हस्त्यश्वयोर्मनुष्याणां च समे विषमे हिता युद्धे निवेशे च ॥ ४ ॥ अणवश्मवृक्षा ह्रस्वलङ्घनीयश्वभ्रा मन्ददरणदोषा चाश्वभूमिः ॥ ५ ॥ स्थूलस्थाणवश्मवृक्षप्रततिवल्मीकगुल्मा पदातिभूमिः ॥ ६ ॥ गम्यशैलनिम्नविषमा मर्दनीयवृक्षा छेदनीयप्रततिः पङ्कभंगुरदरणहीना च हस्तिभूमिः ॥ ७ ॥ अकण्टकिन्यबहुविषमा प्रत्यासारवतीति पदातीनामतिशयः ॥ ८ ॥ द्विगुणप्रत्यासारा कर्दमोदकखञ्जनहीना निःशर्करेति वाजिनामतिशयः ॥ ९ ॥

हाथी, घोड़े और मनुष्यों के युद्ध और पड़ाव समयानुसार सम या विषम भूमि उपयोगी हो जाती है । कङ्कर, पत्थर और वृक्षों से युक्त, छोटे मोटे उल्लंघन करने युक्त खड्डों से समन्वित, थोड़ी बहुत दूसरों से ही सहित भूमि भी अश्वों के लिए उपयोगी हो सकती है । मोटे २ टूट पत्थर कङ्कर वृक्ष लता बमई भाड़ी आदि से व्याप्त भूमि पैदल सेना के व्यवहार में आ सकती है चढ़ने योग्य पहाड़, ऊँचे नीचे स्थल, हाथियों के खुजाने योग्य वृक्षों से समन्वित, तोड़ने मरोड़ने योग्य लताओं से भरी हुई कीचड़ या टेढ़ी मेढी दरारों से रहित भूमि में हाथियों की सेना लेजाई जा सकती है। जिसमें काँटे न हों, जो बहुत ऊँची नीची न हो, जिसमें आने जाने के सुभीते हों, वह भूमि पैदल सेना के लिए अधिक उत्तम मानी गई है। जिस भूमि में पूर्वोक्त भूमि की अपेक्षा अधिक आने जाने का सुभीता हो, कीचड़ जल, दलदल और कङ्कड़ीली मिट्टी से रहित हो, वह भूमि अश्वों की सेना के लिए अधिक उपयोगी मानी गई है ॥४-६॥

पांसुकर्दमोदकनलशराधानवती श्वदंष्ट्राहीना महावृक्षशाखाघातवियुक्तेति हस्तिनामतिशयः ॥ १० ॥ तोयाशयाश्रयवती निरुत्खातिनी केदारहीना व्याव-

र्तनसमर्थेति रथानामतिशयः ॥ ११ ॥ उक्ता सर्वेषां भूमिः ॥ १२ ॥ एतया सर्वबलनिवेशा युद्धानि च व्याख्यातानि भवन्ति ॥ १३ ॥

धूल, कीचड़, नरसल, आदि से युक्त गोखरुओं से रहित, बड़े २ वृक्षों की शाखा के आघातों के अभावों वाली भूमि हाथियों की सेना के लिए उत्तम मानी गई है। जलाशय और धर्मशाला आदि स्थानों से युक्त ऊंचे नीचे स्थानों से रहित, खेत क्यार से हीन समय पर रथों के मोड़ लेने योग्य भूमि रथ सेना के उपयोगी होती है। इस प्रकार यहां तक सब तरह की सेनाओं की भूमि का निरूपण कर दिया गया। इसी कथन से सारी सेनाओं का पड़ाव और युद्धस्थलों की व्याख्या समझ लेनी चाहिए ॥ १०-१३ ॥

भूमिवासवननिचयो विषमतोयतीर्थवातरश्मिग्रहणं वीवधासारयोर्घातो रक्षा वा विशुद्धिस्थापना च बलस्य प्रसारवृद्धिर्बाहूत्सारः पूर्वप्रहारो व्यावेशनं व्यावेधनमाश्वासो ग्रहणं मोक्षणं मार्गानुसारविनिमयः कोशकुमाराभिहरणं जघनकोट्यभिघातो हीनानुसारणमनुयानं समाजकर्मेत्यश्वकर्माणि ॥ १४ ॥

भूमि निवास स्थान और वन का संशोधन विषयस्थान, जल का पार करना, वायु सूर्य की किरणों का ज्ञान, शत्रु के देश से आने वाले द्रव्य और शत्रु के मित्र की सेना का नाश अपनी बाहर जाने वाली व्यापार की वस्तु, अपने सेना की रक्षा, शत्रु सेना का नाश, अपनी सेना की स्थापना, धान्य और घास का संग्रह एक दम शत्रु का पीछे हटाना, शत्रु की सेना पर एक दम प्रहार करना और उसे विचलित कर देना। शत्रु सेना को पीड़ा और अपनी को तसल्ली देना, शत्रु सेना को पकड़ना, और अपनी को छुड़ाना, शत्रु सेना का पीछा करना, शत्रु के कोष और राजकुमार का छीन लाना पीछे और आगे से आक्रमण कर देना। अश्वों से हीन और भागी हुई सेना का पीछा करना और अपनी सेना का इकट्ठा करना। यह सारे कार्य अश्वों के होते हैं ॥ १४ ॥

पुरोयानमकृतमार्गवासतीर्थकर्म बाहूत्सारस्तोयतरणावतरणे स्थानगमनावतरणं विषमसंबाधः प्रवेशोऽग्निदानशमनमेकाङ्गविजयः भिन्नसंधानमभिन्नभेदनं व्यसने त्राणमभिघातो विभीषिका त्रासनमौदार्यं ग्रहणं मोक्षणं सालद्वाराट्टालकभञ्जनं कोशवाहनमिति हस्तिकर्माणि ॥ १५ ॥

अपनी सेना के आगे चलना, नये मार्ग, निवास स्थान और जल से तैरने का मार्ग बनाना शत्रुओं को पीछे हटाना, जल को पार करना या इसमें प्रवेश करना, शत्रु

सेना के आक्रमण करने पर पंक्ति बांध कर खड़े होना मार्ग में चलना या पानी में उतर जाना, घने जङ्गल और शत्रु सेना में घुस जाना, आग बुझाना, शत्रु की सेना के एक भाग को जीतना, अपनी बिखरी हुई सेना को इकट्ठी करना, शत्रु की नहीं बिखरी हुई सेना को बखेर देना, आपत्ति के समय रक्षा करना, शत्रु सेना का कुचलना, डराना विचलित कर देना, अपनी सेना का महत्व दिखाना, शत्रु की सेना को पकड़ना, अपनी अपनी छुड़ाना, शत्रु के ऊंचे २ द्वार, अटारियों को तोड़ना, शत्रु के कोष को लाद ले जाना हाथियों के करने योग्य काम माना गया है ॥ १५ ॥

स्वबलरक्षा चतुरङ्गबलप्रतिषेधः संग्रामे ग्रहणं मोक्षणं भिन्नसंधानमभिन्नभेदनं त्रासनमौदार्यं भीमघोषश्चेति रथकर्माणि ॥ १६ ॥ सर्वदेशकालशस्त्रवहनं व्यायामश्चेति पदातिकर्माणि ॥ १७ ॥ शिबिरमार्गसेतुकूपतीर्थशोधनकर्म यन्त्रायुधावरणोपकरणग्रासवहनमायोधनाच्च प्रहरणावरणप्रतिविद्धापनयनमिति विष्टिकर्माणि ॥ १८ ॥

अपनी सेना की रक्षा, शत्रु की चतुराङ्गिणी सेना का रोकना, संग्राम में शत्रु के वीरों को पकड़ना, अपने वीरों को छुड़ाना अपनी बिखरी हुई सेना को इकट्ठी करना, शत्रु की नहीं बिखरी हुई सेना को बखेरना और डराना, अपना महत्व दिखाना और भयङ्कर घोष करना-रथों के काम माने गए हैं। सारे देश और काल में शस्त्र चलाना, रथ युद्ध में भीषण कर्म कर दिखाना, पैदलों का कर्म है। खेमे, तम्बू, मार्ग पुल, कुवे, घाट आदि का काम करना, घास आदि उखाड़ कर साफ करना, यन्त्र हथियार कवच तथा अन्य प्रकार का युद्धोपयोगी सामान अन्न घास का ले जाना, युद्ध भूमि से हथियार कवच इकट्ठे करके लाना-ये सेना के मजदूर कर्मचारियों के काम है ॥१६-१८॥

कुर्याद्गवाश्वव्यायोगं रथेष्वल्पहयो नृपः ।
खरोष्ट्रशकटानां वा गर्भमल्पगजस्तथा ॥ १९ ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे युद्धभूमयः पत्त्यश्वरथहस्तिकर्माणि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितो द्वात्रिंशशतः ॥ १३२ ॥

जिस राजा के पास थोड़े घोड़े हो, वह कुछ रथों में जोड़े और कुछ में अश्वों को जोड़े तथा जिस राजा के पास हाथी थोड़े हो, वह गधे, ऊंट और गाड़ियों से सेना के बीच के भाग की रक्षा करे ॥१९॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत सांग्रामिक अधिकरण में युद्ध के योग्य भूमि तथा पैदल, अश्व आदि के कामों के वर्णन का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।

पांचवां अध्याय

१५५-१५७वां प्रकरण

पक्ष कक्षो रस्यानां बलाग्रतो व्यूहविभागः सार फल्गुविभागः पत्यश्वरथ हस्ति युद्धानि

इस प्रकरण में पक्ष कक्ष आदि व्यूह तथा सार और असार सेना का विभाग एवं अश्व रथ और हाथियों के युद्ध का वर्णन किया जावेगा।

पञ्चधनुःशतावकृष्टदुर्गमवस्थाप्य युद्धमुपेयात्, भूमिवशेन वा ॥ १ ॥ विभक्तमुख्यामचक्षुर्विषये मोक्षयित्वा सेनां सेनापतिनायकौ व्यूहेयाताम् ॥ २ ॥ शमान्तरं पत्तिं स्थापयेत् ॥ ३ ॥ त्रिशमान्तरमश्वं, पञ्चशमान्तरं रथं हस्तिनं वा, द्विगुणान्तरं त्रिगुणान्तरं वा व्यूहेत ॥ ४ ॥ एवं यथासुखम संबाधं युध्येत् ॥ ५ ॥

सेना के पड़ाव (छावनी) से पांच सौ धनुष की दूरी पर सेना का दुर्ग बनाकर युद्ध करे या जैसा भूमि का सुभीता हो-उतनी दूरी पर युद्ध के लिए सेना का व्यूह बनावे। मुख्य सेना का विभाग करके शत्रु की आंखों से सेना को बचाकर सेनापति और नायक सेना का व्यूह रचना करे। प्रत्येक पैदल सैनिक को चौदह चौदह अङ्गुल, घुड़सवार को बयालीस अंगुल, रथ और हाथियों को सत्तर २ अंगुल की दूरी पर खड़ा करे अथवा जैसा भूमि का सुभीता हो, उसी के अनुसार दुगना तिगुना फासला रख कर भी व्यूह रचना की जा सकती है। जब सुख-पूर्वक सेना खड़ी कर दी जाय, तो बाधा रहित होकर वीरता के साथ युद्ध करे ॥१-५॥

पञ्चारत्नि धनुः ॥ ६ ॥ तस्मिन्धन्विनं स्थापयेत् ॥ ७ ॥ त्रिधनुष्यश्वं, पञ्चधनुषि रथं हस्तिनं वा ॥ ८ ॥ पञ्चधनुरनीकसंधिः पक्षकक्षोरस्यानाम् ॥ ९ ॥ अश्वस्य त्रयः पुरुषाः प्रतियोद्धारः ॥ १० ॥ पञ्चदश रथस्य हस्तिनो वा पञ्च चाश्वाः ॥ ११ ॥ तावन्तः पादगोपा वाजिरथद्विपानां विधेयाः ॥ १२ ॥

पाँच हाथ का एक धनुष होता है, धनुषधारियों को पांच २ हाथ के फासले पर खड़ा करना चाहिए, तीन धनुष की दूरी पर अश्व और पांच धनुष की दूरी पर रथ और हाथी

होवें। पक्ष, कक्ष और उरस्थ संज्ञक सेनाओं का फासला भी पचीस २ हाथ का होना चाहिए। एक घुड़सवार के साथ तीन पैदल सैनिक, रथ और हाथी के साथ पन्द्रह पैदल सैनिक या पांच घुड़सवार होने चाहिए। घोड़े, रथ और हाथियों के पांच २ मनुष्य सेवा में नियुक्त किए जावें ॥६-१२॥

त्रीणि त्रिकाण्यनीकं रथानामुरस्यं स्थापयेत्॥ १३ ॥ तावत्कक्षं पक्षं चोभयतः ॥ १४ ॥ पञ्चचत्वारिंशत् एवं रथा रथव्यूहे भवन्ति ॥ १५ ॥ द्वे शते पञ्चविंशतिश्चाश्वाः ॥ १६ ॥ षट्शतानि पञ्चसप्ततिश्च पुरुषाः प्रतियोद्धारः ॥ १७ ॥ तावन्तः पादगोपा वाजिरथद्विपानाम् ॥ १८ ॥ एष समव्यूहः ॥ १९ ॥ तस्य द्विरथो वृद्धिरा एकविंशतिरथात् ॥ २० ॥ इत्येवमोजा दश समव्यूहप्रकृतयो भवन्ति ॥ २१ ॥

व्यूह रचना के मध्य भाग में नौ २ रथ होवें, इसी तरह कक्ष और पक्ष में नौ २ रथ होने चाहिए। इस प्रकार रथ व्यूह में पैंतालीस रथ होते हैं। प्रत्येक रथ के आगे पांच घुड़सवार बताए गये हैं। इसी हिसाब से पचीस घोड़े और छः सौ पिचहत्तर सैनिक वीर रक्खे जाने चाहिए। इसी हिसाब से अश्व, रथ और हाथियों के सेवक होते हैं, यह समव्यूह की गणना है। इस व्यूह में दो २ रथ बढ़ाने से इक्कीस रथ तक बढ़ाए जा सकते हैं अर्थात् पांच, सात, नौ आदि रथों से व्यूह बनाया जा सकता है और उसी हिसाब से रक्षक वीर सेवक रक्खे जा सकते हैं। इस प्रकार अयुग्म संख्या से इस तरह के समव्यूह बनाए जा सकते हैं ॥१३-२१॥

पक्षकक्षोरस्यानामतो विषमसंख्याने विषमव्यूहः ॥ २२ ॥ तस्यापि द्विरथोत्तरा वृद्धिरा एकविंशतिरथात् ॥ २३ ॥ इत्येवमोजा दश विषमव्यूहप्रकृतयो भवन्ति ॥ २४ ॥ अतः सैन्यानां व्यूहशेषमावापः कार्यः ॥ २५ ॥ रथानां द्वौ त्रिभागावङ्गेष्वावापयेत् ॥ २६ ॥ शेषमुरस्यं स्थापयेत् ॥ २७ ॥ एवं त्रिभागोनो रथानामावापः कार्यः ॥ २८ ॥ तेन हस्तिनामश्वानामावापो व्याख्यातः ॥२९॥ यावदश्वरथद्विपानां युद्धसंबाधनं न कुर्यात्तावदावापः कार्यः ॥ ३० ॥

जब पक्ष, [अगल] कक्ष [बगल] और उरस्य [बीच] में रथों की न्यूनाधिक संख्या हो, तो वह विषम व्यूह होते हैं। इसमें भी इक्कीस तक दो २ रथ बढ़ाए जा सकते हैं। इस प्रकार अयुग्म संख्या द्वारा विषम व्यूह भी उस तरह के होते हैं। व्यूह बनाने के अनन्तर जो सेना बचे, उसे इधर उधर लगा दे। रथों के दो भाग तो पक्ष और कक्ष में

रक्खे, शेष सेना के मध्य में डाले। ऊपर से डाली हुई यह सेना प्रधान सेना से तिहाई से भी कम होनी चाहिए। इसी तरह हाथी और घोड़ों को भी इधर उधर डाला जाता है। इनको इस तरह डालना चाहिए, कि जिससे अश्व, रथ और हाथियों को युद्ध में रुकावट न पड़े ॥२२-३०॥

दण्डबाहुल्यमावापः ॥ ३१ ॥ पत्तिबाहुल्यं प्रत्यावापः ॥ ३२ ॥ एकाङ्गबाहुल्यमन्वावापः ॥ ३३ ॥ दूष्यबाहुल्यमत्यावापः ॥ ३४ ॥ परावापात्प्रत्यावापादाचतुर्गुणादाष्टगुणादिति वा विभवतः सैन्यानामावापः कार्यः ॥ ३५ ॥ रथव्यूहेन हस्तिव्यूहो व्याख्यातः ॥ ३६ ॥

व्यूह रचना में बची हुई सेना का डालना आवाप कहलाता है बचे हुये पैदल सैनिक का अधिक संख्या में डालना प्रत्यावाप होता है। घोड़े हाथी में से किसी एक का अधिक रखना अन्वावाप है अपनी से बिगड़े हुए सैनिकों के डालने को अत्यावाप कहते हैं। शत्रु जितने पैदल सैनिक या अतिरिक्त अश्वाधिकों को अपनी सेना में डाले विजेता राजा उससे चौगुने या अठगुने अपनी शक्ति के अनुसार अपनी सेना में सैनिक बढ़ावे। रथ व्यूह के ढङ्ग पर ही हाथियों के व्यूह की व्यवस्था है ॥ ३१-३६ ॥

व्यामिश्रो वा हस्तिरथाश्वानाम् ॥ ३७ ॥ चक्रान्तयोर्हस्तिनः पार्श्वयोरश्वमुख्या रथा उरस्ये ॥ ३८ ॥ हस्तिनामुरस्यं रथानां कक्षावश्वानां पक्षाविति मध्यभेदी ॥ ३९ ॥ विपरीतोऽन्तर्भेदी ॥ ४० ॥ हस्तिनामेव तु शुद्धः ॥ ४१ ॥ सांनाह्यानामुरस्यमौपवाह्यानां जघनं व्यालानां कोट्याविति ॥ ४२ ॥

हाथी, रथ और अश्वों को मिलाकर भी व्यूह बनाया जा सकता है। इसमें सेना के सामने दोनों ओर हाथी इधर उधर घोड़े और मध्य में रथ खड़े करने चाहिएं। इस व्यूह के मध्य में हाथी, कक्ष में रथ और पक्ष में अश्व होते हैं। इस लिये इसे मध्य भेदी व्यूह कहते हैं। और जब हाथियों को पीछे और घोड़ों को बीच में ले लेते हैं तो वह अन्तर्भेदी व्यूह हो जाता है। केवल हाथियों के व्यूह को शुद्ध व्यूह कहते हैं। युद्ध के उपयोगी हाथियों को बीच में सवारी के योग्य हाथियों को पीछे और मदोन्मत्त हाथियों को अगले हिस्से में रक्खा जावे ॥ ३७-४२ ॥

अश्वव्यूहो वर्मिणामुरस्यं शुद्धानां कक्षपक्षाविति ॥ ४३ ॥ पत्तिव्यूहः पुरस्तादावरणिनः पृष्ठतो धन्विन इति शुद्धाः ॥ ४४ ॥ पत्तयः पक्षयोरश्वाः

पार्श्वयोर्हस्तिनः पृष्ठतो रथाः पुरस्तात्परव्यूहवशेन वा विपर्यास इति व्यङ्गबल-विभागः ॥ ४५ ॥ तेन त्र्यङ्गबलविभागो व्याख्यातः ॥ ४६ ॥

अश्वों के व्यूह में कवचधारी अश्व बीच में और कवच हीन कक्ष, पक्ष, (इधर उधर) में लगाने चाहिए। सैनिकों के शुद्ध व्यूह में आगे कवचधारी सैनिक और पीछे धनुष धारी सैनिक होने चाहिए। यहां तक शुद्ध व्यूहों का वर्णन किया गया है। जब शत्रु की सेना के कारण से पैदलों को पक्ष में, अश्वों को या पार्श्व में हाथियों को पीछे और रथों को आगे कर लिया जाता है, तो यह सेना के दो अङ्गों का व्यूह होता है इसी तरह सेना के तीनों अङ्गों को लेकर भी व्यूह बनाया जा सकता है ॥ ४३-४६ ॥

दण्डसंपत्सारबलं पुंसाम् ॥ ४७ ॥ हस्त्यश्वयोर्विशेषः—कुलं जातिः सत्त्वं वयःस्थता प्राणो वर्ष्म जवस्तेजः शिल्पं स्थैर्यमुदग्रता विधेयत्वं सुव्यञ्जनाचारतेति ॥ ४८ ॥ पत्त्यश्वरथद्विपानाम् सारत्रिभागमुरस्यं स्थापयेत् ॥ ४९ ॥ द्वौ त्रिभागौ कक्षं पक्षं चोभयतः ॥ ५० ॥ अनुलोममनुसारम् ॥ ५१ ॥ प्रतिलोमं तृतीयसारम् ॥ ५२ ॥ फल्गु प्रतिलोमम् ॥ ५३ ॥ एवं सर्वमुपयोगं गमयेत् ॥ ५४ ॥

राजाओं की शक्तिशाली सेना ही सम्पत्ति मानी गई है। कुल क्रमागत सैनिक सारभूत होते है। हाथी और घोड़ों में कुल जातिबल, आयु प्राण ऊँचाई चौड़ाई वेग पराक्रम, युद्ध शिक्षा, वीरता, मुंह को ऊँचे उठाये रहना और सवार के इशारे पर चलना अच्छे लक्षण और शुभ चेष्टाओं से युक्त होना सारता मानी गई है। पैदल, घोड़े, रथ, हाथियों के शक्तिशाली तीन भागों को बीच में डाले और दो तिहाई सारभाग को कक्ष और पक्ष में दोनों ओर लगावे। इससे कुछ कम शक्तिशाली सेना अनुसार और इससे उलटी तृतीय सार कहलाती है। इसी को फल्गु (निर्बल) कहते हैं। इन सेनाओं को यथा क्रम से खड़ा करे ॥४७-५४॥

फल्गुबलमन्तेष्ववधाय वेगोभिहतो भवति ॥ ५५ ॥ सारबलमग्रतः कृत्वा कोटीष्वनुसारं कुर्यात् ॥ ५६ ॥ जघने तृतीयसारं, मध्ये फल्गुबलमेतत्सहिष्णु भवति ॥ ५७ ॥ व्यूहं तु स्थापयित्वा पक्षकक्षयोरस्यानामेकेन द्वाभ्यां वा प्रहरेत् ॥ ५८ ॥ शेषैः प्रतिगृह्णीयात् ॥ ५९ ॥

फल्गु सेना को अन्त में रखने से शत्रु का वेग वहीं शान्त हो लेता है - सार सेना को आगे करके अनुसार सेना को किनारे पर खड़ी करे। तृतीय सार सेना को पीछे हिस्से में और बीच में निर्बल सेना भी खड़ी की जा सकती है। यह व्यूह रचना शत्रु सेना के

आक्रमण को सह जाती है। पक्ष, कक्ष और मध्य में व्यूह रचना करके पैदल या अश्व या दोनों से ही शत्रु पर आक्रमण करदे और शेष सेना से शत्रु के आक्रमण को रोके रहे ॥५५-५६॥

यत्परस्य दुर्बलं वीतहस्त्यश्वं दूष्यामात्यकं कृतोपजापं वा तत्प्रभूतसारेणाभिहन्यात् ॥ ६० ॥ यद्वा परस्य सारिष्ठं तद्द्विगुणसारेणाभिहन्यात् ॥ ६१ ॥ यदङ्गमल्पसारमात्मनस्तद्बहुनोपचिनुयात् ॥ ६२ ॥ यतः परस्यापचयस्ततोऽभ्याशे व्यूहेत यतो वा भयं स्यात् ॥ ६३ ॥

शत्रु की जो सेना हाथी घोड़ों से रहित दुर्बल हो और तोड़े फोड़े हुए या भीतर से बिगड़े हुए अमात्यों से युक्त हो उसको अपनी शक्तिशाली सेना से नष्ट करदे अथवा शत्रु की बहाशान सेना को अपनी दुगनी बलवती सेना के द्वारा छिन्न भिन्न करे। जो पुरानी निर्बल सेना हो उसकी सहायता में अपनी बहुत सी सेना को लगा दे। जिस ओर शत्रु की सेना क्षीण हो रही हो, उसके पास या जिधर से भय हो उधर ही अपनी सेना का व्यूह बनावे ॥६०-६३॥

अभिसृतं परिसृतमतिसृतमपसृतमुन्मथ्यावधानं वलयो गोमूत्रिका मण्डलं प्रकीर्णिका व्यावृत्तपृष्ठमनुवंशमग्रतः पार्श्वाभ्यां पृष्ठतो भग्नरक्षा भग्नानुपात इत्यश्वयुद्धानि ॥ ६४ ॥ प्रकीर्णिकावर्जान्येतान्येव चतुर्णामङ्गानां व्यस्तसमस्तानां वा घातः ॥ ६५ ॥ पक्षकक्षोरस्यानां च प्रभञ्जनमवस्कन्दः सौप्तिकं चेति हस्तियुद्धानि ॥ ६६ ॥ उन्मथ्यावधानवर्जान्येतान्येव स्वभूमावभियानापयानस्थितयुद्धानीति रथयुद्धानि ॥ ६७ ॥ सर्वदेशकालप्रहरणमुपांशुदण्डश्चेति पत्तियुद्धानि ॥ ६८ ॥

अपनी सेना से शत्रु की सेना पर झपटना शत्रु की सेना के चारों ओर चोट पहुंचाना, उसके बीच में घुस जाना, सेना को मथ डालना, गोल चक्कर बनाकर या टेढी गति से जाना, शत्रु सेना को घेरना, युद्ध की चाल से चलना, वेग से लौटाना या आगे बढ़ जाना, भागती हुई सेना की आगे पीछे, इधर, उधर, से रक्षा करना और भागती हुई शत्रु सेना का पीछा करना अश्वों का कार्य है अर्थात यह अश्व युद्ध कहाते हैं। सारी चालों को मिलाकर जो चलना है उसे छोड़कर घोड़ों के शेष युद्ध, बिखरी हुई या इकट्ठी हुई सेना के प्रहार करने के लिए हैं। पक्ष, कक्ष और उरस्थ में खड़ी हुई शत्रु सेना का मर्दन और निर्बल शत्रु सेना पर प्रहार करना तथा सोते हुए शत्रु को मार डालना हस्थि युद्ध कहाते हैं। इकट्ठे हो जाने को छोड़कर शेष सब हाथियों के युद्ध हैं। अपना

भूमि में शत्रु पर आक्रमण करना या पीछे हटना अथवा ठहर कर युद्ध करते रहना—रथ युद्ध है। सारे देश और कालों में हथियारों का धारण करना और चुपचाप शत्रु को मारना—पत्ति युद्ध कहाता है॥६४-६८॥

एतेन विधिना व्यूहानोजान्युग्मांश्च कारयेत् ।
विभवो यावदङ्गानां चतुर्णां सदृशो भवेत् ॥ ६९ ॥

द्वे शते धनुषां गत्वा राजा तिष्ठेत्प्रतिग्रहे ।
भिन्नसंघातनार्थं तु न युध्येताप्रतिग्रहः ॥ ७० ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे पक्षकक्षोरस्यानां बलाग्रतो व्यूहविभागः, सारफल्गुबलविभागः, पत्त्यश्वरथहस्तियुद्धानि च पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥
आदितस्त्रयस्त्रिंशच्छतः ॥ ११३ ॥

इस प्रकार विजयाभिलाषी राजा सम और विषम व्यूहों को अपनी चतुरङ्गिणी सेना की शक्ति के अनुसार बनावे। जब युद्ध होने लगे, तो राजा सेना से दो सौ धनुष पीछे खड़ा रहे। राजा के पीछे खड़े रहने से अपनी भागती हुई सेना खड़ी रह जाती है। राजा को चाहिए कि सेना का सहारा लिए बिना कभी युद्ध न करे॥६९-७०॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत सांग्रामिक अधिकरण में सेना के व्यूह रचना के वर्णन का पाँचवा अध्याय समाप्त हुआ।



छठा अध्याय

१५८-१५९वां प्रकरण

दण्डभोग मण्डला संहत व्यूह व्यूहनं तस्यप्रति व्यूह स्थानम् ।

इस प्रकरण में दण्ड व्यूह आदि व्यूहों तथा प्रतिव्यूहों की रचना का वर्णन होगा।

पक्षावुरस्यं प्रतिग्रह इत्यौशनसो व्यूहविभागः ॥ १ ॥ पक्षौ कक्षावुरस्यं प्रतिग्रह इति बार्हस्पत्यः ॥ २ ॥ प्रपक्षकक्षोरस्या उभयोः दण्डभोगमण्डलासंहताः प्रकृतिव्यूहाः ॥ ३ ॥ तत्र तिर्यग्वृत्तिर्दण्डः ॥ ४ ॥ समस्तानामन्वावृत्तिर्भोगः ॥ ५ ॥ सरतां सर्वतोवृत्तिः मण्डलः ॥६॥ स्थितानां पृथगनीकवृत्तिरसंहतः ॥७॥

सेना के दोनों अगले पक्ष, मध्य भाग और पीछे की ओर व्यूह बनाये जाते हैं, यह व्यूह विभाग शुक्राचार्य का माना हुआ है। अगले दोनों भाग, पिछले दोनों भाग, मध्य भाग और पीछे के भाग में सेना के व्यूह बनते हैं, यहबृहस्पति का मत है। इन दोनों

आचार्यों के मत में पक्ष, कक्ष और उरस्य में सेना के दण्ड, भोग, मण्डल और असंहत नामक चार प्रकृति व्यूह बनते हैं। सेना को तिरछी खड़ी करके जो व्यूह बनाया जाता है-वह दण्ड, सेना का सब ओर से बार २ घुमाव डालकर जो व्यूह बने-वह भोग, शत्रु पर आक्रमण करते हुए सब ओर से घूमते हुए व्यूह की जो रचना की जावे-वह मण्डल तथा पृथक् २ खड़ी हुई सेनाओं का पृथक् २ आक्रमण करते हुए जो व्यूह बनता है, वह असंहत व्यूह कहाता है ॥१-७॥

पक्षकक्षोरस्यैः समं वर्तमानो दण्डः ॥ ८ ॥ स कक्षाभिक्रान्तः प्रदरः ॥ ९ ॥ स एव पक्षाभ्यां प्रतिक्रान्तो दृढकः ॥ १० ॥ स एवातिक्रान्तः पक्षाभ्यामसह्यः ॥ ११ ॥ पक्षाववस्थाप्योरस्याभिक्रान्तः श्येनः ॥ १२ ॥ विपर्यये चापं चापकुक्षिः प्रतिष्ठः सुप्रतिष्ठश्च ॥ १३ ॥ चापपक्षः सञ्जयः ॥ १४ ॥ स एवोरस्यातिक्रान्तो विजयः ॥१५॥ स्थूल कर्ण पक्षः स्थूल कर्णः॥१६॥ द्विगुणपक्षस्थूलो विशालविजयः ॥१७॥ त्र्यभिक्रान्तपक्षश्चमूमुखः ॥१८॥ विपर्यये झषास्यः ॥ १९ ॥ ऊर्ध्वराजिर्दण्डः सूची ॥ २० ॥ द्वौ दण्डौ वलयः ॥ २१ ॥ चत्वारो दुर्जय इति दण्डव्यूहाः ॥ २२ ॥

पक्ष, कक्ष, और उरस्य भागों में सीधी तरह वर्तमान व्यूह-दण्ड व्यूह होता है। इस प्रकृति व्यूह के प्रदर आदि विकृत व्यूह माने जाते हैं। जब पीछे के भागों का व्यूह बना कर शत्रु पर आक्रमण किया जावे, तो यही प्रदर, जब दोनों पक्ष से पराक्रम करती हुई सेना आक्रमण करे-तो वह दृढक, जब दोनों ओर से व्यूह बनाकर तीव्र आक्रमण किया जावे, तो असह्य तथा दोनों पक्षों को व्यूह में स्थापित करके, मध्य भाग द्वारा आक्रमण करना श्येन व्यूह होता है। इनको जब अदल बदल कर बनाया जावे, अर्थात् पक्ष में व्यूह बनाकर आक्रमण और कक्ष में व्यूह बनाकर तीव्र आक्रमण कर दिया जावे तो वे चाप, चाप कुक्षि, प्रतिष्ठ और सुप्रतिष्ठ नाम के चार व्यूह बन जाते हैं। चाप के अनुसार जिस व्यूह में पक्ष रखे गए हों वह सञ्जय व्यूह होता है। इसी सञ्जय व्यूह में जब मध्य भाग द्वारा आक्रमण किया जावे-तो वही विजय व्यूह हो जाता है। जिस के पक्ष में कर्ण स्थानों को स्थूल बना दिया हो, उसे स्थूल कर्ण कहते हैं। जिस स्थूल कर्ण से भी दुगुना कर्ण स्थान स्थूल रखा गया हो, वह विशाल विजय होता है। दोनों कक्ष और एक उरस्य-इन तीनों की बराबर जिस के पक्ष हों, वह चमू मुख व्यूह होता है। जिस व्यूह के कक्ष, पक्ष और उरस्य (मध्य भाग) के बराबर वह झषास्य होता है। दंड व्यूह में जब ऊपर की ओर पंक्ति बनाकर आक्रमण किया जाता है-तो वह सूची मुख व्यूह होता है। दो दंड

व्यूहों का जब एक ही व्यूह बना दिया जावे, तो वह वलय व्यूह हो जाता है, और चार दंड व्यूहों का एक दुर्जय व्यूह बनता है-ये दंड व्यूह के अवान्तर प्रकार है ॥ ८-२२ ॥

पक्षकक्षोरस्यैर्विषमं वर्तमानो भोगः, स सर्पसारी गोमूत्रिका वा ॥ २३ ॥ स युग्मोरस्यो दण्डपक्षः शकटः ॥ २४ ॥ विपर्यये मकरः ॥ २५ ॥ हस्त्यश्वरथै-र्व्यतिकीर्णः शकटः परिपतन्तक इति भोगव्यूहाः ॥ २६ ॥

पक्ष, कक्ष और उरस्य स्थानों में जब सेना की संख्या विषम होती है, तो वह भोग व्यूह होता है वह सर्प या गो मूत्र के आकार में लम्बा चलता है। जिस भोग व्यूह का मध्य भाग दो भागों में बट रहा हो और उसके पक्ष दंड के समान हों-तो वह शकट हो जाता है। जब पक्ष दो भागों में बटा हो और दंड के समान उरस्य (मध्य भाग) हो तो वही मकर व्यूह कहाता है। जिस शकट व्यूह में हाथी, अश्व और रथों की संख्या अधिक हो-उसे परिपतन्तक व्यूह कहते हैं-यहां भोग व्यूह के अवान्तर भेदों का वर्णन हुआ ॥ २३-२६ ॥

पक्षकक्षोरस्यानामेकीभावे मण्डलः ॥ २७ ॥ स सर्वतोमुखः सर्वतोभद्रो ऽष्टानीको दुर्जय इति मण्डलव्यूहाः ॥ २८ ॥

जिसम पक्ष, कक्ष और उरस्य भागों को मिलाकर एक कर दिया जावे, उसे मण्डल (चक्र) व्यूह कहते हैं। जब वह सब ओर से आक्रमण करे-तो उसे सर्वतोभद्र कहते हैं। इस मण्डल व्यूह में जब आठ सेना लगादी जावे, तो वह दुर्जय नामक मण्डल व्यूह होता है। यहां तक मण्डल व्यूहों के अवान्तर भेदों का विचार हुआ ॥२७-२८॥

पक्षकक्षोरस्यानामसंहतादसंहतः ॥ २९ ॥ स पञ्चानीकानामाकृतिस्थाप-नाद्वज्रो गोधा वा ॥ ३० ॥ चतुर्णामुद्यानकः काकपदी वा ॥ ३१ ॥ त्रयाणाम-र्धचन्द्रिकः कर्कटकशृङ्गी वेत्यसंहतव्यूहाः ॥ ३२ ॥

पक्ष, कक्ष और उरस्यभागों में जब सेना भिन्न २ रूप में स्थित होती है तो यह असंहत व्यूह होता है। उसीमें जब पांच सेनाओं को वज्र की आकृति में खड़ा किया जावे-तो वज्र व्यूह और गोधा जन्तु के आकार में खड़ा किया जावे-तो गोधा व्यूह होता है। जबइस व्यूह में चार सेना लगाई जाती है, तो यह उद्यानक या काकपदी व्यूह कहाता है। इसी तरह तीन सेनाओं द्वारा जब उसके दोनों पक्ष और उरस्य भाग बनाया जावे-तो उसे अर्ध शृङ्गी या कर्कटक शृङ्गी असंहत व्यूह कहते हैं । यहां तक असंहत व्यूहों के भेदों का वर्णन हुआ ॥२९-३२॥

रथोरस्यो हस्तिकक्षोऽश्वपृष्ठोऽरिष्टः ॥ ३३ ॥ पत्तयो ऽश्वा रथा हस्तिनश्चानुपृष्ठमचलः ॥ ३४ ॥ हस्तिनो ऽश्वा रथः पत्तयश्चानुपृष्ठमप्रतिहतः ॥३५॥

जिस व्यूह के मध्य स्थान में रथ, कक्ष स्थान में हाथी, पीछे के स्थान में अश्व और कक्ष भाग में पैदल हों उसे अरिष्ट व्यूह कहते हैं। जिस व्यूह में पैदल, अश्व, रथ और हाथी क्रम से एक २ के पीछे खड़े किये जाते हैं, उसे अचल व्यूह कहते हैं। हाथी, अश्व, रथ और पैदल, जिसमें क्रम से रखे गए हों-उसे अप्रतिहत व्यूह कहते हैं ॥३३-३५॥

तेषां प्रदरं दृढकेन घातयेत् ॥ ३६ ॥ दृढकमसंह्येन ॥३७॥ श्येनं चापेन ॥ ३८ ॥ प्रतिष्ठं सुप्रतिष्ठेन ॥ ३९ ॥ संजयं विजयेन ॥ ४० ॥ स्थूलकर्णं विशालविजयेन ॥ ४१ ॥ पारिपतन्तकं सर्वतोभद्रेण ॥ ४२ ॥ दुर्जयेन सर्वान्प्रतिव्यूहेत ॥ ४३ ॥ पत्त्यश्वरथद्विपानां पूर्वं पूर्वमुत्तरेण घातयेत् ॥ ४४ ॥ हीनाङ्गमधिकाङ्गेन चेति ॥ ४५ ॥

जब शत्रु प्रदर नामक व्यूह बनावे, तो उसको दृढक व्यूह बनाकर नष्ट करे। दृढक को असह्य, श्येन को चाप प्रतिष्ठ को सुप्रतिष्ठ, सञ्जय को विजय, स्थूल कर्ण को विशाल विजय और पारिपतन्तक को सर्वतोभद्र और सारे व्यूहों को दुर्जय व्यूह द्वारा नष्ट कर देवे। इसी तरह पैदलों को अश्व, अश्वों को रथ, रथों को हाथी द्वारा नाश करने का प्रयत्न करे तथा जिस जगह सेना का हीन अङ्ग हों-उसको अधिक अङ्ग द्वारा छिन्न-भिन्न कर देवे ॥३६-४५॥

अङ्गदशकस्यैकः पतिः पदिकः ॥ ४६ ॥ पदिकदशकस्यैकः सेनापतिः ॥ ४७ ॥ तद्दशकस्यैको नायक इति ॥ ४८ ॥ स तूर्यघोषध्वजपताकाभिर्व्यूहाङ्गानां संज्ञाः स्थापयेत् ॥ ४९ ॥ अङ्गविभागे संघाते स्थाने गमने व्यावर्तने प्रहरणे च ॥ ५० ॥ समे व्यूहे देशकालयोगात्सिद्धिः ॥ ५१ ॥

सेना के दश अङ्गों [टुकड़ियों] के अधिपति को पदिक अधिकारी कहते हैं। दश पदिकों के ऊपर के अधिकारी को सेनापति, और दश सेनापतियों के अफसर को नायक कहते हैं। तुरीघोष, ध्वजा, पताका आदि से एक सेना का दूसरी सेना तक पहुंचने के संकेतों की कल्पना करे। ये संकेत, सेना के अङ्गों के विभक्त करने, मिलाने, सेना के रोकने, चलाने, लौटाने और प्रहार करने के लिए बड़े उपयोगी हैं। जब दोनों ओर समान व्यूह रचना होवे-तो देश, काल और पराक्रम की अनुकूलता से विजय प्राप्त होती है ॥४६-५१॥

दण्डैरुपनिषद्योगैस्तीक्ष्णैर्व्यासक्तघातिभिः ।
मायाभिर्दैवसंयोगैः शकटैर्हस्तिभूषणैः ॥ ५२ ॥

दूष्यप्रकोपैर्गोयूथैः स्कन्धावारप्रदीपनैः ।
कोटीजघनघातैर्वा दूतव्यञ्जनभेदनैः ॥ ५३ ॥

दुर्गं दग्धं हृतं वा ते कोपः कुल्यः समुत्थितः ।
शत्रुराटविको वेति परस्योद्वेगमाचरेत् ॥ ५४ ॥

सेना, यन्त्र, औपनिषदक प्रकरण के उपाय, विष देने वाले, कपट से मारने वाले, दैव के संयोग से उत्पन्न (बिजली आदि) पदार्थ छल कपट, हाथियों से युक्त रथ, भीतर से बिगड़े हुए पुरुषों के प्रकोप, गोयूथ, सेना के पडाव में आग सेना के अगले पिछले भाग में आघात, दूतों के वेष में गुप्तचर प्रवेश द्वारा, तथा तेरा दुर्ग जला दिया, छीन लिया, तेरा कुल का अमुक पुरुष हमसे मिल गया तथा कोई सामन्त शत्रु या आटविक शत्रु तुझ से लड़ने को खड़ा हो गया-इस प्रकार की बात बनाकर शत्रु को व्याकुल बना देवे ॥५२-५४॥

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुः क्षिप्तो धनुष्मता ।
प्राज्ञेन तु मतिः क्षिप्ता हन्याद्गर्भगतानपि ॥ ५५ ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहनं,तस्य प्रतिव्यूह-स्थापनं च षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥ आदितश्चतुस्त्रिंशच्छतः ॥ १३४ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य सांग्रामिकं दशममधिकरणं समाप्तम् ॥१०॥

धनुषधारी द्वारा फेंका हुआ बाण, किसी एक को मारे या न भी मारे, परन्तु बुद्धिमान् की चलाई हुई बुद्धि गर्भगत बालकों को भी जा मारती है ॥५५॥

इति श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत सांग्रामिक अधिकरण में दण्ड आदि व्यूह प्रतिव्यूहों के वर्णन का छठा अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर सांग्रामिक अधिकरण भी पूरा हो गया।



संघवृत्त मेकादशाधिकरणम्

प्रथम अध्याय

१६०-१६१वां प्रकरण

भेदोपादा नान्युपांशुदण्डः

इस प्रकरण में भेद के प्रयोग और गुपचुप मारण के उपायों का वर्णन किया जावेगा।

संघलाभो दण्डमित्रलाभानामुत्तमः ॥ १ ॥ संघा हि संहतत्वादधृष्याः परेषाम् ॥ २ ॥ताननुगुणान्भुञ्जीत सामदानाभ्याम् ॥ ३ ॥ विगुणान्भेददण्डाभ्याम् ॥ ४ ॥ काम्बोजसुराष्ट्रक्षत्रियश्रेण्यादयो वार्ताशस्त्रोपजीविनः ॥ ५ ॥ लिच्छिविकव्रजिकमल्लकमद्रककुकुरकुरुपाञ्चालादयो राजशब्दोपजीविनः ॥ ६ ॥

सेना और मित्र लाभ की अपेक्षा संघ का लाभ सर्व श्रेष्ठ है। जो संघ (पार्टी) होते हैं, वे संगठित रहते हैं और शत्रु से नहीं दबाये जा सकते हैं। यदि संघ का लाभ हो जावे, तो उसको साम दान द्वारा अपने लाभ के लिए प्रयुक्त करे-यदि कोई संघ विगड़ जावे, तो उसे भेद और दण्ड द्वारा वश में करे। काम्बोज (काबुल) सुराष्ट्र (सूरत) देश में बहुत से क्षत्रियों के इस तरह के संघ होते हैं, जो व्यापार और शस्त्र आदि से जीविका चलाते हैं। लिच्छिविक, व्रजिक, मल्लक, मद्रक, कुकुर, कुरु, पाञ्चाल क्षत्रिय भी संघ बनाकर रहते हैं, जिनको नाम मात्र राजा की उपाधि मिली हुई है ॥१-६॥

सर्वेषामासन्नाः सत्त्रिणः संघानां परस्परन्यङ्गद्वेषवैरकलहस्थानान्युपलभ्य क्रमाभिनीतं भेदमुपचारयेयुः ॥ ७ ॥ असौ त्वा विजल्पतीति ॥ ८ ॥ एवमुभयतः ॥ ९ ॥ बद्धरोषाणां विद्याशिल्पद्यूतवैहारिकेष्वाचार्यव्यञ्जना बालकलहानुत्पादयेयुः ॥१०॥ वेशशौण्डिकेषु वा प्रतिलोमप्रशंसाभिः संघमुख्यमनुष्याणां तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः ॥ ११ ॥ कृत्यपक्षोपग्रहेण वा ॥ १२ ॥ कुमारकान्विशिष्टच्छन्दिकया हीनच्छन्दिकानुत्साहयेयुः ॥ १३ ॥

इन सारे संघों के पास सत्री संज्ञक गुप्तचर रहे, जो इनके दोष, द्वेष, वैर और कलह का पता लगाकर समयानुसार उनमें भेद डलवा देवे। यह संघ तुम्हारी इस तरह

निन्दा करता था इत्यादि भड़काने वाली बातें करके दोनों ओर भेद की आग भड़का देवे। जब इनका परस्पर वैर हो जावे-तो विद्या, शिल्प, द्यूत और प्रश्नोत्तर के ढंग में आचार्य रूपधारी गुप्तचर उनके बालकों में भी परस्पर कलह करवा देवे, वेश्या और सुरापान करने वाले संघों के मुख्य मनुष्यों में उनसे विरुद्ध पुरुषों की प्रशंसा करके तीक्ष्ण पुरुष उनमें कलह करवावे अथवा उनके कृत्य (भेद को प्राप्त हुए अमात्य आदि) पक्ष को अपनी ओर मिलाकर उनमें फूट डाले। इनके कुमारों में अधिक वस्तुओं के द्वारा आनन्द उड़ाने वालों का थोड़ी वस्तु द्वारा निर्वाह करने वाले कुमारों से भेद करवावे ॥७-१३॥

विशिष्टानां चैकपात्रं विवाहं हीनेभ्यो वारयेयुः ॥१४॥ हीनान्वा विशिष्टैरेकपात्रे-विवाहे वा योजयेयुः ॥१५॥ अवहीनान्वा तुल्यभावोपगमने कुलतः पौरुषतः स्थानविपर्यासतो वा ॥ १६ ॥ व्यवहारमवस्थितं वा प्रतिलोमस्थापनेन निशामयेयुः ॥ १७ ॥ विवादपदेषु वा द्रव्यपशुमनुष्याभिघातेन रात्रौ तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः ॥ १८ ॥

जिन राजकुमारों की बड़ी प्रतिष्ठा है, उनका छोटी प्रतिष्ठा वालों के साथ एक पात्र भोजन तथा विवाह सम्बन्ध रुकवा कर उनमें परस्पर वैर का बीज बोवे। कहीं पर छोटे कुमारों को बड़ी प्रतिष्ठा के कुमारों के साथ एक पात्र में भोजन या विवाह सम्बन्ध कराकर बड़ों को उनकी ओर से बिगाड़ देवे। इसी तरह छोटी स्थिति के लोगों को भी कुल और पुरुषार्थ के बहाने पर भड़काने और एक दूसरे के स्थान पर नियुक्त करके भी उनमें द्वेष उत्पन्न करदे। जिस मुकदमे का फैसला हो गया या जिस की तहकीकात हो रही हो-उस हाकिम के विरुद्ध पुरुष के पास उसका उलटापन सिद्ध करे तीक्ष्ण पुरुष, झगड़े के स्थान द्रव्य, पशु और मनुष्यों को रात में मार देवें और दूसरे संघ पर उनका दोष लगाकर कलह उत्पन्न करावे ॥१४-१८॥

सर्वेषु च कलहस्थानेषु हीनपक्षं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य प्रतिपक्षवधे योजयेत् ॥ १९ ॥ भिन्नानपवाहयेद्वा ॥ २० ॥ एकदेशे समस्तान्वा निवेश्य भूमौ चैषां पञ्चकुलीं दशकुलीं वा कृष्यां निवेशयेत् ॥ २१ ॥ एकस्था हि शस्त्रग्रहणसमर्थाः स्युः ॥ २२ ॥ समवाये चैषामत्ययं स्थापयेत् ॥ २३ ॥ राजशब्दिभिरवरुद्धमवक्षिप्तं वा कुल्यमभिजातं राजपुत्रत्वे स्थापयेत् ॥ २४ ॥ कार्तान्तिकादिश्चास्य वर्गो राजलक्षण्यतां संघेषु प्रकाशयेत् ॥ २५ ॥

इस तरह के सारे कलहों में राजा, दुर्बल पक्ष को कोश या सेना के द्वारा अपने पक्ष में मिलाकर प्रतिपक्ष के वध में नियुक्त करे। अथवा जो स्वयं भेद को प्राप्त हो

रहे हैं, उन्हें वहका लेवे। किसी एक देश में उन सब को वसाकर किसी प्रथक् २ भूप्रदेश पर उनके पांच घर या दश घर खेती करने को वसा देवे। यदि ये सारे एक जगह वसा दिए जावेंगे-तो फिर कभी शस्त्र ग्रहण करने को तय्यार हो जावेंगे। इन के संघों से कुछ कर भी लिया जाना चाहिए। नाम मात्र राजपद को धारण करने वाले लिच्छवि आदि क्षत्रियों द्वारा रोके हुए या अपमानित किसी कुलीन राजकुमार को राजपुत्र वनाकर घोषित करदे और गुप्तचर ज्योतिषी उसके राजा होने के चिन्हों को सब को घोषित करते रहें ॥ १६-२५ ॥

संघमुख्यांश्च धर्मिष्ठानुपजपेत् ॥ २६ ॥ स्वधर्ममस्मुष्य राज्ञः पुत्रे भ्रातरि वा प्रतिपद्यध्वमिति ॥ २७ ॥ प्रतिपन्नेषु कृत्यपक्षोपग्रहार्थमर्थं दण्डं च प्रेषयेत् ॥ २८ ॥ विक्रमकाले शौण्डिकव्यञ्जनाः पुत्रदारप्रेतापदेशेन नैषेचनिकमिति मदनरसयुक्तान्मद्यकुम्भाञ्शतशः प्रयच्छेयुः ॥ २६ ॥ चैत्यदैवतद्वाररक्षास्थानेषु च सत्रिणः समयकर्मनिक्षेपं सहिरण्याभिज्ञानमुद्राणि हिरण्यभाजनानि च प्ररूपयेयुः ॥ ३० ॥ दृश्यमानेषु च संघेषु राजकीया इत्यावेदयेयुः ॥ ३१ ॥ अथावस्कन्दं दद्यात् ॥ ३२ ॥

संघ में जो धर्म प्रचारक पुरुष हों-उनको इस प्रकार अपनी ओर मिलावे कि तुम अपने धर्म को इस राजा के पुत्र या भाई को सिखाओ। वह मान ले-तो राजा से भीतर से विगड़े हुए पुरुषों को धन या सेना द्वारा अपने वश में लावे। जब युद्ध का प्रारम्भ हो जावे-तो सुरा (शराब) वेचने वालों के रूप में गुप्तचर, अपने पुत्र, भार्या के मर जाने के वहाने प्रेत निमित्त दान किए हुए सैंकड़ों मद्यों के घट वहां लाकर उन सब को पिला देवे। उनमें धतूरे का रस या विषरस मिला होना चाहिए। सत्री गुप्तचर, धर्मस्थान, देवालय, तथा रक्षा स्थानों पर प्रतिज्ञा के निश्चय कराने को सुवर्ण की मुद्रा के चिन्ह से युक्त सुवर्ण के पात्र देवे। जब सारे संघ के लोग देख लेवें ये पात्र राजा की ओर से आये हैं, ऐसा सूचित कर दिया जावे। जब सब लोग अपनी इच्छानुसार फंस जावें-तो विजेता शत्रु पर चढ़ाई कर देवे ॥ २६-३२ ॥

संघानां वा वाहनहिरण्ये कालिके गृहीत्वा संघमुख्याय प्रख्यातं द्रव्यं प्रयच्छेत् ॥ ३३ ॥ तदेषां याचिते दत्तममुष्मै मुख्यायेति ब्रूयात् ॥ ३४ ॥ एतेनस्कन्धावाराटवीभेदो व्याख्यातः ॥ ३५ ॥ संघमुख्यपुत्रमात्मसंभावितं वा सत्री ग्राहयेत् ॥ ३६ ॥ अमुष्य राज्ञः पुत्रस्त्वं शत्रुभयादिह

न्यस्तो ऽसीति ॥ ३७ ॥ प्रतिपन्नं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य संघेषु विक्रमयेत् ॥ ३८ ॥ अवाप्तार्थस्तमपि प्रवासयेत् ॥ ३९ ॥

संघ को देने के निमित्त वाहन या हिरण्य का कुछ समय के लिए वायदा करके सत्री गुप्तचर उसे संघ के मुख्य पुरुष को सबकी जानकारी में दे देवे। जब वे लोग मांगे तो कह दें-कि तुम्हारे मुख्य पुरुष को दे दिया है-लेलो। मुख्य पुरुष क्यों देने लगा है, इस प्रकार इनमें फूट पड़ जावेगी। इसी तरह छावनी में रहने वाले आटविक पुरुषों में डलवाई जावे। सत्री नामक गुप्तचर, संघ के मुख्य अभिमानी पुत्र को इस प्रकार समझावे, कि तू तो अमुक राजा का पुत्र है, शत्रु के भय से यहां रख छोड़ा है। यदि उसको विश्वास हो जावे-तो उसे धन और सेना की सहायता देकर उस संघ से ही लड़ा देवे। जब अपना काम सिद्ध हो जावे-तो उसे भी निकाल देवे ॥३३-३९॥

वन्धकीपोषकाः प्लवकनटनर्तकसौभिका वा प्रणिहिताः स्त्रीभिः परमरूपयौवनाभिः संघमुख्यानुन्मादयेयुः ॥ ४० ॥ जातकामानामन्यतमस्य प्रत्ययं कृत्वान्यत्र गमनेन प्रसभहरणेन वा कलहानुत्पादयेयुः ॥४१॥ कलहे तीक्ष्णाः कर्म कुर्युः ॥ ४२ ॥ हतो ऽयमित्थं कामुक इति ॥ ४३ ॥

वेश्याओं के पोषक अथवा नट, नर्तक, सवक (कूदने वाले) या भांड के रूप में रहने वाले राजपुरुष, संघ के मुख्य पुरुषों को सुन्दर २ स्त्रियों के द्वारा मोहित करवावे। जब किसी एक कामिनी पर कइयों का मन चला जावे-तो एक को उसका विश्वास कराके किसी दूसरे के पास भिजवा देवे या बल पूर्वक हरण करा देवे-इस प्रकार उनमें कलह की उत्पत्ति हो जावेगी। जब कलह हो जावे-तो तीक्ष्ण पुरुष शस्त्र आदि के द्वारा अपना काम करडाले और प्रसिद्ध कर देवें कि ये कामी जन परस्पर के कलह में इस प्रकार मारे गए ॥४०-४३॥

विसंवादितं वा मर्षयमाणमभिसृत्य स्त्री ब्रूयात् ॥ ४४ ॥ असौ मां मुख्यस्त्वयि जातकामां बाधते ॥ ४५ ॥ तस्मिञ्जीवति नेह स्थास्यामीति घातमस्य प्रयोजयेत् ॥ ४६ ॥ प्रसह्यापहृता वोपवनान्ते क्रीडागृहे वापहर्तारं रात्रौ तीक्ष्णेन घातयेत् ॥ ४७ ॥ स्वयं वा रसेन ॥ ४८ ॥ ततः प्रकाशयेत् ॥ ४९ ॥ अमुना मे प्रियो हत इति ॥ ५० ॥

यदि झगड़े की बात खड़ी हो जाने पर भी एक मुख्य पुरुष झगड़े की ओर न चले तो उसके पास जाकर स्त्री कहें, कि यह अधिकारी मुझे आपके पास आने से रोकता है क्या

करूं-मैं तो आप को हृदय से चाहती हूं। जब तक यह जीवेगा मैं आपके पास नही ठहर सकती हूं। इस प्रकार एक के विनाश के लिए दूसरे को प्रयुक्त करे। जो मुख्य पुरुष जिस स्त्री को बल पूर्वक छीन लेगया-वह बगीचे में या क्रीड़ागृह में अपने को ले जाने वाले मुख्य पुरुप को रात में तीक्ष्ण पुरुष द्वारा मरवा डाले अथवा स्वयं ही विष दे देवे और यह प्रसिद्ध कर देवे, कि अमुक पुरुष ने मेरे प्रेमी को मरवा डाला ॥४४-५०॥

जातकामं वा सिद्धव्यञ्जनः सांवननिकीभिरोषधीभिः संवास्य रसेनातिसंधायापगच्छेत् ॥ ५१ ॥ तस्मिन्नपक्रान्ते सत्त्रिणः परप्रयोगमभिशंसेयुः ॥५२॥ आढ्यंविधवा गूढाजीवा योगस्त्रियो वा दायनिक्षेपार्थं विवदमानाः संघमुख्यानुन्मादयेयुरिति ॥ ५३ ॥ अदितिकौशिकस्त्रियो नर्तकी गायना वा ॥ ५४ ॥ प्रतिपन्नान्गूढवेश्मसु रात्रिसमागमप्रविष्टांस्तीक्ष्णा हन्युर्बध्वा हरेयुर्वा ॥ ५५ ॥

जब किसी संघ के मुख्य पुरुष की किसी स्त्री में कामना उत्पन्न हो जावे, तो सिद्ध तपस्वी का वेप बनाकर गुप्तचर, वशीकारक ओषधियों के बहाने से उसे विष देकर चलता बने, जब वह चला जावे, तो पूर्व स्थित सत्री गुप्तचर किसी दूसरे शत्रु द्वारा उसका मारा जाना प्रसिद्ध कर देवे। मालदार विधवा, गुप्तचर वृत्ति से जीविका करने वाली या स्त्री का वेपधारी पुरुष ही दायभाग या धरोहर का झगड़ा लेकर संघ के मुख्य पुरुषों को झंझट में डाल देवे। देवताओं के चित्र दिखाकर जीविका करने वाली, सपेरन, नटनी या वेश्या भी इन कामों को कर सकती है। जब ये इन स्त्रियों के विश्वास में फंस जावें-तो गुप्त घरों में रात के समय समागम के ध्यान से प्रविष्ट मुख्य पुरुषों को तीक्ष्ण पुरुष मार डाले या बांध लेवे ॥५१-५५॥

सत्त्री वा स्त्रीलोलुपं संघमुख्यं प्ररूपयेत् ॥ ५६ ॥ अमुष्मिन्ग्रामे दरिद्रकुलमपसृतम्, तस्य स्त्री राजार्हा, गृहाणैनामिति ॥ ५७ ॥ गृहीतायामर्धमासानन्तरं सिद्धव्यञ्जनो दूष्यसंघमुख्यं मध्ये प्रक्रोशेत् ॥ ५८ ॥ असौ मे मुख्यां भार्यां स्नुषां भगिनीं दुहितरं वाधिचरतीति ॥ ५९ ॥ तं चेत्संघो निगृह्णीयाद्राजैनमुपगृह्य विगुणेषु विक्रमयेत् ॥६०॥ अनिगृहीते सिद्धव्यञ्जनं रात्रौ तीक्ष्णाः प्रवासयेयुः ॥ ६१ ॥ ततस्तद्व्यञ्जनाः प्रक्रोशेयुः ॥ ६२ ॥ असौ ब्रह्महा ब्राह्मणीजारश्चेति ॥ ६३ ॥

सत्री गुप्तचर किसी स्त्री के लालची कामी संघ के मुख्य पुरुष को कहे, कि अमुक ग्राम में एक दरिद्र कुल है, उसके पुरुष विदेश चले गए हैं, उसकी स्त्री राजा के योग्य

है-आप उसे ग्रहण करलें ! जब वह उसको रख लेवे-तो अर्धमास के अनन्तर विगड़े हुए उस संघ के अधिकारी के विषय में सब लोगों से तपस्वी का वेशधारी कोई पुरुष कहे कि मेरी सुन्दर भार्या, पुत्र-वधू भामिनी या बेटी को छीन लाया है। यदि संघ के लोग उसके इस काम से असन्तुष्ट होकर उसे पकड़े लेवें तो राजा उसको छुड़ाकर उन संघ के बिगड़े लोगों से भिड़ा देवे। यदि उसे वे लोग न पकड़े-तो उस पुकारने वाले तपस्वी को रात में तीक्ष्ण पुरुष मार डाले और उसी रूप के अन्य पुरुष पुकारें, कि यह संघ का मुखिया ब्रह्महत्यारा और ब्राह्मणी का भोगने वाला है ॥५९-६३॥

कार्तान्तिकव्यञ्जनो वा कन्यामन्येन वृतामन्यस्य प्ररूपयेत् ॥ ६४ ॥ अमुष्य कन्या राजपत्नी राजप्रसविनी च भविष्यति ॥ ६५ ॥ सर्वस्वेन प्रसह्य वैनां लभस्वेति ॥ ६६ ॥ अलभ्यमानायां परपक्षमुद्धर्षयेत् ॥ ६७ ॥ लब्धायां सिद्धः कलहः ॥ ६८ ॥ भिक्षुकी वा प्रियभार्यं मुख्यं ब्रूयात् ॥ ६९ ॥ असौ ते मख्यो यौवनोत्सिक्तो भार्यायां मां प्राहिणोत् ॥ ७० ॥ तस्याहं भयाल्लेख्यमाभरणं गृहीत्वाऽऽगतास्मि ॥ ७१ ॥ निर्दोषा ते भार्या ॥ ७२ ॥ गूढमस्मिन्प्रतिकर्तव्यम् ॥ ७३ ॥ अहमपि तावत्प्रतिपत्स्यामीति ॥ ७४ ॥

ज्योतिषी के वेश में घूमने वाला गुप्तचर किसी अन्य से वरण की हुई कन्या को अन्य द्वारा ग्रहण कराने की चेष्टा करे। वह कहे कि इस व्यक्ति की कन्या राजपत्नी और राजमाता होगी, क्योंकि इसके लक्षण या ग्रह ऐसे ही पड़े हैं। अब तुम सर्वस्व देकर या बल-पूर्वक इसे छीन लाओ। यदि वह प्राप्त न कर सके-तो दूसरे पक्ष को भड़का देवे, कि यह प्राप्त करना चाहता था, परन्तु बलात् लेजा नहीं सका और यदि ले गया-तो कलह अवश्यम्भावी है। कोई भिक्षुकी किसी संघ के मुख्य पुरुष से "जो अपनी ही भार्या से बड़ा प्रेम करता है" कहे, कि अमुक संघ का अधिकारी अपनी जवानी के मद में भरकर तुम्हारी भार्या के पास दूती बनाकर भेजना चाहता था। उसके भय से मैं उसका पत्र और आभूषण लेकर आ भी गई हूं। तुम्हारी स्त्री निर्दोष है और उसे अभी तक कुछ पता नहीं है। तुम चुपचाप इस दुष्ट को मरवा डालो। मैं भी तब तक तुम्हारे ही पास रहूंगी ॥६४-७४॥

एवमादिषु कलहस्थानेषु स्वयमुत्पन्ने वा कलहे तीक्ष्णैरुत्पादिते वा हीनपक्षं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य विगुणेषु विक्रमयेदपवाहयेद्वा ॥ ७५ ॥ संघेष्वेवमेकराजो वर्तेत ॥ ७६ ॥ संघाश्चाप्येवमेकराजादेतेभ्यो ऽतिसंधानेभ्यो रक्षेयुः ॥ ७७ ॥

जब इस प्रकार कलह के ढंग स्वयं बन जावें या तीक्ष्ण पुरुषों द्वारा कलह चल पड़े तो दुर्बल पक्ष को सहायता देकर बिगड़े हुए लोगों से लड़ा देवे और यदि वह न लड़े तो अपने यहां से भी निकाल देवे। विजेता राजा इस ढंग से संघों के मध्य में पूर्ण अधिकार से रहे। संघ के लोग भी, इस प्रकार के व्यवहार करने वाले राजाओं के इन जालों से अपनी भलाई के निमित्त रक्षा करते रहें ॥७५-७७॥

संघमुख्यश्च संघेषु न्यायवृत्तिर्हितः प्रियः।
दान्तो युक्तजनस्तिष्ठेत्सर्वचित्तानुवर्तकः ॥ ७८ ॥

इति संघवृत्ते एकादशे ऽधिकरणे भेदोपादानानि, उपांशुदण्डश्च प्रथमो ऽध्यायः। आदितः पञ्चत्रिंशच्छतः ॥ १३५ ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य संघवृत्तमेकादशमधिकरणं समाप्तम् ॥ ११ ॥

संघ का मुख्य पुरुष, अपने संघ में न्यायानुसार प्रिय वृत्ति धारण करे। वह उदार रह कर योग्य पुरुषों के साथ अपना सहयोग रखे और सब साथियों के चित्त को अनुकूल बनाये रहे ॥७८॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत संघवृत्त नामक अधिकरण में भेद के ढंग और गुपचुप मारण के प्रयोगों के वर्णन का पहला अध्याय समाप्त हुआ।



आबलीयसं द्वादशाधिकरणम्

प्रथम अध्याय

१६२ वां प्रकरण

दूतकर्म

इस प्रकरण में दूत के कर्मों का निरूपण किया जावेगा।

बलीयसाभियुक्तो दुर्बलः सर्वत्रानुप्रणतो वेतसधर्मा तिष्ठेत् ॥१॥ इन्द्रस्य हि स प्रणमति यो बलीयसो नमतीति भारद्वाजः ॥ २ ॥ सर्वसंदोहेन बलानां युध्येत ॥ ३ ॥ पराक्रमो हि व्यसनमपहन्ति ॥ ४ ॥ स्वधर्मश्चैष क्षत्रियस्य ॥५॥ युद्धे जयः पराजयो वेति विशालाक्षः ॥ ६ ॥ नेति कौटल्यः ॥७॥ सर्वत्रानुप्रणतः कुलैडक इव निराशो जीविते वसति ॥८॥ युध्यमानश्चाल्पसैन्यः समुद्रमिवाप्लवोऽवगाहमानः सीदति ॥ ९ ॥ तद्विशिष्टं तु राजानमाश्रितो दुर्गमविषह्यं वा चेष्टेत ॥ १० ॥

जब बलवान् राजा, निर्बल पर आक्रमण करे-तो निर्बल राजा, सर्वदा नमस्कार करता हुआ बलवान् के सन्मुख बेंत की तरह झुक जावे। भरद्वाज मुनि कहते हैं, कि जो बलवान् को झुकता है, वह तो इन्द्र को झुक रहा है, बलवान् तो एक प्रकार का इन्द्र है। विशालाक्ष आचार्य कहते हैं, कि सारी सेनाओं का बल लगाकर निर्बल भी लड़जावे। पराक्रम ही विपत्ति को नाश कर देता है। क्षत्रिय का युद्ध करना ही धर्म है। युद्ध में तो जय या पराजय एक बात होती ही है। कौटल्याचार्य, इन दोनों मतों को नहीं मानते। वे कहते है, कि जब सब कामों में ही निर्बल को झुकना पड़ा-तो वह तो कुर्बानी के मेंढे के समान अपने जोवन में भी निराशा हो जावेगा। यदि थोड़ी सेना लेकर युद्ध में कूद पड़ेगा-तो बिना नौका के समुद्र में कूदने के तुल्य डूब-जावेगा, इससे किसी शक्तिशाली राजा का आश्रय लेवे या अविषह्य-दुर्ग में बैठ कर अपने विजयी होने की बुद्धिमत्ता से चेष्टा करता रहे ॥१-१०॥

त्रयो ऽभियोक्तारो धर्मलोभासुरविजयिन इति ॥११॥ तेषामभ्यवपत्त्या धर्मविजयी तुष्यति ॥ १२ ॥ तमभ्यवपद्येत परेषामपि भयात् ॥ १३ ॥ भूमिद्रव्यहरणेन लोभविजयी तुष्यति ॥१४॥ तमर्थेनाभ्यवपद्येत ॥१५॥ भूमिद्रव्यपुत्रदारप्राणहरणेनासुरविजयी ॥१६॥ तं भूमिद्रव्याभ्यामुपगृह्याग्राह्यः प्रतिकुर्वीत ॥१७॥

आक्रमण करने वाले धर्म विजयी, लोभ विजयी और असुर-विजयी-इस प्रकार तीन तरह के होते हैं। मैं तेरे अधीन हूं, इतना कहते ही धर्म विजयी सन्तुष्ट हो जाता है। ऐसे धर्मात्मा राजा का आश्रय लिए रहे, क्योंकि इसके आश्रय के कारण अन्य शत्रुओं को भी भय बना रहेगा। भूमि द्रव्य के अपहरण से लोभी विजेता सन्तुष्ट हो जाता है, इसलिए उसको धन देकर सन्तुष्ट कर लेवे। जो असुर भाव के साथ विजय करता है, वह तो भूमि, द्रव्य, पुत्र, स्त्री और प्राणों के अपहरण से ही निवृत्त होता है। उसको भी भूमि और द्रव्य देकर शान्त करे और उसका विश्वास न करके उसके प्रतीकार की चेष्टा करते रहे ॥११-१७॥

तेषामुत्तिष्ठमानं संधिना मन्त्रयुद्धेन कूटयुद्धेन वा प्रतिव्यूहेत ॥१८॥ शत्रुपक्षमस्य सामदानाभ्याम् ॥ १९॥ स्वपक्षं भेददण्डाभ्याम् ॥ २० ॥ दुर्गं राष्ट्रं स्कन्धावारं वास्य गूढाः शस्त्ररसाग्निभिः साधयेयुः ॥ २१ ॥ सर्वतः पार्ष्णिमस्य ग्राहयेत् ॥ २२ ॥ अटवीभिर्वा राज्यं घातयेत् ॥ २३ ॥ तत्कुलीनावरुद्धाभ्यां वा हारयेत् ॥ २४ ॥

जब ये आक्रान्ता चढ़ाई करें-तो कूट मन्त्र या कूट युद्ध द्वारा उनका मुक़ाबिला किया जावे। इसके शत्रु पक्ष को भी साम और दान से सन्तुष्ट करे। अपने बिगड़े हुए अमात्य आदि को भेद या दण्ड से वश में करे तथा शत्रु के दुर्गपाल राष्ट्र और छावनी को गुप्तचर शस्त्र, विष और अग्नि से नष्ट कर देवें तथा जब २ समय मिले इसकी राजधानी पर पीछे से आक्रमण करावे। वनचर भीलों से इसके राज्य में मार काट मचवा देवे या उसके कुल के लोग और किसी बन्धन में लिए हुए पुरुष से उसका पीछा करवावे ॥१८-२४॥

अपकारान्तेषु चास्य दूतं प्रेषयेत् ॥ २५ ॥ अनपकृत्य वा संधानम् ॥२६॥ तथाप्यभिप्रयान्तं कोशदण्डयोः पादोत्तरमहोरात्रोत्तरं वा संधिं याचेत ॥ २७ ॥

जब इस प्रकार इसको हानि पहुंचा देवे तो फिर सन्धि के निमित्त दूत भेजे। यदि किसी भी प्रकार अपकार न कर सके-तो भी उससे सन्धि की याचना करे। इतने पर भी वह चढ़ाई करना चाहे; तो कोश और सेना में एक पाद और वृद्धि करके सन्धि

कर लेवे अर्थात् कुछ द्रव्य और सेना अधिक सुपुर्द कर देवे और सन्धि के लिए प्रयत्न करे ॥२५-२७॥

स चेद्दण्डसंधिं याचेत कुण्ठमस्मै हस्त्यश्वं दद्यादुत्साहितं वा गरयुक्तम् ॥२८॥ पुरुषसंधिं याचेत दूष्यामित्राटवीबलमस्मै दद्याद्योगपुरुषाधिष्ठितम् ॥२९॥ तथा कुर्याद्यथोभयविनाशः स्यात् ॥ ३०॥ तीक्ष्णबलं वास्मै दद्यात् यदवमानितं विकुर्वीत ॥ ३१ ॥ मौलमनुरक्तं वा, यदस्य व्यसने ऽपकुर्यात् ॥ ३२ ॥

यदि आक्रमणकारी राजा, सेना की शर्त से ही सन्धि करे-तो उसको रद्दी हाथी, अश्व, देवे या उन्हें ऐसा विष खिला देवे, कि वह थोड़े दिन में वहां जाकर मर जावें। यदि विजेता, पुरुष सन्धि करना चाहें, तो भीतर से बिगड़े हुए पुरुष, शत्रु या जङ्गली सेना को इसके सुपुर्द कर देवे जिसमें धोखे से अपने पुरुष घुसे हुए हों। वे वहां ऐसा उपाय करें-कि जिससे दोनों का नाश हो जावे, अथवा उसको तीक्ष्ण सेना दे देवे, जिससे कभी उसका अपमान करते ही वह बिगड़ उठे अथवा अपनी प्रधान सेना या अनुरक्त सेना को शत्रु को दे देवे, जिससे कभी विपत्ति पड़े-तो वह अपना साथ देवे ॥२७-३२॥

कोशसंधिं याचेत सारमस्मै दद्याद्यस्य क्रेतारं नाधिगच्छेत् ॥ ३३ ॥ कुप्यमयुद्धयोग्यं वा ॥ ३४ ॥ भूमिसंधिं याचेत प्रत्यादेयां नित्यामित्रामनपाश्रयां महाक्षयव्ययनिवेशां वास्मै भूमिं दद्यात् ॥ ३५ ॥ सर्वस्वेन वा राजधानीवर्जेन संधिं याचेत बलीयसः ॥ ३६ ॥

यदि विजेता कोश (धन) लेकर ही सन्धि चाहे, तो उसे इतनी कीमती सार वस्तु देवें, कि जिससे उसे खरीदने वाला न मिले अथवा ऐसी धातु की चीजें देवे-जो युद्ध में काम न आ सके। यदि विजेता, भूमि द्वारा सन्धि का अभिलाषी हो-तो उसको ऐसी भूमि देवे-जो फिर आसानी से लौटाई जा सके । जिसमें सदा शत्रु का भय हो तथा जहां कोई दुर्ग भी न बन रहा हो । यदि उसको बसाया जावे-तो बड़ा जनक्षय और धन का व्यय होवे। यदि बलवान् शत्रु किसी तरह भी न माने तो अपनी केवल राजधानी बचाकर उसे सब कुछ भी दे डाले और सन्धि करलेवे ॥३३-३६॥

यत्प्रसह्य हरेदन्यः तत्प्रयच्छेदुपायतः ।
रक्षेत्स्वदेहं न धनं का ह्यनित्ये धने दया ॥ ३७॥

इत्याबलीयसे द्वादशे ऽधिकरणे दूतकर्माणि संधियाचनं प्रथमो ऽध्यायः ॥१॥
आदितः षट्त्रिंशच्छतः ॥ १३६ ॥

राजा, जिस धन को बल-पूर्वक छीनता है, उसे उसी राजा को किसी उपाय से लौटा देवे। धन से असन्तुष्ट हुआ राजा कहीं धोखे से प्राण न ले लेवे। अतएव अपनी देह की रक्षा करे, अनित्य धन की लालसा ठीक नहीं है ॥३७॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत आबलीयस अधिकरण में दूत कर्म द्वारा सन्धि करने का पहला अध्याय समाप्त हुआ।

दूसरा अध्याय

१६३ वां प्रकरण

मन्त्रयुद्ध

इस प्रकरण में बुद्धिमत्ता से युद्ध करने के उपायों का वर्णन किया जावेगा।

स चेत्संधौ नावतिष्ठेत ब्रूयादेनमः—॥ १ ॥ इमे षड्वर्गवशगा राजानो विनष्टाः तेषामनात्मवतां नार्हसि मार्गमनुगन्तुम् ॥२॥ धर्ममर्थं चावेक्षस्व ॥३॥ मित्रमुखा ह्यमित्रास्ते ये त्वां साहसमधर्ममर्थातिक्रमं च ग्राहयन्ति ॥ ४ ॥ शूरैस्त्यक्तात्मभिः सह योद्धुं साहसम् ॥ ५ ॥ जनक्षयमुभयतः कर्तुम धर्मः॥६॥ दृष्टमर्थं मित्रमदुष्टं च त्यक्तुमर्थातिक्रमः ॥ ७ ॥

यदि शत्रु, सन्धि न करे या सन्धि पर कायम न रहे-तो उसको इस प्रकार समझावे, कि जो राजा, काम, क्रोध लोभ, मान, मद और हर्ष के वश में हो गये वह नष्ट हो गए हैं, अतएव तुम्हें ही धर्म राजाओं का सा आचरण नहीं करना चाहिए। तुम ही धर्म और राजनीति की ओर नहीं देखोगे-तो कौन देखेगा। तुम धर्म और नीति को देखो। जो तुम्हें युद्ध नीति और धर्म का अति क्रमण करने को उत्तेजित कर रहे हैं, वे तुम्हारे शत्रु हैं, उनको तुम ऊपर के मित्र समझो अपने जीवन की परवाह न करके शूरवीर लोग जिसमें लड़ने को उतर पड़ते हैं, उसे साहस युद्ध कहते हैं। दोनों ओर के जनों का विश्वास कर लेना ही अधर्म है। अपना दृढ़ स्वार्थ और उत्तम प्रेमी मित्र का त्याग नीति का अतिक्रमण समझो ॥१-७॥

मित्रवांश्च स राजा भूयश्चैतेनार्थेन मित्राण्युद्योजयिष्यति यानि त्वा सर्वतोऽभियास्यन्ति ॥ ८ ॥ न च मध्यमोदासीनयोर्मण्डलस्य वा परित्यक्तः ॥ ९ ॥ भवांस्तु परित्यक्तो ये त्वां समुद्युक्तमुपप्रेक्षन्ते ॥ १० ॥ भूयः क्षयव्ययाभ्यां युज्यताम् ॥ ११ ॥ मित्राच्च भिद्यताम् ॥ १२ ॥ अथैनं परित्यक्तमूलं सुखेनो-

च्छेत्स्याम इति ॥ १३ ॥ स भवान्नार्हति मित्रमुखानाममित्राणां श्रोतुं मित्राण्युद्वेजयितुममित्रांश्च श्रेयसा योक्तुं प्राणसंशयमनर्थं चोपगन्तुमिति यच्छेत् ॥१४॥

जिस राजा से तुम लड़ने चले हो उसके बहुत से मित्र हैं, फिर जो तुम्हें धन देना है वह उसी से अपने मित्रों को जुटा लेगा, जो तुझे सब ओर से घेर लेंगे। मध्यम उदासीन तथा राज मण्डल किसी ने भी उसका परित्याग नहीं कर रखा है। तुमको तो इन मध्यम उदासीन आदि राजाओं ने छोड़ सा दिया है, जो तुमको युद्ध के लिए सन्नद्ध देखकर भी चुपचाप तमाशा देख रहे हैं। इनकी तो यही इच्छा दिखाई देती है, कि तुम्हारा जन और धन का फिर विनाश हो जावे। तुम अपने मित्रों से अलग हो जावो और फिर जड़ कट जाने पर हम लोग इसे सुख से जीत लेवें, इस लिए तुम मित्र रूपधारी शत्रुओं की बात मत सुनो और न अपने मित्रों को शत्रु बनाओ। इससे तो तुम्हारे शत्रुओं का ही भला होगा और तुम्हारे प्राण संकट में पड़ जावेंगे ॥८-१४॥

तथापि प्रतिष्ठमानस्य प्रकृतिकोपमस्य कारयेद्यथासंघवृत्ते व्याख्यातं योगवामने च ॥ १५ ॥ तीक्ष्णरसदप्रयोगं च ॥ १६ ॥ यदुक्तमात्मरक्षितके रक्ष्यं तत्र तीक्ष्णान्रसदांश्च प्रयुञ्जीत ॥१७॥ बन्धकीपोषकाः परमरूपयौवनाभिः स्त्रीभिः सेनामुख्यानुन्मादयेयुः ॥ १८ ॥ बहूनामेकस्यां द्वयोर्वा मुख्ययोः कामे जाते तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः ॥ १९ ॥ कलहे पराजितपक्षं परत्रात्रापगमने यात्रासाहाय्यदाने वा भर्तुर्योजयेयुः ॥ २० ॥

इतना समझाने पर भी वह युद्ध के लिए तैयार ही रहे-तो इसकी अमात्य आदि प्रकृति को संघवृत्त तथा योगवामन प्रकरण में बताये हुए उपायों द्वारा इसके विरुद्ध कर देवे तथा छुपकर शस्त्र से मारने वाले तीक्ष्ण पुरुषो या विष देने वाले पुरुषों से मरवा देवे। इसी तरह वेश्या वृत्ति के लोग, सुन्दर स्त्रियों के द्वारा इसके मुख्य २ सेना के पुरुषों को वश में कर लेवे। जब बहुत से सेनापति या दो ही एक स्त्री पर लट्टू हो जावे-तो तीक्ष्ण पुरुष अपने उपायों द्वारा उन पुरुषों में कलह उत्पन्न करा देवे। कलह में जो पक्ष पराजित हुआ, उसको दूसरे स्थान या विजेता की ओर ले जावे और विजेता की चढ़ाई की सहायता में उसे लगावे ॥१५-२०॥

कामवशान् वा सिद्धव्यञ्जनाः सांवननिकीभिरोपधीभिरिति संधानाय मुख्येषु रसं दापयेयुः ॥ २१ ॥ वैदेहकव्यञ्जनो वा राजमहिष्याः सुभगायाः प्रेष्यामासन्नां कामनिमित्तमर्थेनाभिवृष्य परित्यजेत् ॥ २२ ॥ तस्यैव परिचारकव्यञ्जनोपदिष्टः सिद्धव्यञ्जनः सांवननिकीमोषधीं दद्याद्-वैदेहकशरीरे ऽवधातव्येति ॥ २३ ॥

सिद्धे सुभगायो अप्येनं योगमुपदिशेद्-राजशरीरे ऽवघातव्येति ॥ २४ ॥ ततो रसेनातिसंदध्यात् ॥ २५ ॥

यदि इस तरह न हो सके-तो काम के वशीभूत सेनापतियों को तपस्वी रूप में फिरने वाले गुप्तचर, वशीकरण ओषधियों के बहाने, उन्हें मार देने के लिए विष का प्रयोग करें अथवा कोई व्यापारी के रूप में रहने वाला राजपुरुष, सुन्दर राजमहिषी की किसी सुन्दर परिचारिका को बहुत सा धन देकर अपने पास मैथुन को बुलावे और उससे मैथुन करके उसे बहुत सा धन देवे और उसे ही शत्रु राजा के मारने में प्रयुक्त करे। उसी व्यापारी के बने हुए नौकर, सिद्ध तपस्वी का वेश बनाकर उस दासी को वशीकरण की ओषधि देवे, कि तुम इसे व्यापारी के शरीर में लगा देना-वह वश में हो जावेगा। जब व्यापारी वश में बन जावे, और रानी को विश्वास होगा तो रानी को भी अपने राजा के वशमें करने का उपाय बताया जावे, कि तुम भी इस ओषधि को राजा पर छिड़को जब वह तय्यार हो जावे-तो उसको विष ओषधि देवे और उसके द्वारा राजा को मरवा देवे ॥ २१-२५ ॥

कार्तान्तिकव्यञ्जनो वा महामात्रं राजलक्षणसंपन्नं क्रमाभिनीतं ब्रूयात् ॥ २६ ॥ भार्यामस्य भिक्षुकी–राजपत्नी राजप्रसविनी वा भविष्यसीति ॥ २७ ॥ भार्याव्यञ्जना वा महामात्रं ब्रूयात्—॥ २८ ॥ राजा किलमामवरोधयिष्यति ॥ २९ ॥ ममान्तिकाय पत्रलेख्यमाभरणं चेदं परिव्राजिकयाहृतमिति ॥ ३० ॥ सूदारालिकव्यञ्जनो वा रसप्रयोगार्थं राजवचनमर्थं चास्य लोभनीयमभिनयेत् ॥ ३१ ॥ तदस्य वैदेहकव्यञ्जनः प्रतिसंदध्यात् ॥ ३२ ॥ कार्यसिद्धिं च ब्रूयात् ॥ ३३ ॥ एवमेकेन द्वाभ्यां त्रिभिरित्युपायैरेकैकमस्य महामात्रं विक्रमायापगमनाय वा योजयेदिति ॥ ३४ ॥

इसी तरह कोई ज्योतिषी, किसी प्रधान अधिकरी को कहे, कि तुम्हारे तो राजा होने के लक्षण हैं और कोई तपस्वी उसकी स्त्री को कहे, कि तुम तो राजरानी और राजमाता के लक्षणों से युक्त हो-इस तरह ये अपने राजा के विरुद्ध विद्रोह कर देंगे। शत्रु राजा के अफसर के साथ अपनी किसी गुप्तचर कन्या का विवाह करवादे। थोड़े दिन में वह अपने पति से कहे, कि राजा अवश्य मुझे अपने रनिवास में डालेगा, देखो उसने यह लेख और आभूषण किसी भिक्षुणी दूती के हाथ मेरे पास भेजे हैं। इस तरह भी उनमें झगड़ा हो जावेगा। इसी तरह इस बड़े अधिकारिणी के तोड़ने के लिए कोई रसोइया या

मांसपाचक उस अधिकारी से कहे, कि राजा तुम्हें विप दिलाने को कह रहा है और धन देने को उद्यत है। उसी समय कोई व्यापारी रूप में रहने वाला गुप्तचर भी इस वात का अनुमोदन करे, कि हां राजा ऐसा चाहता है, उसने इस रसोइये पर मेरे हाथ विप विकवाया है। इस तरह एक, दो या तीनों उपायों से पृथक् २ महामात्यों (वड़े अफसरों) को को अपने अनूकूल वनाकर उन्हें राजा से लड़ने या वहां से खसक जाने को तय्यार कर देवे ॥ २६-३४ ॥

दुर्गेषु चास्य शून्यपालासन्नाः सत्त्रिणः पौरजानपदेषु मैत्रीनिमित्तमावेदयेयुः ॥ ३५ ॥ शून्यपालेनोक्ता योधाश्चाधिकरणस्थाश्च ॥ ३६ ॥ कृच्छ्रगतो राजा जीवन्नागमिष्यति न वा ॥ ३७ ॥ प्रसह्य वित्तमार्जयध्वममित्रांश्च हत" इति ॥ ३८ ॥ बहुलीभूते तीक्ष्णाः पौरान्निशास्वाहारयेयुर्मुख्यांश्चाभिहन्युः ॥ ३९ ॥ एवं क्रियन्ते ये शून्यपालस्य न शुश्रूषन्ते इति ॥ ४० ॥ शून्यपालस्थानेषु च सशोणितानि शस्त्रवित्तबन्धनान्युत्सृजेयुः ॥ ४१ ॥ ततः सत्त्रिणः शून्यपालो घातयति विलोपयति चेत्यावेदयेयुः ॥४२॥ एवं जानपदान्समाहर्तुर्भेदयेयुः ॥४३॥

शत्रु राजा के दुर्ग में रहने वाले, उसके पीछे से राजधानी के रक्षक अधिकारियों के समीप रहने वाले विजेता के गुप्तचर, अपनी मित्रता दिखाने को पुर मनुष्यों में यह वात फैलादे, कि शून्य-पाल (राजधानी रक्षक अफसर) ने सारे सेनापति और न्यायाधीशों को यह जता दी है कि राजा बड़े, संकट में उलझ गया है, न मालूम जीता भी आवेगा या नहीं। अब तुम इसको सहायता के लिए प्रजा से वल-पूर्वक धन छीनो और जो विरोध करे-उसे मरवा डालो। जब यह प्रवाह बहुत फैल जावे, तो पुरवासियों को विजेता के छुपे पुरुष लूट लेवे और मुख्य २ पुरुषों को मार भी देवे। तथा सब जगह यह घोषणा सी करदें, कि जो शून्यपाल की न मानेगा-उसकी यही दशा होगी। इसको सिद्ध करने को शून्यपाल के स्थानों में रक्त से भीगी हुई रस्सी और शस्त्र तथा धन वांधने के साधन डाल देवे। सत्री (राजा के गुप्तचर) लोग तो यही प्रसिद्ध करें, कि शून्यपाल ही सबको लुटवाता और मरवाता है। इस तरह शून्यपाल और प्रजा में भेद पड़ जावेगा। समाहर्ता (कलक्टर) से भी इसी तरह प्रजा के साथ भिड़ाने की चेष्टा की जावे ॥३५-४३॥

समाहर्तृपुरुषांस्तु ग्राममध्येषु रात्रौ तीक्ष्णा हत्वा ब्रूयुः ॥ ४४ ॥ एवं क्रियन्ते ये जनपदमधर्मेण बाधन्त इति ॥ ४५ ॥ समुत्पन्ने दोषे शून्यपालं समाहर्तारं वा प्रकृतिकोपेन घातयेयुः ॥ ४६ ॥ तत्कुलीनमवरुद्धं वा प्रतिपादयेयुः ॥ ४७ ॥

समाहर्ता के पुरुषों को रात में मारकर, वे ही घातक पुरुष, गांवों के बीच में यह बात उड़ावें, जो प्रजा को दुःखी करता है, उसका यह हाल हो जाता है जब प्रजा को शून्यपाल और समाहर्ता के इस प्रकार के अन्याय जंच जावें, तो वे फिर उनके साथी लोगों को भड़का कर उन्हें मरवा डाले। और राजा के किसी बान्धव या अपने पास क़ैद में डाले हुए राजकुमार को राजधानी का अधिकारी बनादे ॥४४-४७॥

अन्तःपुरपुरद्वारद्रव्यधान्यपरिग्रहान् ।
दहेयुस्तांश्च हन्युर्वा ब्रूयुरस्यार्तवादिनः ॥ ४८ ॥

इत्याबलीयसे द्वादशे ऽधिकरणे दूतकर्माणि वाक्ययुद्धं मन्त्रयुद्धं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥ आदितः सप्तत्रिंशच्छतः ॥ १३७ ॥

इस तरह विजेता, शत्रु राजा के अन्तःपुर (रनिवास) राजधानी द्वार, द्रव्य, और अनाज के भण्डारों को जला डाले, उन अधिकारियों या रक्षकों को मार डाले। फिर बड़े रोते चिल्लाते लोग, उस शत्रु राजा को यह समाचार सुनाकर घबड़ा देवें ॥४८॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत आबलीयस अधिकरण में मन्त्रयुद्ध के वर्णन का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।



तीसरा अध्याय

१६४-१६५वां प्रकरण

सेनामुख्यवधे मण्डल प्रोत्साहनम्

इस प्रकरण में शत्रु के सेनापतियों के वध के ढंग और उसके राज मण्डल के उत्तेजित करने के उपायों का वर्णन किया जावेगा।

राज्ञो राजवल्लभानां चासन्नाः सत्त्रिणः पत्त्यश्वरथद्विपमुख्यानां राजा क्रुद्ध इति सुहृद्विश्वासेन मित्रस्थानीयेषु कथयेयुः ॥ १ ॥ बहुलीभूते तीक्ष्णाः कृतरात्रिचारप्रतीकारा गृहेषु स्वामिवचनेनागम्यतामिति ब्रूयुः ॥४॥ तान्निर्गच्छत एवाभिहन्युः ॥३॥ स्वामिसंदेश इति चासन्नान् ब्रूयुः ॥२॥ ये च प्रवासितास्तान्स त्रिणो ब्रूयुः ॥५॥ एतत्तद्यदस्माभिः कथितं जीवितुकामेनापक्रान्तव्यमिति ॥६॥

राजा या राजा के प्रियपात्रों के समीप रहने वाले सत्री लोग (गुप्तचरों) अपने मित्र बने हुए, पैदल, अश्व, रथ और हाथियों के अधिकारियों को मित्रता का विश्वास

दिलाते हुए यह बात सुनावें, कि राजा तुम पर कुपित हो गया है। जब इस प्रकार की चर्चा सब जगह फैल जावे, तो विजेता के तीक्ष्ण पुरुष, उन अधिकारियों के पास घरों पर रात में भी पहुंच जावें और कहें-कि तुमको राजा ने बुलाया है। जब वे चल पड़े-तो उनको गांव से बाहर ही मार डालें और उनके नौकरों से कह दें, कि यह स्वामी की आज्ञा थी। इस प्रकार शत्रु राजा और मण्डल में खूब तन जावेगी। जा सेनापति, बाहर चले गए-उनसे वे गुप्तचर कहें, कि देखो, वही बात हुई जो हम कह रहे थे कि जो जोना चाहे-वह भाग जावे। तुम बचे रह गए हो और अन्य मारे गए-इससे बचे सेनापति भी राजा के पास न आवेंगे ॥१-६॥

येभ्यश्च राजा याचितो न ददाति तान्सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥ ७ ॥ उक्तः शून्यपालो राज्ञा ॥ ८ ॥ अयाच्यमर्थमसौ चासौ च मां याचते ॥ ६ ॥ मया प्रत्याख्याताः शत्रुसंहिताः ॥ १० ॥ तेषामुद्धरणे प्रयतस्वेति ॥ ११ ॥ ॥ ११ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत् ॥ १२ ॥

जिन पुरुषों ने राजा से जो याचना की और राजा ने किसी कारण से उसे न दिया-तो उन पुरुषों से गुप्तचर जाकर कहें, कि राजा ने अपनी राजधानी के रक्षक से कहा है, कि इन २ लोगों ने मुझ से अनुचित वस्तु की मांग की और मैंने इन्हें न दी, इससे ये लोग शत्रु से मिल गए हैं-अब तुम इनको मार डालो-जब यह बात फैल जावे, तब उनको मरवा डाले ॥७-१२॥

येभ्यश्च राजा याचितो ददाति तान्सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥ १३ ॥ उक्तः शून्यपालो राज्ञा ॥ १४ ॥ अयाच्यमर्थमसौ चासौ च मा याचते ॥ १५ ॥ तेभ्यो मया सो ऽर्थो विश्वासर्थं दत्तः, शत्रुसंहिताः ॥ १६ ॥ तेषामुद्धरणे प्रयतस्वेति ॥ १७ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत् ॥ १८ ॥

जिनको राजा ने मांगी हुई वस्तु देने का वायदा कर दिया, उनसे गुप्तचर कहें, कि राजा ने अपने शून्यपाल से कहा था, कि ये लोग मुझ से नहीं मांगने योग्य वस्तु मांगते हैं। मैंने भी उनको विश्वास के लिए वह वस्तु देदी या दे देने का बहाना किया है। वे मेरे इस भाव को पहचानकर शत्रु से जा मिले हैं। तुम उनको उखाड़ डालो। इस तरह बात फैलने पर उनको मरवा डाले १३-१८॥

ये चैनं याच्यमर्थं न याचन्ते तान्सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥ १६ ॥ उक्तः शून्यपालो राज्ञा ॥ २० ॥ याच्यमर्थमसौ चासौ च मा न याचते ॥ २१ ॥ किमन्यत्

स्वदोषशङ्कितत्वात् ॥ २२ ॥ तेषामुद्धरणे प्रयुतस्वेति ॥ २३ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत् ॥ २४ ॥ एतेन सर्वः कृत्यपक्षो व्याख्यातः ॥ २५ ॥

जो लोग मांगने योग्य वस्तु को भी राजा से न मांग रहें, हो उनसे विजेता के गुप्तचर इस प्रकार कहें कि राजा ने अपने शून्यपाल से कहा है, कि ये लोग, मांगने योग्य वस्तु भी मुझ से नहीं मांग रहे हैं। इसका अन्य कारण क्या हो सकता है। ये तो शत्रु से मिल जाने के अपराध से मेरे पास आने में भी डरते हैं। अब तुम इनका नाश करो और फिर बात के फैल जाने पर इन्हें मरवा डालो। इस तरह शत्रु का सारा मण्डल तोड़ा फोड़ा जा सकता है ॥१९-२५॥

प्रत्यासन्नो वा राजानं सत्त्री ग्राहयेत् ॥ २६ ॥ असौ चासौ च ते महामात्रः शत्रुपुरुषैः संभाषत इति ॥ २७ ॥ प्रतिपन्ने दूष्यानस्य शासनहरान्दर्शयेत् ॥ २८ ॥ एतत्तदिति ॥ २९ ॥ सेनामुख्यप्रकृतिपुरुषान्वा भूम्या हिरण्येन वा लोभयित्वा स्वेषु विक्रमयेदपवाहयेद्वा ॥ ३० ॥ यो ऽस्य पुत्रः समीपे दुर्गे वा प्रतिवसति तं सत्त्रिणोपजापयेत् ॥ ३१ ॥ आत्मसंपन्नतरस्त्वं पुत्रः तथाप्यन्तर्हितः ॥ ३२ ॥ तत्किमुपेक्षसे ॥ ३३ ॥ विक्रम्य गृहाण ॥ ३४ ॥ पुरा त्वा युवराजो विनाशयतीति ॥३५॥

राजा के समीपवर्ती सेवकों में पहुंचा हुआ विजेता का गुप्तचर, राजा को सुझावे, कि अमुक २ महामात्र (बड़े अफसर) तुम्हारे शत्रु पुरुषों से बातें करते हैं। इसके अनन्तर राजा से भीतरी अप्रसन्न पुरुषों को शत्रु के पास ले जाते हुए बनावटी पत्र को पकड़ा देवे कि देखो-यह सारा झगड़ा इस प्रकार है। इसी तरह सेना के अन्य मुख्य पुरुषों या अमात्य आदि को विजेता के गुप्तचर, भूमि, सुवर्ण आदि का लोभ देकर शत्रु राजा से लड़ा देवें या वहां से उन्हें दूर भगा देवें। जो शत्रु राजकुमार, किसी समीपवर्ती दुर्ग में रहता हो, उसको भी शत्रु राजा के विरुद्ध भड़का कर राज्य पर कब्जा करने को चढ़ा लावे। उससे कहें, कि तुम तो बड़े गुणों से सम्पन्न हो और सबसे समीपवर्ती हो। तुम क्यों प्रतीक्षा कर रहे हो। युद्ध छेड़ दो नहीं तो यह जो युवराज बना हुआ है, यह तुमको मरवा डालेगा ॥२६-३५॥

तत्कुलीनमवरुद्धं वा हिरण्येन प्रतिलोभ्य ब्रूयात् ॥ ३६ ॥ अन्तर्बलं प्रत्यन्तस्कन्धमन्यं वास्य प्रमृद्गीहीति ॥ ३७ ॥ आटविकानर्थमानाभ्यामुपगृह्य राज्यमस्य घातयेत् ॥ ३८ ॥ पार्ष्णिग्राहं वास्य ब्रूयात् ॥ ३९ ॥ एष खलु

राजा मामुच्छिद्य त्वामुच्छेत्स्यति ॥ ४० ॥ पार्ष्णिमस्य गृहाण ॥४१॥ त्वयि निवृत्तस्याहं पार्ष्णिं ग्रहीष्यामीति ॥ ४२ ॥

यदि राजकुल का कोई वीर या राजकुमार कैद में डाला हुआ हो, तो उसे सुवर्ण के लोभ से दूषित करके कहें; कि तुम राजा के मूलबल या देश की सीमा पर स्थित सेना तथा अन्य किसी सेना पर आक्रमण करदो तथा जंगली भीलों को धन और मान से अपनी ओर मिलाकर इस राजा का राज्य नष्ट करदो और स्वयं राजा बन जाओ। इसी तरह शत्रु के पार्ष्णिग्राह (पीछे से आक्रमण करने वाला) राजा से कहे, कि यह राजा मुझे नष्ट करके तुम्हें भी नष्ट कर देगा, इसलिए तुम इसकी राजधानी पर इसके पीछे से आक्रमण करो-जब यह लौट पड़ेगा तो मैं इसपर पीछे से आक्रमण कर दूंगा ॥३६-४२॥

मित्राणि वास्य ब्रूयात् ॥ ४३ ॥ अहं वः सेतुः ॥ ४४ ॥ मयि विभिन्ने सर्वानेष वो राजाप्लावयिष्यतीति ॥ ४५ ॥ संभूय वास्य यात्रां विहनाम इति ॥ ४६ ॥ तत्संहतानामसंहतानां च प्रेषयेत् ॥ ४७ ॥ एष खलु राजा मामुत्पाट्य भवत्सु कर्म करिष्यति ॥ ४८ ॥ बुध्यध्वम्, अहं वः श्रेयानभ्यवपत्तुमिति ॥ ४९॥

इस शत्रु राजा के जो मित्र हों-उनसे कहे, कि केवल तुम्हारा सेतु (रक्षक) मैं ही हूं। यदि मैं नष्ट भ्रष्ट हो गया-तो यह राजा सब पर जल प्रवाह की भांति छा जावेगा। अब हम सब लोग मिलकर इस पर चढ़ाई करदें। इस तरह शत्रु राजा से मिले हुए या नहीं मिले हुए सभी राजाओं पर पत्र भेजे कि यह राजा मुझे उखाड़कर आपको भी उखाड़ेगा। मैं तुमको तुम्हारे कल्याण की बात बता रहा हूं-तुम चेत जाओ॥४३-४९॥

मध्यमस्य प्रहिणुयादुदासीनस्य वा पुनः ।
यथासंन्नस्य मोचार्थं सर्वस्वेन तदर्पणम् ॥ ५० ॥

इत्यावलीयसे द्वादशेऽधिकरणे सेनामुख्यवधः मण्डलप्रोत्साहनं च तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदितोऽष्टत्रिंशच्छतः ॥ १३८ ॥

निर्बल राजा, मध्यम, उदासीन तथा अपने समीप के सारे राजाओं के पास अपने बचाव के निमित्त इस तरह का पत्र भेजदे और उनको अपने सर्वस्व अर्पण करके भी दास रहने का विश्वास दिलावे ॥५०॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत आबलीयस अधिकरण में सेनापतियों के मरवाने और राज मण्डल के विरुद्ध कराने का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।



चौथा अध्याय

१६६-१६७वां प्रकरण

शस्त्राग्नि रस प्रणिधयो वीवधासारप्रसार वधः ।

इस प्रकरण में शस्त्र, अग्नि और विष के गुप्त प्रयोग तथा धान्य की प्राप्ति मित्र सेना का आगमन और लकड़ी घास आदि के शत्रु द्वारा इकट्ठे करने के उपायों के रोकने का वर्णन होगा।

ये चास्य दुर्गेषु वैदेहकव्यञ्जनाः, ग्रामेषु गृहपतिकव्यञ्जनाः, जनपदसंधिषु गोरक्षकतापसव्यञ्जनास्ते सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानां पण्यागारपूर्वं प्रेषयेयुः ॥ १ ॥ १ ॥ अयं देशो हार्य इति ॥ २ ॥ आगतांश्चैषां दुर्गे गूढपुरुषानर्थमानाभ्यामभिसत्कृत्य प्रकृतिच्छिद्राणि प्रदर्शयेयुः ॥ ३ ॥ तेषु तैः सह प्रहरेयुः ॥ ४ ॥

जो विजेता राजा के गुप्तचर, दुर्गों में व्यापारी, गांवों में गृहस्थी, देशों की सन्धियों (सरहद्दों) पर ग्वाले या तपस्वी के वेष में हों-वे शत्रु के सामन्त, जंगली भील और उसके किसी वंशज या रोके हुए राजकुमारों के पास में टिके द्रव्य के साथ दूत भेजें कि तुम लोग, राजा के इस प्रदेश पर अधिकार करलो। जब ये लोग गुपचुप, दुर्ग में आ जावें-तो इनका धन और मान से सत्कार करके उनको शत्रु के अमात्य आदि के दोष अच्छी तरह दिखा देवे, जब वे समझ लें-तो उनको साथ लेकर शत्रु पर आक्रमण कर देवे ॥१-४॥

स्कन्धावारे वास्य शौण्डिकव्यञ्जनः पुत्रमभियुक्तं स्थापयित्वावस्कन्दकाले रसेन प्रवासयित्वा नैषेचनिकमिति मदनरसयुक्तान्मद्यकुम्भाञ्छतशः प्रयच्छेत् ॥ ५ ॥ शुद्धं वा मद्यं माद्यं वा मद्यं दद्यादेकमहः ॥६॥ उत्तरं रससिद्धं प्रयच्छेत् ॥ ७ ॥ शुद्धं वा मद्यं दण्डमुख्येभ्यः प्रदाय मदकाले रससिद्धं प्रयच्छेत् ॥ ८ ॥

शत्रु की छावनी में कोई, सुरा विक्रेता का रूपधारी गुप्तचर, किसी अपराधी को अपना पुत्र बताकर चढ़ाई के समय उसे विष देकर मार डाले और उसके निमित्त यह सुरापान कराता हूं-धतूरे आदि के विष के सहित सैंकड़ों घड़े उन सैनिकों को सुरा पिला देवे, जिससे वे मर जावे। किसी दिन सुरा विक्रेता के रूप में रहने वाला गुप्तचर, उन शत्रु सैनिकों को शुद्ध और नशीली मद्य देवे-इसके बाद विष मिली हुई शराब पिलावे।

जो सेना के मुख्य पुरुष हैं, उनको प्रथम शुद्ध शराब पिलावें और जब वे नशे में चूर हो जावें-तब उन्हें जहरीली शराब पिला देवें ॥५-८॥

दण्डमुख्यव्यञ्जनो वा पुत्रमभित्यक्तमिति समानम् ॥ ९ ॥ पक्वमांसिकौदनिकशौण्डिकापूपिकव्यञ्जना वा पण्यविशेषमवघोषयित्वा परस्परसंघर्षेण कालिकं समर्घतरमिति वा परानाहूय रसेन स्वपण्यान्यपचारयेयुः ॥ १० ॥ सुराक्षीरदधिसर्पिस्तैलानि वा तद्व्यवहर्तृहस्तेषु गृहीत्वा स्त्रियो बालाश्च रसयुक्तेषु स्वभाजनेषु परिकिरेयुः ॥ ११ ॥ अनेनार्घेण विशिष्टं वा भूयो दीयतामिति तत्रैवावकिरेयुः ॥ १२ ॥

इसी तरह विजेता का कोई गुप्तचर, शत्रु की सेना में मुख्य पुरुष बनकर किसी अपराधी को मरवा कर अपना पुत्र बतावे और उसी तरह विष युक्त मद्य-पिलाकर सबको मरवादे। पक्का मांस अन्न, सुरा और मालपूवे वड़े पकोड़ी बनाने वाले, गुप्तचर, अपने २ माल की प्रशंसा करके आपस में झगड़ कर उधार ही अपना सौदा शत्रु सैनिकों को बुलाकर विष के साथ खिला देवें। इस तरह सबका नाश हो जावेगा। सुरा, दूध, दही, घृत और तेल को उनके बेचने वालों से लेकर स्त्री और बालक अपने विषैले वर्तनों में भर लेवें। इसी मूल्य में वह घृत आदि भी दो-वे व्यापारी जब उस भाव में अच्छी चीज़ न देवें तो उन की ये सब चीजें लौटा दे, जिस से वे विषयुक्त हो जावेंगी-उनको शत्रु के सैनिक जब मोल लेंगे-तो उनका नाश होगा ॥९-१२॥

एतान्येव वैदेहकव्यञ्जनाः पण्यविक्रयेणाहर्तारो वा हस्त्यश्वानां विधायवसेषु रसमासन्ना दद्युः ॥ १३ ॥ कर्मकरव्यञ्जना वा रसाक्तं यवसमुदकं वा विक्रीणीरन् ॥१४॥ चिरसंसृष्टा वा गोवाणिजका गवामजावीनां वा यूथान्यवस्कन्दकालेषु परेषां मोहस्थानेषु प्रमुञ्चेयुः ॥१५॥

इसी तरह अन्य व्यापारी बने हुए गुप्तचर, बेचने की चीजें लाकर हाथी और अश्वों के खाने के घास आदि में विष मिला देवें। सेना में घास जल लाने वाले सेवक, विष मिश्रित घास या जल ले आवें। बहुत दिन के मित्र बने हुए गायों के व्यापारी बने हुए गुप्तचर, अपनी गाय और भेड़ बकरियों को चढ़ाई के समय शत्रु के मोह करने को छोड़ देवे-जिससे विजेता आक्रमण करके उन्हें मार लेवे ॥१३-१५॥

अश्वखरोष्ट्रमहिषादीनां दुष्टांश्च तद्व्यञ्जना वा चुचुन्दरीशोणिताक्ताक्षान् ॥ १६ ॥ लुब्धकव्यञ्जना वा व्यालमृगान्पञ्जरेभ्यः प्रमुञ्चेयुः ॥ १७ ॥ सर्पग्राहा

वा सर्पानुग्रविषान् ॥ १८ ॥ हस्तिजीविनो वा हस्तिनः ॥१९॥ अग्निजीविनो वाग्निमवसृजेयुः ॥ २० ॥

इसी तरह गुप्तचर अश्व, गधे, ऊंट और भैंसे आदि दुष्ट जीवों को छछूंदर का खून उनकी आंखों में आंज कर सेना में छोड़ देवे। लुब्धक गुप्तचर, भेड़िये, और सिंहों को शत्रु सेना में छोड़ देवें। सपेरे उग्रविषधारी सर्पों को और हाथिवाले गुप्तचर हाथियों को तथा अग्नि लगाने वाले आग लगाकर शत्रुओं को मार डाले ॥१६-२०॥

गूढपुरुषा वा विमुखान्पत्त्यश्वरथद्विपमुख्यानभिहन्युः ॥ २१ ॥ आदीपयेयुर्वा मुख्यावासान् ॥ २२ ॥ दूष्यामित्राटविकव्यञ्जनाः प्रणिहिताः पृष्ठाभिघातमवस्कन्दप्रतिग्रहं वा कुर्युः ॥ २३ ॥ वनगूढा वा प्रत्यन्तस्कन्धमुपनिष्कृष्याभिहन्युः ॥ २४ ॥

जब इस घमसान में पैदल, अश्व, रथ और हाथियों के मुख्य व्यक्ति, निकलकर जा रहे हों तो छिपे हुए विजेता के तीक्ष्ण पुरुष उन्हें मार डालें और उनके घरों में आग लगा दे। दूष्य अमात्य, शत्रु, जङ्गली भील के रूप में बने हुए गुप्तचर, शत्रु की सेना को पीछे से या घेर कर मार डाले। इसी तरह वन में छुपे हुए पुरुष, देश सन्धि (सरहद) की सेना को धोखे से बुलाकर मार डाले ॥२१-२४॥

एकायने वीवधासारप्रसारान्वा ॥ २५ ॥ ससङ्केतं वा रात्रियुद्धे भूरितूर्यमाहत्य ब्रूयुः ॥ २६ ॥ अनुप्रविष्टाः स्मो लब्धं राज्यमिति ॥ २७ ॥ राजावासमनुप्रविष्टा वा संकुलेषु राजानं हन्युः ॥ २८ ॥ सर्वतो वा प्रयातमेनं म्लेच्छाटविकदण्डचारिणः सत्त्रापाश्रयाः स्तम्भवाटापाश्रया वा हन्युः ॥ २९ ॥ लुब्धकव्यञ्जना वावस्कन्दसंकुलेषु गूढयुद्धहेतुभिरभिहन्युः ॥ ३० ॥

शत्रु के धान्य, मित्र सेना और लकड़ी आदि को तंग मार्ग में नष्ट भ्रष्ट कर देवे। रात का युद्ध करके संकेत के सहित बहुत से बाजे बजा कर कहे, कि हम लोग शत्रु की सेना में घुस गए हैं, और राज्य दबा लिया है। अब राजमहल में घुसकर इस भीड़-भाड़ में राजा को मारे लेते हैं। सब ओर से जाते हुए इसको म्लेच्छ, जङ्गली भील या सेना के पुरुष मरुस्थल आदि के मार्ग में या आवरण सहित मार्ग में मार लेवे। शिकारी बने हुए गुप्तचर सबके इकट्ठे होने पर, कूट युद्ध द्वारा सबको मार लेवे ॥२५-३०॥

एकायने वा शैलस्तम्भवाटखञ्जनान्तरुदके वा स्वभूमिबलेनाभिहन्युः ॥ ३१ ॥ नदीसरस्तटाकसेतुबन्धभेदवेगेन वाप्लावयेयुः ॥ ३२ ॥ धान्वनवननि-

म्नदुर्गस्थं वा योगाग्निधूमाभ्यां नाशयेयुः ॥ ३३ ॥ सङ्कटगतमग्निना धान्वनगतं धूमेन निधानगतं रसेन तोयावगाढं दुष्टग्राहैरुदकचरणैर्वा तीक्ष्णाः साधयेयुः ॥ ३४ ॥

किसी तंग रास्ते पर्वत, ऊंची नीची भूमि, दलदल, या जलमार्ग से जाती हुई शत्रु सेना को अपनी सेना से मरवा डाले। नदी, तालाब, सरोवरों के पुलों को तोड़कर ऐसे मौकों पर शत्रु सेना को डुबोया भी जा सकता है। मरुस्थल, वन और नीचे ऊंचे के दुर्गों में स्थित शत्रुओं योगों द्वारा उत्पन्न की हुई आग से नष्ट करे। घने जङ्गलों में फंसे हुए को अग्नि से, मरुस्थल के दुर्ग में फँसे हुए को धूम से, नीचे के दुर्गों में फंसे हुए शत्रु को विष से, जल में घुसे हुए पुरुषों को दुष्ट ग्राह तथा जल में जाने वाले अन्य साधनों से तीक्ष्ण पुरुष मार लेवे ॥३१-३४॥

आदीप्तावासान्निष्पतन्तं वा—॥ ३५ ॥

योगवामनयोगाभ्यां योगेनान्यतमेन वा ।
अमित्रमतिसंदध्यात्सक्तमुक्तासु भूमिषु ॥ ३६ ॥

इत्यावलीयसे द्वादशे ऽधिकरणे शस्त्राग्निरसप्रणिधयः वीवधासारप्रसारवधश्च चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदित एकोनचत्वारिंशच्छतः ॥ १३९ ॥

आग लगने से प्रदीप्त घर से भागते हुए राजा को योग और वामन योग द्वारा या इनमें से किसी एक योग द्वारा शत्रु के वश में कर लेवे चाहे शत्रु किसी दुर्ग भूमि में पहुंच गया है या उससे पृथक् ही घूम रहा हो। योग और योग वामन साधन अधि० १२ और १३ में लिखे हुए हैं ॥३५-३६॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत आवलीयस अधिकरण में शस्त्र आदि के द्वारा मारण और अन्न आदि की आमद की रुकावट के वर्णन का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।



पांचवां अध्याय

१६८-१७०वां प्रकरण

योगातिसंन्धानं, दण्डातिसन्धान मेकविजयः

इस प्रकरण में शत्रु और सेना को उपायों से 'वश में करने और अकेले राजा के विजयी होने के उपायों को बताया जावेगा।

दैवतेज्यायां यात्रायाममित्रस्य बहूनि पूज्यागमस्थानानि भक्तितः, तत्रास्य योगमुञ्जयेत् ॥ १ ॥ देवतागृहप्रविष्टस्योपरि यन्त्रमोक्षणेन गूढभित्तिं शिलां वा पातयेत् ॥ २ ॥ शिलाशस्त्रवर्षमुत्तमागारात् ॥ ३ ॥ कवाटमवपातितं वा, भित्तिप्रणिहितमेकदेशबन्धं वा परिघं मोक्षयेत् ॥ ४ ॥ देवतादेहस्थप्रहरणानि वास्योपरिष्टात्पातयेत् ॥ ५ ॥ स्थानासनगमनभूमिषु वास्य गोमयप्रदेहेन गन्धोदकप्रसेकेन वा रसमतिचारयेत् पुष्पचूर्णोपहारेण वा ॥ ६ ॥ गन्धप्रतिच्छिन्नं वास्य तीक्ष्णं धूममतिनयेत् ॥ ७ ॥

जब कभी शत्रु अपने देवता की पूजा या उसके उत्सव में सम्मिलित होने आ रहा हो, उस समय इन उपायों का प्रयोग सुलभता से किया जा सकता है। ऐसे पूजा के बहुत से समय आते हैं क्योंकि राजा अपनी भक्ति के अनुसार उनमें सम्मिलित होता ही रहता है। जब शत्रु राजा, के मन्दिर में प्रविष्ट हो जावे, तो उसके ऊपर यन्त्र द्वारा गुप्त भींत या शिला गिरा देनी चाहिए या ऊपर के मकान से शिला और शस्त्रों की वर्षा करें अथवा किवाड़ों को उसपर गिरा दिया जावे तथा भींत में लगे हुए एक ओर से बंधे हुए अर्गल को ही शत्रु राजा पर गिरा दिया जावे। यदि मौका लग जावे-तो देवता की सजी हुई देह पर लगे हुए शस्त्र ही शत्रु राजा पर गिरवा देने चाहिए। जिधर २ शत्रु राजा जावे, उधर २ बैठने ठहरने, आने जाने की भूमि को गोबर और सुगन्धित जल के छिड़काव के बहाने विष छिड़कवा देवे या फूलों में विष मिलाकर राजा को सुंघवावे। इसी तरह सुगन्धि से व्याप्त विषैली धुंआ को राजा के समीप पहुंचावे ॥१-७॥

शूलकूपमवपातनं वा शयनासनस्याधस्ताद्यन्त्रबद्धतलमेनं कीलमोक्षणेन प्रवेशयेत् ॥ ८ ॥ प्रत्यासन्ने वामित्रे जनपदाद्यानवरोधक्षममतिनयेत् ॥ ६ ॥ ॥ ६ ॥ दुर्गाद्यानवरोधक्षममपनयेत् ॥ १० ॥ प्रत्यादेयमरिविषयं वा प्रेषयेत्

॥ ११ ॥ जनपदं चैकस्थं शैलवननदीदुर्गेष्वटवीव्यवहितेषु वा पुत्रभ्रातृपरिगृहीतं स्थापयेत् ॥ १२ ॥ उपरोधहेतवो दण्डोपनतवृत्ते व्याख्याताः ॥ १३ ॥

शत्रु राजा के सोने बैठने के नीचे एक कुआ खोदकर उसके मुख को अच्छी तरह ढ़क दिया जावे। उसमें एक यन्त्र लगाया जावे, कि जिसकी कील निकालते ही राजा कुंए में गिर पड़े। इस कुवे में त्रिशूल भाले डाले रहने चाहिए यदि शत्रु का राज्य अपने राज्य की सीमा से भिड़ रहा हो-तो उसमें से बन्धन में डालने योग्य व्यक्तियों को पकड़वाकर मंगवाता रहे और जो शत्रु ने पकड़ रखे हों उन्हें उनके दुर्ग से किसी तरह छुड़वा देवे। जो शत्रु को वापिस करता है, उसे शीघ्र वापिस कर देवे। जंगल में बने हुए पर्वत, नदी, वन के दुर्गों में एक राजा के शासन में स्थित किसी राष्ट्र को उस राजा के पुत्र या भाई के शासन में करा देवे। शत्रु की सेना के घेरने के प्रकारों का वर्णन, दण्डोपनत वृत्त नामक प्रकरण में कर दिया गया है ॥८-१३॥

तृणकाष्ठमायोजनाद्दाहयेत् ॥ १४ ॥ उदकानि च दूषयेत् ॥ १५ ॥ अवस्रावयेच्च ॥ १६ ॥ कूटकूपावपातकण्टकिनीश्च बहिरुज्जयेत् ॥ १७ ॥ सुरङ्गाममित्रस्थाने बहुमुखीं कृत्वा निचयमुख्यानभिहारयेत् ॥ १८ ॥ अमित्रं वा ॥ १९ ॥ परप्रयुक्तायां वा सुरङ्गायां परिखामुदकान्तिकीं खानयेत् ॥ २० ॥ कूपशालामनुसालं वा ॥ २१ ॥

शत्रु के एक योजन (चार कोश) तक की सीमा में तृण काष्ठ आदि को आग लगाकर भस्म कर देवे। उसके पीने के पानी को दूषित कर देवे या वहां से बहा देवे। शत्रु सेना के आने के मार्ग में शूल डालकर धोखे के कूप बनवा देवे, जिसमें बहुत से सैनिक गिरकर मर जावें। शत्रु के स्थान में एक बहुत से मुख की गुपचुप सुरङ्ग खुदवा देवे, जिसके खोजने में लगे हुए बहुत से शत्रुओं के मुख्य २ व्यक्तियों को चक्कर में डालकर अपहरण कर लावे और मौका लगे तो शत्रु को ही उड़ा लावे। यदि शत्रु के सुरङ्ग खोद लाने का भय हो-तो जल निकलने तक अपने दुर्ग के चारों ओर खाई खुदवा देवे या अपने महल तक चारों ओर गहरे कुवे बनवा देवे ॥१४-२१॥

अतोयकुम्भान्कांस्यभाण्डानि वा शङ्कास्थानेषु स्थापयेत्खाताभिज्ञानार्थम् ॥ २२ ॥ ज्ञाते सुरङ्गापथे प्रतिसुरङ्गां कारयेत् ॥ २३ ॥ मध्ये भित्वा धूममुदकं वा प्रयच्छेत् ॥ २४ ॥ प्रतिविहितदुर्गो वा मूले दायादं कृत्वा प्रतिलोमामस्य दिशं गच्छेत् ॥ २५ ॥ यतो वा मित्रैर्बन्धुभिराटविकैर्वा संसृज्येत ॥ २६ ॥

परस्यामित्रैर्दूष्यैर्वा महद्भिः ॥ २७ ॥ यतो वा गतो ऽस्य मित्रैर्वियोगं कुर्यात् ॥ २८ ॥ पार्ष्णिं वा गृह्णीयात् ॥ २९ ॥ राज्यं वास्य हारयेत् ॥ ३० ॥ वीवधासारप्रसारान्वा वारयेत् ॥ ३१ ॥

शत्रु द्वारा खोदे हुए गड्ढों का पता लगाने के लिए खाली घड़े या कांसी के वर्तन शङ्का के स्थानों में डलवा देवे। यदि शत्रु की सुरङ्ग का इससे कुछ पता चल जावे, तो उसके मुक़ाबिले में दूसरी सुरङ्ग खुदवा देवे। और शत्रु की सुरङ्ग को बीच से खुदवाकर उसमें धुंआ या पानी भरवा देवे। यदि शत्रु प्रवल हो और उससे दुर्ग की रक्षा के प्रयत्न किये जा चुके हों-तो अपनी राजधानी में अपने किसी वंशज को रखकर आप ऐसी दिशा में चला जावे, जहां शत्रु का वश न चल सके और जहां पर अपने मित्र बन्धु या वनचर भीलों से सम्बन्ध हो सके। अथवा शत्रु से विगड़े हुए बड़े २ अफसर या शत्रुओं से सहयोग प्राप्त हो जावे। शत्रु राजा के मित्रों से उसका भेद कराने का भी वहां से प्रयत्न करे। विजेता, वहां स्थित होकर शत्रु देश में आने जाने वाले, अन्न, शत्रु के मित्र की सेना या घास लकड़ी आदि की रुकावट कर देवे ॥२२-३१॥

यतो वा शक्नुयादाक्षिकवदपक्षेपेणास्य प्रहर्तुम् ॥ ३२ ॥ यतो वा स्वं राज्यं त्रायेत ॥ ३३ ॥ मूलस्योपचयं वा कुर्यात् ॥ ३४ ॥ यतः संधिमभिप्रेतं लभेत ततो वा गच्छेत् ॥ ३५ ॥ सहप्रस्थायिनो वास्य प्रेषयेयुः ॥ ३६ ॥ अयं ते शत्रुरस्माकं हस्तगतः ॥ ३७ ॥ पण्यं विप्रकारं वापदिश्य हिरण्यमन्तःसारबलं च प्रेषयस्व एनमर्पयेम बद्धं प्रवासितं वेति ॥ ३८ ॥ प्रतिपन्ने हिरण्यं सारबलं चाददीत ॥ ३९ ॥

विजयी राजा, उसी स्थान पर अपनी स्थिति करे, जहां से वह शत्रु पर कपट से जुआरी की भांति प्रहार कर सके और अपने राज्य की रक्षा एवं अपनी राजधानी की वृद्धि कर लेवे। जिस स्थान में स्थित होने पर शत्रु को भय होजावे, जिससे अपनी इच्छा के अनुकूल सन्धि हो सके-ऐसे ही स्थान पर दुर्वल राजा को जाना चाहिए। विजयेच्छुक निर्वल राजा के साथी, गूढ़ पुरुष, शत्रु राजा पर संदेश भेजे, कि यह तुम्हारा शत्रु हमारे वश में आगया है। किसी वेचने की वस्तु के वहाने सुवर्ण आदि धन, और शक्तिशाली सेना भेज दो—तो हम इसको बांध कर तुम्हारे पास भेज देंगे या यहां से निकाल देंगे। यदि उसकी समझ में आजावे—तो उसका सुवर्ण और सेना अपने अधिकार में करे ॥ ३२-३९ ॥

अन्तपालो वा दुर्गसंप्रदानेन बलैकदेशमतिनीय विश्वस्तं घातयेत् ॥४०॥ जनपदमेकस्थं वा घातयितुममित्रानीकमावाहयेत् ॥ ४१ ॥ तदवरुद्धदेशमतिनीय विश्वस्तं घातयेत् ॥ ४२ ॥ मित्रव्यञ्जनो वा बाह्यस्य प्रेषयेत् ॥ ४३ ॥ क्षीणमस्मिन्दुर्गे धान्यं स्नेहाः क्षारो लवणं वा ॥ ४४ ॥ तदमुष्मिन्देशे काले च प्रवेक्ष्यति ॥ ४५ ॥ तदुपगृहाणेति ॥ ४६ ॥ ततो रसविद्धं धान्यं स्नेहं क्षारंलवणं वा दूष्यामित्राटविकाः प्रवेशयेयुः ॥ ४७ ॥ अन्ये वाभित्यक्ताः ॥ ४८ ॥ तेन सर्वभाण्डग्रीवधग्रहणं व्याख्यातम् ॥ ४६ ॥

अपना अन्तपाल-शत्रु को विश्वास देकर उसको दुर्ग सौंपकर उसकी कुछ सेना का भाग लेकर कहीं चला जावे और विश्वास में आई हुई सेना को मरवा डाले। किसी संगठित राष्ट्र को नष्ट भ्रष्ट करवाने के लिए अन्तपाल शत्रु सेना मंगवा लेवे उस शत्रु द्वारा घिरे हुए देश में लेजाकर उस विश्वस्त सेना को मरवा डाले। शत्रु का मित्र बना हुआ राजा का गुप्तचर, बाहर से संदेश भेजे, कि इस दुर्ग में धान्य, घी, तेल, नमक, गुड़ आदि समाप्त होगया है। उस समय वस्तुएं इधर से आवेंगी, तुम उन्हें लूट लेजाना। विजेता के बिगड़े हुए अमात्य या सन्धि किये हुए शत्रू तथा जंगली भील इस सामान को लावें, जिसमें विष मिला हुआ धान्य, घृत, तेल, नमक, गुड़ आदि होवे अथवा अन्य देश निकाले हुए पुरुष इस बात को करे। इसी तरह अन्य सारी वस्तु या घास आदि भी विष युक्त शत्रु के पास भेजी जा सकती हैं। जिससे शत्रु का नाश हो जावेगा ॥४०-४६॥

संधिं वा कृत्वा हिरण्यैकदेशमस्मै दद्यात् ॥ ५० ॥ विलम्बमानः शेषम् ॥ ५१ ॥ ततो रक्षाविधानान्यवस्रावयेत् ॥ ५२ ॥ अग्निरसशस्त्रैर्वा प्रहरेत् ॥ ५३ ॥ हिरण्यप्रतिग्राहिणो वास्य वल्लभाननुगृह्णीयात् ॥ ५४ ॥ परिक्षीणो वास्मै दुर्गं दत्त्वा निर्गच्छेत् सुरङ्गया ॥ ५५ ॥ कुक्षिप्रदरेण वा प्राकारभेदेन निर्गच्छेत् ॥ ५६ ॥

निर्बल राजा, शक्तिशाली राजा के साथ सन्धि करके कुछ सुवर्ण उसके लिए देवे और कुछ पीछे देने की कहकर उन्हें समय पर पहुंचा देवे। इस तरह जब शत्रु को विश्वास हो जावे, तो शत्रु की घेरा डालने वाली सेना को अपने यहां से हटवा देवे। विश्वासी शत्रु राजा को फिर अग्नि, विष या शस्त्रों से मरवा देवे अथवा धन लेकर मार देने में तत्पर शत्रु राजा के प्रिय पुरुषों को ही इस काम में लगावे। यदि राजा बहुत ही निर्बल होजावे-तो इसको दुर्ग सौंप कर आप सुरङ्ग द्वारा निकल जावे अथवा दुर्ग की छोटी खिड़की या दीवार को तोड़कर चल दे ॥ ५०-५६ ॥

रात्राववस्कन्दं दत्वा सिद्धस्तिष्ठेत् ॥ ५७ ॥ असिद्धः पार्श्वेनापगच्छेत् पापण्डच्छद्मना मन्दपरिवारो निर्गच्छेत् ॥ ५८ ॥ प्रेतव्यञ्जनो वा गूढैर्निर्हियेत ॥ ६० ॥ स्त्रीवेषधारी वा प्रेतमनुगच्छेत् ॥ ६१ ॥ दैवतोपहारश्राद्धप्रहवणेषु वा रसविद्धमन्नपानमवसृज्य कृतोपजापो दूष्यव्यञ्जनैर्निष्पत्य गूढसैन्योऽभिहन्यात् ॥ ६२ ॥

यदि शत्रु पर धोखे से रात में आक्रमण करने से सिद्धि की सम्भावना हो-तो वहीं दुर्ग में राजा ठहरा रहे और और आक्रमण करने पर असफलता हो जावे-तो दुर्ग के किसी पार्श्व भाग से निकल भागे। राजा को धर्म ध्वजी साधु की जमात बनाकर थोड़े से परिवार के साथ निकल जाना चाहिए। राजा को मृतक बनाकर उसके गुप्तचर उसे निकाल कर लेजा सकते हैं। किसी मृतक के पीछे स्त्रियों में मिलकर भी राजा शत्रु के घेरे से निकलने में सफल हो सकता है। देवता की भेंट, श्राद्ध, गोट (पार्टी) आदि के समय विष मिली हुई खाने की वस्तुओं को देकर तोड़ फोड़ करने वाले गुप्तचर राजा या उसके अधिकारियों को मार डाले ॥५७-६२॥

एवं गृहीतदुर्गो वा प्राश्यप्राशं चैत्यमुपस्थाप्य दैवतप्रतिमाच्छिद्रं प्रविश्यासीत ॥ ६३ ॥ गूढभित्तिं वा दैवतप्रतिमायुक्तं भूमिगृहम् ॥ ६४ ॥ विस्मृते सुरुङ्गया रात्रौ राजावासमनुप्रविश्य सुप्तममित्रं हन्यात् ॥६५॥ यन्त्रविश्लेषणंवा विश्लेष्याधस्तादवपातयेत् ॥ ६६ ॥ रसाग्नियोगेनावलिप्तं गृहं जतुगृहं वाधिशयानममित्रमादीपयेत् ॥ ६७ ॥

यदि शत्रु ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया-तो राजा खाने पीने की सामग्री से भरे हुए किसी देव-मन्दिर में देवता की प्रतिमा के छिद्र में घुसकर रहे या किसी पोली भींत या मूर्ति के नीचे के तहखाने में अपने को छुपावे। जब शत्रु राजा, अपने शत्रु के आक्रमण से बिल्कुल निश्चित हो जावे-तो सुरङ्ग के मार्ग से राजगृह में घुसकर उस सोते हुए शत्रु को मार डाले अथवा किसी यन्त्र से उठाकर उसे दुर्ग से नीचे फैंक देवे। विषरस, अग्नियोग या अन्य किन्हीं जलने वाली वस्तुओं से या लाख का घर बनवा रखे और जब शत्रु उसपर अधिकार करके सो जावे तो उसमें आग लगवाकर उसे जलवा देवे ॥६३-६७॥

प्रमदवनविहाराणामन्यतमे वा विहारस्थाने प्रमत्तं भूमिगृहसुरुङ्गागूढभित्तिप्रविष्टास्तीक्ष्णा हन्युः ॥ ६८ ॥ गूढप्रणिहिता वा रसेन ॥ ६९ ॥ स्वपतो

वा निरुद्धे देशे गूढाः स्त्रियः सर्परसाग्निधूमानुपरि मुञ्चेयुः ॥ ७० ॥ प्रत्युत्पन्ने वा कारणे यद्यदुपपद्येत तत्तदमित्रेऽन्तःपुरगते गूढसंचारः प्रयुञ्जीत ॥ ७१ ॥ ततो गूढमेवापगच्छेत् ॥ ७२ ॥ स्वजनसंज्ञां च प्ररूपयेत् ॥ ७३ ॥

प्रमदावन या विहार स्थान में प्रमाद के साथ रहते हुए राजा को भूमिगृह (तहखाने) सुरङ्ग या गुप्त भीतों में रहने वाले तीक्ष्ण पुरुष मौका पाकर मार डाले। या गुप्त रीति से भेजे हुए पुरुष, शत्रु राजा को विष प्रयोग से मार देवे। किसी एकान्त स्थान में सोने वाले राजा को गुप्तचर स्त्री, सर्प, विष, अग्नि या विषैली धुंआ को छोड़कर मार लेवे। इन बताये हुए कारणों में जो बन सके-उससे ही अन्तःपुर में गए हुए शत्रु राजा पर गुप्त प्रयोग में कुशल विजेता राजा, अपना प्रयोग करे। जब राजा को मार लिया जावे-तो आप या अपने पुरुष, गुपचुप वहां से निकल आवें। अपने मनुष्यों को पहचानने के कुछ संकेत बना लिए जावे॥६८-७३॥

द्वाःस्थान्वर्षवरांश्चान्यान्निगूढोपहितान्परे ।
तूर्यसंज्ञाभिराहूय द्विषच्छेषाणि घातयेत् ॥ ७४ ॥

इत्यावलीयसे द्वादशेऽधिकरणे योगातिसंधानं दण्डातिसंधानं एकविजयश्च पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ आदितश्चत्वारिंशच्छतः ॥ १४० ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य आवलीयसं द्वादशमधिकरणं समाप्तम् ॥ १२ ॥

विजयेच्छुक राजा के शत्रु के द्वारपाल, नपुंसक तथा अन्य गुप्तचर के रूप में भेजे हुए पुरुष, वाजों के संकेतों से अपने पुरुषों को बुलाकर राजा के शेष मनुष्यों को भी वहीं मरवा डाले ॥७४॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत आवलीयस अधिकरणमें शत्रु और उसकी
सेना के वश में करने या अकेले राजा के विजयी होने के वर्णन का
पांचवां अध्याय समाप्त हो गया और यहीं पर आवलीयस
अधिकरण भी समाप्त हुआ।



दुर्गलम्भोपाय त्रयोदशाधिकरणम्

प्रथम अध्याय

१७१वां प्रकरण

उपजाप

इस प्रकरण में शत्रु के दुर्गों के प्राप्त करने के उपायों का वर्णन किया जावेगा।

विजिगीषुः परग्राममवाप्तुकामः सर्वज्ञदैवतसंयोगख्यापनाभ्यां स्वपक्षमुद्धर्षयेत् ॥ १ ॥ परपक्षं चोद्वेजयेत् ॥ २ ॥ सर्वज्ञख्यापनं तु—॥ ३ ॥ गृहगुह्यप्रवृत्तिज्ञानेन प्रत्यादेशो मुख्यानाम् ॥ ४ ॥ कण्टकशोधनापसर्पागमेन प्रकाशनं राजद्विष्टकारिणाम् ॥ ५ ॥ विज्ञाप्योपायनख्यापनमदृष्टसंसर्गविद्यासंज्ञादिभिः ॥ ६ ॥ विदेशप्रवृत्तिज्ञानं तदहरेव गृहकपोतेन मुद्रासंयुक्तेन ॥ ७ ॥

विजयाभिलाषी राजा शत्रु के नगर के जीतनेकी इच्छा होने पर अपने आपको सर्वज्ञ और देवता के अभिनिवेश से युक्त प्रसिद्ध करके अपने आप को उत्साहित और शत्रु पक्ष को अनुत्साहित कर देवे। गुप्त पुरुषों द्वारा किसी मुख्य पुरुष के गुप्त वृत्तान्त को जानकर उसे उस वृत्तान्त की सूचना देना कंटक शोधन प्रकरण में बताये हुए ढङ्ग से गुप्तचरों के द्वारा राजा के साथ द्वेष करने वाले पुरुषों का पता लगा कर उनका प्रकाशन करना- अन्य पुरुषों द्वारा न जानी हुई संसर्ग विद्या [नृत्यगान आदि] के संकेतों द्वारा राजा को दी जाने वाली अन्य सामन्तों की भेंट को गुप्त रूप से जान कर उस का प्रथम ही प्रकट कर देना, मुद्रा संयुक्त पालतू कबूतरों द्वारा विदेश की किसी घटना का उसी दिन पता लगाकर उसी समय उसको सिद्धि बताकर प्रकट कर देना अपनी सर्वज्ञता प्रकट करने के ढङ्ग हैं ॥ १-७ ॥

दैवतसंयोगख्यापनं तु—॥ ८ ॥ सुरुङ्गामुखेनाग्निचैत्यदैवतप्रतिमाच्छिद्रानुप्रविष्टैरग्निचैत्यदैवतव्यञ्जनैः संभाषणं पूजनं च ॥ ९ ॥ उदकादुत्थितैर्वा नागवरुणव्यञ्जनैः संभाषणं पूजनं च ॥ १० ॥ रात्रावन्तरुदके समुद्रवालुकाकोशं

प्रणिधायाग्निमालादर्शनम् ॥ ११ ॥ शिलाशिक्यावगृहीते स्रवके स्थानम् ॥१२॥ उदकवस्तिना जरायुणा वा शिरो ऽवगूढनासः पृषतान्त्रकुलीरनक्रशिशुमारोद्रवसाभिर्वा शतपाक्यं तैलं नस्तः प्रयोगः ॥ १३ ॥ तेन रात्रिगणश्चरतीत्युदकचरणानि ॥ १४ ॥ तैर्वरुणनागकन्यावाक्यक्रिया संम्भाषणं च ॥ १५ ॥ कोपस्थानेषु मुखादग्निधूमोत्सर्गः ॥ १६ ॥ तदस्य स्वविषये कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकपौराणिकेक्षणिकगूढपुरुषाः साचिव्यकरास्तद्दर्शिनश्च प्रकाशयेयुः ॥ १७ ॥ परस्य विषये दैवतदर्शनं दिव्यकोशदण्डोत्पत्तिं चास्य ब्रूयुः ॥ १८ ॥

सुरङ्ग के द्वारा अग्नि देवोद्यान या देवता की प्रतिमा के छिद्र में प्रविष्ट हुए, अपने आपको अग्नि देव, देवोद्यान या मूर्ति का देव बताने वाले गुप्त पुरुषों के साथ राजा बात करे और उनका पूजन करे। उसी तरह जल से निकलने वाले सूर्य और वरुण देव के रूपधारी गुप्तचरों से बात चीत और उनका पूजन करे। रात में जल के भीतर बालू भरी बन्द पेटियां डालकर उसमें रखी हुई आग निकाल कर दिखावे। पत्थर बांध कर छींकों द्वारा रोकी हुई छोटी २ नौकाओं को बहते हुये पानी में ठहराकर दिखावे। हिरन की आंत तथा केकड़ा, नाका [मगर] शिशुमार मत्स्य और उद्र नामक मछली की चर्बी में सौ बार पकाया हुआ तेल नाक में डाला जावे और जलके नासिका में घुसने को रोकने वाली वस्ति स्थान या गर्भ की थैली से नाक ढ़क कर जल में उतारा जावे-तो रात में आदमियों के झुण्ड के झुण्ड जल में घूम सकते हैं। जल में घूमने वाले इन पुरुषों से राजा वरुण देव या सर्प कन्या के तुल्य वाक्य रचना करवावे और आप भी बात चीत करे। जब कोई कोप की बात आवे-तो ऐसे ही प्रयोगों से अपने मुख में रखी हुई आग की लपट या धुंआ निकाले, ये सब देवता से संयोग प्रसिद्ध करने के ढ़ङ्ग हैं। राजा की इन बातों को अपने देश में ज्योतिषी शकुन शास्त्री, मुहूर्त देखने वाले, पौराणिक, प्रश्न कर्ता और गुप्तचर सर्वत्र प्रसिद्ध कर देवें। बहुत से उनके साथी यह कहें, कि हां ? हमने भी यह देखा है। शत्रु के देश में भी विजेता राजा के देव दर्शन और स्वयं कोश और सेना के उत्पन्न होने की मन्त्र सिद्धि प्रसिद्ध की जावे ॥ ८-१८ ॥

दैवतप्रश्ननिमित्तवायसाङ्गविद्यास्वप्नमृगपक्षिव्याहारेषु चास्य विजयं ब्रूयुः ॥ १९ ॥ विपरीतममित्रस्य सदुन्दुभिम् ॥ २० ॥ उल्कां च परस्य नक्षत्रे दर्शयेयुः ॥ २१ ॥ परस्य मुख्यानमित्रत्वेनापदिशन्तो दूतव्यञ्जनाः स्वामिसत्कारं ब्रूयुः ॥ २२ ॥ स्वपक्षबलाधानं परपक्षप्रतिघातं च तुल्ययोगक्षेमममात्यानामायु-

धीयानां च कथयेयुः ॥ २३ ॥ तेषु व्यसनाभ्युदयावेक्षणमपत्यपूजनं च प्रयुञ्जीत ॥ २४ ॥

देवता से प्रश्न करने, शकुन जानने कौवे की चेष्टा, अङ्ग स्फुरण, स्वप्न, वन के जीव और पक्षियों की बोली से यही बतावे, कि विजेता राजा की जीत होगी तथा शत्रु की हार होगी-इस बात को घोषणा के साथ कहे। शत्रु के देश में दुर्ग्रह और उल्कापात बतावे जिसका फल राज्य का भ्रष्ट होना सूचित करे। शत्रु के मुख्य पुरुषों के सन्मुख, मित्र बने हुए राजा के दूत, विजेता राजा के सत्कार की खूब प्रशंसा करें। शत्रु के अमात्य या सैनिक पुरुषों के सन्मुख अपने राजा के पक्ष की जीत और शत्रु राजा के पक्ष की सेना के नाश की प्रसिद्धि गुप्तचर करते और दोनों राजाओं द्वारा समान रूप से जीविका निर्वाह की भी बात बताते रहें। उन लोगों में यह भी प्रसिद्धि करे, कि अमुक विजेता राजा विपत्तियों और उदय में अच्छी देख भाल और आदर करता है तथा मृत्यु के अनन्तर सन्तान के निर्वाह का भी प्रबन्ध कर देता है ॥ १९-२४ ॥

तेन परपक्षमुत्साहयेद्यथोक्तं पुरस्तात् ॥ २५ ॥ भूयश्च वक्ष्यामः—॥२६॥ साधारणगर्दभेन दक्षान् ॥ २७ ॥ लकुटशाखाहननाभ्यां दण्डचारिणः ॥ २८ ॥ कुलैलकेन चोद्विग्नान् ॥ २९ ॥ अशनिवर्षेण विमानितान् ॥ ३० ॥ विदुलेनावकेशिना वायसपिण्डेन कैतवजमेघेनेति विहताशान् ॥ ३१ ॥ दुर्भगालंकारेण द्वेषिणेतिपूजाफलान् ॥ ३२ ॥ व्याघ्रचर्मणा मृत्युकूटेन चोपहितान् ॥ ३३ ॥ पीलुविखादनेन करकयोष्ट्र्या गर्दभीक्षीराभिमन्थनेनेति ध्रुवापकारिण इति ॥ ३४ ॥

शत्रु पक्ष के पुरुषों को इस ढंग से अपनी ओर को उत्तेजित करे। अब आगे भी अन्य प्रकार बताये जाते हैं। जो चतुर पुरुष हों-उनको दिन रात गधे की तरह काम करते रहने वाला बतावे। सैनिकों को लट्ठ और कुल्हाड़ी की उपमा देवे। गुप्तचर, राजा से उद्विग्न रहने वाले पुरुषों को अपने वंश से फूटकर अलग घूमने वाले को मेंढ़े की उपमा देवे तथा शत्रु राजा से अपमानित पुरुषों को वज्रवर्षा जैसे अपमान से अपमानित बताकर उत्तेजित करें। शत्रु राजा ने जिन लोगों की आशाओं को भङ्ग कर दिया है, उनको फलहीन बेंत, लोह पिण्ड, या थोथे मेघ की उपमा से युक्त राजा को बतावें। जिनको कोई उपहार में अलङ्कार मिल गया है, उनको भद्दे अलंकार या राजा को पसन्द नहीं आने वाले अलङ्कार से तुम्हारी पूजा की गई है-ऐसा सुझावे, राजा के द्वारा धमकाये हुए पुरुषों

को राजा को व्याघ्रचर्म या मृत्यु का रूप बतावें। जो राजा के दृढ़ अपकार में लगे हुए हैं, उन्हें राजा को पीलुफल करका, उष्ट्री (शाक) के खाने के तुल्य या गधी के दूध बिलौने की उपमा देवें। इनके खाने या बिलोने से कोई लाभ नहीं होता ॥२५-३४॥

प्रतिपन्नानर्थमानाभ्यां योजयेत् ॥ ३५ ॥ द्रव्यभक्तच्छिद्रेषु चैनान्द्रव्य-भक्तदानैरनुगृह्णीयात् ॥ ३६ ॥ अप्रतिगृह्णतां स्त्रीकुमारालंकारानभिहरेयुः ॥ ३७ ॥ दुर्भिक्षस्तेनाटव्युपघातेषु च पौरजानपदानुत्साहयन्तः सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥ ३८ ॥ राजानमनुग्रहं याचामहे ॥ ३९ ॥ निरनुग्रहाः परत्र गच्छाम इति ॥ ४० ॥

जो अपने कथन में आ जावें उन्हें, धन और मान से युक्त करे। जब २ इनपर धन और अन्न का संकट हो-तभी इनकी द्रव्य और अन्न से रक्षा की जावे। यदि ये न लेवें-तो इनके बच्चे या स्त्रियों को आभूषण बनवाकर दे देवें। जब दुर्भिक्ष, चोर या जंगली जातियों के उपद्रव हो रहे हों, तो गुप्तचर पुरवासी और राष्ट्र के पुरुषों को उत्तेजित करते हुए इस प्रकार कहें, कि हम लोग इस राजा से याचना करें यदि यह न देगा-तो दूसरे राजा के समीप चले चलेंगे ॥३५-४०॥

तथेति प्रतिपन्नेषु द्रव्यधान्यपरिग्रहैः।
साचिव्यं कार्यमित्येतदुपजापाद्भुतं महत् ॥ ४१ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशे ऽधिकरणे उपजापः प्रथमो ऽध्यायः ॥१॥
आदित एकचत्वारिंशच्छतः ॥ १४१ ॥

जब वे लोग अपने राजा से कुछ न पावें और गुप्तचरों के कथनानुसार अपने पास आने को तैयार हो जावें-तो विजेता राजा उनकी द्रव्य, धान्य और वस्त्र आदि से पूरी सहायता करे। यही शत्रु के मुख्य पुरुषों के तोड़ने का अद्भुत ढंग है ॥४१॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत दुर्गलम्भोपाय अधिकरण में शत्रु के मुख्य पुरुषों को अपनी ओर मिलाने के वर्णन का पहला अध्याय समाप्त हुआ।



दूसरा अध्याय

१७२वाँ प्रकरण

योगवामन

इस प्रकरण में शत्रु को कपट द्वारा दुर्ग से बाहर निकालने के उपायों का वर्णन होगा।

मुण्डो जटिलो वा पर्वतगुहावासी चतुर्वर्षशतायुर्ब्रुवाणः प्रभूतजटिलान्तेवासी नगराभ्याशे तिष्ठेत् ॥ १ ॥ शिष्याश्चास्य मूलफलोपगमनैरमात्यान् राजानं च भगवद्दर्शनाययोजयेयुः ॥ २ ॥ समागतश्च राज्ञा पूर्वराजदेशाभिज्ञानानि कथयेत् ॥ ३ ॥ शते शते च वर्षाणां पूर्णे ऽहमग्निं प्रविश्य पुनर्बालो भवामि ॥ ४ ॥ तदिह भवत्समीपे चतुर्थमग्निं प्रवेक्ष्यामि ॥ ५ ॥ अवश्यं मे भवान्मानयितव्यः ॥ ६ ॥ त्रीन्वरान्वृणीष्वेति ॥ ७ ॥ प्रतिपन्नं ब्रूयात् ॥ ८ ॥ सप्तरात्रमिह सपुत्रदारेण प्रेक्षाप्रहवणपूर्वं वस्तव्यमिति ॥ ६ ॥ वसन्तमवस्कन्देत ॥ १० ॥

कोई गुप्तचर, अपना मूंड मुंडाकर या जटा रखाकर और पर्वत की कन्दरा का निवासी बनकर अपनी चार सौ वर्ष की उमर बतावे। वह बहुत से शिष्यों को साथ लेकर नगर के समीप अपना डेरा डाले। इसके शिष्य, कन्दमूल, फल लाने के बहाने अमात्यों या राजा से मिलें और उनको इन तपस्वी महाराज के दर्शनों को प्रेरित करें। जब राजा मिलने आवे-तो वह तपस्वी, उसे पूर्व के राजाओं के कुछ कल्पित चिन्ह सुनावे। वह वृद्ध संन्यासी कहे, कि मैं सौ २ वर्ष में अग्नि में प्रवेश करके फिर बालक बन जाता हूं। अब मैं आपके समीप में ही चौथी बार अग्नि में प्रवेश करूंगा। मुझे आप जैसे धार्मिक राजा का सत्कार करना चाहिए। तुम मुझ से तीन वर मांग लो। यदि राजा विश्वास करले-तो उससे कहे कि तुम महोत्सव में नाच गान कराते हुए अपनी स्त्री और पुत्रों के साथ यहां निवास करो। जब निवास कर बैठे तो उसको मार ले या क़ैद करले ॥१-१०॥

मुण्डो वा जटिलो वा स्थानिकव्यञ्जनः प्रभूतजटिलान्तेवासी वस्त्रशोणितदिग्धां वेणुशलाकां सुवर्णचूर्णेनावलिप्य वल्मीके निदध्यात्, उपजिह्विकानुसरणार्थं, स्वर्णनालिकां वा ॥ ११ ॥ ततः सत्त्री राज्ञः कथयेत् ॥ १२ ॥ असौ सिद्धः पुष्पितं निधिं जानातीति ॥ १३ ॥ स राज्ञा पृष्टस्तथेति ब्रूयात् ॥ १४ ॥ तच्चाभिज्ञानं दर्शयेत् ॥ १५ ॥ भूयो वा हिरण्यमन्तराधाय ब्रूयाच्चैनम् ॥ १६ ॥

नागरक्षितो ऽयं निधिः प्रणिपातसाध्य इति ॥ १७ ॥ प्रतिपन्नं ब्रूयात् ॥ १८ ॥ सप्तरात्रमिति समानम् ॥ १९ ॥

मुण्डी या जटाधारी महन्त बनकर कोई गुप्तचर, बहुत से शिष्यों को साथ रखे। वह रक्त से भीगे हुए वस्त्र में सुवर्ण की नली या बांस की लकड़ी बांधकर उसमें सुवर्ण का चूर्ण लपेट देवे और उसे सर्पकी बँमी में रख देवे। वंमी की पहचानके लिए वहां कुछ चिन्ह करदे। इसके अनन्तर वह सत्री [गुप्तचर] राजा से कहे, कि यह महात्मा-दबी हुई निधि (खजाने) को जान लेता है। जब राजा पूछे-तो वह भी इस बात को ढङ्ग से स्वीकार करले और अपने विश्वास के लिये उस सुवर्ण की नली वाली वंमी को बतादे। फिर कहीं सुवर्ण रखवा कर राजा से कहे, कि यहां खजाना बहुत है, परन्तु उसपर सर्प बैठा है उसे भेंट पूजा देने पर वह मिल सकती है। यदि वह मानले-तो राजा से सात रात अपने यहां रहने को कहे और फिर गुपचुप उसे मरवा डाले ॥ ११-१९ ॥

स्थानिकव्यञ्जनं वा रात्रौ तेजनाग्नियुक्तमेकान्ते तिष्ठन्तं सत्त्रिणः क्रमाभिनीतं राज्ञः कथयेयुः ॥ २० ॥ असौ सिद्धः सामेधिक इति ॥ २१ ॥ तं राजा यमर्थं याचेत तमस्य करिष्यमाणः सप्तरात्रमिति समानम् ॥ २२ ॥

किसी बनावटी महन्त [साधु तपस्वी] को रात में इन्द्र जालकी अग्नि से युक्त करके एकान्त में गुप्तचर राजा को दिखा देवें और कहें, कि यह महात्मा भविष्य की सारी समृद्धि के बताने वाले हैं। राजा, जो २ बात इस से मांगे-उसके पूरी करने को सात रात उसको अपने यहां रहने को कहे-जब वह रह जावे तो गुप्तचर उसको मरवा डाले ॥ २०-२२ ॥

सिद्धव्यञ्जनो वा राजानं जम्भकविद्याभिः प्रलोभयेत् ॥ २३ ॥ तं राजेति समानम् ॥ २४ ॥ सिद्धव्यञ्जनो वा देशदेवतामभ्यर्हितामाश्रित्य प्रहवणैरभीक्ष्णं प्रकृतिमुख्यानभिसंवास्य क्रमेण राजानमतिसंदध्यात् ॥ २५ ॥ जटिलव्यञ्जनमन्तरुदकवासिनं वा सर्पचैत्यसुरङ्गाभूमिगृहापसरणं वरुणं नागराजं वा सत्त्रिणः क्रमाभिनीतं राज्ञः कथयेयुः ॥ २६ ॥ तं राजेति समानम् ॥ २७ ॥

किसी सिद्ध तपस्वी का वेष बनाकर राजा को कपट विद्याओं से मोहित करे। जब राजा इन विद्याओं में उलझ जावे-तो उसे सात रात अपने निवास में बुलाकर मार डाले सिद्ध तपस्वी देश के प्रधान देवता की पूजा का बहाना लेकर बहुत सा उत्सव करे और उसके द्वारा राजा के मुख्य २ अमात्यों को वश में करके उनके द्वारा राजा को मरवा देवे। किसी ऐन्द्रजालिक प्रक्रिया से जल के भीतर रहने वाले,

जटाधारी साधु को वरुण या नागराज बताकर गुप्तचर क्रम २ से राजा से कथन करें। ये उसको सर्प के बिल, उद्यान, सुरङ्ग या भूमिगृह में से निकालें। जब वह विश्वास में आ जावे-तो उसको सात दिन अपने यहां सुलावे और धोखे से मार देवे ॥२३-२७॥

जनपदान्तेवासी सिद्धव्यञ्जनो वा राजानं शत्रुदर्शनाय योजयेत् ॥ २८ ॥ प्रतिपन्नं बिम्बं कृत्वा शत्रुमावाहयित्वा निरुद्धे देशे घातयेत् ॥ २९ ॥ अश्वपण्योपयाता वैदेहकव्यञ्जनाः पण्योपयाननिमित्तमाहूय राजानं पण्यपरीक्षायामासक्तमश्वव्यतिकीर्णं वा हन्युरश्वैश्च प्रहरेयुः ॥ ३० ॥

जनपद की सीमा में रहने वाला तपस्वी का रूपधारी गुप्तचर, किसी प्रबल शत्रु से मेल करवा देने के लिए उसको प्रयुक्त करे। जब वह मान ले-तो कल्पित संकेतो द्वारा उसको धोखा देकर मार डाले। अश्व-व्यापारी के वेश में घूमने वाले, गुप्तचर, अश्वों के खरीदने को शत्रु राजा को बुलाकर अश्वों के देखने में लगे हुए या घोड़ों की भारी भीड़ में फंसे हुए राजा को मार डाले और उन घोड़ों से कुचलवा देवे ॥२८-३०॥

नगराभ्याशे वा चैत्यमारुह्य रात्रौ तीक्ष्णाः कुम्भेषु नालीन्वा विदलानि धमन्तः 'स्वामिनो मुख्यानां वा मांसानि भक्षयिष्यामः पूजा नो वर्तता' मित्यव्यक्तं ब्रूयुः ।। ३१ ॥ तदेषां नैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः ख्यापयेयुः ॥ ३२ ॥ मङ्गल्ये वा ह्रदे तटाकमध्ये वा रात्रौ तेजनतैलाभ्यक्ता नागरूपिणः शक्तिमुसलान्ययोमयानि निष्पेषयन्तस्तथैव ब्रूयुः ॥ ३३ ॥ ऋक्षचर्मकञ्चुकिनो वाग्निधूमोत्सर्गयुक्ता रक्षोरूपं वहन्तस्त्रिरपसव्यं नगरं कुर्वाणाः शिवसृगालवाशितान्तरेषु तथैव ब्रूयः ॥ ३४ ॥ चैत्यदैवतप्रतिमां वा तेजनतैलेनाभ्रपटलच्छन्नेनाग्निना वा रात्रौ प्रज्वाल्य तथैव ब्रूयुः ॥ ३५ ॥ तदन्ये ख्यापयेयुः ॥ ३६ ॥

नगर के समीप रात में किसी चैत्यालय (देवो द्यान) के वृक्ष पर चढ़कर तीक्ष्ण पुरुष, घड़ों के मध्य में तांत आदि को बजाते हुए अस्पष्ट रूप में यह कहे, कि हम, इस राजा या इसके मुख्य अमात्यों का मांस खावेंगे-नहीं तो हमारी पूजा करो। इनकी इस बात को शकुन जानने वाले या ज्योतिषी के वेष में रहने वाले गुप्तचर सब जगह प्रसिद्ध करें। किसी मङ्गलीक स्थान में बने हुए तालाब में रात को ऐन्द्रजालिक तेल की मालिश करके नाग देवता के रूप में लोहे के शक्ति और मुसलों को अपने ऊपर मारते हुए इसी प्रकार कहें, कि हमारी पूजा करो नहीं तो हम तुम्हें खावेंगे। रीछ के चमड़े को ओढ़े हुए, अग्नि और धुंआ को मुख से निकालते हुए, राक्षसरूप धारण करके नगर के

दांयी ओर से तीन परिक्रमा करके गीदड़, लोमड़ी आदि के शब्दों में इसी प्रकार बोले श्मशान के देवता को तेजनतेल से या अभ्रक के पटलों से ढ़की हुई अग्नि के द्वारा रात को प्रज्वलित करके पूर्वोक्त रीति से फिर कहे और उसी तरह ज्योतिषी उस बात को प्रसिद्ध करें ॥३१-३६॥

दैवतप्रतिमानामभ्यर्हितानां वा शोणितेन प्रस्रावमतिमात्रं कुर्युः ॥ ३७ ॥ तदन्ये दैवरुधिरसंस्रावे संग्रामे पराजयं ब्रूयुः ॥ ३८ ॥ संधिरात्रिषु श्मशानप्रमुखे वा चैत्यमूर्ध्वभक्षितैर्मनुष्यैः प्ररूपयेयुः ॥ ३९ ॥ ततो रक्षोरूपी मनुष्यकं याचेत ॥ ४० ॥ यश्चात्र शूरवादिको ऽन्यतमो वा द्रष्टुमागच्छेत्तमन्ये लोहमुसलैर्हन्युः ॥ ४१ ॥ यथा रक्षोभिर्हत इति ज्ञायेत ॥ ४२ ॥ तदद्भुतं राज्ञस्तद्दर्शिनः सत्रिणश्च कथयेयुः ॥ ४३ ॥ ततो नैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः शान्तिं प्रायश्चित्तं ब्रूयुः ॥४४॥ अन्यथा महदकुशल राज्ञो देशस्य चेति ॥४५॥ प्रतिपन्नमेतेषु सप्तरात्रमेकैकमन्त्रबलिहोमं स्वयं राज्ञा कर्तव्यमिति ब्रूयुः ॥४६॥ ततः समानम् ॥४७॥

गुप्तचर प्रसिद्ध देवता की मूर्ति के भीतर से बहुत अधिक रक्तस्राव करावे। इस देवता के रुधिर स्राव को वे लोग, शत्रु राजा की पराजय के लक्षण बताकर उद्घोषित करें। अमावस्या और पूर्णिमा की रात में प्रधान श्मशान की भूमि को इधर उधर से तोड़ ताड़ कर खाये हुए मनुष्यों से युक्त दिखावें। फिर कोई सत्री, राक्षस बनकर मनुष्य की भेंट मांगे। जो अपने को शूरवीर या बुद्धिमान् मानकर वहां आ जावे, उसे वे लोग लोहे के मुद्गरों से मारलें और इन्हें उन राक्षसों ने मार दिया यह घोषित करें। इस अद्भुत समाचार को उसके देखने वाले या राजा तक पहुंचावें। अब शकुन शास्त्री और ज्योतिषी बने हुए गुप्तचर इसकी शान्ति और प्रायश्चित्त बतावें यदि शान्ति न की गई-तो देश और राजा की बड़ी हानि होगी। जब राजा की समझ में आ जावे-तो उससे कहे कि इसके निमित्त सात दिन तक मन्त्रों के साथ तुम्हें पृथक् २ स्थानों में बलिदान करना पड़ेगा। जब वह करने को आ जावे-तो उसे धोखे से मारले॥ ३७-४७॥

एतान्वा योगानात्मनि दर्शयित्वा प्रतिकुर्वीत परेषामुपदेशार्थम् ॥ ४८ ॥ ततः प्रयोजयेद्योगान् ॥ ४९ ॥ योगदर्शनप्रतीकारेण वा कोशाभिसंहरणं कुर्यात् ॥ ५० ॥ हस्तिकामं वा नागवनपालो हस्तिना लक्षण्येन प्रलोभयेयुः ॥ ५१ ॥ प्रतिपन्नं गहनमेकायनं वातिनीय घातयेयुर्बध्वा वापहरेयुः ॥ ५२ ॥ तेन मृगयाकामो व्याख्यातः ॥ ५३ ॥

जब राजा इन योगों का अपने ऊपर प्रयोग देखे-तो इन का प्रतिकार करे और दूसरे के ऊपर उनको शिक्षा देने के लिए इनका प्रयोग करे। अपने योगों को दिखाकर और शत्रु के किये प्रयोगों का प्रतिकार करके राजा कोश को भी बढ़ावे। हाथियों के अभिलाषी राजा को हाथियों के वन के पालक, शुभ लक्षण युक्त किसी उत्तम हाथी की प्राप्ति का लोभ देवे। जब वह लालच में आजावे-तो उसे धोखा देकर गहन वन में ले जावे और वहां मार डाले या बांधकर कहीं ले जावें। इसी तरह शिकार के लालची शत्रु को बांधा या मारा जा सकता है॥ ४८-५३॥

द्रव्यस्त्रीलोलुपमाढ्यविधवाभिर्वा परमरूपयौवनाभिः स्त्रीभिर्दायादनिक्षेपार्थमुपनीताभिः सत्त्रिणः प्रलोभयेयुः ॥ ५४ ॥ प्रतिपन्नं रात्रौ सत्त्रिच्छन्नाः समागमे शस्त्ररसाभ्यां घातयेयुः सिद्धप्रव्रजित चैत्यस्तूपदैवतप्रतिमानामभीक्ष्णाभिगमनेषु वा भूमिगृहसुरङ्गागूढभित्तिप्रविष्टास्तीक्ष्णाः परमभिहन्युः ॥ ५६ ॥

जो शत्रु राजा, धन या स्त्रियों का लोलुप हो-उससे दायभाग या अपने धरोहर की प्राप्ति के मुकदमें को लेकर आई हुई किन्ही मालदार विधवा या सुन्दर स्त्रियों से गुप्तचर मोहित करें। जब वह विश्वास में आ जावे, तो रात में छुपे हुए गुप्तचर, उसके मिलने पर उसे शस्त्र या किसी विष प्रयोग से मार डाले। सिद्ध तपस्वी, देवोद्यान, स्तम्भ, देवता की प्रतिमाओं के दर्शनों के निमित्त बार २ आने जाने वाले, शत्रु राजाओं को भूमिगृह (तहखाने) सुरङ्ग, गुप्त भीतों में छुपे हुए तीक्ष्ण घातक पुरुष, मार डालें ॥५४-५६॥

येषु देशेषु याः प्रेक्षाः प्रेक्षते पार्थिवः स्वयम्।
यात्राविहारे रमते यत्र क्रीडति वाम्भसि ॥ ५७ ॥

धिगुक्त्यादिषु सर्वेषु यज्ञप्रहवणेषु वा।
सूतिकाप्रेतरोगेषु प्रीतिशोकभयेषु वा ॥ ५८ ॥

प्रमादं याति यस्मिन्वा विश्वासात्स्वजनोत्सवे।
यत्रास्यारक्षिसंचारो दुर्दिने संकुलेषु वा ॥ ५९ ॥

विप्रस्थाने प्रदीप्ते वा प्रविष्टे निर्जने ऽपि वा।
वस्त्राभरणमाल्यानां फेलाभिः शयनासनैः ॥६० ॥

मद्यभोजनफेलाभिस्तूर्यैर्वाभिहतैः सह।
प्रहरेयुररीस्तीक्ष्णाः पूर्वप्रणिहितैः सह ॥ ६१ ॥

जिन देशों में नाट्यशाला बनी हुई हैं और राजा स्वयं आकर जिन्हें देखना है, विशेष उत्सव खेल कूद और जल क्रीड़ा में संलग्न होता है, सारे अश्लील गान, यज्ञ प्रीति भोजन (दावत) जन्म, मृत्यु प्रीति शोक और भय में सम्मिलित होता है, अपने स्वजनों के उत्सवों में जहां निःसंकोच से सम्मिलत होकर वेखवर हो जाता है, वर्षा आंधी आदि से अन्धकार युक्त दिवस या भीड़-भाड़ में बिना किसी रक्षक के साथ आता जाता है, अयोग्य स्थान, आग लगने के अवसर, शत्रु के प्रवेश, तथा निर्जन वन में जब प्रवेश करता है, तो उपयुक्त वस्त्र, आभरण माला शयन, आसन के उठाने तथा मद्य और भोजन की उच्छिष्ट के हटाने में पूर्व से ही लगे हुए तीक्ष्ण पुरुष, अपने बाजे आदि के संकेतों के साथ ही शत्रुओं को मार लेवे ॥५७-६१॥

यथैव प्रविशेयुश्च द्विषतः सत्त्रहेतुभिः ।
तथैव चापगच्छेयुरित्युक्तं योगवामनम् ॥ ६२ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशे ऽधिकरणे योगवामनं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥
आदितो द्विचत्वारिंशच्छतः ॥ १४२ ॥

जिस तरह शत्रु के बीच में गुप्तचर कपट के साथ घुस जाते हैं, उसी प्रकार धोखा देकर वे वहां से निकल आवें-बस ! यही योग वामन कहाता है ॥६२॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत दुर्गलम्भोपाय अधिकरण में योगवामन नामक उपायों के वर्णन का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।



तीसरा अध्याय

१७३वां प्रकरण

अपसर्प प्रणिधिः ।

इस प्रकरण में गुप्तचरों को शत्रु के देश में रखने का विचार किया जावेगा।

श्रेणीमुख्यमाप्तं निष्पातयेत् ॥ १ ॥ स परमाश्रित्य पक्षापदेशेन स्वविषयात्साचिव्यकरणसहायोपादानं कुर्वीत ॥ २ ॥ कृतापसर्पोपचयो वा परमनुमान्य स्वामिनो दूष्यग्रामं वीतहस्त्यश्वं दूष्यामात्यं दण्डमाक्रन्दं वा हत्वा परस्य प्रेषयेत् ॥ ३ ॥ जनपदैकदेशं श्रेणीमटवीं वा सहायोपादानार्थं संश्रयेत ॥ ४ ॥ विश्वासमुपगतः स्वामिनः प्रेषयेत् ॥ ५ ॥ ततः स्वामी हस्तिबन्धनमटवीघातं वापदिश्य गूढमेव प्रहरेत् ॥ ६ ॥ एतेनामात्याटविका व्याख्याता ॥ ७ ॥

जो राजा अपनी विजय चाहता हो, वह अपने किसी श्रेणी (जमात) के प्रधान पुरुष को अपने नगर से निकाल देवे। वह शत्रु पक्ष का आश्रय लेकर शत्रु के कार्य के साधन के बहाने अपने देश से उन वस्तुओं का संग्रह करे-जो समय पड़ने पर अपने राजा की सहायता में काम आवें जब अपने पास बहुत से गुप्तचरों का संग्रह हो जावे-तो (शत्रु) अपने राजा की अनुमति लेकर अपने स्वामी राजा के भीतर से बिगड़े हुए अमात्य, सैनिक तथा अन्य मनुष्य को और पीछे से आक्रमण करने वाले आक्रन्द को मारकर शत्रु राजा के सन्मुख उपस्थित करे। इसी तरह किसी देश के एक प्रान्त वीर श्रेणी (पार्टी) और वनवासी भीलों को अपनी सहायता के लिए जीतकर उनका आश्रय लेवे। जब इनका विश्वास उत्पन्न हो जावे, तो इनको अपने मुख्य स्वामी के पास भेज देवे। इसके अनन्तर स्वामी हाथियों के बन्धन या जंगल के नाश का बहाना करके एक दम गुप-चुप आक्रमण कर देवे इसी तरह किसी अमात्य या आटविक लोगों को शत्रु के देश में गुप्तचर के रूप में भेजा जा सकता है ॥१-७॥

शत्रुणा मैत्रीं कृत्वामात्यानवक्षिपेत् ॥ ८ ॥ ते तच्छत्रोः प्रेषयेयुः ॥ ९ ॥ भर्तारं नः प्रसादयेति ॥ १० ॥ स यं दूतं प्रेषयेत् तमुपालभेत ॥ ११ ॥ भर्ता ते मामामात्यैर्भेदयति ॥ १२ ॥ न च पुनरिहागन्तव्यमिति ॥ १३ ॥ अथैकममात्यं निष्पातयेत् ॥ १४ ॥ स परमाश्रित्य योगापसर्पापरक्तदूष्यानशक्तिमतः स्तेनाटविकानुभयोपघातकान्वा परस्योपहरेत् ॥ १५ ॥ आप्तभावोपगतः प्रवीरपुरुषोपघातमस्योपहरेत् ॥ १६ ॥

विजेता राजा शत्रु से मित्रता करके अपने अमात्यों का अपमान कर देवे। वे उस शत्रु के पास अपने संदेश भेजे कि आप कृपा कर हमारे स्वामी को हमारे ऊपर प्रसन्न करा दो। जब शत्रु राजा कोई दूत भेजे तो विजेता उसको फटकार दे, कि क्या तेरा स्वामी मेरे अमात्यों से मेरा भेद कराना चाहता है। तुम फिर यहां न आना। इसके अनन्तर विजयाभिलाषी राजा उन अमात्यों में से एक अमात्य को निकाल देवे। जब वह अमात्य शत्रु के यहां चला जावे-तो कपटी, गुप्तचर, विरक्त, भीतर से दुष्ट, शक्तिहीन चोर या वन वासी भील, शत्रु और स्वामी दोनों के घातक चोर या भीलों को शत्रु राजा के सहायक बनाकर प्रस्तुत करे। जब शत्रु उस पर विश्वास करले-तब वह इन लोगों की सहायता से शत्रु के वीरों का गुपचुप अपहरण करवा देवे या उन्हें मरवा डाले ॥८-१६॥

अन्तपालमाटविकं दण्डचारिणं वा ॥ १७ ॥ दृढमसौ चासौ च ते शत्रुणा संधत्त इति ॥ १८ ॥ अथ पश्चाद्भित्यक्तशासनैरेनान्घातयेत् ॥ १९ ॥ दण्डव-

लव्यवहारेण वा शत्रुमुद्योज्य घातयेत् ॥ २० ॥ कृत्यपक्षोपग्रहेण वा परस्यामित्रं राजानमात्मन्यपकारयित्वाभियुञ्जीत ॥ २१ ॥ ततः परस्य प्रेषयेत् ॥ २२ ॥ असौ ते वैरी ममापकरोति ॥ २३ ॥ तमेहि संभूय हनिष्यावः ॥ २४ । भूमौ हिरण्ये वा ते परिग्रह इति ॥ २५ ॥ प्रतिपन्नमभिसत्कृत्यागतमवस्कन्देन प्रकाशयुद्धेन वा शत्रुणा घातयेत् ॥ २६ ॥ अभिविश्वासनार्थं भूमिदानपुत्राभिषेकरक्षापदेशेन वा ग्राहयेत् ॥ २७ ॥ अविषह्यमुपांशुदण्डेन वा घातयेत् ॥ २८ ॥

यह अमात्य, शत्रु राजा से कहे, कि तुम्हारे अमुक २ अन्तपाल, आटविक या सेनापति, निश्चय शत्रु से मिल गया है। फिर कुछ ऐसे बनावटी पत्र पकड़वाकर इनको शत्रु राजा द्वारा मरवा डाले अथवा शत्रु के साथ युद्ध छेड़कर सेना की ठीक २ सहायता न भेजकर उन्हें मरवा देवे। शत्रु राजा के क्रुद्ध, लालची और भयभीत अमात्य आदि को अपनी ओर करके शत्रु राजा के शत्रु को अपने ऊपर अपकार कराके उससे युद्ध छेड़ देवे। यह तुम्हारा शत्रु हमारा भी अपकार कर रहा है तुम आवो और मेरे साथ इससे लड़ो। हम दोनों मिलकर इसे मार देंगे। पृथ्वी या सुवर्ण जो कुछ मिलेगा-वह तुम्हारा होगा। जब शत्रु स्वीकार करले-तो उसका बहुत अधिक सत्कार करे और फिर उसको शत्रु द्वारा घिरवाकर या प्रकाश युद्ध द्वारा मरवा डाले इससे विश्वास बना रहेगा अथवा शत्रु के शत्रु को जीतकर भूमिदान या अपने पुत्र के युवराजाभिषेक के उत्सव के बहाने अपने यहां बुलाकर धोखे से पकड़वा देवे। यदि इस तरह भी वश में न आवे-तो उसे चुपचाप विष आदि दिलाकर मरवा डाले ॥१७-२८॥

स चेद्दण्डं दद्यान्न स्वयमागच्छेत्तमस्य वैरिणा घातयेत् ॥ २९ ॥ दण्डेन वा प्रयातुमिच्छेन्न विजिगीषुणा, तथाप्येन मुभयतः संपीडनेन घातयेत् ॥ ३० ॥ अविश्वस्तो वा प्रत्येकशो यातुमिच्छेत्तद्राज्यैकदेशं वा यातव्यस्यादातुकामस्तथाप्येनं वैरिणा सर्वसन्दोहेन वा घातयेत् ॥३१॥ वैरिणा वा सक्तस्य दण्डोपनयेन मूलमन्यतो हारयेत् ॥ ३२ ॥

यदि शत्रु सहायता के लिए स्वयं न आवे और अपनी सेना मात्र भेजे-तो उस सेना को शत्रु से मरवा देवे। यदि शत्रु राजा, अपनी सेना के घेरे में चले और विजेता के विश्वास में न आकर अपने शत्रु से लड़ना चाहे-तो भी इसकी सेना को दोनों ओर से इसके साथ घिरवाकर मरवा देवे। जब शत्रु अविश्वास करके पृथक् २ अपनी सेना ले जाकर शत्रु पर चढ़ाई करना चाहता है और विजेता के साथ नहीं मिलता और शत्रु के किसी भाग पर अधिकार कर लेना चाहता है, तो इसको उस वैरी द्वारा सारे उपाय करके मरवा डाले अथवा जब शत्रु, अपने शत्रु पर चढ़ गया-तो कुछ सेना लेकर दूसरी ओर से शत्रु की राजधानी पर ही अधिकार कर लेना चाहिए ॥२९-३२॥

शत्रुभूम्या वा मित्रं पणेत ॥ ३३ ॥ मित्रभूम्या वा शत्रुम् ॥ ३४ ॥ ततः शत्रुभूमिलिप्सायां मित्रेणात्मन्यपकारयित्वाभियुञ्जीत ॥३५॥ इति समानाः पूर्वेण सर्व एव योगाः ॥ ३६ ॥ शत्रुं वा मित्रभूमिलिप्सायां प्रतिपन्नं दण्डेनोनुगृह्णीयात् ॥ ३७ ॥ ततो मित्रगतमतिसंदध्यात् ॥ ३८ ॥ कृतप्रतिविधानो वा व्यसनमात्मनो दर्शयित्वा मित्रेणामित्रमुत्साहयित्वात्मानमभियोजयेत् ॥ ३९ ॥ ततः संपीडनेन घातयेत् ॥ ४० ॥ जीवग्राहेण वा राज्यविनिमयं कारयेत् ॥४१॥

शत्रु की भूमि का आधा २ भाग करने की प्रतिज्ञा करके मित्र से सन्धि करे और मित्र भूमि के आधा २ बांटने की शर्त करके शत्रु से सन्धि करे। जब शत्रु की भूमि के लेने की इच्छा हो-तब मित्र द्वारा कुछ अपकार कराके उस पर चढ़ाई करा लेवे। इस समय जब शत्रु सहायता को आवे-तो उसे घिरवाकर मरवा देवे। यदि शत्रु, विजेता के मित्र की भूमि लेना चाहता है और दोनों ने पूर्वोक्त प्रकार से सन्धि करली है, तो शत्रु के विश्वासी हो जाने पर विजेता अपनी सेना भेज देवे। जब शत्रु मित्र के देश में पहुंच जावे-तो वहां मित्र से मिलकर उसे नष्ट करा देवे। अपना प्रबन्ध करके विजयाभिलाषी राजा, अपने ऊपर कुछ संकट दिखावे और अपने मित्र द्वारा शत्रु को उभारकर अपने ऊपर चढ़ाई करवावे इसके अनन्तर दोनों ओर से घेरकर उसे मार डालें या उसे बन्धन में डालकर उसके राज्य पर किसी दूसरे को बैठा देवे ॥३३-४१॥

मित्रेणाहूतश्चेच्छत्रुरग्राह्ये स्थातुमिच्छेत्सामन्तादिभिर्मूलमस्य हारयेत् ॥ ४२ ॥ दण्डेन वा त्रातुमिच्छेत्तमस्य घातयेत् ॥ ४३ ॥ तौ चेन्न भिद्येयातां प्रकाशमेवान्योन्यस्य भूम्या पणेत ॥ ४४ ॥ ततः परस्परं मित्रव्यञ्जनोभयवेतना वा दूतान्प्रेषयेयुः ॥ ४५ ॥ अयं ते राजा भूमिं लिप्सते शत्रुसंहित इति ॥ ४६ ॥ तयोरन्यतरो जाताशङ्कारोपः पूर्ववच्चेष्टेत ॥ ४७ ॥

यदि मित्र के बुलाने पर शत्रु, नहीं पकड़ में आने वाले स्थान पर स्थित होना चाहे-तो अपने सामन्तों द्वारा इसकी राजधानी को छिनवा देवे। यदि यह केवल सेना मात्र भेजे-तो इसकी सेना का नाश करावे। यदि गुप्तपण (शर्त) द्वारा मित्र और शत्रु में फूट न पड़ सके-तो प्रकाश में ही सन्धि करके पराजित की भूमि बांट लेने की शर्त कर लेवें। इसके अनन्तर शत्रु के विश्वासी विजेता के गुप्तचर, इधर उधर दूत भेजें, कि यह राजा तुम्हारी भूमि लेना चाहता है और तुम्हारे शत्रु से मिल गया है। जब इनमें एक को शङ्का हो जावेगी-तो क्रोध में भरकर चढ़ाई करेगा। फिर उसी तरह विजेता और उसका मित्र मिलकर उस शत्रु को नष्ट कर लेवें ॥४२-४७॥

दुर्गराष्ट्रदण्डमुख्यान्वा कृत्यपक्षहेतुभिरभिविख्याप्य प्रव्राजयेत् ॥ ४८ ॥ ते युद्धावस्कन्दावरोधव्यसनेषु शत्रुमतिसंदध्युः ॥ ४९ ॥ भेदं वास्य स्ववर्गेभ्यः कुर्युः ॥ ५० ॥ अभित्यक्तशासनैः प्रतिसमानयेयुः ॥ ५१ ॥

दुर्ग पालक, राष्ट्र पालक, या सेनापति को अपने दूषित अमात्य आदि की सहायता देने का बहाना बनाकर राजा निकाल देवे। वे शत्रु राजा के पास जाकर विश्वास उत्पन्न कर लेवे और युद्ध तथा रनिवास में वे खबर शत्रु राजा को मरवा डाले। यदि इतना न हो सके-तो इसके मण्डल से ही इसकी फूट डलवावें, और उसके प्रमाण में बनावटी लेख पकड़वाकर शत्रु राजा को विश्वास दिलावे ॥४८-५१॥

लुब्धकव्यञ्जना वा मांसविक्रयेण द्वाःस्था दौवारिकापाश्रयाश्चोराभ्यागमं परस्य द्विस्त्रिरिति निवेद्य लब्धप्रत्यया भर्तुरनीकं द्विधा निवेश्य ग्रामवधे ऽव-स्कन्दे च द्विषतो ब्रूयुः ॥ ५२ ॥ आसन्नश्चोरगणो महांश्चाक्रन्दः प्रभूतं सैन्य-मागच्छत्विति ॥ ५३ ॥ तदर्पयित्वा ग्रामघातदण्डस्य सैन्यमितरदादाय रात्रौ दुर्गद्वारेषु ब्रूयुः ॥ ५४ ॥ हतश्चोरगणः । ५५ ॥ सिद्धयात्रमिदं सैन्यमागतम् ॥ ५६ ॥ द्वारमपाव्रियतामिति ॥५७॥ पूर्वप्रणिहिता वा द्वाराणि दद्युः ॥५८॥ तैः सह प्रहरेयुः ॥ ५९ ॥

लुब्धक (शिकारी) के वेश में रहने वाले, गुप्तचर, मांस बेचने के बहाने शत्रु के द्वार पर आकर द्वार पालों के पास बैठकर दो तीन बार निश्चय के साथ यह कहें, कि शत्रु के चोर इधर उधर राज्य में आते हैं। जब शत्रु राजा को विश्वास हो जावे-तो अपने स्वामी की सेना को दो भागों में बांटकर गांव के वध और लूट मार के लिए तय्यार कर देवे। फिर शत्रु से कहे, कि चोरों का समूह पास में ही आया हुआ है। बड़ा कोलाहल हो रहा है। अब बहुत सी सेना भेजो। गांव के घात करने को उद्यत अपने राजा की सेना के घेरे में इस सेना को डाल कर इसकी टुकड़ी लेकर रात में दुर्ग के द्वार पर जाकर यों कहें, कि चोरों को मारा जा चुका। यह विजय प्राप्त करके सेना आ गई है। द्वार खोलो। अच्छा तो यह है कि द्वारपाल ही पहिले से मिला लिये जावें और वे आते ही द्वार खोल देवें। फिर उस सेना के द्वारा मार काट मचाकर शत्रु दुर्ग पर कब्जा कर लेना चाहिए ॥ ५२-५९ ॥

कारुशिल्पिपाषण्डकुशीलववैदेहकव्यञ्जनानायुधीयान्वा परदुर्गे प्रणिदध्यात् ॥ ६० ॥ तेषां गृहपतिकव्यञ्जनाः काष्ठतृणधान्यपण्यशकटैः प्रहरणावरणान्य-

भिहरेयुः ॥ ६१ ॥ देवध्वजप्रतिमाभिर्वा ॥ ६२ ॥ ततस्तद्व्यञ्जनाः प्रमत्तवधमवस्कन्दप्रतिग्रहमभिप्रहरणं पृष्ठतः शङ्खदुन्दुभिशब्देन वा प्रविष्टमित्यावेदयेयुः ॥ ६३ ॥ प्राकारद्वाराट्टालकदानमनीकभेदं घातं वा कुर्युः ॥ ६४ ॥ सार्थगणवासिभिरातिवाहिकैः कन्यावाहिकैरश्वपण्यव्यवहारिभिरुपकरणहारकैर्धान्यक्रेतृविक्रेतृभिर्वा प्रव्रजितलिङ्गिभिर्दूतैश्च दण्डातिनयनं संधिकर्म विश्वासनार्थमिति राजापसर्पाः ॥ ६५ ॥

कारीगर, शिल्पी, पाखंडी साधु, नट, व्यापारी और शस्त्रधारी के वेश में रहने वाले गुप्तचरों को शत्रु के दुर्ग में किसी प्रकार भेजा जावे। दूसरी ओर गृहस्थी के वेष में रहने वाले गुप्तचर- काष्ठ, तृण, धान्य आदि व्यवहार की वस्तु, गाड़ी, आदि के द्वारा शस्त्र और कवच, वहां पहुंचा देवें। देवों की ध्वजा या प्रतिमाओं के साथ भी शस्त्र आदि पहुंचाये जा सकते हैं। इसके अनन्तर कारीगर आदि के वेष में रहने वाले गुप्तचर, राजा को सूचना देवे, कि शत्रु के सैनिक बे खबर पड़े लोगों को मार गए। इन्होंने उधर से घेरा डाल रखा है। पीछे की ओर शंख या नगाड़ा बजाते हुए घुस रहे हैं। जब राजा अपनी सेना उधर भेजे तो आप इधर दुर्ग की दीवार, द्वार, अटारी, के मार्ग से रास्ता दे देवे। शत्रु की सेना पृथक् २ करदे या मरवा डाले। बड़े २ गिरोहों के साथ घूमने वाले व्यापारी, कन्या विक्रेता, [बुर्दा फ़रोश] अश्व आदि अनेक वस्तु बेचने वाले, धान्य के बेचने खरीदने के व्यापारी, साधु संन्यासी, जुआरी का वेष रखने वाले गुप्तचर शत्रु सेना को दुर्ग मार्गों में लेजाकर फंसा देवे। इससे शत्रु के साथ की गई सन्धि का भी निर्वाह दिखाई देगा ॥ ६०-६५॥

एत एवाटवीनामपसर्पाः कण्टकशोधनोक्ताश्च ॥ ६६ ॥ व्रजमटव्यासन्नमपसर्पाः सार्थं वा चोरैर्घातयेयुः ॥ ६७ ॥ कृतसंकेतमन्नपानं चात्र मदनरसविद्धं वा कृत्वापगच्छेयुः ॥ ६८ ॥ गोपालकवैदेहकाश्च ततश्चोरान् गृहीतलोप्त्रभाराः मदनरसविकारकाले ऽवस्कन्दयेयुः ॥ ६९ ॥

इसी तरह कंटक शोधन प्रकरण में तथा यहां कहे हुए गुप्तचर ही जंगली जातियों के साथ व्यवहार करने के उपयोगी हो सकते हैं। वन के समीप किसी गोशाला में राजा के गुप्तचर पहुंचे और वहां वे चोरों से किसी व्यापारी के झुण्ड को लुटवा देवे। जब आटविकों को इनपर विश्वास हो जावे-तब संकेत के अनुसार अन्नपान में विष मिलाकर वहां से चम्पत हो जावें। ग्वाले और व्यापारी के वेश में रहने वाले सैनिक

गुप्तचर उस व्यापारी की लूट का माल लाद कर धतूर के विष में बेहोश हुए उन आटविक चोरों को गिरफ्तार कर लेवे ॥ ६६-६६ ॥

संकर्षणदैवतीयो वा मुण्डजटिलव्यञ्जनः प्रहवणकर्मणा मदनरसयोगाभ्यामतिसंदध्यात् ॥ ७० ॥ अथावस्कन्दं दद्यात् ॥ ७१ ॥ शौण्डिकव्यञ्जनो वा दैवतप्रेतकार्योत्सवसमाजेष्वाटविकान्सुराविक्रयोपायननिमित्तं मदनरसयोगाभ्यामतिसंदध्यात् ॥ ७२ ॥ अथावस्कन्दं दद्यात् ॥ ७३ ॥

संकर्षक देवता का मानने वाला कोई मुण्डी या जटाधारी कोई उत्सव करे तो उस समय शराव में धतूरे के रस मिला देवे। जब वे अचेत हो जावें-तब उनको घेरकर पकड़ लेवे। शराब वेचने वाले के रूप में फिरने वाले गुप्तचर, देवता प्रेतकार्य, उत्सव, समाज के वहाने, वनवासी लुटेरों को शराव अधिक विकने के उपहार में धतूरे के विष में मिली हुई शराब पिला देवे और उनको इसी तरह पकड़ले ॥७०-७३॥

ग्रामघातप्रविष्टां वा विक्षिप्य बहुधाटवीम् ।
घातयेदिति चोराणामपसर्पाः प्रकीर्तिताः ॥ ७४ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशे ऽधिकरणे अपसर्पप्रणिधिस्तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥
आदितस्त्रिचत्वारिंशच्छतः ॥ १४३ ॥

जब जङ्गली लुटेरे गांव के घात के लिए आक्रमण करें तो गुप्तचर उनको अनेक उपायों से धोखे में डालकर मरवा देवें। इस प्रकार जङ्गली लुटेरों में भी गुप्तचर छोड़े जा सकते हैं ॥७४॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत दुर्गलम्भोपाय अधिकरण में गुप्तचरों के वर्णन का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।



चौथा अध्याय

१७४-१७५वां प्रकरण

पर्युपासन कर्माव मर्दः ।

इस प्रकरण में शत्रु के दुर्ग का घेरना, और उसको अपने अधिकार में करने का वर्णन किया जावेगा।

कर्शनपूर्वं पर्युपासनकर्म ॥ १ ॥ जनपदं यथानिविष्टमभये स्थापयेत् ॥ २ ॥ उत्थितमनुग्रहपरिहाराभ्यां निवेशयेदन्यत्रापसरतः ॥ ३ ॥ समग्रमन्यस्यां

भूमौ निवेशयेदेकस्यां वा वासयेत् ॥ ४ ॥ न ह्यजनो जनपदो राज्यमजनपदं वा भवतीति कौटल्यः ॥५॥ विषमस्थस्य मुष्टिं सस्यं वा हन्याद्वीवधप्रसारौ च ॥६॥

शत्रु की सेना और कोश का क्षय करते हुए ही विजेता, शत्रु के दुर्ग पर घेरा डाले। शत्रु के देश को यथा पूर्व अभय स्थान में सुरक्षित रहने देवे। विजेता के विरुद्ध आन्दोलन करने पर जनता को टैक्स आदि मुआफ करके या कुछ धन आदि दान में देकर शान्त करदे और यदि वह भाग कर जा रही है तो उसे कुछ न दे। इस शत्रु की जनता को कहीं ले जाकर पृथक् २ भूमि में वसावे या एक स्थान पर भी निवास करवा देवे। कौटल्याचार्य कहते हैं, कि विना मनुष्यों के जनपद नहीं हो सकता और विना जनपद के राज्य नहीं कहला सकेगा। शत्रु किसी संकट में उलझ जावे-तो उसकी फसल और उत्पन्न अन्न को नष्ट कर देवे तथा बाहर से अन्न और घी तेल या लकड़ी घास आदि का आना रोक देना चाहिए ॥१-६॥

प्रसारवीवधच्छेदान्मुष्टिसस्यवधादपि ।
वमनाद्गूढघाताच्च जायते प्रकृतिक्षयः ॥ ७ ॥

लकड़ी घास आदि और अन्न, घी तेल आदि के रोक देने तथा हरे भरे खेत और उत्पन्न अन्न के नष्ट कर देने पर एवं अमात्य आदि प्रकृतियों के कहीं ले जाने या उसके गुप-चुप वध कर देने पर प्रकृति क्षय होता है ॥७॥

प्रभूतगुणवद्धान्यकुप्ययन्त्रशस्त्रावरणविष्टिरश्मिसमग्रं मे सैन्यमृतुश्च पुरस्तात् ॥ ८ ॥ अपर्तुः परस्य व्याधिदुर्भिक्षनिचयरक्षाक्षयः क्रीतबलनिर्वेदो मित्रबलनिर्वेदश्चेति पर्युपासीत ॥ ९ ॥

जब विजेता राजा यह समझे कि मेरी सेना अत्यन्त गुणों से युक्त है, धान्य, तांवा लोहा वस्त्र, यन्त्र, शस्त्र, आवरण (कवच) सेना के कर्मचारी रस्सी आदि वस्तुओं से सुसम्पन्न है, आक्रमण के योग्य ऋतुकाल है, तो राजा चढ़ाई कर देवे। इसी तरह शत्रु को वह ऋतु विपरीत होनी चाहिए, उसके यहां व्याधि, दुर्भिक्ष और धान्य संग्रह का क्षय हो, वेतन मात्र से इकट्ठी की हुई सेना राजा से उदासीन हो रही हो, मित्र सेना को भी उपराम हो, ऐसी दशा में विजेता को चढ़ाई करनी चाहिए ॥८-९॥

कृत्वा स्कन्धावारस्य रक्षां वीवधासारयोः पथश्च परिक्षिप्य दुर्गं खातसालाभ्यां दूषयित्वोदकमवस्राव्य परिखाः संपूरयित्वा वा सुरङ्गाबलकुटिकाभ्यां वप्रप्राकारौ हारयेत् ॥१०॥ दारं च गुलेन निम्नं वा पांसुमालयाच्छादयेत् ॥११॥ बहुलारक्षं यन्त्रैर्घातयेत् ॥१२॥ निष्क्रादुपनिष्कृष्याश्वैश्च प्रहरेयुः ॥१३॥ विक्रमान्तेषु च नियोगविकल्पसमुच्चयैश्चोपायानां सिद्धिं लिप्सेत दुर्गवासिनः ॥१४॥

विजेता, प्रथम अपनी छावनी, अन्न, जल, घृत और तेल आदि तथा घास लकड़ी आदि की आमद और मित्र सेना के मार्ग की रक्षा करके शत्रु के दुर्ग को घेर लेवे। गड्ढे खोदकर और उसकी शालाओं को तोड़कर दुर्ग को दूषित कर देवे। दुर्ग के चारों ओर भरे हुए जल को वहा देवे और खाई को भर देवे तथा सुरङ्ग और टेढ़ी खुदी हुई खाई के द्वारा दुर्ग के बड़े परकोटे और छोटी २ दीवारों पर आक्रमण कर देवे। मार्ग में आने वाली भूमि की दरारों, ढेलों और गड्ढों को रेती से अच्छी तरह भर देवे। जहां पर दुर्ग की अधिक सेना रक्षा कर रही है, उस भाग को यन्त्र (तोप) से उड़ा देवे। दुर्ग के स्थान विशेष से सेना को हाथियों द्वारा खेंचकर अश्वों के द्वारा आक्रमण करे। जब शत्रु सेना पराक्रम दिखाने लगे तो सामादि में से किसी उपाय का प्रयोग, विकल्प, एक साथ सबका प्रयोग करके दुर्ग वासियों के जीत लेने की चेष्टा करे ॥१०-१४॥

श्येनकाकनप्तृभासशुकशारिकोलूककपोतान्ग्राहयित्वा पुच्छेष्वग्नियोगयुक्तान्परदुर्गे विसृजेयुः ॥ १५ ॥ अपकृष्टस्कन्धावारादुच्छ्रितध्वजधन्वारक्षा वा मानुषेणाग्निना परदुर्गमादीपयेयुः ॥ १६ ॥ गूढपुरुषाश्चान्तदुर्गपालका नकुलवानरविडालशुनां पुच्छेष्वग्नियोगमाधाय काण्डनिचयरक्षाविधानवेश्मसु विसृजेयुः ॥ १७ ॥ शुष्कमत्स्यानामुदरेष्वग्निमाधाय वल्लूरे वा वायसोपहारेण वयोभिर्हारयेयुः ॥ १८ ॥ सरलदेवदारुपूतितृणगुग्गुलुश्रीवेष्टकसर्जरसलाक्षागुलिकाः खरोष्ट्राजावीनां लण्डं चाग्निधारणम् ॥ १९ ॥ प्रियालचूर्णमवल्गुजमषीमधूच्छिष्टमश्वखरोष्ट्रगोलण्डमित्येष क्षेप्यो ऽग्नियोगः ॥ २० ॥ सर्वलोहचूर्णमग्निवर्णं वा कुम्भीसीसत्रपुचूर्णं वा पारिभद्रकपलाशपुष्पकेशमषीतैलमधूच्छिष्टकश्रीवेष्टकयुक्तो ऽग्नियोगो विश्वासघाती वा ॥ २१ ॥ तेनावलिप्तः शणत्रपुसवल्कवेष्टितो बाणइत्यग्नियोगः ॥ २२ ॥

श्येन, कौआ, नप्ता (पक्षिविशेष) भास (गीध) शुक, मैना, उल्लू, और कबूतरों को पकड़वाकर उनकी पूंछ में आग लगाने वाली ओषधि लगा देवे और उनको शत्रु के दुर्ग में भेजे जिससे वहां आग लग जावे अथवा दुर्ग से बाहर पड़ी हुई सेना से ध्वजा और धनुष के रक्षक, मानुष अग्नि से शत्रु के दुर्ग में आग लगादें। अन्तपाल और दुर्गपाल बने हुए अपने गुप्तचर, नेवले, विलाव, वानर और कुत्तों की पूंछ में अग्नि लगाने वाली औषध लगाकर वस्तुओं के रखने के भण्डार या रक्षा के स्थानों में भेज देवे। सूखी मछलियों के उदर या मांस में आग भरकर कौओं को वलि देने के वहाने

पक्षियों के द्वारा शत्रु के दुर्ग में पहुंचा देवे, जिससे वहां आग लग जावे। सरल, देवदारु पूतितृण (गन्धवाली घास) गूगल, सरु का गोंद, राल, और लाख, की गोली तथा गधा, ऊंट, बकरा और मेंढ़े की पुरीष (मल) भी अग्नि के लगाने में काम आती है। चिरोंजी और काली बावची का चूरा, मोम, घोड़े, गधे, ऊंट और गौ की सूखी पुरीष (मल) भी अग्नि लगाने के योग में काम आते हैं। इनसे योग बनाकर शत्रु के दुर्ग में आग लगाने को फैंक देना चाहिए। अग्नि वर्ण के तुल्य लाल सब प्रकार के लोहे का चूर्ण, कायफल, सीसा, रांग का चूरा, नीम, ढाक, के फूल, नेत्र वाला, तेल, मोम, सरु का गोंद से बनाया हुआ अग्नि का योग (नुसखा) बड़ा विश्वासघाती योग है अर्थात् इस औषधि के योग के रखने से अग्नि के लगने का बिल्कुल पता नहीं चलता है और आग चमक उठती है। इन सारी चीजों तथा सन, रांग और बबूल के चूर्ण से लिपटा हुआ बाण भी अग्नि लगाने के काम में आता है ॥१५-२२॥

नत्वेव विद्यमाने पराक्रमे ऽग्निमवसृजेत् ॥ २३ ॥ अविश्वास्यो ह्यग्निः दैवपीडनं च ॥ २४ ॥ अप्रतिसंख्यातप्राणिधान्यपशुहिरण्यकुप्यद्रव्यक्षयकरः ॥ २५ ॥ क्षीणनिचयं चावाप्तमपि राज्यं क्षयायैव भवति ॥ २६ ॥ इति पर्युपासनकर्म ॥ २७ ॥

जब युद्ध का आरम्भ हो रहा हो-तब अग्नि के प्रयोग नहीं करने चाहिए। अग्नि का विश्वास नहीं है, यह दैवका पीड़ा देने का शस्त्र है। यह अग्नि, असंख्यात प्राणी, धान्य, पशु, तथा अन्य लकड़ी आदि वस्तुओं के नाश करने का साधन है। यदि जीते जाने वाले राज्य का भी सब कुछ क्षय हो गया है, तो उसके प्राप्त करने पर भी वह राज्य क्षय के लिए ही होता है। यहांतक शत्रु के दुर्ग के घेरने के सम्बन्ध में विचार हुआ ॥ २३-२७ ॥

सर्वारम्भोपकरणविष्टिसंपन्नो ऽस्मि ॥ २८ ॥ व्याधितः पर उपधाविरुद्धप्रकृतिरकृतदुर्गकर्मनिचयो वा निरासारः सासारो वा पुरा मित्रैः संधत्ते इत्यवमर्दकालः ॥ २९ ॥

जब विजेता को यह पता हो जावे, कि मैं युद्ध की सारी सामग्री और कर्मचारी वर्ग से संयुक्त हूं। शत्रु व्याधि ग्रस्त है, छल करके उसके अमात्य उससे विरुद्ध हो रहे हैं। शत्रु के यहां दुर्ग की मरम्मत आदि भी नहीं हो रही है। धान्य आदि का कोई संग्रह भी नहीं है। यदि इसके मित्र हैं भी तो अभी उनके साथ शर्तें ही तय नहीं हुई हैं यही समय चढ़ाई करने का होता है ॥ २८-२९ ॥

स्वयमग्नौ जाते समुत्थापिते वा प्रहवणे प्रेक्षानीकदर्शनसङ्गसौरिककलहेषु नित्ययुद्धश्रान्तबले बहुलयुद्धप्रतिविद्धप्रेतपुरुषे जागरणक्लान्तसुप्तजने दुर्दिने नदीवेगे वा नीहारसंप्लवेवावमृद्नीयात् ॥ ३० ॥ स्कन्धावारमुत्सृज्य वा वनगूढः शत्रुं सत्रान्निष्क्रान्तं घातयेत् ॥ ३१ ॥ मित्रासारमुख्यव्यञ्जनो वा संरुद्धेन मैत्रीं कृत्वा दूतमभित्यक्तं प्रेषयेत् ॥ ३२ ॥ इदं ते छिद्रम् ॥ ३३॥ इमे दूष्याः ॥३४॥ संरोद्धुर्वा छिद्रमयं ते कृत्यपक्ष इति ॥ ३५ ॥ तं प्रतिदूतमादाय निर्गच्छन्तं विजिगीषुर्गृहीत्वा दोषमभिविख्याप्य प्रवास्यापगच्छेत् ततः ॥ ३६ ॥ मित्रासारव्यञ्जनो वा संरुद्धं ब्रूयात् ॥ ३७ ॥ मां त्रातुमुपनिर्गच्छ ॥ ३८ ॥ मया वा सह संरोद्धारं जहीति ॥ ३९ ॥ प्रतिपन्नमुभयतः संपीडनेन घातयेत् ॥ ४० ॥ जीवग्राहेण वा राज्यविनिमयं कारयेत् ॥ ४१ ॥ नगरं वास्य प्रमृद्नीयात् ॥४२॥ सारबलं वास्य वमयित्वाभिहन्यात् ॥ ४३ ॥ तेन दण्डोपनताटविका व्याख्याताः ॥ ४४ ॥

स्वयं अग्नि लगने या लगाने किसी विशेषोत्सव नाटक, सेना की कवायद के देखने और सुरा पीने वालों के कलह में एवं नित्य के युद्ध से थकी हुई सेनाके होने, लंबे युद्ध से बहुत से मनुष्यों के मरने या हताहत हो जाने, जागरण स दुःखी होकर सोने, नदी के वेगके पार करने, आन्धी मेंह के अन्धकार से युक्त, दिन या कुहरा पड़ने के समय में राजा शत्रु की सेना को कुचल डाले। अपनी छावनी को छोड़कर राजा वन में छुप जावे और वहां से निकलते हुए शत्रु को मरवा डाले। मित्र की सेना के मुख्य व्यक्ति के रूप में रहने वाला गुप्तचर घिरे हुए शत्रु राजा के साथ मित्रता करके अपराधी व्यक्ति को दूत बनाकर भेज देवे। उसके द्वारा कहलाने, कि ये २ तुम्हारे भीतरी बिगड़े हुए अमात्य हैं। यह आक्रान्ता के छिद्र हैं और यह विजेता के अमुक २ पुरुष भय या लोभ से तुम्हारी ओर आजाना चाहते हैं। जब शत्रु के दूत को लेकर मार्ग में जाते हुए उस पुरुष को देखे तो विजयेच्छुक राजा, उन्हें पकड़कर और शत्रु राजा के दोष को विख्यात करके उसे मारकर आप चलदेवे। मित्र की सेना के रूप में रहता हुआ गुप्तचर घिरे हुए शत्रु राजा से कहे, तुम मेरी रक्षा में तत्पर हो जाओ। तुम मेरे साथ होकर आक्रमण कारी राजा को मार लो। जब मान लेन्तो इसे दोनों ओर से घेर कर मार दिया जावे अथवा जीता ही पकड़ कर उसके राज्य पर किसी दूसरे को बैठा देवे। इसके नगर को लूटलाट ले। इसकी दृढ़ सेना को दुर्ग से निकाल कर मार दे। यही दण्डोपनत (दण्डसे वशमें किये हुए) या आटविकों (वनचर भील) के वशमें करने की रीति हैं ॥३०-४४॥

दण्डोपनताटविकयोरन्यतरो वा संरुद्धस्य प्रेषयेत् ॥ ४५ ॥ अयं संरोद्धा व्याधितः पार्ष्णिग्राहेणाभियुक्तश्छिद्रमन्यदुत्थितमन्यस्यां भूमावपयातुकाम इति ॥ ४६ ॥ प्रतिपन्ने संरोद्धा स्कन्धावारमादीप्यापयायात् ॥ ४७ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत् ॥ ४८ ॥

दण्डोपनत आटविक, घिरे हुए राजा के पास दूत भेजें, कि यह विजेता रोगी है और इसके पीछे से शत्रु लगा दें। इसमें बहुत छिद्र हो रहे हैं। अब दूसरी भूमि में जाना चाहता है। यदि शत्रु राजा इस बात पर विश्वास करले-तो विजेता अपनी छावनी में आग लगाकर चलदे और जब शत्रु धावा करे-तो दोनों मिलकर उसे मार लेवें ॥४५-४८॥

पण्यसंपातं वा कृत्वा पण्येनैनं रसविद्धेनातिसंदध्यात् ॥ ४९ ॥ आसारव्यञ्जनो वा संरुद्धस्य दूतं प्रेषयेत् ॥ ५० ॥ मया बाह्यमभिहतमपनिर्गच्छाभिहन्तुमिति ॥ ५१ ॥ प्रतिपन्नं पूर्ववदाचरेत् ॥ ५२ ॥ मित्रं बन्धुं वापदिश्य योगपुरुषाः शासनमुद्राहस्ताः प्रविश्य दुर्गं ग्राहयेयुः ॥ ५३ ॥ आसारव्यञ्जनो वा संरुद्धस्य प्रेषयेत् ॥ ५४ ॥ अमुष्मिन्देशे काले च स्कन्धावारमभिहनिष्यामि ॥ ५५ ॥ युष्माभिरपि योद्धव्यमिति ॥ ५६ ॥ प्रतिपन्ने यथोक्तमभ्याघातसंकुलं दर्शयित्वा रात्रौ दुर्गान्निष्क्रान्तं घातयेत् ॥ ५७ ॥

राजा किसी बड़े भारी व्यापारी के आने की खबर फैलवावे और उसके द्वारा विष मिश्रित चीजें बिकवाकर राजा या राजा की सेना को मरवा डाले। मित्र सेना के अध्यक्ष के रूप में रहने वाला कर्मचारी, घिरे हुए राजा के पास संदेश भेजे-कि मैंने तुम्हारे शत्रु को मार २ कर ढ़ीला कर दिया है, अब तुम आकर इसे मारलो। यदि वह चला आवे-तो दोनों मिलकर इसकी बुरी तरह दुर्दशा कर डाले। गुप्तचर, बनावटी मुद्रा का पत्र लेकर और अपने आपको राजा का मित्र या बन्धु बताकर क़िले में घुस जावे और वहां पर अधिकार कर लेवे। मित्र सेना के वेष में रहने वाला, गुप्तचर, शत्रु राजा के पास यह संदेश भेजे कि मैं अमुक देश और समय में तुम्हारे शत्रु की छावनी पर आक्रमण करूंगा, तुमको भी आकर युद्ध करना चाहिए। जब वह स्वीकार करले-तो पूर्व कथन के अनुसार विजेता राजा की छावनी में घमसान युद्ध का नाटक दिखावे। इसे देखकर जब शत्रु राजा दुर्ग से बाहर आजावे, तो उसे भी मार डाला जावे ॥ ४९-५७ ॥

यद्वा मित्रमावाहयेत आटविकं वा, तमुत्साहयेत् ॥ ५८ ॥ विक्रम्य संरुद्धे भूमिमस्य प्रतिपद्यस्वेति ॥५६॥ विक्रान्तं प्रकृतिभिर्दूष्यमुख्योपग्रहेण वा घातयेत्, स्वयं वा रसेन ॥ ६० ॥ मित्रघातको ऽयमित्यवाप्तार्थः ॥ ६१ ॥ विक्रमितुकामं वा मित्रव्यञ्जनः परस्याभिशंसेत् ॥ ६२ ॥ आप्तभावोपगतः प्रवीरपुरुषानस्योपघातयेत् ॥ ६३ ॥ संधिं वा कृत्वा जनपदमेनं निवेशयेत् ॥ ६४ ॥ निविष्टमन्यजनपदमविज्ञातो हन्यात् ॥ ६५ ॥

विजयाभिलापी राजा, अपने शत्रु या किसी आटविक (वनचर भील) को बुलावे और उसे शत्रु के विरुद्ध उत्तेजित करे कि तुम इसपर चढ़ाई करके इसकी भूमि छीनलो। जब वह चढ़ाई करदे-तो उसके अमात्य या दूपित मुख्य सेनापति आदि के द्वारा तथा विप प्रयोग से मरवा देवे। यह मेरे मित्र का घातक था, इसको भगवान् ने स्वयं ही दण्ड दे दिया। इस प्रकार प्रसिद्ध करे। शत्रु का मित्र बना हुआ गुप्तचर, शत्रु राजा से कहे, अमुक राजा तुम्हारे ऊपर आक्रमण करना चाहता है। जब राजा उसपर विश्वास करले-तो समय २ पर वह उसके वीर पुरुषों को मरवाता रहे। अपने राजा या अन्य से सन्धि करवाकर इससे किसी देश को वसवावे। जब यह राजा अन्य देश में घुसे तो अनजान पुरुषों द्वारा इसे मरवा डाले ॥५८-६५॥

अपकारयित्वा दूष्याटविकेषु वा बलैकदेशमतिनीय दुर्गमवस्कन्देन हारयेत् ॥ ६६ ॥ दूष्यामित्राटविकद्वेष्यप्रत्यपसृताश्च कृतार्थमानसंज्ञाचिन्हाः परदुर्गमवस्कन्देयुः ॥६७ ॥ परदुर्गमवस्कन्द्य स्कन्धावारं वा पतितपराङ्मुखाभिपन्नमुक्तकेशशस्त्रभयविरूपेभ्यश्चाभयमयुध्मानेभ्यश्च दद्युः ॥६८॥ परदुर्गमवाप्य विशुद्धशत्रुपक्षः कृतोपांशुदण्डप्रतीकारमन्तर्बहिश्च प्रविशेत् ॥६९ ॥

अपने दूपित पुरुष या वनचर भीलों के अपकार का वहाना करके उनपर थोड़ी सी सेना लेकर चढ़ाई करदे और घेरा डालकर उनके दुर्ग छीन ले। इस समय अपने से भीतरी विगड़े हुए वीर, शत्रु, आटविक, अपने द्वेपी, शत्रु के पास जाकर लौटे हुए पुरुषों का मान और सत्कार करके पूर्वोक्त शत्रु के दुर्ग पर धावा करवावे। शत्रु के दुर्ग या छावनी को अपने अधीन करके रण भूमि में गिरे हुए, रण से विमुख, शरणागत, बिखरे वालों वाले, शस्त्रत्यागी, भयातुर और नहीं लड़ने वाले शत्रुओं को अभयदान देवे। जब राजा शत्रु के दुर्ग पर अधिकार करले-तो वह सबसे प्रथम शत्रु पक्ष के मनुष्यों को मार डाले तथा जिस का गुप-चुप वध करना कराना हो, उसे कर कराकर दुर्ग के वाहर घूमे या भीतर प्रवेश करे ॥६६-६९॥

एवं विजिगीषुरमित्रभूमिं लब्ध्वा मध्यमं लिप्सेत ॥ ७० ॥ तत्सिद्धावुदासीनम् ॥ ७१ ॥ एष प्रथमो मार्गः पृथिवींजेतुम् ॥ ७२ ॥ मध्यमोदासीनयोरभावे गुणातिशयेनारिप्रकृतीः साधयेत् ॥ ७३ ॥ तत उत्तराः प्रकृतीः ॥ ७४ ॥ एष द्वितीयो मार्गः ॥ ७५ ॥ मण्डलस्याभावे शत्रुणा मित्रं मित्रेण वा शत्रुमुभयतः संपीडनेन साधयेत् ॥६६ ॥ एष तृतीयो मार्गः ॥ ७७ ॥

इस प्रकार विजयेच्छुक राजा, शत्रु भूमि पर अधिकार करके मध्यम नृपति की भूमि पर आक्रमण करे। जब उसपर अधिकार हो जावे-तो उदासीन को जा दबावे। पृथ्वी के विजय करने का यह प्रथम मार्ग है। मध्यम और उदासीन के न होने पर अपने गुणों की अधिकता के कारण शत्रु की प्रकृति (अमात्य) को अपने वश में लावे। इसके अनन्तर उत्तर प्रकृति कोश सेना पर कब्जा करे। यह दूसरा मार्ग है। यदि मण्डल भी विरोधी न रहे-तो शत्रु द्वारा मित्र और मित्र द्वारा शत्रु को पीड़ा दिलाकर दबा देवे। यह तीसरा मार्ग है ॥ ७०-७७ ॥

शक्यमेकं वा सामन्तं साधयेत् ॥७८॥ तेन द्विगुणो द्वितीयं त्रिगुणस्तृतीयम् ॥ ७९ ॥ एष चतुर्थो मार्गः पृथिवीं जेतुम् ॥ ८० ॥ जित्वा च पृथिवीं विभक्तवर्णाश्रमां स्वधर्मेण भुञ्जीत ॥ ८१ ॥

विजेता इन सब झगड़ों को छोड़कर शक्तिशाली एक ही सामन्त को अपनी ओर कर लेवे। इससे दूसरे को वश में करके दुगुना और तीसरे को वश में करके तिगुना शक्तिशाली बन जावे। यह पृथ्वी के जीतने का चौथा मार्ग है। जब पृथ्वी अपने अधिकार में हो जावे-तो वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार धर्म पूर्वक उसका उपभोग करे ॥७८-८१॥

उपजापापसर्पौ च वामनं पर्युपासनम् ।
अवमर्दश्च पञ्चैते दुर्गलम्भस्य हेतवः ॥ ८२ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशेऽधिकरणे पर्युपासनकर्म, अवमर्दश्च चतुर्थोऽध्यायः आदितश्चतुश्चत्वारिंशच्छतः ॥ १४४ ॥

शत्रु के मनुष्यों में तोड़ फोड़, अपने गूढ़ पुरुषों के द्वारा शत्रु पक्ष का नाश, विष आदि विषम उपाय, शत्रु के दुर्ग का घेरा, तथा शत्रु के दुर्ग का कुचलना-ये पांच साधन शत्रु के दुर्ग के प्राप्त करने के उत्तम कारण माने गए हैं ॥ ८२ ॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत दुर्गलम्भोपाय अधिकरण में शत्रु के दुर्ग घेरने आदि के उपायों के वर्णन का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।



पांचवां अध्याय

१७६वां प्रकरण

लब्धप्रशमनम्

इस प्रकरण में जीते हुए प्रान्त में शान्ति स्थापन के ढ़ंगों का वर्णन किया जावेगा।

द्विविधं विजिगीषोः समुत्थानम् ॥ १ ॥ अटव्यादिकमेकग्रामादिकं च ॥ २ ॥ त्रिविधश्चास्य लम्भः ॥ ३ ॥ नवो भूतपूर्वः पित्र्य इति ॥ ४ ॥

विजयाभिलाषी राजा का उदय दो तरह का माना गया है-एक तो वन और दूसरा नगरों का उदय। विजेता के तीन लाभ माने गए हैं-एक तो नया लाभ, दूसरा अपना गया हुआ द्रव्य वापिस लेकर प्राप्त किया लाभ और तीसरा अपने पिता के समय में गई हुई भूमि आदि का लाभ ॥१-४॥

नवमवाप्य लाभं परदोषान्स्वगुणैश्छादयेत् गुणान्गुणद्वैगुण्येन ॥ ५ ॥ स्वधर्मकर्मानुग्रहपरिहारदानमानकर्मभिश्च प्रकृतिप्रियहितान्यनुवर्तेत ॥ ६ ॥ यथासंभाषितं कृत्यपक्षमुपग्राहयेत् ॥ ७ ॥ भूयश्च कृतप्रयासम् ॥ ८ ॥ अविश्वास्यो हि विसंवादकः स्वेषां परेषां च भवति प्रकृतिविरुद्धाचारश्च ॥ ९ ॥ तस्मात्समानशीलवेषभाषाचारतामुपगच्छेत् ॥ १० ॥ देशदैवतसमाजोत्सवविहारेषु च भक्तिमनुवर्तेत ॥ ११ ॥

नये लाभ को प्राप्त करके विजेता अपने गुणों से शत्रु के किये हुए दोषों को नष्ट करदे। तथा शत्रु में जो गुण की बातें हो-उन्हें अपने दुगुने गुण से दवादे। राजा अपने प्रजापालन आदि धर्म, यज्ञानुष्ठान आदि कर्म, प्रजा को सहायता आदि का अनुग्रह, अधिक करका परित्याग, उपहार, और सत्कार आदि कर्मों से प्रजा. प्रिय और हितकारी नरों को सन्तुष्ट वनाये रखे। अपने से कुपित हुए पक्ष को भी उनके वायदे पूरे करके अपने वश में रखे तथा जिसने राजा के निमित्त वहुत परिश्रम किया हो-उसे अधिक अधिकार या धन देवे। जो राजा प्रथम देने की कहकर फिर जव मुकर जाता है, तो वह अपने और पराये सवकी दृष्टि में पतित हो जाता है क्योंकि उसने अपनी प्रजा के विरुद्ध आचरण किया है। इन सव कारणों से राजा, अपनी प्रजा के अनुकूल वेष, भूषा, भाषा, और आचार स्वीकार करे। इसी तरह देश के देवता, समाज, उत्सव, और विहारों में सर्वदा सहयोग देते रहें ॥५-११॥

देशग्रामजातिसंघमुख्येषु चाभीक्ष्णं सत्त्रिणः परस्यापचारं दर्शयेयुः ॥१२॥ माहाभाग्यं भक्तिं च तेषु स्वामिनः स्वामिसत्कारं च विद्यमानम् ॥१३॥ उचितैश्चैनान्भोगपरिहाररक्षावेक्षणैः भुञ्जीत ॥ १४ ॥ सर्वदेवताश्रमपूजनं च विद्यावाक्यधर्मशूरपुरुषाणां च भूमिद्रव्यदानपरिहारान्कारयेत् ॥ १५ ॥ सर्वबन्धनमोक्षणमनुग्रहं दीनानाथव्याधितानां च ॥ १६ ॥ चातुर्मास्येष्वर्धमासिकमघातम् ॥ १७ ॥ पौर्णमासीषु च चातूरात्रिकम् ॥ १८ ॥ राजदेशनक्षत्रेष्वैकरात्रिकम् ॥ १९ ॥ योनिबालवधं पुंस्त्वोपघातं च प्रतिषेधयेत् ॥ २० ॥

विजेता के गुप्तचर, देश ग्राम और जातियों के मुख्य पुरुषों के सन्मुख सदा पूर्व राजा के बुरे व्यवहारों का वर्णन करते रहें; अपने स्वामी की उदारता, भक्ति को दिखलावे और वर्तमान काल में होने वाली सत्कार की भी प्रसिद्धि करें। उचित राज्य का कर, टैक्सों की मुआफी तथा रक्षा के उपायों के साथ राजा उस पृथ्वी का भोग करे। विजेता, सारे देवता और आश्रमों का पूजन करे। विद्वान, व्याख्याता, धार्मिक पुरुषों को भूमि द्रव्य का दान या कर की मुआफी कर देवे। विजेता राजा को सारे क़ैदी छोड़ना, दीन, अनाथ और रोगियों पर दया दिखानी चाहिए। चार महीने में पन्द्रह दिन किसी को फांसी न दी जावे; सारी पौर्णमासियों में चार पौर्णमासियों को भी प्राण दण्ड न हो। राज्य प्राप्ति या सिंहासन के नक्षत्र में भी प्राण दण्ड न दिया जावे। स्त्री जन्तु और बालक पशु का वध न हो, तथा किसी जीव का पुंस्त्व नाश न किया जावे ॥१२-२०॥

यच्च कोशदण्डोपघातिकमधर्मिष्ठं वा चरित्रं मन्येत तदपनीय धर्म्यव्यवहारं स्थापयेत् ॥ २१ ॥ चोरप्रकृतीनां म्लेच्छजातीनां च स्थानविपर्यासमनेकस्थं कारयेत् दुर्गराष्ट्रदण्डमुख्यानां च ॥२२॥ परोपगृहीतानां च मन्त्रिपुरोहितादीनां परस्य प्रत्यन्तेष्वनेकस्थं वासं कारयेत् ॥ २३ ॥ अपकारसमर्थाननुक्षियतो वा भर्तृविनाशमुपांशुदण्डेन प्रशमयेत् ॥ २४ ॥ स्वदेशीयान्वा परेण वावरुद्धानपवाहितस्थानेषु स्थापयेत् ॥२५॥ यश्च तत्कुलीनः प्रत्यादेयमादातुं शक्तः प्रत्यन्ताटवीस्थो वा प्रबाधितुमभिजातस्तस्मै विगुणां भूमिं प्रयच्छेत् ॥ २६ ॥

जो व्यवहार कोश और सेना का घातक और धर्महीन हो उसको हटाकर धर्म व्यवहार की स्थापना की जावे। चोरी का पेशा करने वाले तथा म्लेच्छों को इधर उधर बसाता रहे और दुर्ग राष्ट्र तथा सेना के मुख्य पुरुषों के भी स्थानों की बदली होती रहे। शत्रु से उपकार पाये हुए मन्त्री और पुरोहित आदि को शत्रु की सीमा के पास पृथक् २ वास करावे। जो अपकार करने में समर्थ राजा को मारना चाहते हों-उन्हें राजा गुपचुप मरवा

देवे। अपने देश के या शत्रु द्वारा बन्धन में डाले हुए पुरुषों को निकाले हुए शत्रु के साथी मनुष्यों के स्थानों पर राजा नियुक्त करे। यदि छीनी हुई भूमि को पूर्व राजा के बांधव छीनने में समर्थ हों या सीमा के समीप रहने वाले वनचर भील उसे छीन सकते हों-तो विजेता राजा उस भूमि का व्यर्थ का भाग देकर उन्हें शान्त कर देवे ॥ २१-२६ ॥

गुणवत्याश्चतुर्भागं वा कोशदण्डदानमवस्थाप्य, यदुपकुर्वाणः पौरजानपदान्कोपयेत् ॥ २७ ॥ कुपितैस्तैरेनं घातयेत् ॥ २८ ॥ प्रकृतिभिरुपक्रुष्टमपनयेत् ॥ २९ ॥ औपघातिके वा देशे निवेशयेदिति ॥ ३० ॥ भूतपूर्वं येन दोषेणापवृत्तस्तं प्रकृतिदोषं छादयेत् ॥ ३१ ॥ येन च गुणेनोपावृत्तस्तं तीव्रीकुर्यादिति ॥ ३२ ॥ पित्र्ये पितृदोषांश्छादयेत् ॥ ३३ ॥ गुणांश्च प्रकाशयेदिति ॥ ३४ ॥

यदि ये लोग कोश और सेना देना स्वीकार करें-तो इन्हें भूमि का उत्तम चतुर्थांश भाग भी दिया जा सकता है। इस कोश और सेना के संग्रह से इस पर देश और नगर निवासी कुपित हो उठेंगे। इन कुपित लोगों से फिर इसे मरवा देना चाहिए। यदि कोई अमात्य राजा की निन्दा करे-तो उसे उस पद से हटा दिया जावे या उसे मरवा देने योग्य प्रदेश में भेज दिया जावे। जिस दोष के कारण अपना राज्य प्रथम शत्रु के अधीन हुआ था उस दोष को न उभरने देवे। जिस गुण की लोग प्रशंसा करते हों-उसको और बढ़ाकर दिखावे। यदि पिता के दोष से राज्य हाथ से निकला था-तो पिता के दोषों को दबाया जावे और अपने पिता के गुणों को बढ़ाकर दिखाते रहना चाहिए॥ २७-३४ ॥

चरित्रमकृतं धर्म्यं कृतं चान्यैः प्रवर्तयेत्।
प्रवर्तयेन्न चाधर्म्यं कृतं चान्यैर्निवर्तयेत् ॥ ३५ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशेऽधिकरणे लब्धप्रशमनं पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥
आदितः पञ्चचत्वारिंशच्छतः ॥ १४५ ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य
दुर्गलम्भोपायस्त्रयोदशाधिकरणं समाप्तम् ॥ १३ ॥

जिन धर्म युक्त व्यवहारों का लोप हो गया हो-उनको विजेता प्रचलित करे। और जो धर्म व्यवहार किये जा रहे हों-उनको सहायता पहुंचावे। राजा अपनी ओर से अधर्म युक्त व्यवहारों को न होने दे और न अन्य द्वारा किये गए अधार्मिक व्यवहारों को फैलने देवे ॥३५॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत दुर्गलम्भोपाय अधिकरण में प्राप्त हुए राज्य में
शान्ति स्थापन के वर्णन का पांचवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ और यहीं पर
दुर्गलम्भोपाय नामक अधिकरण भी समाप्त हो गया।



औपनिषदिक चतुर्दशाधिकरणम्

प्रथम अध्याय

१७७वां प्रकरण

परघातप्रयोग।

इस प्रकरण में शत्रु के मारण के लिए औषधों के प्रयोगों का वर्णन किया जावेगा।

चातुर्वर्ण्यरक्षार्थमौपनिषिदिकमधर्मिष्ठेषु प्रयुञ्जीत ॥ १ ॥ कालकूटादिः विषवर्गः श्रद्धेयदेशवेषशिल्पभाजनापदेशैः कुब्जवामनकिरातमूकवधिरजडान्धच्छद्मभिः म्लेच्छजातीयैरभिप्रेतैः स्त्रीभिः पुंभिश्च परशरीरोपभोगेष्ववधातव्यः ॥ २ ॥ राजक्रीडाभाण्डनिधानद्रव्योपभोगेषु गूढाः शस्त्रनिधानं कुर्युः ॥ ३ ॥ सत्त्राजीविनश्च रात्रिचारिणो ऽग्निजीविनश्चाग्निनिधानम् ॥ ४ ॥

राजा को चाहिए, कि वह चारों वर्णों की रक्षा के निमित्त इन मन्त्र और औषधों के प्रयोगों को अधार्मिक लोगों में ही प्रयुक्त करे। श्रद्धा के योग्य देश, वेष, शिल्प और सुपात्रता का ढोंग बनाये हुए, कुबड़े, बौने, किरात, गूंगे, बहरे, मूर्ख, और अन्धों के रूप में विचरने वाले अपने अनुकूल म्लेच्छ स्त्री पुरुषों के द्वारा शत्रु के शरीर या भोजन में विजयाभिलाषी राजा कालकूट आदि विष समूह का प्रयोग करे। राजा के क्रीड़ागृह, वस्त्रालङ्कार आदि के रखने, तथा उपभोग के साधन इत्र आदि अन्य वस्तुओं के स्थानों में गुप्त तीक्ष्ण पुरुष, शस्त्रों को छुपाकर रख देवें और समय पर राजा पर प्रहार करके उसे मार देवे। घने जंगल आदि स्थानों में रात में घूमकर जीविका करने वाले या आग लगाने वाले गुप्तचर, शत्रु के स्थान में आग रख देवे ॥१-४॥

चित्रभेककौण्डिन्यककृकणपञ्चकुष्ठशतपदीचूर्णमुच्चिदिङ्गकंबलीशतकन्देध्म-कृकलासचूर्णं गृहगोलिकान्धाहिककृकणकपूतिकीटगोमारिकाचूर्णं भल्लातकावल्गु-कारसयुक्तं सद्यः प्राणहरमेतेषां वा धूमः ॥ ५ ॥

चितकबरा मेंढक, कौण्डिन्यक कीड़ा, जंगली तीतर, कूट जड़ी के पत्ते फूल आदि पांचों अङ्ग, कान खजूरा, इन सब चीजों के चूर्ण को मिलावा और बावची के रस में मिलाकर

खिला दिया जावे-या इनका धुंआ दे दिया जावे-तो यह फौरन प्राणों का नाश करता है। इसी तरह उच्चिदिङ्ग कीड़ा, कम्वली कीड़ा, शतावर, जमीकन्द, और किरकांट जन्तु के चूर्ण में भिलावा और वावची के रस की भावना देकर खिलाया या धुंआ दिया जावे-तो फौरन मृत्यु होती है। 'गृहगोलिका (छपकली) अन्धाहिक (दुमई सांप) कृकणक (जंगली तीतर) पूतिकीड़ा, गोमारिका (गाय खाते ही मर जावे भौंरी कीड़ा) के चूर्ण में भिलावा और वावची का रस मिलाकर मारण के लिए देवे या धुंआ दे-तो फौरन मृत्यु हो जावे ॥५॥

कोटो वान्यतमस्तप्तः कृष्णसर्पप्रियङ्गुभिः।
शोपयेदेप संयोगः सद्यः प्राणहरो मतः ॥ ६ ॥

उपर्युक्त जन्तुओं में किसी एक जन्तु को लेकर काले सांप और प्रियअंगु (कांगणी) के साथ पका लिया जावे और उसके तेल का प्रयोग नाक आदि के द्वारा मनुष्य के शरीर में कर दिया जावे, तो वह मनुष्य सूख २ कर मर जाता है ॥६॥

धामार्गवयातुधानमूलं भल्लातकपुष्पचूर्णयुक्तमार्धमासिकः ॥ ७ ॥ व्याघातकमूलं भल्लातकपुष्पचूर्णयुक्तं कीटयोगो मासिकः ॥ ८ ॥ कलामात्रं पुरुषाणां द्विगुणं खराश्वानां चतुर्गुणं हस्त्युष्ट्राणाम् ॥ ९ ॥

चिड़चिड़े और यातुधान नामक जड़ी की जड़ को भिलावे के फूलों के साथ मिला कर खिला दिया जावे-तो यह प्रयोग मनुष्य को पन्द्रह दिन में मार देता है। अमलतास की जड़, भिलावे के फूलों के चूर्ण के साथ मिलाकर उसमें उपर्युक्त किसी जन्तु को मिलाकर खिला दिया जावे-तो मनुष्य की एक मास में मृत्यु हो जावेगी। इस प्रयोग की पुरुषों को कला मात्रा, गधों घोड़ों को दो कला और हाथी तथा ऊंटों को चार कला देनी चाहिए ॥७-९॥

शतकर्दमोच्चिदिङ्गकरवीरकटुतुम्बीमत्स्यधूमो मदनकोद्रवपलालेन हस्तिकर्णपलाशपलालेन वा प्रवातानुवाते प्रणीतो यावच्चरति तावन्मारयति ॥ १० ॥

शतावरी, कपूर, अगर, कस्तूरी और कंकोल का घिसा हुआ लेप, उच्चिदिङ्ग, कनेर, कड़वी तुम्बी और मछली का धुंआ, धतूरा, कोदों और पलाल-धान की बाल के नीचे का तूड़ा (घास) अथवा धनिया, ढाक और पलाल (घास) के साथ हवा के रुख पर उड़ाया जावे तो वह जहां तक जावेगा-वहीं तक लोगों को मार देगा ॥१०॥

पूतिकीटमत्स्यकटुतुम्बीशतकर्दमेन्द्रगोपचूर्णं पूतिकीटक्षुद्रारालाहेमविदारीचूर्णं वा बस्तशृङ्गखुरचूर्णयुक्तमन्धीकरो धूमः ॥ ११ ॥

पूति कीट (कुछ २ कांटेदार कीड़ा मछली, कद्दू की तूम्बी, शतावर, कपूर; अगर आदि का लेप, इन्द्रगोप (वीरवहूटी) का चूर्ण अथवा पूतिकीट, छोटी कटेली, राल, धतूरा और विदारी कंद का चूर्ण यदि बकरे के सींग और खुर के साथ मिला दिया जावे-तो इन सब का धुंआ मनुष्यों को अन्धा बना देता है॥ ११॥

पूतिकरञ्जपत्रकहरितालमनःशिलागुञ्जारक्तकार्पासपललान्यास्फोटकाचगोशकृद्रसपिष्टमन्धीकरो धूमः ॥१२॥ सर्पनिर्मोकं गोश्वपुरीषमन्धाहिकशिरश्चान्धीकरो धूमः॥ १३ ॥

कांटेदार करंजुवा, पत्रक, हड़ताल, मैनशिल, रत्ती, लाल कपास और धान्य का काण्ड-इन सब चीजों को आख काच और गोबर के रस में पीसा जाकर धुंआ दी जावे-तो वह फौरन ही अन्धा बना देता है। सांप की कैंचुली, गोबर और घोड़े की लीद और विषरहित दुमुई सांप का शिर मिला कर धुंआ दी जावे-तो वह फौरन ही अन्धा कर देता है ॥१२-१३॥

पारावतप्लवकक्रव्यादानां हस्तिनरवराहाणां च मूत्रपुरीषं कासीसहिङ्गुयवतुषकणतण्डुलाः कार्पासकुटजकोशातकीनां च बीजानि गोमूत्रिकाभाण्डीमूलं निम्बशिग्रुफणिज्जकाक्षीवपीलुकभङ्गः सर्पशफरीचर्म हस्तिनखशृङ्गचूर्णमित्येष धूमो मदनकोद्रवपलालेन हस्तिकर्णपलाशपलालेन वा प्रणीतः प्रत्येकशो यावच्चरति तावन्मारयति ॥ १४ ॥

कबूतर, बतख, गीध, हाथी, मनुष्य और सूअर का मलमूत्र, कसीस, हींग जौ का छिलका, टूटे चावल, कपास, कुटज, कड़वी तोरई के बीज, गोमूत्रिका घास, मजीठ की जड़, नीम सैंजना, सफेद मरवा, काक्षीव वृक्ष, और पीलू-इन पांचों वृक्षों की छाल सांप और मछली की चर्वी, हाथी के नाखून और दांतों के चूरे का धुंआ धतूरा, कोदों और धान के पलाल या धनिया, ढाक और पलाल के साथ छोड़ा जावे-तो जहांतक पहुंचे वहांतक प्रत्येक मनुष्य को मार बैठेगा ॥ १४ ॥

कालीकुष्ठनडशतावरीमूलं सर्पप्रचलाककृकणपञ्चकुष्ठचूर्णं वा धूमः पूर्वकल्पेनार्द्रशुष्कपलालेन वा प्रणीतः संग्रामावतरणावस्कन्दनसंकुलेषु कृततेजनोदकाक्षिप्रतीकारैः प्रणीतः सर्वप्राणिनां नेत्रघ्नः ॥ १५ ॥

चकोतरा, कूठ, नरसल, और शतावरी, इन चीजों की जड़का; या सांप, मोर की पूंछ, जंगली तीतर, कूट के पांचों अंग ('कूट' एक वृक्ष का नाम है, उसके पत्ते फल फूल

छाल और जड़, ये पांच अंग कहे जाते हैं), इन सब चीजों के चूर्ण का पूर्वकल्प अर्थात् पहिले सूत्र में बतलाये हुए योग (धतूरा, कोदों, पलाल, या धनिया, पलाश, पलाल; देखो सूत्र १४) के साथ मिलाकर जो धुंआ बनाया जाता है; अथवा कुछ गीले और कुछ सूखे केवल पलाल (पुराल) के साथ जो धुंआ बनाया जाता है; संग्राम में उतरने और रात्रि के बलात्कार आक्रमण की भीड़ के समय में, तेजनोदक (देखो० अधि० १४, अध्या० ४, सूत्र १) के सहारे से आंखों का प्रतीकार किये हुए पुरुषों के द्वारा बनाया गया हुआ वह धुंआ, सब ही प्राणियों के नेत्रों को नष्ट कर डालता है। तात्पर्य यह है, कि इस उपर्युक्त धुएं का प्रयोग करते समय, प्रयोग करने वाले पुरुष इसके प्रतीकार का प्रयोग अपनी आंखों पर अवश्य करलें, नहीं तो उनकी भी आंखें नष्ट हो जावेंगी ॥१५॥

शारिकाकपोतबकबलाकालएडमर्काक्षिपीलुकस्नुहिक्षीरपिष्टमन्धीकरणमञ्जनमुदकदूषणं च ॥ १६ ॥

मैना, कबूतर, बगला और बगली, इन पक्षियों की विष्ठा को; आख [आक], अक्षी [सेंजने या बहेड़े की किसम का एक पेड़], पीलु, तथा सेंढ, इन चारों वृक्षों के दूध में पीसकर, अंजन तैयार किया जावे, यह अंजन प्राणियों के अन्धा करने वाला, तथा जल को दूषित करने वाला होता है ॥ १६ ॥

यवकशालिमूलमदनफलजातीपत्रनरमूत्रयोगः प्लक्षविदारीमूलयुक्तो मूकोदुम्बरमदनकोद्रवक्काथयुक्तो हस्तिकर्णपलाशक्काथयुक्तो वा मदनयोगः ॥ १७ ॥

यवक (जौ, अथवा जलपीपल) और शाली [धान] की जड़, मैनफल, चमेली, पत्रक, और नरमूत्र [आदमी का पेशाब] इन सब चीजों को मिलाकर, तथा इनमें पिलखन या लाख देने वाले पीपल और विदारी की जड़ का योग करके, अथवा मलिन जल में बने हुए गूलर धतूरा और कोदों के क्काथ का योग करके, अथवा धनियां और पलाश के क्काथ का योग करके, 'मदनयोग' तैयार हो जाता है। अर्थात् यह योग चित्त का उन्मादक चित्त को भ्रम में डालने वाला होता है ॥१७॥

शृङ्गिगौतमवृक्षकण्टकारमयूरपदीयोगो गुञ्जालाङ्गलीविषमूलिकेङ्गुदीयोगः करवीराक्षिपीलुकार्कमृगमारणीयोगो मदनकोद्रवक्काथयुक्तो हस्तिकर्णपलाशक्काथयुक्तो वा मदनयोगः ॥ १८ ॥ समस्ता वा यवसेन्धनोदकदूषणाः ॥१९॥

शृङ्गी नामकी मछलीका पित्ता (शृङ्गिगौतम), लोध, सिंभल और मोरशिखा (अजमोदी) इन चीजों का योग; तथा चौंटली (रत्ती), जलपीपल या नारियल कालकूट आदि विष और इंगुदी (हिंगनवेठ, या गोंदी। इन सब चीजों का योग; करवीर (कनेर)

अची [सैंजना या बहेड़े की किस्म का एक पेड़], पीलु, आक, मृगमारणी [मृग को मारने वाली कोई औषधि विशेष], इन सब चीजों का योग; धतूरा और कोदों को क्वाथ के साथ, अथवा धनिया और पलाश के क्वाथ के साथ 'मदनयोग' अर्थात् उन्माद कर देने वाला योग हो जाता है ॥ १८ ॥ अथवा ये सब ही मदनयोग, पशुओं के चारे, ईन्धन और जल को भी दूपित करने वाले होते हैं ॥१६॥

कृतकण्डलकृकलासगृहगोलिकान्धाहिकधूमो नेत्रवधमुन्मादं च करोति ॥ २० ॥ कृकलासगृहगोलिकायोगः कुष्ठकरः ॥ २१ ॥ स एव चित्रभेकान्त्रमधुयुक्तः प्रमेहमापादयति ॥ २२ ॥ मनुष्यलोहितयुक्तः शोषम् ॥ २३ ॥ दूषीविषं मदनकोद्रवचूर्णमुपजिह्विकायोगः मातृवाहकाञ्जलिकारप्रचलाकभेकाक्षिपीलुकयोगो विपूचिकाकरः ॥ २४ ॥ पञ्चकुष्ठककौण्डिन्यकराजवृक्षमधुपुष्पमधुयोगो ज्वरकरः ॥२५॥ भासनकुलजिह्वाग्रन्थिकायोगः खरीक्षीरपिष्टो मूकबधिरकरो मासार्धमासिकः ॥ २६ ॥ कलामात्रं पुरुषाणामिति समानं पूर्वेण ॥ २७ ॥ भङ्गक्काथोपनयनमौषधानां चूर्णं प्राणभृताम् ॥ २८ ॥ सर्वेषां वा क्काथोपनयनमेवं वीर्यवत्तरं भवति ॥ २६ ॥ इति योगसंपत् ॥ ३० ॥

कृतकण्डल, गिरगट, छिपकली और दुमई सर्पका धुआं दृष्टि का नाश कर देता है और पागल बना देता है। गिरगट और छिपकली को मिलाकर खिलाने या धुआं देनेसे कुष्ठ रोग हो जाता है यही योग चितकबरे में उसकी आंत और शहद में मिलाकर देने से प्रमेह रोग उत्पन्न कर देता है। यदि मनुष्य के लोहित से युक्त करके दिया जावे-तो इससे शोप [तपेदिक] रोग हो जावेगा। हीन शक्ति विष, धतूरा कोदो का चूर्ण, दीमक कीटके साथ मिलाकर बनाया हुआ योग [नुसखा] अथवा मातृ वाहक पक्षी, अञ्जलिकार ओपधि, मेंडक, अक्षिवृक्ष, पीलू की छाल के संयोग से बनाया हुआ योग विपूचिका [हैजे] को उत्पन्न करता है। कूट के पाचों अङ्ग, कौण्डिन्यक कीड़ा [जिसका मल मूत्र विषैला होता है गुहेरा] अमलतास, शहद, महुआ-इन सब को मिलाकर बनाया हुआ योग ज्वर उत्पन्न करता है। गीध, नेवला और मंजीठके योग को गधीके दूध में पीसा जावे। यह प्रयोग एक महिने या पन्द्रह दिन में मनुष्य को गूंगा और बहरा बना देता है। इन सबकी मनुष्य को एक कला, गधे घोड़े को दो कला, ऊंट हाथी को चार कला मात्रा होती हैं। उपर्युक्त सारे योगों में दवाओं को कूट छानकर और काथ बनाकर करना चाहिए और जन्तुओं का व्यवहार कूटपीस कर चूर्ण करके करना उचित है। इन सबका काथ बना लिया जावे -तो और भी उत्तम तेज योग बनता है। यहां तक औषधों के चमत्कार का वर्णन किया गया ॥२०-२६॥

शाल्मलीविदारीधान्यसिद्धो मूलवत्सनाभसंयुक्तश्चुचुन्दरीशोणितप्रलेपेन दिग्धो बाणो यं विध्यति स विद्धो ऽन्यान्दशपुरुषान्दशति ॥ ३१ ॥ ते दष्टाश्चान्यान्दशन्ति पुरुषान् ॥३२॥ भल्लातकयातुधानापामार्गबाणानां पुष्पैरेलकाक्षिगुग्गुलुहालाहलानां च कषायं बस्तनरशोणितयुक्तंदंशयोगः ॥ ३३ ॥ ततो ऽर्धधरणिको योगः सक्तुपिण्याकाभ्यामुदके प्रणीतो धनुःशतायाममुदकाशयं दूषयति ॥ ३४ ॥ मत्स्यपरम्परा ह्येतेन दष्टाभिमृष्टा वा विषीभवन्ति ॥ ३५ ॥ यश्चैतदुदकं पिबति स्पृशति वा ॥ ३६ ॥

सेमल, विदारीकन्द धनिया पीपलामूल और वत्सनाभ के संयोग से बनाया हुआ, और छछूंदर के रक्त से भीगा हुआ बाण, जिसके लगेगा-वह पुरुष दश को काट लेगा और फिर प्रत्येक मनुष्य दश २ को काटते जावेंगे। इस प्रकार यह पागल कुत्ते का सा विष सर्वत्र फैलेगा। भिलावा, यातु धान जड़ी, अपामार्ग [चिड़चिटा] और अर्जुन वृक्ष, के पुष्पों के साथ इलायची, अक्षि, गूगल और हलाहल विष का काढ़ा बकरे और मनुष्य के रक्त से संयुक्त कर दिया जावे-तो यह दंश योग बन जाता है। यह जिसके रक्त में मिल जावेगा-वही दश २ मनुष्यों को काटता चला जावेगा। इसी योग का आधा धारणिक प्रमाण योग, सत्तू और खल (पशु के खाने का तिलशेष) के साथ जल में मिल दिया जावे-तो वह सौ धनुष लम्बे चौड़े जलाशय को दूषित कर देता है। इस जल के संयोग और परस्पर काटने से उस तालाब की मछलियां भी जहरीली बन जाती हैं। जो इसका उदक पीता या छूता है-वह भी जहरीली प्रकृति का हो जाता है ॥३१-३६॥

रक्तश्वेतसर्षपैर्गोधा त्रिपक्षमुष्ट्रिकायां भूमौ निखातायां निहिता वध्येनोद्धृता यावत्पश्यति तावन्मारयति ॥ ३७ ॥ कृष्णसर्पो वा ॥ ३८ ॥

लाल और सफेद सरसों के साथ गोधा जन्तु को तीन पक्ष तक मिट्टी के बर्तन में भूमि में गढ्ढा खोद कर गाड़ देवे। अब जिसे मारना है, उसके द्वारा उसे खुदवाओ-तो वह ज्यों ही उसे देखेगा उसी वक्त मर जावेगा। काला सांप भी इस तरह रखा हुआ देखते ही मृत्यु जनक हो जाता है ॥ ३७-३८ ॥

विद्युत्प्रदग्धोऽङ्गारोऽज्वालो वा विद्युत्प्रदग्धैः काष्ठैर्गृहीतश्चानुवासितः कृत्तिकासु भरणीषु वा रौद्रेण कर्मणाभिहुतोऽग्निः प्रणीतश्च निष्प्रतीकारो दहति ॥३९॥

बिजली से जला हुआ अङ्गारा या कोयला बिजली से जली हुई लकड़ी के द्वारा प्रदीप्त करके कृत्तिका या भरणी नक्षत्र में रौद्र कर्म द्वारा उसमें हवन किया जावे

उस अग्नि को लेकर यदि कहीं लगा दिया जावे-तो वह अग्नि फिर पानी से नहीं बुझाई जा सकती है ॥ ३६ ॥

कर्मारादग्निमाहृत्य क्षौद्रेण जुहुयात्पृथक् ।
सुरया शौण्डिकादग्निं भार्ग्यायाग्निं घृतेन च ॥ ४० ॥
माल्येन चैकपत्न्यग्निं पुंश्चल्यग्निं च सर्षपैः ।
दध्ना च सूतिकास्वग्निमाहिताग्निं च तण्डुलैः ॥ ४१ ॥
चण्डालाग्निं च मांसेन चिताग्निं मानुषेण च ।
समस्तान्बस्तवसया मानुषेण ध्रुवेण च ॥ ४२ ॥
जुहुयादग्निमन्त्रेण राजवृक्षस्य दारुभिः ।
एष निष्प्रतिकारो ऽग्निर्द्विषतां नेत्रमोहनः ॥ ४३ ॥

कुम्हार के आवे से आग लाकर उसमें शहद, कलाल की भट्टी से आग लाकर उसमें सुरा, हलवाई की अग्नि में घृत, पतिव्रता के पास से लाई अग्नि में माला, वेश्या के घर की आग में सर्षप, सूतिका घर से लाई आग में दही, अग्नि होत्री की आग में चांवल पकावे, चण्डाल की अग्नि में मांस, चिता की अग्नि में मनुष्य मांस से हवन करे। इस के बाद इन सारी अग्नियों में बकरे की चर्बी और मनुष्य मांस तथा वड़ या साल की लकड़ी से हवन करे। अमल तास की लकड़ी और अग्नि के मन्त्रों के साथ भी हवन किया जावे-जब यह अग्नि तय्यार हो जावे, तो जहां यह लगाया जावेगा-वहां वह अग्नि विना भस्म किये शान्त नहीं होगा इस को देखते ही शत्रुओं की आँखें चुन्धिया जावेंगी ॥ ४०-४३ ॥

अदिते नमस्ते ॥ ४४ ॥ अनुमते नमस्ते ॥ ४५ ॥ सरस्वति नमस्ते ॥ ४६ ॥ सवितर्नमस्ते ॥ ४७ ॥ अग्नये स्वाहा ॥ ४८ ॥ सोमाय स्वाहा ॥ ४९ ॥ भूः स्वाहा ॥ ५० ॥ भुवः स्वाहा ॥ ५१ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशे ऽधिकरणे परघातप्रयोगः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥
आदितः षट्चत्वारिंशदुत्तरशतः ॥ १४६ ॥

इन उपर्युक्त मन्त्रों को हवन के समय उच्चारण करना चाहिए ॥ ४४-५१ ॥

इतिश्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत औपनिषदिक अधिकरण में शत्रु के मारण के प्रयोगों के वर्णन का पहला अध्याय समाप्त हुआ।



दूसरा अध्याय

१७८वाँ प्रकरण

प्रलम्भनम्

इस प्रकरण में औषधियों से भूख प्यास नष्ट करने, या आकृति परिवर्तन के द्वारा शत्रु को भूल भूलैय्या में डालने का वर्णन होगा।

शिरीषोदुम्बरशमीचूर्णं सर्पिषा संहृत्यार्धं मासिकः क्षुद्योगः ॥ १ ॥ कशेरुकोत्पलकन्देक्षुमूलबिसदूर्वाक्षीरघृतमण्डसिद्धो मासिकः ॥ २ ॥ माषयवकुलत्थदर्भमूलचूर्णं वा क्षीरघृताभ्याम् ॥ ३ ॥ वल्लीक्षीरघृतं वा समसिद्धं, सालपृश्निपर्णीमूलकल्कं पयसा पीत्वा ॥ ४ ॥ पयो वा तत्सिद्धं मधुघृताभ्यामशित्वा मासमुपवसति ॥ ५ ॥

सिरस, गूलर और छोंकरा के चूर्ण को घृत में मिलाकर खावे-तो पन्द्रह दिन तक भूख नहीं लगती है। कसेरु, कमल की जड़, गन्ने की जड़, कमल की डण्डी, दूब, दूध, घी तथा मांड़-इन सब चीजों को मिलाकर बनाया हुआ योग [नुसखा] एक महीने तक भूख नहीं लगने देता। उड़द, जौ, कुलथी, दाभ की जड़ का चूर्ण, दूध और घी के साथ मिलाकर खालेने तथा अजमोद को दूध और घी के साथ मिलाकर पी लेने एवं सालपर्णी और पृष्ठपर्णी अथवा अर्जुन जल पीपल या नारियल की जड़ के कल्क को दूध के साथ पीलेने पर भी महीने तक भूख नहीं लगती है। सालवन और पिठवन नामक पूर्वोक्त औषधियों के साथ पकाए हुए दूध को शहद और घृत के साथ खाने से महीने भर भूख से पीछा छुट जाता है॥ १-५॥

श्वेतवस्तमूत्रे सप्तरात्रोषितैः सिद्धार्थकैः सिद्धं तैलं कटुकालाबौ मासार्धमासस्थितं चतुष्पदद्विपदानां विरूपकरणम् ॥ ६ ॥ तक्रयवभक्तस्य सप्तरात्रादूर्ध्वं श्वेतगर्दभस्य लण्डयवैः सिद्धं गौरसर्षपतैलं विरूपकरणम् ॥ ७ ॥ एतयोरन्यतरस्य मूत्रलण्डरससिद्धं सिद्धार्थतैलमर्कतूलपतङ्गचूर्णप्रतिवापं श्वेतीकरणम् ॥ ८ ॥ श्वेतकुक्कुटाजगरलण्डयोगः श्वेतीकरणम् ॥ ९ ॥

सफेद बकरे के मूत्र में सात रात तक भीगी हुई सरसों का तेल निकाल कर उसे पन्द्रह दिन या महीने भर कड़ुवी तूंबी में रखे। इसको जिस मनुष्य या पक्षियों पर लगाया जावेगा-उनका दूसरा रंग दिखाई देने लगेगा। जौ की रोटी और छाछ सात रात तक

खाने के अनन्तर श्वेत गधे की लीद और जौ के साथ पकाया हुआ सरसों का तेल लगाने से मनुष्य की आकृति में फर्क पड़ जाता है। श्वेत बकरे या श्वेत गधे के मूत्र और मल के रस के साथ पकाया हुआ सरसों का तेल, आक, पारसपीपल [या आक की रूई] और धान के चूर्ण के साथ मिलाकर लगाने से मनुष्य श्वेत रंग का हो जाता है। सफ़ेद मुर्गा और अजगर सांप की विष्ठा मिलाकर तय्यार किया हुआ योग मनुष्य को श्वेत रंग का बना देता है ॥६-६॥

श्वेतबस्तमूत्रे श्वेतसर्षपाः सप्तरात्रोषितास्तक्रमर्कक्षीरमर्कतूलं कटुकमत्स्यविलङ्गाश्च, एष पक्षस्थितो योगः श्वेतीकरणम् ॥ १० ॥ समुद्रमण्डूकीशङ्खसुधाकदलीक्षारतक्रयोगः श्वेतीकरणम् ॥ ११ ॥ कदल्यवल्गुजक्षाररसशुक्ताः सुरायुक्तास्तक्रार्कतूलस्नुहिलवणं धान्याम्लं च पक्षस्थितो योगः श्वेतीकरणम् ॥ १२ ॥ कटुकालाबौ वल्लीगते नागरमर्धमासस्थितं गौरसर्षपपिष्टं रोम्णां श्वेतीकरणम् ॥ १३ ॥

सफेद बकरे के मूत्र में सफेद सरसों को सात रात तक भिगोया जावे। उसी तरह छाछ और आक के दूध में आक, पारसपीपल, [या आक की रूई] पटोल, [कडवा परवल] मत्स्य और वायविडङ्ग को मिलाकर पन्द्रह दिन रखा जावे। इस तेल के लगाने से भी मनुष्य का रंग श्वेत हो जाता है। समुद्र की मेंडकी, शंख, सुधा [कलई] केला, जवाखार और छाछ को मिलाकर पन्द्रह दिन रखा जावे और फिर मालिश की जावे-तो मनुष्य श्वेत रंग का हो जाता है केला, वावची, जवाखार पारा और खटाई [जम्बोरी का रस आदि] किसी वर्तन में शराब के साथ मिलाकर रख दिया जावे। फिर छाछ, आक पारसपीपल, (या आक की रूई) थूहर नमक तथा कांजी मिलाकर पन्द्रह दिन तक रख दिया जावे-तो इस योग के लगाने से मनुष्य का रंग सफेद हो जाता है वेल में लटकती हुई कडुवी तूंबी सौंठ में भरकर पन्द्रह दिन तक रखी जावे और फिर उसे सफेद सरसों के साथ पीसकर लगाया जावे, तो इससे वाल सफेद हो जावेंगे ॥१०-१३॥

अर्कतूलोऽर्जुने कीटः श्वेता च गृहगोलिका ।
एतेन पिष्टेनाभ्यक्ताः केशाः स्युः शङ्खपाण्डराः ॥ १४ ॥

आक की रूई, [या आक और पारसपीपल] अर्जुनवृक्ष का कीड़ा, सफेद छपकली इन सब चीजों को पीस कर वालों पर लगाया जावे-तो वाल शंख की भांति सफेद हो जाते हैं ॥१४॥

गोमयेन तिन्दुकारिष्टकल्केन वा मर्दिताङ्गस्य भल्लातकरसानुलिप्तस्य मासिकः कुष्ठयोगः ॥ १५ ॥ कृष्णसर्पमुखे गृहगोलिकामुखे वा सप्तरात्रोपिता गुञ्जाः कुष्ठयोगः ॥ १६ ॥ शुकपित्ताण्डरसाभ्यङ्गः कुष्ठयोग ॥ १७ ॥ कुष्ठस्य प्रियालकल्ककषायः प्रतीकारः ॥ १८ ॥

गोवर, तेंदुए के फल और नीम के पत्तों के कल्क को शरीर पर मलने के अनन्तर भिलावा का लेप कर देने से शरीर में एक महीने तक कोढ़ हो जाता है। काले सांप के मुख या छिपकली के मुख में सात रात तक गुञ्जा [रत्ती] रख देवे-इन गुञ्जाओं के स्वल्प मात्रा में खिलाने या लेप करने से कुष्ठ रोग हो जाता है। तोते के पित्ते को अण्डे की जर्दी के साथ मालिश करने पर भी कुष्ठ रोग होता है। इन सारे कुष्ठों को हटाना होतो चिरोंजी के कल्क का बनाया हुआ काढ़ा पिलाना चाहिए ॥१५-१८॥

कुक्कुटकोशातकीशतावरीमूलयुक्तमाहारयमाणो मासेन गौरो भवति ॥ १९ ॥ वटकषायस्नातः सहचरकल्कदिग्धः कृष्णो भवति ॥ २० ॥ शकुनकङ्गु-तैलयुक्ता हरितालमनःशिलाः श्यामीकरणम् ॥ २१ ॥

मुर्गा, कड़वी तोरई, शतावरी की जड़ को मिलाकर खाने वाला मनुष्य, एक महीने में गोरा निकल आता है। वड़ के कषाय, से स्नान करने तथा पिया वांसा के कल्क की मालिश करने से मनुष्य काला हो जाता है। गीधपक्षी का मांस, कांगनी, का तेल, हड़ताल और मनसिल भी मनुष्य को काला बना देती है ॥१९-२१॥

खद्योतचूर्णं सर्षपतैलयुक्तं रात्रौ ज्वलति ॥ २२ ॥ खद्योतगण्डूपदचूर्णं समुद्रजन्तूनां भृङ्गकपालानां खदिरकर्णिकाराणां पुष्पचूर्णं वा शकुनकङ्गुतैलयुक्तं तेजनचूर्णम् पारिभद्रकत्वङ्मषी मण्डूकवसया युक्ता गात्रप्रज्वालनमग्निना ॥२३॥

खद्योत [जुगनू] जन्तु का चूरा, सरसों के तेल में मिलाने पर रात में जलने लगता है। जुगनूं और केंचुआ तथा समुद्र के जन्तु मस्तकचूड़, जन्तु, के शिर की हड्डियों का चूरा, खैर और कनेर के फलों का चूर्ण, गीध और कांगनी के तेल से युक्त वांस का चूर्ण, मेंढक की चर्बी के साथ नीम की छाल की स्याही, का बना हुआ योग, शरीर में अग्नि प्रज्वलित कर देता है ॥२२-२३।

पारिभद्रकत्वग्वज्रकदलीतिलकल्कप्रदिग्धं शरीरमग्निना ज्वलति ॥ २४ ॥ पीलुत्वङ्मषीमयः पिण्डो हस्ते ज्वलति ॥ २५ ॥ मण्डूकवसादिग्धो ऽग्निना

ज्वलति ॥ २६ ॥ तेन प्रदिग्धमङ्गंकुशाम्रफलतैलसिक्तं समुद्रमण्डूकीफेनकसर्जरसचूर्णयुक्तं वा ज्वलति ॥ २७ ॥ मण्डूकवसासिद्धेन पयसा कुलीरादीनां वसया समभागं तैलं सिद्धमभ्यङ्गो गात्राणामग्निप्रज्वालनम् ॥ २८ ॥ मण्डूकवसोदिग्धोऽग्निना ज्वलति ॥ २९॥ वेणुमूलशैवललिप्तमङ्गं मण्डूकवसादिग्धमग्निना ज्वलति ॥ ३० ॥ पारिभद्रकप्रतिबलावञ्जुलवज्रकदलीमूलकल्केन मण्डूकवसादिग्धेन तैलेनाभ्यक्तपादो ऽङ्गारेषु गच्छति ॥ ३१ ।

नीम की छाल, थोहर, कदली और तिल के कल्क से लिपटा हुआ शरीर अग्नि लगाने पर जलने लगता है, परन्तु बाधा नहीं होती । पीलू वृक्ष की छाल की स्याही से बना हुआ गोला हाथ पर जलाया जा सकता है। मेंडक की चर्बी के साथ शरीर पर लेप करने से पीलू वृक्ष की त्वचा अग्नि के लगाने पर जलने लगती है और बाधा नहीं होती। पीलू की त्वचा और मेंडक की चर्बी तथा कुशा और आम के फल को तेल में भिगोकर बनाया हुआ योग, एवं समुद्र की मेंडकी समुद्र का झाग, राल इनके चूर्ण से युक्त योग शरीर पर लगाने पर आग से जलने लगता है । मेंडक की चर्बी के साथ पके हुए दूध तथा केंकड़े आदि की चर्बी में मिला हुआ बराबर का तेल, शरीर पर मालिश करके आग लगाने पर जलने लग जाता है। केवल मेंडक की चर्बी लगाकर आग लगाने पर भी शरीर जलता ही रहेगा, पर बाधा नहीं होगी। बांस की जड़ और शिवाल [सेवाल] से लपेटे हुए अङ्ग पर मेंडक की चर्बी, लपेट कर आग लगाने पर शरीर प्रदीप्त हो जाता है। नीम खरेटी, बेंत, थोहर, केला, इन सब वृक्षों की जड़ का कल्क बनाकर और उसमें मेंडक की चर्बी मिलाकर तेल बनावे-उस तेल की पैरों में मालिश करके मनुष्य, अङ्गारों पर चल सकता है ॥२६-३१॥

उपोदका प्रतिबला वञ्जुलः पारिभद्रकः ।
एतेषां मूलकल्केन मण्डूकवसया सह ॥ ३२ ॥
साधयेत्तैलमेतेन पादावभ्यज्य निर्मलौ ।
अङ्गारराशौ विचरेद्यथा कुसुमसंचये ॥ ३३ ॥

पोदीना, खरेटी, बेंत, नीम, इन वृक्षों की मूल का कल्क बनाकर उसमें मेंडक की चर्बी मिला दी जावे । इनसे पकाये हुए तेल का पैर धोकर मालिश करने से मनुष्य, आग के अंगारों पर, फूलों की ढेरी पर चलने की तरह चल सकता है ॥३२-३३॥

हंसक्रौञ्चमयूराणामन्येषां वा महाशकुनीनामुदकप्लवानां पुच्छेषु बद्धा नलदीपिका रात्रावुल्कादर्शनम् ॥ ३४ ॥ वैद्युतं भस्माग्निशमनम् ॥ ३५ ॥ स्त्रीपुष्प-

पायिता माषा व्रजकुलीमूलमण्डूकवसामिश्रं चुल्ल्यां दीप्तायामपाचनम् ॥३६॥ चुल्लीशोधनं प्रतीकारः ॥ ३७ ॥ पीलुमयो मणिरग्निगर्भः सुवर्चलामूलग्रन्थिः सूत्रग्रन्थिर्वा पिचुपरिवेष्टितो मुखादग्निधूमोत्सर्गः ॥ ३८ ॥ कुशाम्रफलतैलसिक्तोऽग्निर्वर्षप्रवातेषु ज्वलति ॥ ३९ ॥

हंस, कुंज, मोर अथवा अन्य जल में तैरने वाले, पक्षियों की पूंछ में बंधी नरसल पर लगाई हुई बत्ती रात में उल्कासी चमकती है। बिजली से जले हुए वृक्ष आदि की भस्म अग्नि को बुझा देती है। स्त्री के रज में भिगोये हुए उड़द, और गाय के गाठे में उत्पन्न कटेली की जड़ में मेंडक की चर्बी मिलाकर जलते चूल्हे पर चढ़ा देने से भी उड़द नहीं पकेंगे। चूल्हे से उतारकर धो लेने पर फिर वे पक जावेंगे। पीलू की लकड़ी से बनाया हुआ मटका अग्नि को फौरन पकड़ लेता है। अलसी की जड़ की गांठ या उसके सूतों की गांठ, रूई से लिपटी हुई, मुंह से आग निकालने का साधन बन जाती है। कुशा, आम के फल, और तेल के सहारे से जलाई हुई आग, आंधी और वर्षा में भी जलती रहती है ॥३४-३९॥

समुद्रफेनकस्तैलयुक्तो ऽम्भसि प्लवमानो ज्वलति ॥ ४० ॥ प्लवङ्गमानामस्थिषु कल्माषवेणुना निर्मथितो ऽग्निर्नोदकेन शाम्यत्यु दकेन च ज्वलति ॥४१॥ शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुरुषस्य वामपार्श्वपर्शुकास्थिषु कल्माषवेणुना निर्मथितोऽग्निर्यत्र त्रिरपसव्यं गच्छति न चात्रान्योऽग्निर्ज्वलति ॥ ४२ ॥

समुद्र झाग, तेल में पकाया हुआ पानी में तैरता हुआ भी जलता रहता है। बन्दर की हड्डियों में चित्रवर्ण के बांस की आग, पानी से शान्त नहीं होती, प्रत्युत अधिक जलती है। शस्त्र से मारे गये या शूली पर चढ़ाये गए, पुरुष के वाम पार्श्व की पसली की हड्डियों में कल्माष बांस की लकड़ी से मथकर निकाली हुई आग, जहां तीन चार घुमादी जावे- वहां अन्य आग नहीं जल सकती है ॥४०-४२॥

चुचुन्दरी खञ्जरीटः खारकीटश्च पिष्यते।
अश्वमूत्रेण संसृष्टा निगलानां तु भञ्जनम् ॥ ४३ ॥
अयस्कान्तो वा पाषाणः ॥ ४४ ॥

छछूंदर खञ्जरीट, खारकीट, जन्तुओं को अश्व के मूत्र में पीस लिया जावे। यदि इसका सांकलों पर लेप कर दिया जावे तो उनके टुकड़े २ उड़ जावेंगे। अयस्कान्त (चम्बक) पत्थर भी सांकलों को तोड़ देता है ॥४३-४४॥

कुलीराण्डदर्दुरखारकीटवसाप्रदेहेन द्विगुणो दारकगर्भः कङ्कभासपार्श्वोत्पलोदकपिष्टश्चतुष्पदद्विपदानां पादलेपः, उलूकगृध्रवसाभ्यामुष्ट्रचर्मोपानहावभ्यज्य वटपत्रैः प्रतिच्छाद्य पञ्चाशद्योजनान्यश्रान्तो गच्छति ॥ ४५ ॥ श्येनकङ्ककाकगृध्रहंसक्रौञ्चवीचिरल्लानां मज्जानो रेतांसि वा योजनशताय ॥ ४६ ॥ सिंहव्याघ्रद्वीपिकाकोलूकानां मज्जानो रेतांसि वा सार्ववर्णिकानि गर्भपतनान्युष्ट्रिकायामभिषूय श्मशाने प्रेतशिशून्वा तत्समुत्थितं मेदो योजनशताय ॥४७॥

केंकड़े के अण्डे, मैंडक और खारकीट की चर्बी से दुगुने अण्डे तथा कङ्क, गीध, की पसलियों को कमल के जल से पीसकर चौपायों या पक्षियों पर लेप कर दिया जावे, और उल्लू तथा गीध की चर्बी से लिपटी हुए ऊंट के चमड़े की वनी हुई जूतियों को पहन लिया जावे-तो मनुष्य पचास योजन जा सकता है। बाज़ कंक, कौआ, गीध, हंस कुंज, की वीचिरल्ल जन्तुओं की चर्बी और उनके वीर्य को मिलाकर पैरों पर लेप करने और जूतियों के चुपड़ने पर मनुष्य सौ योजन जा सकता है। सिंह, व्याघ्र, गैंडा, कौआ, उल्लू की चर्बी और वीर्य तथा किसी भी वर्ण के गिरे हुए गर्भों को मिट्टी के पात्र में भरकर रख देवे और फिर उनका अर्क निकाल ले अथवा श्मशान में मरे बच्चों की चर्बी या उनका अर्क निकालकर उसे अपने पैरों में मलकर चले-तो मनुष्य सौ योजन जा सकता है ॥४५-४७॥

अनिष्टैरद्भुतोत्पातैः परस्योद्वेगमाचरेत् ।
अराज्यायेति निर्वादः समानः कोपः उच्यते ॥ ४८ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशे ऽधिकरणे प्रलम्भने अद्भुतोत्पादनं द्वितीयो ऽध्यायः॥२॥
आदितः सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतः ॥ १४७ ॥

इस प्रकार के अनेक अनिष्टकारी, अद्भुत उत्पातों से, राजा, शत्रु को बेचैन कर देवे। ये बातें शत्रु के राज्य में हलचल कर देने के लिए पर्याप्त हैं। कोप होने पर अपने मान की रक्षा के निमित्त यह सब कुछ करना ही पड़ता है ॥४८॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत औपनिषदिक अधिकरण में शत्रु राजा के अचम्भित करने का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।



तीसरा अध्याय

१७८वां प्रकरण

प्रलम्भने भैषज्यमन्त्रयोगः ।

इस प्रकरण में अब औषध और मन्त्रों के विधान का वर्णन होगा.

मार्जारोष्ट्रवृकवराहश्वाविद्वागुलीनप्तृकाकोलूकानामन्येषां वा निशाचराणां सत्त्वानामेकस्य द्वयोर्बहूनां वा दक्षिणानि कामानि वाक्षीणि गृहीत्वा द्विधा चूर्णं कारयेत् ॥ १ ॥ ततो दक्षिणं वामेन वामं दक्षिणेन समभ्यज्य रात्रौ तमसि च पश्यति ॥ २ ॥

बिलाव, ऊंट, भेड़िया, शूकर, सेह, बगली, नप्ता (पक्षि विशेष) कौआ और उल्लू अथवा रात में घूमने वाले अन्य जन्तुओं में से किसी एक या दो या बहुतों की दांयी और बांयी दोनों आंखें लेकर उनको पृथक् २ कूट पीसले। इसके बाद बांई आंख के चूर्ण को अपनी दांई और दांई आंख के चूर्ण को अपनी बांई आंख में आंजे तो मनुष्य रात में अन्धेरे में भी देख सकता है ॥१-२॥

एकाम्लकं वराहाक्षि खद्योतः कालशारिवा ।
एतेनाभ्यक्तनयनो रात्रौ रूपाणि पश्यति ॥ ३ ॥

एक बड़हल फल, सूअर की आंख जुगनू तथा काला शारिवा-इन सब औषधियों को मिलाकर आंख में आंजने से मनुष्य रात में भी रूप देख सकता है ॥३॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्ये शस्त्रहतस्यशूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरःकपाले मृत्तिकायां यवानावास्याविक्षीरेण सेचयेत् ॥ ४ ॥ ततो यवविरूढमालामाबद्ध्य नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ ५ ॥ त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण श्वमार्जारोलूकवागुलीनां दक्षिणानि वामानि चाक्षीणि द्विधा चूर्णं कारयेत् ॥ ६ ॥ ततो यथास्वमभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ ७ ॥

शस्त्र से मारे हुए या शूली पर चढ़ाये हुए पुरुष की खोपड़ी में मिट्टी डालकर पुष्य नक्षत्र में तीन दिन का व्रतधारी पुरुष जौ बो देवे और उन्हें भेड़ के दूध से सींचे। इसके अनन्तर उसमें से उत्पन्न हरे भरे जौओं के शस्य की माला गूंथ कर जो पुरुष पहन लेता है, वह किसी को दिखाई नहीं पड़ता। तीन दिन व्रत धारण करने के अनन्तर पुरुष, पुष्य नक्षत्र में कुत्ता बिल्ली, उल्लू और वागली-इन चारों जीवों को दांई

बांई आंख अलग २ कूट छानले। इनको जिस किसी तरह भी मनुष्य, अपनी आंख में आंजले-तो वह किसी को भी दिखाई न देकर घूम सकता है ॥४-७॥

त्रिरात्रोपोपितः पुष्येण पुरुषघातिनः काण्डकस्य शलाकामञ्जनीं च कारयेत् ॥ ८ ॥ ततोऽन्यतमेनाक्षिचूर्णेनाभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ ९ ॥ त्रिरात्रोपोपितः पुष्येण कालायसीमञ्जनीं शलाकां च कारयेत् ॥ १० ॥ ततो निशाचराणां सत्त्वानामन्यतमस्य शिरः कपालमञ्जनेन पूरयित्वा मृतायाः स्त्रिया योनौ प्रवेश्य दाहयेत् ॥ ११ ॥ तदञ्जनं पुष्येणोद्धृत्य तस्यामञ्जन्यां निदध्यात् ॥ १२ ॥ तेनाभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ १३ ॥

तीन दिन का व्रतधारी पुरुप, पुष्य नक्षत्र में पुरुप के मार देने वाले किसी वाण की शलाका और सुरमादानी वना लेवे इसके वाद पूर्वोक्त जीवों की आंखों के चूर्ण को इस सलाई से डाले तो पुरुप किसी को दिखाई न देवे। तीन रात तक व्रत रख के पुरुष, पुष्यनक्षत्र में फौलाद लोहे की सलाई वनवावे। तदनन्तर रात में घूमने चमगादड़ आदि किसी जन्तु की खोपड़ी समेत शिर में अञ्जन भरकर मरी स्त्री की योनि में रखकर जला लेवे। उस अञ्जन को पुष्यनक्षत्र में निकाल कर उसी सुरमादानी में रखे। इस अञ्जन के लगाने से भी पुरुप की छाया और रूप नष्ट हो जाता है ॥८-१३॥

यत्र ब्राह्मणमाहिताग्निं दग्धं दह्यमानं वा पश्येत्तत्र त्रिरात्रोपोपितः पुष्येण स्वयंमृतस्य वाससा प्रसेवं कृत्वा चिताभस्मना पूरयित्वा तमावध्य नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ १४ ॥ ब्राह्मणस्य प्रेतकार्ये या गौः मार्यते तस्या अस्थिमज्जाचूर्णपूर्णाहिभस्त्रा पशूनामन्तर्धानम् ॥ १५ ॥ सर्पदष्टस्य भस्मना पूर्णा प्रचलाकभस्त्रा मृगाणामन्तर्धानम् ॥ १६ ॥ उलूकवागुलीपुच्छपुरीपजान्वस्थिचूर्णपूर्णाहिभस्त्रा पक्षिणामन्तर्धानम् ॥ १७ ॥ इत्यष्टावन्तर्धानयोगाः ॥ १८ ॥

जिस श्मशान में अग्नि होत्री जलाया गया या जलाया जा रहा हो-वहां पर तीन दिन व्रत रखकर पुरुप, स्वयं मरे हुए पुरुप के कफन की पोटली वनावे और उसे फिर चिता को भस्म से भरकर अपने शरीर में बांध लेवे-तो मनुष्य दिखाई नहीं पड़ेगा। ब्राह्मण के प्रेतकार्य में जो गौ मारी जाती है, उसकी हड्डी और मज्जा का चूर्ण, सांप की कंचुली में भर दिया जावे। यह कांचुली जिस पशुके बांध दी जावेगी वह दिखाई नहीं देगा। सर्प के काटे हुए पुरुप की चिता की भस्म से भरी हुई मोर पंख की थैली जिस किसी वनैले जन्तु के बांध दी जावेगी वह दिखाई नहीं देगा। उल्लू और वागली की पूंछ,

विष्ठा, जानु (टांग) और हड्डियों के चूर्ण को सांप की कांचुली में भर दिया जावे और यह कांचुली किसी पक्षी के गले में बांध दी जावे-तो वह दिखाई नहीं देगा। यहां तक दिखाई नहीं देने के आठ योगों का वर्णन किया गया ॥१४-१८॥

बलिं वैरोचनं वन्दे शतमायं च शम्बरम् ।
भण्डीरपाकं नरकं निकुम्भं कुम्भमेव च ॥ १६ ॥
देवलं नारदं वन्दे वन्दे सावर्णिगालवम् ।
एतेषामनुयोगेन कृतं ते स्वापनं महत् ॥ २० ॥
यथा स्वपन्त्यजगराः स्वपन्त्यपि चमूखलाः ।
तथा स्वपन्तु पुरुषा ये च ग्रामे कुतूहलाः ॥ २१ ॥
भण्डकानां सहस्रेण रथनेमिशतेन च ।
इमं गृहं प्रवेक्ष्यामि तूष्णीमासन्तु भाण्डकाः ॥ २२ ॥
नमस्कृत्वा च मनवे बध्वा शुनकफेलकाः ।
ये देवा देवलोकेषु मानुषेषु च ब्राह्मणाः ॥ २३ ॥
अध्ययनपारगाः सिद्धा ये च कैलासतापसाः ।
एतेभ्यः सर्वसिद्धेभ्यः कृतं ते स्वापनं महत् ॥ २४ ॥
अतिगच्छति च मय्यपगच्छन्तु संहताः ॥ २५ ॥
अलिते पलिते मनवे स्वाहा ॥ २६ ॥

अब मन्त्र योग का वर्णन चलता है। ये आठ मन्त्र हैं। इन के प्रयोग की विधि आगे साथ ही दी है। मैं विरोचन पुत्र वलि और सैंकड़ों माया करने वाले शम्बर भण्डीर पाक, नरक, निकुम्भ और कुम्भ बन्दना करता हूँ। देवल, नारद, सावर्णि, गालव आदि ऋषि मुनियों की वन्दना करता हूं, जिनके योग से तुम्हारा यह महान् शयन सिद्ध हो, जैसे अजगर और चमूखल (जन्तु) सोते रहते हैं। तथा गांव के सांगी सोते हैं। वैसे ही तुम भी सोते रहो। मैं सहस्रों राक्षसों तथा सैंकड़ों रथों को साथ लेकर इस घर में घुसता हूं। तुम यहां के भाण्डक नामक राक्षस चुपचाप रहो। मनु को नमस्कार करके और शुनक और फेलक नामक राक्षसों को बांधकर इस घर में घुसता हूं। जो देव लोक में देव, मनुष्यों में अध्ययन शील ब्राह्मण, कैलाश पर्वत पर रहने वाले सिद्ध तपस्वी हैं, इन सारे सिद्धों से तुम्हारे इस गाढ़े शयन को सिद्ध करना चाहता हूँ। मेरे गमन करने पर ये सब भाग जावें। अब अलित पलित रूपधारी मनुको बलि प्रदान करते हैं। इन मन्त्रों के अर्थ का उपयोग नहीं है-इनके तो पाठ से ही श्रद्धालुओं ने सिद्धि मानी है। ॥ १९-२६ ॥

एतस्य प्रयोगः—॥ २७ ॥ त्रिरात्रोपोषितः कृष्णचतुर्दश्यां पुष्ययोगिन्यां श्वपाकीहस्ताद्विलखावलेखनं क्रीणीयात् ॥ २८ ॥ तन्माषैः सह कण्डोलिकायां कृत्वासङ्कीर्ण आदहने निखानयेत् ॥ २९ ॥ द्वितीयस्यां चतुर्दश्यामुद्धृत्य कुमार्या पेषयित्वा गुलिकाः कारयेत् ॥ ३० ॥ तत एकां गुलिकामभिमन्त्रयित्वा यत्रैतेन मन्त्रेण क्षिपति तत्सर्वं प्रस्वापयति ॥ ३१ ॥ एतेनैव कल्पेन श्वाविधः शल्यकं त्रिकालं त्रिश्वेतमसङ्कीर्ण आदहने निखानयेत ॥ ३२ ॥ द्वितीयस्यां चतुर्दश्यामुद्धृत्य दहनभस्मना सह यत्रैतेन मन्त्रेण क्षिपति तत्सर्वं प्रस्वापयति ॥ ३३ ॥

इस मन्त्र समूह के प्रयोग का यह प्रकार है। जो कोई पुरुष तीन का रात व्रत रख कर पुष्य नक्षत्र से युक्त कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में चाण्डाली के हाथ से चूहे का टुकड़ा खरीद लेवे। उसको उड़दों में रखकर खुले श्मशान में गड्ढा खोदकर पिटारी में गाड़ देवे। जब दूसरी चतुर्दशी आवे-तो उसे उखाड़कर कुमारी कन्या से पिसवाकर इसकी गोली बनवा लेवे। इसके अनन्तर एक गोली को इन मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके इन्हीं मन्त्रों के द्वारा जहां डालोगे वहां सब लोग सो जावेगें। पूर्वोक्त प्रकार से तीन दिन व्रत करके पुष्य नक्षत्र यदि मास की कृष्ण चतुर्दशी को तीन जगह सेही जन्तु के काले कांटे और तीन जगह से सफेद कांटे लेकर खुले श्मशान में गाड़ देवे। जब दूसरी चतुर्दशी आवे-तो उसमें उखाड़कर चिता भस्म के साथ जहां कांटों को इन्ही मन्त्रों के द्वारा फैंक देता है-तो वहां वह सबको सुला देता है ॥२७-३३॥

सुवर्णपुष्पीं ब्रह्माणीं ब्रह्माणं च कुशध्वजम् ।
सर्वाश्च देवता वन्दे वन्दे सर्वांश्च तापसान् ॥ ३४ ॥
वशं मे ब्राह्मणा यान्तु भूमिपालाश्च क्षत्रियाः ।
वशं वैश्याश्च शूद्राश्च वशतां यान्तु मे सदा ॥ ३५ ॥

स्वाहा अमिले किमिले वयुजारे प्रयोगे फक्के वयुश्वे विहाले दन्तकटके स्वाहा ॥ ३६ ॥

सुखं स्वपन्तु शुनका ये च ग्रामे कुतूहलाः ।
श्वाविधः शल्यकं चैतत्त्रिश्वेतं ब्रह्मनिर्मितम् ॥ ३७ ॥
प्रसुप्ताः सर्वसिद्धा हि एतत्ते स्वापनं कृतम् ।
यावद्ग्रामस्य सीमान्तः सूर्यस्योद्गमनादिति ॥ ३८ ॥
स्वाहा ॥ ३९ ॥

अब दूसरे मन्त्रों को लिखा जाता है सुवर्ण पुष्पी ब्रह्माणी, ब्रह्मा, कुश ध्वजा तथा सारे देवता और तपस्वियों को मैं वन्दना करता हूं। मेरे वश में ब्राह्मण भूमिपालक क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-ये सारे वश में हो जावे। इस प्रस्वापन प्रयोग में अमिल किमिल नामक देवताओं को स्वाहा प्राप्त हो, इसी तरह फक्क, वयुरव, विशाल, और दन्तकटंक देवता को भी स्वाहा समर्पित है। गांव के कुत्ते सुख से सो जावे तथा जो रात में तमाशा करते हैं, वें भी सुख से सोवें, यह ब्रह्मा निर्मित सेह जन्तु का तीन स्थान से श्वेत कांटा है-यह तुम्हारा स्वापन कर देगा। इसके द्वारा सारे सिद्ध सो चुके हैं तथा सूर्य के उद्गमन स्थान से लेकर अस्त तक यह सबको सुला सकता है। इसके देवता को स्वाहा प्राप्त हो ॥३४-३६॥

एतस्य प्रयोगः—॥ ४० ॥ श्वाविधः शल्यकानि त्रिश्वेतानि सप्तरात्रोपितः कृष्णाचतुर्दश्यां खादिराभिः समिधाभिरग्निमेतेन मन्त्रेणाष्टशतसंपातं कृत्वा मधुघृताभ्यामभिजुहुयात् ॥ ४१ ॥ तत एकमेतेन मन्त्रेण ग्रामद्वारि गृहद्वारि वा यत्र निखन्यते तत्सर्वं प्रस्वापयति ॥ ४२ ॥

इन उपर्युक्त मन्त्रों के प्रयोग की यह विधि है, कि सेह जन्तु के तीन स्थान से श्वेत कांटे लेकर सात दिन उपवास करके खुले शमशान में पूर्ववत् गाड़ देवे। फिर कृष्ण चतुर्दशी में खदिर (खैर) की समिधा लेकर उनमें आग लगावे और इन मन्त्रों द्वारा घृत और शहद का एक सौ आठ बार हवन करे। इन कांटों में से एक लेकर इन मन्त्रों के द्वारा ग्राम के द्वार या घर के द्वार पर जहां गाड़ दिया जावेगा-वहां सारे गांव या सारे घर को सुला देगा॥ ४०-४२ ॥

बलिं वैरोचनं वन्दे शतमायं च शम्बरम्।
निकुम्भं नरकं कुम्भं तन्तुकच्छं महासुरम् ॥ ४३ ॥
अर्मालवं प्रमीलं च मण्डोलूकं घटोद्बलम्।
कृष्णकंसोपचारं च पौलोमीं च यशस्विनीम् ॥ ४४ ॥
अभिमन्त्र्य गृह्णामि सिद्धार्थं शवसारिकाम्।
जयतु जयति च नमः शलकभूतेभ्यः स्वाहा ॥ ४५ ॥
सुखं स्वपन्तु शुनका ये च ग्रामे कुतूहलाः ॥ ४६ ॥
सुखं स्वपन्तु सिद्धार्था यमर्थं मार्गयामहे।
यावदस्तमयादुदयो यावदर्थं फलं मम ॥ ४७ ॥
इति स्वाहा ॥ ४८ ॥

यह तीसरा मन्त्र प्रयोग है। मैं विरोचन पुत्र वलि और सैंकड़ों माया करने वाले शम्बरासुर की वन्दना करता हूं। निकुंभ, नरक, कुम्भ महासुर तन्तु -कन्छ, अर्मालव प्रमील, मण्डोल्लक घटोद्बल, कृष्णकंसोपचार, यशस्विनी पौलीमी (इन्द्राणी) अभिमन्त्रित करके मैं अपने अर्थ की सिद्धि के लिए इस मरी हुई मैना पक्षिणी को पकड़ता हूं। सारे शलके भूतों की जय हो-ये सब से उत्कृष्ट हैं, इन को स्वाहा प्राप्त हो। गाँव के कुत्ते और रात में नाच गाकर कुतूहल करने वाले लोग सुख से सो जावें-सिद्ध लोग सुख से सोवे जिन से हम अपने अर्थ की सिद्धि मांगते हैं। सूर्योदय से लेकर अस्त पर्यन्त शयन करा देना मेरा अर्थकृत्य है। इस के लिए मैं हवन करता हूं॥ ४३-४८॥

एतस्य प्रयोगः—॥ ४६ ॥ चतुर्नक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्या मसंकीर्ण आदहने वलिं कृत्वा एतेन मन्त्रेण शवशारिकां गृहीत्वा पोत्रीपोट्टलिकां बध्नीयात् ॥ ५० ॥ तन्मध्ये श्वाविधः शल्यकेन विध्वा यत्रैतेन मन्त्रेण निखन्यते तत्सर्वं प्रस्वापयति ॥ ५१ ॥

इस मन्त्र के प्रयोग की विधि यह है कि चार रात का व्रत करके कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में खुले श्मशान में वलि देकर इस मन्त्र से किसी मरी हुई मैना को लेकर कपड़े की छोटी सी पोटली में बाँध लेवे। उसके बीच में पूर्वोक्त सेह का कांटा बींध कर इसी मन्त्र समूह से जहां गाड़ देता है, वहीं पर यह प्रयोग सब को सुला देता है॥४६-५१॥

उपैमि शरणं चाग्निं दैवतानि दिशो दश।
अपयान्तु च सर्वाणि वशतां यान्तु मे सदा ॥ ५२ ॥
स्वाहा ॥ ५३ ॥

एतस्य प्रयोगः—॥ ५४ ॥ त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शर्करा एकविंशतिसंपातं कृत्वा मधुघृताभ्यामभिजुहुयात् ॥ ५५ ॥ ततो गन्धमाल्येन पूजयित्वा निखानयेत् ॥ ५६ ॥ द्वितीयेन पुष्येणोद्धृत्यैकां शर्करमभिमन्त्र्य कवाटमाहन्यात् ॥ ५७॥ अभ्यन्तरं चतसृणां शर्कराणां द्वारमपाव्रियते ॥ ५८ ॥

इस के आगे द्वार खोलने का मन्त्र है। मैं अग्नि और दशों दिशा के देवताओं की शरण प्राप्त होता हूं। यहाँ से सारे यातुधान चले जावे और जो रहें-वे मेरे वश में होजावें इनको मैं वलिदान देता हूं। इस मन्त्र के प्रयोग की विधि इस प्रकार है। कि तीन रात का व्रत करके पुरुष, पुष्य नक्षत्र युक्त कृष्णा चतुर्दशी को इक्कीस कंकड़ी लेकर उन्हें घी और शहद में भिगोकर अग्नि में डाले। फिर इन कंकड़ियों की गन्ध और मालाओं से पूजा कर

के एक गड्ढे में गाड़ देवे। जब दूसरा पुष्य का योग आवे-तो उन्हें उखाड़ले और उन में से एक कंकड़ी इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके दुर्ग के किवाड़ों के मारे-तो उसमें चार कंकड़ियों के बराबर छेद हो जावेगा-उसमें हाथ डालकर द्वार खोला जा सकता है ॥ ५२-५८ ॥

चतुर्नक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्यां भग्नस्य पुरुषस्यास्थ्ना ऋषभं कारयेत् ॥ ५९ ॥ अभिमन्त्रयेच्चैतेन ॥ ६० ॥ द्विगोयुक्तं गोयानमाहृतं भवति ॥ ६१ ॥ ततः परमाकाशे विक्रामति ॥ ६२ ॥

चार रात तक उपवास रखकर पुरुष, इसी मन्त्र के द्वारा कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में किसी मरे पुरुष की हड्डियों का बैल का ढ़ाँचा बनाकर अभिमन्त्रित करे। इसके सिद्ध होने पर दो बैलों की गाड़ी वहाँ उपस्थित होगी उस गाड़ी से पुरुष, आकाश में उड़ सकता है ॥ ५९-६२ ॥

सदारविरविः सगण्डपरिवाति सर्वं भणाति ॥ ६३ ॥ चण्डालीकुम्बीतुम्भकटुकसारीघः सनारिंभगो ऽसि स्वाहा ॥६४॥ तालोद्घाटनं प्रस्वापनं च ॥६५॥

उपर्युक्त मन्त्र का प्रयोग द्वार खोलने के मन्त्र की तरह करना चाहिए। यह मन्त्र ताला खोलने और सब के सुला देने में काम आता है ॥ ६३-६५ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरःकपाले मृत्तिकायां तुवरीरा वास्योदकेन सेचयेत् ॥ ६६ ॥ जातानां पुष्येणैव गृहीत्वा रज्जुकां वर्तयेत् ॥ ६७ ॥ ततः सज्यानां धनुषां यन्त्राणां च पुरस्ताच्छेदनं ज्याच्छेदनं करोति ॥ ६८ ॥

तीन रात तक व्रत रखकर पुष्य नक्षत्र युक्त समय में पुरुष शस्त्र से मरे या शूली पर चढ़ाये हुये मनुष्य का शिर वा कपाल ले आवे। उस कपाल में मिट्टी भरकर उनमें सन बो देवे और उसको बासी पानी से सींचता रहे। जब वह उत्पन्न हो जावे-तो उसको पुष्य नक्षत्र में काट कर उस की धनुष की डोरी बनावे। जब इनपर चढ़ाकर बाण चलाया जावेगा तो सामने के चढ़े हुए धनुष यन्त्र और धनुष की डोरियों को काटता चला जावेगा ॥ ६६-६८ ॥

उदकाहिभस्त्रामुच्छ्वासमृत्तिकया स्त्रियाः पुरुषस्य वा पूरयेत् ॥ ६९ ॥ नासिकाबन्धनं मुखग्रहश्च ॥ ७० ॥ वराहबस्तिमुच्छ्वासमृत्तिकया पूरयित्वा मर्कटस्नायुना बध्नीयात् ॥ ७१ ॥ आनाहकारणम् ॥ ७२ ॥ कृष्णचतुर्दश्यां शस्त्रह-

तायां गोः कपिलायाः पित्तेन राजवृक्षमयीममित्रप्रतिमां अञ्ज्यात् ॥ ७३ ॥ अन्धीकरणम् ॥ ७४ ॥

जल के सांप की कैंकुली को किसी स्त्री या पुरुष की चिता की ऊपर की भस्म से भर देवे। इसको नासिका में सुंघा देने पर नासिका और मुख बन्ध जाते हैं। इसी तरह सुअर के वस्ति स्थान को लेकर चिता की भस्म भरे और उसे बन्दर की नाड़ियों से बांध देवे। इस भस्म को जिसे खिलादी जावेगी उसे अफारा हो जावेगा। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में हथियार से मारी हुई कपिल गौ के पित्ते को अमलतास की लकड़ी की वनी हुई शत्रु की मूर्ति की आँखों में आंजे इसके आँजने से शत्रु अन्धा हो जाता है ॥ ६६-७४ ॥

चतुर्भक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्यां वलिं कृत्वा शूलप्रोतस्य पुरुषस्यास्थ्ना कीलकान्कारयेत् ॥७५॥ एतेषामेकः पुरीषे मूत्रे वा निखातः आनाहं करोति ॥७६॥ पादे ऽस्यासनेवा निखातः शोषेण मारयति॥७७॥ आपणेक्षेत्रे गृहे वा वृत्तिच्छेदं करोति ॥७८॥ एतेन कल्पेन विद्यु द्दग्धस्य वृक्षस्य कीलका व्याख्याताः ॥७९॥

चार रात उपवास रख कर पुरुष कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में वलि देकर शूली पर चढ़े हुए पुरुष की अस्थियों की कीले वनवावे। इसमें से एक कील को जिसके मूत्र या पुरीष स्थान में गाड़ देवे-तो उस पुरुष के अफारा हो जाता है। यदि किसी के पाद चिन्ह में या आसन के नीचे गाड़ देवे-तो वह शोष रोग द्वारा मारा जाता है। यदि वाजार, दुकान, घर या खेत में गाड़ दे-तो रोजगार नष्ट हो जाता है। इसी तरह विजली से जले हुए वृक्ष की कीलों का प्रकार है ॥ ७५-७९ ॥

पुनर्नवमवाचीनं निम्बः काकमधुश्च यः ।
कपिरोम मनुष्यास्थि वध्वा मृतकवाससा ॥ ८० ॥
निखन्येत गृहे यस्य पिष्ट्वा वा यं प्रपाययेत् ।
सपुत्रदारः सधनस्त्रीन्पक्षान्नातिवर्तते ॥ ८१ ॥

दक्षिणी पुनर्नवा, कौओं को मीठा लगने वाला नीम, वन्दर के रोम और मनुष्यकी हड्डी, मृतक वस्त्र (कफन) में वांधकर जिस घर में गाड़ दिया जावे या पीस कर पिला दिया जावे-तो वह अपने स्त्री पुत्र और धन के सहित तीन पक्ष में नष्ट हो जाता है ॥ ८०-८१ ॥

पुनर्नवमवाचीनं निम्बः काकमधुश्च यः ।
स्वयंगुप्ता मनुष्यास्थि पदे यस्य निखन्यते ॥ ८२ ॥

द्वारे गृहस्य सेनाया ग्रामस्य नगरस्य वा ।

सपुत्रदारः सधनस्त्रीन्पक्षान्नातिवर्तते ॥ ८३ ॥

दक्षिणी पुनर्नवा काकमधु, नीम, धमासा और मनुष्य की हड्डी जिसके पद चिन्ह या गृह के द्वार, तथा सेना ग्राम और नगर के द्वार में गाड़ दी जाती है, वह तीन पक्ष में स्त्री पुत्र धन धान्य सहित नष्ट हो जाता है ॥ ८२-८३ ॥

अजमर्कटरोमाणि मार्जारनकुलस्य च ।

ब्राह्मणानां श्वपाकानां काकोलूकस्य चाहरेत् ॥ ८४ ॥

एतेन विष्ठावक्षुण्णा सद्य उत्सादकारिका ।

प्रेतनिर्माल्यिकाकिण्वं रोमाणि नकुलस्य च ॥ ८५ ॥

वृश्चिकाल्यहिकृत्तिश्च पदे यस्य निखन्यते ।

भवत्यपुरुषः सद्यो यावत्तन्नापनीयते ॥ ८६ ॥

बकरा, बन्दर, विलाव, नौला, ब्राह्मण, चाण्डाल, कौआ और उल्लू के बाल इकट्ठे करके जिसकी विष्ठा पर डाल दिये जावेंगे-वह फौरन नाशको प्राप्त हो जावेगा। मुर्दे पर डाली हुई माला, सुरा बीज, नोले के बाल, बिच्छू, भौंरा और सांप की खाल-इन सब चीजों को मिलाकर जिसके पद चिन्ह पर गाड़ दिया जाता है। वह पुरुष उस समय तक नपुसंक हो जाता है-जब तक वे वहां से उखाड़ न लिये जावे ॥ ८४-८६ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरःकपाले मृत्तिकायां गुञ्जा आवास्योदकेन च सेचयेत् ॥ ८७ ॥ जातानाममावास्यायां पौर्णमास्यां वा पुष्ययोगिन्यां गुञ्जावल्लीर्ग्राहयित्वा मण्डलिकानि कारयेत् ॥ ८८ ॥ तेष्वन्नपानभाजनानि न्यस्तानि न क्षीयन्ते ॥ ८९ ॥

तीन रात तक व्रत करके पुरुष-पुष्य नक्षत्र में शस्त्र से या शूली द्वारा मारे हुए पुरुष की शिर की खोपड़ी ले आवे और मिट्टी भर कर उसमें गुञ्जा बो देवे। तथा बासी पानी से सींचता रहे। जब वे उत्पन्न हो जावें-तो अमावस्या या पूर्णिमा को पुष्य नक्षत्र के दिन उन बेलों को उखाड़ लेवे। उन बेलों का फिर घेरा सा बना कर डालो और उन के मध्य में जो खाने पीने से भरे हुए पात्र रख दिये-उनमें से कितना ही खर्च करो वह क्षीण नहीं हो सकेगा ॥ ८७-८९ ॥

रात्रिप्रेक्षायां प्रवृत्तायां प्रदीपाग्निषु मृतधेनोः स्तनानुत्कृत्य दाहयेत् ॥९०॥ दग्धान्वृषमूत्रेण पेषयित्वा नवकुम्भमन्तर्लेपयेत् ॥ ९१ ॥ तं ग्राममपसव्यं परिणीय यत्तत्र न्यस्तं नवनीतमेषां तत्सर्वमागच्छतीति ॥ ९२ ॥

रात के तमाशा होने पर कोई जलाई हुई आग में गिर कर मरी हुई गाय के स्तन काट कर उन्हें जलालो-जब वे जल जावें-तो उनको बैल के मूत्रमें पीस कर नये घड़े के भीतर लीप दो। उसको लेकर गांव की दांयी ओर से परिक्रमा करे। फिर जहां पर भी उस घड़े को रखोगे-गांव का सारा मक्खन उसमें इकट्ठा हो जावेगा॥ ९०-९२ ॥

कृष्णचतुर्दश्यां पुष्ययोगिन्यां शुनो लग्नकस्य योनौ कालायसीं मुद्रिकां प्रेषयेत् ॥ ९३ ॥ तां स्वयं पतितां गृह्णीयात् ॥ ९४ ॥ तया वृक्षफलान्याकारितान्यागच्छन्ति ॥ ९५ ॥

पुष्य नक्षत्र युक्त कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को जब कुत्ता कुत्ती पर चढ़ता हो-तो एक लोहे की अंगूठी कुत्ती की योनि में डाल देवे। जब कुत्ता हटे-तो स्वयं गिरी हुई अंगूठी को उठा लेवे। उस अंगूठी के द्वारा वृक्षों के फल बुलाये जा सकते हैं॥ ९३-९५॥

मन्त्रभैषज्यसंयुक्ता योगा मायाकृताश्च ये।
उपहन्यादमित्रांस्तैः स्वजनं चाभिपालयेत् ॥ ९६ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशे ऽधिकरणे प्रलम्भने भैषज्यमन्त्रयोगः तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदितो ऽष्टचत्वारिंशच्छतः ॥ १४८ ॥

जो मन्त्र औषध या माया द्वारा प्रयोग करना बताया गया है-उनके द्वारा शत्रुओं का नाश और स्वजनों की परिपालना करनी चाहिए॥ ९६ ॥

इतिश्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत औपनिषदिक अधिकरण में शत्रु के प्रवंचन में औषध और मन्त्र के वर्णन का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।



चौथा अध्याय

१७९वां प्रकरण

स्वबलोप घात प्रतीकारः

इस प्रकरण में शत्रु द्वारा किये गए आघातों के प्रतीकार का वर्णन होगा।

स्वपक्षे परप्रयुक्तानां दूषिविषगराणां प्रतीकारे श्लेष्मातककपित्थदन्तिदन्तशठगोजीशिरीषपाटलीबलास्योनाकपुनर्नवाश्वेतावरणक्वाथयुक्तं चन्दनसालावृकीलोहितयुक्तं तेजनोदकं राजोपभोग्यानां गुह्यप्रक्षालनं स्त्रीणां सेनायाश्च विषप्रतीकारः ॥ १ ॥

शत्रु द्वारा प्रयुक्त किये गए विष हलाहल आदि के द्वारा जब अपने पक्ष का नाश हो-तो उसके प्रतीकार का इस तरह उपाय करना चाहिए कि लिसोड़ा, कैथ, जमालगोटा, जंभीरीनींबू, गोभी, सिरस, कालीपाटल, खरैटी, सौनापाठा, पुनर्नवा, शराब और बरना वृक्ष की त्वचा लेकर इन सबका काढ़ा बनावे। फिर चन्दन और गीदड़ी का रक्त मिलाकर इसका तेजन उदक बना लिया जावे। यदि किसी ने विषकन्या बनाकर राजा के पास भेजी है-तो इस पानी से उसकी योनि धो देने या सेना पर किये गए विष प्रयोग को इस जल से धो डालने पर विष का असर नहीं होता है ॥१॥

पृषतनकुलनीलकण्ठगोधापित्तयुक्तं मषीराजिचूर्णं सिन्दुवारितवरणवारुणीतण्डुलीयकशतपर्वाग्रपिण्डीतकयोगो मदनदोषहरः ॥२॥ सृगालविन्नामदनसिन्दुवारितवरणवारणवल्लीमूलकषायाणामन्यतमस्य समस्तानां वा क्षीरयुक्तं पानं मदनदोषहरम् ॥ ३ ॥

चीतलहिरन, नौला, नीलकण्ठ और गोह के पित्ते में काले संभालू और राई का चूर्ण मिलाया जावे तथा संभालू बरना, दूबघास, चौलाई, बांस का अग्रभाग और मैनफल, का भी इसमें संयोग हो-तो यह नुसखा धतूरे के विष के असर को दूर कर देता है। सृगालविन्ना ओषधि, धतूरा, संभालू, बरना और गजपीपल-इन पांचों की जड़ सारी या पृथक् २ का काढ़ा दूध के साथ पीने से धतूरे का विष उतर जाता है ॥२-३॥

कैडर्यपूतितिलतैलमुन्मादहरं नस्तःकर्म ॥ ४ ॥ प्रियङ्गुनक्तमालयोगः कुष्ठहरः ॥ ५ ॥ कुष्ठलोध्रयोगः पाकशोषघ्नः ॥६ ॥ कटुफलद्रवन्तीविलङ्गचूर्णं नस्तःकर्म शिरोरोगहरम् ॥ ७ ॥

कायफल, कांटेदार करंजुआ और तिल का तेल, मिलाकर नाक में डालने से उन्माद हरण होता है। कांगनो और करंजुआ का योग कुष्ट का नाशक है। कूट और लोध-इनका योग बालों की सफेदी और क्षय रोग का नाशक है। कायफल, द्रवन्ती, (मूषापर्णी) और वायविडङ्ग-इन तीनों जड़ियों का चूर्ण, नासिका में सूंघा जावे-तो सिर के रोगों का नष्ट करने वाला होता है ॥४-७॥

प्रियङ्गुमञ्जिष्ठतगरलाक्षारसमधुकहरिद्राक्षौद्रयोगो रज्जूदकविषप्रहारपतननिःसंज्ञानां पुनः प्रत्यानयनाय ॥ ८ ॥ मनुष्याणामक्षमात्रं गवाश्वानां द्विगुणं चतुर्गुणं हस्त्युष्ट्राणाम् ॥ ९ ॥ रुक्मगर्भश्चैषां मणिः सर्वविषहरः ॥ १० ॥ जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकानामक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य मणिः सर्वविषहरः ॥ ११ ॥

कांगनी, मंजीठ, तगर, लाख, महुआ, हलदी, और शहद-इन सब का योग, रस्सी, दूषित जल, प्रहार, ऊपर से गिरने के कारण अचेत पुरुष के सचेत करने में बड़ा उत्तम है। इस की मात्रा मनुष्यों को एक अक्ष (सोलह माशा) बैल तथा अश्वों को दो अक्ष (बत्तीस माशा) एवं हाथी और ऊंटों को चार अक्ष (चौसठ माशा) होती है। सोने में जड़वा कर मणि को धारण किया जावे तो मनुष्य आदि सबका विष दूर हो जाता है अथवा इन औषधों को सोने के तावीज में मंढकर पहननेसे सारे विष दूर होंगे। गिलोय, सफेद संभालू, काली पांडरी, पुष्प औषध, अमरवेल, नीमपर उत्पन्न पीपल का बनाये हुए योग को सुवर्ण के तावीज में पहने तो सब विष दूर हों ॥८-११॥

तूर्याणां तैः प्रलिप्तानां शब्दो विषविनाशनः ।
लिप्तध्वजं पताकां वा दृष्ट्वा भवति निर्विषः ॥ १२ ॥

एतैः कृत्वा प्रतीकारं स्वसैन्यानामथात्मनः ।
अमित्रेषु प्रयुञ्जीत विषधूमाम्बुदूषणान् ॥ १३ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशे ऽधिकरणे स्वबलोपघातप्रतीकारः चतुर्थो ऽध्यायः ॥४॥
आदित एकोनपञ्चाशच्छतः ॥ १४९ ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्यौपनिषदिकं चतुर्दशमधिकरणं समाप्तम् ॥ १४ ॥

गिलोय आदि औषधियों से लिप्त करके बनाये हुए बाजों का शब्द भी विष नाशक है तथा इनसे लिप्त ध्वजा और पताका को देखकर भी विष नष्ट हो जाता है। विजेता इन

योगों से अपनी और अपनी सेना की रक्षा करे तथा इन विष, धूम और दूषित जल के प्रयोगों को शत्रु पर प्रयुक्त करे ॥१२-१३॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत औपनिषदिक अधिकरण में अपनी सेना के घात के प्रतीकार का चौथा अध्याय समाप्त हुआ और यही पर औपनिषदिक अधिकरण भी समाप्त हुआ।



तन्त्रयुक्ति पंचदशाधिकरणम्

प्रथम अध्याय

१८०वां प्रकरण

तन्त्रयुक्तिः

इस प्रकरण में अर्थशास्त्र में प्रयुक्त बहुत से शब्दों की परिभाषा का अर्थ होगा

मनुष्याणां वृत्तिरर्थः ॥ १ ॥ मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः ॥ २ ॥ तस्याः पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति ॥ ३ ॥ तद्द्वात्रिंशद्युक्तियुक्तम् ॥ ४ ॥ अधिकरणं विधानं योगः पदार्थो हेत्वर्थ उद्देशो निर्देश उपदेशोऽपदेशोऽतिदेशः प्रदेश उपमानमर्थापत्तिः संशयः प्रसङ्गो विपर्ययो वाक्यशेषोऽनुमतं व्याख्यानं निर्वचनं निदर्शनमपवर्गः स्वसंज्ञा पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष एकान्तोऽनागतावेक्षणमतिक्रान्तावेक्षणं नियोगो विकल्पः समुच्चय ऊह्यमिति ॥ ५ ॥

मनुष्यों के व्यवहार को अर्थ कहते हैं। मनुष्यों से युक्त भूमि को भी अर्थ ही कहा जाता है। इस प्रकार वृत्ति और भूमि कि प्राप्ति उसके पालन के उपायों के शास्त्र को अर्थशास्त्र कहते हैं। इसमें बत्तीस युक्तियां हैं। अधिकरण, विधान, योग, पदार्थ, हेत्वर्थ, उद्देश, निर्देश, उपदेश, अपदेश, अतिदेश, प्रदेश, उपमान, अर्थापत्ति, संशय, प्रसंग, विपर्यय, वाक्यशेष, अनुमत, व्याख्यान, निर्वचन, निदर्शन, अपवर्ग, स्वसंज्ञा, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष, एकान्त, अनागतावेक्षण, अतिक्रान्तावेक्षण, नियोग, विकल्प, समुच्चय और ऊह्य ये उनके नाम हैं ॥१-५॥

यमर्थमधिकृत्योच्यते तदधिकरणम् ॥ ६ ॥ पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्तावितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतमिति ॥ ७ ॥ शास्त्रस्य प्रकरणानुपूर्वी विधानम् ॥ ८ ॥ विद्यासमुद्देशो वृद्धसंयोग इन्द्रियजयोऽमात्योत्पत्तिरित्येवमादिकमिति ॥ ९ ॥ वाक्ययोजना योगः ॥ १० ॥ चतुर्वर्णाश्रमो लोक इति ॥ ११ ॥ पदावधिकः पदार्थः ॥१२॥

'मूलहर इति पदम् ॥ १३ ॥ यः पितृपैतामहमर्थमन्यायेन भक्षयति स मूलहर इत्यर्थ ॥ १४ ॥

जिस अर्थ को ध्यान में रखकर प्रकरण का आरम्भ किया जाता है-उसे अधिकरण कहते हैं। जैसे पृथिवी के लाभ और पालन के निमित्त जितने अर्थशास्त्र पूर्वाचार्यों ने वनाये हैं, उनका ही इसमें संक्षेप से संग्रह करके यह एक अर्थशास्त्र वनाया गया है। शास्त्र का प्रकरणानुसार कथन करना विधान कहाता है। विद्या समुद्देश आदि प्रकरणों का कथन विधान हैं। वाक्य योजना को योग कहते हैं, प्रथम अधिकरण के चौथे अध्याय का चतुर्वर्णाश्रमोलोक यह इसका उदाहरण है। पद के अर्थ को वताने वाला पदार्थ अर्थात् पारिभाषिक संकेत होता है जैसे-मूलहर पद है जिसका अर्थ है, कि जो पिता पितामह का धन अन्याय से भोगता है-वह मूलहर कहाता है-यह अर्थ माना गया ॥६-१४॥

हेतुरर्थसाधको हेत्वर्थः ॥ १५ ॥ अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति ॥ १६ ॥ समासवाक्यमुद्देशः ॥ १७ ॥ विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजय इति ॥ १८ ॥ व्यासवाक्यं निर्देशः ॥ १९ ॥ कर्ण त्वगक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजय इति ॥ २० ॥ एवं वर्तितव्यमित्युपदेशः ॥ २१ ॥ धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत न निःसुखः स्यादिति ॥ २२ ॥ एवमसावाहेत्यपदेशः ॥ २३ ॥ मन्त्रिपरिषदं द्वादशामात्यान्कुर्वीतेति मानवाः ॥ २४ ॥ षोडशेति वार्हस्पत्याः ॥ २५ ॥ विंशतिमित्यौशनसाः ॥ २६ ॥

अर्थ को सिद्ध करने वाला हेतु ही हेत्वर्थ कहाता है। जैसे धर्म और काम-ये दोनों अर्थ से ही सिद्ध होते हैं-यह हेतु दिया गया है। संक्षिप्त वाक्य का कथन उद्देश कहाता है जैसे इन्द्रियों का विजय करना विद्या विनय का हेतु है यह उद्देश वाक्य है, क्योंकि इसमें संक्षेप से विद्या कि प्राप्ति का हेतु इन्द्रिय जय वताया है। नहीं तो विद्या विनय के तो अन्य भी कारण होते हैं। खोलकर वाक्य लिखना व्यास कहता है जैसे कान, त्वचा, आंख, जिह्वा और नासिका-इन्द्रिय का अपने २ विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध के प्रति दौड़ने से रोकने को इन्द्रिय जय कहते हैं-इस प्रकार खोलकर वताने से यह व्यास कहा गया है। इस प्रकार तुम्हें करना चाहिए, यह कथन उपदेश कहाता है। जैसे धर्म और अर्थ के साथ विरोध न करके काम का सेवन करो। सुख हीन जीवन व्यतीत न करो। इत्यादि वाक्य उपदेश, क्योंकि इसमें उपदेश किया गया है। अमुक व्यक्ति ने इस विषय में यह कहा है-यह कथन अतिदेश कहाता है। जैसे बारह अमात्यों की मन्त्रिपरिषद्

बनावे-यह मनुके अनुयायी मानते हैं। सोलह की बृहस्पति, बीस की शुक्र के अनुयायी मानते हैं। कौटल्याचार्य के मत में जितनी आवश्यक समझे उतने व्यक्तियों कि परिषद बनायी जा सकती है। इसमें मनु, बृहस्पति का निर्देश होने से यह अतिदेश है ॥१५-२६॥

यथासामर्थ्यमिति कौटल्य इति ॥ २७ ॥ उक्तेन साधनमतिदेशः ॥२८॥ दत्तस्याप्रदानमृणादानेन व्याख्यातमिति ॥ २६ ॥ वक्तव्येन साधनं प्रदेशः ॥ ३० ॥ सामदानभेददण्डैर्वा यथापत्सु व्याख्यास्याम इति ॥ ३१ ॥ दृष्टेनादृष्टस्य साधनमुपमानम् ॥ ३२ ॥ निवृत्तपरिहारान्पितेवानुगृह्णीयादिति ॥३३॥ यदनुक्तमर्थादापद्यते सार्थापत्तिः ॥ ३४ ॥ लोकयात्राविद्राजानमात्मद्रव्यप्रकृतिसंपन्न प्रियहितद्वारेणाश्रयेत ॥ ३५ ॥ नाप्रियहितद्वारेणाश्रयेतेत्यर्थादापन्नं भवतीति ॥ ३६ ॥

कही गई बात के द्वारा नहीं कथन की गई बात का भी सिद्ध कर देना अतिदेश कहाता है। जैसे दी हुई वस्तु का नहीं देना-ऋण के नहीं देने की व्यवस्था से समझ लेना चाहिए। इस कथन में दी हुई वस्तु के नहीं देने की ऋण के कथन के अनुसार ही बताने से व्यवस्था हो गई इससे यह अतिदेश है। आगे कही जाने वाली बात से किसी बात को सिद्ध किया जावे-उसे प्रदेश कहते हैं। जैसे, साम, दान- दण्ड, और भेद से उक्तकार्य की सिद्धि करे-इसका वर्णन आगे आपत्ति काल के वर्णन में होगा। इस वाक्य में आगे वर्णन करने का निर्देश हा जिससे यह प्रदेश कहाता है। दृष्ट वस्तु का अदृष्ट वस्तु द्वारा सिद्ध करना उपमान कहाता है। जैसे यदि प्रजा के लोग परिहार द्रव्य (स्वास्थ्य का टैक्स) चुकाते रहें-तो राजा उनपर पिता की तरह कृपा बनाये रखे। यह वाक्य पिता की उपमा से प्रयुक्त होने से उपमान वाक्य कहाता है। नहीं कही हुई बात भी जो अर्थ से निकल आवे-उसे अर्थापत्ति कहते हैं—जैसे-संसार यात्रा को जानने वाला चतुर पुरुष, आत्मगुण, द्रव्य, अमात्यादि प्रकृतियों से युक्त राजा का अपने प्रिय और हितकारी पुरुषों के द्वारा आश्रय ग्रहण करे-इससे यह बात निकल आई कि अप्रिय और अहित पुरुषों के द्वारा और अयोग्य राजा का आश्रय न करे, इसमें अर्थ से यह बात निकली इससे यह वाक्य अर्थापत्ति है॥२७-३६॥

उभयतोहेतुमानर्थः संशयः ॥ ३७ ॥ क्षीणलुब्धप्रकृतिमपचरितप्रकृतिं वेति ॥ ३८ ॥ प्रकरणान्तरेण समानो ऽर्थः प्रसङ्गः ॥ ३६ ॥ कृषिकर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेणेति ॥ ४० ॥ प्रतिलोमेन साधनं विपर्ययः ॥ ४१ ॥

विपरीतमतुष्टस्येति ॥ ४२ ॥ येन वाक्यं समाप्यते स वाक्यशेषः ॥ ४३ ॥ छिन्नपक्षस्येव राज्ञश्चेष्टानाशश्चेति ॥ ४४ ॥ तत्र शकुनेरिति वाक्यशेषः ॥ ४५ ॥

किसी अर्थ में दोनों पक्षों का होना-संशय कहाता है। जैसे दुर्बल और लालची अमात्यों वाले राजा पर प्रथम आक्रमण करे या दुराचारी अमात्य वाले राजा पर। इस वाक्य में विकल्प होने से यह संशय युक्त वाक्य है। दूसरे प्रकरण के साथ अर्थ की समानता होना-प्रसङ्ग कहाता है। गृहपतिक गुप्तचर, कृषि कार्य को नियत की हुई भूमि में उदास्थित गुप्तचर की भांति कार्य करे। इसमें गृहपतिक को उदास्थित गुप्तचर की तरह कार्य करना-बताया इससे यह प्रसङ्ग कहाता है। कही हुई बात को विपरीत रीति से सिद्ध करना-विपर्यय कहाता है। जैसे-पूर्वोक्त प्रकार प्रसन्नता का है और इसके विपरीत भाव अप्रसन्नता के समझो। यह कथन पूर्वोक्त को विपरीत करने को कहता है-इससे इसे विपर्यय कहते हैं। जिसके द्वारा वाक्य की समाप्ति हो-वह वाक्य शेष कहाता है। इस प्रकार कटे पक्ष वाले की तरह राजा के पक्ष का नाश हो जाता है-इसमें कटे पक्ष वाले शब्द के आगे पक्षी शब्द शेष होने से यह वाक्य शेष का उदाहरण है ॥३७-४५॥

परवाक्यमप्रतिषिद्धमनुमतम् ॥ ४६ ॥ पक्षावुरस्यं प्रतिग्रह इत्यौशनसो व्यूहविभाग इति ॥ ४७ ॥ अतिशयवर्णना व्याख्यानम् ॥ ४८ ॥ विशेषतश्च संघानां संघधर्मिणां च राजकुलानां द्यूतनिमित्तो भेदः ॥ ४९ ॥ तन्निमित्तो विनाश इत्यसत्परिग्रहः पापिष्ठतमो व्यसनानां तन्त्रदौर्बल्यादिति ॥ ५० ॥ गुणतः शब्दनिष्पत्तिर्निर्वचनम् ॥ ५१ ॥ व्यस्यत्येनं श्रेयस इति व्यसनमिति ॥ ५२ ॥ दृष्टान्तो दृष्टान्तयुक्तो निदर्शनम् ॥ ५३ ॥ विगृहीतो हि ज्यायसा हस्तिना पादयुद्धमिवाभ्युपैतीति ॥ ५४ ॥ अभिप्लुतव्यपकर्षणमपवर्गः ॥ ५५ ॥ नित्यमासन्नमरिबलं वासयेदन्यत्राभ्यन्तरकोपशङ्काया इति ॥ ५६ ॥

प्रतिषेध नहीं किया हुआ दूसरे का वाक्य अनुमत कहाता है। अगले दोनों भाग, मध्य भाग और पिछला भाग ये चार शुक्राचार्य ने व्यूह के विभाग किये हैं। कौटल्याचार्य ने इस पक्ष को नहीं काटा इससे यह अनुमत कहाता है। सिद्ध किये हुए पदार्थ का अत्यन्त खोलकर वर्णन करना व्याख्यान कहाता है। जैसे विशेषकर साथ २ रहने वाले साथी राजकुमारों का भी द्यूत के कारण भेद (फूट) देखा गया है। इससे नाश भी हो जाता है। इसमें दुष्ट जनों का आगमन होता है-इससे यह मद्यपान सब व्यसनों में बुरा और राज्य को क्षीण का देने वाला होता है—यहां अपमान के दोष खोलकर बताये-इससे यह

व्याख्यान कहाता है। गुण के द्वारा किसी शब्द की निरुक्ति करना निर्वचन होता है। जैसे-यह मनुष्य को कल्याण से दूर कर देता है इससे इसे व्यसन कहते हैं- यहां व्यसन शब्द की व्युत्पत्ति की गई-इससे इसे निर्वचन कहते हैं। दृष्टान्त-पूर्वक दृष्टान्त देना निदर्शन कहाता है जैसे-बड़े से युद्ध करना-हाथी के साथ पैदल का युद्ध करना है। इसमें दृष्टान्त देकर वताया-इससे यह निदर्शन है। किसी विधि को सामान्य रूप से कहते हुए उसके विषय का संकोच कर जाना अपवर्ग कहाता है—जैसे-यदि अपने भीतरी अमात्य आदि के कुपित होने की आशंका न हो तो-शत्रु सेना को सदा पास रखे-इसमें शत्रु सेना को पास रखने की व्यवस्था करते २ अपने भीतरी अमात्यों के कुपित हो जाने का डर हो तो पास न रखे-इस प्रकार संकोच किया गया-इससे यह अपवर्ग है ॥४६-५६॥

परैरसंज्ञितः शब्दः स्वसंज्ञा ॥ ५७ ॥ प्रथमा प्रकृतिस्तस्य भूम्यन्तरा द्वितीया भूम्येकान्तरा तृतीयेति ॥ ५८ ॥ प्रतिषेद्धव्यं वाक्यं पूर्वपक्षः ॥ ५९ ॥ स्वाम्यमात्यव्यसनयोरमात्यव्यसनं गरीय इति ॥ ६० ॥ तस्य निर्णयनवाक्यमुत्तरपक्षः ॥ ६१ ॥ तदायत्तत्वात् ॥ ६२ ॥ तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति ॥६३॥ सर्वत्रायत्तमेकान्तः ॥ ६४ ॥ तस्मादुत्थानमात्मनः कुर्वीतेति ॥ ६५ ॥ पश्चादेवं विहितमित्यनागतावेक्षणम् ॥ ६६ ॥ तुलाप्रतिमानं पौतवाध्यक्षे वक्ष्याम इति ॥ ६७ ॥ पुरस्तादेवं विहितमित्यतिक्रान्तावेक्षणम् ॥ ६८ ॥ अमात्यसंपदुक्ता पुरस्तादिति ॥ ६९ ॥

दूसरों द्वारा इस अर्थ में नहीं लिखा हुआ शब्द, स्वसंज्ञा कहाता है। जैसे-समीप की प्रथमा प्रकृति, भूमि के अन्तर से रहने वाली द्वितीया प्रकृति और भूमि के एक राजा के अन्तर से तृतीय प्रकृति होती है—यह संज्ञा इसी शास्त्र की है-इससे स्वसंज्ञा कहाती है प्रतिषेध करने योग्य वाक्य पूर्व पक्ष होता है-जैसे-स्वामी और अमात्य व्यसन में अमात्य व्यसन भारी है इस वाक्य को काटकर स्वामी व्यसन को भारी वताया-इससे इसे पूर्व पक्ष कहते हैं। इसका निर्णय का वाक्य उत्तर पक्ष होता है। जैसे-इसी में राजा के अधीन सारी प्रकृतियों के होने से राजा का व्यसन ही भारी है-यह सिद्ध किया है इससे यह उत्तर पक्ष है। जो अर्थ, किसी देशकाल में न छोड़ा जा सके उसे एकान्त कहते हैं। जैसे-इसलिए अपनी आत्मा को सदा उन्नत करे-इस वाक्य में सर्वदा आत्मा को उन्नत करे-इसे कभी न छोड़े इस आत्मा की उन्नति के विधान को कभी न छोड़े-इसे एकान्त कहते हैं। पीछे से इसका कथन से विधान किया जावेगा ऐसा कथन करना-अनागतावेक्षण कहाता है। जैसे-तुला का प्रतिमान पौतवाध्यक्ष प्रकरण में कहेंगे। इसमें इस बात का

आगे वर्णन करना कहा गया-इससे यह अनागतावेक्षण वाक्य है। पहिले ऐसा कहा गया यह अतिक्रान्तावेक्षण कहाता है-जैसे अमात्यसंपत् कही जा चुकी। इस वाक्य में पूर्व कथन का निर्देश होने से यह अतिक्रान्तावेक्षण कहाता है ॥५७-६६॥

एवं नान्यथेति नियोगः ॥ ७० ॥ तस्माद्धर्ममर्थं चास्योपदिशेन्नाधर्ममनर्थं चेति ॥ ७१ ॥ अनेन वानेन वेति विकल्पः ॥ ७२ ॥ दुहितरो वा धर्मिष्ठेषु विवाहेषु जाता इति ॥ ७३ ॥ अनेन चानेन चेति समुच्चयः ॥ ७४ ॥ स्वसं (यं) जातः पितृबन्धूनां च दायाद इति ॥ ७५ ॥ अनुक्तकरणमूह्यम् ॥ ७६ ॥ यथा-वद्दाता प्रतिगृहीता च नोपहतौ स्यातां तथानुशयं कुशलाः कल्पयेयुरिति ॥७७॥

इस काम को यों करो-अन्यथा नहीं-इस प्रकार का कथन नियोग कहाता है। जैसे-इसलिए राजा को धर्म और अर्थ (नीति) का उपदेश करे-अधर्म और अनीति का नहीं। इसमें उपदेश करने की आज्ञा होने से यह नियोग है। इससे या इसखे करो-इस तरह कहना विकल्प कहाता है। जैसे-पुत्रवान् के पुत्र धन के स्वामी हो या धर्म-पूर्वक विवाह द्वारा उत्पन्न कन्या भी मालिक हो सकती है। इस वाक्य में दोनों का विधान है, इससे यह विकल्प कहाता है। इससे भी और इससे ही यहकार्य करो-यह समुच्चय कहाता है। जैसे-अपना उत्पन्न किया हुआ-पिता के बन्धुओं के धन का स्वामी होता है-इसमें पिता के बन्धुओं का भी ग्रहण किया गया-इससे यह समुच्चय है। नहीं कही हुई बात का भी अनुमान कर लेना-ऊह्य कहाता है। जैसे-लेने देने वाले जिस तरह दुःखी न होवे, उस तरह कुशल न्यायाधीश अनुशय (धरोहर) द्रव्य का निर्णय करदे। इसमें नहीं बताने पर भी अपनी बुद्धि से विचार किया जाता है इससे यह ऊह्य है ॥७०-७७॥

एवं शास्त्रमिदं युक्तमेताभिस्तन्त्रयुक्तिभिः ।
अवाप्तौ पालने चोक्तं लोकस्यास्य परस्य च ॥ ७८ ॥
धर्ममर्थं च कामं च प्रवर्तयति पाति च ।
अधर्मानर्थविद्वेषानिदं शास्त्रं निहन्ति च ॥ ७९ ॥
येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः ।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम् ॥ ८० ॥

इस प्रकार यह अर्थशास्त्र इन तंत्र युक्तियों से पूर्ण है। इस लोक के पालन और परलोक में हितकारी यही अर्थशास्त्र है। यह अर्थशास्त्र, धर्म, अर्थ, और काम को प्रवृत्त करता है तथा उनकी पालना करता है। इसी तरह यह अर्थ के साथ विरोध रखने वाले

अधर्मों का नाश भी करता है। जिसने शास्त्र, शस्त्र और नन्द राजाओं से भूमि का-क्रोध के कारण उद्धार किया, उसी विष्णुगुप्त ने यह अर्थशास्त्र बनाया है ॥७८-८०॥

इति तन्त्रयुक्तौ पञ्चदशेऽधिकरणे तन्त्रयुक्तयः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥
आदितः पञ्चाशच्छततमो ऽध्यायः ॥ १५० ॥ एतावता कौट-
लीयस्यार्थशास्त्रस्य तन्त्रयुक्तिः पञ्चदशमधिकरणं समाप्तम् ॥१५॥

तन्त्रयुक्ति पञ्चदश अधिकरण समाप्त

चाणक्यार्थं सुगुम्फितां बहुतिथा-
　　　　दारभ्य गीर्वाणगी-
मंञ्जूषा निहिता मनर्घ रुचिरां-
　　　　भव्यार्थशास्त्र स्रजम्-
आयासैरधुनार्य जाति ललना कण्ठे ऽर्पयित्वा चिरात्
सम्पत्राम सुतो ऽहमिन्द्र नगरे, गङ्गाप्रसादः कृती ।

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत तन्त्रयुक्ति अधिकरण में अर्थशास्त्र की प्रसिद्ध युक्तियों के लक्षण के वर्णन का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर यह अर्थशास्त्र भी समाप्त हो गया।



चाणक्य प्रणीत सूत्रम्

सुखस्य मूलं धर्मः ॥ १ ॥ धर्मस्य मूलमर्थः ॥ २ ॥ अर्थस्य मूलं राज्यम् ॥ ३ ॥ राज्यमूलमिन्द्रियजयः ॥ ४ ॥ इन्द्रियजयस्य मूलं विनयः ॥ ५ ॥ विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा ॥ ६ ॥ वृद्धसेवाया विज्ञानम् ॥ ७ ॥ विज्ञानेनात्मानं संपादयेत् ॥ ८ ॥ संपादितात्मा जितात्मा भवति ॥ ९ ॥ जितात्मा सर्वार्थैस्संयुज्येत ॥ १० ॥ अर्थसंपत्प्रकृतिसंपदं करोति ॥ ११ ॥ प्रकृतिसंपदा ह्यनायकमपि राज्यं नीयते ॥ १२ ॥ प्रकृतिकोपस्सर्वकोपेभ्यो गरीयान् ॥ १३ ॥

सुख का मूल कारण धर्म है। धर्म का मूल अर्थ है। अर्थ का मूल राज्य माना जाता है। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेने से राज्य की सत्ता रह सकती है। नम्रता या सदाचार इन्द्रियों के जय का प्रधान कारण माना गया है। सदाचार वृद्धों की सेवा या सङ्गतिसे प्राप्त होता है। जब मनुष्य को विज्ञानका प्रादुर्भाव होता है, तो उसे वृद्धोंकी सङ्गति की आकाङ्क्षा होती है। इस प्रकार विज्ञान ही सर्व श्रेष्ठ है, जिसके द्वारा आत्मोन्नति का प्रयत्न करे। जिसने अपनी आत्मा को सम्हाल लिया-वही जितात्मा या जितेन्द्रिय कहाता है। जो जितात्मा होता है, वह अपने सारे मनोरथों के प्राप्त करने में सफल हो जाता है। धन और सम्पत्ति ही अमात्य, सेना, मित्र आदि प्रकृति सम्पत्ति को उत्पन्न करती है। जिसके पास अमात्य आदि का उत्तम साधन है, वे राजा के बिना भी कुछ दिन तक राज्य का कार्य चला सकते हैं। अमात्य मन्त्री आदि का कोप सब कोपों से अधिक भारी है ॥१-१३॥

अविनीतस्वामिलाभादस्वामिलाभः श्रेयान् ॥ १४ ॥ संपाद्यात्मानमन्विच्छेत्सहायवान् ॥ १५ ॥ नासहायस्य मन्त्रनिश्चयः ॥ १६ ॥ नैकं चक्रं परिभ्रमयति ॥ १७ ॥ सहायस्समसुखदुःख ॥ १८ ॥

उदण्ड स्वामी की अपेक्षा, राजा का आश्रय नहीं प्राप्त होना ही अच्छा है। अपने आपको योग्य बनाने के अनन्तर सहायकों को उत्पन्न करे। जिस राजा के सहायक नहीं होते उसका मन्त्र सफल नहीं हो सकता है। एक पहिए से गाड़ी नहीं चला करती-अर्थात् केवल राजा से राज्य नहीं चलता। सुख और दुःख में एक समान रहने वाला ही सच्चा सहायक कहाता है ॥१४-१८॥

मानी प्रतिमानिनमात्मनि द्वितीयं मन्त्रमुत्पादयेत् ॥ १६ ॥ अविनीतं स्नेहमात्रेण न मन्त्रे कुर्वीत ॥ २० ॥ श्रुतवन्तमुपधाशुद्धं मन्त्रिणं कुर्वीत ॥ २१ ॥ मन्त्रमूलास्सर्वारम्भाः ॥ २२ ॥ मन्त्ररक्षणे कार्यसिद्धिर्भवति ॥ २३ ॥ मन्त्रविस्रावी कार्यं नाशयति ॥ २४ ॥ प्रमादात् द्विषतां वशमुपयास्यति ॥ २५ ॥ सर्वद्वारेभ्यो मन्त्रो रक्षितव्यः ॥२६॥ मन्त्रसंपदा राज्यं वर्धते श्रेष्ठतमां मन्त्रगुप्तिमाहुः ॥ २७ ॥ कार्यान्धस्य प्रदीपो मन्त्रः ॥ २८ ॥ मन्त्रचक्षुषा परच्छिद्राण्यवलोकयन्ति ॥२९॥ मन्त्रकाले न मत्सरः कर्तव्यः ॥३०॥ त्रयाणामेकवाक्ये संप्रत्ययः ॥ ३१ ॥ कार्याकार्यतत्त्वार्थदर्शिनो मन्त्रिणः ॥ ३२ ॥ षट्कर्णाद्भिद्यते मन्त्रः ॥ ३३ ॥

मनस्वी राजा, किसी दूसरे मनस्वी पुरुष को ही अपना मन्त्री बनावे। स्नेह के कारण किसी अशिक्षित उद्दण्ड या असदाचारी सम्बन्धी को मन्त्र का अधिकार न सौंपें। जिसने शास्त्र का अध्ययन किया और जो शुद्ध आचार वाला है, उसे ही मन्त्री बनाना चाहिए। राज्य के सारे कार्य मन्त्री के ही अधीन होते हैं। मन्त्र के सुरक्षित रहने में ही कार्य-सिद्धि है। जिसने अपने मन्त्र का उद्घाटन कर दिया-उसने स्वयं अपने कार्य का नाश कर लिया। जो मन्त्र के विषय में प्रमाद करता है, वह व्यक्ति शत्रु के फंदे में फंस जाता है, इस लिए सारे प्रयत्न करके अपने मन्त्र की रक्षा करनी चाहिए। मन्त्र की ही शक्ति से राज्य बढ़ता चला जाता है। मन्त्र का गुप्त रख लेना सबसे श्रेष्ठ कार्य है। जब मनुष्य किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है, तब मन्त्र ही दीपक के तुल्य प्रकाश दिखाता है। मन्त्र रूपी आंखों से राजा शत्रु, के छिद्रों को देख सकता है। मन्त्र के अवसर में किसीसे मत्सर (डाह) या द्वेष नहीं करना चाहिए अर्थात् किसी मन्त्रणा को द्वेष के कारण नहीं ठुकरा देना चाहिए। जब तीन व्यक्ति एक मत को निश्चित करले, तो उसके अनुसार कार्य कर देने में प्रवृत्त हो जाना चाहिए। मन्त्री लोग ही कार्य और अकार्य के तत्व के पारगामी होते हैं। कोई २ मन्त्र तो छः कानों में अर्थात् तीसरे व्यक्ति को मालूम होते ही फूट जाता है ॥१६-३३॥

आपत्सु स्नेहसंयुक्त मित्रम् ॥३४॥ मित्रसंग्रहणे बलं संपद्यते ॥ ३५ ॥ बलवानलब्धलाभे प्रयतते ॥ ३६ ॥ अलब्धलाभो नालसस्य ॥ ३७ ॥ अलसस्य लब्धमपि रक्षितुं न शक्यते ॥ ३८ ॥ स चालसस्य रक्षितुं विवर्धते ॥ ३९ ॥ न भृत्यान् प्रेषयति ॥ ४० ॥

जो व्यक्ति आपत्ति में भी साथ न छोड़े उसे ही मित्र कहते हैं। मित्रों के बढ़ जाने पर बल बढ़ जाता है। जब मनुष्य बलवान् हो जाता है, तो वह दुर्लभ शत्रु के पाने का भी साहस कर सकता है। आलसी मनुष्य को वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। आलसी पुरुष तो मिली हुई वस्तु की रक्षा करने में भी असमर्थ हो जाता है। आलसी का सुरक्षित द्रव्य बढ़ भी नहीं सकता है और न वह अपने धन को भृत्यों के उपयोग में ही ला सकता है ॥ ३४-४० ॥

अलब्धलाभादिचतुष्टयं राज्यतन्त्रम् ॥ ४१ ॥ राज्यतन्त्रायत्तं नीतिशास्त्रम् ॥ ४२ ॥ राज्यतन्त्रेष्वायत्तौ तन्त्रावापौ ॥ ४३ ॥ तन्त्रं स्वविषयकृत्येष्वायत्तम् ॥ ४४ ॥ आवापो मण्डलनिविष्टः ॥ ४५ ॥ सन्धिविग्रहयोनिर्मण्डलः ॥ ४६ ॥

(१) नहीं मिली वस्तु का लाभ करना (२) मिली हुई की रक्षा कर लेना (३) रक्षित वस्तु की वृद्धि करना (४) और वृद्धि वस्तु को सेवकादि के उपभोग में लाना-ये चार बातें ही राज्यतन्त्र कहाता है। राज्यतन्त्र का आधार लेकर ही नीति शास्त्र चलता है। राज्य की सत्ता से ही अर्थ शास्त्र को सत्ता और नीति के बीजों का वपन हो सकता है, अपने देश के कर्तव्याकर्तव्य के निर्णय करने में तन्त्र की इति कर्तव्यता है। राजा मंडल के अधीन आवाप (नीति बीज की वपन) है। राजमंडल भी सन्धि और विग्रह के अधीन माना जाता है ॥ ४२-४६ ॥

नीतिशास्त्रानुगो राजा ॥ ४७ ॥ अनन्तरप्रकृतिश्शत्रुः ॥ ४८ ॥ एकान्तरितं मित्रमिष्यते ॥ ४९ ॥ हेतुतश्शत्रुमित्रे भविष्यतः ॥ ५० ॥ हीयमानस्सन्धिं कुर्वीत ॥ ५१ ॥ तेजो हि संधानहेतुस्तदर्थानाम् ॥ ५२ ॥ नातप्तलोहो लोहेन संधीयते ॥ ५३ ॥ बलवान् हीनेन विगृह्णीयात् ॥ ५४ ॥ न ज्यायसा समेन वा ॥ ५५ ॥ गजपादयुद्धमिव बलवद्विग्रहः ॥ ५६ ॥ आमपात्रमामेन सह विनश्यति ॥ ५७ ॥ अरिप्रयत्नमभिसमीक्षेत ॥ ५८ ॥ संधायैकतो वा ॥ ५९ ॥

जो नीति के अनुसार कार्य करता है-वही सच्चा राजा होता है। अपने देश के साथ लगा हुआ राजा शत्रु बन जाता है। एक राजा जब बीच में पड़ जाता है, तो अगला राजा मित्र बन जाता है! बात तो यह है, कि कारण से ही मित्र और कारण से शत्रु होते हैं। किसी की शक्ति क्षीण होती है। उसे सन्धि कर लेनी चाहिए। पृथक् २ कार्यों की सिद्धि का हेतु मनुष्य का तेज ही होता है। बिना गर्म हुए लोहा लोहे से नहीं जुड़ता है। बलवान् राजा, दुर्बल राजा से युद्ध छेड़ देवे, अपने से बड़े या बराबर की शक्ति रखने वाले के साथ कभी युद्ध नहीं करे। बलवान् के साथ युद्ध कर बैठना, हाथी का पैदल के साथ

युद्ध करना है। कच्चा पात्र, कच्चे पात्र से टकराकर फूट जाता है-इसी तरह दो दुर्वल राजा लड़कर नष्ट हो जाते हैं। राजा शत्रु के प्रयत्नों को बराबर देखता रहे और बहुत से शत्रु हों-तो एक से सन्धि करलेवे॥ ४७-५९ ॥

अमित्रविरोधादात्मरक्षामावसेत् ॥ ६० ॥ शक्तिहीनो वलवन्तमाश्रयेत् ॥ ६१ ॥ दुर्वलाश्रयो दुःखमावहति ॥ ६२ ॥ अग्निवद्राजानमाश्रयेत् ॥ ६३ ॥ राज्ञः प्रतिकूलंनाचरेत् ॥ ६४ ॥ उद्धतवेषधरो न भवेत् ॥ ६५ ॥ न देवचरितं चरेत् ॥ ६६ ॥ द्वयोरपीर्ष्यतोः द्वैधीभावं कुर्वीत ॥६७॥ न व्यसनपरस्य कार्यावाप्तिः ॥ ६८ ॥ इन्द्रियवशवर्ती चतुरङ्गवानपि विनश्यति ॥ ६९ ॥ नास्ति कार्यं द्यूतप्रवृत्तस्य ॥ ७० ॥ मृगयापरस्य धर्मार्थौ विनश्यतः ॥ ७१ ॥ अर्थेषणा न व्यसनेषु गण्यते ॥ ७२ ॥ न कामासक्तस्य कार्यानुष्ठानम् ॥ ७३ ॥ अग्निदाहादपि विशिष्टं वाक्पारुष्यम् ॥ ७४ ॥ दण्डपारुष्यात्सर्वजनद्वेष्यो भवति ॥ ७५ ॥ अर्थतोपिणं श्रीः परित्यजति ॥ ७६ ॥

शत्रु के किये गए विरोध के कार्यों से अपनी रक्षा करता रहे। जो राजा निर्बल हो वह वलवान् का आश्रय ग्रहण करे। जो दुर्वल का आश्रय ग्रहण करता है, वह दुःख उठाता है। आग के समीप जैसे-कपड़े लत्ते वचाकर वैठते हैं, ऐसे ही राजा के समीप हाथ पांव वचाकर रहे। राजा के प्रतिकूल कोई कार्य न करे और उसके सन्मुख उद्धत वेष धारण न करे। देवों के चरित के अनुसार अपने चरित चलाने की चेष्टा न करे। जव दो राजा अपने से वैर रखते हों-तो उनमें एक से वनावटी मित्रता करके दूसरे से लड़ाई करले जो व्यक्ति व्यसन (विषयों) में फंसा होता है, उसके कार्य सिद्ध नहीं होते। जो इन्द्रियों के अधीन हैं वह चतुरङ्गिणी सेना रखता हुआ भी नष्ट हो जाता है। जुआरी के कार्य सिद्ध नहीं हो सकते हैं। शिकार में उलझे हुए राजा के धर्म और अर्थ दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। धन कमाने में फंस जाना-व्यसन नहीं है। कामातुर राजा के कार्यों का परिणाम अच्छा नहीं निकलता। वाणी की कठोरता, अग्नि दाह से भी अधिक होती है। दंड की कठोरता से सव मनुष्य द्वेष करने लग जाते हैं। राज्य लक्ष्मी की वृद्धि से सन्तुष्ट हुए राजा को राज्य लक्ष्मी छोड़ देती है ॥ ६०-७६ ॥

अमित्रो दण्डनीत्यामायत्तः ॥ ७७ ॥ दण्डनीतिमधितिष्ठन् प्रजास्संरक्षति ॥ ७८ ॥ दण्डस्संपदा योजयति ॥ ७९ ॥ दण्डाभावे मन्त्रिवर्गाभावः ॥८०॥ न दण्डादकार्याणि कुर्वन्ति ॥ ८१ ॥ दण्डनीत्यामायत्तमात्मरक्षणम् ॥ ८२ ॥

आत्मनि रक्षिते सर्वं रक्षितं भवति ॥ ८३ ॥ आत्मायत्तौ वृद्धिविनाशौ ॥ ८४ ॥ दण्डो हि विज्ञाने प्रणीयते ॥ ८५ ॥

शत्रु, सेनाकी प्रबलता के अधीन होता है। सेना का आश्रय लेकर ही राजा प्रजा को रक्षा में तत्पर हो सकता है। सेना ही सम्पत्ति के प्राप्त कराने का साधन है। यदि सेना न होगी, तो मन्त्री समूह भी न रह पावेगा। सेना के रहने पर वे लोग भी अकार्य नहीं कर सकते हैं। सेना की वृद्धि के साथ ही अपनी रक्षा हो सकती है। जो अपनी रक्षा हो गई। तो सब कुछ सुरक्षित समझो। वृद्धि और विनाश अपने ही अधीन हैं। अच्छी तरह सोच विचार कर ही दंड का प्रयोग करना चाहिए॥ ७७-८५ ॥

दुर्बलोपि राजा नावमन्तव्यः ॥ ८६ ॥ नास्त्यग्नेर्दौर्बल्यम् ॥ ८७ ॥ दण्डे प्रतीयते वृत्तिः ॥ ८८ ॥ वृत्तिमूलमर्थलाभः ॥ ८९ ॥ अर्थमूलौ धर्मकामौ ॥ ९० ॥ अर्थमूलं कार्यम् ॥ ९१ ॥ यदल्पप्रयत्नात्कार्यसिद्धिर्भवति ॥ ९२ ॥ उपायपूर्वं न दुष्करं स्यात् ॥ ९३ ॥ अनुपायपूर्वं कार्यं कृतमपि नश्यति ॥९४॥ कार्यार्थिनामुपाय एव सहायः ॥ ९५ ॥ कार्यं पुरुषकारेण लक्ष्यं संपद्यते ॥९६॥ पुरुषकारमनुवर्तते दैवम् ॥९७॥ दैवं विनाऽतिप्रयत्नं करोति यत्तद्विफलम् ॥९८॥

राजा दुर्बल भी हो गया हो तो भी उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए, कहीं आग दुर्बल नहीं हुआ करती। सारे संसार का व्यवहार राज दंड पर ही अवलम्बित है। व्यवहार के नियम से चलने पर ही अर्थ का लाभ हो सकता है। धर्म और काम, अर्थ के ही अधीन है। सारे कार्य धन के कारण से सम्पन्न होते हैं। यदि धन हो तो थोड़े प्रयत्न से भी कार्य सिद्ध हो जाता है। यदि कार्य, उपाय के साथ किया है, तो अवश्य सिद्ध होगा। अनुपाय के साथ किया गया कार्य, जितना हो गया है, उतना भी नष्ट हो जाता है। जो अपने कार्यों की सिद्धि चाहते है, उन्हें उपाय का ही अवलम्बन लेना चाहिए। पुरुषार्थ के द्वारा किया गया कार्य अवश्य सिद्ध होता है। दैव की सहायता के विना अत्यन्त प्रयत्न से किया गया कार्य भी विफल हो जाता है॥ ७८-९८ ॥

असमाहितस्य वृत्तिर्न विद्यते ॥ ९९ ॥ पूर्वं निश्चित्य पश्चात्कार्यमारभेत् ॥ १०० ॥ कार्यान्तरे दीर्घसूत्रता न कर्तव्या ॥ १०१ ॥ न चलचित्तस्य कार्यावाप्तिः ॥ १०२ ॥ हस्तगतावमाननात्कार्यव्यतिक्रमो भवति ॥ १०३ ॥ दोषवर्जितानि कार्याणि दुर्लभानि ॥ १०४ ॥ दुरनुबन्धं कार्यं नारभेत ॥ १०५ ॥ कालवित् कार्यं साधयेत् ॥१०६॥ कालातिक्रमात्काल एव फलं पिबति ॥१०७॥

क्षणं प्रति कालविक्षेपं न कुर्यात्सर्वकृत्येषु ॥ १०८ ॥ देशफलविभागौ ज्ञात्वा कार्यमारभेत ॥ १०९ ॥ दैवहीनं कार्यं सुसाधमपि दुस्साधं भवति ॥ ११० ॥

प्रमादी पुरुष का कोई व्यवहार नहीं चल सकता है। प्रथम निश्चित करके फिर कार्य का आरम्भ करे। इस कार्य को छोड़कर उसके सहायक दूसरे कार्य के करने में दीर्घ सूत्रता (आलसी पन) नहीं करना चाहिए। चञ्चल मन वाले पुरुष की कभी कार्य सिद्धि नहीं होती। हाथ में आये हुए कार्य का प्रमाद से त्याग करने पर फिर कार्य में बड़ी उलझन पड़ जाती है। सर्वाङ्ग पूर्ण कार्य बहुत कम पूरे होते हैं। जिन कार्यों में दुःखदायी झगड़ों का सामना करना पड़े, उनका आरम्भ ही न करे। जो काल की गति को जानकर चलता है, वही, अपना कार्य बना सकता है। किसी कार्य के करने के समय को चूक जाने पर वह कार्य सम्पन्न नहीं होता, उसके फल को वह काल ही पी जाता है, इसलिए सारे कार्यों के करने में कभी काल को न चूके। देश और काल का विभाग करके ही कार्य का आरम्भ करे। दैव की सहायता से हीन, सीधा कार्य भी टेढा हो जाता है ॥९९-११०॥

नीतिज्ञो देशकालौ परीक्षेत ॥ १११ ॥ परीक्ष्यकारिणि श्रीश्चिरं तिष्ठति ॥ ११२ ॥ सर्वाश्च संपदः सर्वोपायेन परिग्रहेत् ॥ ११३ ॥ भाग्यवन्तमपरीक्ष्य-कारिणं श्रीः परित्यजति ॥ ११४ ॥ ज्ञानानुमानैश्च परीक्षा कर्तव्या ॥ ११५ ॥ यो यस्मिन् कर्मणि कुशलस्तं तस्मिन्नेव योजयेत् ॥ ११६ ॥ दुस्साधमपि सुसाधं करोत्युपायज्ञः ॥ ११७ ॥ अज्ञानिना कृतमपि न बहुमन्तव्यम् ॥ ११८ ॥ यादृच्छिकत्वात् कृमेरपि रूपान्तराणि करोति ॥ ११९ ॥ सिद्धस्यैव कार्यस्य प्रकाशनं कर्तव्यम् ॥१२०॥ ज्ञानवतामपि दैवमानुपदोषात्कार्याणि दुष्यन्ति ॥१२१॥

नीतिमान् राजा, देशकाल को देखता रहे। जो देश काल का देखकर कार्य करता है, उसके पास चिरकाल तक लक्ष्मी ठहरती है। सम्पूर्ण सम्पत्तियों को सारे उपायों से इकट्ठी करे। बिना सोचे विचारे कार्य करने करने वाले को लक्ष्मी छोड़ देती है, चाहे वह कितना ही भाग्यवान् क्यों न होवे। प्रत्येक वस्तु की परीक्षा प्रत्यक्ष और अनुमान् द्वारा कर लेनी चाहिए। जो मनुष्य, जिस कार्य में कुशल हो उसको उसी कार्य में लगाना चाहिए। उपाय का जानने वाला पुरुष, दुःसाध्य कार्य को भी सुलभ बना लेता है। अज्ञानी के द्वारा किये हुए कार्य को बहुत नहीं मानना चाहिए, क्योंकि अनेक कार्य अचानक हो जाते हैं। एक कीड़ा, अचानक कई रूप बदल लेता है। जब कार्य सिद्ध हो जावे, तभी उसका प्रकाश करना चाहिए। ज्ञानी पुरुष के कार्य भी अन्य मनुष्य, के दोष और दैव के विपरीत होने से बिगड़ जाते हैं ॥१११-१२१॥

दैवं शान्तिकर्मणा प्रतिषेद्धव्यम् ॥ १२२ ॥ मानुषीं कार्यविपत्तिं कौशलेन विनिवारयेत् ॥ १२३ ॥ कार्यविपत्तौ दोषान् वर्णयन्ति बालिशाः ॥ १२४ ॥ कार्यार्थिना दाक्षिण्यं न कर्तव्यम् ॥ १२५ ॥ क्षीरार्थी वत्सो मातुरूधः प्रतिहन्ति ॥ १२६ ॥ अप्रयत्नात्कार्यविपत्तिर्भवेत् ॥ १२७ ॥ न दैवप्रमाणानां कार्यसिद्धिः ॥ १२८ ॥ कार्यबाह्यो न पोषयत्याश्रितान् ॥ १२९ ॥ यः कार्यं न पश्यति सोऽन्धः ॥ १३० ॥ प्रत्यक्षपरोक्षानुमानैः कार्याणि परीक्षेत ॥ १३१ ॥ अपरीक्ष्यकारिणं श्रीः परित्यजति ॥१३२॥ परीक्ष्य तार्या विपत्तिः ॥१३३॥ स्वशक्तिं ज्ञात्वा कार्यमारभेत ॥१३४॥ स्वजनं तर्पयित्वा यश्शेषभोजी सोऽमृत भोजी ॥१३५॥ सर्वानुष्ठानादायमुखानि वर्धन्ते ॥ १३६ ॥ नास्ति भीरोः कार्यचिन्ता ॥१३७॥

यदि दैव विरुद्ध हो-तो हवन आदि शान्ति कर्मों द्वारा उसका शमन करना उचित है। जो कोई मनुष्य द्वारा विपत्ति खड़ी की गई है, तो उसको अपनी चतुराई से दूर करदे। जब काम विगड़ जाते हैं, तब उसके दोषों का वर्णन मूर्ख लोग किया करते हैं। जो अपने कामों को सिद्ध करना चाहे, उसे बहुत सीधा नहीं रहना चाहिए। दूध की इच्छा करने वाला बछड़ा अपनी माता के स्तनों तक में टक्कर लगाता है अर्थात् विना टक्कर मारे, सीधे पन से काम नहीं निकल सकता है। उत्तम रीति से उपाय न करने पर कार्य, विगड़ जाते हैं। दैव के भरोसे रहने वाले पुरुषों के कार्यों की सिद्धि नहीं होती है। जब कार्य असिद्ध हो जाते हैं, तो राजा आश्रित पुरुषों का भरण पोषण करने में समर्थ नहीं हो सकता है। जो अपने कार्य की सिद्धि के समय को नहीं पहचान पाता, वह अन्धा है। प्रत्यक्ष, शब्द और अनुमानों से अपने कामों के उत्तम या सिद्ध होने की परीक्षा करे। जो विना विचारे कार्य करता है, उसको राज्य लक्ष्मी छोड़ देती है। विचार पूर्वक, विपत्ति से उद्धार का उपाय करे। अपनी शक्ति को जानकर कार्य का आरम्भ करे। अपने स्वजन को खिलाकर जो आप खाता है; वह, अमृत भोजन करता है। अनेक उचित कार्यों के आरम्भ कर देने से आमदनी बढ़ती हैं। परिश्रम से डरने वाले पुरुष को अपने कार्य विगने की चिन्ता नहीं होती है ॥१२२-१३७॥

स्वामिनश्शीलं ज्ञात्वा कार्यार्थी कार्यं साधयेत् ॥ १३८ ॥ धेनोश्शीलज्ञः क्षीरं भुङ्क्ते ॥ १३९ ॥ क्षुद्रे गुह्यप्रकाशनमात्मवान्न कुर्यात् ॥१४०॥ आश्रितैरप्यवमन्यते मृदुस्वभावः ॥१४१॥ तीक्ष्णदण्डस्सर्वैरुद्वेजनीयो भवति ॥१४२॥ यथार्हदण्डकारी स्यात् ॥ १४३ ॥ अल्पसारं श्रुतवन्तमपि न बहुमन्यते लोकः ॥ १४४ ॥ अतिभारः पुरुषमवसादयति ॥ १४५ ॥ यस्संसदि परदोषं शंसति

स स्वदोषबहुत्वं प्रख्यापयति ॥ १४६ ॥ आत्मानमेव नाशयत्यनात्मवतां कोपः ॥ १४७ ॥ नास्त्यप्राप्यं सत्यवताम् ॥ १४८ ॥ साहसेन न कार्यसिद्धिर्भवति ॥ १४६ ॥ व्यसनार्तो विस्मरत्यप्रवेशेन ॥ १५० ॥

अपने स्वामी की आदतों के अनुसार चलकर कार्य करने वाला पुरुष अपने कार्यों को सिद्ध करे। जो पुरुष गौ की आदत को जानकर दूध निकालता है, वह अच्छी तरह दूध को प्राप्त कर लेता है। समझदार आदमी, क्षुद्र पुरुष के सन्मुख अपने गुप्त कार्यों को प्रकट न करें। जो मृदुस्वभाव होता है, उसके सेवक या घरके पुरुष भी उसका अपमान कर बैठते हैं। जो अत्यन्त तीक्ष्ण प्रकृति का होता है, उससे सारे लोग बिगड़ जाते हैं, इससे यथा योग्य व्यवहार करने वाला बनकर चले। जो शास्त्र का ज्ञाता है, परन्तु शक्तिहीन है, उस राजा या व्यक्ति का भी संसार आदर नहीं करता है। अत्यन्त बोझा पुरुष को खिन्न बना देता है। जो मनुष्य, सभा में दूसरे के दोष कहता है वह तो सबसे अधिक अपनी दुष्टता प्रकट करता है। अपने आपको वश में नहीं रखकर चलने वाले निर्बल व्यक्ति, यदि कोप कर बैठते हैं, तो वे अपना ही नाश करते हैं। सत्यव्रती पुरुषों को कुछ अप्राप्त नहीं है। कोरे साहस से कार्य नहीं बना करता है ॥१३८-१५०॥

नास्त्यनन्तरायः कालविक्षेपे ॥ १५१ ॥ असंशयविनाशात्संशयविनाशश्श्रेयान् ॥ १५२ ॥ अपरधनानि निक्षेप्तुः केवलं स्वार्थम् ॥ १५३ ॥ दानं धर्मः ॥ १५४ ॥ नार्यागतोऽर्थवद्विपरीतोऽनर्थभावः १५५ ॥ योधर्मार्थौ न विवर्धयति स कामः ॥ १५६ ॥ तद्विपरीतोऽनर्थसेवी ॥ १५७ ॥ ऋजुस्वभावपरो जनेषु दुर्लभः ॥ १५८ ॥ अवमाने नागतमैश्वर्यमवमन्यते साधुः ॥ १५६ ॥ बहूनपि गुणानेकदोषो ग्रसति ॥ १६० ॥ महात्मना परेण साहसं न कर्तव्यम् ॥ १६१ ॥ कदाचिदपि चारित्रं न लङ्घयेत् ॥ १६२ ॥ क्षुधाऽऽर्तो न तृणंचरति सिंहः ॥ १६३ ॥ प्राणादपि प्रत्ययो रक्षितव्यः ॥ १६४ ॥ पिशुनश्श्रोता पुत्रदारैरपि त्यज्यते ॥ १६५ ॥

किसी कार्य के करने में काल व्यतीत कर देने से विघ्न उपस्थित हो जाना, स्वाभाविक बात है। जिस कार्य के करने में अवश्य विनाश हो-उसकी अपेक्षा जिस कार्य के करने में विनाश का सन्देह हो-तो सन्देह वाला कार्य करना चाहिए। दूसरे के धन को धरोहर के रूप में रखने वाले पुरुष का स्वार्थ ही स्वार्थ है। दान को ही धर्म समझो। वैश्य के ढंग पर स्वार्थ के ध्यान से किया हुआ दान सफल नहीं होता और जो दान दिया

ही न जावेगा, वह तो बहुत ही अनर्थ का कारण बन जावेगा। जो धर्म और अर्थ को हानि नहीं करता है-उसे ही काम समझो और जो धर्म और अर्थ की हानि करने वाले काम का सेवन करता है, वह अनर्थ का सेवन करता है। शील प्रकृति मनुष्य, बहुत ही दुर्लभ है। अपमान से आने वाले ऐश्वर्य को मनस्वी पुरुष, ठुकरा देते हैं। कभी २ बहुत से गुणों को एक दोष भी नष्ट कर देता है। समझदार पुरुष को शत्रु के साथ खिलवाड़ नहीं करनी चाहिए। सदाचार का कभी उल्लंघन न करे। भूखा भी सिंह घास नहीं चरा करता। प्राण देकर भी अपने पर किये गए दूसरे के भरोसे को पूरा करो। चुगुली करने और सुनने वाले को उसके पुत्र और स्त्री भी छोड़ देते हैं ॥१५१-१६५॥

बालादप्यर्थजातं शृणुयात् ॥ १६६ ॥ सत्यमप्यश्रद्धेयं न वदेत् ॥ १६७॥ नाल्पदोषाद्बहुगुणास्त्यज्यन्ते ॥ १६८ ॥ विपश्चित्स्वपि सुलभा दोषाः ॥ १६९ ॥ नास्ति रत्नमखण्डितम् ॥ १७० ॥ मर्यादातीतं न कदाचिदपि विश्वसेत् ॥ १७१ ॥ अप्रिये कृतं प्रियमपि द्वेष्यं भवति ॥ १७२ ॥ नमन्त्यपि तुलाकोटिः कूपोदकक्षयं करोति ॥ १७३ ॥ सतां मतं नातिक्रमेत् ॥ १७४ ॥ गुणवदाश्रयान्निर्गुणोपि गुणी भवति ॥ १७५ ॥ क्षीराश्रितं जलं क्षीरमेव भवति ॥१७६॥ मृत्पिण्डोपि पाटलिगन्धमुत्पादयति ॥ १७७ ॥ रजतं कनकसंगात्कनकं भवति ॥ १७८ ॥ उपकर्तर्यपकर्तुमिच्छत्यबुधः ॥ १७९ ॥ न पापकर्मणामाक्रोशभयम् ॥ १८० ॥

बालक के वचन भी यदि कार्य के बनाने वाले हैं, तो उन पर भी ध्यान देना चाहिए। अश्रद्धा के योग्य सत्य बात को भी एक दम न कह देवे। थोड़े से दोष के कारण बहुत गुण वाले पुरुष को छोड़ नहीं देना चाहिए। दोष तो विद्वान् पुरुष में भी निकल आते हैं, रत्न में भी छिद्र होता ही है। मर्यादा से अधिक, किसी का विश्वास न करे। अप्रिय पुरुष के साथ किया गया प्रियकार्य भी लोग वैर ही समझते हैं। झुकती हुई भी ढेंकली की डण्डी कुए के पानी को उलीच देती है, अर्थात् झुक कर कार्य करने वाला ही गहराई से भी अपने कार्य को बना लेता है। विद्वानों की सम्मति का अतिक्रमण न करो। गुणवान् के आश्रय से निर्गुण भी गुणी बन जाता है। दूध में डाला हुआ जल भी दूध ही होकर बिकता है। मिट्टी का पिण्ड भी, पाटलिपुष्प की सुगन्ध उसके सहवास से देने लगता है। सोने में मिलाई हुई चांदी भी सोने के समान दिखाई देती है। दुष्ट पुरुष, उपकारी का भी अपकार ही करना चाहता है। पाप कर्म करने वाले पुरुष, निन्दा से नहीं डरा करते हैं ॥१६६-१८०॥

उत्साहवतां शत्रवोपि वशीभवन्ति ॥१८१॥ विक्रमधना राजानाः ॥१८२॥ नास्त्यलसस्यैहिकामुष्मिकम्.॥ १८३॥ निरुत्साहाद्दैवं पतीत ॥ १८४ ॥ मत्स्यार्थीव जलमुपयुज्यार्थं गृह्णीयात् ॥ १८५ ॥ अविश्वस्तेषु विश्वासो न कर्तव्यः ॥ १८६ ॥ विषं विषमेव सार्वकालम् ॥ १८७ ॥ अर्थसमादाने वैरिणां सङ्ग एव न कर्तव्यः ॥ १८८ ॥ अर्थसिद्धौ वैरिणं न विश्वसेत ॥ १८९ ॥ अर्थाधीन एव नियतसंबन्धः ॥ १९० ॥ शत्रोरपि सुतस्सखा रक्षितव्यः ॥ १९१ ॥ यावच्छत्रोश्छिद्रं पश्यति तावद्धस्तेन वा स्कन्धेन वा वाह्यः ॥ १९२ ॥ शत्रु छिद्रे परिहरेत् ॥ १९३ ॥ आत्मच्छिद्रं न प्रकाशयेत् ॥ १९४ ॥ छिद्रप्रहारिणश्शत्रवः ॥ १९५ ॥ हस्तगतमपि शत्रुं न विश्वसेत् ॥ १९६ ॥

उत्साही पुरुषोंके शत्रु भी वश में हो जाते हैं। राजा का मुख्यपन पराक्रम का दिखाना ही है। आलसी पुरुष का यह लोक और परलोक दोनों नहीं बनते हैं। निरुत्साह होने से भाग्य भी गिर जाता है। मछली पकड़ने वाला पुरुष, जैसे-जलका उपयोग करके अपने कामको बनाता हैं, ऐसे ही मनुष्य अपने कार्य के सिद्ध करने को श्रम के जलमें गोता लगावे। जो व्यक्ति विश्वास के योग्य नहीं हैं उनका विश्वास न करे, जो विष है, वह तो सदा ही विष रहेगा। अपने कार्य को सिद्धि करने के काल में कभी वैरियों का समागम न करे। जब अपना काम हो जावे, तब भी वैरी का विश्वास न करे। स्वार्थ के साथ सम्बन्ध चलते हैं। शत्रु का पुत्र यदि मित्रता का व्यवहार करे-तो उस की मित्र की तरह रक्षा करनी चाहिए। जब तक शत्रु की कमी हाथ आवे, तब तक उसे हाथ या कन्धे पर उठाये रहे। जब शत्रु का छिद्र हाथ आ जावे, तब उसे छोड़ देवे। अपने छिद्र को कभी प्रकट न होने देवे। शत्रु लोग, छिद्र पर प्रहार कर बैठते हैं। अपने अधीन बने शत्रु का भी विश्वास न करे ॥ १८१-१९६ ॥

स्वजनस्य दुर्वृत्तं निवारयेत् ॥ १९७ ॥ स्वजनावमानोपि मनस्विनां दुःखमावहति ॥ १९८ ॥ एकाङ्गदोषः पुरुषमवसादयति ॥ १९९ ॥ शत्रुं जयति सुवृत्तता ॥ २०० ॥ निकृतिप्रिया नीचाः ॥ २०१ ॥ नीचस्य मतिर्न दातव्या ॥ २०२ ॥ तेषु विश्वासो न कर्तव्यः ॥ २०३ ॥ सुपूजितोपि दुर्जनः पीडयत्येव ॥२०४ ॥ चन्दनादीनपि दावोऽग्निर्दहत्येव ॥ २०५ ॥ कदाऽपि पुरुषं नावमन्येत ॥ २०६ ॥ क्षन्तव्यमिति पुरुषं न बाधेत ॥ २०७ ॥ भर्त्राऽधिकं रहस्युक्तं वक्तुमिच्छन्त्यबुद्धयः ॥ २०८ ॥ अनुरागस्तु फलेन सूच्यते ॥ २०९ ॥ प्रज्ञाफ

लमैश्वर्यम् ॥ २१० ॥ दातव्यमपि बालिशः परिक्लेशेन दास्यति ॥ २११ ॥ महदैश्वर्यं प्राप्याप्यधृतिमान् विनश्यति ॥२१२॥ नास्त्यधृतेरैहिकामुष्मिकम् ॥ २१३ ॥

अपने सम्बन्धी के दुराचरणों को निवृत्त करने की चेष्टा करे। अपने सम्बन्धियों का अपमान भी मनस्वी पुरुष को दुःखी कर देता है। एक साधारण दोष भी पुरुष के नष्ट करने में पर्याप्त होता है। सदाचरण ही शत्रु पर विजय कराता है। छल या अपमान करना नीच पुरुषों को प्रिय लगता है। नीच पुरुष को कभी बुद्धि नहीं देनी चाहिए और न उन का विश्वास करना चाहिए। अच्छी तरह आदर करने पर भी दुर्जन पीड़ा ही पहुंचाता है। वन की आग चन्दन के वृक्षों को भी जला देती है, मनस्वी पुरुष का कभी अनादर न करे। किसी पुरुष को क्षमा करने के निमित्त न दबावे, दुर्जन पुरुष भर्ता की एकान्त में कही हुई बात को भी खूब बढ़ा कर खोल देते हैं। प्रेम की परीक्षा-जो फल के द्वारा ही होती है। ऐश्वर्य की प्राप्ति ही बुद्धि का फल है। अवश्य दी जाने वाली वस्तु को भी मूर्ख बड़ी झंझट से देता है। महान् ऐश्वर्य को पाकर भी धैर्य रहित पुरुष नष्ट हो जाता है। धैर्य हीन पुरुष इस लोक और परलोक दोनों को नहीं बना सकता है ॥१६७-२१३॥

न दुर्जनैस्सह संसर्गः कर्तव्यः ॥ २१४ ॥ शौण्डहस्तगतं पयोऽप्यवमन्येत ॥ २१५ ॥ कार्यसंकटेष्वर्थव्यवसायिनी बुद्धिः ॥ २१६ ॥ मितभोजनं स्वास्थ्यम् ॥ २१७ ॥ पथ्यमपथ्यं वाजीर्णे नाश्नीयात् ॥ २१८ ॥ जीर्णभोजिनं व्याधिर्नोपसर्पति ॥ २१९ ॥ जीर्णशरीरे वर्धमानं व्याधिं नोपेक्षेत ॥ २२० ॥ अजीर्णे भोजनं दुःखम् ॥ २२१ ॥ शत्रोरपि विशिष्यते व्याधिः ॥ २२२ ॥ दानं निधानमनुगामि ॥ २२३ ॥ पटुतरे तृष्णापरे सुलभमतिसन्धानम् ॥२२४॥ तृष्णया मतिश्छाद्यते ॥ २२५ ॥ कार्यबहुत्वे बहुफलमायतिकं कुर्यात् ॥ २२६ ॥ स्वयमेवावस्कन्नं कार्यं निरीक्षेत ॥२२७॥ मूर्खेषु साहसं नियतम् ॥२२८॥ मूर्खेषु विवादो न कर्तव्यः ॥ २२९ ॥ मूर्खेषु मूर्खवत्कथयेत् ॥ २३० ॥ आयसैरायसं छेद्यम् ॥ २३१ ॥ नास्त्यधीमतस्सखा ॥ २३२ ॥

दुष्ट पुरुषों का सहवास न करे। सुरा बेचने वाले के हाथ में दूध भी सुरा ही प्रतीत होता है। कार्य के संकट उपस्थित होने पर भी जो बुद्धि काम करती रहती है, वही बुद्धि श्रेष्ठ है। थोड़ा भोजन करना ही स्वास्थ्य की जड़ है। अजीर्ण होने पर हितकारी अहितकारी कोई भी पदार्थ हो-नहीं खाना चाहिए। जीर्ण होने पर जो

भोजन करता है, उसे व्याधि नहीं घेर सकती है। वृद्ध शरीर में बढ़ती हुई व्याधि की उपेक्षा न करो। अजीर्ण में भोजन बड़ा दुःख दायी होता है। व्याधि शत्रु से भी अधिक माननी चाहिए दान कोश के अनुसार होना चाहिए। जो मनुष्य तृष्णातुर है। उसका मना लेना बहुत ही सीधी बात है। तृष्णासे बुद्धि मारी जाती है। जब अनेक कार्य सामने आ पड़े-तो भविष्य में अत्यन्त फल देने वाला कार्य करना चाहिए। शत्रु पर की गई चढ़ाई आदि के कार्य का राजा स्वयं ही निरीक्षण करे। मूर्खों में किसी भी बात में कूद पड़ने की हिम्मत होती है, ऐसे मूर्खों से विवाद नहीं करना चाहिए। मूर्खों में तो मूर्खों की समझ की सी बात करनी चाहिए। लोहे को लोहे से काटो अर्थात् मूर्ख की बात को उसकी सी बात से ही काटो, मूर्ख का कोई मित्र नहीं होता ॥२१४-२३२॥

धर्मेण धार्यते लोकः ॥ २३३ ॥ प्रेतमपि धर्माधर्मावनुगच्छतः ॥२३४॥ दया धर्मस्य जन्मभूमिः ॥ २३५ ॥ धर्ममूले सत्यदाने ॥ २३६ ॥ धर्मेण जयति लोकान् ॥ २३७ ॥ मृत्युरपि धर्मिष्ठं रक्षति ॥ २३८ ॥ धर्माद्विपरीतं पापं यत्र यत्र प्रसज्यते तत्र धर्मावमतिर्महती प्रसज्यते ॥ २३९ ॥ उपस्थितविनाशानां प्रकृत्या कार्येण लक्ष्यते ॥ २४० ॥ आत्मविनाशं सूचयत्यधर्मबुद्धिः ॥ २४१ ॥ पिशुनवादिनो न रहस्यम् ॥ २४२ ॥ पररहस्यं नैव श्रोतव्यम् ॥ २४३ ॥ वल्लभस्य कारकत्वमधर्मयुक्तम् ॥ २४४ ॥ स्वजनेष्वतिक्रमो न कर्तव्यः ॥२४५॥ माताऽपि दुष्टा त्याज्यां ॥ २४६ ॥ स्वहस्तोपि विषदिग्धश्छेद्यः ॥ २४७ ॥ परोपि च हितो बन्धुः ॥ २४८ ॥ कक्षादप्यौषधं गृह्यते ॥ २४९ ॥ नास्ति चोरेषु विश्वासः ॥ २५० ॥ अप्रतीकारेष्वनादरो न कर्तव्यः ॥ २५१ ॥ व्यसनं मनागपि बाधते ॥ २५२ ॥

संसार की धारणा धर्म से होती है। धर्म और अधर्म, मरे हुए पुरुष के भी साथ जाते हैं। दया ही धर्म की जन्मभूमि है। इसी तरह सत्य और दान भी धर्म के आश्रय हैं। धर्म से सारे लोकों का जय किया जा सकता है। धर्मात्मा पुरुष की मृत्यु भी रक्षा करती है। धर्म के विपरीत जहां २ पाप होता है, वहां २ धर्म का महान् तिरस्कार होता रहता है। उन्नति और अवनति के लक्षण मनुष्य की प्रकृति और कार्यों से प्रतीत हो जाते हैं। अधर्म बुद्धि अपने विनाश की सूचना देती है। चुगलखोर पुरुष की बात खुले बिना नहीं रहती है। दूसरे की गुप्त बात सुनने की चेष्टा न करो। प्रेमी का स्वार्थी होना बड़े अधर्म की बात है। अपने प्रिय पुरुषों के साथ नियमों का उल्लंघन न करो। माता भी

दुष्ट हो-तो भी छोड़ देनी चाहिए। विष से भरा हुआ, अपना हाथ भी काट दिया जाता है। यदि पराया भी हितकारी हो-तो वह भी अपना बन्धु समझना चाहिए। सूखे जंगल से भी औषध लाई जा सकती है। चोरों का विश्वास नहीं करना चाहिए। प्रतीकार के अयोग्य वस्तुओं में अनादर नहीं दिखाना चाहिए। व्यसन तो थोड़ा भी बाधा पहुंचा देता है ॥२३३-२५२॥

अमरवदर्थजातमार्जयेत् ॥२५३॥ अर्थवान् सर्वलोकस्य बहुमतः ॥२५४॥ महेन्द्रमप्यर्थहीनं न बहुमन्यते लोकः ॥ २५५ ॥ दारिद्र्यं खलु पुरुषस्य जीवितं मरणम् ॥ २५६ ॥ विरूपोऽर्थवान् सुरूपः ॥ २५७॥ अदातारमप्यर्थवन्तमर्थिनो न त्यजन्ति ॥ २५८ ॥ अकुलीनोपि कुलीनाद्विशिष्टः ॥ २५९ ॥ नास्त्यमानभयमनार्यस्य ॥ २६० ॥ न चेतनवतां वृत्तिभयम् ॥ २६१ ॥ न जितेन्द्रियाणां विषयभयम् ॥ २६२ ॥ न कृतार्थानां मरणभयम् ॥२६३ ॥ कस्यचिदर्थं स्वमिव मन्यते साधुः ॥ २६४ ॥ परविभवेष्वादरो न कर्तव्यः ॥ २६५ ॥ परविभवेष्वादरोपि नाशमूलम् ॥ २६६ ॥ पलालमपि परद्रव्यं न हर्तव्यम् ॥ २६७ ॥ परद्रव्यापहरणमात्मद्रव्यनाशहेतुः ॥ २६८ ॥ न चौर्यात्परं मृत्युपाशः ॥२६९॥ यवागूरपि प्राणधारणं करोति काले ॥२७०॥ न मृतस्यौषधं प्रयोजनम् ॥२७१॥ समकाले स्वयमपि प्रभुत्वस्य प्रयोजनं भवति ॥ २७२ ॥

अपने आपको अमर समझकर धन का अर्ज न करो। अर्थवान् मनुष्य सब लोकों में बहुमत होता है। धन हीन इन्द्र का भी कोई आदर नहीं करता है। दरिद्री, मनुष्य का जीते जी मृत्यु है। धनवान् सब तरह से भद्दा भी अच्छा होता है। कजूंस धनी को भी उसके याचक छोड़ जाते हैं। लोग धनवान के कुलीन न होने पर भी उसे कुलीनों से श्रेष्ठ समझते रहते हैं। अनार्य पुरुष को अपमान का भय नहीं होता है। उद्योग शील पुरुषों को अपनी वृत्ति के विषय में भय नहीं होता है। जो जितेन्द्रिय पुरुष हैं, उनको विषय जन्य बुराईयों का भय नहीं हो सकता है। जो अपना काम कर चुके-उन्हें फिर मृत्यु का भय नहीं होता हैं। सज्जन, किसी भी अन्य पुरुष के स्वार्थ को अपना ही स्वार्थ समझ कर उसे पूरा करते हैं। दूसरे की सम्पत्ति के हड़पजाने को मन नहीं चलाना चाहिए। दूसरे की सम्पत्ति के निगलने की इच्छा, अपने नाश का कारण होती है। तुपतूड़े की त ह निरर्थक पड़ा हुआ भी दूसरे का धन, नहीं स्वीकार करना चाहिए। दूसरे के द्रव्य का अपहरण पने द्रव्य के नाश का हेतु है। चोरी से अधिक मृत्यु की दूसरी फांसी नहीं है। रोग आदि के समय पर खिचड़ी भी प्राण धारण कर देती है। मृतक पुरुष को औषध से क्या प्रयोजन रह

जाता है। किसी समय में अपने आप, प्रभुता (ऐश्वर्य) से प्रयोजन पड़ जाता है अर्थात् ऐश्वर्य की आवश्यकता हो जाती है ॥२५३-२७२॥

नीचस्य विद्याः पापकर्मणि योजयन्ति ॥ २७३ ॥ पयःपानमपि विषवर्धनं भुजङ्गस्य नामृतं स्यात् ॥ २७४ ॥ न हि धान्यसमो ह्यर्थः ॥ २७५ ॥ न क्षुधासमश्शत्रुः ॥ २७६ ॥ अकृतेर्नियता क्षुत् ॥ २७७ ॥ नास्त्यभक्ष्यं क्षुधितस्य ॥ २७८ ॥ इन्द्रियाणि जरावशं कुर्वन्ति ॥ २७९ ॥ सानुक्रोशं भर्तारमाजीवेत् ॥ २८० ॥ लुब्धसेवी पावकेच्छया खद्योतं धमति ॥ २८१ ॥ विशेषज्ञं स्वामिनमाश्रयेत् ॥ २८२ ॥ पुरुषस्य मैथुनं जरा ॥ २८३ ॥ स्त्रीणाममैथुनं जरा ॥ २८४ ॥ न नीचोत्तमयोर्विवाहः ॥ २८५ ॥ अगम्यागमनादायुर्यशःपुण्यानि क्षीयन्ते ॥ २८६ ॥ नास्त्यहङ्कारसमश्शत्रुः ॥ २८७ ॥ संसदि शत्रुं न परिक्रोशेत् ॥ २८८ ॥ शत्रुव्यसनं श्रवणसुखम् ॥ २८९ ॥ अधनस्य बुद्धिर्न विद्यते ॥ २९० ॥ हितमप्यधनस्य वाक्यं न गृह्यते ॥ २९१ ॥ अधनस्स्वभार्ययाऽप्यवमन्यते ॥ २९२ ॥ पुष्पहीनं सहकारमपि नोपासते भ्रमराः ॥ २९३ ॥ विद्या धनमधनानाम् ॥ २९४ ॥ विद्या चौरैरपि न ग्राह्या ॥२९५॥ विद्यया ख्यापिता ख्यातिः ॥ २९६ ॥ यशश्शरीरं न विनश्यति ॥ २९७॥

नीच पुरुष की विद्याएँ, उसे पाप कर्म में प्रवृत्त कर देती है। सर्प को दूध पिलाना भी विष को ही बढ़ाता है, अमृत को नहीं उत्पन्न करता। अन्न की बराबर कोई धन नहीं है। भूख के बराबर कोई शत्रु नहीं है। कर्म नहीं करने वाले को एक दिन, भूख की बाधा उपस्थित होती है। भूखे पुरुष को कुछ भी अभक्ष्य नहीं है। विषय भोग वासना, ही. पुरुष को वृद्धावस्था में फेंक देती है। दयालु स्वामी के पास नौकरी करने की इच्छा करे। लालची स्वामी का सेवक, आग उत्पन्न करने को खद्योत (गुगनू) को पंखे से झलता है। विद्वान् स्वामी की सेवा करनी चाहिए। पुरुष को अधिक मैथुन से बुढ़ापा शीघ्र आ जाता है। पुरुषाभिलाषिणी स्त्री को मैथुन न मिलना-उसे वृद्धा बना देता है। नीच और उत्तम जनों का विवाह सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। अगम्य स्त्री के साथ संभोग करने से आयु यश, और पुण्य क्षीण हो जाता है। अहङ्कार के समान शत्रु नहीं। सभा में शत्रु की भी निन्दा न करे। शत्रु की विपत्ति को सुनकर केवल कानों को आनन्द प्राप्त होता है। धन हीन पुरुष के बुद्धि ही नही रह जाती है। धन हीन पुरुष का हितकारी वाक्य भी ग्रहण नहीं किया जा सकता है। निर्धन पुरुष का अपनी भार्या भी तिरस्कार कर देती है।

पुष्प हीन आम के पास भौंरे नहीं जाते । निर्धनों का तो विद्या ही धन है। विद्या को चोर भी नहीं चुरा सकते हैं। विद्या से बहुत शीघ्र प्रसिद्धि हो जाती है। मनुष्य के यश का शरीर कभी नष्ट नहीं होता ॥२७३-२६७॥

यः परार्थमुपसर्पतिन सत्पुरुष ॥२६८॥ इन्द्रियाणां प्रशमं शास्त्रम् ॥२६९॥ अशास्त्रकार्यवृत्तौ शास्त्रांकुशं निवारयति ॥ ३०० ॥ नीचस्य विद्या नोपेतव्या ॥ ३०१ ॥ म्लेच्छभाषणं न शिक्षेत ॥ ३०२ ॥ म्लेच्छानामपि सुवृत्तं ग्राह्यम् ॥३०३॥ गुणे न मत्सरः कर्तव्यः ॥ ३०४ ॥ शत्रोरपि सुगुणो ग्राह्यः ॥ ३०५ ॥ विषादप्यमृतं ग्राह्यम् ॥ ३०६ ॥ अवस्थया पुरुषस्सं मान्यते ॥ ३०७ ॥ स्थान एव नराः पूज्यन्ते ॥ ३०८ ॥ आर्यवृत्तमनुतिष्ठेत् ॥ ३०९ ॥ कदाऽपि मर्यादां नातिक्रमेत् ॥ ३१० ॥ नास्त्यर्घः पुरुषरत्नस्य ॥ ३११ ॥ न स्त्रीरत्नसमं रत्नम् ॥ ३१२ ॥ सुदुर्लभं रत्नम् ॥३१३॥ अयशो भयं भयेषु ॥३१४॥ नास्त्यलसस्य शास्त्राधिगमः ॥ ३१५ ॥ नस्त्रैणस्य स्वर्गाप्तिर्धर्मकृत्यं च ॥ ३१६ ॥ स्त्रियोपि स्त्रैणमवमन्यन्ते ॥ ३१७ ॥ न पुष्पार्थी सिञ्चति शुष्कतरुम् ॥ ३१८ ॥ अद्रव्य-प्रयत्नो बालुकाक्वथनादनन्यः ॥ ३१९ ॥ न महाजनहासः कर्तव्यः ॥ ३२० ॥ कार्यसंपदं निमित्तानि विशेषयन्ति ॥ ३२१ ॥ नक्षत्रादपि निमित्तानि विशेषयन्ति ॥ ३२२ ॥ न त्वरितस्य नक्षत्रपरीक्षा ॥ ३२३ ॥

जो पराये के उपकार को आगे बढ़ता है, वही सत्पुरुष है । शास्त्र ज्ञान ही इन्द्रियों के वेग को रोकने में समर्थ हो सकता है। उच्छृङ्खल कार्य करने लग पड़ने पर शास्त्र का अंकुश ही मनुष्य को रोककर ठिकाने पर लाता है। नीच पुरुष की विद्या की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए अर्थात् नीच से भी विद्या ग्रहण कर लेनी चाहिए। म्लेच्छों का सा बोल चाल का ढंग नहीं सीखना चाहिए । कोई म्लेच्छों की भी अच्छी बात हो-तो उसे ग्रहण कर लेनी चाहिए। दूसरे के गुण से कभी डाह नहीं करना चाहिए। अच्छे गुणों को शत्रु से भी ग्रहण कर लेना चाहिए । विष से भी अमृत निकाल लेना चाहिए पुरुष जिस अवस्था में होता है, उसीके अनुसार उसका आदर होता है । अपने २ स्थान पर पुरुषों की पूजा होती है। सदा मनुष्य, आर्य (श्रेष्ठ) आचरण करता रहे। मर्यादा का कभी अतिक्रमण न करे। पुरुष रूपी रत्न का कोई मूल्य नहीं हो सकता है । स्त्री रत्न के तुल्य रत्न नहीं है। रत्न वस्तु का मिलना अत्यन्त ही कठिन है। सारे भयों में अपकीर्ति बड़ा भय का स्थान है। आलसी पुरुष को कभी शास्त्र की प्राप्ति नहीं होती । स्त्रियों के व्यसनी को स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती और न वह कोई धर्म का कार्य ही कर सकता है। स्त्रियों में

पड़े रहने वाले पुरुष की स्त्रियां भी अपमान कर देती है। पुष्पों की इच्छा करने वाला, सूखे वृक्ष को नहीं सींचता है। बिना द्रव्य के किसी बात का प्रयत्न करना बालू मिट्टी का मथ कर तेल निकालना है। बड़े आदमियों की हंसी नहीं करनी चाहिए। किसी कार्य के लक्षण, उसकी सिद्धि असिद्धि को सूचित कर देते हैं। ये निमित्त नक्षत्र से भी अधिक कार्य की सिद्धि के सूचक समझने चाहिए। अपने कार्य को शीघ्र करने की इच्छा रखने वाला पुरुष, कभी नक्षत्र की चर्चा नहीं करता है ॥२१८-३२३॥

परिचये दोषा न छाद्यन्ते ॥ ३२४ ॥ स्वयमशुद्धः परानाशङ्कते ॥ ३२५ ॥ स्वभावो दुरतिक्रमः ॥ ३२६ ॥ अपराधानुरूपो दण्डः ॥ ३२७ ॥ कथानुरूपं प्रतिवचनम् ॥ ३२८ ॥ विभवानुरूपमाभरणम् ॥ ३२९ ॥ कुलानुरूपं वृत्तम् ॥ ३३० ॥ कार्यानुरूपः प्रयत्नः ॥ ३३१ ॥ पात्रानुरूपं दानम् ॥ ३३२ ॥ वयोऽनुरूपो वेषः ॥ ३३३ ॥ स्वाम्यनुकूलो भृत्यः ॥ ३३४ ॥ भर्तृवशवर्तिनी भार्या ॥ ३३५ ॥ गुरुवशानुवर्ती शिष्यः ॥ ३३६ ॥ पितृवशानुवर्ती पुत्रः ॥ ३३७ ॥ अत्युपचारश्शङ्कितव्य ॥ ३३८ ॥ स्वामिनमेवानुवर्तेत ॥ ३३९ ॥ मातृताडितो वत्सो मातरमेवानुरोदिति ॥ ३४० ॥ स्नेहवतस्स्वल्पो हि रोषः ॥ ३४१ ॥ आत्मच्छिद्रं न पश्यति परच्छिद्रमेव पश्यति बालिशः ॥ ३४२ ॥ सोपचारः कैतवः ॥ ३४३ ॥ काम्यैर्विशेषैरुपचरणमुपचारः ॥ ३४४ ॥ चिरपरिचितानामत्युपचारश्शङ्कितव्यः ॥ ३४५ ॥ गौर्दुष्करा श्वसहस्रादेकाकिनी श्रेयसी ॥ ३४६ ॥ श्वोमयूरादद्यकपोतो वरः ॥ ३४७ ॥

किसी बड़े पुरुष से परिचय हो जाने पर भी दोष नहीं मिट जाते हैं। जो स्वयं अशुद्ध है, वह दूसरों पर अधिक आशङ्का करता है। स्वभाव का अतिक्रमण कर जाना बहुत कठिन बात है। दण्ड अपराध के अनुरूप होना चाहिए। जैसा प्रश्न हो-वैसाही उत्तर होना उचित है। सम्पत्ति के अनुसार ही आभूषण बनाने चाहिए। कुल के अनुरूप कार्य करना योग्य है। कार्य के अनुरूप ही प्रयत्न करना चाहिए। जैसा पात्र हो-वैसा ही दान देना उचित है। जैसी अवस्था हो उसके अनुसार ही वेष बनाना चाहिए। स्वामी के अनुकूल ही भृत्य होना-सेवक होना आवश्यक है। पति की आज्ञाकारिणी जो होती है, वही सच्ची भार्या है। शिष्य गुरु के आज्ञावर्ती होना चाहिए और पुत्र पिता की आज्ञा के अनुसार चले। अत्यन्त अधिक आदर शङ्का का स्थान हो जाता है। सेवक सदा स्वामी के अनुसार ही कार्य करे। माता यदि बच्चे को पीट देती है, तो भी वह रोता २ माता के पीछे ही जाता है-ऐसे ही सेवक को भी स्वामी के पीछे २ रहना उचित है। स्नेह करने

वाले व्यक्ति का कोप बहुत थोड़ी देर को होता है। दुष्ट पुरुष, अपने दोष को न देखकर सर्वदा दूसरे के छिद्र को ही देखता रहता है। छल सदा सेवा के साथ होता है किसी विशेष वासना को दृष्टि में रखकर सेवा करने को उपचार करते हैं। बहुत परिचय रखने वालों का भी अत्यधिक आदर शंका के योग्य हो जाता है। साधारण गाय भी सौ कुत्तों से अच्छी है। कल के मोर की प्राप्ति से आज का कबूतर अच्छा है अर्थात् नक़द थोड़ा भी मिले-तो अधिक उधार से अच्छा समझना चाहिए ॥३२४-३४७॥

अतिसंगो दोषमुत्पादयति ॥ ३४८ ॥ सर्वं जयत्यक्रोधः ॥ ३४९ ॥ यद्यपकारिणि कोपः कोपे कोप एव कर्तव्यः ॥३५०॥ मतिमत्सु मूर्खमित्रगुरुवल्लभेषु विवादो न कर्तव्यः ॥ ३५१ ॥ नास्त्यपिशाचमैश्वर्यम् ॥ ३५२ ॥ नास्ति धनवतां शुभकर्मसु श्रमः ॥ ३५३ ॥ नास्ति गतिश्रमो यानवताम् ॥ ३५४ ॥ अलोहमयं निगलं कलत्रम् ॥ ३५५ ॥ यो यस्मिन् कुशलस्य तस्मिन् योक्तव्यः ॥ ३५६ ॥ दुष्कलत्रं मनस्विनां शरीरकर्शनम् ॥ ३५७ ॥ अप्रमत्तो दारान् निरीक्षेत ॥ ३५८ ॥ स्त्रीषु किंचिदपि न विश्वसेत् ॥ ३५९ ॥ न समाधिः स्त्रीषु लोकज्ञता च ॥ ३६० ॥ गुरूणां माता गरीयसी ॥ ३६१ ॥ सर्वावस्थासु माता भर्तव्या ॥ ३६२ ॥ वैदुष्यमलङ्कारेणाच्छाद्यते ॥ ३६३ ॥ स्त्रीणां भूषणं लज्जा ॥ ३६४ ॥ विप्राणां भूषणं वेदः ॥ ३६५ ॥ सर्वेषां भूषणं धर्मः ॥ ३६६ ॥ भूषणानां भूषणं सविनया विद्यते ॥ ३६७ ॥ अनुपद्रवं देशमावसेत् ॥ ३६८ ॥ साधुजनबहुलो देशः ॥ ३६९ ॥

स्त्रियों का अत्यन्त सहवास करना-दोष को उत्पन्न कर देता है। क्रोध रहित पुरुष, सबको जीत लेता है। यदि तुम अपकारी पर क्रोध करना चाहते हो-तो प्रथम उसके कोप करने पर तुम कोप करो अर्थात् दुष्ट के अपकार कर लेने पर उसे बदला चुकाओ, तुम प्रथम अपकार न करो। बुद्धिमान् मूर्ख, मित्र, गुरु और वल्लभ पुरुषों के साथ व्यर्थ विवाद नहीं करना चाहिए। ऐश्वर्य मनुष्य को पिशाच सा बना देता है। प्रायः धनवानों का शुभ कर्म करने में श्रम नहीं होता। सवारी में चलने वाले को थकान नहीं हो सकती अर्थात् धनवान:धनरूपी सवारी में बैठे रहने से शुभ कर्म की पगडण्डी में नहीं चलते। बिना लोह की सांकल के स्त्री बन्धन है। जो जिस काम में जो कुशल है, उसी को उस स्थान पर नियुक्त करना चाहिए। दुष्ट स्त्री मनस्वी पुरुषों को कृशे बना डालती है। प्रमाद रहित होकर स्त्रियों की रक्षा में प्रयत्न करे। स्त्रियों का कुछ भी विश्वास न करें। स्त्रियों में कुछ भी समझदारी और संसार का

अनुभव नहीं होता है। पूज्यों में माता सब से बड़ी पूज्य है। सब अवस्थाओं में माता का भरण पोषण करना चाहिए। विद्वत्ता अलङ्कारों से ढ़क जाती है। स्त्रियों का आभूषण लज्जा है। विप्रों का आभूषण वेद है। प्रत्येक व्यक्ति का आभूषण धर्म है। सारे भूषणों का भूषण स्त्री का शिक्षित और लज्जाशील होना है। उपद्रव रहित देश में निवास करे। जहां श्रेष्ठ मनुष्य अधिक रहते हों-वही उत्तम देश है॥ ३४८-३६६॥

राज्ञो भेतव्यं सार्वकालम्॥ ३७०॥ न राज्ञः परं दैवतम्॥ ३७१॥ सुदूरमपि दहति राजवह्निः॥ ३७२॥ रिक्तहस्तो न राजानमभिगच्छेत्॥३७३॥ गुरुं च दैवं च॥ ३७४॥ कुटुम्बिनो भेतव्यम्॥ ३७५॥ गन्तव्यं च सदा राजकुलम्॥ ३७६॥ राजपुरुषैस्संबन्धं कुर्यात्। ३७७॥ राजदासी न सेवितव्या॥ ३७८॥ न चक्षुषाऽपि राजानं निरीक्षेत॥ ३७९॥ पुत्रे गुणवति कुटुम्बिनः स्वर्गः॥ ३८०॥ पुत्रा विद्यानां पारं गमयितव्याः॥ ३८१॥ जनपदार्थं ग्रामं त्यजेत्॥॥ ३८२॥ ग्रामार्थं कुटुम्बस्त्यज्यते॥ ३८३॥ अतिलाभः पुत्रलाभः॥ ३८४॥ दुर्गतेः पितरौ रक्षति स पुत्रः॥ ३८५॥ कुलं प्रख्यापयति पुत्रः॥ ३८६॥ नानपत्यस्य स्वर्गः॥ ३८७॥ या प्रसूते भार्या॥ ३८८॥ तीर्थसमवाये पुत्रवतीमनुगच्छेत्॥ ३८९॥ सतीर्थाभिगमनाद्ब्रह्मचर्यं नश्यति॥३९०॥ नपरक्षेत्रे बीजं विनिक्षिपेत्॥ ३९१॥ पुत्रार्था हि स्त्रियः॥ ३९२॥

राजा से सर्वदा डरना चाहिए। राजा से बढ़कर कोई देवता नहीं है। राजा रूपी अग्नि दूर तक जला डालती है। खाली हाथ राजा गुरु और देवता के समीप न जावे। कुटुम्बी पुरुष से डरते रहना चाहिए। राजकुल में सदा जाते रहना उचित है। राजपुरुषों के साथ मेल जोल रखे। राजा की दासी से सम्बन्ध नहीं करना चाहिए। राजा को किसी भी प्रकार आंख उठाकर न देखे। पुत्र के गुणवान् होने पर कुटुम्बी को स्वर्ग सा प्राप्त हो जाता है। जहां तक हो सके-पुत्रों को विद्याओं का पारदर्शी विद्वान बना देना चाहिए-इस में चाहे कितना भी क्लेश हो। सारे देश के हित के लिए एक ग्राम को छोड़ देवे, गांव के हित के लिए एक कुटुम्ब के हित को भुला देना चाहिए। सारे लाभों में श्रेष्ठ पुत्र लाभ है। जो पुत्र अपने माता पिता की संकटों से रक्षा करता है, वही सत्पुत्र है। सत्पुत्र ही कुल को प्रसिद्ध कर देता है। सन्तान पुरुष को स्वर्ग प्राप्ति नहीं होती है। जो ऐसा पुत्र उत्पन्न करती है, वही भार्या है। तीर्थ यात्रा के समय पुत्रवती को साथ लेकर ही जाना चाहिए अथवा अनेक स्त्रियों के एक साथ ऋतुमती होने पर आदर द्योतन करने को प्रथम पुत्रवती के पास ही जाना चाहिए। रजस्वला के साथ गमन करने से ब्रह्मचर्य नष्ट

हो जाता है। अन्य की स्त्रियों के गर्भ में बीज वपन न करे। स्त्रियां तो केवल पुत्रोत्पत्ति के लिये है और वह अपनी ही स्त्री हो सकती है ॥ ३७०-३६२ ॥

स्वदासीपरिग्रहो हि स्वदासभावः ॥ ३६३॥ उपस्थितविनाशः पथ्यवाक्यं न शृणोति ॥ ३६४ ॥ नास्ति देहिनां सुखदुःखाभावः ॥ ३६५ ॥ मातरमिव वत्साः सुखदुःखानि कर्तारमेवानुगच्छन्ति ॥ ३६६ । तिलमात्रमप्युपकारं शैल-मात्रं मन्यते साधुः ॥३६७॥ उपकारोऽनार्येष्वकर्तव्यः ॥३६८॥ प्रत्युपकारभया-दनार्यश्शत्रुर्भवति ॥३६६॥ स्वल्पमप्युपकारकृते प्रत्युपकारं कर्तुमार्यो न स्वपिति ॥ ४०० ॥ न कदाऽपि देवताऽवमन्तव्या ॥४०१॥ न चक्षुषः समं ज्योतिरस्ति ॥ ४०२ ॥ चक्षुर्हि शरीरिणां नेता ॥ ४०३ ॥ अपचक्षुषः किं शरीरेण ॥४०४॥ नाप्सु मूत्रं कुर्यात् ॥ ४०५ ॥ न नग्नो जलं प्रविशेत् ॥ ४०६ ॥ यथा शरीरं तथा ज्ञानम् ॥ ४०७ ॥ यथा बुद्धिस्तथा विभवः ॥ ४०८ ॥ अग्नावग्निं न निक्षिपेत् ॥ ४०६ ॥ तपस्विनः पूजनीयाः ॥ ४१० ॥ परदारान् न गच्छेत् ॥ ४११ ॥ अन्नदानं भ्रूणहत्यामपि मार्ष्टि ॥ ४१२॥ न वेदबाह्यो धर्मः ॥४१३॥ कदाचिदपि धर्मं निषेवेत ॥ ४१४ ॥

अपनी दासी के साथ सम्भोग करना अपने को दास बना लेना है । जिसका विनाश समीप में है, वह हितकारी वचन नहीं सुनता है। देह धारियों को दुःख सुख का अभाव नही है, अर्थात् उसे कभी दुःख और कभी सुख प्राप्त होता रहता है। बछड़े जैसे अपनी २ माता गौओं के पास पहुंच जाते हैं, उसी तरह पाप पुण्य के करने वालों को उन के अनुसार दुःख सुख प्राप्त हो जाता है। महात्मा पुरुष, तिलमात्र उपकार को भी पर्वत के तुल्य मानता है। अनार्य पुरुषों पर उपकार नहीं करना चाहिए। उपकार का बदला चुकाने से डरकर अनार्य पुरुष शत्रु बन जाता है। थोड़े से उपकार के बदले में भी अत्यन्त प्रत्युपकार करने का सज्जन प्रयत्न करता है । देवताओं का कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिए । आंख समान कोई ज्योतिः नही है। आंख ही मनुष्यों को सर्वत्र ले जाने में समर्थ है । चक्षुहीन पुरुष के शरीर रहने का भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। जल में मूत्रोत्सर्ग न करे । नंगा होकर जल में प्रवेश न करे। जैसा शरीर सात्विक राजस होता है-वैसा ही ज्ञान होता है । जैसी बुद्धि होती है, वैसा ही वैभव मिलकर रहता है । अग्नि में अग्नि को न फैंके अर्थात् तेजस्वी पर कोप न करे। तपस्वी लोग पूजनीय होते हैं। पर स्त्रियों के साथ गमन न करे। अन्नदान ब्रह्महत्या के पाप को भी

धो डालता है। वेद बाह्य धर्म, धर्म नहीं माना जा सकता है। किसी भी तरह धर्म का सेवन करना चाहिए ॥३६३-४१४॥

स्वर्गं नयति सुनृतम् ॥ ४१५ ॥ नास्ति सत्यात्परं तपः ॥४१६॥ सत्यं स्वर्गस्य साधनम् ॥ ४१७ ॥ सत्येन धार्यते लोकः ॥ ४१८ ॥ सत्याद्देवो वर्षति ॥ ४१६ ॥ नानृतात्पातकं परम् ॥ ४२० ॥ न मीमांस्या गुरवः ॥ ४२१ ॥ खलत्वं नोपेयात् ॥ ४२२ ॥ नास्ति खलस्य मित्रं ॥ ४२३ ॥ लोकयात्रा दरिद्रं बाधते ॥ ४२४ ॥ अतिशूरो दानशूरः ॥ ४२५ ॥ गुरुदेवब्राह्मणेपु भक्तिर्भूषणम् ॥ ४२६ ॥ सर्वस्य भूषणं विनयः ॥ ४२७ ॥ अकुलीनोपि विनीतः कुलीनाद्विशिष्टः ॥ ४२८ ॥ आचारादायुर्वर्धते कीर्तिश्च ॥ ४२६ ॥ प्रियमप्यहितं न वक्तव्यम् ॥ ४३० ॥ बहुजनविरुद्धमेकं नानुवर्तेत ॥ ४३१ ॥ न दुर्जनेपु भागधेयः कर्तव्यः ॥ ४३२ ॥ न कृतार्थेपु नीचेपु सम्बन्धः ॥ ४३३ ॥ ऋणशत्रुव्याधिष्वशेषः कर्तव्यः ॥ ४३४ ॥ भूत्याऽनुवर्तनं पुरुपस्य रसायनम् ॥४३५॥ नार्थिष्ववज्ञा कार्या ॥ ४३६ ॥

मीठा और सत्यभापण, स्वर्ग ले जाता है। सत्याचरण से अधिक तप नहीं है। सत्य ही स्वर्ग का साधन है। सत्य से लोक की धारणा होती है। सत्य से ही देव वर्षा करता है। मिथ्याचरण से अधिक पाप नहीं है। पूज्य लोगों की आलोचना नहीं करनी चाहिए। दुष्टता को कभी स्वीकार न करे। दुष्ट का कोई मित्र नहीं हुआ करता है। दरिद्री पुरुप को लोक यात्रा निर्वाह करना बड़ा दुःखदायी हो जाता है। जो दान में शूर है-वही शूरवीर है। गुरु देवता और ब्राह्मणों में भक्ति रखना, मनुष्यका भूपण है। विनय (नम्रता) सब का भूपण है। जो कुलहीन होकर भी नम्र है, वह उद्दण्डकुलीन से लाख दर्जे उत्तम है। सदाचार से आयु की और कीर्ति वृद्धि होती है। अहितकारी बात प्रिय हो-तो भी नहीं कहनी चाहिए। बहुत जनों से विरोध करने वाला एक पुरुप का साथी न बने। दुर्जन पुरुपों के साथ अपने भाग्य को नहीं जोड़ देना चाहिए। कृतकार्य नीच पुरुषों की सङ्गति भी योग्य नहीं है। ऋण, शत्रु और व्याधि को निःशेप कर देनी चाहिए। कल्याण का पीछा करना, पुरुप के लिए रसायन है। किसी सहायता की याचना करने वाले पुरुपों से घृणा नहीं करनी चाहिए ॥४१५-४३६॥

दुष्करं कर्म कारयित्वा कर्तारमवमन्यते नीचः ॥ ४३७ ॥ नाकृतज्ञस्य नरकान्निवर्तनम् ॥ ४३८ ॥ जिह्वायत्तौ वृद्धिविनाशौ ॥ ४३६ ॥ विपामृतयो-

राकरी जिह्वा ॥ ४४० ॥ प्रियवादिनो न शत्रुः ॥ ४४१ ॥ स्तुता अपि देवतास्तुष्यन्ति ॥ ४४२ ॥ अनृतमपि दुर्वचनं चिरं तिष्ठति ॥ ४४३ ॥ राजद्विष्टं न च वक्तव्यम् ॥४४४॥ श्रुतिसुखात् कोकिलालापात्तुष्यन्ति ॥४४५॥ स्वधर्महेतुस्सत्पुरुषः ॥ ४४६ ॥ नास्त्यर्थिनो गौरवम् ॥ ४४७ ॥ स्त्रीणां भूषणं सौभाग्यम् ॥ ४४८ ॥ शत्रोरपि न पातनीया वृत्तिः ॥ ४४९ ॥ अप्रयत्नो दकं क्षेत्रम् ॥ ४५० ॥ एरण्डमवलम्ब्य कुञ्जरं न कोपयेत् ॥ ४५१ ॥ अतिप्रवृद्धा शाल्मली वारणस्तम्भो न भवति ॥४५२॥ अतिदीर्घोपि कर्णिकारो न मुसली ॥ ४५३ ॥ अतिदीप्तोपि खद्योतो न पावकः ॥ ४५४ ॥ न प्रवृद्धत्वं गुणहेतुः ॥ ४५५ ॥ सुजीर्णोपि पिचुमन्दो न शङ्कुलायते ॥ ४५६ ॥

नीच पुरुष, किसी अन्य सहायक द्वारा दुष्कर कार्य कराकर फिर उसकी उपेक्षा या अपमान कर देता है । कृतघ्न पुरुष को नरक छोड़कर अन्य गति नहीं है। उन्नति और अवनति जिह्वा के ही अधीन है। अमृत और विष दोनों की ही खान जिह्वा है। प्रिय बोलने वाले पुरुष के शत्रु नहीं होते । स्तुति से तो देवता भी सन्तुष्ट हो जाते हैं। झूंठा भी दुर्वचन चिरकाल तक जलाता रहता है। राजा से द्वेष उत्पन्न करने वाला वचन नहीं कहना चाहिए। कानों को सुख देने वाले वचन तो काली कोयल के भी अच्छे लगते हैं। अपने ही धर्माचरण के कारण पुरुष, सत्पुरुष बन जाता है। याचक का कोई गौरव नहीं रहता है। स्त्रियों का भूषण सौभाग्य ही है। शत्रु की जिविका का भी नाश नही करना चाहिए । जहां विना प्रयत्न के जल निकले, वही अपना खेत है अर्थात् जहां धन की सुलभता से प्राप्ति हो-वही स्वदेश है । एरण्ड का सहारा लेकर हाथी को कुपित करना अच्छा नहीं होता। बहुत लम्बा चौड़ा सेमल का पेड़ भी हाथी के बांधने में समर्थ नही हो सकता है अर्थात् गुणहीन धनवान विद्वान के वश में करने में समर्थ नहीं होता । बहुत बड़ा भी कनेर का वृक्ष मूसल बनाने के काम में नहीं आ सकता। अत्यन्त चमकने वाला भी खद्योत आग नहीं बन जाता। बहुत मालदार हो जाना, गुणों का हेतु नहीं है । बहुत पुराना भी नीम का वृक्ष, सरोता (काटने का साधन) नहीं बन जाता ॥४३७-४५६॥

यथा बीजं तथा निष्पत्तिः ॥ ४५७ ॥ यथा श्रुतं तथा बुद्धिः ॥ ४५८ ॥ यथा कुलं तथाऽऽचारः ॥४५९॥ संस्कृतः पिचुमन्दो न सहकारो भवति ॥४६०॥ न चागतं सुखं त्यजेत् ॥ ४६१ ॥ स्वयमेव दुःखमधिगच्छति ॥ ४६२ ॥ रात्रिचारणं न कुर्यात् ॥ ४६३ ॥ न चार्धरात्रं स्वपेत् ॥ ४६४ ॥ तद्विद्वाद्भिः

परीक्षेत ॥ ४६५ ॥ परगृहमकारणतो न प्रविशेत् ॥ ४६६ ॥ ज्ञात्वाऽपि दोषमेव करोति लोकः ॥ ४६७ ॥ शास्त्रप्रधाना लोकवृत्तिः ॥ ४६८ ॥ शास्त्राभावे शिष्टाचारमनुगच्छेत् ॥ ४६९ ॥ नाचरिताच्छास्त्रं गरीयः ॥ ४७० ॥ दूरस्थमपि चारचक्षुः पश्यति राजा ॥ ४७१ ॥ गतानुगतिको लोकः ॥ ४७२ ॥ यमनुजीवेत् तं नापवदेत् ॥ ४७३ ॥ तपस्सार इन्द्रियनिग्रहः ॥ ४७४ ॥ दुर्लभस्त्रीबन्धनान्मोक्षः ॥ ४७५ ॥ स्त्री नाम सर्वाशुभानां क्षेत्रम् ॥ ४७६ ॥ न च स्त्रीणां पुरुषपरीक्षा ॥ ४७७ ॥ स्त्रीणां मनः क्षणिकम् ॥ ४७८ ॥ अशुभद्वेषिणः स्त्रीषु न प्रसक्ताः ॥ ४७९ ॥

जैसा बीज होता है, वैसा ही फल उत्पन्न होता है, जैसे माता पिता होते हैं-वैसी ही सन्तान होती है। जैसा शास्त्र पढ़ा है, वैसी ही उन्नति करने में समर्थ होता है। जैसा कुल होता है— वैसा ही आचार होता है। संस्कार किया हुआ नीम का वृक्ष, आम नहीं बन सकता है। प्राप्त सुख को कभी नहीं छोड़े। कर्मानुसार स्वयं ही मनुष्य, दुख को प्राप्त करता है। रात में इधर उधर न घूमें। आधी रात में न सोवे। विद्वानों के साथ ब्रह्म की विचारणा करे। बिना कारण दूसरे के घर पर न जावे। कामों के दोषों को जान कर भी (लालच वश) उनमें फंसते रहते हैं। शास्त्र के अनुसार ही लोक की वृत्ति होनी चाहिए। जब शास्त्र का ज्ञान न हो-तो श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण का अनुकरण करे। शिष्टाचार से बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है। राजा गुप्तचरों के द्वारा दूर की चीजें भी देख लेता है। लोग-तो (भेड़िया धसान की तरह) एक के पीछे एक चलता रहता है, तत्व कोई नहीं देखता। जिसके द्वारा अपनी वृत्ति चलावे-उसकी निन्दा न करे। इन्द्रियों का रोकना तपका सार है। स्त्री के बन्धन से छुटकारा पाना दुर्लभ है। स्त्री सारे अशुभ कर्मों के उत्पादन करने का खेत है। स्त्री, पुरुषों के गुणों की परीक्षा करना नहीं जानती है। स्त्रियों का मन चञ्चल होता है। कभी किधर और कभी किधर होता रहता है। जो अशुभ कर्म नहीं करना चाहते-वे स्त्रियों के झगड़े में नहीं फंसते हैं ॥४५७-४७९॥

यज्ञफलज्ञास्त्रिवेदविदः ॥ ४८० ॥ स्वर्गस्थानं न शाश्वतं यावत्पुण्यफलम् ॥ ४८१ ॥ न च स्वर्गपतनात्परं दुःखम् ॥ ४८२ ॥ देही देहं त्यक्त्वा ऐन्द्रपदं न वाञ्छति ॥ ४८३ ॥ दुःखानामौषधं निर्वाणम् ॥ ४८४ ॥ अनार्यसंबन्धाद्वरमार्यशत्रुता ॥ ४८५ ॥ निहन्ति दुर्वचनं कुलम् ॥ ४८६ ॥ न पुत्रसंस्पर्शात्परं सुखम् ॥ ४८७ ॥ विवादे धर्ममनुस्मरेत् ॥ ४८८ ॥ निशान्ते कार्यं चिन्तयेत्

|| ४८६ || प्रदोषे न संयोगः कर्तव्यः || ४६० || उपस्थितविनाशः दुर्नयं मन्यते ||४६१|| क्षीरार्थिनः किं करिण्या ||४६२|| न दानसमं वश्यम् ||४६३|| परायत्तेपूत्कण्ठां न कुर्यात् || ४६४ || असत्समृद्धिरसद्भिरेव भुज्यते ||४६५|| निम्बफलं काकैर्भुज्यते || ४६६ || नाम्भोधिस्तृष्णामपोहति || ४६७|| वालुका अपि स्वगुणमाश्रयन्ते || ४६८ || सन्तोऽसत्सु न रमन्ते || ४६६ || हंसः प्रेतवने न रमते || ५०० ||

तीनों वेदों के ज्ञाता ही यज्ञ के फल को जान पाते हैं। स्वर्ग की स्थिति सदा के लिए नहीं है, जब तक पुण्य-तब तक स्वर्ग में रहना होगा। स्वर्ग के पतन से अधिक दुःख नहीं है। मनुष्य देह को छोड़कर वह इन्द्र पद को भी नहीं चाहता है अर्थात् उसकी इच्छा मोक्ष की ही होती है। सारे दुःखों की औषध केवल मोक्ष है। अनार्य पुरुषों के साथ सम्बन्ध की अपेक्षा आर्य लोगों से शत्रुता भी अच्छी है दुर्वचन, कुलों का भी नाश कर देता है। पुत्र के स्पर्श से अधिक कोई सुख नहीं है। विवाद बढ़ने पर भी धर्मानुसार ही आचरण करे। रात के अन्त होने पर प्रातःकाल अपने हित का विचार करे। सायंकाल के समय संभोग नहीं करना चाहिए। जिसका नाश होने वाला है, वह अन्याय पर उतर आता है। जो दूध चाहता है, उसे हथिनी से क्या प्रयोजन है अर्थात जिसको जैसे व्यक्ति से कार्य है वह उसे ही चाहेगा, उसे बड़े आदमी से क्या लेना है। दान के समान वश करने वाली कोई वस्तु नहीं है। दूसरों के अधीन वस्तुओं को प्राप्ति की उत्कट इच्छा न करे। असज्जनों की सम्पत्ति को असज्जन ही भोगते हैं, जैसे नीम के फल को काक ही खाते हैं, समुद्र कभी प्यास नहीं बुझाता है। बालू भी अपने ही गुणों का अवलम्ब ग्रहण करती है, अर्थात् क्षुद्र मनुष्य भी अपनी आदत नहीं छोड़ता। सज्जन असज्जनों से प्रेम नहीं करते हैं जैसे-हंस, श्मशान में नहीं रहता है ||४८८-५००||

अर्थार्थं प्रवर्तते लोकः || ५०१ || आशया बध्यते लोकः || ५०२ || न चाशापरैश्श्रीस्सह तिष्ठति || ५०३ || आशापरे न धैर्यम् || ५०४ || दैन्यान्मरणमुत्तमम् || ५०५ || आशा लज्जां व्यपोहति || ५०६|| न मात्रा सह वासः कर्तव्यः || ५०७ || आत्मा न स्तोतव्यः || ५०८ || न दिवा स्वप्नं कुर्यात् || ५०६ || न चासन्नमपि पश्यत्यैश्वर्यान्धः न शृणोतीष्टं वाक्यम् || ५१० || स्त्रीणां न भर्तुः परदैवतम् || ५११ || तदनुवर्तनमुभयसौख्यम् || ५१२ || अतिथिमभ्यागतं पूजयेद्यथाविधि || ५१३ || नास्ति हव्यस्य व्याघातः ||५१४||

शत्रुर्मित्रवत्प्रतिभाति ॥ ५१५ ॥ मृगतृष्णा जलवद्भाति ॥ ५१६ ॥ दुर्मेधसामसच्छास्त्रं मोहयति ॥ ५१७ ॥ सत्संगः स्वर्गवासः ॥ ५१८ ॥ आर्यः स्वमिव परं मन्यते ॥ ५१६ ॥ रूपानुवर्ती गुणः ॥ ५२० ॥ यत्र सुखेन वर्तते तदेव स्थानम् ॥ ५२१ ॥

सारा संसार धन के पीछे ही चक्कर लगाता रहता है। सारा लोक आशा से ही बंधा हुआ है। आशा में फंसे हुए पुरुषों के लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती है। आशा में लिपटे हुए पुरुष को धैर्य नहीं होता। दीन दशा की अपेक्षा मरना अच्छा है। आशा से लज्जा नष्ट हो जाती है अर्थात् आशा रखने वाला लज्जा छोड़कर याचना करता हुआ इधर उधर भटकता है। एकान्त में माता तक के साथ वास नहीं करना चाहिए। अपनी स्तुति (प्रशंसा) नहीं करनी चाहिए। दिन में नहीं सोवे। ऐश्वर्य में अन्धा हुआ पुरुष, अपने समीप स्थित घटना को भी नहीं देखता है और हितकारी वचन सुनता है। पति से अधिक स्त्रियों को अन्य देवता नहीं है। पति के अनुकूल चलना—इस लोक और परलोक दोनों में उत्तम है। अतिथि और अभ्यागत का यथाशक्ति आदर करना चाहिए। देवों के निमित्त किया हुआ दान कर्म नष्ट नहीं होता। अज्ञानी को शत्रु, मित्र जैसा दिखाई देने लगता है, जैसे मृग को बालू जल के तुल्य प्रतीत होती है। दुष्ट बुद्धि पुरुषों को दुष्ट शास्त्र, मोहित करता है। सत्संग ही स्वर्ग का वास है। आर्य पुरुष, अपने समान ही दूसरों को समझता है। आकार के अनुसार ही गुण होते हैं। जहां मनुष्य सुखपूर्वक रह सके-वहीं अपना स्थान समझना चाहिए ॥५०१-५२१॥

विश्वासघातिनो न निष्कृतिः ॥ ५२२ । दैवायत्तं न शोचेत् ॥ ५२३ ॥ आश्रितदुःखमात्मन इव मन्यते साधुः ॥ ५२४ ॥ हृद्गतमाच्छाद्यान्यद्वदत्यनार्यः ॥ ५२५ ॥ बुद्धिहीनः पिशाचतुल्यः ॥ ५२६ ॥ असहायः पथि न गच्छेत् ॥ ५२७ ॥ पुत्रो न स्तोतव्यः ॥ ५२८ ॥ स्वामी स्तोतव्योऽनुजीविभिः ॥५२६॥ धर्मकृत्येष्वपि स्वामिन एव घोषयेत् ॥ ५३० ॥ राजाज्ञां नातिलङ्घयेत् ॥५३१॥ यथाऽऽज्ञप्तं तथा कुर्यात् ॥ ५३२ ॥ नास्ति बुद्धिमतां शत्रुः ॥ ५३३ ॥ आत्मच्छिद्रं न प्रकाशयेत् ॥ ५३४ ॥ क्षमावानेव सर्वं साधयति ॥ ५३५ ॥ आपदर्थं धनं रक्षेत् ॥ ५३६ ॥ साहसवतां प्रियं कर्तव्यम् ॥५३७॥ श्वः कार्यमद्यः कुर्वीत ॥ ५३८ ॥ आपराह्णिकं पूर्वाह्ण एव कर्तव्यम् ॥ ५३६ ॥ व्यवहारानुलोमो धर्मः ॥ ५४० ॥ सर्वज्ञता लोकज्ञता ॥ ५४१ ॥ शास्त्रज्ञोऽप्यलोकज्ञो मूर्खतुल्यः ॥ ५४२ ॥

विश्वासघाती पुरुष का किसी तरह भी उद्धार नहीं हो सकता है, उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है, जिसके उसका पाप नष्ट हो जावे । जो बात दैव के अधीन है, उसकी चिन्ता न करे। अपने आश्रय में रहने वाले पुरुषों के दुःख को महात्मा अपना ही दुःख मानते हैं। अनार्य पुरुष, अपने हृदय के सत्य भाव को छिपाकर ऊपर से मीठी २ बातें बनाते हैं। बुद्धिहीन पुरुष को पिशाच समझना चाहिए । किसी को साथ लिए बिना मार्ग में न चले। अपने पुत्र की प्रशंसा न करे । सेवक लोग, अपने स्वामी के गुणों का सर्वदा अनुकीर्तन करते रहें। जो भी धर्म आचरण करें, उसे भी स्वामी की ही कृपा बतावें। राजा की आज्ञा का उल्लंघन न करे। वह जैसी आज्ञा करे उसका वैसा ही पालन करना उचित है। बुद्धिमानों का कोई शत्रु नहीं होता। अपने छिद्र को कभी प्रकाशित न करे। क्षमावान् पुरुष ही सब कुछ सिद्ध कर लेता है। आपत्ति से उद्धार पाने के लिए धन की रक्षा करे । जिनको साहस (हिम्मत) है-वे कर्त्तव्य करना अधिक पसन्द करते हैं। कल करने योग्य कार्य को आज ही कर डालना चाहिए । जो दोपहर दिन के अनन्तर करना है, उसे दोपहर से पूर्व ही कर डालो । व्यवहार के अनुसार ही धर्म हो सकता है अर्थात् जैसा कर्म करोगे-वैसा ही धर्म होगा। लोक का अनुभव ही सर्वज्ञता है अर्थात् जिसको लोक का अनुभव है, वही सर्वज्ञ है, कोरे शास्त्र पढ़ने से क्या है। जो शास्त्र जानता, वह मूर्ख तुल्य ही समझना चाहिए ॥५२२-५४२॥

शास्त्रप्रयोजनं तत्त्वदर्शनम् ॥ ५४३ ॥ तत्त्वज्ञानं कार्यमेव प्रकाशयति ॥ ५४४ ॥ व्यवहारे पक्षपातो न कार्यं ॥ ५४५ ॥ धर्मादपि व्यवहारो गरीयान् ॥ ५४६ ॥ आत्मा हि व्यवहारस्य साक्षी ॥ ५४७ ॥सर्वसाक्षी ह्यात्मा ॥ ५४८ ॥ न स्यात्कूटसाक्षी ॥ ५४९ ॥ कूटसाक्षिणो नरके पतन्ति ॥ ५५० ॥ प्रच्छन्नपापानां साक्षिणो महाभूतानि ॥ ५५१ आत्मनः पापमात्मैव प्रकाशयति ॥ ५५२ ॥ व्यवहारेऽन्तर्गतमाकारस्सूचयति ॥ ५५३ ॥ आकारसंवरणं देवानामशक्यम् ॥ ५५४ ॥ चोरराजपुरुषेभ्यो वित्तं रक्षेत् ॥ ५५५ ॥ दुर्दर्शना हि राजनः प्रजा नाशयन्ति ॥ ॥ ५५६ ॥ सुदर्शना हि राजानः प्रजा रञ्जयन्ति ॥ ५५७ ॥ न्याययुक्तं राजनं मातरं मन्यन्ते प्रजाः ॥ ५५८ ॥ तादृशस्स राजा इह सुखं ततस्स्वर्ग माप्नोति ॥ ५५९ ॥

समस्त वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान कराना ही शास्त्र का प्रयोजन है। लोक ज्ञान ही तत्व ज्ञान को उत्पन्न करता है । व्यवहार में कभी-पक्ष पात नहीं करना चाहिए। परस्पर का व्यवहार धर्म से भी बढ़कर धर्म समझना चाहिए। आत्मा भी तो इस सारे लोक

व्यवहार का साक्षी है (द्रष्टा) है अर्थात् आत्मा को भी लोक व्यवहार देखना पड़ता है, क्योंकि आत्मा सबका साक्षी है। झूंठे साक्षी, नरक में गिरते हैं। छुपकर पाप करने वाले पुरुषों के साक्षी महाभूत [पृथ्वी जल आदि] होते हैं। अपने पाप को मनुष्य, आपही प्रकट करता है। जब मनुष्य कोई कार्य करता है, तो उसकी आकृति, सारे हृद्‌गतभावों को प्रकट कर देती है। अपने हृदय के भावों को देवता भी छुपाने में समर्थ नहीं हो सकते। राजपुरुष और चोरों से अपने धन की सर्वदा रक्षा करता रहे। जो राजा कभी प्रजा को दर्शन भी कठिनता से देते हैं। उनकी प्रजा नष्ट हो जाती है। जो राजा बार २ आकर प्रजा के सुख दुःख की पूछते हैं, उनसे प्रजा प्रसन्न रहती है। न्यायशील राजा को प्रजा अपनी माता के तुल्य पालक समझती है। माता के समान प्रजा पालक राजा इस लोक में सुख और अन्त में स्वर्ग प्राप्त करता है ॥५४३-५५६॥

अहिंसालक्षणो धर्मः ॥ ५६० ॥ स्वशरीरमपि परशरीरं मन्यते साधुः ॥ ५६१ ॥ मांसभक्षणमयुक्तं सर्वेषाम् ॥५६२॥ न संसारभयं ज्ञानवताम् ॥ ५६३ ॥ ॥ ५६४ ॥ विज्ञानदीपेन संसारभयं निवर्तते ॥ ५६५ ॥ सर्वमनित्यं भवति ॥ ५६६ ॥ कृमिशकृन्मूत्रभाजनं शरीरं पुण्यपापजन्महेतु ॥ ५६७ ॥ जन्ममरणादिषु दुःखमेव ॥ ५६८ ॥ तपसा स्वर्गमाप्नोति ॥ ५६९ ॥ क्षमायुक्तस्य तपो विवर्धते ॥ ५७० ॥ तस्मात्सर्वेषां कार्यसिद्धिर्भवति ॥ ५७१ ॥

॥ इति चाणक्यसूत्राणि ॥

अहिंसाही मुख्य धर्म है। महात्मा लोग, अपने शरीर को भी दूसरों के निमित्त समझते हैं। मांस खाना सबको अनुचित है। ज्ञानी लोगों को संसार का भय नहीं होता है। विज्ञान के दीपक से संसार का भय हटता है। यह सारा संसार अनित्य है। यह शरीर कीड़े, मलमूत्र आदि का पात्र है और इससे पुण्य पाप होते रहते हैं। जन्म मरण में तो दुःख ही दुःख है। तप से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। क्षमाशील पुरुष का तप बढ़ता रहता है। इससे सिद्ध है, कि तप से ही सारे कार्यों की सिद्धि होती है ॥५६०-५७१॥

इति श्री महामुनि चाणक्य प्रणीत नीति सूत्रों का भाषानुवाद समाप्त ॥

